तुलसी-काव्य-मीमांसा

उदयभानु सिंह
पीएच० डी०, डी० लिट०

राधाकृष्ण प्रकाशन

मूल्य १८ रुपये

प्रकाशक
ओमप्रकाश
राधाकृष्ण प्रकाशन,
४-१४, रूपनगर,
दिल्ली-७

मुद्रक
हिंदी प्रिंटिंग प्रेस,
क्वीन्स रोड, दिल्ली-६

मित्रवर घनश्याम मिश्र

को

सादर समर्पित

विषय-सूची

१. अध्ययन-सामग्री

२. तुलसी-साहित्य

३. जीवन-चरित

४. तुलसी की आत्मकहानी

५. युग का प्रभाव

६. काव्य-सिद्धांत

७. भाव-पक्ष

८. विचार-धारा

९. कला-पक्ष

१०. गौरव-ग्रंथ

रामचरितमानस

गीतावली

विनयपत्रिका

कवितावली

प्राक्कथन

लगभग चार वर्ष पूर्व लखनऊ विश्वविद्यालय से मेरे डी० लिट० के शोधप्रबध 'तुलसी-दर्शन-मीमासा' का प्रकाशन हुआ था। उसमे तुलसीदास-विषयक अध्ययन को उनके दार्शनिक विचारो तक ही सीमित रखा गया था। 'तुलसी-काव्य-मीमासा' उसका अनुपूरक ग्रथ है। इसके विवेच्य विषय है अध्ययन-सामग्री, तुलसीकृत रचनाओ की प्रामाणिकता, तुलसीदास का जीवनचरित, उनकी आत्मकहानी, उन पर परिस्थितियो का प्रभाव एव उनके साहित्य मे युग की अभिव्यक्ति, उनके काव्य-सिद्धात, उनके काव्य का भाव-पक्ष अर्थात् प्रतिपाद्य विषय, कला-पक्ष अर्थात् प्रतिपादन-शैली, और गौरव-ग्रथ—'रामचरितमानस', 'गीतावली', 'विनयपत्रिका' तथा 'कवितावली'। 'जीवनचरित' और 'आत्मकहानी' को एक ही अध्याय मे समिलित किया जा सकता था, किंतु कवि की स्वकथित जीवनी के महत्त्वपूर्ण वैशिष्ट्य के कारण उसका स्वतत्र निरूपण समीचीन प्रतीत हुआ। 'विचार-धारा' के अतर्गत तुलसीदास की दार्शनिक मान्यताओ का सकेत मात्र किया गया है, उनका विशद विवेचन 'तुलसी-दर्शन-मीमासा' मे द्रष्टव्य है।

तुलसी की प्रामाणिक कृतियाँ है वैराग्यसदीपनी, रामाज्ञाप्रश्न, रामललानहछू, जानकीमगल, रामचरितमानस, पार्वतीमगल, कृष्णगीतावली, गीतावली, विनयपत्रिका, दोहावली, बरवैरामायण, और कवितावली-हनुमानबाहुक। श्री कृष्णाचार्य ने उनके प्रथम मुद्रण का विवरण इस प्रकार दिया है [1]

कृष्णगीतावली	सस्कृत प्रेस, कलकत्ता	१८०७ ई०
रामसगुनावली (रामाज्ञाप्रश्न)	सस्कृत प्रेस, कलकत्ता	१८०७ ई०
रामायण (रामचरितमानस)	सस्कृत प्रेस, कलकत्ता	१८११ ई०
कवित्तरामायण	सस्कृत प्रेस, कलकत्ता	१८१५ ई०
विनयपत्रिका	गणेश छापाखाना, बनारस	१८५० ई०
दोहावली	केदार प्रभाकर छापाखाना, बनारस	१८५६ ई०
गीतावली	दिवाकर छापाखाना, बनारस	१८६२ ई०
पंचरतन[2]	स० दुर्गाप्रसाद, बनारस	१८६४ ई०
हनुमानबाहुक	लखनऊ	१८६८ ई०

---

१ क्रमश देखिए हिन्दी के आदिमुद्रित ग्रथ, पृ० ५, ५, ६, १०, ६५, ६०, ५६, ६०, ६५

२. जानकीमगल-बरवै नहछू-वैराग्यसदीपनी-उमामगल (पार्वतीमगल)

उक्त कृतियो मे से केवल रामचरितमानस का विधिवत् पाठानुसधान हुआ है। उस पर स्वतत्र समीक्षा-ग्रथ और शोधप्रबध लिखे गये हैं। अन्य रचनाओ का वैज्ञानिक पाठालोचन अपेक्षित है, उनके विभिन्न पक्षो के सूक्ष्म समालोचन की आवश्यकता है। इसके अतिरिक्त, तुलसीदास पर शोधकार्य करने के लिए अभी विस्तृत क्षेत्र पडा हुआ है तुलसी की अवधी और ब्रजभाषा का अलग-अलग भाषावैज्ञानिक एव व्याकरणिक अध्ययन, व्युत्पत्ति, अर्थ-विकास, पर्याय-प्रयोग और सस्कृति की दृष्टि से उनकी शब्दावली का अनुशीलन, तुलसी-सबधी ग्रथपुटी (बिब्लियोग्राफी) का निर्माण आदि।

प्रस्तुत ग्रथ मे 'रामचरितमानस' के सदर्भ डॉ० माताप्रसाद गुप्त द्वारा सपादित सस्करण से दिये गये हैं। उद्धरणो मे अनेक स्थानो पर आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र द्वारा सपादित सस्करण का पाठ ग्रहण किया गया है। अन्य कृतियो के सदर्भ गीता प्रेस से प्रकाशित सस्करणो के अनुसार है। उद्धरणो म 'तुलसी के चार दल' और प० श्रीकातशरण द्वारा सपादित 'विनयपत्रिका' आदि का भी अनुसरण किया गया है। कुछ शब्दो की वर्तनी के दो-दो वैकल्पिक रूप प्रचलित है, जैसे **कोश** और **कोप**, **कौशल्या** और **कौसल्या**, **शूर्पणखा** और **सूर्पणखा**। दोनो शुद्ध हैं, अत दोनो का प्रयोग मान्य है।

तुलसी-साहित्य के विपश्चित् व्याख्याकारो, मर्मज्ञ आलोचको और मनीषी अनुसधाताओ की कृतियो से मैंने यथेष्ट लाभ उठाया है। मैं उनका आभारी हूँ। जिन विद्वानो की मान्यताओ से सहमत नही हो सका हूँ उनके प्रति मेरा आदर-भाव कम नही है। मत-भेद स्वाभाविक है। सबने अपनी-अपनी रुचि, प्रतीति और दृष्टि के अनुसार तुलसीदास के काव्य का विवेचन किया है। प्रस्तुत **मीमासा** उसी शृखला की एक कडी है। अध्ययन का यह क्रम उपादेय है। अधिकस्य अधिक फलम्।

मित्रवर प० घनश्याम मिश्र से मुझे लिखने-पढने की प्रेरणा निरतर मिलती रही है। अतएव यह ग्रथ उनको सादर समर्पित करता हूँ।

उदयभानु सिह

१. अध्ययन-सामग्री

तुलसीदास-विषयक अध्ययन तत्त्वत उनकी कृतियो पर ही आश्रित है। जीवनी-सबधी बाह्य सामग्री आनुषगिक रूप से उपयोगी है। किसी कवि के जीवनवृत्त और उसके व्यक्तित्व-निर्मायक तत्त्वो के परिज्ञान से उसकी काव्य-कृतियो को विधिवत् समझने-समझाने मे पर्याप्त सहायता मिलती है। कवि की प्रवृत्तियाँ उसके व्यक्तिगत अनुभवो एव सुखदु खात्मक अनुभूतियो के सस्कारो से सचालित होती हैं। उसका दृष्टिकोण उसके पैतृक गुणो, पारिवारिक जीवन, शिक्षा-दीक्षा, स्वाध्याय-देशाटन, सामाजिक स्थिति आदि के सकलित प्रभावो से निर्मित होता है। काव्य मे कवि के व्यक्तित्व, दृष्टिकोण और प्रवृत्तियो का व्यक्ताव्यक्त रूप से प्रतिफलन अनिवार्य है। जिस प्रकार बिब से अभिज्ञ द्रष्टा उसके प्रतिबिब को अनायास पहचान लेता है, उसी प्रकार कर्ता के समग्र व्यक्तित्व का ज्ञाता उसकी कृति के मर्म को उसके यथार्थ परिप्रेक्ष्य मे ग्रहण कर सकने मे समर्थ होता है। इसीलिए आधुनिक साहित्यालोचन मे जीवनीमूलक समीक्षा को इतना महत्त्व दिया जाता है।

अन्य भारतीय प्राचीन महाकवियो की भाँति तुलसीदास का पूर्ण जीवनचरित अज्ञात है। यद्यपि एकाध अनुसधायको का दावा है कि उन्होने तुलसी के सपूर्ण जीवन-चरित का अन्वेषण कर लिया है और जो कुछ कहा है वह सर्वांश मे प्रत्याख्यान के परे है। परन्तु, तटस्थ आलोचक को उनके सभी तर्क अकाट्य प्रतीत नही होते। बीसवी शताब्दी के विगत कुछ दशाब्दो मे तुलसीदास के जीवन-चरित से सबध रखने वाली प्रचुर सामग्री प्रकाश मे आयी है। उसकी प्रामाणिकता के विषय मे विशेषज्ञ विद्वान् तीव्र मतभेद रखते हैं। कवि के जीवन-वृत्त के विषय मे जो भी बहिस्साक्ष्य उपलब्ध है वह असदिग्ध नही है। उसकी रचनाओ मे आत्मकथात्मक उक्तियो के रूप मे जो अतस्साक्ष्य मिलता है वह अपर्याप्त है, और उसका भी अधिकाश भिन्न प्रकार से व्याख्येय है। ऐसी स्थिति मे इन सब सामग्रियो के आधार पर तुलसीदास की जीवनी की कामचलाऊ रूपरेखा ही प्रस्तुत की जा सकती है।

तुलसीदास के जीवन-वृत्त की सामग्री मूलत दो रूपो मे पायी जाती है अतस्साक्ष्य और बहिस्साक्ष्य। कवि की अनेक कृतियो मे यत्र-तत्र आत्मचरितात्मक उल्लेख मिलते हैं जिनमे उसके जीवन पर किंचित् प्रकाश पडता है। अत्यत न्यून होने पर भी कवि की जीवनी का तत्त्वत प्रामाणिक आधार वही है। दूसरो ने तुलसी का जीवन-चरित लिखा है। तथाकथित जीवनचरित लिखनेवालो मे पाँच के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं रघुबरदास, वेणीमाधवदास, कृष्णदत्त मिश्र, अविनाशराय और तुलसीसाहब। प्रथम दो ने अपने को तुलसीदास का शिष्य कहा है। तीसरे ने अपने को उनका गुरु-भाई

माना है। चौथे सज्जन ने तुलसीदास के साथ कई महीने तक निवास किया था और उनके जीवन से भली-भाँति परिचित थे। इस प्रकार इन चारो ने तुलसी के साथ सामीप्य-सबध जताने का प्रयत्न किया है। तुलसीसाहब तुलसीदास से तादात्म्य स्थापित करके अन्य सभी लेखको के मूर्धन्य पर विराजमान हो गये हैं। स्वकथनानुसार वे पूर्वजन्म में तुलसी-दास थे। इस प्रकार अपने को प्रामाणिक बनाने के लिए लेखको मे होड-सी मची हुई है। अनेक रचनाओ मे तुलसी के चरित्र के पक्षविशेष का निर्देश किया गया है, अथवा उन पर मुक्तक-सूक्तियाँ रची गयी हैं। मदिर, पचनामा आदि के रूप मे अध्ययन के कुछ फुटकल आधार भी विद्यमान हैं। श्रुति-परपरा से चली आती हुई और अब लेखबद्ध किंवदतियो का भडार भी है। पर-वर्णित वाङमय के रूप मे उपलब्ध विपुल सामग्री परस्पर-विरोधी उक्तियो से आक्रात है। कही-कही चमत्कार-वर्णन की अतिरजना है। इस प्रभूत राशि को छानकर वास्तविक तथ्यो का उद्घाटन अत्यत दुष्कर है। इनके महाजाल मे उलझकर सत्यान्वेषक दिग्गजो की मति भी दलदल मे फँसी हुई गाय की भाँति अवगन्न रह जाती है। बेचारे सुकुमारबुद्धि विद्यार्थियो की दयनीय दशा तो अनिर्वचनीय है।

तुलसीदास-सबधी विपुल सामग्री-सभार पर चिता व्यक्त करते हुए प० हजारी-प्रसाद द्विवेदी ने कहा है "यह खेद की बात है कि इतने बडे महापुरुष की जन्म-तिथि और जन्म-स्थान का कुछ निश्चित पता नही चलता। इधर इस प्रकार की प्रवृत्ति बढने लगी है कि तुलसीदास के साथ अपने गाँव या कुल या प्रदेश का कोई-न-कोई सबध स्थापित कर लिया जाय। इसका परिणाम यह हुआ कि तुलसीदास के शिष्यो की 'डायरी' से लेकर उनके सगे-सबधियो के ग्रथ तक उपलब्ध होने लगे हैं। नये-नये दावे और नयी गढी हुई अनुश्रुतियाँ इतिहास-लेखक के मार्ग को निरतर कटकाकीर्ण करती जा रही हैं। तुलसीदास के साहित्य के उन शक्तिशाली तत्त्वो की आलोचना गौण हो जाती है, जो इतने दिनो से लोक-चित्त को प्रभावित, उन्नीत और महिमान्वित करते रहे हैं, और केवल उनकी भौतिक काया के कपोल-कल्पित सबधो पर विचार ही मुख्य हो उठता है। झूठी पुस्तको, अर्थहीन दावो और बेबुनियाद स्थापनाओ को महत्त्व देने का परिणाम यह हुआ कि नित्य नवीन दावो की बाढ आती जा रही है। इतिहास की पुस्तको में ऐसी पुस्तको की उपेक्षा ही वाछनीय है।"[१]

तुलसीदास के जीवन-चरित के सबध मे प्राप्त चर्चित अध्ययन-सामग्री का स्थूल वर्गीकरण-विभाजन इस प्रकार किया जा सकता है

१. हिन्दी-साहित्य, पृ० २२१-२२
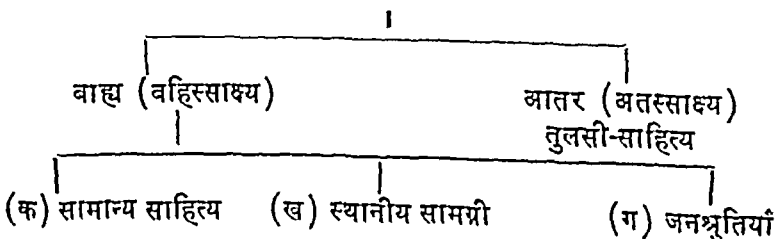
[क] बहिस्साक्ष्य : सामान्य साहित्य

[१] तुलसीचरित : रघुबरदास

कहा जाता है कि इसके रचयिता महात्मा रघुबरदास तुलसा के शिष्य थे; यह महत्त्वपूर्ण ग्रथ महाभारत से कम नही है, इसमे एक लाख तैंतीस हजार नौ सौ बासठ छद हैं और इसकी कविता 'रामचरितमानस' के टक्कर की है। इस अज्ञात महाग्रथ का ज्ञापन स० १९६९ मे श्री इद्रदेवनारायण ने किया।[१] इसकी केवल ४२ चौपाइयाँ और ११ दोहे प्रकाशित हुए। इसमे रघुबरदास-वर्णित चरित के अतिरिक्त स्वय तुलसीदास ने किसी रघुनाथ पडित से अपना जीवन-वृत्तात कहा है। उसका साराश इस प्रकार है

१ सरवार (सरयू-पार) के निवासी परशुराम मिश्र चित्रकूट गये थे। स्वप्न मे हनुमान जी का आदेश पाकर वे राजापुर मे जा बसे।

२ उनके पुत्र शकर मिश्र हुए। शकर मिश्र के पौत्र मुरारी मिश्र के पुत्र तुलाराम (तुलसी-दास) हुए।

३ तुलसी के तीन विवाह हुए। पहली पत्नी के मरने पर दूसरा, और दूसरी के मरने पर तीसरा हुआ।

४ पहले मे तीन हजार मुद्राएँ मिली थी और तीसरे मे छ हजार।

५ तीसरा विवाह कचनपुर के लक्ष्मण उपाध्याय की कन्या बुद्धिमती से हुआ था। उसी के उपदेश से तुलसी विरक्त हुए थे।

इस ग्रथ की अविश्सनीयता के तीन प्रमुख कारण हैं १. इस महाग्रथ की रचना और सरक्षण की कहानी विचित्रताओ से भरी हुई है। तुलसी के किसी शिष्य द्वारा इसके रचित होने का कोई साक्ष्य नही है। २ महाभारत और रामचरितमानस के समान महामहिम कहा जाने वाला यह ग्रथरत्न स० १९६९ तक अज्ञात रहा और अब भी गोपनीय है। ३ इसमे वर्णित वृत्त स्वय कवि द्वारा किये गये आत्मोल्लेखो के सर्वथा प्रतिकूल है। इसलिए, यह कृति कल्पना-प्रसूत और अप्रामाणिक है।

[२] मूलगोसाईंचरित वेणीमाधवदास

बतलाया गया है कि वेणीमाधवदास तुलसी के अतेवासी थे, उन्होने गोस्वामी तुलसीदास का पद्यबद्ध वृहद् जीवनचरित लिखा था जिसका नाम था 'गोसाईंचरित', और उन्होने नित्य पाठ के लिए उसका एक सक्षिप्त सस्करण 'मूलगोसाईंचरित' के नाम से तैयार किया था।[२] वेणीमाधवदास की कृति का सर्वप्रथम उल्लेख शिवसिंह सेंगर ने अपने कवि-वृत्त-सग्रह 'शिवसिंहसरोज'[३] मे किया। उनका कथन है कि पस्का-ग्राम-वासी वेणीमाधवदास (मृत्यु-सवत् १६९९) ने अपने 'गोसाईंचरित' मे तुलसीदास का जीवन-

---

१ देखिए—मर्यादा, ज्येष्ठ, १९६९

२. गोस्वामी तुलसीदास (श्यामसुदरदास), पृ० १७-१८

३. रचना-काल—स० १९४०, हिंदी-साहित्य का इतिहास, पृ० ५७९

चरित विस्तारपूर्वक लिखा है जिसका संक्षिप्त वर्णन भी प्रस्तुत पुस्तक मे सभव नही है।[1] उन्होने उक्त 'गोसाईंचरित' से केवल दो पक्तियाँ उद्धृत की है,[2] जिनसे तुलसी के जीवन-सबधी विवादग्रस्त विषयो पर कुछ प्रकाश नही पडता। डॉ० ग्रियर्सन आदि विद्वानो ने इस ग्रथ के अन्वेषण का बहुत प्रयास किया, परतु सफलता नही मिली। सन् १९२५ ई० मे प० रामकिशोर शुक्ल ने एक 'मूलगोसाईंचरित' प्रकाशित किया।[3]

इस बहुचर्चित 'मूलगोसाईंचरित' के अनुसार तुलसी के जीवन-चरित का विवरण निम्नाकित है

१ तुलसी का जन्म रजियापुर (राजापुर) मे स० १५५४ में हुआ।
२ उनके पुरखे सरयूपारीण थे, पत्योजा के दूबे थे और पराशरगोत्री थे।
३ वे हुलसी की कोख से उत्पन्न हुए। प्रसव के चौथे दिन हुलसी का देहात हो गया।
४ जन्म के समय उनके बत्तीसो दाँत थे, वे रोये नही और 'राम'-नाम का उच्चारण किया।
५ हुलसी की मृत्यु के कुछ घटे पूर्व उसकी प्रार्थना पर दासी मुनिया 'अपशकुनी' शिशु को रातो-रात अपनी सास चुनियाँ के पास हरिपुर पहुँचा आयी। चुनियाँ ने बालक का स्नेह से पालन-पोषण किया। पैंसठ महीने बाद उसकी मृत्यु हो गयी।
६ तत्पश्चात् दो वर्ष तक पार्वती जी उस बालक (तुलसी) को खिलाती-पिलाती रही।
७ शिव की प्रेरणा से स्वामी नरहर्यानद हरिपुर पधारे। उन्होने बालक को 'रामबोला' कहकर सबोधित किया। उसे लेकर अयोध्या चले गये। उसके पच-सस्कार किये। सभवत तभी नामकरण किया तुलसी।
८ दस महीने बाद तुलसी को साथ लेकर नरहरि 'सूकरखेत' (घाघरा और सरयू के सगम पर) चले गये। वहाँ पाँच वर्ष रहे। तुलसी को पढाया।
९. जब सिष्य सुबोध भयो पढि कै। मति जुक्ति प्रवीन भई गढि कै।।
तब मानस रामचरित्र कहे। सुनि कै मुनि बालक तत्त्व गहे।।
पुनि पुनि मुनि ताहि सुनावत भे। अति गूढ कथा समुझावत भे।।[4]
१० तदनतर तुलसी गुरु के साथ काशी पहुँचे। वहाँ पर पद्रह वर्ष तक शेषसनातन से वेद-वेदाग, इतिहास-पुराण, काव्यकला आदि का गभीर अध्ययन किया।
११ अब वे अपनी जन्मभूमि रजियापुर (राजापुर) लौटे। वहाँ केवल ध्वसावशेष मिले। इसका कारण यह था कि तुलसी के प्रति किये जाने वाले अन्याय को सुनकर एक तपस्वी ने उनके पिता को शाप दे दिया था।
१२ तुलसी वही बसकर कथावाचक का जीवन बिताने लगे।

---

१ सरोज, पृ० ४२७, ४२६
२ यहि भाँति कछू दिन बीति गए। अपने अपने रसरग रए।।
मुखिया इक जूथप माँझ रहे। हरिदासन को अपमान गहे।।—सरोज, पृ० १३१
३. देखिए—रामचरितमानस (स० रामकिशोर शुक्ल, प्र० नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ) का आरभ
४. गोस्वामी तुलसीदास (श्यामसुदरदास), पृ० १९६

१३ यमुना-पार के एक ब्राह्मण ने उनके पाडित्य, रूप और गुण पर मुग्ध होकर उन्हे स० १५८३ मे आग्रहपूर्वक अपना दामाद बनाया।

१४ 'रसकेलि' मे पाँच वर्ष बीत गये। एक दिन शाम को घर आने पर तुलसी ने सुना कि पत्नी भाई के साथ मायके चली गयी है। वे तत्काल चल पडे, नदी पार की, सूता पडने पर ससुराल पहुँचे और गोहार लगायी।

१५ पत्नी के उपदेश[1] से वैराग्य जागृत हुआ। वे उलटे पाँव लौट पडे। साले के बहुत मनाने पर भी फिरे नही। उसी दिन पत्नी ने शरीर-त्याग किया—स० १५८९ मे।

१६ १४ वर्ष १० महीने और १७ दिन तक प्रयाग, अयोध्या, जगन्नाथपुरी, रामेश्वरम्, द्वारावती, बदरिकाश्रम, मानसरोवर, रूपाचल और नीलाचल की यात्रा करके वे चित्रकूट के पास रहने लगे।

१७ बदरिकाश्रम मे नारायण और नीलाचल (पर्वत) पर भुशुडि के दर्शन हुए।

१८ एक प्रेत की सहायता और हनुमान् जी की कृपा से उन्हे चित्रकूट मे राम के अनेक बार दर्शन हुए।

१९ स० १६१६ मे गोकुलनाथ के द्वारा भेजे गये सूरदास तुलसी से मिले और उन्हे अपना 'सागर' दिखाया।

२०. एक ब्राह्मण मीराँबाई का पत्र लाया। तुलसी ने 'गीत कवित्त' बनाकर उसका उत्तर लिखा।

२१ वे गीत रचते रहे। स० १६२८ मे 'रामगीतावली' और 'कृष्णगीतावली' का सग्रह किया और उन्हे हनुमान् को सुनाया।

२२ वे पुन तीर्थाटन के लिए निकले। प्रयाग मे याज्ञवल्क्य का साक्षात्कार हुआ। उन्होने बताया कि जो कथा शिव ने भवानी और भुशुडि को सुनायी थी वह भुशुडि से प्राप्त कर मैंने भरद्वाज को सुनायी।

२३ सीतामढी होते हुए वे काशी पहुँचे। शिव के आदेश से अयोध्या जाकर स० १६३१ मे 'रामचरितमानस' का आरभ किया। दो वर्ष, सात महीने और छब्बीस दिन मे उसकी रचना पूर्ण हुई। हनुमान् ने अथ से इति तक उसे सुना।

२४ भगवान् के अनुशासन पर काशी जा पहुँचे। रात को पाठ समाप्त करके पोथी शिव-लिंग के समीप रख दी। सबेरे देखा गया कि शकर ने उस पर सही करके दिव्याक्षरो मे लिखा है 'सत्य शिव सुदरम्'।

२५ खिसियाये हुए पडितो ने पोथी को चोरी कराने का प्रयास किया, किंतु वहाँ श्यामल-गौर धनुर्धर पहरा देते मिले। तात्रिक वटेश्वर मिश्र ने तुलसी पर मारण-प्रयोग किया। हनुमान् जी ने उनको धर पटका। प० रविदत्त ने लाठी से मारना चाहा, हनुमान् ने पुनः रक्षा की।

---

१. हाड़ मांस को देह मम तापर जितनी प्रीति।
तिसु आधी जो राम प्रति अवसि मिटिहि भवभीति ॥—१७

२६ पडितो ने मधुसूदन सरस्वती को निर्णायक माना। उन्होने तुलसी की प्रशस्ति की।
२७ कोटि-क्रम निर्धारण के लिए शिव के मदिर मे 'रामचरितमानस' वेद-शास्त्र-पुराण के नीचे रखा गया। प्रात कपाट खोलने पर वह सबके ऊपर था।
२८ अब कलि कृपाण लेकर खडा हुआ। तुलसी से बोला कि 'रामचरितमानस' को डुबा दो। रक्षण मे स्वय असमर्थ हनुमान् ने तुलसी को सुझाव दिया कि 'रामविनयावली' (विनयपत्रिका) लिखो, तब मैं कलि को दड दिलाऊँगा।
२९ तुलसी ने अनेक अद्भुत चमत्कार करते हुए मिथिला की यात्रा की। सीता ने बालिका का रूप धारण करके उन्हें खीर खिलायी। वहाँ 'नहछू' और 'मगल' की रचना करके वे काशी लौट आये। स० १६४० लगा। 'दोहावली' का सग्रह किया।
३० पाठ करने के लिए स० १६४१ मे वाल्मीकि-रामायण की प्रतिलिपि की।
३१ स० १६४२ मे 'सतसई' रची।
३२ काशी मे 'मीन की सनीचरी' का प्रकोप हुआ, 'तत्र कवित्त' बनाकर उसे भगा दिया।
३३ 'बडे रसिया' कवि केशवदास दर्शनार्थ गये। तुलसी ने कहला दिया प्राकृत कवि केशव को आने दो। केशव लौट पडे, रातभर मे 'रामचद्रिका' रचकर दूसरे दिन मिले।
३४ नैमिषारण्य के एक प्रेत ने काशी पहुँचकर तुलसी के दर्शन से वैकुठ-लाभ किया।
३५ उन्होने अयोध्या, लखनऊ आदि की यात्रा की। मलीहाबाद मे ब्रजवल्लभ भट्ट को 'रामचरितमानस' दिया।
३६ वृदावन मे वे नाभादास से मिले। तुलसी को रामोपासक जानकर कृष्ण ने धनुर्धर-रूप धारण कर लिया। वहाँ पर तुलसी के गुरु-बधु नददास उनसे मिले।
३७ बादशाह ने खवास भेजकर उन्हे चित्रकूट से दिल्ली बुलाया। मार्ग मे उन्होंने केशवदास के प्रेत का उद्धार किया और एक लडकी को पुरुष बना दिया। उस बेचारी का विवाह दूसरी लडकी से कर दिया गया था।
३८ दिल्लीपति ने उनसे करामात दिखाने को कहा। वे मुकर गये, अत कैद कर लिये गये। वानरो ने उत्पात किया, बेगमो के वस्त्रो की धज्जियाँ उडा डाली और बादशाह को उठाकर पटक दिया। आतकित बादशाह ने उन्हे सादर विदा किया।
३९ काशी लौटते समय मार्ग मे मलूकदास के साथ मुरारीदेव तुलसी से मिले।
४० इसके बाद मृत्यु-पर्यंत वे काशी मे रहे। उनके वस्त्र के जल-बिंदु पडने से एक वेश्या विरक्त हो गयी। एक कलारिन को सुहागिन रहने का आशीर्वाद दिया, उसका मृत-पति पुनर्जीवित हो गया। तीन दर्शनार्थी कुमारो ने शरीर त्याग दिया था, उन्हे चरणोदक से जिला दिया।
४१ स० १६६९ मे उनके मित्र टोडर का देहावसान हुआ। पाँच महीने बाद उनके दोनो पुत्रो मे घर-बार का बँटवारा किया।
४२ गग ने उन्हे कठमलिया वचक-भक्त कहा। तुलसी ने शाप दिया। गग को हाथी ने कुचल डाला।

४३ रहीम ने 'वरवा' रचकर मुनि तुलसीदास के पास भेजे। उसे सुदर छद समझकर उन्होने उसमे (वरवैरामायण की) रचना की।

४४ वाहुपीडा से व्याकुल होने पर 'बाहुक' रचा।

४५ तत्पश्चात् 'विरागसदीपनी' और 'रामाज्ञा सकुनीर' का निर्माण किया।

४६ पूर्व-रचित लघु-ग्रथो को दोहराया और स्वय अतिक्षीण होने के कारण दूसरो से लिखवाया।

४७ स० १६७० वीतने पर जहाँगीर आया। तुलसी ने उससे कुछ ग्रहण नही किया।

४८ एक हत्यारे को 'राम-राम' वोलने पर हृदय से लगा लिया। उसके हाथ से शिव के नदी को भोजन कराया।

४९ महाप्रस्थान की शुभ घडी निकट जानकर तुलसी ने कहा

रामचद्र जस वरनिके भयो चहत अव मौन।
तुलसी के मुख दीजिए अब ही तुलसी सोन॥[1]

५० सवत सोरह सै असी असी गग के तीर।
सावन स्यामा तीज सनि तुलसी तज्यो सरीर॥[2]

५१ 'मूलगोसाईंचरित' स० १६८७ की कातिक-शुक्ला नवमी को रचा गया।

'मूलगोसाईंचरित' अप्रामाणिक पुस्तक है। इसकी अविश्वसनीयता के मुख्य कारण हैं

१ यह पुस्तक ऐसे अलौकिक चमत्कारो से भरी पडी है जिन पर विश्वास करना किसी विवेकशील के लिए असभव है।

२ इसमे कहा गया है कि तुलसी के वाल्यकाल मे उनके भरण-पोषण की चिंता चुनियाँ, पार्वती, शिव और नरहर्यानद ने की। स्पष्ट है कि तुलसी जीविका के विषय मे निश्चित रहे। इसके विपरीत, कवि के स्वर मे स्वर मिलाकर यह भी कह दिया गया है कि उस वालक का द्वार-द्वार डोलना हृदय-विदारक था। ये परस्पर-विरोधिनी उक्तियाँ असगत हैं।

३ इसके अनुसार एक प्रेत ने तुलसी को हनुमान् का दर्शन कराकर राम-दर्शन का मार्ग प्रशस्त किया। किंतु अतस्साक्ष्य से सिद्ध है कि तुलसी भूत-प्रेत-पूजा के विरोधी हैं।[3]

४. इसमे 'विनयपत्रिका' को 'रामविनयावली' नाम दिया गया है। कोई ऐसी प्रति नही मिलती जिसमे यह नाम उपलब्ध हो। हाँ, 'रामगीतावली' नाम अवश्य पाया जाता है।

५ इसके अनुसार 'गीतावली' (स० १६१६-१८) कवि की सर्वप्रथम कृति है। 'कृष्णगीतावली' (स० १६२८), 'कवितावली' (१६२८-४२), 'रामचरितमानस' (१६३१-३३), 'विनयपत्रिका' (१६३९), 'रामललानहछू' (१६३९), 'जानकीमगल'

---

१. मूलगोसाईंचरित, दोहा ११८
२ वही, दोहा ११९
३. देखिए—दोहावली, ६५, रामचरितमानस, २।१६७

(१६३९), 'पार्वतीमगल' (१६३९) और 'दोहावली' (१६४०) वारह वर्षों के आयाग मे लिखी गयी। स० १६७० मे चार पुस्तको की रचना हुई 'वरवैरामायण', 'हनुमान वाहुक', 'वैराग्यसदीपनी' तथा 'रामाज्ञाप्रश्न'। इसमे अनेक असगतियाँ अवेक्षणीय हैं। 'गीतावली'-जैसी प्रौढ कृति प्रारभिक वतलायी गयी है और 'वैराग्यसदीपनी' एव 'रामाज्ञाप्रश्न' के सदृश अप्रौढ कृतियाँ अतिम। तीस वर्षों (१६४०-७०) तक कवि ने कोई रचना नही की। क्या उसकी प्रतिभा मूर्च्छित हो गयी थी?

६ इसमे 'रजियापुर' (राजापुर) को तुलसी का जन्मस्थान कहा गया है। लेकिन ऐतिहासिक स्रोतो से सिद्ध है कि स० १८१३ तक उस स्थान का नाम 'विक्रमपुर' रहा है।

७ इसके अनुसार स० १६१६ मे सूरदास ने चित्रकूट पहुँचकर तुलसी को 'सागर' दिखाया और आशिष माँगा। स० १६१६ तक तो तुलसी ने एक भी रचना नही की थी और उनकी कीर्ति 'रामचरितमानस' की रचना (स० १६३१) के वाद फैली। उन्हे 'सागर' दिखाने की क्या तुक थी? यह भी हास्यास्पद लगता है कि वयोवृद्ध, प्रतिष्ठित और अधे सूरदास ने चित्रकूट जाकर उन्हे 'सागर' दिखाया।

८ इसमे वर्णित है कि स० १६१६ मे मीराँवाई ने तुलसी को पत्र लिखा था। मीराँ स० १६०३ तक दिवगत हो चुकी थी, १६१६ मे उन्होने पत्र कैसे लिखा?

९ यद्यपि लेखक ने केशवदास-सबधी घटनाओ के निश्चित समय का स्पष्ट निर्देश नही किया है तथापि सदर्भ से अवगत है कि वे स० १६४३ के लगभग तुलसी से मिले और स० १६५० के लगभग केशव के प्रेत ने तुलसी को घेरा। स्वय केशवदास के अनुसार 'रामचद्रचद्रिका' का रचना-काल स० १६५८ है,[1] न कि स० १६४३। और, यह गप्प की हद है कि केशव ने रात-भर मे 'रामचद्रचद्रिका' का निर्माण कर डाला—अपने को अप्राकृत कवि सिद्ध करने के लिए। इसके अतिरिक्त, स० १६५१ के लगभग केशव का प्रेत तुलसी को कैसे मिला? यह तथ्य निर्विवाद है कि उनका देहात स० १६७० के वाद हुआ। उन्होने अपनी 'जहाँगीरजसचद्रिका' का रचना-काल स० १६६९ वतलाया है।[2]

१० दिल्लीपति (अकवर) और जहाँगीर वाली महत्त्वपूर्ण घटनाओ का इतिहास मे कोई सकेत नही मिलता। अत वे तथ्य-विरुद्ध हैं।

११ 'चरित' के अनुसार टोडर की सपत्ति का वँटवारा उनके उत्तराधिकारी पुत्रो के वीच किया गया। परतु पचायतनामे से प्रमाणित है कि वह वँटवारा उनके पुत्र और पौत्र के वीच हुआ था।[3]

१. सोरह सै अट्ठावना कातिक सुदि बुधवार।
रामचद्र की चंद्रिका तव लीनो अवतार ॥—रामचद्रचद्रिका, १।६

२. सोरह सै उनहत्तराँ माधव मास विचारु।
जहाँगीर सक साहि की करी चद्रिका चारु ॥—जहाँगीरजसचद्रिका, २

३. पंचायतनामे के शब्द हैं—अनदराम बिन टोडर बिन देवराय व कँधई बिन रामभद्र बिन टोडर मजकूर।

१२ इसमे कहा गया है कि तुलसी के शाप के फलस्वरूप हाथी ने गग का कुचल डाला। ऐतिहासिक तथ्य यह है कि जिस गग को हाथी से कुचलवाया गया था वे औरगजेब के समकालीन थे। औरगजेब स० १७१५ मे बादशाह हुआ था। इसलिए स० १६६९ मे गग की कथित दुर्घटना सभव नही हो सकती।

१३ इसके अनुसार नाभादास 'विप्रसत' थे। इस विषय मे कोई साक्ष्य नही है। परपरा मे उनको 'हनुमानवशी' अथवा डोम माना गया है।

१४ 'चरित' मे उल्लिखित तिथियो मे से तुलसी के **जन्म** (सं० १५५४, श्रावण शुक्ला ७, कर्क के वृहस्पति-चद्रमा, वृश्चिक के शनि), **यज्ञोपवीत** (स० १६५१, माघ शुक्ला ५, शुक्रवार), **विवाह** (स० १५८३, ज्येष्ठ शुक्ला १३, गुरुवार), **पत्नी-निधन** (स० १५८९, आषाढ कृष्ण १०, बुधवार), **मानस-समाप्ति** (स० १६३३, मार्गशीर्ष शुक्ला ५, मगलवार), और **स्वर्गवास** (स० १६८०, श्रावण कृष्णा ३, शनिवार) की तिथियाँ गणना-योग्य है। पुरातत्त्व-विभाग से जाँच करवाकर डॉ० रामदत्त भारद्वाज ने बतलाया है[1] कि इनमे से केवल यज्ञोपवीत और विवाह की तिथियाँ ही सत्यापित हैं। डॉ० माताप्रसाद गुप्त ने पत्नी-देहात की तिथि को भी शुद्ध माना है।[2] शेष चार तिथियाँ किसी भी गणना-प्रणाली से शुद्ध नही उतरती। तुलसी के अतेवासी की यह अनभिज्ञता 'चरित' की प्रामाणिकता को खडित करती है।

उक्त विप्रतिपत्तियो को दृष्टि-पथ मे रखते हुए हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि 'मूलगोसाईंचरित' प्रमाण्य नही है। यह स० १६८७ की रचना नही है। सभव है कि मोहनसिंह सेंगर ने जिस 'गोसाईंचरित' का उल्लेख किया है वह प्रामाणिक रहा हो। ऐसा प्रतीत होता है कि उस नाम का लाभ उठाकर किसी कल्पनाशील लेखक ने वेणीमाधवदास के नाम से 'मूलगोसाईंचरित' का निर्माण कर दिया है।

[३] गोसाईंचरित भवानीदास

रामचरणदास जी की टीका के साथ प्रकाशित 'रामचरितमानस'[3] की भूमिका के रूप मे तुलसीदास का एक विस्तृत जीवनचरित छपा है। डॉ० माताप्रसाद गुप्त ने इसका रचनाकाल स० १८१० निर्धारित किया है।[4] यद्यपि कृति का अभिधान उसमे नही है, तथापि लेखक के प्रतिज्ञा-वचन[5] से स्पष्ट है कि इसका नाम 'गोसाईंचरित' होना चाहिए। लेखक ने अपना नाम भवानीदास दिया है।[6] इस 'चरित' और पूर्वोक्त 'मूलगोसाईंचरित' की प्रतिपाद्य-वस्तु और प्रतिपादन-शैली मे अद्भुत सादृश्य है। विवरण की दृष्टि से,

---

१. गोस्वामी तुलसीदास, पृ० ४८
२. तुलसीदास, पृ० ४७
३. तृतीय सस्करण, १९०४ ई०, नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ
४. तुलसीदास, पृ० ४३
५. यह बल मनहिं दृढ़ाइ रामचरन सिर नाइ कै
कहौं कछू इक गाइ श्रीगोसाईं अद्भुत चरित ।।—जीवनचरित्र, पृ० ६
६. धरि आश सदा नाम की याचै भवानीदास हो।—जीवनचरित्र, पृ० २

तुलसी के जीवन की सभी महत्त्व-युक्त घटनाएँ दोनो मे परिगणित हैं। अनेक स्थलो पर दोनो मे अर्थ-साम्य के साथ ही शब्द-साम्य भी है। तात्त्विक भेद इस बात मे है कि 'मूल-गोसाईंचरित' मे प्रसगो का वर्णन उनके कालक्रमानुसार किया गया है और विभिन्न घट-नाओ की तिथियाँ दी गयी हैं, किंतु 'गोसाईंचरित' मे काल निर्देश नही है और वर्णित प्रसगो का क्रम भी यत्र-तत्र भिन्न है।

दोनो की अतिशय समरूपता से सहज निष्कर्ष निकलता है कि 'गोसाईंचरित' भी 'मूलगोसाईंचरित' की भाँति ही अविश्वसनीय है। कालक्रम की दृष्टि से अधिक सगत यह प्रतीत होता है कि 'मूलगोसाईंचरित' परवर्ती कृति है। उसके लेखक ने 'गोसाईंचरित' का अनुकरण करते हुए अपनी रचना को अधिक विश्वसनीय बनाने के लिए उसमे तिथियो का अर्तनिवेश किया है। असभव नही है कि ये दोनो कृतियाँ किसी तीसरे चरित के अनु-करण पर लिखी गयी हो।

[४-७] चार अन्य चरित्र-ग्रंथ[1]

(क) **तुलसीदासचरित्र**—इसके लेखक जनकराजकिशोरीशरण हैं। इसका रचना-काल अज्ञात है, लिपि-काल स० १९३० है। इसमे तिथियो का उल्लेख नही है।

(ख) **तुलसीचरित्र**—इसके लेखक रघुवीरसिह हैं, रचना-काल स० १९१० और लिपि-काल स० १९५५ है।

(ग) **तुलसीचरित्र**—इसके रचयिता दासान्यदास हैं। रचना-काल अज्ञात है, लिपि-काल स० १९२१ हैं।

(घ) **गोसाईंचरित्र**—यह दासान्यदास-लिखित है। रचना-काल अज्ञात है। उपलब्ध प्रति मे दिया हुआ लिपि-काल स० १९२१ है। इसके एक पद्य मे 'भवानीदास' नाम का उल्लेख है। इससे डॉ० रामदत्त भारद्वाज ने सकेत किया है कि भवानीदास और दासान्यदास अभिन्न हैं।

ये सब 'चरित्र' प्राचीन नही हैं। विद्वानो ने इनके परीक्षण की आवश्यकता का भी अनुभव नही किया। इसका कारण यही है कि इनमे कोई महत्त्वयुक्त विशेष बात नही हैं। प्रथम तीन पर विचार करते हुए डॉ० माताप्रसाद गुप्त ने बतलाया है कि ये तीनो चरित्र भवानीदास के 'गोसाईंचरित' की परपरा मे ही ज्ञात होते हैं, और असभव नही कि उसकी सहायता लेकर रचे भी गये हो।[2] उन्होने 'गोसाईंचरित' का उल्लेख नही किया। डॉ० रामदत्त भारद्वाज ने उसकी चर्चा की है और उसे 'भ्रात-साहित्य' के अतर्गत रखा है।

[८] घटरामायन : तुलसीसाहब का आत्मचरित

तुलसीसाहब हाथरस मे आकर बस गये थे। इसलिए वे 'तुलसीसाहब हाथरस

१ देखिए—गोस्वामी तुलसीदास (डॉ० रामदत्त भारद्वाज), पृ० ७५-७६; तुलसीदास, पृ० ६४-६५

२ तुलसीदास, पृ० ६५

वाले' कहलाते हैं। उनका जीवन-काल स० १८२०-१६०० है। उनका एक ग्रथ है 'घटरामायन'। उस ग्रथ मे उन्होने उसका रचना-काल बारबार स० १६१८ बतलाया है। 'घटरामायन' के अत मे उन्होने अपने पूर्वजन्म का वृत्तात लिखा है। वे पूर्वजन्म मे तुलसीदास थे। 'घटरामायन' के अनुसार तुलसीदास का सक्षिप्त जीवनवृत्त है

१ यमुना के किनारे राजापुर मे मगलवार, भादौं सुदी ११, स० १५८६, को तुलसी का जन्म हुआ।

२. वे जाति के कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे। उन्हे अपने कुल का अभिमान था।

३ वे अपनी पत्नी पर आसक्त रहते थे। सत्सग मे उनकी वडी रुचि रहती थी।

४ स० १६१४, सावन सुदी ६ को उनका 'अगम का सौदा' (ज्ञानोदय) हुआ। 'सुरति' की अनिर्वचनीय प्रीति मे उनकी नीद हराम हो गयी।

५ उनके इस ज्ञान-मार्ग का निर्देश कज-गुरु (घटघटवासी ईश्वर) ने किया, किसी देह-गुरु ने नही।

६ उनकी ख्याति चारो ओर फैल गयी और राजापुर मे दर्शनार्थियो की भीड होने लगी।

७ काशी का एक अहीर हिरदै राजापुर मे नौकर था। वह उनका परमभक्त था। वह काशी चला गया। अत्यत स्नेहवश उससे मिलने के लिए वे स० १६१५, चैत १२, मगलवार को काशी पहुँचे। गगा के निकट कुटी वनाकर अतिम समय तक वही रहे।

८ स० १६१६ मे कातिक वदी ५ को एक नानक-पथी सत पलकराम से उनकी गोष्ठी हुई।

६ मौज मे आकर उन्होने स० १६१८, भादौ सुदी ११, मगलवार को 'घटरामायन' की रचना आरभ की। लोग आश्चर्यचकित थे। सारे नगर मे शोर मच गया। पडितो, जैनियो और तुर्कों ने झगडा खडा कर दिया। अतएव उन्होने ग्रथ को गुप्त कर दिया और उसे प्रचलित नही होने दिया। इसलिए अज्ञ जगत् सत-मत की प्रीति-रीति से अनभिज्ञ रह गया।[1]

१० स० १६३१ मे 'रामचरित' (रामचरितमानस) की रचना की। उससे पडित और जनसाधारण सभी सुखी हुए। इस प्रकार 'घटरामायन' को गुप्त कराकर अधो को अधे की विधि से समझाया।[2]

११. स० १६८० मे श्रावण शुक्ला ७ को वरुणा नदी के तीर पर उन्होने शरीर-त्याग किया।

'घटरामायन' मे तुलसीदास-विषयक जो वृत्त उपलब्ध है उसका अधिकाश अप्रामाणिक है। निम्नाकित कारणो से इस कृति की सदिग्धता प्रमाणित होती है

१ 'घटरामायन' मे तुलसीसाहब का पूर्वजन्म-वृत्तात-वर्णन आधुनिक वैज्ञानिक-

---

१. ता से ग्रंथ गुप्त हम कीन्हा। घटरामायन चलन न दीन्हा।।
या से सत मते की रीती। जगत अजान न जानै प्रीती।।—भाग २, पृ० १८८

२. अधा अंधे विधि समझावा। घटरामायन गुप्त करावा।।—भाग २, पृ० १८८

युग के आलोचक की दृष्टि मे बेपर की उडान है। अलौकिकता पर आश्रित होने के कारण उसका ऐतिहासिक महत्त्व शून्य-सा है।

२ 'घटरामायन' के विषय मे कही गयी बातें भी प्रतीतिजनक नही हैं। वह कोई क्रातिकारिणी रचना नही है। उसमे ऐसा कुछ भी नही है जिससे कारण चारो ओर बडा भारी तहलका मच जाए। वेदशास्त्र की अवहेलना, दशावतार-खडन, तीर्थ-व्रत की निंदा आदि नयी बातें नही हैं। १५वी-१६वी शती के निर्गुण-सतो ने खूब डटकर इन सबका कट्टर विरोध किया है। कही भूकप नही आया, कोई तूफान नही खडा हुआ। तुलसीसाहब मे तो कबीर का-सा बेलाग अक्खडपन भी नही है। कबीर की काशी तुलसीदास की काशी से कम परपरानिष्ठ नही थी। अतएव प्रचड विरोध के परिणामस्वरूप 'घटरामायन' के गोपन की बात हास्यास्पद है। लेखक का दावा है कि इस ग्रथ के गोपन से विश्व सत-मत की रीति से परिचित नही हो सका। वास्तविकता यह है कि सत-मत के प्रतिष्ठापन मे 'घटरामायन' का योगदान नगण्य है।

३ अपने को तुलसी का अवतार बतानेवाले तुलसीसाहब को उनकी केवल एक कृति (रामचरितमानस) का पता है, और उसके भी यथार्थ नाम की जानकारी उन्हे नही है। 'विनयपत्रिका', 'कवितावली', 'गीतावली' आदि का अनुल्लेख उनके अज्ञान का सूचक है। वे 'रामचरितमानस' के सिद्धातो और उसके पात्रो के स्वरूप तक से अनभिज्ञ है। उनके नामो की अड-बड निरुक्ति[1] लेखक के व्यामोह का प्रमाण है। बडी विचित्र बात है कि उसे पूर्वजन्म के बहुत-से महत्त्वहीन विवरण याद रहे, ऐरे-गैरे-नत्थू-खैरे नही विस्मृत हुए, किंतु अपने माता-पिता और पत्नी के नामोल्लेख की सुधि नही आयी।

४ 'घटरामायन' के अनुसार तुलसीदास का पथ-प्रदर्शन किसी देहधारी गुरु ने नही किया, लेकिन तुलसीदास की कृतियो से सिद्ध है कि उन्होने अपने अज्ञानाधकार-निरोधक गुरु की बारबार चर्चा की है, और गुरु-महिमा का बखान करते हुए वे अघाते नही हैं।

५ ऐतिहासिक प्रमाद भी अनेक है। उदाहरण के लिए—स० १६१८ मे रचित बताये जाने वाले 'घटरामायन' मे दरिया और गुरु गोविंदसिह का भी बहुत बार उल्लेख हुआ है। यह झूठ समाने लायक नही है। सभी मानते हैं कि तुलसीदास स० १६८० मे स्वर्गवासी हो गये थे। बिहारी दरिया साहब स० १७३१ मे और मारवाडी दरिया साहब स० १७३३ मे जन्मे थे।[2] गुरु गोविंदसिह का जन्म स० १७२३ मे हुआ था।[3] शताधिक वर्ष पूर्व लिखित ग्रथ में इन परवर्ती लेखको का समावेश किसी जादूगर की करामात से कम नही है।

६ 'घटरामायन' मे तुलसी-सबधी सात तिथियो का उल्लेख है। उनमे से चार ऐसी हैं जिनके दिन आदि के विवरण नही दिये गये हैं। अत उनकी जाँच का प्रश्न नही

---

१. रावन ब्रह्म बसै मन दौरी ता को मदोदरी बनाई।
गो में रूद्र गरूद गिनाई भय ले भसुड भुलाई ॥—भाग २, पृ० ६

२. देखिए—उत्तरी भारत की सत-परपरा, पृ० ५६९, ५७८

३. देखिए—गुरु गोविंदसिह और उनका काव्य, पृ० ३३

उठता। केवल तीन तिथियाँ परीक्षणीय हैं :

(i) जन्म—स० १५८६, भादौं सुदी ११, मगलवार
(ii) काशी-आगमन—स० १६१५, चैत्र १२, मगलवार
(iii) घटरामायन का आरभ—स० १६१८, भादौ सुदी ११, मगलवार

डॉ० माताप्रसाद गुप्त ने बतलाया है कि केवल जन्म-तिथि गणनानुसार शुद्ध है, शेष दोनो किसी भी प्रणाली से गणना करने पर शुद्ध नही उतरती।[1]

'घटरामायन' वस्तुत किस सन्-सवत् मे लिखा गया, वह तुलसीसाहब की कृति है या किसी अन्य व्यक्ति की, और उसमे निरूपित तुलसीदास का जीवनवृत्त प्रक्षिप्त है अथवा मूललेखक की रचना है—ये सब प्रश्न प्रस्तुत प्रकरण मे विशेष महत्त्व के नहीं हैं। हमे देखना यह है कि क्या वह वृत्तात तुलसीदास के जीवनचरित-निर्माण मे किसी सीमा तक उपयोगी है या नही। इतना निश्चित है कि 'घटरामायन' की रचना तुलसीदास के देहावसान के लगभग डेढ सौ वर्ष बाद हुई है। उसके अध्ययन से यह निश्चित धारणा बनती है कि 'घटरामायन'-जैसे निकृष्ट ग्रथ की ओर समाज का ध्यान आकृष्ट करने के लिए रचयिता ने उसके कर्तृत्व का आरोप 'रामचरितमानस' के लोकविश्रुत कवि तुलसीदास पर किया है। पाठक-वर्ग को अधा समझने के भ्रम से प्रेरित लेखक ने 'घटरामायन' के अतिमूल्यन के क्रम मे 'रामचरितमानस' का अवमूल्यन भी कर दिया है। उसमे तथ्य-विरोध है, ऐतिहासिक व्यतिक्रम है, तिथियो की अशुद्धता है, और स्वय तुलसीदास द्वारा अनुपेक्षणीय माने गये माता-पिता, कष्टमय बालपन, उद्धारक गुरु, 'विनयपत्रिका' आदि कृतियो तथा दयनीय वृद्धावस्था का नितात विस्मरण है। इन सबसे 'घटरामायन' की अप्रामाणिकता सिद्ध होती है।

कल्पना-रजित होने पर भी वह एक दृष्टि से कुछ महत्त्व का है। उसमे तुलसी के जीवन-वृत्त से सबध रखनेवाली तत्कालीन और तद्देशीय जनश्रुतियो की निबधना की गयी है, यह दूसरी बात है कि वे अलौकिकता और उद्भावना के बेठन मे लपेटी हुई हैं। उनमे से तीन विवरण विचारणीय हैं—१ तुलसीदास का जन्म स० १५८६ मे हुआ, २ वे पत्नी-निरत थे, और ३ उनका निधन स० १६८० की श्रावण शुक्ला सप्तमी को हुआ।

[६] गौतमचंद्रिका कृष्णदत्त मिश्र

'गौतमचद्रिका' के अनुसार उसके रचयिता कृष्णदत्त मिश्र हैं और उसका रचना-काल स० १६८१ है। उसके अत मे ('घटरामायन' की भाँति) तुलसीदास का जीवन-वृत्त प्रस्तुत किया गया है। उसमे पूर्वापर-सगति का निर्वाह नही है।[2] 'गौतमचद्रिका' मे आगे-पीछे वर्णित वृत्त के उल्लेखनीय अश कुछ व्यवस्थित क्रम से इस प्रकार उपस्थित किये जा सकते हैं

---

१ तुलसीदास, पृ० ६३

२. लेखक ने स्वय कहा है—पूर्वापर सगति रहित सब्द करत मति भ्रान।
स्रवन वदन दृग जोरि गति सोधु सब्द अनुमान ।।

१ तुलसीदास हुलसी के पुत्र थे।[1]

२ तुलसी के प्रथम गुरु शाडिल्यगोत्रीय नरहरि स्वामी थे। वे अयोध्या के निकट सरयू-घाघरा के सगम पर सूकरखेत मे रहते थे।

३ नरहरि नर्मदा के किनारे चले गये थे। उनसे मिलने के लिए जाते हुए तुलसी ने यमुना-तट पर यमुना नाम की स्त्री से विवाह कर गृहस्थाश्रम मे प्रवेश किया। एक वर्ष तक कामदेव का गीत गाते रहे। तत्पश्चात् यमुना की सीख से राम-भक्ति की ओर प्रेरित हुए।[2]

४ काशी मे आनदकानन ब्रह्मचारी रहते थे। ('गौतमचद्रिका' के रचयिता) कृष्णदत्त मिश्र उनके शिष्य थे। एक बार तुलसीदास वहाँ आये। उन्होने ब्रह्मचारी जी को प्रणाम किया और अपना तथा अपने गुरु नरहरि का वृत्तात सुनाया। कृष्णदत्त ने अपना परिचय दिया। उनकी माता की मृत्यु का समाचार सुनकर तुलसी को बडा दुःख हुआ।

५ उजैनीदास ने सूर और मीराँ के कृष्णभक्ति-विषयक पद गाये। तुलसी ने भी कृष्ण-परक पद सुनाये।

६ कृष्ण-महिमा की पताका फहराकर तुलसीदास गोसाईं हो गये। इस पर लोगो ने उन्हें बहुत बुरा-भला कहा। तुलसी ने पतितपावन राम का गुणगान किया।

७ अठारह वर्ष की आयु मे तुलसी ने काशीनाथ पडित, कैलाश कवि, मेघा भगत आदि के साथ मानसरोवर की यात्रा की। वहाँ से लौटकर अयोध्या पहुँचे।

८ एकतीस वर्ष की अवस्था मे उन्होने अयोध्या मे 'रामचरितमानस' की रचना की।

९ एक बार वे मिथिला गये। वहाँ पर विद्यापति के वशज रमाबधु ठाकुर से उनकी भेंट हुई।

१० तुलसी ने नैमिषारण्य, गगासागर, जगन्नाथपुरी, रामेश्वर, द्वारका, प्रभास, कुरुक्षेत्र, वृदावन आदि की यात्रा की। अत मे काशी लौट आये। वहाँ उन्होने राम-लीला का विस्तार किया।

११ तुलसी के गुरु नरहरि चौथेपन मे काशी चले आये। उनका स्वर्गवास होने पर तुलसी ने उनका 'उत्तर-कृत्य' किया।

१२ सभी वर्गों के लोग तुलसी के सगी-साथी थे

पडित कासीनाथ महामति। समरसिंह रजपूत ग्रामपति॥
गगाराम परम सतसगी। कवि कैलास कवित्त उमगी॥
उज्जेनी सगीत प्रवीना। भजन गोप हरिवस कुलीना॥
नगरसेठ जैराम उजागर। ताबूली सियराम गुनागर॥

---

१ रामकृपा हुलसी जनित तुलसी बिरवा सोइ।
लै इलरावति सुरधुनी जल अचल में गोइ॥

२ वर्ष पचसर गीता गाई। जमुना सिप सरऊ सुधि आई॥

—'मानस' की रूसी भूमिका, वक्तव्य, पृ० ३२

नाथू नापित केवट रामू। अरु रैंदास घेलावन नामू॥
बोधी गोड हरी हरवाहू। धाडी मीर जसन जोलहाहू॥

१३ टोडर की मृत्यु पर तुलसी को बहुत शोक हुआ। टोडर के उत्तराधिकारियो मे सपत्ति के बँटवारे का झगडा था। तुलसी ने उनके पुत्र अनतराम और रामभद्र के पुत्र (टोडर के पौत्र) कन्हईराम के उस विवाद मे पच बनकर काजी से सर्वमान्य निर्णय कराया।

१४ आधे आषाढ मे तुलसी को बाहु-पीडा हुई जो आधे सावन मे दूर हो गयी। यह घटना स० १६६८ के बाद की है।

१५ स० १६६८ के पश्चात् काशी मे रुद्रबीसी और 'मीन की सनीचरी' का प्रकोप हुआ। तुलसी ने रामभक्ति के प्रभाव से उसका शमन किया।

१६ तुलसी का देहावसान अस्सी वर्ष की आयु मे स० १६८० की श्रावण कृष्णा तीज को हुआ। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि उनका जन्म स० १६०० मे हुआ था।

१७ तुलसीदास की रचना का अष्टागयोग है कृष्णगीतावली, रामगीतावली, पदावली, बरवै, दोहावली, सुगुनमाला, कवितावली और सोहिलोमगल।

१८ कृष्णदत्त मिश्र ने टोडर के घर से 'रामचरितमानस' की प्रति प्राप्त की।

तुलसीदास की जीवनी का विवरण प्रस्तुत करने वाली 'गौतमचद्रिका' मे ऐसी बहुत-सी बातें हैं जो उसकी प्रामाणिकता के विषय मे सदेह उत्पन्न करती हैं

१ चद्रिकाकार ने उसमे वर्णित घटनाओ के पूर्वापर सबध के निर्वाह का उत्तरदायित्व स्वीकार नही किया। यदि लेखक तुलसीदास का गुरु-भाई होता तो उसे घटनाओ के क्रमबद्ध वर्णन मे कोई कठिनाई न होती और वह तुलसीदास के जीवन-वृत्त का व्यवस्थित निरूपण करता।

२ उसमे सवत्, पक्ष और तिथि का एक-साथ प्रयोग केवल एक बार किया गया है। उसमे भी वार का उल्लेख नही है। समसामयिक लेखक तुलसी के जीवन की महत्त्वपूर्ण घटनाओ का तिथिवार-सहित विवरण सरलता से प्रस्तुत कर सकता था।

३ लेखक ने तुलसीदास के पद्रह सगी-साथियो के नाम गिनाये हैं, किंतु पिता आदि का उल्लेख नही किया। तुलसीसाहब ने भी 'घटरामायन' मे अपने पूर्वजन्म के (अर्थात् तुलसीदास के) सत्सगियो का नामोल्लेख किया है—हिरदे अहीर, नैनू पडित, फूलदास आदि।[1] कृष्णदत्त मिश्र और तुलसीसाहब द्वारा दी गयी सूचियो मे एक भी नाम उभयनिष्ठ नही है—एक तुलसीदास का गुरु-भाई था और दूसरा स्वय तुलसीदास था, फिर भी दोनो की सूचनाएँ मेल नही खाती।

४ 'गौतमचद्रिका' मे कही-कही उलझनमयी ग्रथियाँ दृष्टिगोचर होती हैं जिनको सुलझाना दुष्कर है, उदाहरणार्थ—

(1) सूधी सहिदानी बानी सुनि। तुलसी ब्याकुल बोलि उठे पुनि॥
हा कुलदेव गौतमी माता। तोहि ग्रसि काल ग्रसेउ कुलनाता॥
पितु सपना सुषुमि मह माई। श्रुति परिवात सिमृति बनि आई॥

१ देखिए—घटरामायन, भाग २, पृ० १८३

(ii) तुलसी सतसगी बहुतेरे। सुकृती सकल राम के चेरे॥
ब्राह्मन कासीवार जो मम पितु तन भगवान।
तोडर सदन समान सो तुलसी बाग बितान॥

पहले उद्धरण की दूसरी पक्ति से यह स्पष्ट नही होता कि 'गोसाई माता' के साथ तुलसी का क्या सबध था और उनके काल-ग्रस्त होने से कुल का नाता किस प्रकार छिन्न हो गया। उसकी तीसरी पक्ति का अर्थ और भी अधिक अस्पष्ट है। दूसरे उद्धरण में 'तन भगवान' और 'बाग बितान' की क्लिष्टता के अतिरिक्त समस्या यह है कि कृष्णदत्त मिश्र के पिता तुलसी के सतसगी कैसे हुए।

५ 'आनदकानन' का वर्णन भी सशयजनक है। 'आनदकानन' कौन थे? गुरु 'आनद-कानन' और वन 'आनदकानन' मे क्या सबध था? क्या ब्रह्मचारी आनदकानन आनद-कानन-वासी थे? क्या वे मधुसूदन सरस्वती से अभिन्न थे? कृष्णदत्त मिश्र की उक्ति है

आनदकानने ह्यस्मिन् जगमस्तुलसीतरु।
कवितामञ्जरी यस्य रामभ्रमरभूषिता॥

परपरा मे प्रसिद्ध है कि उपर्युक्त श्लोक मधुसूदन सरस्वती ने तुलसी की प्रशसा मे कहा था।

६ 'गौतमचद्रिका' मे तुलसीदास की रचनाओ का व्यवस्थित विवरण नही है। उनके गुरु-भाई को तुलसी के साहित्यिक जीवन की भली-भाँति जानकारी रही होगी। फिर भी वे कवि तुलसी के कर्तृत्व का सम्यक् निरूपण नही कर सके। उन्होने केवल 'रामचरितमानस' के रचना-समय का उल्लेख किया है जो कवि ने अपने ग्रथ की प्रस्तावना मे स्वय दे रखा है। 'गीतावली', 'विनयपत्रिका' आदि का निर्माण-काल बताने की आवश्यकता थी, किंतु लेखक ने उन उल्लेखनीय तिथियो का उल्लेख नही किया।

७ तुलसी के गुरुभाई को उनकी असाधारण उपलब्धियो का सबसे अधिक ज्ञान रहा होगा। आश्चर्य है कि ऐसे समीपी व्यक्ति के पास 'रामचरितमानस'-जैसे अप्रतिम ग्रथ की कोई प्रति नही थी और उसे तोडर के घर से प्राप्त करनी पडी.

तोडर घर ते पुस्तक पाई। रामचरितमानस अपनाई॥

८ 'गौतमचद्रिका' की हस्तलिखित प्रति के स्वामी की आँख बचाकर चौधरी छुन्नीसिंह ने उसकी नकल अपनी बहियो के दाहिने-बाएँ पार्श्वो पर की थी। चोरी-छिपे प्रति-लिपि तैयार करने का यह ढग असभव न होने पर भी विश्वसनीय नही जँचता।

इन सब कारणो से 'गौतमचद्रिका' सदिग्ध प्रतीत होती है। उसमे भी 'तुलसी-चरित', 'मूलगोसाईंचरित', 'घटरामायन' आदि की भाँति जनश्रुतियो और लेखक की कल्पना का सम्मिश्रण है। परतु, उसमे दिया गया एक तथ्य अनुपेक्षणीय है। उसके अनुसार तुलसीदास की निधन तिथि श्रावण कृष्णा तीज, स० १६८० है। अन्य साक्ष्यो से समर्थित होने के कारण 'श्रावण कृष्णा तीज' का उल्लेख महत्त्वपूर्ण है।

[१०] भविष्यपुराण

'भविष्यपुराण' मे तुलसीदास के दो जन्मो का सक्षिप्त वृत्त प्रस्तुत किया गया है।

१ ब्रह्मचारी मुकुद शकराचार्य के गोत्रज थे। बाबर द्वारा देवताओ के भ्रष्ट किये जाने पर वे और उनके बीस शिष्य आग मे जल मरे। मुकुद ने हुमायूँ के पुत्र अकबर के रूप मे जन्म लिया।
१ मुकुद के शास्त्रज्ञ शिष्य श्रीधर ने अनूप के पुत्र के रूप मे जन्म लिया। उनका नाम तुलसी शर्मा हुआ।
३ तुलसी शर्मा (तुलसीदास) पुराण-निपुण कवि के रूप मे विख्यात हुए।
४ नारी से शिक्षा ग्रहण करके वे राघवानद के पास आये।
५ उनके शिष्य होकर वे काशी मे रहने लगे।
६ वे रामानद-मत के दृढ अनुयायी थे।

तुलसीदास के जीवनवृत्त से सबधित यह सामग्री महत्त्वहीन है। 'भविष्यपुराण' का प्रामाण्य अमान्य है

१ यो तो सभी पुराण सत्यान्वेपी इतिहासकार की दृष्टि मे अर्धप्रामाणिक हैं उनमे भी 'भविष्यपुराण' अपेक्षाकृत अधिक गल्पात्मक है। अतीत की कथाएँ अधविश्वासियो को आकृष्ट करने के लिए भविष्यवाणी के माध्यम से प्रस्तुत की गयी हैं। ज्यो-ज्यो इतिहास आगे बढा है, त्यो-त्यो कल्पना-प्रवण पडित लोग उसमे महापुरुषो के वास्तविक और कल्पित वृत्त समय-समय पर जोडते गये हैं।
२ तर्क किया गया है कि 'भविष्यपुराण' मे दी गयी मुगल-सम्राटो की नामावली इतिहास-समत है, अत तुलसी-विषयक सामग्री भी प्रामाणिक मानी जानी चाहिए। यह उचित नही है, क्योकि इस तर्क के अनुसार उसकी सभी बातो को प्रामाणिक मानना पडगा। तुलसी के पूर्वजन्म की बात तो निरी गप्प है। अकबर के नामकरण की व्याख्या कितनी हास्यास्पद है जब होमायु (हुमायूँ) के पुत्र उत्पन्न हुआ तब आकाशवाणी हुई हे होमायु, तुम्हे अकस्मात् वर (पुत्र) प्राप्त हुआ है, इसलिए तुम्हारे पुत्र का नाम 'अकबर' है। ध्यान दीजिए, 'अकस्मात्' के 'अक' और 'वर' को मिलाकर 'अकबर' नाम व्युत्पन्न हुआ है।
३ पुराण-निपुण कवि के रूप मे तुलसी की ख्याति के अवधारण के लिए 'भविष्यपुराण' का साक्ष्य निरर्थक है। कवि की रचनाएँ स्वय प्रमाण हैं।
४ नारी से शिक्षा प्राप्त करने की बात जनश्रुति पर अवलबित है। इस विषय मे कोई आप्त प्रमाण उपलब्ध नही है। औरो की भाँति भविष्यपुराणकार ने भी उस प्रचलित दत-कथा को इतिहास का वसन पहना दिया है।
५ तुलसी का राघवानद के पास जाना किसी विश्वसनीय साक्ष्य द्वारा समर्थित नही है। प्रसग[1] से स्पष्ट है कि इस राघवानद का रामानद से कोई-न-कोई सबध अवश्य

---

१. शिष्यो भूत्वा स्थित काश्या रामानदमते स्थित ।

था। रामानद की सवध-परपरा मे (तुलसी के समय तक) एक ही राघवानद का उल्लेख मिलता है। वे रामानद (स० १३५६-१४६७) के गुरु हैं। उनका जीवन-काल पद्रहवी शती के पूर्वार्ध के वाद नही माना जा सकता। अत तुलसी का उनके पास जाना असभव है। तुलसी के समसामयिक किसी राघवानद के विषय मे कोई साक्ष्य नही है। यदि रामानद की शिष्य-परपरा मे राघवानद नाम के कोई अन्य आचार्य हुए होते तो तुलसी के समकालीन और रामानद-सप्रदाय के विद्वान्-भक्त नाभादास अपने 'भक्तमाल' मे उनका उल्लेख अवश्य करते।

'भविष्यपुराण' की उक्ति है रामानदमते स्थित । डॉ० माताप्रसाद गुप्त ने इसका अर्थ किया है कि तुलसी 'रामानदी सप्रदाय' मे 'दीक्षित' हुए, और इस तथ्य को अप्रामाणिक वतलाते हुए उन्होने 'भविष्यपुराण' के साक्ष्य की उपयोगिता को अत्यत सदिग्ध माना है।[1] डा० रस्तोगी ने उनका खडन करते हुए कहा है कि स्थित' का अर्थ 'दीक्षित' नही है, रामानदी सिद्धातो को मान्यता देना एक वात है और दीक्षा लेना दूसरी *वात।*[2] *ठीक है,* परतु, *'स्थित' की व्यजना क्या है ? यहाँ पर यह शब्द दृढता और* सिद्धात-स्वीकार का द्योतक है। पुराणकार का आशय स्पष्ट है वे रामानद-सप्रदाय के निष्ठावान् अनुयायी हुए, औपचारिक रूप से उसमे दीक्षित हुए हो या न हुए हो। पुराण की यह मान्यता किसी ऐतिहासिक तथ्य पर नही, अपितु उस परपरा पर आश्रित प्रतीत होती है जो तुलसी को रामानदी मानती आयी है। इस अविश्वसनीय परपरा पर विश्वास करके अनेक विद्वानो ने तुलसी को रामानदी घोषित किया है। वैज्ञानिक अनुसधान से सिद्ध है कि वे रामानदी नही थे।[3]

डॉ० रस्तोगी का अनुमान है कि तुलसी के उक्त गुरु (राघवानद) रामानद के प्रसिद्ध गुरु राघवानद से भिन्न कोई अन्य उदारचेता विद्वान् थे, वहुत सभव है कि वे रामानदी सप्रदाय के न रहे हो।[4] यह सभावना असभव नही है, परतु सभाव्य वस्तु को ऐतिहासिक तथ्य का पद नही दिया जा सकता। तुलनात्मक दृष्टि से पुराण-लेखक की एक वात ध्यान आकृष्ट किये विना नही रह सकती। उसका कहना है कि रामानद राम-नामपरायण थे, माता-पिता से परित्यक्त होने पर वे राघव की शरण मे गये।[5] तुलसी भी माता-पिता से परित्यक्त थे 'मात पिता जग जाइ तज्यो।' वे भी रामनामपरायण—'रामबोला थे, अत वे भी राघव (राघवानद) के पास पहुँचा दिये गये। इससे सूचित होता है कि लेखक को तुलसी का भक्तोचित चित्रण करना था, राघवानद नाम प्रसिद्ध था, तुलसी के रामानदी होने की जनश्रुति प्रचलित थी, उसने सवको मिलाकर समान इतिवृत्त गढ लिया।

---

१ तुलसीदास, पृ० ८५-८६

२ तुलसीदास जीवनी और विचारधारा, पृ० ३१

३ देखिए रामानद-सप्रदाय तथा हिंदी-साहित्य पर उसका प्रभाव, पृ० ३३६-३७

४ तुलसीदास जीवनी और विचारधारा, पृ० ३१

५. वाल्यात्प्रभृति स ज्ञानी रामनामपरायण ।
पित्रा मात्रा यदा त्यक्तो राघवं शरणं गत ॥

[११-१३] भक्तमाल, टीका और टिप्पणी

भक्तमाल का रचना-काल स० १७१५ है। उसके रचयिता नाभादास तुलसी के समकालीन थे। यह तथ्य निर्विवाद है। इसलिए उनकी प्रामाणिकता मे सदेह के लिए अवकाश नहीं है। परतु, लाचारी यह है कि 'भक्तमाल' मे तुलसी-विषयक केवल एक पद्य है। उसमे भी कवि के जीवन-वृत्त-सबधी किसी विवरण अथवा किसी विवादग्रस्त प्रसग का उल्लेख नही है। उससे इतना ही व्यक्त होता है कि तुलसी रामायणकार वाल्मीकि के अवतार हैं, वे रामभक्ति मे निरतर तन्मय रहते हैं और उन्होने भगवान् की लीला का गान करके ससार-सागर को पार करने के लिए सगुण-रूप की सुगम नौका का निर्माण किया है।[1] यह सामान्य प्रशस्ति है। इससे कवि के जीवन-चरित की रूपरेखा तैयार करने मे कोई सहायता नही मिलती।

प्रियादास की टीका स० १७६९ मे प्रियदास ने 'भक्तमाल' पर भक्तिरसबोधिनी टीका लिखी। नाभादास के तुलसी-विषयक छप्पय पर उन्होने ग्यारह छद लिखे हैं। उन छदो मे उन्होने तुलसी के जीवन-वृत्त की अनेक महत्त्वपूर्ण बातो का वर्णन किया है

१ तुलसीदास अपनी पत्नी मे अत्यत अनुरक्त थे। उसकी फटकार से उनके मन मे वैराग्य उत्पन्न हुआ। विरक्त होकर वे काशी चले गये।

२ काशी मे एक प्रेत के प्रसाद से उन्हें हनुमान्‌जी का दर्शन प्राप्त हुआ।

३. हनुमान् की कृपा से उन्हे अश्वारोहियो के रूप मे राम-लक्ष्मण के दर्शन हुए।

४ उन्होने राम-नाम लेने वाले एक हत्यारे के साथ भोजन किया। इससे काशी के पडित खौखिया उठे।

५ शिव के नदी ने उस हत्यारे के द्वारा अर्पित आहार ग्रहण कर लिया। इससे पडितो को हार माननी पडी।

६ तुलसी के स्थान पर चोरी करने के लिए आये हुए चोरो ने वहाँ पर पहरा देते हुए राम-लक्ष्मण को देखा।

७ तुलसी ने एक मृत व्यक्ति को पुनर्जीवन प्रदान किया।

८. उनकी कीर्ति सुनकर बादशाह ने उन्हे बुलवाया। उसने उनसे करामात दिखाने का आग्रह किया, उनके मना करने पर उन्हे कैद करा लिया। उन्होने हनुमान् की स्तुति की। बदरो के भयकर उत्पात से भयभीत बादशाह ने क्षमा-याचना की और उन्हे सादर मुक्त कर दिया।

९ लौटते समय उन्होने वृ दावन की यात्रा की। वहाँ पर उनका नाभादास से साक्षात्कार

---

१. त्रेता काव्य निबध करी सतकोटि रमायन।
इक अच्छर उच्चरे ब्रह्महत्यादि परायन।
अब भक्तन सुखदेन बहुरि लीला बिस्तारी।
रामचरन रसमत्त रहत अहनिसि ब्रतधारी।
ससार अपार के पार को सुगम रूप नौका लियो।
कलि कुटिल जीव निस्तार हित बालमीकि तुलसी भयो॥

हुआ।

१० वृ दावन मे वे मदनगोपाल का दर्शन करने गये। कृष्ण-मूर्ति उनकी राम-भक्ति के अनुरूप राम-मूर्ति के रूप मे परिवर्तित हो गयी।

उपर्युक्त रूप-रेखा से स्पष्ट है कि प्रियादास की टीका मे किंवदतियो के आधार पर वृत्तातो एव अलौकिक चमत्कारो का वर्णन किया गया है। भक्त लोग भक्तो के अतिशयोक्तिपूर्ण चित्रण मे भक्ति-मत का गौरव समझते हैं। प्रियादास ने उसी परपरा का पालन किया है। अन्य चरित्र-ग्रथो मे भी इसी प्रकार के लोकोत्तर चरित्र का निरूपण है।

वैष्णवदास की टिप्पणी स० १८०० मे वैष्णवदास ने प्रियादास की उक्त टीका पर अपनी टिप्पणी लिखी। इस टिप्पणी की विशेषता यह है कि टिप्पणीकार ने 'टीका' के अनेक स्थलो का सोदाहरण स्पष्टीकरण करने के लिए तुलसी के कथित पद्य उद्धृत किये हैं। ऐसे स्थल पाँच हैं। उनमे केवल एक उद्धरण वस्तुत तुलसी-रचित है।[1] शेष चार कवि की प्रामाणिक कृतियो मे नही मिलते। एक टिप्पणी के तीन दोहो मे कवि ने पत्नी के प्रति अपनी आसक्ति का निवेदन किया है।[2] एक गीत मे कवि ने राम के (दर्शन देकर) अतर्हित हो जाने पर अपनी विरहावस्था का निरूपण किया है।[3] अतिम दो टिप्पणियो मे एक-एक दोहे हैं जिनमे मदनगोपाल की मूर्ति के समक्ष कवि की राम-निष्ठा एव तदनुसार मूर्ति के रूप-परिवर्तन का वर्णन है

> कहा कहौं छवि आज की भले बने हो नाथ।
> तुलसी मस्तक जब नवै धनुष वान लेहु हाथ॥
> क्रीट मुकुट माथै धर्‍यौ धनुष वान लयौ हाथ।
> तुलसी जन के कारनै नाथ भए रघुनाथ॥

ऐसा प्रतीत होता है कि तुलसी-ग्रथावली मे अनुपलब्ध ये पद्य किंवदतियो का आश्रय लेकर रचे गये थे और लोक-प्रवाह मे तुलसीदास के नाम पर चल पडे। इनसे तुलसी के जीवनचरित-सबधी प्रश्नो को सुलझाने मे कोई सहायता नही मिलती।

[१४] पदप्रसंगमाला

तुलसीदास के जीवन-वृत्त की दृष्टि से नागरीदास (स० १७५६–१८२१) की

---

१ टीका के छद ५१६ की टिप्पणी में, 'विनयपत्रिका' का ३२वाँ पद

२. तन तरफत तुम मिलन बिन दरसन बिन ये नैन।
श्रुति तरफत तुव बचन बिन सुन तरुणी रस श्रैन॥
बढ़ो नेह तुमसों लग्यो और न कछू सुहाय।
तुलसी चद चकोर ज्यों तलफत रैनि बिहाय॥

३ लोचन रहे बैरी होय।
जानि बूझि अकाज कीनौ दए भुव मैं गोइ॥
अविगत जु तेरी गति न जानी रही जागति सोइ।
सवै रूप की अवधि मेरैं निकसि गए ढिग होइ॥
कर्महीन हौं पाय हीरा दयौ छिन मैं पोइ।
तुलसीदास जु राम बिछुरे कहौ कैसी होइ॥

'पदप्रसगमाला' (रचना-काल . लगभग सं० १८१९) विचारणीय है। उसमे उन्होने तुलसी-सबधी तीन प्रसगो का विवरण प्रस्तुत किया है

१. एक प्रेत की सहायता से तुलसी को हनुमान् का दर्शन प्राप्त हुआ। उनकी कृपा से उन्हे अहेरियो के रूप मे राम-लक्ष्मण के दर्शन हुए। उनके अतर्धान के बाद तुलसी ने अपनी विरहाकुलता का निवेदन एक पद मे किया।

२. तुलसी ने एक मृत व्यक्ति को जीवित कर दिया। उनकी ख्याति सुनकर जहांगीर ने उन्हे दिल्ली बुलाया और उनसे कुछ करामात दिखाने को कहा। इन्कार करने पर उन्हे कैद कर लिया। तुलसी ने हनुमान् की दुहाई देते हुए विनय का पद कहा। बदरो के उत्पात से भयभीत बादशाह ने तुलसी से क्षमा मांगी।

३ लौटती बार उन्होने वृदावन की यात्रा की। वे गोसाई विट्ठलनाथ के साथ श्रीनाथ के मदिर मे गये। तुलसी ने श्रीनाथ को सबोधित करके एक दोहा कहा। भक्त की भावना के अनुसार मूर्ति ने राम-रूप धारण कर लिया।

ये उपाख्यान किवदतियो पर अवलबित हैं। भक्तमाल-टीका की बातें कुछ हेर-फेर के साथ प्रस्तुत की गयी हैं। अलौकिक तत्त्व तो अविश्वसनीय हैं ही, सत्यापनीय घटनाएँ भी इतिहास-समर्थित नही हैं। जहांगीर के शासन-काल मे विट्ठलनाथ का उल्लेख इतिहास-विरुद्ध है। विट्ठलनाथ की मृत्यु स० १६४२ मे हुई और जहांगीर का शासन-काल स० १६६२ मे आरभ हुआ।

[१५] दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता

'दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता' के कर्ता और रचना-काल के विषय मे सदेह है। कुछ लोग मानते हैं कि उसके रचयिता गोकुलनाथ थे और उसकी रचना सत्रहवी शती विक्रमी के उत्तरार्ध मे हुई।[1] डॉ० धीरेन्द्र वर्मा और डॉ० माताप्रसाद गुप्त उसे गोकुलनाथ की कृति नही मानते।[2] उनका प्रधान तर्क यह है कि गोकुलनाथ की मृत्यु स० १६९२ के लगभग हुई और 'वार्ता' मे स० १७३६ की घटनाओ का उल्लेख है। अनुमान के आधार पर इन उल्लेखो को प्रक्षिप्त मानकर प्रत्यक्ष प्रमाण की अवहेलना नही की जा सकती। अतएव वह अठारहवी शती की रचना है। प० रामचद्र शुक्ल का कथन है कि उक्त वार्ता की बातो को, जो वास्तव मे भक्तो का गौरव प्रचलित करने और वल्लभाचार्य जी की गद्दी की गरिमा प्रकट करने के लिए पीछे से लिखी गयी हैं, प्रमाण-कोटि मे नही ले सकते।[3]

इस 'वार्ता' मे २५२ वैष्णवो के विवरण दिये गये हैं। उनमे से एक तुलसीदास हैं। वार्ताकार ने तुलसी की ब्रज-यात्रा के प्रसग मे उनके जीवनचरित से सबधित कुछ नयी सामग्री प्रस्तुत की है। उसके अनुसार—

१ नददास के बडे भाई तुलसीदास काशी मे रहते थे।

---

१. तुलसीदास जीवनी और विचारधारा, पृ० ३९-४०

२ हिंदुस्तानी, १९३२ ई०, पृ० १८३, तुलसीदास, पृ० ७२

३. हिंदी-साहित्य का इतिहास, पृ० २११

२ वे नददास से मिलने के लिए व्रज मे आये।
३ वहाँ पर नददास उन्हें श्रीनाथ जी के दर्शन के लिए ले गये।
४. मदिर मे मूर्ति के समक्ष नददास ने यह विनती की :

कहा कहौं छवि आज की भले बने हो नाथ।
तुलसी मस्तक तब नमे धनुष बान लेहु हाथ॥

श्रीनाथ जी ने यह सोचकर कि नददास 'गोसाईं जी के सेवक हैं', राम-रूप-धारण कर लिया।
५ मदिर से निकलकर तुलसी ने विट्ठलनाथ को साष्टाग-प्रणाम किया।
६ विट्ठलनाथ के यहाँ तुलसी ने नददास से राम का पुन दर्शन कराने को कहा। फलत विट्ठलनाथ के पुत्र रघुनाथलाल और उनकी जानकी वहू ने तुलसी को राम-सीता के रूप मे दर्शन दिया।
७ तब तुलसी ने 'वरनौं अवध गोकुल गाम'[1] वाला पद रचा।

वार्ता का यह तुलसी-विषयक प्रसग अपने मूल रूप मे 'पदप्रसगमाला' के समान है, किंतु उपर्युक्त सातो विवरण 'माला' मे दिये गये विवरणो से भिन्न हैं। इस भिन्नता का कारण क्या है ? डॉ० माताप्रसाद गुप्त का उत्तर है—"ज्ञात होता है कि 'माला' की रचना 'वार्ता के पूर्व हो गयी थी, और 'माला' के विभिन्न प्रसगो मे आये हुए पदादि लेते हुए भी 'वार्ता' के लेखक ने प्रसगो को पुष्टिमार्गीय रूप दे दिया।"[2]

इस विवेचन-क्रम मे तुलसी-सबधी दो प्रसगो का वार्ताकार द्वारा अन्यातरण भी समीक्ष्य है। प्रियादास की टीका मे कहा गया है कि तुलसी अपनी स्त्री पर आसक्त थे, जिसकी भर्त्सना से वे विरक्त हुए, और काशी मे एक हत्यारे के हाथ से उन्होने नदी को भोजन कराया था। वार्ता मे राग-विराग-विषयक कथा के नायक कोई यदुनाथदास हैं, और नदी वाला चमत्कार लाहौर के किसी पडित ने किया है। डॉ० गुप्त ने साप्रदायिकता को ही इस परिवर्तन का कारण ठहराते हुए अनुमान किया है कि 'वार्ता' ने इन आख्यानो को 'टीका' से लेकर पुष्टिमार्गीय सतो से सबध रखने वाले वृत्तो मे स्थान दिया है।[3] उनका अनुमान अयुक्त नही है। परतु, यह भी सभाव्य है कि वे आख्यान जनश्रुतियो के रूप मे प्रचलित थे और विभिन्न लेखको ने अपनी-अपनी रुचि और उद्देश्य के अनुसार उनका उपयोग किया।

अस्तु। अधविश्वास से पूर्ण, साप्रदायिकता से रजित, अज्ञातकर्तृक, अनिश्चित-कालीन और जनश्रुतियो पर आश्रित 'दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता' तुलसी के जीवन-वृत्त के विषय मे कोई प्रामाणिक साक्ष्य उपस्थित नही करती।

---

१. वरनौं अवध गोकुल गाम।
उत विराजत जानकी वर इतहि स्यामा स्याम।
भक्त हित श्री राम कृष्ण सु धर्यो नर अवतार।
दास तुलसी दोउ आसा कोउ उवारो पार॥
२. तुलसीदास, पृ० ८४
३. तुलसीदास, पृ० ८०

[ख] बहिस्साक्ष्य : स्थानीय सामग्री

[१] काशी की सामग्री

१ गगा और अस्सी के नाले के सगम पर एक पक्का घाट है। उसका नाम तुलसी-घाट है।

२ उस घाट से मिली हुई एक इमारत है जो अशत प्राचीन है। उसके निचले खड मे एक कोठरी है जो तुलसी के समय की बतायी जाती है।

३ उस कोठरी मे हनुमान् की एक प्राचीन मूर्ति है। कहते हैं कि उसमे तुलसी की एक पाषाण-प्रतिमा भी है।

४ इमारत के ऊपरी खड मे कुछ प्राचीन मूर्तियाँ हैं। उनमे से कुछ तुलसी के समय की बतायी जाती हैं।

५. वहाँ पर काठ का एक टुकडा है। कहा जाता है कि वह उस नाव का अवशेष है जिससे तुलसी गगा पार किया करते थे। इसमे सत्यता नही दिखायी देती।

६ वहाँ पर एक जोडी खडाऊँ हैं। वे तुलसीदास की कही जाती हैं, किंतु उनमे अपेक्षित प्राचीनता के कोई लक्षण नही है।

७ वहाँ एक चित्र भी है। वह तुलसी का चित्र कहा जाता है। उसकी प्रामाणिकता सदिग्ध है। रग आदि से उसकी अर्वाचीनता स्पष्ट झलकती है।

८ वहाँ पर कुछ कागद-पत्र भी हैं। तुलसी से उनका कोई सबध नही प्रतीत होता।

९ गोपाल-मदिर के अहाते मे एक नीची कोठरी है। लोक-प्रसिद्धि है कि उसी मे तुलसी ने 'विनयपत्रिका' के अधिकाश पद रचे थे।

१० प्रह्लाद-घाट पर गगाराम ज्योतिषी का स्थान है। कहते हैं कि काशी पहुँचने पर तुलसी सर्वप्रथम वही ठहरे थे। गगाराम के उत्तराधिकारियो के पास एक चित्र है जिसमे मसनद के सहारे गद्दे पर विराजमान एक महात्मा माला फेरते हुए अकित किये गये है। कहा जाता है कि यह चित्र तुलसीदास का है जिसको जहाँगीर ने स० १६५५ मे उस समय बनवाया था जब वे दिल्ली बुलाये गये थे। चित्र नि सदेह पुराना है, परतु स० १६५५ का प्रतीत नही होता। इसमे केवल सवत् का उल्लेख किया गया है, तिथि का पूरा विवरण नही है। इमारत की शैली भी तुलसीकालीन प्रासाद-निर्माण-शैली के अनुरूप नही है। इससे ज्ञात होता है कि यह चित्र तुलसी के परवर्ती काल की रचना है।

११ काशिराज के निजी सग्रह मे स० १६६९ का लिखा हुआ एक पचायतनामा है जिसमे दिवगत टोडर के उत्तराधिकारी पुत्र आनदराम और आनदराम के भतीजे कँधई के बीच जायदाद का बँटवारा कराया गया है। पचायतनामा फारसी-लिपि मे है, किंतु उसके ऊपर कुछ पक्तियाँ देवनागरी मे लिखी हुई हैं। उनमे तुलसी रचित एक दोहा भी है। कहा जाता है कि उक्त पक्तियाँ तुलसीदास की लिखी हुई हैं। पचायतनामा विश्वसनीय है, उस पर दी हुई तिथि गणना से शुद्ध उतरती है, टोडर के वशज अब भी अपनी कुल-परपरा के अनुसार श्रावण-श्यामा-तीज को तुलसी के नाम पर सीधा

दिया करते हैं। इन सबसे पचायतनामे की प्रामाणिकता पुष्ट होती है। यह अनुमान उचित है कि टोडर और तुलसीदास का सबध बहुत कुछ घरेलू ढग का रहा होगा। यह असभव नही है कि कवि ने उनके उत्तराधिकारियो के बँटवारे मे कुछ हाथ बँटाया हो, और पचायतनामे की प्रथम छ पक्तियाँ लिख दी हो।

१२ वाल्मीकि-रामायण की एक हस्तलिखित प्रति काशी के सरस्वती-भवन मे है। इसकी पुष्पिका में दी हुई तिथि गणना से शुद्ध है। पुष्पिका से प्रकट है कि यह किसी तुलसीदास की लिखी हुई है। कहा जाता है कि इसके लिपिक रामचरितमानसकार तुलसीदास हैं। इस मान्यता के विरुद्ध कई आपत्तियाँ हैं। इसकी लिखावट उक्त पचायतनामे के सिरनामे की लिखावट से नही मिलती। पुष्पिका के नीचे लिखे गये श्लोक की लिखावट पूरी प्रति की लिखावट से भिन्न है। उस श्लोक[1] मे कहा गया है कि दत्तात्रेय ने लेखक से लिपि-कर्म करवाया। यह बात अविश्वसनीय जँचती है कि तुलसीदास-जैसे विख्यात महाकवि और सत-महात्मा से किसी ने लिपि-कर्म करवाया होगा। अतएव इस प्रति का तुलसी-लिखित होना असदिग्ध नही है।

१३ रामनगर के चौधरी छुन्नीसिह के पास 'रामगीतावली' (विनयपत्रिका) की एक हस्तलिखित प्रति है जिसका लिपिकाल स० १६६६ है। उसके एक पृष्ठ पर सशोधन किया गया है। कहते हैं कि यह सशोधन कवि ने स्वय किया है। डॉ० माताप्रसाद गुप्त का मत है कि उस सशोधन की लिखावट पचायतनामे आदि की लिखावट से भिन्न है।[2] केवल एक पृष्ठ पर सशोधन किया जाना भी सदेह की बात है।

[२] अयोध्या की सामग्री

१ अयोध्या मे एक स्थान 'तुलसी-चौरा' है। जनश्रुति और उस पर आश्रित मोहनसाईं के गीत से विदित है कि तुलसीदास ने उस स्थान पर निवास किया था और वहीं पर 'रामचरितमानस' की रचना की थी। कवि ने स्वय कहा है—**अवधपुरी यह चरित प्रकासा**। अयोध्या मे 'रामचरितमानस' की समाप्ति मान्य नही है, परतु तुलसी और तुलसी-चौरा का सबध निस्सदेह मान्य है।

२ रामचरितमानस के बालकाड की एक हस्तलिखित प्रति अयोध्या के 'श्रावण-कुज' मदिर मे परिरक्षित है। वह स० १६६१ की बतायी जाती है। उसके तीन पृष्ठो पर सशोधन किये गये हैं। वे सशोधन प्रतिलिपिकार के हाथ के नही हैं। कहा जाता है कि वे तुलसी-कृत हैं। डॉ० माता प्रसाद गुप्त का मत[3] है कि वे सशोधन कवि के द्वारा किये गये नहीं हैं। इसके दो कारण हैं। एक यह कि उसका लिपिकाल वस्तुत १६९१ है, १६६१ नही, ९ का ६ बना दिया गया है।[4] अत, स० १६८० मे दिवगत

---

१. श्रीमच्चेदिलशाहभूमिपसभासभ्येंद्रभूमीसुरश्रेणीमडनमडलीधुरि दयादानादिभाजिप्रभु।
वाल्मीके कृतिमुत्तमां पुररिपो पुर्यां पुरोग कृतीद् दत्तात्रेयसमाह्वयो लिपिकृते कर्मत्वमाचीकरन्॥

२. तुलसीदास, पृ० १९६-९९

३. तुलसीदास, पृ० १९५, २१२-२१३

४. यह बात ध्यान देने योग्य है कि उसमें दिये गये तिथि-वार गणना करने पर स० १६६१ और स० १६९१ दोनों में शुद्ध उतरते हैं।

तुलसी द्वारा स० १६६१ मे लिखित प्रति का संशोधन असभव है। दूसरा कारण यह है कि उक्त सशोधनो की लिखावटें तुलसीदास की कही जाने वाली किसी अन्य लिखावट से मेल नही खाती। उस प्रति का महत्त्व इस बात मे है कि वह 'रामचरित-मानस' की अब तक उपलब्ध प्रतियो मे प्राचीनतम है।

[३] राजापुर की सामग्री

१ राजापुर मे यमुना के किनारे एक मदिर है। कहते हैं कि उसी स्थान पर तुलसीदास रहते थे। उन्होने नदी के करार पर एक मदिर बनवाया था जो बाढ मे विलीन हो गया। उसका एक चित्र सन् १८८७ ई० मे लिया गया था जिसका प्रकाशन लाला सीताराम ने स्वसपादित 'रामचरितमानस' के अयोध्याकाड की भूमिका मे किया। वर्तमान मदिर पहले स्थान से कुछ दूर पर बनाया गया है।

२ उस मदिर मे काले पत्थर की एक मूर्ति है।[1] उसमे चित्रित महात्मा श्रीवैष्णवो के सदृश छाया तिलक लगाये हुए, सिर पर जटाजूट और टोपी तथा गले मे तुलसी-माला धारण किये हुए सुखासन-मुद्रा मे माला फेर रहे हैं। कहते हैं कि वह मूर्ति तुलसीदास की है जो यमुना की रेत से लाकर मदिर मे प्रतिष्ठापित की गयी थी। उसकी मूर्ति-कला और भुजाओ तथा वक्ष स्थल पर के घिसे हुए तिलक-चिह्न से सूचित होता है कि वह निश्चय ही बहुत पुरानी है। बहुत सभव है कि बाढ के समय पुराने मदिर के बह जाने पर उसकी मूर्ति नदी मे डूब गयी हो और कुछ काल के पश्चात् रेत मे से पुन प्राप्त हो गयी हो। तुलसी ने राजापुर मे बहुत समय तक निवास किया था। उनकी असाधारण प्रतिष्ठा थी। अतएव वहाँ के निवासियो द्वारा उनकी मूर्ति का निर्माण करवाना स्वाभाविक प्रतीत होता है।

३. राजापुर में एक उपाध्याय-कुल है। उपाध्यायो के पूर्वपुरुष गणपति उपाध्याय थे। कहा जाता है कि वे तुलसी के शिष्य थे। उपाध्याय-कुल के अधिकार मे तुलसी-मदिर, 'रामचरितमानस' की प्रति और कुछ पुराने फर्मान-पट्टे हैं। इनसे अनुमान होता है कि तुलसी और गणपति मे गुरु-शिष्य-सबध था।

४ उपर्युक्त गणपति उपाध्याय के वशज प० मुन्नीलाल उपाध्याय के पास 'रामचरित-मानस' के अयोध्याकाड की एक प्रति है। वह प्रति तुलसी के हाथ की लिखी हुई बतायी जाती है। उसमे पुष्पिका नही है। अत लिपि-काल अज्ञात है। डॉ० माता-प्रसाद गुप्त तुलनात्मक परीक्षण करके इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि उसकी लिखावट उन कृतियो की लिखावट से मेल नही खाती जिनके लिपिकार तुलसीदास कहे जाते हैं।[2]

५ उपाध्याय-कुल के पास एक शाही फर्मान की नकल और चार पट्टे हैं। उनका सबध उन मुआफियो से है जो उस कुल को मिली हुई हैं। कहा जाता है कि वे मुआफियाँ अकबर द्वारा दी गयी थी और तुलसी के समय से चली आ रही है। फर्मान और

---

१ उसका सर्वप्रथम उल्लेख सन् १९०६ ई० में बाँदा जिले के गजेटियर (पृ० २८४) में मिलता है।

२. तुलसीदास, पृ० १९६-९९

पट्टे इस तथ्य के पोषक हैं। डॉ० माताप्रसाद गुप्त ने बतलाया है कि शाही फर्मान की नकल सबसे प्राचीन है जो "आलमगीर बादशाह औरंगजेब के समय मे उसकी मुहर से दी हुई है। असल फर्मान को इलाही सन् ३ का और इसलिए अकबर के शासन-काल का होना चाहिए।"[1] इससे सूचित होता है कि बादशाह ने तुलसीदास को कुछ मुआफी दी थी, उनका कोई वशज नही था अत शिष्यो ने उस पर अधिकार कर लिया, और परपरया उन शिष्यो के वशजो के अधिकार मे आज भी है। इस सामग्री के सबध मे कोई ऐसी बात नही है जो इसकी प्रामाणिकता के विरुद्ध हो।

६ राजापुर के पास 'खटवारा' नाम का एक गाँव है। वहाँ के बलदेवप्रसाद ने एक पुस्तक लिखी है —'कानूनगोय कायस्थ वशावली'। उसके अनुसार लेखक के पूर्व-पुरुष तुलसी के समकालीन थे। इतनी ही जानकारी प्राप्त है। यदि पुस्तक प्रामाणिक हो तो भी उससे तुलसीदास के अध्ययन मे कोई सहायता नही मिलती।

[४] सोरो की सामग्री

व्यापक अर्थ मे 'सोरो-सामग्री' का तात्पर्य उस सपूर्ण सामग्री से है जो सोरो के पक्ष का समर्थन करती है, अत सोरो क्षेत्र को तुलसीदास का जन्म स्थान बतलाती है, उसका प्राप्ति-स्थान चाहे जहाँ हो। सीमित अर्थ मे, सोरो के पक्ष का समर्थन करने वाली जो सामग्री सोरो मे अथवा उसके आस-पास उपलब्ध हुई है उसके लिए 'सोरो-सामग्री' का व्यवहार किया जाता है। इस दृष्टि से सोरो-सामग्री के अतर्गत बारह लिखित रचनाएँ हैं, सोरो-क्षेत्र मे पायी जाने वाली कुछ जनश्रुतियाँ हैं और रामपुर गाँव, नरसिंह-मदिर, तुलसी का गृह-स्थान, सीताराम-मदिर, बदरिया गाँव, नरसिंह के वशज तथा नददास के वशज हैं। इनके अतिरिक्त (व्यापक अर्थ मे) तुलसी के आत्मोल्लेखो, अन्यत्र पायी जाने वाली जनश्रुतियो और वैष्णव वार्ताओ आदि मे उपलब्ध तथ्यो के आधार पर सोरो-पक्ष का समर्थन किया गया है।

सोरो-सामग्री पर अगूढ-व्यग्य करते हुए आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने लिखा है "इधर प० रामनरेश त्रिपाठी ने अनेक खोज के बाद यही निर्णय दिया है कि सोरो (सूकरखेत) ही तुलसीदास का जन्मस्थान है। जब से यह बात कुछ बल पकडने लगी है, तब से कुछ ऐसी नयी सामग्रियो का पता लगा है जो आश्चर्यजनक ढग से सगति रखने-वाली और ऐतिहासिक तथ्यो को प्रकाश मे ले आनेवाली सिद्ध हुई हैं। इधर नददास के एक पुत्र कृष्णदास का भी पता चला है। उनकी लिखी दो पोथियाँ भी प्राप्त हुई हैं जिनमे एक का नाम 'सूकरक्षेत्र महात्म्य' और दूसरी का 'वर्षफल' है। दोनो मे ही कृष्णदास ने सावधानी के साथ अपने पिता के नाम के साथ अपने बडे चाचा का उल्लेख किया है और अपनी माता कमला और चाची रत्नावली के चरणो की वदना भी की है। सब मिलाकर सोरो से प्राप्त होनेवाली सामग्री जितनी साफ-सुथरी और सुदर योजना-समन्वित है उतनी अब तक हिन्दी-साहित्य के इतिहास मे अन्यत्र नही देखी गयी। इस सामग्री मे

१ तुलसीदास, पृ० ९१

ऐसी कोई बात आयी ही नही है जिसके विषय मे आधुनिक पडितो मे मतभेद हो सके। ये सिर्फ एक बात का पक्का समर्थन करती हैं कि तुलसीदास सोरो के निवासी थे। और तो और, स्वय माता रत्नावली के लिखे दोहे भी मिल गये हैं, और उसमे देवर नद की चर्चा छूटने नही पायी है। इस प्रकार के एक-मन, एक-चित्त, एक-प्राण लेखक साहित्य मे दुर्लभ ही हैं। मुझे सोरो के प्रामाणिक या अप्रामाणिक होने के पक्ष मे कुछ भी नही कहना है। जहाँ तक पुस्तको से पढकर समझने का प्रश्न है, मेरा विचार है कि सोरो के पक्ष में दिये जानेवाले प्रमाण बहुत महत्त्वपूर्ण न होते हुए भी वजनदार हैं। उनको यो ही टाल नही दिया जा सकता। परतु यदि इस प्रकार सुचिंतित योजना के साथ प्रमाणो की वृद्धि होती गयी तो यह निर्णय करना कठिन हो जाएगा कि सोरो की वास्तविक जनश्रुति और अनुश्रुति क्या है। तुलसीदास और नददास के जन्म-स्थान का प्रश्न हमेशा के लिए धूमिल हो जाएगा।"[१]

तुलसी-सबधी विभिन्न सामग्रियो का आमूलचूल विवेचन करने वाले डॉ० माताप्रसाद गुप्त ने सोरो-सामग्री का सबसे अधिक मनोयोगपूर्वक जमकर प्रतिवाद किया है।[२]

सोरो-सामग्री का विवेचन-प्रत्यालोचन करते हुए उसका सर्वाधिक विशद उपस्थापन डॉ० रामदत्त भारद्वाज ने अपने शोध-प्रबध 'गोस्वामी तुलसीदास'[३] मे किया है। यहाँ पर उस सामग्री का सक्षिप्त परिचय और उसके खडन-मडन का साराश प्रस्तुत कर देना ही अभीष्ट है।

(१) सोरो मे 'रामचरितमानस' के बालकाड की एक हस्तलिखित खडित प्रति है।[४] पुष्पिका मे बतलाया गया है कि यह प्रति नददास के पुत्र कृष्णदास के लिए काशी मे तैयार की गयी।

डॉ० गुप्त ने उसमे अनेक बहिरग-दोष बतलाये हैं[५] अतिम पक्ति की लिखावट शेष प्रति और पुष्पिका की लिखावट से पूर्णत मेल नही खाती, उसमे दिये हुए प्रतिलिपि-काल की तिथि के अको मे अस्वाभाविक अतर है, तिथि मे केवल सवत् का उल्लेख और मिति-वार का अभाव सदेहजनक है। उसमे अतरग भूलें भी हैं[६] केवल अतिम पृष्ठ मे ही आधे दर्जन अशुद्धियाँ हैं, अत के तीनो सोरठे प्रक्षिप्त हैं जो 'मानस' की प्राचीन प्रतियो मे नही मिलते, उनमे भरती की और असगत शब्दावली भरी पडी है। "यह है उस प्रति के अतिम पृष्ठ की दशा जिसे महाकवि तुलसीदास ने अपने भतीजे और 'महाकवि' नददास के पुत्र और स्वत भी एक सुकवि कृष्णदास के लिए—जिनकी अनेक रचनाओ को स्वत सोरो के विद्वानो ने खोज निकाला है—काशीपुरी मे अपने शिष्यो द्वारा लिखवा कर और स्वय शोधकर भेंट किया था। सोरो के पडितो के अतिरिक्त ऐसा

१. हिंदी-साहित्य, पृ० २३०-३२
२. तुलसीदास, पृ० ६२-१२७
३ गोस्वामी तुलसीदास, पृ० १६१-२५६
४. प्रतिलिपिकार—रघुनाथदास, लिपि-काल-स० १६४३
५ तुलसीदास, पृ० ६८-६६
६. तुलसीदास, पृ० १०३-४

कौन कहेगा !"[1]

डा० भारद्वाज ने उक्त आक्षेपो का उत्तर दिया है।[2] डॉ० गुप्त ने प्रति की प्राचीनता स्वय स्वीकार की है। हस्तलेख-विशेषज्ञ पुष्पिका समेत सपूर्ण प्रति को एक ही लिपिकार द्वारा लिखित मानते हैं। अको या अक्षरो के बीच का अतर प्रति के अन्य स्थलो पर भी पाया जाता है। विरल लेख प्रतिलिपिकार की स्वाभाविक विशेषता है। बहुत-सी कथित अशुद्धियाँ वस्तुत अशुद्धियाँ नही हैं। प्रस्तुत प्रति स० १६४३ की है। आगे चलकर कवि ने अपनी कृति मे बहुत काट-छाँट और सशोधन-परिवर्तन किये होंगे, फलत बाद की हस्तलिखित प्रतियो मे पाठ-भिन्नता स्वाभाविक है।

(२) 'रामचरितमानस' के अरण्यकाड की एक हस्तलिखित खडित प्रति है।[3] पुष्पिका मे कहा गया है कि लिपिकार लक्ष्मणदास ने काशी मे गुरु तुलसीदास की आज्ञा से उनके भ्राता-सुत और सोरो-क्षेत्र-निवासी कृष्णदास के लिए यह प्रति तैयार की।

डॉ० माताप्रसाद गुप्त ने अति विस्तार से इसके दोषो का उद्घाटन किया है।[4] शैली, गति और आकार की दृष्टि से पुष्पिका के उत्तरार्ध की लिखावट शेष प्रति की लिखावट से भिन्न है। स० '१६४३' के प्रथम तीन अक अपेक्षाकृत बहुत बडे हैं जिससे अनुमित होता है कि वे किन्ही अको को विगाडकर लिखे गये हैं। पुष्पिका मे 'आसाढ सुद्ध' का प्रयोग सर्वथा अशुद्ध है, क्योकि उस वर्ष मलमास नही लगा था। पुष्पिका का कुछ अश पहले लाल स्याही से लिखा हुआ था, बाद मे उस पर चमकदार काली स्याही फेरी गयी है। हरताल लगाकर प्रति के पाठ मे अनेक सशोधन किये गये हैं, कुछ प्रतिलिपिकार की लिखावट मे हैं और कुछ किसी अन्य व्यक्ति की। 'रामचरितमानस' के प्रामाणिक पाठ से मिलान करने पर ज्ञात होता है कि अरण्यकाड के उस उपलब्ध अश में लगभग पचास अतिरिक्त पक्तियाँ समाविष्ट कर ली गयी हैं और चौपाइयो के ग्यारह चरण छोड दिये गये हैं। उसमे असभव उक्तियो एव प्रयोगो का बाहुल्य है। जैसे—'सदा-सतत', 'महाअति', 'जहीते', 'विविवि विधाता', 'सतत सदा', 'वरल', 'गँजरि कुजहिं', 'जो नहि प्रीति तदपि अनुरागे' आदि। कहा जाता है कि उक्त प्रति स्वत तुलसीदास द्वारा सशोधित है।[5] एक स्थल पर हाशिये मे सशोधन करके लिखा गया है

अहे सदा अघ खग गन बधिका।

[प्रामाणिक पाठ—होउ नाथ अघ खगगन बधिका।[6]]

"यह तुलसीदास का किया हुआ सशोधन है, यह सोरो के पडित ही कह सकते हैं। पाठ-सबधी अन्य प्रकार की भूलो और पाठ-भेदो का तो हिसाब ही नही है।"[7] डॉ०

१. तुलसीदास, पृ० १०४
२. गोस्वामी तुलसीदास, पृ० २२७-२८, ५६७
३ लिपिकार-लछमनदास, लिपि-काल स० १६४३
४ तुलसीदास, पृ० ९४, ९९, १०४-८
५ नवीन भारत, अप्रैल-जून, १९४२ ई०, पृ० ३१
६ रामचरितमानस, ३।४२।४
७. तुलसीदास, पृ० १०७-८

गुप्त का निष्कर्ष यह है कि 'पाठवृद्धि, पाठलोप और पाठप्रमाद से भरी हुई ऐसी भ्रष्ट' प्रति को तुलसीदास द्वारा सशोधित और प्रामाणिक नही माना जा सकता।

डॉ० रामदत्त भारद्वाज का उत्तर[१] है कि पुष्पिका-समेत सपूर्ण प्रति एक ही हाथ की लिखी हुई है। अपने पक्ष के समर्थन मे उन्होने राष्ट्रीय अभिलेखागार के निदेशक का मत भी उद्धृत किया है। लाल स्याही फीकी थी, अत काली स्याही से फीके अक्षरो को चटकीला बनाया गया। सवत् के अको के विषय में की गयी शका भी निर्मूल है। '१६४३' के '१६४' पर सदेह किया गया है। '१' को वदलने का प्रश्न नही उठता। यदि '६' और '४' को वदला जाए तो उसके अनुसार १६४३ के साथ दिये गये मिति-वार का भी मेल होना चाहिए, किंतु ऐसा नही है। वे तिथि-वार स० १६४३ के साथ ही शुद्ध उतरते हैं। यह मान्यता पुरालेखविद् और पुरातत्त्व-विभाग के सयुक्त-निदेशक द्वारा समर्थित है।'६' का अपेक्षाकृत बडा आकार अस्वाभाविक नही है, प्रतिलिपिकार ने अन्य स्थलो पर भी ऐसा किया है। 'सुद्ध' शब्द को लेकर की गयी क्लिष्ट-कल्पना असगत है। उसका मलमास से कोई सबध नही है। 'सुद्ध' का अर्थ है—शुक्ल पक्ष। किसी कोश से इसका समाधान किया जा सकता है। "इस प्रकार यह पुष्पिका वैज्ञानिक एव साहित्यिक परीक्षण से सर्वथा प्रामाणिक सिद्ध होती है।" डॉ० गुप्त ने स्वय स्वीकार किया है—"देखने मे यह इतनी काफी पुरानी जान पडती है कि विक्रमीय सत्रहवी शताब्दी की कही जा सके।"

(३) सूकरक्षेत्रमाहात्म्यभाषा[२] की दो प्रतियाँ उपलब्ध हैं—एक स० १८०६ की और दूसरी १८७० की। वराहपुराण के अनुसार सूकरक्षेत्र का माहात्म्य वर्णित है। तुलसी के विषय मे भी कुछ आनुषगिक कथन है। उससे सूचित होता है कि तुलसीदास सुकुल ब्राह्मण थे। वे कृष्णदास के पिता नददास के बडे भाई थे। रत्नावली कृष्णदास की ताई थी। तुलसीदास और नददास के गुरु नरसिंह थे।

डॉ० गुप्त की आलोचना स० १८७० वाली प्रति पर आधारित है। उसका रचना-काल देते समय रचनाकार कृष्णदास ने केवल सवत् (१८७०), मास (माघ) और पक्ष (शुक्ल) का निर्देश किया है, मिति और वार का उल्लेख नही है। रचना-तिथि देने का यह अपूर्व ढग तत्कालीन हस्तलिखित प्रतियो की प्रणाली से मेल नही खाता। प्रतिलिपि की लेखन-शैली भी स्वकालीन प्रतियो की शैली से भिन्न है, क्योकि उसमे प्रत्येक शब्द दूसरे शब्द से अलग लिखा गया है और प्रत्येक शब्द के अक्षर एक शिरोरेखा के नीचे रखे गये हैं।[३]

प्रस्तुत रचना की प्राचीनता सिद्ध करने के लिए डॉ० भारद्वाज ने दो तर्क दिये हैं। 'सूकरक्षेत्रमाहात्म्यभाषा' की एक ही प्रति के आधार पर निर्णय देना न्यायसगत नही है। उसकी दूसरी (खडित) प्रति भी उपलब्ध है जो स० १८०६ की है। उसकी लेखन-शैली निस्सदेह प्राचीन है। इसके अतिरिक्त, 'सूकरक्षेत्रमाहात्म्य' स० १९२७ मे ही छप चुका था।[४]

---

१ गोस्वामी तुलसीदास, पृ० २२८-३०, ५६७

२. लेखक कृष्णदास है। रचना-काल स० १६७० है।

३. तुलसीदास, पृ० ६६, १०८

४ गोस्वामी तुलसीदास, पृ० २३०

(४) उपर्युक्त 'सूकरक्षेत्रमाहात्म्यभाषा' की स० १८७० वाली प्रति की पुष्पिका के नीचे मुरलीघरचतुर्वेदी-रचित पाँच छप्पय भी समिलित हैं। उनका पाठ शुद्ध है। उनकी लिखावट आदि शेप प्रति के समान है। अतएव पक्ष-विपक्ष के तर्क भी वे ही हैं। एक वात सविशेष है। चौथे छप्पय की एक पक्ति है

एक वसे सो रामपुर एक स्यामपुर मे रहे।

अर्थ यह है कि तुलसीदास रामपुर के वासी थे और नददास श्यामपुर मे रहते थे। डॉ० गुप्त की वक्रोक्तिगर्भित समीक्षा है "इस छद मे आया हुआ रामपुर भी एक पहेली है। यदि इसमे आशय उसी रामपुर से लिया जावे जो सोरो के पास था तो गलत है, क्योकि सोरो के विद्वानो के अनुसार रामपुर और श्यामपुर एक ही स्थान के आगे-पीछे पडे हुए दो नाम थे, और नददास ने रामपुर को वदलकर श्यामपुर कर दिया था—और वे ऐसा क्यो न करते जव उनके चचेरे भाई तुलसीदास ने उनके श्याम की मूर्ति राम की मूर्ति मे परिवर्तित कर दी थी।"[1] इस आक्षेप का प्रत्याख्यान दुष्कर है।

(५) उपर्युक्त छप्पयो के आगे दस दोहो मे कृष्णदास-रचित 'कृष्णदासवसावली' भी दी हुई है। उसकी लिखावट शेप प्रति की लिखावट के समान है। वह 'वशावली' मुरलीधर चतुर्वेदी के 'रत्नावलीचरित' के अत मे भी समिलित है। उसके अनुसार कृष्णदास की वशावली इस प्रकार है
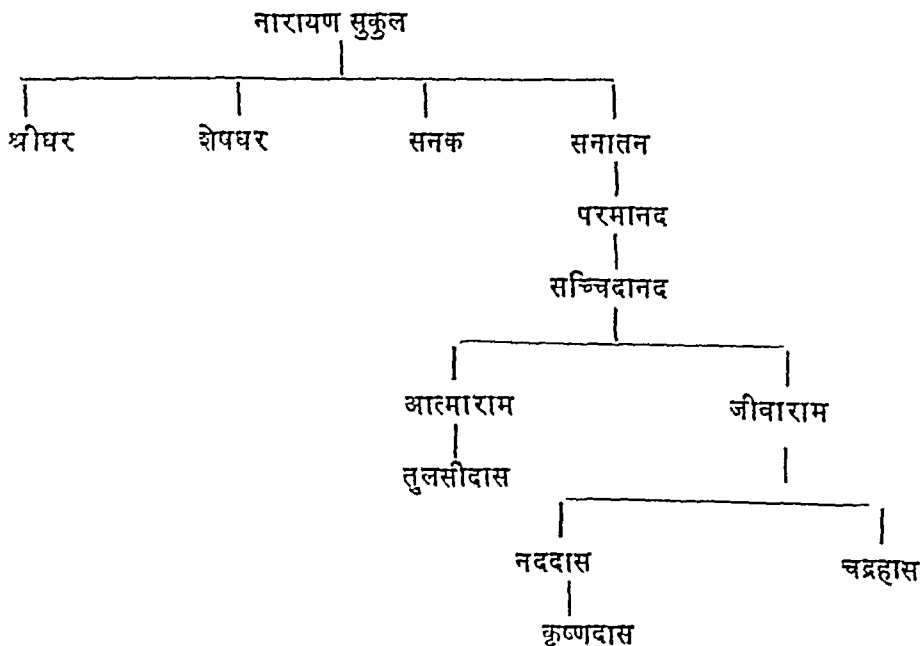
डॉ० गुप्त का कथन है कि 'वसावली' उसी लेखक द्वारा वाद मे लिखी गयी है, क्योकि स्याही कुछ गाढी है और अक्षर कुछ छोटे हैं। मुद्रित 'सूकरक्षेत्र माहात्म्यभाषा' मे मुरलीधर चतुर्वेदी के छप्पय और 'कृष्णदासवसावली' सकलित नही हैं। लिखावट

१. तुलसीदास, पृ० १०६

'सूकरक्षेत्रमाहात्म्यभाषा' की भाँति ही उस युग की शैली से भिन्न है। उसमे नददास को 'वल्लभकुलवल्लभ' कहा गया है। "नददास 'वल्लभ-कुल-वल्लभ' कैसे हुए ? सोरो के अन्य साक्ष्यो के अनुसार और इस 'वसावली' के अनुसार भी वे तो सनाढ्यशुक्ल-कुल-वल्लभ थे।"[१]

(६) स० १८२६ मे रचित रत्नावलीचरित की दो प्रतियाँ प्राप्त है। एक प्रति उसके मूल लेखक मुरलीधर चतुर्वेदी की हस्तलिखित है। दूसरी मुरलीधर के शिष्य रामवल्लभ मिश्र द्वारा स० १८६४ मे की गयी 'रत्नावलीचरित' की प्रतिलिपि है जिसको 'रतनावली' नाम दिया गया है। प्रतिलिपि मे मूल के कुछ पद्य छोड दिये गये हैं। मुरलीधर चतुर्वेदी के छ छप्पयो मे से केवल तीन का सकलन किया गया है।

डॉ० गुप्त ने स० १८६४ वाली प्रतिलिपि (रतनावली) की जाँच करके खटकने वाली बातो का निर्देश किया है।[२] उसमे 'ख' आधुनिक 'ख' की भाँति ही लिखा गया है, प्राचीन प्रतियो मे पाये जाने वाले 'ष' की भाँति नही है। सारी प्रति मे 'न्' का प्रयोग अनुस्वार की ही भाँति किया गया है। 'रतनावली' के दो सस्करण प्रकाशित हुए हैं। एटा वाले सस्करण के अत मे चार छप्पय दिये हुए है, जिनमे से चौथा छप्पय 'रतनावली' की हस्तलिखित प्रति मे नही है। रत्नावली के विषय मे असभव और अविश्वसनीय बातें कही गयी है—ग्यारह वर्ष की आयु मे ही व्याकरण, कोश, वाल्मीकि-रामायण, पिंगल-शास्त्र आदि का ज्ञान प्राप्त करके वह काव्य-रचना मे अभ्यस्त हो गयी। ये सब बाते उसकी अप्रामाणिकता प्रकट करती हैं।

आधुनिकता-सबधी आपत्ति को निराधार बनाते हुए डॉ० भारद्वाज[३] ने थेघ (सोलहवी शती), हरिराम व्यास (सत्रहवी शती), सूर और तुलसी की रचनाओ के साथ 'रतनावली' की सोदाहरण तुलना करके दिखलाया है कि उसकी छद-भाषा-शैली उक्त कवियो की रचना-शैली के समान ही है। सस्करणो के विषय मे डॉ० गुप्त का 'कथन वस्तुत सत्य है, किंतु शकाओ के बीच मे वह कुछ भ्रमोत्पादक हो गया है'। वास्तविकता यह है कि रामवल्लभ मिश्र ने 'रतनावली' मे मूल 'रत्नावलीचरित' के साथ दिये गये छ छप्पयो मे से केवल तीन को ग्रहण किया। उक्त प्रकाशित सस्करण के सपादक ने इन तीन छप्पयो के अतिरिक्त चौथा छप्पय भी समिलित कर लिया। 'या तो उन्हे ऐसा नही करना चाहिए था, अथवा उन्हे पाद-टिप्पणी दे देनी चाहिए थी। शकाकार ने इस ओर इशारा करके अच्छा ही किया।'

(७) 'दोहारतनावली' की दो प्रतियाँ हैं। उसमे तुलसीदास की कथित पत्नी रत्नावली द्वारा लिखित २०१ दोहो का सग्रह है। उनमे विविध विषयो का निरूपण है। मुख्य उद्देश्य स्त्री-शिक्षा है। कुछ दोहे तुलसी के जीवनवृत्त पर भी प्रकाश डालते हैं।

डॉ० गुप्त को उसकी प्रामाणिकता मे सदेह है।[४] उनकी सोरो-यात्रा के अवसर पर

---

१ तुलसीदास, पृ० १०९

२ तुलसीदास, पृ० ९५-९६, ९९, १०९

३. गोस्वामी तुलसीदास, पृ० २३१-३३

४. तुलसीदास, पृ० १००, ११०-१२

उसकी कोई प्रति उन्हे देखने को नही दी गयी। उसकी अतरग परीक्षा से विदित होता है कि उसकी विचारधारा और भाषा ऊटपटाग है। परमार्थ-पथ-गामी विरक्त पति के लिए 'काग उडाना' अश्रुतपूर्व है। परसर्ग-रहित 'मो मन' का प्रयोग शोचनीय है। 'अगिनि' के रहते हुए 'तूल' और 'चकमक' को आवश्यक बताना हास्यास्पद है। यह बात अविश्वसनीय प्रतीत होती है कि "अपने वृद्ध विरक्त चाचा को वापस बुलाकर गृहस्थी मे लगाने के लिए कृष्णदास दूर देश काशी गये, किन्तु अपेक्षाकृत बहुत निकटवर्ती और कम अवस्था के अपने विरक्त पिता को गृहस्थी मे लगाने के लिए वापस बुलाने वे कभी नही गये।"

डॉ० भारद्वाज का उत्तर है कि 'यदि कोई वस्तु शकाकार को देखने को न मिल सकी तो क्या वह ससार मे ही नही थी?' अन्य विद्वानो ने 'दोहारतनावली' की जाँच की है और उसे प्रामाणिक माना है। डॉ० दीनदयालु गुप्त ने दो बार उसकी परीक्षा करके उसकी प्रामाणिकता का स्थापन किया है।[1]

(८) रत्नावली लघु दोहासग्रह की दो प्रतियाँ हैं। उक्त 'सग्रह' मे 'दोहा-रतनावली' के चुने हुए १११ दोहो का सकलन है। अत 'दोहारतनावली' के सबध मे डॉ० गुप्त द्वारा उपस्थित की गयी आपत्तियाँ उस पर भी लागू होती हैं। पहली प्रति की अविश्वसनीयता के दो विशिष्ट कारण बताये गये हैं। उसकी लिखावट आधुनिक है, आधुनिक 'ख' की भाँति 'ख' लिखा गया है, हाशियो पर लाल-काली स्याही से बेल-बूटे बनाये गये हैं, और उसमें दी गयी प्रतिलिपि-काल की तिथि गणना मे अशुद्ध ठहरती है। परतु, दूसरी प्रति की तिथि गणना से शुद्ध है।

(९) भ्रमरगीत नददास द्वारा रचित 'भ्रमरगीत' की प्रतिलिपि के दो खडित पत्र उपलब्ध हैं। पुष्पिका भी खडित है। उसमे दी गयी वश-परपरा इस प्रकार है
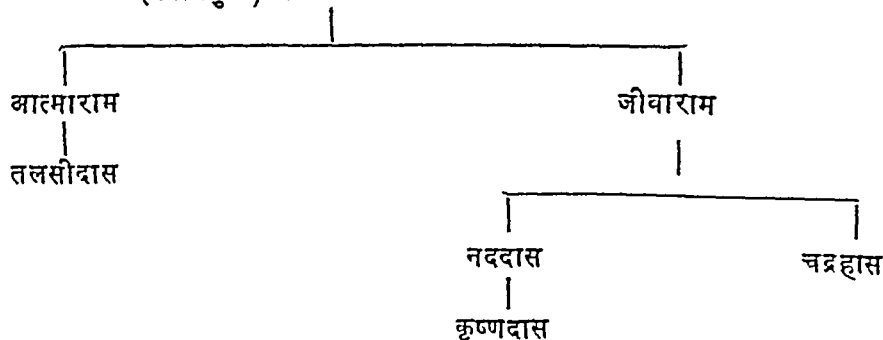
कृष्णदास के शिष्य बालकृष्ण की आज्ञा से व्रजचद ने 'माघ'''ज चद्रवार सवत् १६७२' को 'भ्रमरगीत' की प्रतिलिपि की।

उसकी प्रामाणिकता के सबध मे डॉ० गुप्त की वक्रोक्ति है—'इसमे ध्यान देने की बात यह है कि प्रति के प्रतिलिपिकार को अपना और अपने गुरु का नाम देना ही पर्याप्त नही ज्ञात हुआ, गुरु के पिता, गुरु के चाचा, गुरु के पितामह, एक दूसरी शाखा से

१. गोस्वामी तुलसीदास, पृ० २३३-३४, हिंदुस्तानी, जनवरी, १९४१ ई०, पृ० २६६

गुरु के चाचा, उन चाचा के पिता और उन चाचा के भी पितामह, दोनो शाखाओ के भारद्वाजगोत्री सनाढ्य शुक्ल और श्यामपुरी होने और फिर गुरु के पुत्र तथा और कुछ बातो का उल्लेख भी उसे आवश्यक प्रतीत हुआ है। फिर भी हिंदी-जगत् के दुर्भाग्य से जहाँ पर तिथि आती थी, वहाँ पर सवत्, मास और दिन मात्र शेष रहे, पक्ष और तिथि के स्थान पर कागज़ निकल गया। पहले ही प्रकाशित पुष्पिकाएँ क्या कम आँखें खोलने वाली थी ? किंतु इस पुष्पिका ने तो अपनी व्यापकता से पूर्ववर्ती सोरो की प्राय समस्त सामग्री को अनावश्यक कर दिया। पुष्पिकाओ की ऐसी उदार प्रथा ससार मे अन्यत्र न मिलेगी। ऐसा लगता है कि सोरो के तुलसीदास और नददास ने जो काम स्वत नही किया, उसके लिए उन्होने अपने बेटो-भतीजो को और इन बेटो-भतीजो ने अपने शिष्य-प्रशिष्यादि को उपदेश कर दिया था, ताकि उनके दिवगत हो जाने के बाद भी उनके जन्म-स्थान, जाति-पाँति, वश-परपरादि का इतिहास केवल काव्य-सग्रहो, चरितो, अन्य प्रकार की कृतियो और वर्षफलो मे ही नही, पुष्पिकाओ मे भी सुरक्षित रहे।"[1] तात्पर्य यह है कि 'भ्रमरगीत' की उक्त प्रतिलिपि तिरस्करणीय है।

(१०) **वर्षफल** कृष्णदास ने स० १६५७ मे फलित-ज्योतिष पर 'वर्षफल' नाम की पुस्तिका लिखी थी। उसकी प्रतिलिपि रुद्रनाथ ने स० १८७२ मे की। उसमे तुलसी के जीवन-वृत्त से सबध रखने वाली दो बातें कही गयी हैं १ नददास ने रामपुर का नाम बदलकर श्यामपुर कर दिया था, और २ स० १६५७ की बाढ मे रत्नावली की जन्मभूमि 'बदरी' गगा-मग्न हो गयी तथा उसका कोई चिह्न शेष न रहा।

डॉ० गुप्त ने 'वर्षफल' की प्रामाणिकता का प्रत्याख्यान किया है। एतदर्थ उन्होने तीन तर्क दिये हैं—(क) उसमे दी गयी प्रतिलिपि-तिथि गणना से शुद्ध नही ठहरती। (ख) उसके रचना-काल स० १६५७ के पूर्व ही नददास ने रामपुर को श्यामपुर बना दिया था। परतु स० १७१५ के आस-पास लिखित 'भक्तमाल' मे नाभादास ने नददास को 'रामपुर ग्राम निवासी' कहा है। यदि 'वर्षफल' की बात सत्य होती तो वे नददास को 'श्यामपुर ग्राम निवासी' कहते। (ग) "बदरिया के जलप्लावन का उपर्युक्त इतिहास भी अन्यत्र कही नही मिलता, केवल इसी सोरो-सामग्री मे मिलता है।"[2]

(११) **सेवादास की टीका :** नाभादास के 'भक्तमाल' पर प्रियादास ने 'भक्ति-रसबोधिनी' नाम की टीका लिखी थी। उस टीका पर सेवादास ने टीका (टिप्पणी) लिखी है। उसके एक छद मे कहा गया है कि घर को सूना देखकर तुलसीदास (अपनी पत्नी) रत्नावली के दर्शन के लिए व्याकुल हो उठे, वे सूकरखेत से चल पडे, शव पर सवार होकर गगा को पार किया और अपनी ससुराल बदरी पहुँचकर लोगो को नीद से जगाया। शव पर सवार होकर गगा पार करने का वर्णन ही उक्त टीका की अप्रामाणिकता सिद्ध करने के लिए पर्याप्त है।

(१२) **तुलसीप्रकास** इसके रचयिता अविनाश राय हैं। पुस्तक मे दिया हुआ रचना-काल स० १६७७ है। प० वेदव्रत शर्मा और सोरो की तुलसी-समिति द्वारा इसके

१ तुलसीदास, पृ० १२३-२४
२. तुलसीदास, पृ० १२४

दो सस्करण क्रमश १६५३ और १६५४ ई० मे प्रकाशित हुए। इसमे कुल २०१ पद्य हैं। इसकी कथावस्तु का साराश इस प्रकार है

१ सनाढ्य-सुकुल सच्चिदानद सोरो के निकटस्थ रामपुर गाँव के वासी थे। उनके दो पुत्र थे—आत्माराम और जीवाराम।

२ आत्माराम का विवाह तारी मे अयोध्यानाथ दुबे की कन्या हुलसी से हुआ।

३ गृह-कलह के कारण आत्माराम अपनी माता और पत्नी के साथ सोरो के योगमार्ग मोहल्ले मे अपने नाना के खाली मकान मे रहने लगे।

४ स० १५६८ मे श्रावण शुक्ला सप्तमी, शुक्रवार को तुलसी का जन्म हुआ।

५ हुलसी की तुलसी-भक्ति के कारण पुत्र का नाम 'तुलसीदास' रखा गया।

६ जब तुलसी दस महीने के थे तब हैजे से हुलसी का देहात हो गया। पद्रह दिन बाद आत्माराम भी चल बसे।

७ कुछ समय बाद जीवाराम की मृत्यु हो जाने पर आर्थिक सकट आ पडा। तुलसी 'राम' का नाम लेकर भीख मांगने लगे। लोगो ने उनका नाम 'रामबोला' रख दिया।

८ स० १५७६ मे आचार्य नृसिह की दृष्टि उन पर पडी। वे उन्हे अपनी पाठशाला में ले आये, उनके पढने और जीविका का प्रबध कर दिया।

९ तुलसीदास और नददास ने नृसिह जी से व्याकरण, कोश, काव्य, पिंगल, रामायण, गणित, दर्शनशास्त्र और पुराण का अध्ययन किया। सीताराम-मदिर के हरिहर स्वामी से सगीत सीखा।

१० स० १५८९ मे तुलसी का विवाह बदरिका गांव के दीनबधु पाठक की द्वादशवर्षीया कन्या रत्नावली से हुआ। वह काव्य-पुराण मे विशेष रुचि रखती थी।

११ तुलसीदास ने रत्नावली एव नददास के साथ अयोध्या, प्रयाग तथा काशी की यात्रा की। काशी मे कथा बाँचकर यश और धन प्राप्त किया।

१२ तुलसी रामभक्त थे और नददास कृष्णभक्त। सोरो मे रहकर दोनो भगवद्‌भजन करते, काव्य रचते, कथा बाँचते और आनदपूर्वक खेती कराते थे।

१३ स० १६०४ मे रत्नावली के पुत्र हुआ। उसका नाम तारापति रखा गया। अडतीस महीने बाद उसकी मृत्यु हो गयी। समय ने दपति के घाव को भर दिया। तुलसी अपनी पत्नी मे अतिशय अनुरक्त रहने लगे।

१४ एक दिन उनसे आज्ञा लेकर रत्नावली अपने भाई के साथ नैहर चली गयी। वे स्वय कथा बाँचने निकल पडे। ग्यारहवें दिन लौट कर बडे बेचैन हुए। अँधेरी रात मे तैर कर गगा पार की और ससुराल पहुँच गये। एकात मे पत्नी ने पति से प्रेमपूर्वक कहा—'मेरे प्रेम से आपने गगा पार कर ली, भगवत्प्रेम से लोग भवसागर पार हो जाते हैं।'[1]

१५ उन्हें निद्रा-मग्न समझकर रत्नावली चली गयी। वे चुपके से उठे और घर से बाहर

१ मो तन प्रेम करी सरि पार करें हरि प्रेम तरें भव प्रानी। १०६

हो गये। सवेरा होने पर बहुत खोज की गयी, किंतु पता न चला।

१६ रत्नावली कभी भाइयो के यहाँ और कभी देवर के यहाँ रहती, फिर सोरो मे रहने लगी।

१७ तुलसी अयोध्या, प्रयाग और चित्रकूट होते हुए काशी मे रहने लगे। कुछ समय बाद पुन अयोध्या आदि तीर्थस्थानो की यात्रा करके काशी लौट आये। वे कथा बाँचते, भगवद्भजन करते और कभी-कभी तीर्थाटन किया करते थे।

१८ नददास वैराग्य लेकर व्रजवासी हो गये थे। उनसे मिलने के लिए तुलसी स० १६२६ मे मथुरा पहुँचे। नददास ने उनको सूरदास का दर्शन कराया। फिर उन्हे गोवर्धन ले गये। उन्होने वशीधर-रूप मे धनुर्धर राम का दर्शन किया।

१९ दोनो विट्ठलनाथ के दर्शनार्थ गोकुल गये। तुलसी ने उनका अभिवादन किया, उनके पुत्र रघुनाथ और पुत्रवधू जानकी को सहर्ष प्रणाम किया।

२० वही पर उन्होने 'कृष्णपदावली' की रचना की। तदनतर काशी लौट आये।

२१ स० १६३१ मे अयोध्या जाकर 'रामचरितमानस' की रचना आरभ की। चार वर्षों मे उसे पूरा किया। इस बीच वे कभी अयोध्या मे और कभी काशी मे रहे।

२२ स० १६४४ मे वे चित्रकूट-वास कर रहे थे। वहाँ से कुछ दूर यमुना के किनारे राजा नाम का एक भक्त रहता था। वह आग्रह करके तुलसीदास को अपने यहाँ ले गया। वे कुछ दिन वहाँ रहे और राजा साधु पर प्रसन्न होकर राजापुर बसाया। उसकी मृत्यु होने पर उसकी प्रस्तर-मूर्ति बनवायी और उसे हनुमान्-मदिर मे स्थापित किया।

२३ स्वय अविनाशराय ने चित्रकूट और राजा की कुटी मे तुलसीदास के दर्शन किये। एक बार एक महीने तक और दूसरी बार ढाई महीने तक उनके साथ रहे। फिर दर्शन का सौभाग्य नही मिला।

२४ तुलसीदास काशी जाकर वही रहने लगे। नददास के पुत्र कृष्णदास उन्हे बुलाने के लिए कई बार गये, किंतु वे आये नही।

२५ स० १६७७ मे अविनाश राय ने तुलसीदास का जैसा चरित गुरुजनो के मुख से सुना था और जैसा स्वय देखा था वैसा सक्षेप मे लिख दिया।

निम्नाकित कारणो से 'तुलसीप्रकास' की अप्रामाणिकता सिद्ध होती है

१. पुस्तक के दोनो प्रकाशित सस्करणो मे कई स्थलो पर पाठ-भेद है। उसकी सगति नही बैठती। इससे साफ जाहिर है कि उसमे कुछ गडबडघोटाला है।

२ उसमे तिथियो की बुरी तरह भरमार है। चौबीस मे से तीन तिथियो के सत्यापन का प्रश्न नही उठता, क्योकि उनमे तिथि-वार का उल्लेख नही है। छ तिथियाँ गणना से अशुद्ध ठहरती हैं। उनमे वह तिथि भी है जिस दिन लेखक स्वय तुलसीदास से मिला था। छोटी-छोटी बातो के सबध मे भी तिथियो का जमघट है। उनमे प्रचलित और विगत सवत्-प्रणालियो का घाल-मेल भी है। 'रामचरितमानस' और 'कृष्णगीतावली' को छोडकर किसी अन्य रचना या उसके रचना-काल का उल्लेख नही है।

३ पुस्तक का नाम भी सदेहकारक है। म० बालकराम विनायक ने १९३६ ई०

मे एक लेख[1] लिखा था। उसमे उन्होने किसी 'तुलसीतत्त्वप्रकास' का उल्लेख किया था। ऐसा लगता है कि उसी आधार पर 'तुलसीप्रकास' की उद्भावना की गयी। 'तुलसी-प्रकास' और 'तुलसीतत्त्वप्रकास' की अभिन्नता सिद्ध करने के लिए रचना के अत मे दोनो नामो का उल्लेख कर दिया गया है।[2]

४ लेखक ने तुलसी की उक्तियो को पकडकर तद्वत् निबधना की है, जैसे :

होत न भूतल भाउ भरत को। अचर सचर चर अचर करत को॥[3]

होत न जो तुलसी जग मे हिंदुआन की कानहि को धरतो।[4]

'सूर सूर तुलसी ससी' की सूक्ति का प्रचलन होने के पूर्व ही अविनाश राय ने लिख दिया था

छहरै छबीलो छिति छेत्र मे छपाकर सो।[5]

तुलसी की भावी कीर्ति का भी गान कर दिया गया है

धनि धन्य भये तुलसी जग मे कल कीरति जासु रहे थिर थाई।[6]

इन सब कारणो से 'तुलसीप्रकास' को आप्त नही माना जा सकता। यद्यपि वह सोरो के पक्ष का पोषक है तथापि उसकी अप्रामाणिकता के कारण डॉ० रामदत्त भारद्वाज ने उसका परिगणन 'भ्रात-साहित्य' के अतर्गत किया है और उसको सोरो-सामग्री का 'दिठौना' कहा है।[7]

(१३) रामपुर एटा जिले मे सोरो से डेढ मील पूर्व रामपुर नाम का एक गाँव है। कहा जाता है कि वह तुलसीदास और नददास की जन्मभूमि है। 'कृष्णदासवसावली', 'रत्नावलीचरित' आदि मे उसका उल्लेख किया गया है। "नददासजी ने कृष्ण-भक्ति के आवेश मे रामपुर का श्यामपुर नाम रख दिया था।"[8]

(१४) नरसिंह-मदिर सोरो के चक्रतीर्थ मोहल्ले मे नरसिंह का मदिर है। वहाँ पर हनुमान् की एक मूर्ति है। कहा जाता है कि उसी स्थान पर तुलसीदास एव नददास के गुरु नरसिंह का विद्याभवन था और गुरु-शिष्य उस मूर्ति की अर्चना किया करते थे।

(१५) तुलसी का मकान · सोरो के योगमार्ग मोहल्ले मे एक टूटा-फूटा कच्चा मकान है जो एक मुसलमान के अधिकार मे है। कहा जाता है कि वही पर तुलसीदास का घर था। पहले उस घर मे तुलसी की दादी की ननसाल थी। दादी अपने पुत्र, पुत्रवधू और पौत्र शिशु (तुलसी) को लेकर वहाँ चली आयी थी। वही पर तुलसी का विवाह हुआ।

---

१. 'श्रीगोस्वामी जी के नामराशि', कल्याण, अक्टूबर, १९३६ ई०
२ तुलसीप्रकास, १९८-९९
३ रामचरितमानस, २।२३७।४
४ तुलसीप्रकास, १९४
५ तुलसीप्रकास, १९८
६. तुलसीप्रकास, १९६
७ डॉ० भारद्वाज · गोस्वामी तुलसीदास, पृ० ८८-१००
८ गोस्वामी तुलसीदास, पृ० १९१

वे अपनी पत्नी रत्नावली के साथ उसी मकान मे रहे।

(१६) **सीताराम का मदिर** सोरो मे सीताराम का एक मदिर है। कहते हैं कि वहाँ पर हरिहर स्वामी नाम के एक साधु रहते थे जिन्होने तुलसीदास और नददास को सगीत की शिक्षा दी थी।

(१७) **बदरिया गाँव** कहा जाता है कि सोरो के समीप स्थित बदरिया गाँव मे तुलसी की ससुराल थी। डॉ० गुप्त का कहना है कि वहाँ पर कोई मकान तुलसीदास की ससुराल का बताया नही जाता और न ही कोई इतना पुराना मकान या मकान का अवशेष है जो तुलसी के समय का माना जा सके। वहाँ के बडे बूढो से पूछताछ करने पर उन्हे विदित हुआ कि किसी ने कभी यह नही सुना कि बदरिया मे तुलसीदास की ससुराल थी।[1] डॉ० भारद्वाज का कथन है कि तुलसी के 'श्वसुरालय वाला घर जो रामनरेश त्रिपाठी जी ने देखा था अब एक मदिर के रूप मे है। १६५७ वि० मे गगाजी मे बाढ आयी थी जिसमे बदरिया डूब गयी, अत वर्तमान मकान को प्रतीक-मात्र समझना चाहिए।'[2]

(१८) **नरसिंह के वशज** कुछ समय पूर्व सोरो मे रगनाथ चौधरी विद्यमान थे। डॉ० गुप्त, डॉ० भारद्वाज आदि विद्वान् उनसे मिल चुके हैं। रगनाथ चौधरी को तुलसी के गुरु नरसिंह चौधरी का वशज बताया जाता है। डा० गुप्त ने लिखा है कि "उनसे प्रश्न करने पर ज्ञात हुआ कि उन्हे केवल आठ पूर्वपुरुषो के नाम ज्ञात हैं, और इनमे से नरसिंह चौधरी नही है।"[3] इसके विरुद्ध, डा० भारद्वाज ने नरसिंह चौधरी से लेकर रगनाथ के पुत्र दशरथ तक की पूरी वश-परपरा प्रस्तुत की है।[4]

(१९) **नंददास के वशज** डॉ० भारद्वाज ने बतलाया है कि वर्तमान प० बाबूराम शुक्ल और उनके भतीजे श्री शिवनारायण शुक्ल नददास के वशज हैं। नददास की 'वशावली अभी तक प्राप्त नही हो सकी है, किंतु सुना गया है कि वह विद्यमान है'।[5]

(२०) **किंवदतियाँ** सोरो और उसके आस-पास मे निम्नाकित जनश्रुतियाँ पायी जाती हैं जिनसे सोरो-पक्ष का समर्थन होता है

(क) कहते हैं कि तुलसीदास का घर सोरो के योगमार्ग मोहल्ले मे कसाइयो के निकट था। प० रामनरेश त्रिपाठी को इस प्रकार के कई दोहे सुनने को मिले थे। उनमे से एक दोहा यह है

तुलसी तेरी झोपडी गलकटियो के पास।
जौन कढै सोई भरै तू कत होत उदास॥[6]

---

१ तुलसीदास, पृ० १०२

२ गोस्वामी तुलसीदास, पृ० १९३

३. तुलसीदास, पृ० १०२

४. गोस्वामी तुलसीदास, पृ० १९३-९४

५. गोस्वामी तुलसीदास, पृ० १९४

६. तुलसीदास और उनका काव्य, पृ० ७०, उक्त दोहे का किंचित् भिन्न रूप है—
तुलसी घर मरघट्ट में गलकटियन के पास।
अपनी करनी आप सँग तू कत होत उदास॥

डॉ० गुप्त की आपत्ति है कि "यह दोहा तो कबीर का प्रसिद्ध है और 'तुलसी-ग्रथावली' मे मिलता भी नही है।"[1]

(ख) लोगो का विश्वास है कि सोरो के जिस मकान मे रत्नावली अपने पति तुलसीदास के साथ रहती थी उसकी मिट्टी लगाने से कर्णमूल रोग दूर हो जाता है। अब भी लोग आरोग्य-लाभ के लिए उस स्थान से मिट्टी ले जाया करते हैं।

(ग) नरसिंह-मदिर के विषय मे कहा जाता है कि वहाँ पर तुलसी के गुरु नरसिंह की पाठशाला थी। मदिर के सामने बरगद का एक वृक्ष है जो तुलसीदास के समय के वट-वृक्ष की जटा से उत्पन्न बताया जाता है। मदिर के समीप एक कुआँ है जिसको नरसिंह जी का कुआँ कहते हैं।

(घ) तारी (एटा) की, एक जनश्रुति के अनुसार, वहाँ तुलसीदास का ननिआउर था।

[ग] बहिस्साक्ष्य: जनश्रुतियाँ

महापुरुषो का जीवन असाधारण होता है। चमत्कारो और अतिशयोक्तियो मे जनसाधारण को विशेष रस मिला करता है। इसलिए असामान्य महापुरुषो के चरित्र के चारो ओर अलौकिक कहानियो का चकाचौंध कर देने वाला प्रभा-मडल तैयार हो जाया करता है। कभी देखी-सुनी बातो को अतिरजना तथा चमत्कार के पुट से आकर्षक बना दिया जाता है, और कभी चरित-नायक की दिव्यता प्रकट करने के लिए अनदेखी-अनसुनी असभव घटनाओ की उद्भावना कर ली जाती है। कभी-कभी प्रयत्न-लाघव-प्रेमी लोग अन्य महात्माओ की लोक-प्रसिद्ध करामातो को अपने चरित-नायक से सबद्ध कर दिया करते हैं। परात्परवाद की भावना भी कुछ रग लाती है। अधभक्त अपने श्रद्धेय पुरुष को महत्तम सिद्ध करने के लिए उसे भू पर से उठाकर ऊपर के कल्पना-लोक मे प्रतिष्ठित कर देते हैं।

तुलसीदास महापुरुष थे, महात्मा थे, महाकवि थे। वे उस मध्ययुग मे हुए थे जब ज्ञान की अपेक्षा भक्ति अधिक प्रभावशालिनी थी, जब तर्क की अपेक्षा श्रद्धा-विश्वास का अधिक समादर था। अतएव उनके यश प्रसार के साथ ही उनके सबध मे बहुत-सी सभाव्य-असभाव्य कथाएँ चल पडी।

विभिन्न लेखको एव सपादको को तुलसी-सबधी जो जनश्रुतियाँ, दतकथाएँ अथवा किवदतियाँ विभिन्न स्रोतो से उपलब्ध हुई उन्हे उन्होने अपने द्वारा लिखित एव सपादित कृतियो मे निबद्ध कर दिया है। इसलिए आज के अध्येता को कभी-कभी जनश्रुति और ऐतिहासिक तथ्य का अतर समझने मे कठिनाई होती है। वह जनश्रुति को ही प्रमाण मान बैठता है। यद्यपि यह बात सही है कि जनश्रुतियाँ शून्य मे नही बना करती तथापि इससे यह सिद्ध नही होता कि वे सत्य ही हैं। मिथ्या भी निराधार नही होती, उसका आधार भी कोई-न-कोई सत्य ही होता है। जगन्मिथ्यावादी ब्रह्मवादी भी सत्य ब्रह्म

१ तुलसीदास, पृ० १००

को मायिक जगत् का अधिष्ठान मानकर उसकी सत्ता का अध्यारोपापवादन्याय से निराकरण करता है। अतएव सत्य-मूल से उत्पन्न मिथ्या-जनश्रुतियो का वाक्यार्थ-ग्रहण अवाछनीय है। उनके अभिप्राय को अन्य प्रमाणो के प्रकाश मे ही महत्त्व दिया जा सकता है। जो जनश्रुति प्रत्यायक साक्ष्यो द्वारा पुष्ट नही हैं उसका मूल्य नगण्य है।

प्रस्तुत सदर्भ मे तुलसी-सबधी कुछ जनश्रुतियाँ प्रस्तुत की जा रही है

१. एक जनश्रुति के अनुसार तुलसीदास का जन्म राजापुर मे हुआ था। जन्म के समय उनके बत्तीसो दाँत थे, वे रोये नही और 'राम' का उच्चारण किया। उनकी माता हुलसी चौथे दिन स्वर्ग सिधारी। हुलसी की दासी मुनियाँ की सास चुनियाँ ने शिशु तुलसी का पालन-पोपण किया। उसकी मृत्यु के बाद दो वर्ष तक पार्वती जी ने तुलसी को खिलाया-पिलाया। शिव की प्रेरणा से नरहर्यानद उन्हें अयोध्या ले गये। सरयू-घाघरा के सगमपर 'सूकरखेत' मे उन्होने तुलसी को राम-कथा सुनायी। विद्वान् होकर तुलसी राजापुर लौटे। उन्होंने कथावाचक की वृत्ति अपनायी। विवाह करके पाँच वर्ष तक 'रस-केलि' मे लीन रहे। अपनी अनुपस्थिति मे पत्नी के नैहर चले जाने पर अत्यत विरह-व्याकुल हुए। रात को ही यमुना पार कर ससुराल पहुँचे। पत्नी के उपदेश से उनके मन मे वैराग्य जाग उठा। वे चल पडे। बहुत मनाने पर भी वापस नही लौटे। शोक-विह्वल पत्नी का उसी दिन प्राणात हो गया।

२ एक दूसरी जनश्रुति के अनुसार तुलसीदास ने सोरो-क्षेत्र मे जन्म लिया था। वे आत्माराम शुक्ल और हुलसी के पुत्र थे। जन्म के दस मास बाद माता-पिता का देहात हो गया। उनका पालन पोपण दादी ने किया। पिता और चाचा की मृत्यु के कारण उन्हे आर्थिक सकट झेलने पडे। वे 'राम' नाम बोला करते थे, इसलिए उनका मुँहबोला नाम 'रामबोला' हुआ। सोरो के चक्रतीर्थ मोहल्ले मे नरसिंह जी की पाठशाला मे तुलसी और उनके चचेरे भाई नददास ने शिक्षा प्राप्त की। गगा के उस पार बदरी ग्राम के दीनबधु पाठक ने अपनी कन्या रत्नावली का विवाह तुलसी से किया। उनके एक पुत्र हुआ। उसका नाम तारापति रखा गया। उसकी अकाल-मृत्यु हो गयी।

तुलसी पुराण-कथा-वाचक थे। एक बार वे कथा बाँचने गये हुए थे। पत्नी नैहर चली गयी। उन्हे अकेलापन बहुत अखरा। वे नदी पार कर ससुराल पहुँचे। पत्नी ने उन्हे भगवत्प्रेम का उपदेश दिया

अस्थि चर्म मय देह मम तामैं जैसी प्रीति।
तैसी जो श्री राम महँ होति न तौ भवभीति॥

उसका इतना प्रभाव पडा कि वे विरक्त हो गये। फिर नही लौटे।

३ एक बार तुलसी की पत्नी ने उनके पास यह दोहा लिखकर भेजा

कटि की खीनी कनक सी रहत सखिन सँग सोय।
मोहि फटे की डर नहीं अनत कटे डर होय॥

इसका उन्होने इस प्रकार उत्तर भेजा था

कटे एक रघुनाथ सँग बाँधि जटा सिर केस।
हम तो चाखा प्रेम रस पतिनी के उपदेस॥

४. तुलसी के विरक्त हो जाने के बाद उनकी पत्नी अपने मायके मे ही रहती थी। वृद्धावस्था मे एक बार भूल से तुलसीदास अपनी ससुराल मे पहुँच गये। भोजन कराते समय पत्नी ने पति को कुछ कुछ पहचान लिया। सवेरे जब तुलसी चलने लगे तब पत्नी ने वास्तविकता प्रकट करते हुए उनके साथ चलने की अनुमति मांगी। तुलसी ने इसका निषेध किया। तब पत्नी ने कहा

खरिया खरी कपूर सब उचित न पिय तिय त्याग।
कै खरिया मोहिं मेलि कै विमल विवेक विराग।[1]

इस पर तुलसी अपने झोले की सारी सामग्री ब्राह्मणो को बाँटकर अकिंचन हो गये।

५ ऐसी प्रसिद्धि है कि तुलसीदास सोरो के रात थे। एक समय वे उस स्थान पर आये जहाँ आजकल राजापुर स्थित है। उन्होने 'राजापुर' को बसाया। एक किवदती के अनुसार वहाँ 'राजा' नामक एक साधु रहते थे। वे तुलसी के भक्त थे। उन्ही के नाम पर तुलसी ने 'राजापुर' की नीव डाली।

६ कहते हैं कि जब तुलसीदास राजापुर से काशी जाने लगे तब वे 'रामचरित-मानस' की एक स्वहस्तलिखित प्रति अपने शिष्य गणपति को दे गये थे। वह प्रति राजापुर के तुलसी-मदिर मे रखी रहती थी। एक पुजारी अथवा दूसरी किवदती के अनुसार चोर उस प्रति को चुरा ले गया। शिष्यो को स्वप्न हुआ। उन्होने उसका पीछा किया। डर के मारे उसने पुस्तक नदी मे फेंक दी। वह नदी मे से निकलवायी गयी। उसके अधिकाश पन्ने गल गये थे। केवल अयोध्याकाड बच गया था। सुरक्षा के विचार से वह पुस्तक एक उपाध्यायजी के यहाँ रखी रहने लगी। वह उनके वशजो के पास आज भी सुरक्षित है।

७. विल्सन ने किसी जनश्रुति के आधार पर बतलाया है कि तुलसीदास सरवरिया ब्राह्मण थे। वे चित्रकूट के समीप हाजीपुर के निवासी थे। वयस्क होने पर काशी मे रहने लगे। उस नगर के राजा ने उन्हे दीवान नियुक्त किया। तुलसी के आध्यात्मिक गुरु जगन्नाथदास और नाभादास थे, जो अग्रदास के शिष्य थे। उन्होने अपने गुरु नाभादास का वृंदावन के समीप गोवर्धन तक अनुसरण किया। बाद मे ३१ वर्ष की आयु में उन्होंने 'रामायण' का हिंदी-भाषातर आरभ किया।

८ आजकल अयोध्या मे जिस स्थान को 'तुलसी-चौरा' कहते हैं वहाँ पर किसी समय एक प्रसिद्ध योगिराज मुनि ने आसन जमाया था। जब तुलसीदास काशी से अयोध्या पधारे तब योगिराज ने उन्हे अपने गुरु का आदेश सुनाकर वह स्थान उन्हे सौंप दिया, और अपने शरीर को योगाग्नि मे भस्म कर दिया। गोसाईं जी ने स० १६३१ मे रामनवमी के दिन 'रामचरितमानस' की रचना उसी स्थान पर आरभ की और स० ३३ मे राम-विवाह की तिथि को उसे समाप्त किया। तुलसी ने वहाँ पर कुछ मूर्तियाँ प्रतिष्ठा-पित की थी। मिर्ज़ा मानसिंह ने फर्श और छत्री बनवायी थी।

९ काशी मे तुलसीदास बहुत समय तक प्रह्लादघाट पर गगाराम ज्योतिषी के यहाँ ठहरे थे। 'रामाज्ञाप्रश्न' के इस दोहे मे उनका निर्देश किया गया है

---

१ दोहावली, २५५

सगुन प्रथम उनचास सुभ तुलसी अति अभिराम।
सब प्रसन्न सुर भूमिसुर गो गन गंगाराम ॥[1]

कहा जाता है कि गगाराम के उत्तराधिकारियो के पास तुलसी का जो चित्र है वह जहाँगीर का बनवाया हुआ है।

१० गगाराम राजाश्रित ज्योतिषी थे। राजा ने सुना कि शिकार के लिए गये हुए राजकुमार को शेर ने फाड डाला है। उसने गगाराम को बुलाकर कहा—सच्चा हाल बताओ, अन्यथा मृत्युदड मिलेगा। वे घबराकर तुलसी के पास पहुँचे। तुलसी ने 'रामशलाका' बनाकर उत्तर दिया कि राजकुमार कल सकुशल लौट आएँगे। गगाराम ने जाकर राजा को यही उत्तर दिया। वे बदी बना लिये गये। राजकुमार लौट आया। राजा ने प्रसन्न होकर गगाराम को एक लाख पुरस्कार दिया। उन्होने सारा धन तुलसी को दे देना चाहा। बहुत आग्रह करने पर तुलसी ने बारह हजार रुपये लिये और उनसे हनुमान् के १२ मदिर बनवाये जिनमे से सकटमोचन और अस्सी के मदिर विशेष प्रसिद्ध हैं।

११. काशी मे कुछ समय तक तुलसी हनुमान् फाटक पर रहे थे। वहाँ पर भक्तो की भीड होने लगी। कट्टर नवमुसलमानो को यह बात असह्य लगी। वे उपद्रव मचाने लगे। उनकी परेशानी से बचने के लिए तुलसीदास गोपाल-मदिर के अहाते मे रहने लगे। उसकी एक कोठरी उनकी बैठक थी। उसी मे बैठकर उन्होने 'विनयपत्रिका' के बहुत से गीत लिखे। वहाँ पर वल्लभसप्रदाय के गोसाइँयों ने उन्हे तग किया। उस मदिर को छोडकर वे अस्सी घाट पर रहने लगे। कहते हैं कि तुलसी के मित्र टोडर अस्सी घाट पर एक मदिर बनवाकर उन्हे आग्रहपूर्वक वहाँ ले गये थे। अत गोसाइँयो ने उनसे बैर ठान लिया। एक बार तुलसी व्रज-यात्रा पर गये हुए थे। लौटने पर सुना कि उनके परममित्र रामभक्त टोडर को द्वेषी गोसाइंयो ने मार डाला है। उनकी मृत्यु पर शोक-सतप्त होकर उन्होने कई दोहे लिखे थे।[2]

१२. अस्सी घाट पर एक अशत प्राचीन इमारत है। वहाँ पर एक जोडी खडाऊँ, एक चित्र और लकडी का एक टुकडा है। खडाऊँ और चित्र तुलसी के बताये जाते हैं। टुकड़ा उस नाव का कहा जाता है जिस पर चढकर वे गगा-पार जाया करते थे।

१३ काशी में प्रह्लाद-घाट पर रहते हुए तुलसीदास शौच के लिए गगा पार जाया करते थे। लौटती बार बचा हुआ जल आम के एक वृक्ष की जड मे डाल दिया करते थे। उस वृक्ष मे एक प्रेत का निवास था। जल से उसकी तृप्ति होती थी। एक दिन प्रसन्न होकर उसने तुलसीदास से वर माँगने को कहा। वे बोले—"मैं भगवान् राम का दर्शन चाहता हूँ।" उसने उत्तर दिया—"मैं असमर्थ हूँ, किंतु उपाय बताता हूँ। रामायण की कथा सुनने के लिए अमुक स्थान पर कोढी के वेश मे हनुमान् आया करते हैं। उन्हे पकडो, दर्शन करा देंगे।" तुलसी ने वही किया। कोढी के चरणों से लिपट गये। उसे कहना पडा—"चित्रकूट जाओ दर्शन मिल जाएगा।" वे चित्रकूट जाकर मदिर के पास रहने

१ रामाज्ञाप्रश्न, १।७।७

२ तुलसी उर थाला विमल टोडर गुनगन बाग।
ये दोउ नैनन सींचिहौं समुझि समुझि अनुराग ॥

लगे। एक दिन उन्होने दो अश्वारोही श्याम-गौर राजकुमारो को अहेरी के वेश मे जाते देखा। कोई कहता है कि वे उन्हे मुग्ध दृष्टि से देखते रह गये, कोई कहता है कि उन्हे देखकर दृष्टि फेर ली। हनुमान् ने ब्राह्मण वेश मे (किसी-किसी के अनुसार सपने मे) आकर तुलसी को बताया कि वे घुडसवार राम लक्ष्मण थे।

१४ विरक्त तुलसीदास काशी मे रहने लगे थे। वहाँ पर उन्होने संस्कृत मे काव्य-रचना करना आरभ किया। वे दिन मे जो कुछ लिखते थे वह सब रात मे उनके सो जाने पर गायब हो जाया करता था। एक सप्ताह तक यह अद्भुत घटना घटती रही। वे बडे परेशान हुए। शिवजी ने स्वप्न मे उन्हे आदेश दिया कि लोक-भाषा मे रचना करो संस्कृत के चक्कर मे मत पडो। तब उन्होने अवधी मे 'रामचरितमानस' की रचना की।

१५ तुलसी काशी मे प्रह्लाद-घाट पर रहते थे। एक रात चोर चोरी करने आये। उन्होने देखा कि एक साँवला धनुर्धर सजग होकर पहरा दे रहा है। वे लौट गये। दूसरी रात फिर आये। फिर वही पहरेदार दिखायी पडा। सवेरे उन्होने तुलसी से उस प्रहरी के विषय में पूछा। भगवान् राम के कष्ट का स्मरण कर तुलसी की आँखो मे आँसू आ गये। उन्होने अपना सब कुछ लुटा दिया। उनकी महिमा से अभिभूत चोर भी उनके शिष्य हो गये।

१६ एक बार वे कही से अकेले आ रहे थे। अँधेरी रात थी। चोरो ने उन्हे घेर लिया। आत्मरक्षा का दूसरा उपाय न देखकर उन्होने हनुमान् जी का स्मरण किया। हनुमान् जी ने अपना विकराल रूप दिखाकर चोरो को भगा दिया। उस समय का वर्णन कवि के निम्नाकित दोहे मे मिलता है

वासर ढासनि के ढका रजनी चहुँ दिसि चोर।
सकर निज पुर राखिये चितै सुलोचन कोर॥[1]

१७ एक बार रास्ते मे आधी रात के समय चोरो से उनकी भेंट हो गई। एक चोर ने कडक कर पूछा—तुम कौन हो? उन्होने नम्रता से उत्तर दिया—भाई, जो तुम हो सो मैं हूँ। फिर प्रश्न हुआ—अकेला ही है? उनका उत्तर था—हाँ। चोरो ने कहा—जान पडता है कि पहली बार निकले हो, अच्छा, हमारे साथ चलो। तुलसी उनके साथ चल पडे। चोरो ने उन्हे पहरे पर खडा कर दिया और स्वयं सेंध लगाकर अदर घुसे। उसी समय तुलसी ने शख बजाया। सब निकल भागे। दूसरे स्थान पर जाकर उन सब ने फिर वैसा ही किया। तुलसी ने फिर शख बजाया। एक चोर ने उन्हे ऐसा करते हुए देख लिया था। एकात मे पहुँचकर चोरो ने उन्हे इस हरकत के कारण डाँटा। तुलसी ने इस कार्य का औचित्य सिद्ध करते हुए कहा—मैंने अनुभव किया कि भगवान् राम तुम्हे चोरी करते हुए देख रहे हैं, इस कारण तुम्हे विपत्ति से बचाने के लिए मैंने शख बजा दिया। चोरो का अज्ञानाधकार दूर हो गया। चोरी छोडकर वे तुलसी के शिष्य हो गये।

१८ एक वैरागी किसी तात्रिक की स्त्री को लेकर चपत हो गया। जब स्त्री नही मिली तब उस तात्रिक ने तत्र-बल से बादशाह को ही पकड मँगाया और उससे यह

१ दोहावली, २३९

आज्ञा जारी करायी कि वैरागी-वेश मे पाये जाने वाले सभी व्यक्ति पकड लिये जाएँ। इसमे सारे वैरागी-समाज पर आपत्ति का पहाड टूट पडा। राजपुरुष तुलसी को भी पकडने के लिए पहुँचे। वहाँ पर उन्होने भयकर देवताओ को पहरा देते पाया। इससे वे बहुत भयभीत हुए, और पकडे गये वैरागियो को मुक्त कर दिया।

१९ एक बार जब वे काशी से भृगु आश्रम जा रहे थे तब कात गाँव के मँगरू अहीर ने उनकी बडी आवभगत की। तुलसी ने उसे आशीर्वाद दिया—यदि तुम्हारे वशज चोरी और परपीडन से दूर रहेगे तो उनका उत्कर्ष होता रहेगा। मँगरू के वशज आज भी विद्यमान हैं। वे अस्तेयपरायण और सतसेवी हैं। बेलापनौत गाँव के रघुनाथसिंह ने तुलसी का बडा सत्कार किया। उन्होने उस गाँव का नाम रघुनाथपुर कर दिया।

२० काशी मे भुलई नाम का एक साधु-निदक कलवार था। वह मर गया। लोग उसके शव को ले जा रहे थे। उसकी सती स्त्री भी जा रही थी। मार्ग मे उसने तुलसीदास को प्रणाम किया। अपने अभ्यास के अनुसार तुलसी ने उसको सौभाग्यवती होने का आशीर्वाद दिया। उसने अपने पति की शव-यात्रा की बात बतायी। अपने वचन को अमोघ करने के लिए तुलसी ने शव को वापस मँगाया और चरणामृत से उस कलवार को जिला दिया।

२१. एक बार रास्ते में उन्हें एक ब्राह्मणी मिली। वह पति के साथ सती होने जा रही थी। उसने तुलसी को देखकर प्रणाम किया। उन्होने आशीर्वाद दिया—सौभाग्यवती हो। स्त्री ने बताया—मैं तो विधवा हो गयी हूँ। तुलसी ने उपदेश किया—'राम-नाम जपो, उससे तुम्हारे स्वामी भी मिलेंगे और स्वामियो के स्वामी राम भी।' वे सब शव के साथ 'राम-नाम' कहते हुए घाट पर पहुँचे। वहाँ ब्राह्मण जी उठा। वे सब तुलसी के शिष्य हो गये। रामदास गौड का कहना है कि "शायद तभी से मुर्दे के साथ 'राम नाम सत्य है' कहने की प्रथा चल पडी।"[1]

२२ जाडे की ऋतु थी। तुलसीदास गगा की धारा मे छाती तक पानी मे खडे होकर जप कर रहे थे। उधर से एक वेश्या निकली। वह चकित होकर यह दृश्य देखती रही। तुलसी बाहर आये। वे अपने वस्त्रो पर गगाजल छिडकने लगे। दो-चार बूँदें उस वेश्या पर भी पड गयी। इसके प्रभाव से उसके मन मे वैराग्य उत्पन्न हो गया। उसने उनसे उपदेश प्राप्त किया और विरक्त होकर रामभजन करने लगी।

२३ एक ब्रह्महत्यारा ब्राह्मण था। एक दिन उसने आवाज लगायी—"है कोई राम का प्यारा जो इस हत्यारे को भी कुछ भोजन दे।" तुलसी ने उसे पाप-मुक्त मानकर उसके साथ प्रसाद-भोजन किया। काशी के पडितो को उनका यह आचरण हिंदू-धर्म पर कुठाराघात-सा लगा। उन्होने पचायत मे तुलसी को बुलाकर उनसे जवाब तलब किया। तुलसी ने रामनाम की महिमा और पावनता का बखान किया। ब्राह्मण पडितो को इससे सतोष नही हुआ। उन्होने कहा कि यदि शिव का पत्थर का नदी हत्यारे के हाथ से भोजन कर ले तो उसे पवित्र मान लिया जाएगा। तुलसी ने उसके हाथ से नदी को भोजन करा

१ रामचरितमानस की भूमिका, खड ५, पृ० १९

दिया। इससे विरोधियो के मुँह बद हो गये।

२४ तुलसी चित्रकूट जा रहे थे। मार्ग मे विध्य के राजा ने उन्हे आदर से ठहराया। इसी समय बादशाह ने राजा को दिल्ली पकड मँगाया। तुलसी उसके लिए भगवान् से प्रार्थना करते रहे। फल यह हुआ कि बादशाह ने राजा को दड देने के बदले बहुत-सा पुरस्कार देकर और उसका अधिकार बढाकर वापस भेजा। लौटकर राजा ने कुछ दिनो तक तुलसी को आग्रह के साथ अपने यहाँ रोका और उनके सत्सग का लाभ उठाया।

२५ विध्य की तराई मे दो अन्य राजा रहते थे। वे परस्पर वचन-बद्ध थे कि सतान होने पर एक के लडके का विवाह दूसरे की लडकी से होगा। सयोग से दोनो के लडकियाँ हुई। लालची राजा ने अपनी पुत्री को पुत्र घोषित किया। उसी प्रकार उसका पालन आदि हुआ। समय आने पर दोनो का विवाह हो गया। तत्पश्चात् इस रहस्य का उद्घाटन हुआ। लडकी के पिता ने प्रतिशोध लेने के लिए लोभी राजा पर चढाई कर दी। वह भागकर तुलसी की शरण मे पहुँचा। तुलसी ने 'रामचरितमानस' का नवाह्निक पाठ किया और उसकी पुरुषवेषधारिणी कन्या को चरणामृत पिलाया। वह पुरुष हो गयी। इसी समय दूसरा राजा भी अपनी सेना के सहित वहाँ पहुँचा। दोनो मे सधि करा दी गयी।

२६ चित्रकूट मे तुलसीदास रामघाट पर बैठे थे। एक मनोहर युवक ने आकर कहा—बाबा, चदन दो। वे चदन घिसने लगे। इतने मे उन्हे सूचित करने के लिए हनुमान् जी शुक का वेश धारण कर आकाश से बोले

चित्रकूट के घाट पर भइ सतन की भीर।
तुलसिदास चदन घिसें तिलक देत रघुबीर॥

वे आत्मविस्मृत होकर राम की शोभा निरखने लगे और कुछ ही क्षणो मे मूच्छित हो गये। राम ने स्वय चदन लगाया और अतर्धान हो गये।

२७ तुलसी चित्रकूट मे घूम रहे थे। एक स्थान पर उन्होने रामलीला का दृश्य देखा। लक्ष्मण आदि के साथ राम भी दिखायी दिये। राह मे तुलसी को एक ब्राह्मण मिला। उन्होने उससे रामलीला की प्रशसा की। उसने कहा कि यह समय रामलीला का नही है, और अतर्धान हो गया। तुलसी समझ गये कि हनुमान् जी ने अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार दर्शन करा दिया।

२८ चित्रकूट मे एक दरिद्रमोचन घाट है। एक बार उस स्थान पर तुलसी की किसी दरिद्र ब्राह्मण से भेंट हुई। वह दरिद्रता से पीडित होकर आत्महत्या करने जा रहा था। तुलसी को उस पर दया आ गयी। उन्होने राम और मदाकिनी की स्तुति की। उससे 'दरिद्र-मोचन' शिला प्रकट हुई जिससे ब्राह्मण की दरिद्रता दूर हो गयी। तभी से वह घाट 'दरिद्र-मोचन घाट' कहलाने लगा।

२९ तुलसी के लोकोत्तर चमत्कारो की अद्भुत कहानियाँ सुनकर बादशाह ने उन्हे दिल्ली बुलवाया। उनसे कहा कि कुछ करामात दिखलाओ। तुलसी ने उत्तर दिया—मुझे करामात दिखाना नहीं आता। रुष्ट होकर बादशाह ने उन्हे बदीगृह मे डलवा दिया।

विवश होकर तुलसी ने हनुमान् की स्तुति की।

उनके उद्धार के लिए हनुमान् जी की वानर-सेना पिल पडी। वानरो ने किले को घेर लिया, वेगमो के वस्त्र नोच डाले। दिल्लीपति की दुर्गति कर डाली। वह तुलसी के पैरो पडा। उन्होने हनुमान् की पुन स्तुति की। उत्पात वद हो गया। वादशाह को वह किला हनुमान् जी के लिए छोड देना पडा। उसने तुलसी को सादर विदा किया।

३० एक प्रोफेसर ने प० रामनरेश त्रिपाठी को वतलाया था कि जयपुर मे 'अकवरनामा' की एक हस्तलिखित प्रति है। उसमे लिखा है कि तुलसी अकवर के साथ शतरज खेला करते थे।[1]

३१ नाभादास की तुलसी पर वडी श्रद्धा थी। एक बार वे वृदावन से काशी गये। लौटने के दिन तुलसी से मिलने गये। उस समय तुलसी विनय मे मग्न थे और वहुत समय तक कोठरी से वाहर नही निकले। नाभादास निराश होकर वृदावन लौट गये। पता चलने पर तुलसी दु खी हुए, और उनसे मिलने के लिए वृदावन पहुँचे। उस समय वहाँ पर साधुओ का भडारा हो रहा था। तुलसी पक्ति के अत मे सतो के जूतो और खडाउँओ के पास वैठ गये। एक महात्मा ने वह पत्तल जिस पर वे पैर रखकर वैठे हुए थे तुलसी की ओर वैठने के लिए वढा दी। परोसते हुए किसी ने उनसे पूछा—आपको किस पात्र मे प्रसाद दूँ? तुलसी ने वही पत्तल आगे वढाते हुए कहा—इससे अधिक पवित्र पात्र दूसरा नही हो सकता। यह देखकर नाभाजी उन्हे गले से लगाते हुए बोले—आप भक्तमाल के सुमेरु हैं।

३२. कहते हैं कि वृदावन मे तुलसी को सर्वत्र कृष्ण का ही नाम सुनकर अचभा हुआ। वहाँ पर कोई राम का नाम नही लेता था। इस पर उन्होने अपनी मनोदशा इस प्रकार व्यक्त की

राधा-कृष्ण सबै कहैं ग्राक ढाक ग्ररु कैर।
तुलसी या ब्रज मो कहा सिया-राम सो वैर॥

गोपाल मदिर मे उन्होने अपनी राम-भक्ति प्रकट करते हुए कृष्ण-मूर्ति के सामने कहा—'···तुलसी मस्तक तब नवै धनुष-वान लो हाथ।'
कृष्ण-मूर्ति राम-रूप मे परिवर्तित हो गयी और तब तुलसी ने भगवान् की वदना की।

३३ तुलसी के समसामयिक अद्वैतवेदाती मधुसूदन सरस्वती भी काशी-निवासी थे। भाषा-निवद्ध 'रामचरितमानस' की लोकप्रियता से काशी के पडित बौखला रहे थे। उन्होने तुलसी की प्रतिष्ठा को मटियामेट करने का एक उपाय सोचा—शकर मतानुयायी मधुसूदन सरस्वती को उनसे शास्त्रार्थ के लिए भिडा दिया जाए। तुलसी के वाद से वे इतने प्रसन्न हुए कि उन्होने एक श्लोक के द्वारा तुलसी की प्रशस्ति की

ग्रानंदकानने ह्यस्मिन् जगमस्तुलसीतरुः।
कवितामजरी यस्य रामभ्रमरभूषिता॥

---

१. तुलसीदास और उनका काव्य, पृ० १०२

३४ एक बंगाली पंडित थे रविदत्त शास्त्री। वे प्रचंड क्रोधी थे। कुटिल पंडितों ने तुलसी के साथ उनकी मुठभेड कराने की सोची। रविदत्त ने तुलसी से शास्त्रार्थ किया, हार जाने पर लाठी लेकर सिर फोडने पर उतारू हो गये। सामने हनुमान् के भयंकर रूप को देखकर भाग खडे हुए। छली पंडित ने अपनी विजय का दूसरा उपाय निकाला। तुलसी की बहुत अनुनय-विनय की। प्रसन्न तुलसी ने उनसे वर माँगने को कहा। उन्होंने वर माँगा—आप काशी छोडकर चले जाइए। बेचारे तुलसीदास वचन पालन के लिए काशी छोडकर चल पडे। स्वप्न मे शिवजी ने काशी वासियों को उन्हे मना लाने के लिए प्रेरित किया। वे टोडर को आगे करके चले और तुलसी को मनाकर वापस ले आये। तब से तुलसी ने अस्सी घाट को अपना निवास-स्थान बनाया।

३५. काशी के परारित पंडितो ने तुलसी के प्राण लेने की ठान ली। उनके कहने से तान्त्रिक बटेश्वर ने मन्त्र-तन्त्र के द्वारा उनके जीवन का अंत करने की चेष्टा की। उसने तुलसी की हत्या के लिए काशी के कोतवाल कहे जाने वाले भैरव को प्रेरित किया। उधर तुलसी की रक्षा के लिए बजरंगबली पहले से सन्नद्ध खडे थे। देखते ही भैरव को ललकारा। वे उल्टे पाँव भाग खडे हुए और लौटकर बटेश्वर की जीवन लीला समाप्त कर दी।

३६ 'रामचरितमानस' की लोकप्रियता बढ रही थी। संस्कृत के पंडित हैरान थे। उन्हे एक चाल सूझी। वे बोले—यदि शिवजी उस पर सही कर दें तो हम लोग उसे प्रामाणिक ग्रंथ मान लें। परीक्षा के लिए 'रामचरितमानस' की एक प्रति विश्वनाथ के मंदिर मे रात को रख दी गयी। सवेरे मंदिर का द्वार खुलने पर देखा गया कि उस पर शिवजी ने सही कर दी है।

इस बात से पंडितो ने हार नही मानी। उन्होने यह आपत्ति की कि वेद, पुराण आदि की तुलना मे 'रामचरितमानस' का स्थान तो निर्धारित ही नही हुआ। इस प्रकार का निर्णय जानने के लिए 'रामचरितमानस' को नीचे रखकर उसके ऊपर संस्कृत के पुराण आदि ग्रंथ रखे गये। प्रातःकाल द्वार खोलकर देखा गया तो 'रामचरितमानस' सब ग्रंथों के ऊपर था।

३७ 'रामचरितमानस' की जिस प्रति पर शंकरजी ने सही की थी, ईर्ष्यालु पंडितो ने उसको उडा देने की बडी चेष्टा की। उन्हे सफलता नही मिली, क्योंकि राम-लक्ष्मण और हनुमान् उसकी रक्षा करते रहे। आज वह प्रति अप्राप्य है। इस रहस्य के संबंध मे भी एक किंवदंती है। सुरक्षा की दृष्टि से वह प्रति तुलसी ने अपने मित्र टोडर के यहाँ रखवा दी और कहला दिया कि तुम्हारे घर से बाहर होने पर यह प्रति लुप्त हो जाएगी। विधि का विधान अमिट है। टोडर के वंशज अनंतमल की लाडली कन्या उससे बडा प्रेम रखती थी, नियम से उसकी पूजा करती थी। विवाह के बाद ससुराल जाते समय उसने चुपके से वह प्रति अपनी डोली मे रख ली। ससुराल पहुँचने के साथ ही वह प्रति लुप्त हो गयी। इस शोक मे कन्या ने भी प्राण त्याग दिये

३८ एक पंडित थे। उनका नाम घनश्याम शुक्ल था। वे संस्कृत के कवि थे। 'भाषा' मे भी काव्य-रचना करते थे। पंडितो ने उनके 'भाषा' मे लिखने पर आपत्ति की। उन्होंने तुलसी से परामर्श किया। तुलसी ने उत्तर दिया.

का भाषा का संस्कृत प्रेम चाहिए साँच।
काम जो आवै कामरी का लै करै कुमाच ॥[1]

३९ एक दिन मणिकर्णिका घाट पर एक सस्कृत-प्रेमी पडित ने पूछा—आप तो सस्कृत के विद्वान् हैं, फिर आप देववाणी को छोडकर 'भाषा' मे रचना क्यो करते हैं ? उन्होने उत्तर दिया

मनि भाजन मधु पारई पूरन अमी निहारि।
का छाँडिअ का सग्रहिअ कहहु बिवेक बिचारि ॥[2]

४० आमेर के राजा मानसिंह और उनके भाई जगतसिंह तुलसीदास के पास प्राय आया करते थे। एक दिन किसी ने तुलसीदास से प्रश्न किया महाराज, पहले तो आपके पास कोई नही आता था, और अब इतने बड़े-बडे लोग आया करते हैं, इसका क्या कारण है ? तुलसी ने उत्तर दिया

लहै न फूटी कौड़िहूँ को चाहै केहि काज।
सो तुलसी महँगो कियो राम गरीबनेवाज ॥
घर-घर माँगे टूक पुनि भूपति पूजे पाय।
जे तुलसी तब राम बिनु ते अब राम सहाय ॥[3]

४१ एक गरीब ब्राह्मण था। उसे अपनी कन्या का विवाह करना था। तुलसी ने उसको आर्थिक सहायता-प्राप्ति के लिए अब्दुर्रहीम खानखाना के पास भेजा। रहीम को उन्होंने एक पत्र लिखा। उसमे दोहे की एक पक्ति थी

सुरतिय नरतिय नागतिय अस चाहत सब कोय।

रहीम ने उस ब्राह्मण की यथेष्ट सहायता की और पत्रोत्तर मे दोहे की दूसरी पक्ति लिखी

गोद लिये हुलसी फिरै तुलसी सो सुत होय ॥

४२ तुलसीदास चित्रकूट मे थे। सूरदास स्वत अथवा गोकुलनाथ के आदेशानुसार उनसे मिलने के लिए चित्रकूट गये। उन्होने अपना 'सागर' तुलसी को दिखाया।

४३ एक बार केशवदास तुलसी के दर्शनार्थ काशी गये। तुलसी अदर कोठरी मे थे। उन्हे केशव के आगमन की सूचना दी गयी। उन्होने कहा—प्राकृत कवि केशव को आने दो ! केशव ने सुन लिया। वे तत्काल लौट पडे। उन्होने रातभर मे 'रामचद्रचद्रिका' लिख डाली और दूसरे दिन उसे लेकर तुलसी से मिले।

४४ अपने देवर महाराणा के अत्याचारो से तग आकर मीराँबाई ने तुलसीदास को एक पत्र लिखकर अपने कर्तव्य के विषय मे उनकी समति माँगी। मीराँ का पत्र था

स्वस्तिश्री तुलसी गुन दूषनहरन गुसाईं ·
मेरे मात-पिता के सम हौ हरि-भगतन सुखदाई।
हम कूँ कहा उचित करिबो है सो लिखियो समुझाई ॥

१. दोहावली, ५७२
२ दोहावली, ३५१
३ दोहावली, १०८, १०९

तुलसी ने उसके उत्तर मे यह पत्र लिखकर भेजा

जाके प्रिय न राम वैदेही ।

ताजिए ताहि कोटि वैरी सम जद्यपि परम सनेही ।।[1] आदि

४५ एक बार तुलसीदास की भेंट उनके समसामयिक जैन-कवि बनारसीदास से हुई। तुलसी ने उनको 'रामचरितमानस' की एक प्रति दी। और उन्होने तुलसी को पार्श्व-नाथ की स्तुति दी। दूसरी बार भेंट होने पर बनारसीदास ने रामायण पर एक कविता लिखकर उन्हे दी

विराजै रामायण घटमाहीं।
मरमी होय मरम सो जानै मूरख मानै नाहीं ।।
आतम राम ज्ञान गुन लक्ष्मण सीता सुमति समेत ।
शुभ प्रयोग वानरदल मडित वर विवेक रन खेत ।।
ध्यान धनुष टकार सोर सुनि गई विषय दिति भाग ।
भई भस्म मिथ्या मत लंका उठी धारना आग ।।
जरे अज्ञान भाव राक्षस कुल लरे निसकित सूर ।
जूझे राग द्वेष सेनापति ससय गढ़ चकचूर ।।
विलखत कुभकरन भव विभ्रम पुलकित मन दरियाव ।
थकित उदार वीर महिरावन सेतुबध समभाव ।।
मूच्छित मदोदरी दुरासा सजग चरन हनुमान ।
घटी चतुर्गति परनति सेना छुटे छपक गुन वान ।।
निरखि सकति गुन चक्र सुदर्सन उदय विभीषन दीन ।
फिरै कवध महीरावन को प्रान भाव सिरहीन ।।
इति विधि साधु सकल घटे अतर होय सहज सग्राम ।
यह विवहार दृष्टि रामायण केवल निश्चय राम ।।

और उन्होने उत्तर मे पार्श्वनाथ की स्तुति लिखकर बनारसीदास को दी

पदजलज श्रीभगवान जू के बसत हैं उर माहि ।
चहुँ गति विहडन तरनतारन देखि बिघन बिलाहि ।।
थकि धरनिपति नहि पार पावत वर सु वपुरा कौन ।
तिहि लसत करुना जन पयोधर भर्जाहि भवि जन तौन ।।
द्युति उदित त्रिभुवन मध्य भूषन जलधि ज्ञात गँभीर ।
जिहि भाल ऊपर छत्र सोहत दहत दोष अधीर ।।
जिहि नाथ पारस जुगल पकज चित्त चरनन जास ।
रिधि सिद्धि कमला अजर राजति भजत तुलसीदास ।।

४६ कहा जाता है कि केशवदास प्रेत-यज्ञ मे जल मरे थे। उनकी प्रेतात्मा बहुत समय तक भटकती रही। अपनी दिल्ली-यात्रा के क्रम मे तुलसी एक कुएँ पर पहुँचे।

१. देखिए विनयपत्रिका, १७४

उन्होने लोटा-डोरी से पानी निकालना चाहा। केशव का प्रेत उसी कुएँ मे था। उसने लोटा पकड लिया। केशव बोले—मुझे प्रेत-योनि से छुडाओ, तब मैं तुम्हारा लोटा छोड़ूँगा। तुलसी ने कहा—अपनी 'रामचद्रचद्रिका' का इक्कीस वार पाठ करो, मनोरथ सिद्ध हो जाएगा। केशव को उसका पहला शब्द भूल गया था। तुलसी ने याद दिलाया। पाठोपरात केशव प्रेत-योनि से मुक्त हुए।

४७ एक बार तुलसी की भेट भक्त-कवि अनन्यमाधव से हुई। उन्होने विनय का एक पद लिखकर अनन्यमाधव को सुनाया

मैं हरि पतित पावन सुने।
मैं पतित तुम पतितपावन दोउ बानक बने॥[1]

अनन्यमाधव ने भी उत्तर मे एक पद रचकर तुलसी को सुनाया

तब तें कहाँ पतित नर रह्यो।
जब तें गुरु उपदेस दीन्हो नाम नौका गह्यो। आदि[2]

४८ एक दिन एक अलखिया जोगी आया। उसने 'अलख-अलख' की आवाज लगायी। तुलसी को बुरा लगा। उन्होने उसको करारी डाँट पिलायी

हम लखि लखहि हमार लखि हम हमार के बीच।
तुलसी अलखहि का लखहि राम नाम जपु नीच॥[3]

४९ तुलसी के समकालीन मेघाभगत का नाम बहुत प्रसिद्ध है। उन्होने काशी मे रामलीला का प्रचार किया। चित्रकूट की रामलीला काशी मे मेघाभगत की रामलीला समझी जाती थी। उनकी रामलीला मे वाल्मीकि-रामायण का पाठ होता था। तुलसी ने अस्सी पर 'रामचरितमानस' के आधार पर रामलीला का आरभ किया। उसमे 'रामचरितमानस' के गान की व्यवस्था की। उसका इतना अधिक प्रचार हुआ कि विभिन्न स्थानो पर मनायी जाने वाली विजयदशमी के अवसर पर लोग 'रामचरितमानस' ही गाते हैं। आज भी तुलसी द्वारा प्रवर्तित रामलीला अस्सी पर हुआ करती है। उनके द्वारा निर्धारित किये हुए स्थान भी है। काशी विश्वविद्यालय और अस्सी के बीच का प्रसिद्ध स्थान लका तुलसी की रामलीला की 'लका' है।

५० लोक-प्रसिद्धि है कि तुलसीदास का देहावसान सवत् १६८० मे हुआ था। इस सबध मे एक दोहा प्रचलित है

सबत सोरह सै असी असी गग के तीर।
सावन सुकला सप्तमी तुलसी तज्यो सरीर॥

दूसरी पक्ति का रूपातर भी पाया जाता है

सावन स्यामा तीज सनि तुलसी तज्यो सरीर।

इसका एक रूप ऐसा भी है जिसमे दिन का उल्लेख नही है

सावन स्यामा तीज को तुलसी तज्यो सरीर।

---

१ देखिए—विनयपत्रिका, १६०
२. देखिए—रामचरितमानस की भूमिका, खड, ५, पृ० २४
३. दोहावली, १९

परंतु, सभी में संवत् १६८० का उल्लेख निर्विवाद है।

तुलसी के जीवन-चरित से संबंधित सभी जनश्रुतियों में उपर्युक्त अंतिम दो जनश्रुतियाँ ऐतिहासिक महत्त्व की हैं। तुलसी द्वारा प्रचालित रामलीला असंदिग्ध मानी जाती है। आज भी उसका तथैव प्रचलन उस बात का प्रमाण है। देहावसान-संबंधी संवत् सभी परंपराओं में स्वीकृत है। इस विषय में सभी विशेषज्ञ विद्वान् एकमत हैं कि तुलसीदास का शरीरांत संवत् १६८० में हुआ।

तुलसीदास के चित्र

तुलसीदास के रूप-रंग और आकार-प्रकार का निदर्शक कोई समकालीन प्रमाण नहीं मिलता। 'रतनावलीचरित', 'तुलसीप्रकाश', 'प्रेमरामायण', 'गौतमचंद्रिका' आदि में उनके वर्ण, आकृति और वेषभूषा का चित्रांकन किया गया है।[1] इन रचनाओं का प्रामाण्य विवादग्रस्त है। परंतु इनके रूप-निरूपक वर्णन सर्वथा तिरस्करणीय नहीं हैं, क्योंकि ये तुलसी के उपलब्ध चित्रों से बहुत-कुछ अनुरूप प्रतीत होते हैं।

तुलसी के अनेक चित्र पाये जाते हैं।[2] उनमें से निम्नांकित चित्र महत्त्वपूर्ण हैं

१ काशी के प्रह्लाद-घाट-निवासी श्री रणछोड़लाल व्यास के यहाँ परिरक्षित चित्र सं० १६५५ का बताया जाता है। रायकृष्णदास का मत है कि वह चित्र इतना प्राचीन नहीं हो सकता, क्योंकि उसमें जो इमारत बनी है उसकी शैली मुहम्मदशाह के बाद की है। उसके आधार पर बने हुए अनेक चित्र प्रचलित हैं। उनका अनुमान है कि वह तुलसी के किसी मूल चित्र की प्रतिकृति है। उस चित्र में तुलसीदास का शरीर कुछ रुग्ण-सा दिखायी देता है।

२ उसी चित्र से मिलता-जुलता एक चित्र भारत-कला-भवन, काशी में है जो १८००ई० के आस-पास का प्रतीत होता है। अनुमान है कि ये दोनों चित्र किसी अन्य मूल चित्र के आधार पर बनाये गये हैं।

३ श्री मायाशंकर याज्ञिक के निजी संग्रहालय वाला चित्र भी दूसरे चित्र के समान ही प्राचीन है और पहले दो चित्रों के अनुरूप है। ऐसा प्रतीत होता है कि ये तीनों चित्र किसी एक मूल परंपरा में निर्मित हुए हैं।

४ जॉर्ज ग्रियर्सन को अयोध्या के किसी अखाड़े से एक चित्र प्राप्त हुआ था। यह चित्र खड्गविलास प्रेस बाँकीपुर से प्रकाशित 'रामचरितमानस' में दिया हुआ है। इसमें तुलसीदास का शरीर मोटा-ताजा दिखाया गया है। इस चित्र में अंकित व्यक्ति की रूपरेखा उपर्युक्त तीन चित्रों के साथ सादृश्य रखती है। इससे ज्ञात होता है कि यह तुलसी की अधेड़ अवस्था का है, और वे चित्र उनकी वृद्धावस्था के हैं।

५ काशिराज के यहाँ 'रामचरितमानस' की एक सचित्र प्रति है जो अठारहवीं शताब्दी की है। उसमें दिया गया चित्र प्रथम दो चित्रों के सदृश है।

---

१. देखिए—गोस्वामी तुलसीदास (डॉ० भारद्वाज), पृ० १७४

२. देखिए—तुलसीदास और उनका काव्य, पृ० ८९-९०, गोस्वामी तुलसीदास, (डॉ० भारद्वाज), पृ० १७५-८१

६ काशी के अस्सी घाट पर तुलसी के स्थान मे उनका एक दाढीवाला चित्र भी मिलता है। रायकृष्णदास का कहना है कि वह किसी आधुनिक चित्रकार की कृति है। अन्य चित्रो के साथ उसकी तुलना करने पर विदित होता है कि उसकी रचना उपर्युक्त प्रथम चित्र पर दाढी का आरोप करके की गयी है।

अंतस्साक्ष्य: तुलसी-साहित्य

तुलसीदास की प्रामाणिक रचनाओ की विचार-चर्चा एक स्वतंत्र अध्याय का विषय है। अगले अध्याय मे उन पर विचार किया जाएगा।

२ तुलसी-साहित्य

तुलसीदास की प्रामाणिक रचनाएँ

तुलसीदास के अध्येताओं ने उनकी रचनाओ के विषय मे श्रमसाध्य ऊहापोह किया है। उनके द्वारा की गयी गहरी छान-बीन का पुखानुपुख लेखा-जोखा प्रस्तुत कर देने से कोई स्पृहणीय सिद्धि नही मिलेगी। एतद्विषयक विवेचन-विश्लेषण की आधार-भूमि वडी कमजोर है। तुलसी का 'रामचरितमानस' ही एकमात्र ऐसा ग्रथ है जिसकी हस्त-लिखित प्रतियो की व्यापक खोज हुई है और उन प्रतियों का वैज्ञानिक रीति से पाठालोचन करके सपादन किया गया है। अन्य रचनाओ की हस्तलिखित प्रतियो का न तो सम्यक अन्वेषण किया गया है और न ही उपलब्ध प्रतियो का पाठानुसधान करके उनके सुसपादित सस्करण प्रकाशित किये गये हैं। जब तक यह कार्य सपन्न नही हो जाता तब तक तुलसी के नाम से प्रचारित दर्जनो कृतियो के तुलसी-रचित होने की प्रामाणिकता-अप्रामाणिकता और तुलसी-कृत माने जाने वाले विभिन्न ग्रथो के प्रक्षिप्तांशो की समालोचना सशयमुक्त नही हो सकेगी। अध्ययन की इस परिसीमित पृष्ठभूमि मे ही तुलसीदास की रचनाओ के कर्तृत्व का निर्धारण किया जाएगा।

शिवसिंह सेंगर, शिवनदन सहाय, मिश्रबधु, प० रामनरेश त्रिपाठी, डॉ० रामकुमार वर्मा, डॉ० माताप्रसाद गुप्त आदि ने विभिन्न स्रोतो द्वारा तुलसी-रचित बताये जाने वाले ग्रथो की विस्तृत सूची प्रस्तुत की है, उनकी प्रामाणिकता पर भी विचार किया है।

उन बहुधा चर्चित रचनाओ को हम निम्नाकित वर्गो मे रख सकते हैं

[क] अप्रामाणिक रचनाएँ

१ अकावली
२. आरती
३ उपदेशदोहा
४. कडखारामायण
५ कलिधर्मनिरूपण
६ कुडलियारामायण
७ कृष्णचरित
८ गीताभाष्य या गीताभाषा
९ छदावली या छदावलीरामायण
१० छप्पयरामायण
११ ज्ञान कौ प्रकरण या ज्ञानपरिकरण
१२ ज्ञानदीपिका
१३ झूलनारामायण
१४ तुलसीदास जी की वानी
१५ धर्मराय की गीता

१६ ध्रुवप्रश्नावली
१७ पदबदरामायण
१८ बजरंगबाण
१९ बजरंगसाठिका
२० बारहमासी
२१ बाहुसर्वांग
२२ भगवद्गीताभाष्य
२३ भरतमिलाप
२४ मंगलरामायण या मंगलावली
२५ रसकल्लोल
२६. रसभूषण
२७ रामनामकलामणिकोषमंजूषा या नामकलाकोषमणि
२८ राममुक्तावली या राममंत्रमुक्तावली
२९ रामलला
३० रोलारामायण
३१ विजयदोहावली
३२ बृहस्पतिकांड
३३ संकटमोचन
३४ संतभक्त उपदेश
३५ साखी तुलसीदास जी की
३६. सूरजपुराण या सूर्यपुराण
३७ हनुमानचालीसा
३८ हनुमानपंचक
३९ हनुमानस्तोत्र

[ख] अर्धप्रामाणिक रचना

१. सतसई (तुलसी-सतसई या रामसतसई)

[ग] प्रामाणिक रचनाएँ

(i) बहुमान्य

१ वैराग्यसंदीपनी
२. रामाज्ञाप्रश्न
३ रामललानहछू

(ii) सर्वमान्य

१ रामचरितमानस
२ जानकीमंगल
३ पार्वतीमंगल
४ गीतावली (रामगीतावली, पदावलीरामायण)
५ कृष्णगीतावली
६ विनयपत्रिका (विनयावली, रामगीतावली)
७ दोहावली
८ बरवैरामायण (बरवा)
९ कवितावली या कवित्तावली (हनुमानबाहुक-समेत)

[क] अप्रामाणिक रचनाएँ

प्रथम वर्ग की 'अकावली' आदि उनतालीस रचनाओं को अप्रामाणिक मानने के अनेक कारण हैं। सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह है कि रामायणी व्यासों की परम्परा में उन्हें

तुलसी-कृत नही माना गया है। आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र की यह धारणा मान्य है कि तुलसीदास स्वय 'मानस' के प्रथम व्यास थे। यह तथ्य उनके द्वारा चलायी गयी रामलीला से भी समर्थित होता है। उनका अनुसरण करते हुए उनके शिष्य-प्रशिष्य व्यासों की निरतर परपरा चल पड़ी जो आज भी जीवित है। इन व्यासो ने 'रामचरितमानस' की सूक्ष्मातिसूक्ष्म व्याख्या के लिए कवि की अन्य कृतियो का अवश्यमेव परिशीलन किया होगा। उनके पास तुलसी-रचित ग्रथो की हस्तलिखित प्रतियाँ भी रही होगी। इसलिए प्रस्तुत विषय मे उनकी जानकारी अनुपेक्षणीय है। 'रूढिर्योगाद्बलीयसी'। दूसरी बात यह है कि 'अकावली' आदि रचनाओं की विश्वसनीय प्रतियाँ नहीं मिलतीं। तुलसी के जीवन काल की तो एक भी नही है। सत्रहवी शताब्दी (स० १६८६) की अकेली-प्रति 'रामसुक्तावली' की है। शेष प्रतियाँ अठारहवी शताब्दी और उसके बाद की हैं। ऐसा लगता है कि श्रद्धालु रचनाकारो ने तुलसी को विविधपाडित्यपारावारपारीण एव सर्व-शैली-सिद्ध कवि सिद्ध करने के उद्देश्य से और साथ ही आत्माभिव्यक्ति व आत्मपंथ प्रचार के लिए तुलसी के नाम पर मनमानी कृतियो की सृष्टि कर डाली। तीसरी बात इन रचनाओ के अंतस्साक्ष्य से सबद्ध है। उनके सामान्य परीक्षण से पता चलता है कि वे तुलसीदास की विचारधारा, काव्य-प्रवृत्ति और भाषा-शैली के अनुरूप नही हैं।

उक्त उनतालीस रचनाओ मे से 'कलिधर्माधर्मनिरूपण' और 'ज्ञान-दीपिका' विचारणीय हैं। पहली कृति को मिश्रबधुओ ने तुलसी-रचित माना है। उनके विचार से "इसकी रचना और भाषा रामायण से बहुत मिलती-जुलती है। यह एक मनोहर प्रशसनीय ग्रथ हैं। इसके तुलसीकृत होने मे कोई सदेह नही है।"[1] उनसे सहमत होना कठिन है। विश्वसनीय परपरा मे इस रचना का उल्लेख नहीं मिलता। प्राचीन प्रतियाँ भी नहीं मिलतीं। 'रामचरितमानस', 'विनयपत्रिका', 'कवितावली' और 'दोहावली' में तुलसी ने कलिकाल के जो प्रभावशाली वर्णन किये हैं, उनके अतिरिक्त रची गयी इस शिथिल कृति की निरर्थकता स्वयसिद्ध है। ऐसा लगता है कि 'दोहावली' आदि के कुछ पद्य लेकर और कुछ स्वरचित पद्यो को मिलाकर किसी ने यह सग्रह तैयार कर दिया है। 'ज्ञानदीपिका' का वैशिष्ट्य उसमे उल्लिखित रचना-काल के कारण है। उसमे दिया हुआ रचनाकाल है— स० १६३१, आषाढ-शुक्ल २, गुरुवार। डॉ० माताप्रसाद गुप्त ने छानबीन करके बतलाया है कि किसी भी प्रकार से गणना करने पर यह तिथि शुद्ध नहीं उतरती।[2] 'रामचरितमानस' की समकालीन कही जाने वाली इस कृति मे 'मानस' की शैली दृष्टिगोचर नहीं होती।[3] अतएव इन दोनो रचनाओ को प्रामाणिक नही माना जा सकता।

---

१ हिंदी नवरत्न, पृ० ९८

२. तुलसीदास, पृ० १३४

३ उदाहरणार्थ—

सवत सोरा सै गए इकतिस अधिक बिचार।
सुकल पच्छ आषाढ की दोज पुण्य गुरवार ॥
ता दिन उपजी दीपिका पाँच जोत परवान।
धर्म ज्ञान अरु ब्रह्म पुनि परमसरूप थिकान ॥

[ख] अर्धप्रामाणिक रचना

द्वितीय वर्ग मे एक ग्रथ है—सतसई। उसे कवि के नामानुसार 'तुलसी-सतसई' और आराध्य के नामानुसार 'रामसतसई' भी कहा गया है। डॉ० मातप्रसाद गुप्त ने 'सतसई' और 'दोहावली' का सयोग करके 'सतसई-दोहावली' नाम दिया है।[1] विवाद-ग्रस्त सतसई की प्रामाणिकता पर थोडा विस्तार से विचार करने की अपेक्षा है। मैंने उसे 'अर्धप्रामाणिक' कहा है। तात्पर्य यह है कि 'सतसई' का कुछ अश प्रामाणिक अर्थात् तुलसी-रचित है और शेष अश अप्रामाणिक अर्थात् तुलसी-रचित नही है। 'दोहावली' के सौ-सवा सौ दोहे 'सतसई' मे पाये जाते हैं। वे असदिग्ध रूप से तुलसी-रचित है। इस प्रसग मे लक्ष्य करने योग्य एक रोचक बात यह है कि 'सतसई' मे 'दोहावली' से ऐसा एक भी दोहा नही लिया गया है[2] जो तुलसी की रचना-शैली के प्रतिकूल पडता हो। सतसई के जो दोहे 'दोहावली' मे नही मिलते उनका कर्तृत्व सदिग्ध है। हो सकता है कि उनके कर्ता गाजीपुर-निवासी तुलसीदास कायस्थ हो (जैसा कि प० सुधाकर द्विवेदी ने वतलाया है) अथवा कोदोराम के गुरु के पिता शेषदत्त[3] हो या कोई अन्य तुलसी-भक्त महानुभाव। 'सतसई' को तुलसी-कृत मानने के पक्ष मे निम्नाकित हेतु उपस्थित किये गये हैं

१ 'सतसई' मे 'दोहावली' के सौ से अधिक दोहे पाये जाते हैं। दोनो की शैली समान है। यदि 'दोहावली' तुलसी-रचित हो तो सतसई को भी तुलसी-रचित मानना समीचीन है।

२ 'सतसई' के एक दोहे मे उसका रचना-काल दिया हुआ है

अहि रसना धन धेनु रस गणपति द्विज गुरुवार।
माधव सित सिय जन्म तिथि सतसैया अवतार॥[4]

---

१. तुलसीदास, पृ० १२६, २७६

२. जैसे—दोहावली, ४५६-५७ ५८-५९, बहुत सभव है कि वैज्ञानिक रीति से 'दोहावली' का पाठानुसधान होने पर ये दोहे प्रक्षिप्त सावित हो जाएँ।

३ शेषदत्त तुलसी की शिष्य-परपरा में थे। उन्होंने सतसई पर टीका भी लिखी है। उनके पुत्र के शिष्य कोदोराम ने तुलसी की रचनाओं के विषय में एक कवित्त लिखा है

मानस गीतावली कवितावली वनाई कृष्ण-
गीतावली गाई सतसई निरमाई है।
पार्वतीमगल कही मगल कही जानकी की
रामाज्ञा नहछू अनुरागयुक्त गाई है॥
बरवै वैराग्यसदीपनी वनाई विनैपत्रिका वनाई
जामें प्रेम परा छाई है॥
नाम कला कोष मणि तुलसीकृत तेरा काव्य
नहि कलि में काऊ कवि की कविताई है॥

इस कवित्त में 'दोहावली' का नाम नहीं है। उसके बदले 'सतसई' का उल्लेख है। यह असभव नहीं है कि तुलसी को सर्वप्रथम सतसईकार सिद्ध करने के लिए शेषदत्त ने स्वय या उनके किसी समानधर्मा ने 'सतसई' का सर्जन किया हो।

४. सतसई, १।२१

अहि-रसना = २, धेनु-थन = ४, रस = ६, गणपति-द्विज = १।
'अकाना वामतो गति' के अनुसार उसका रचना-काल स० १६४२ है।
यह तुलसीदास का समय है।

३ 'सतसई' मे सीता-भक्ति की प्रधानता है। 'वेणीमाधवदास' ने स० १६४० मे तुलसी की मिथिला-यात्रा का उल्लेख किया है। मिथिला के वातावरण का प्रभाव 'सतसई' मे प्रतिफलित हुआ है। उसकी रचना भी सीता जी की जन्मतिथि को हुई।

४ सतसई की अनेक हस्तलिखित प्रतियाँ मिलती है। इससे सूचित होता है कि वह लोक मे तुलसीदास की कृति के रूप मे समादृत और परिरक्षित हुई।

५ सतसई पर कई टीकाएँ भी लिखी गयी' हैं। यदि वह तुलसी-कृत न होकर किसी निकृष्ट कवि की रचना होती तो टीकाकार उनकी व्याख्या की ओर प्रवृत्त न होते।

ये तर्क अकाट्य नही हैं। इनका निरसन किया जा सकता है

१ 'दोहावली' के लगभग सवा सौ दोहो का सतसई मे अस्तित्व होने से उनके शेष सवा छ सौ दोहो का कर्तृत्व तुलसीदास पर आरोपित नही किया जा सकता। उन दोहो का समावेश सतसई लेखक का करतब हो सकता है, जो तुलसी के दोहो के साथ स्वरचित दोहो को भी उनके नाम पर चला देना चाहता था। यदि सभी दोहे तुलसी ने लिखे होते तो घालमेल करके दो सग्रह बनाने का क्या प्रयोजन था? कवि सभी दोहो का एक सग्रह बनाकर 'सतसई' के बदले 'हजारा' तैयार कर देता जिसका प्रभाव अधिक चमत्कारी होता। शैली की समानता की बात तो और भी लचर है। कतिपय उदाहरणो से प्रमाणित हो जाएगा कि उसकी शैली तुलसी के मार्ग से कितनी दूर है। पहला ही दोहा लीजिए

नमो नमो श्रीराम प्रभु परमातम परधाम।
जेहि सुमिरत सिधि होत है तुलसी जन मन काम॥[2]

'नमो नमो' का प्रयोग विलक्षण है। तुलसी ने 'नम्' धातु से व्युत्पन्न बहुत से रूपो का व्यवहार किया है, लेकिन यह रूप उनके अन्य प्रयोगो से भिन्न है। 'जेहि सुमिरत-सिधि होइ' के अनुकरण पर दोहे का तीसरा चरण गढा गया है। उसके 'सिधि' शब्द का पदान्वय क्या होगा? टीकाकार अपने मन से उसे 'सिध' (सिद्ध) मानकर अर्थ कर लेते हैं—' मनोकामनाएँ सिद्ध हो जाती हैं।'

पाठक की शक्ति का अपव्यय और बौद्धिक व्यायाम कराने वाले दोहो की कमी नही है। तृतीय सर्ग तो दृष्टिकूटको से भरा पडा है। स्थालीपुलाकन्याय से उसकी बानगी देखिए

---

१ 'तुलसी-सतसई' का एक सस्करण प० रामचद्र द्विवेदी की 'सुबोधिनी टीका' के सहित स० १९८५ में पटना के सरस्वती भडार से प्रकाशित हुआ। उसकी प्रस्तावना (पृ० ४६) में उन्होंने शेषदत्त शर्मा 'फनेश', बैजनाथदास वैष्णव और सुधाकर द्विवेदी (कुडलिया-छद में 'तुलसी सुधाकर') की टीकाओं का उल्लेख किया है।

२ सतसई, १।१

द्वितिय कोल राजिव प्रथम बाहन निश्चय माहि।
आदि एक कल दै भजहु वेद बिदित गुण जाहि ॥[1]

दोहे का प्रतिपाद्य है—'राम-जानकी को भजो'। यह अर्थ कहाँ से आया ? इसके अनुसधान के लिए शीर्षासन करना पडेगा। 'कोल' का पर्यायवाची 'वाराह' है। उसका दूसरा अक्षर 'रा' है। 'राजिव' का 'प्रथम' व्यर्थ है। सीधी अँगुली से घी नही निकलेगा। राजीव से निकालिए—मकरद। 'मकरद' का प्रथम वर्ण है **'म'**। इस **'म'** को पूर्वोक्त **'रा'** मे जोडकर बनाइए—**राम**। अव 'जानकी' की व्युत्पत्ति पर माथापच्ची कीजिए। 'वाहन' का पर्यायवाची शब्द **'यान'** है। उसका विकृत रूप है—जान। 'निश्चय माहि आदि' क्या है ? निश्चय की अर्थ-व्यजना के लिए सस्कृत मे प्रयुक्त एक अव्यय है 'किल'। उसके आदि मे **'कि'** है। उसको 'एक कल' दीजिए अर्थात् ह्रस्व मात्रा को दीर्घ कर दीजिए। इस प्रकार **'की'** की निष्पत्ति हुई। उपर्युक्त **'जान'** और इस **'की'** के सयोग से **'जानकी'** का सघटन हुआ।

व्याकरण के जाल मे उलझी हुई 'भगी भणिति' देखिए

हल अम मध्य समान युत याते अधिक न आन।
तुलसी ताहि बिसारि सठ भरमत फिरत भुलान ॥[2]

पहले चरण का अर्थ बूझिए। 'हल' और 'ञम' के 'मध्य' को 'समान-युत' करके शब्द बनाइए। इस यात्रिक प्रक्रिया मे पाणिनीय सूत्रो की खाल उधेडनी पडेगी। सतसई-लेखक का 'हल' पाणिनि के प्रत्याहार 'हल्' से भिन्न है। टीकाकार के अनुसार इस 'हल' का अर्थ है—ह-य-व-र-ल (हयवरट्, लण्)। उसमे से एक वर्ण लीजिए। लेखक को **'र'** अभीष्ट है। 'ञम' अर्थात् 'ञम्' प्रत्याहार के सूत्र 'ञमङणनम्' मे से भी एक वर्ण ले लीजिए। यहाँ **'म'** अभिप्रेत है। इस रीति से उपलब्ध **'र'** और **'म'** को 'समान-युत' कर दीजिए। लेखक के निगूढ आशय तक पहुँचने के लिए गोता लगाना होगा। व्याकरण-शास्त्र के अनुसार अ, इ, उ, ऋ और ऌ 'समान' हैं। अपने बुद्धि-बल से जहदजहल्लक्षणा के सहारे इनमे से 'अ' को लेकर 'र' और 'म' के मध्य मे डाल दीजिए। इस ढग से 'राम' शब्द की रचना हुई। पिंगल-पाडित्य प्रदर्शन का भी एक नमूना द्रष्टव्य है :

इद्र खानि सुर देव ऋषि रुकुमिणि पति शुभ जान।
भोजन दुहिता काक अलि आनँद अशुभ समान ॥[3]

दोहे का अर्थ यह है कि मगण, नगण, भगण तथा यगण शुभ हैं और जगण, रगण, सगण एव तगण अशुभ हैं। किंतु, इस अर्थलोक की यात्रा मे आकाश-पाताल एक कर देना होगा। 'इद्रखनि' से **'इद्राणी'**, 'सुर' से **'अमर'**, 'देवऋषि' से 'नारद', 'रुकुमिणि पति' से **'विहारी'**, 'भोजन' से **'आहार'**, 'दुहिता' से **'पुत्रिका'**, 'काक' से **'वलिभुक्'**, और 'आलि' से **'शारग'** शब्दो का ग्रहण कीजिए। तत्पश्चात् इन शब्दो की गुरु-लघु मात्राओ के अनुसार क्रमश उपर्युक्त आठ गणों का अर्थ निकाल लीजिए।

१. सतसई, ३।१२
२. सतसई, ३।५८
३. सतसई, ३।७७

इन उदाहरणो से निर्भ्रांत धारणा बनती है कि यह कृति रामचरितमानसकार तुलसीदास की नही है, विशेषकर ऐसी स्थिति मे जबकि इसकी रचना इसकी अपनी उक्ति के अनुसार (स० १६४२ मे) 'रामचरितमास' के अनतर ही हुई है। कहा जा सकता है कि उक्त प्रकार के 'कुछ' दोहे प्रक्षिप्त है, वैज्ञानिक पाठालोचन द्वारा इन प्रक्षिप्त अशो को छांट देने पर सतसई की प्रामाणिकता स्वीकार्य होनी चाहिए। इसका उत्तर है कि ऐसे दोहो की सख्या 'कुछ' ही नही है। अभिव्यजना-पद्धति और भाषा-शैली की दृष्टि से तुलसी की प्रवृत्ति के प्रतिकूल पडने वाले बहुसख्यक दोहो को निकाल देने पर 'सतसई' ही तिरोहित हो जाएगी।

२ प्रमाण-रूप मे उद्धृत रचना-काल सबधी दोहा स्वय प्रक्षिप्त एव अप्रामाणिक है। तुलसी ने अपने प्रामाणिक ग्रथो 'रामचरितमानस' और 'पार्वतीमगल' मे उनकी रचना-तिथि दी है। उनमे उन्होने विगत-सवत्-वर्ष का व्यवहार किया है। 'सतसई' का उक्त दोहा इस गणना-प्रणाली के विरुद्ध पडता है। दूसरी बात यह है कि 'सतसई' में रचनाकाल-निर्देश के लिए जिस शैली का उपयोग लिया गया है वह (कवि-प्रथा के अनुरूप होने पर भी) उक्त दोनो कृतियो मे तुलसी द्वारा अपनायी गयी शैली से बिलकुल भिन्न है।

३ यदि सतसई मे सीता-भक्ति की प्रधानता सापत्ति स्वीकार कर ली जाए तो भी वह तुलसी की प्रवृत्ति के विरुद्ध है। तुलसी की दृष्टि मे जितने भी अन्य भजनीय हैं उनकी भक्ति राम-भक्ति का ही साधन है। उनके आराध्य राम हैं, राम-भक्ति ही प्रधान है। यह और बात है कि उन्होने सीता-लक्ष्मण-सहित राम की भक्ति का अनेकश उल्लेख किया है।

४ यह ठीक है कि 'सतसई' की अनेक अर्थात् एक से अधिक हस्तिलिखित प्रतियाँ मिलती हैं, परतु वे सख्या मे बहुत थोडी हैं। अधिक महत्त्व की बात यह है कि वे प्रतियाँ प्राचीन नही हैं। डॉ० माताप्रसाद गुप्त को जो प्राचीनतम प्रति प्राप्त हुई है वह स० १९०३ की है।[1] यह तथ्य भी सतसई की अप्रामाणिकता सूचित करता है।

५ 'सतसई' पर लिखित टीकाओ से उसका तुलसी-रचित होना सिद्ध नही होता। टीकाएँ तो 'कुडलिया-रामायण' और 'हनुमानचालीसा' पर भी मिलती हैं। इस दृष्टि से उन्हे भी तुलसी-कृत मानना पडेगा। लोक मे अधानुकरण बहुत होता है। किसी प्रतिष्ठित रामायणी ने तुलसी को सतसईकार के रूप मे विख्यात करने के लिए टीका लिख दी तो भक्तो द्वारा उसका अनुसरण भी होने लगा।

डॉ० माताप्रसाद गुप्त की मान्यता है कि "सतसई और दोहावली के मूल मे कवि के दोहो का ऐसा तरल सग्रह था जिसको उसके देहावसान के बाद अलग-अलग ढग से बढाकर इस प्रकार के दो एक-दूसरे से किंचित् भिन्न सग्रहो के रूप मे उपस्थित किया गया।"[2] इसका तात्पर्य यह हुआ कि ये दोनो ही कवि की प्रामाणिक कृतियाँ हैं, तुलसी-रचित मूल-

१ तुलसीदास, पृ० २२६
२ तुलसीदास, पृ० २२७

दोहो मे क्षेपक मिलाने की दो स्वतत्र परपराएँ चल पडी, और फलस्वरूप दो 'किंचित् भिन्न' सग्रहो का निर्माण हो गया। वास्तविकता यह है कि ये दोनो सग्रह एक दूसरे से 'किंचित् भिन्न' न होकर वहुधा भिन्न है। सतसई के पचहत्तर प्रतिशत से अधिक दोहे 'दोहावली' मे नही हैं, और अधिकाश दोहो की शैली तुलसी की अभिव्यजना-पद्धति से सादृश्य नही रखती।

आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र का अभिमत है कि "तुलसीसतसई किसी करामाती की कृपा है जिसने 'सतसई' की पूर्ति के लिए प्रयास किया है। हो सकता है कि विहारी-सतसई का प्रचार वहुत अधिक होने पर यह प्रेरणा किसी के मन मे जगी हो। 'रहीम की सतसई' भी ऐसे ही लोगो ने प्रसिद्ध कर रखी है।"[1] ऐतिहासिक तथ्य है कि विहारी हिंदी के प्रथम सतसईकार हैं।[2] यही धारणा तर्कसगत जँचती है कि किसी परात्परवादी भक्त के मन मे इस वात की प्रवल लालसा जाग उठी कि तुलसीदास को सतसई का भी निर्माता और हिंदी का सर्वप्रथम सतसईकार प्रसिद्ध किया जाए। इसी आवश्यकता की पूर्ति के निमित्त 'तुलसी सतसई' का प्रादुर्भाव हुआ।

[ग] प्रामाणिक रचनाएँ

प्रामाणिक रचनाओ के भी दो उपवर्ग हैं। दूसरे उपवर्ग की पूर्वोक्त 'रामचरित-मानस' आदि आठ रचनाओ को सभी विद्वान् तुलसी-रचित मानते हैं। केवल 'कवितावली' के कुछ पद्यो के कर्तृत्व का आरोप 'भृग' नामक कवि पर किया गया है। "कुछ लोगो का अनुमान है कि गोसाईंजी के 'भृग' नामक एक शिष्य ने उनके फुटकल रामचरित्र-सवधी कवित्त-सवैयो का 'कवित्तरामायण' के नाम से सग्रह किया था। शिवसिंह सेंगर ने अपने 'सरोज' मे 'भृग' का उल्लेख किया है और उसे १७०८ सवत् मे विद्यमान वताते हुए उसकी कविता के उदाहरण रूप मे निम्नलिखित दो सवैये दिये हैं"[3] जो 'कवितावली' मे भी पाये जाते हैं

पग नूपुर औ पहुँची कर कंजनि मजु बनी मनिमाल हिये।
नवनील कलेवर पीत झगा झलकै पुलकै नृप गोद लिये।।
अरबिंद सो आनन रूप मरंद अनदित लोचन भृग पिये।
मन मो न बस्यौ अस बालक जौं तुलसी जग मे फल कौन जिये।।
जब नयनन प्रीति ठई ठग स्याम सो स्यानी सखी हठि हौं बरजी।
नहिं जान्यो बियोग सो रोग है आगे झुकी तब हौं तेहि सौं तरजी।।
अब देह भई पट नेह के घाले सो ब्योंत करै बिरहा दरजी।
ब्रजराजकुमार बिना सुनु भृंग अनग भयो जिय को गरजी।।[4]

१ हिंदी-साहित्य का अतीत, पृ० २३७

२. उनके पूर्व सस्कृत और प्राकृत में सतसई-साहित्य उपलब्ध है—दुर्गासप्तशती, आर्यासप्तशती, गाहासत्तसई आदि।

३. वावू श्यामसुदरदास गोस्वामी तुलसीदास, पृ० ७२

४. कवितावली, क्रमश १।२, ७।१३३

शिवसिंह सेंगर के कथन मे कोई सार नही दृष्टिगोचर होता। परपरा इन पद्यो को तुलसी-रचित मानती आयी है। कवितावली की प्रतियो मे इन पद्यो का अन्य पद्यो की भांति ही समावेश मिलता है। शैली की दृष्टि से पहला पद्य सोलहो आने तुलसी के अनुकूल है। उसमे तुलसी के नाम की छाप भी विद्यमान है। लोचन के उपमान-रूप मे 'भृग' का सार्थक प्रयोग रूपक की सहज निबधना का सूचक है। दूसरे पद्य की शैली मे जो किंचिद्भिन्नता दिखायी देती है वह विषय की भिन्नता के फलस्वरूप स्वाभाविक है। भ्रमरगीत-परपरा मे गोपियो ने उद्धव को 'भृग' कहकर सबोधित किया है। तुलसी ने यहां पर उसी परपरा का अनुसरण किया है। इसलिए 'भृग' के इन सहज-सार्थक प्रयोगो मे किसी अन्य कवि के नाम की अतर्हित छाप खोजना अनावश्यक है। इन्हे तुलसी-कृत मानना ही समीचीन है।

दूसरे उपवर्ग की 'वैराग्यसदीपनी', 'रामललानहछू' और 'रामाज्ञाप्रश्न' की प्रामाणिकता पर सदेह प्रकट किया गया है। उन पर विचार किया जाएगा।

१. वैराग्यसंदीपनी

प्रामाणिकता

'वैराग्यसदीपनी' को तुलसीकृत मानने का मुख्य आधार यह है कि परपरा ने उसके कर्तृत्व के सबध मे कोई सदेह नही किया। रामायणी पडितो और टीकाकारो श्री वदनपाठक, प० रामगुलाम द्विवेदी, श्री बैजनाथदास, प० महादेवप्रसाद, श्री कोदोराम, महात्मा अजनीनदनशरण, प० श्रीकातशरण आदि ने एक स्वर से तुलसी को उसका रचयिता माना है। हिंदी-साहित्य के आलोचको (मिश्रबधु, बाबू शिवनदन सहाय, बाबू श्यामसुदरदास, प० रामचद्र शुक्ल, प० रामनरेश त्रिपाठी, डॉ० रामकुमार वर्मा, आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र आदि) के मतानुसार भी वह तुलसी की रचना है।

डॉ० माताप्रसाद गुप्त ने इसे गड्डलिकाप्रवाह समझा है। उनका सशय तर्क-बुद्धि पर आश्रित है। उनका अन्वीक्षण है—"व्यापक रूप से यह तुलसीदास-कृत मानी गयी है। किंतु केवल इसी कारण इसे तुलसीदास की प्रामाणिक रचना मानना उचित नही जान पडता है।"[1] अपने पक्ष-पोषण मे उन्होंने दो तर्क दिये हैं १ इसकी कोई प्रति कवि के जीवनकाल की अथवा विशेष प्राचीन नही है। अधिक-से-अधिक प्राचीन प्रति भी प्राय डेढ सौ वर्ष पुरानी है। २ इसकी शैली और विचारधारा तुलसीदास के अन्य ग्रथो के समान नही है।

ये तर्क सर्वथा निरालब न होते हुए भी सबल नही हैं। जहां तक प्रतियो की प्राचीनता का प्रश्न है, डॉ० गुप्त ने 'सतसई' की लगभग सौ वर्ष पुरानी प्रति को गौरव दिया है और प्रक्षेपो के साथ उसकी प्रामाणिकता स्वीकार की है।[2] तो फिर यह न्यायसगत नही है कि डेढ सौ वर्ष पुरानी प्रति को जाली मान लिया जाए। तुलसी की महनीय कृतियो की

१. तुलसीदास, पृ० १३४
२. तुलसीदास, पृ० २२६-२७

तुलना मे 'वैराग्यसदीपनी' निश्चय ही महत्त्वहीन है। अत उसकी प्राचीन प्रतियो का परिरक्षित न होना आश्चर्य की बात नही है।

अपने दूसरे तर्क का समर्थन उन्होने 'वैराग्यसदीपनी' से पद्रह उद्धरण देकर उनके दोष-दर्शन द्वारा किया है।[1] केवल तीन की प्रतिसमीक्षा पर्याप्त होगी.

१. परसै बिना निकेत।

२. कोमल बानी सत की स्रवै अमृतमय आइ।

३. मोह अध रवि बचन बहावै।[2]

पहले उद्धरण पर आक्षेप है कि यहाँ पर 'निकेत' शब्द शरीर के लिए आया है किंतु तुलसीदास के अन्य ग्रथो मे वह केवल घर के अर्थ मे प्रयुक्त हुआ है, इसलिए यह दोहा तुलसी-रचित नही हो सकता। उत्तर मे निवेदन है कि यह अपने मे पर्याप्त कारण नही है। इस प्रकार के एकाकी प्रयोग तुलसी ने बहुत किये हैं। इस गलत कसौटी पर उन सब अशो को प्रक्षिप्त मानना पडेगा। एक-दो उदाहरणो से मेरे कथन की समीचीनता उपपन्न हो जाएगी। 'विनयपत्रिका' की एक पक्ति है

बुद्धि मन इद्रिय प्राण चित्तातमा काल परमाणु चिच्छक्ति गुर्वी।[3]

यहाँ पर अन्त करणचतुष्टय के प्रसग मे **'आतमा'** का प्रयोग 'अहकार' के लिए किया गया है। तुलसी के सपूर्ण साहित्य मे यह प्रयोग अकेला है। केश[4] (ब्रह्मा, महादेव), अमी[5] (जल), लोचहिं[6] (अभिलाषहिं, देखहिं), गम[7] (गमन) आदि इसी प्रकार के अपवाद हैं। इन पदों को सभी प्रामाणिक मानते हे। 'रामचरितमानस' मे मोरनी के लिए **'भरनी'**,[8] वक्रोक्ति के लिए 'अवरेब',[9] 'दयालु' के लिए 'घृनी'[10] आदि का एकाकी प्रयोग तुलसी की शैली की विशेषता है। 'निकेत' का प्रयोग भी ऐसा ही है। पूरे दोहे का 'रामचरितमानस' की समशील पक्तियो से मिलान करने पर साम्य ही दिखायी पडता है

सुनत लखत श्रुति नयन बिनु रसना बिनु रस लेत।
बास नासिका बिनु लहै परसै बिना निकेत॥[11]

तुलना करके देखिए.

बिनु पद चलै सुनै बिनु काना। कर बिनु करम करै बिधि नाना॥
आनन रहित सकल रस भोगी। बिनु बानी बकता बड़ जोगी॥

---

१ तुलसीदास, पृ० १३४-३६
२ वैराग्यसदीपनी, क्रमश ३, १९, २२
३. विनयपत्रिका, ५४।२
४ विनयपत्रिका, ४६।५
५. पार्वतीमगल, १३५
६ पार्वतीमगल, ४
७. पार्वतीमगल, ३१
८. रामचरितमानस, १।३१।३
९ रामचरितमानस, १।३७।५
१०. रामचरितमानस, ७।२१।४
११. वैराग्यसदीपनी, ३

तन विनु परस नयन विनु देखा । ग्रहै घ्रान विनु वास असेषा ॥[1]

दूसरे उद्धरण का पूरा दोहा इस प्रकार है

कोमल वानी सत की स्रवत अमृतमय आइ ।
तुलसी ताहि कठोर मन सुनत मैन होइ जाइ ॥

डॉ० गुप्त के मतानुसार इस दोहे मे 'आइ' तो निरर्थक है ही, 'अमृतमय' का 'मय' भी कुछ कम निरर्थक नही है । मेरे विचार से इस पद्य मे अन्य दोष तो हैं, किंतु निरर्थकता का दोष कतई नही है। 'आइ' का अर्थ है अनल (अग्नि > अग्गि > आगि > आइ)। 'अमिअँ मूरि मय चूरनु चारू' की भाँति ही यहाँ भी 'मय' (सस्कृत के 'मयट्' प्रत्यय) का व्यवहार हुआ है । दोहे का अर्थ है— सत की कोमल वाणी से अमृतमयी (सुधा-निर्मित) आग की धारा निकलती है, जो श्रोताओं के कठोर मन को मोम की भाँति पिघला देती है। अमृतमयी होने के कारण उसमे दाहकता न होकर जीवनदायिनी शक्ति है । विरोधाभास के चमत्कार से युक्त इस चित्रात्मक उक्ति मे भाव का मनोवैज्ञानिक निरूपण है। मधुसूदन सरस्वती ने इस चित्त-द्रुति का सहृदय-सवेद्य सारगर्भित विवेचन किया है। भावक का चित्त लाख की भाँति स्वभावत कठिन होता है। भाव्य वस्तु के भावन से वह उसी प्रकार द्रुत हो जाता है जिस प्रकार आग की आँच से लाख[2]। (भगवद्धर्म के कारण द्रुत चित्त की ईश्वरविषयक धारावाहिक वृत्ति ही भक्ति है।[3]) तुलसी के काव्य मे द्रुति का बहुधा उल्लेख हुआ है[4]। अतएव उक्त दोहा तुलसी की विचारधारा और शैली के प्रतिकूल नही है।

तीसरे उद्धरण का सदर्भ है

सीतल वानी सत की ससिहू ते अनुमान ।
तुलसी कोटि तपन हरै जो कोउ धारै कान ॥
पाप ताप सब सूल नसावै । मोह अंध रवि वचन बहावै ॥
तुलसी ऐसे सदगुन साधू । वेद मध्य गुन विदित अगाधू ॥[5]

अतिम चरण पर डॉ० गुप्त की आलोचनात्मक टिप्पणी है—"अध का प्रयोग 'अधकार' के अर्थ मे हुआ है, जो तुलसी-ग्रथावली मे अन्यत्र नही मिलता । उसको भी 'वचन रवि' नही 'रवि वचन' 'वहा' भर देता है, नष्ट नही करता ।" उनकी यह टिप्पणी चित्य है। किसी कवि की अप्रौढ रचना मे 'अध'-जैसा प्रयोग सभाव्य है। दूसरे, जो बात 'निकेत' के सबध मे कही गयी है वह अध' पर भी लागू होती है। डॉ० गुप्त के अनुसार 'रवि वचन' का प्रयोग तुलसी-कृत नही हो सकता, यदि 'वैराग्यसदीपनी' तुलसी की रचना होती तो वे 'वचन रवि' लिखते अर्थात् उपमेय का प्रयोग उपमान के पूर्व करते। इस अवधारणा में दो भ्रातियाँ हैं । एक तो, जहाँ रूपक नही है वहाँ रूपक मान लिया गया

---

१. रामचरितमानस, १।११८।३-४

२ चित्तद्रव्य हि जतुवत् स्वभावात् कठिनात्मकम् ।
तापकैर्विषयैर्योगे द्रवत्वम्प्रतिपद्यते ।।—भक्तिरसायन, १।४

३ भक्तिरसायन, १।३

४ रामचरितमानस, १।११२।२, २।७२०।४, ३।१६।१, ७।१२५।४ आदि

५. वैराग्यसदीपनी, २१, २२

है। यहाँ उपमा है। 'रबि बचन' का अर्थ है—रवि-सदृश वचन। यह वाचकलुप्तोपमा का विशिष्ट रूप है। दूसरे, तुलसी-साहित्य की उपेक्षा करके यह धारणा बना ली गयी है कि कवि ने ऐसे प्रयोग कहीं नहीं किये हैं। सच यह है कि तुलसी ने स्वच्छंदतया ऐसे प्रयोग किये हैं, जैसे

मन अगहुँड तनु पुलक सिथिल भये नलिन नयन भरे नीर।[1]

'नलिन नयन' का अर्थ है—नलिन-सदृश नयन।

डॉ० गुप्त द्वारा सपादित 'रामचरितमानस' से उदाहरण लीजिए

(क) सरद मयंक बदन छबि सीवाँ।

(ख) नव अंबुज अबक छबि नीकी।[2]

डॉ० गुप्त की 'रवि बचन'-विषयक समीक्षा के अनुसार ये पक्तियाँ तुलसी-कृत नही मानी जानी चाहिएँ, क्योकि तुलसीदास 'वदन मयक' और 'अवक अवुज' ही लिखते। रोचक बात यह है कि उपर्युक्त तीनो उदाहरणो मे उपमेय-उपमान का क्रम अनायास बदला जा सकता था, गीत और चौपाइयो को कोई व्याघात न पहुँचता। फिर भी कवि ने ऐसा नही किया। क्योकि, वह आग्रह-बद्ध नही है। यह उसकी स्वाभाविक शैली है।

'बहावै' पर विचार कीजिए। लक्षणा और व्यजना का तिरस्कार करके डॉ० गुप्त ने उसका अर्थ किया है—बहाता है, नष्ट नही करता। प्रस्तुत प्रसग मे उक्त क्रिया का मुख्यार्थबाध है। यहाँ पर लक्षणा-व्यजना से 'बहावै' का अर्थ है—दूर करता है, नष्ट करता है। कोश-ग्रथो मे 'बहाना' क्रिया का यह अर्थ दिया हुआ है। तुलसीदास ने स्वय भी इसका बहुश प्रयोग किया है, जैसे

१. नातो नेह नाथ सो करि सब नातो नेह बहैहों।[3]

२ दुष्ट तर्क सब दूरि बहाई।[4]

कहा गया है कि विचारधारा की दृष्टि से भी 'वैराग्यसदीपनी' तुलसी-रचित नहीं है। इस धारणा के पोषणार्थ दो तर्क दिये गये हैं—एक तो यह कि 'वैराग्यसदीपनी' मे जिस 'सातिपद' की महत्ता प्रतिपादित की गयी है वह तुलसी-ग्रथावली मे अन्यत्र नही मिलता, और दूसरा यह कि तुलसी-ग्रथावली मे प्रतिपादित वर्णव्यवस्था-समर्थक विचारो का 'वैराग्यसदीपनी' में निराकरण किया गया है।[5] दोनो ही तर्क निर्मूल हैं। एक-एक पर विचार कीजिए।

---

१. गीतावली, २।६९।३

२ रामचरितमानस, १।१४७।१, १।१४७।२

३ विनयपत्रिका, १०४।४

४ रामचरितमानस, ७।४६।४

५ उदाहरण-रूप में उद्धृत अश है—

(I) पूजिअ विप्र सील गुण हीना। सूद्र न गुन गन ज्ञान प्रवीना ॥—रामचरितमानस, ३।३४।१

(II) तुलसी भगत सुपच भलौ भजै रैन दिन राम।
ऊँचो कुल केहि काम को जहाँ न हरि को नाम ॥
जदपि साधु सब ही विधि हीना। तदपि समता के न कुलीना ॥—वैराग्यसंदीपनी, ३८, ४०

१ 'शांति' का अर्थ है—काम, क्रोध आदि चित्तवृत्तियों का शमन। 'शांति' और 'शम' पर्यायवाची हैं।[1] 'वैराग्यसंदीपनी' के अंतर्गत संत-स्वभाव और शांति के वर्णन में इसी वस्तु का प्रतिपादन है। 'रामचरितमानस' के विभिन्न स्थलों पर और 'विनयपत्रिका' में संतों के लक्षणों का निरूपण करते समय इस विशेषता पर विशेष बल दिया गया है। 'शांति' और 'सम' शब्दों का प्रयोग भी मौजूद है, उदाहरण के लिए,

क संतन्ह के लच्छन सुनु भ्राता। अगनित श्रुति पुरान विख्याता।।
विगत काम मम नाम परायन। सांति बिरति बिनती मुदितायन।।[2]

ख श्री रघुनाथ कृपालु कृपा तें संत सुभाव गहौंगो।।
विगत मान समसीतल मन परगुन नहिं दोष कहौंगो।।[3]

प्रौढ रचनाओं में प्रारंभिक रचना का अविकल सादृश्य खोजना अनुचित है। और, एक कृति में प्रतिपादित वस्तु का अन्य कृतियों में ज्यों-का-त्यों वर्णन कवि-कर्म की आवश्यकता नहीं है। 'बरवैरामायण' में अंकित सखियों का हास्य-विनोद, 'कवितावली' में सीता द्वारा किया गया परिहास, 'गीतावली' के उत्तरकांड में वर्णित वसंत-विहार और सीता-वनवास 'रामचरितमानस' में कहाँ है ?

२ दूसरे तर्क में तुलसी की विचार-धारा को गलत समझा गया है। वर्ण-व्यवस्था का संबंध सामाजिक लोक-व्यवहार से है। सामाजिक दृष्टिकोण से ही कवि ने ब्राह्मण को अन्य वर्णों से श्रेष्ठ कहा है। जहाँ तक भक्त का प्रश्न है, वह सभी जातियों और वर्णों के मूर्धन्य पर प्रतिष्ठित है। इसका एक उत्कृष्ट उदाहरण शबरी है। वह 'अधमजाति' ही नहीं है, 'अधम ते अधम अधम अति नारी'[4] भी है। फिर भी वह 'हरिपदलीन' हो गयी[5] और 'कुलीन' समझे जाने वाले भ्रम-जाल में ही फँसे रहे। 'वैराग्यसंदीपनी' में प्रयुक्त 'सुपच' (श्वपच, चंडाल) शब्द से भी बिचकने की जरूरत नहीं है। मनुष्य-चंडाल से पक्षी-चंडाल (कौवा) कहीं निम्नतर है, तथापि भक्त होने के कारण वह 'पक्षी-चंडाल'[6] (काकभुशुंडि) 'रामचरितमानस' में महामहिम उच्चतर आसन पर विराजमान है। तुलसी के राम ने जीवों का तारतम्य निरूपित करते हुए भक्त को उच्चतम ब्राह्मण से भी तीन सीढ़ी ऊपर स्थान दिया है

मम माया संभव संसारा। जीव चराचर बिबिध प्रकारा।।
सब मम प्रिय सब मम उपजाए। सब तें अधिक मनुज मोहि भाए।।
तिन्ह महँ द्विज द्विज महँ श्रुतिधारी। तिन्ह महँ निगम धर्म अनुसारी।।
तिन्ह महँ प्रिय बिरक्त पुनि ग्यानी। ग्यानिहु तें अति प्रिय बिग्यानी।।
तिन्ह तें पुनि मोहि प्रिय निज दासा। जेहि गति मोरि न दूसरि आसा।।

---

१. देखिए—शब्दकल्पद्रुम, शान्ति कामक्रोधादिप्रशम ।
२. रामचरितमानस, क्रमशः, ७।३७।३, ७।३८।३
३ विनयपत्रिका, १७२।१,३
४. रामचरितमानस, ६।३५।२
५. रामचरितमानस, ३।३६।७
६. रामचरितमानस, ७।११०।८

पुनि पुनि सत्य कहौं तोहि पाहीं। मोहि सेवक सम प्रिय कोउ नाहीं॥
भगति हीन बिरंचि किन होई। सब जीवहु सम प्रिय मोहि सोई॥
भगतिवंत अति नीचौ प्रानी। मोहि प्रान प्रिय असि मम बानी॥[1]

इतना ही नही, वे सत को अपने से भी अधिक मानते हैं .

सातव सम मोहिं मय जग देखा। मो तें संत अधिक करि लेखा॥[2]

इन प्रबल साक्ष्यो से प्रमाणित है कि 'वैराग्यसदीपनी' मे तुलसी के विचार का निराकरण नही है, अपितु समर्थन है।

प्रतियाँ और प्रकाशित संस्करण

'वैराग्यसदीपनी' की अनेक हस्तलिखित प्रतियाँ पायी जाती हैं, किंतु उनमे से कोई भी प्रति तुलसीदास के जीवन-काल की अथवा उन्नीसवी शताब्दी के पूर्व की नही है। 'वैराग्यसदीपनी' का विधिवत् सपादन नही हुआ है। उसके पाँच सस्करण उल्लेखनीय हैं

१ मूलमात्र—'तुलसी-ग्रथावली' मे सकलित
२. प० वदनपाठक की टीका और बाबू महादेवप्रसाद की टिप्पणी के साथ
३. श्री वैजनाथदास की टीका के सहित
४ गीता प्रेस से प्रकाशित सटीक सस्करण
५ प० श्रीकातशरण के 'सिद्धात-तिलक' से समन्वित

व्याख्या की दृष्टि से केवल अतिम सस्करण महत्त्वपूर्ण है।

रचना-काल

बाबू श्यामसुन्दरदास का अनुमान है कि 'वैराग्यसदीपनी' की रचना स० १६३६ और १६३९ के बीच किसी समय हुई। उनका तर्क है कि उसमे गोसाईं जी बारबार अपने मन को राग-द्वेप से अलग रहने को कहते हैं और शाति की महिमा गाते हैं। उनके "हृदय मे राग-द्वेष की सबसे अधिक सभावना उस समय थी जिस समय उनके 'रामचरितमानस' के विरुद्ध काशी मे एक बवडर-सा उठ रहा था और पडित लोग उनको कई प्रकार से नीचा दिखाने का प्रयत्न कर रहे थे। इसमे सदेह नही कि उत्तेजना का अवसर होने पर भी वे उत्तेजित नहीं हुए।'[3] दूसरी ओर, प० रामनरेश त्रिपाठी के विचार से "तुलसीदास की सबसे पहली रचना 'वैराग्यसदीपनी' जान पडती है। यह उस समय की रचना है जब तुलसीदास का झुकाव सत-मत की तरफ रहा होगा। सत-मत का प्रचार उन दिनो जोरो पर था। पर इसका कोई ठीक सवत् बताना असभव है। अनुमान से इसकी रचना सवत् १६२० की कही जा सकती है।"[4]

---

१. रामचरितमानस, ७।८६।३-१०
२. रामचरितमानस, ३।३६।३
३ गोस्वामी तुलसीदास (श्यामसुदर दास), पृ० ७९
४. तुलसीदास और उनका काव्य, पृ० २२३

यह वात सही है कि 'वैराग्यसदीपनी' की रचना का ठीक सवत् वताना असभव है। कवि के जीवनवृत्त और कृति के प्रतिपाद्य विपय, रचना-शैली तथा विचारधारा के आधार पर उसके निर्माण-काल का अनुमान किया जा सकता है। तुलसी के सामान्यत स्वीकृत जीवनवृत्त से सूचित होता है कि वे आसक्ति से सहसा वैराग्य की ओर मुडे थे। उस मानसिक अवस्थिति मे वैराग्य-भाव की अभिव्यक्ति स्वाभाविक प्रतीत होती है। अनेक पक्तियो मे उसकी सहज अभिव्यजना हुई है।[1] रचना का नाम 'वैराग्यसदीपनी' है। सत और शाति उसके मुख्य वर्ण्य विपय हैं। वे गृहत्याग करके सत-समाज मे आ गये थे, उनके स्वभाव को अनुकरणीय माना था। कारण यह है कि उन्होने गृहस्थ-जीवन की अशाति के वाद सत-सगति मे पहुँचकर शाति का अनुभव किया था। अत उनकी महिमा का स्वभावत वर्णन किया। प्रत्येक कृति मे कृतिकार की आत्माभिव्यक्ति अनिवार्य है। 'वैराग्यसदीपनी' इसका अपवाद नही है। उसकी रचना-शैली और विचार-धारा मे प्रौढता तथा परिपक्वता नही है। इसलिए वह कवि की आरभिक कृति है।

विपय और रचना-कौशल की दृष्टि से 'रामाज्ञाप्रश्न', 'रामललानहछू' और 'जानकीमगल' ये तीन पुस्तकें 'वैराग्यसदीपनी' और 'रामचरितमानस' के वीच के समय मे लिखी गयी प्रतीत होती हैं। 'रामचरितमानस' का आरभ स० १६३१ मे हुआ। इन सव वातो पर विचार करते हुए 'वैराग्यसदीपनी' स० १६२६-२७ के लगभग लिखित प्रतीत होती है।

२ रामाज्ञाप्रश्न

हस्तलिखित प्रतियाँ

डा० माताप्रसाद गुप्त ने वतलाया है कि इस पुस्तक की प्रतियाँ अनेक नामो से मिलती हैं—रामाज्ञाप्रश्न, रामशलाका, रघुवरशलाका, सगुनमाला, सगुनावली, रामायण-सगुनौती आदि, और सभी हस्तलिखित एव मुद्रित प्रतियो का पाठ समान है।[2] इसके विरुद्ध प० रामनरेश त्रिपाठी का कथन है कि "कुछ महानुभाव अनभिज्ञता से 'रामाज्ञाप्रश्न' और 'राम-शलाका' को एक समझते हैं। पर 'रामाज्ञाप्रश्न' और 'राम-शलाका' दो भिन्न चीजें हैं। मेरा अनुमान है कि 'राम-शलाका' ही को तुलसीदास ने छ घटे लगातार परिश्रम से तैयार किया होगा। 'रामाज्ञा-प्रश्न' के ३४५ दोहे छ घटे के लिए अत्यत अधिक हैं।"[3] त्रिपाठी जी ने हस्तलिखित प्रतियो का अनुसधान न करके केवल किंवदती का सहारा लिया है। उन्होने 'रामाज्ञा-प्रश्न के पर्याय-रूप मे प्रचलित 'रामशलाका' और 'मानस' की अनेक पोथियो मे पायी जाने वाली अप्रामाणिक 'रामशलाका' की दो भिन्न सज्ञाओ को एक समझ लिया है। डा० गुप्त का मत शोध पर आश्रित है। इस विपय के अधिकारी विद्वान् आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र भी 'रामशलाका' और 'रामाज्ञाप्रश्न'

---

१ जैसे—वैराग्यसदीपनी, ५, ६, ४६ आदि

२ तुलसीदास, २०६-७

३ तुलसीदास और उनका काव्य, पृ० २१०

को अभिन्न मानते हैं।[1] त्रिपाठी जी द्वारा उल्लिखित और किसी करामाती की चलायी हुई 'रामशलाका' इस प्रकार है

रामशलाका

सु	प्र	उ	वि	हो	मु	ग	व	सु	नु	वि	घ	धि	इ	द
र	रु	फ	सि	सि	रें	बस	है	म	ल	न	ल	य	न	अ
सुज	सो	ग	सु	कु	म	स	ग	त	न	ई	ल	धा	बे	नो
त्य	र	न	कु	जो	म	रि	र	र	अ	की	हो	स	रा	य
पु	सु	थ	सी	जे	इ	ग	म	स	क	रे	हो	स	स	नि
त	र	त	र	स	इ	ह	व	ब	प	चि	स	य	स	तु
म	का	ा	र	र	मा	मि	मी	म्हा	ा	जा	हू	ही	ा	जू
ता	रा	रे	री	हृ	का	फ	खा	जि	ई	र	रा	पू	द	ल
नि	को	मि	गो	न	म	ज	य	ने	मनि	क	ज	प	स	ल
हि	रा	म	स	रि	ग	द	न	ष	म	खि	जि	मनि	त	ज
सि	मु	न	न	कौ	मि	ज	र	ग	धु	ख	सु	का	स	र
गु	क	म	अ	ध	नि	म	ल	ा	न	ब	ती	न	रि	भ
ना	पु	व	अ	ढा	र	ल	का	ए	तु	र	न	नु	व	थ
सि	ह	सु	म्हे	रा	र	स	हिं	र	त	न	ष	ा	जा	ा
र	सा	ा	ला	धी	ा	री	ज	हू	ही	षा	जू	ई	रा	रे

यह शलाका 'रामचरितमानस' के बहुत से सस्करणो मे पायी जाती है। गीता प्रेस से प्रकाशित प्रतियो मे भी देखी जा सकती है। यह तुलसी-रचित नही है, फिर भी 'रामचरितमानस' के सबध से अत्यत लोकप्रिय हुई है। इस प्रसग मे मिश्र जी की यह उक्ति सोलह आने सही है कि "अनेक पुराण-पथ-विरोधियो को भी आपन्न होने पर 'मानस'

१. "सगुनावली के कई नाम हैं—रामशलाका, रघुवरशलाका, रामाज्ञाप्रश्न आदि"

—हिन्दी साहित्य का अतीत, पृ० २३८

की वाजारू पोथियो मे किसी करामाती की चलायी खानेदार रामशलाका मे आँख मूँद कर हाथ धरते देखा गया है।"[1]

हस्तलिखित प्रतियाँ

'रामाज्ञाप्रश्न'की उपलब्ध प्रतियो मे से तीन विशेष प्रामाणिक मानी जाती हैं

१ स० १६५५ की लिखी हुई एक प्रति पजाब मे प्राप्त हुई है। यह प्राचीनतम प्रति है।[2]

२ कहा जाता है कि कवि के हाथ की लिखी हुई एक प्रति काशी मे प० गंगाराम के उत्तराधिकारियो के पास थी। उसकी एक प्रतिलिपि छक्कनलाल कायस्थ ने स० १८८४ मे तैयार की।

३ स० १६८९ की एक प्रति काशिराज के सग्रह मे परिरक्षित है। इस प्रति का पाठ भी अन्य प्रतियो के समान है।

प्रकाशित संस्करण

'रामाज्ञाप्रश्न' कवित्व और भक्तिदर्शन की दृष्टि से महत्त्वहीन है, इसलिए उसका प्रचार कम हुआ। तुलसीदास की कृति होने के कारण उसके अनेक सस्करण प्रकाश मे आये। तीन मुख्य हैं

१ मूलमात्र—'तुलसीग्रथावली' मे सकलित

२. सरलभावार्थ-सहित—गीता प्रेस, गोरखपुर

३ 'सिद्धात-तिलक' के साथ—प० श्रीकातशरण

केवल अतिम सस्करण ही ऐसा है जिसमे प० श्रीकातशरण ने तुलनात्मक उद्धरण देते हुए 'रामाज्ञाप्रश्न' के पद्यो की विस्तृत व्याख्या की है।

प्रामाणिकता

'रामाज्ञाप्रश्न' को तुलसी-कृत न मानने के दो कारण दिये गये हैं। पहला तर्क यह है कि रचना-शैली शिथिल है जो तुलसी की काव्यकला के अनुरूप नही है। यह दृष्टि सकुचित है। किसी साहित्यकार की सभी रचनाएँ एक-सी प्रौढता नही प्राप्त कर सकती। प्राकृतिक नियम के अनुसार उसकी रचना-शक्ति का भी विकास और ह्रास होता है। 'रामाज्ञाप्रश्न' कवि की आरभिक कृति है। इसलिए उसमे 'रामचरितमानस' आदि की-सी परिपक्वता ढूँढने का उद्योग अनुचित है। दूसरा तर्क यह दिया गया है कि 'रामाज्ञा-प्रश्न' के कथानक मे भिन्नता है—'रामचरितमानस' मे तुलसी ने राम-परशुराम-मिलन जनकपुर मे विवाह के पूर्व कराया है, किंतु 'रामाज्ञाप्रश्न' मे बारात की वापसी के समय मार्ग मे। यह तर्क भी निर्बल है। तुलसी कवि थे, इतिहासकार नहीं। 'जानकीमगल' और 'गीतावली' मे भी यह प्रसग 'रामाज्ञाप्रश्न' के समान है। उनकी प्रामाणिकता के विषय

१ हिन्दी साहित्य का अतीत, पृ० २३८

२. तुलसीदास, पृ० २०६-७

मे किसी ने सदेह नही किया। यदि नगण्य कथा-भेद के आधार पर कृतिविशेष को अप्रा-
माणिक माना जाएगा तो 'रामचरितमानस' की राम-कथा के प्रतिकूल सीता-परित्याग
की निबधना के कारण 'गीतावली' को अन्य-रचित मानना पडेगा और सीता-लक्ष्मण-
त्याग के उल्लेख के कारण 'कवितावली' को भी तुलसी-साहित्य से बहिष्कृत करना
पडेगा।

निष्कर्ष यह है कि उक्त दोनो ही तर्क सारहीन हैं। 'रामाज्ञाप्रश्न' तुलसीदास की
रचना है।

रचना-काल

पूर्वोक्त स० १६५५ की हस्तलिखित प्रति के आधार पर बाबू श्यामसुदरदास ने
स० १६५५ को 'रामाज्ञाप्रश्न' का रचनाकाल माना है। प० सुधाकर द्विवेदी का मत है
कि स० १६५५ उसका प्रणयनकाल नही, वरन् उसका प्रतिलिपि-काल है और छक्कनलाल
ने १८८४ मे उस प्रतिलिपि की प्रतिलिपि तैयार की थी।[1] 'रामाज्ञाप्रश्न' के अतस्साक्ष्य
से भी इस मत का समर्थन होता है। उसकी कविता नितात साधारण कोटि की है। उसमे
रामचरितमानसकार तुलसी की प्रौढ लेखनी की झलक नही दिखायी देती। उसके कथानक
मे भी गडबडझाला है। बालकाड की कथा का पहले सर्ग मे भी वर्णन है और चौथे सर्ग मे
भी। पहले मे बारात के लौटते समय परशुराम का प्रसग वर्णित है, किंतु चौथे मे उसका
तिरस्कार किया गया है। वापसी के समय परशुराम-प्रसग की निबधना से भी वह राम-
चरितमानस के पूर्व रचित प्रतीत होता है।

एक धारणा यह है कि "प्रस्तुत कृति मे कवि स्वत उसकी रचना-तिथि इस प्रकार
देता हुआ दिखायी पडता है

सगुन सत्य ससि नयन गुन अवधि अधिक नय बान।
होइ सुफल सुभ जासु जस प्रीति प्रतीति प्रमान॥

"चद्रमा, नेत्र, गुण, नीति और वाण के आधिक्य की अवधि (समय) मे यह सगुन
(-माला), जिसका सुयश यह है कि प्रीति-प्रतीति के अनुसार ही सुफल होती है, सत्य
है।' कविजन-प्रयुक्त साकेतिक शब्दावली मे चद्रमा १, नेत्र २, गुण ३, नीति ४, और
वाण ५, के लिए प्रयुक्त होते हैं, और नीति (४) और वाण (५) मे अतर १ का है,
और कविप्रया के अनुसार इस प्रकार दी हुई तिथियाँ उल्टे क्रम से पढी जाती है, इसलिए
उपर्युक्त दोहे से हमे कृति के लिए १६२१ की तिथि प्राप्त होती है, यह आसानी से जाना
जा सकता है।"[2]

'आसानी से' क्या, मूँडमारी से भी उक्त निष्कर्ष पर पहुँचना शक्य नही है। दोहे
को प्रसग से विच्छिन्न करके उसका मनमाना अर्थ लगाया गया है। 'सुभ' को अनभीष्ट
समझकर छोड दिया गया है। 'सगुन' के साथ 'माला' का सयोग करके उसका अर्थ किया
गया है—'सगुनमाला' अर्थात् रामाज्ञाप्रश्न। प्रसग से स्पष्ट है कि 'सगुन' का अर्थ 'शकुन'

१. देखिए—गोस्वामी तुलसीदास (बाबू शिवनदन सहाय), पृ० २८४
२. तुलसीदास, पृ० २३५

ही है। 'जस' का अर्थ सुयश किया गया है जो यहाँ पर असगत है। उसका प्रयोग 'जैसा' के अर्थ मे हुआ है। पूर्वापर-सबध मिलाकर दोहे के अर्थ पर विचार कीजिए

सुदिन साँझ पोथी नेवति पूजि प्रभात सप्रेम।
सगुन विचारव चारुमति सादर सत्य सनेम॥
मुनि गनि दिन गनि धातु गनि दोहा देखि विचारि।
देस करम करता बचन सुगुन समय अनुहारि॥
सगुन सत्य ससि नयन गुन अवधि अधिक नयवान।
होइ सुफल सुभ जासु जसु प्रीति प्रतीति प्रमान॥
गुरु गनेस हरु गौरि सिय रामु लषनु हनुमानु।
तुलसी सादर सुमिरि सब सगुन बिचार बिधानु॥[1]

चारो ही दोहो मे 'सगुन' शब्द आया है। पहले, दूसरे और चौथे दोहे मे क्रमश 'विचारब', 'बिचारि' और 'बिचार' से सिद्ध है कि शकुन विचारने का प्रसग चल रहा है। इसलिए प्रस्तुत दोहे मे शकुन का फल प्रकट करने की सीमा वतलायी गयी है। आलोच्य दोहे की व्याख्या है

शकुन सत्य होगा। इस प्रकार निकाला गया शकुन एक (ससि) दिन मे, दो (नयन) दिन मे अथवा तीन (गुन) दिन मे अपना फल प्रकट करेगा। उसकी अधिक से अधिक सीमा चार (नय) या पाँच (वान) दिन की है।[2] पहली पक्ति का अर्थ अन्य रीति से भी किया गया है।

अव्वलन तो एक ही बार प्रश्न करने पर अभीष्ट सकेत मिल जाएगा। यदि न मिले तो दूसरी बार प्रश्न करना चाहिए। उसमे भी सफलता न मिलने पर तीसरी बार विचारना चाहिए। सामान्यत शकुन विचारने की यही सीमा है। अधिक-से-अधिक पाँच बार तक विचारा जा सकता है।[3] सीमा निर्धारित करने की आवश्यकता इसलिए पडी कि लोग आतुरतावश वारवार सगुन निकालते हैं, इससे शकुन-विचार का प्रभाव घट जाता है। शकुन-विचार के सबध मे स्मरण रखना चाहिए कि जिसका जैसा प्रेम और विश्वास है उसीके अनुसार शकुन मगलकारक तथा फलदायक होता है। दूसरी पक्ति का भाव एक प्रसिद्ध श्लोक मे निहित है—ज्योतिषी आदि मे जिसकी जैसी भावना होती है उसको वैसी ही सिद्धि प्राप्त होती है।[4]

उक्त दोहे मे पाठातर भी हैं। उसको स्वीकार कर लेने पर तो तिथि-सूचक कल्पित अर्थ और भी अधिक अग्राह्य हो जाता है। प० श्रीकातशरण ने 'जस' के वदले 'जसि' पाठ दिया है। नागरी-प्रचारिणी सभा और गीता प्रेस के सस्करणो मे **'नय वान'** के स्थान पर **'नय वान'** पाठ स्वीकार किया गया है। 'बान' के अभाव मे तिथि-गणना की

---

१. रामाज्ञाप्रश्न, ७।७।१-४
२. हिंदी-साहित्य का अतीत, पृ० ३०१-२
३ देखिए—उक्त दोहे पर 'सिद्धांत-तिलक'
४ मन्त्रे तीर्थे द्विजे देवे दैवज्ञे भेषजे गुरौ।
यादृशी भावना यस्य सिद्धिर्भवति तादृशी॥

सभावना ही खडित हो जाती है।

डा० भारद्वाज ने इस दोहे को तिथि-सूचक मानने के विरोध मे एक दूसरी आपत्ति भी उठायी है—"निर्माणकाल पुस्तक के आदि अथवा अत मे ही दिया जाता है। पर यह दोहा न आदि मे है और न अत मे ही, अतएव इस दोहे मे सवत् का आभास क्लिष्ट-कल्पना मात्र है।"[1] इसके विरुद्ध कोई आपत्ति कर सकता है कि 'रामचरितमानस' और 'पार्वतीमगल' की तिथिसूचक पक्तियाँ उनके आदि या अत मे नही है, पहले ग्रथ मे रचना-काल का निर्देश ३३वें दोहे के पश्चात् किया गया है, और दूसरे मे चार पद्यो के बाद। यह आपत्ति न्यायोचित नही है, क्योकि वे निर्देश उन ग्रथो की प्रस्तावना मे किये गये हैं और प्रस्तावना 'आदि' के ही अतर्गत है।

फलत, उक्त दोहे के आधार पर स० १६२१ को 'रामाज्ञाप्रश्न' का रचनाकाल मानना अयुक्त है। उसकी रचना-शैली, अप्रौढ होते हुए भी, 'वैराग्यसदीपनी' की तुलना मे कुछ विकसित है। कवि रामचरित वर्णन की ओर प्रवृत्त हुआ है। 'रामललानहछू' और 'जानकीमगल' मे वर्णन-कौशल का उत्तरोत्तर विकास हुआ है जिसकी पराकाष्ठा 'राम-चरितमानस' मे द्रष्टव्य है। इसमे सदेह नही कि 'रामाज्ञाप्रश्न' कवि की अभ्यासकालीन रचना है। उसका रचना-काल 'वैराग्यसदीपनी' के पश्चात् स० १६२७-२८ के आस-पास होना चाहिए।

३. रामललानहछू

प्रतियाँ और प्रकाशित संस्करण

'रामललानहछू' की कोई ऐसी प्रति प्राप्त नही है जो कवि द्वारा लिखित या सशोधित हो। इसके अतिरिक्त, प्रस्तुत रचना की बहुत थोडी हस्तलिखित प्रतियाँ उपलब्ध हैं। उनमे भी दो पाठ हैं। एक पाठ सामान्यत ज्ञात प्रतियो का है जो प्राचीन नही है। 'रामललानहछू' के मुद्रित सस्करण इसी पाठ के अनुसार है। इसमे ४० द्विपदियाँ (२० चतुष्पदियाँ अथवा ८० पक्तियाँ) हैं। दूसरे पाठ की एक ही प्रति मिली है। वह डा० माताप्रसाद गुप्त के पास है। उसमे दिया हुआ लिपिकाल स० १६६५ है। डा० गुप्त ने बताया है कि वह कवि के जीवन-काल की ज्ञात होती है।[2] उसमे केवल २६ द्विपदियाँ अर्थात् ५२ पक्तियाँ हैं। इस अप्रकाशित-प्रति और प्रकाशित सस्करण मे बहुत अतर है। केवल १२ द्विपदियाँ उभयनिष्ठ हैं। उनमे भी बहुत पाठ-भेद और क्रम-भेद है।

प्रकाशित पाठ की जो द्विपदियाँ अप्रकाशित पाठ मे नही मिलती उनमे वे पद्य भी हैं जिनमे लोहारिन, अहीरिन, तँबोलिन, दरजिन, मोचिन, मालिन और बारिन का रूप-चित्रण है, पहले से ही विद्यमान नाइन का उल्लेख है, और कौसल्या की जेठानी का निर्देश है।[3] अप्रकाशित पाठ की १४ द्विपदियाँ प्रकाशित पाठ मे नही पायी जाती। उनमे तीन

---

१ तुलसीदास और उनके काव्य, पृ० ३६

२. तुलसीदास, पृ० २०३-४

३. रामललानहछू, ९, १०, ११, १२, १३, १४, १५, १६ और १७

बातें ध्यानाकर्षक है।[1] १. नाइन निछावर की इयत्ता के सबध मे ठकठेना (झगडा) करती है, कई पद्यो मे इसका चित्रण है

(i) रघुवर कै निहछावर लेबु मए घोर हे॥
काहे झगरहु नउनिश्रा एहि सब लेहु हे।
राम बिश्राहि घर श्राएब देबु मए घोर हे॥
जो सब देहल रानी सो सब थोर हे।
सामी चढ़न को घोरा मोहि पटोर हे॥

(ii) के दिहल चुटकी मुदरिश्रा के दीहल रूप हे।
के दिहल रतन पदारथ भरि गएउ सूप हे॥[1]

२ उपर्युक्त पक्तियो मे प्रयुक्त 'घोर', 'घोरा', 'देहल', 'दिहल', 'दीहल', 'मुदरिआ' आदि से प्रत्यक्ष है कि उन पर भोजपुरी का गहरा रग है।

३ वस्तु-विधान प्रश्नोत्तर-शैली मे किया गया है। यह रोचक शैली लोकगीतो मे सहज-रूप मे पायी जाती है।

'रामललानहछू' का भी वैज्ञानिक पाठानुसधान नही हुआ है। उसके अनेक सस्करण प्रकाशित हैं। उनमे ये चार मुख्य हैं

१ मूलमात्र—'तुलसीग्रथावली' मे सगृहीत
२. भावार्थ-सहित—गीता प्रेस, गोरखपुर
३ सटीक-सटिप्पण—'तुलसी के चार दल' मे सकलित
४ 'सिद्धात-तिलक' के सहित—प० श्रीकातशरण

प्रथम दो सस्करण कामचलाऊ हैं। तीसरे मे प० सद्गुरुशरण अवस्थी ने शब्दार्थ देकर अर्थ-विवेचन किया है, साथ ही आलोचनात्मक टिप्पणियाँ दी हैं जिनमे तुलनात्मक दृष्टि से पद्यो के साहित्यिक सौंदर्य का उद्घाटन किया है। 'सिद्धाततिलक' मे प० श्रीकात शरण ने उसकी विशद व्याख्या प्रस्तुत की है।

प्रामाणिकता

'रामललानहछू' की प्रामाणिकता के सबध मे दो आपत्तियाँ उठायी गयी है। पहली आपत्ति यह है कि उसमें 'उत्तानश्रृगार' का वर्णन है "जिसमे तुलसी के उपास्य के पिता निम्नकुल की स्त्रियो के रूप यौवन पर मुग्ध दिखाये गये हैं।"[2]

डा० गुप्त ने इस शका का समाधान यह कहकर किया है कि प्रस्तुत पद्य प्रक्षिप्त हो सकता है और एक अति प्राचीन प्रति मे यह अश नही है। इसलिए केवल इस अश के आधार पर 'रामललानहछू' को कवि की कृतियो मे स्थान न देना ठीक न होगा। सभव है कि यह पद्य प्रक्षिप्त हो, किंतु मार्यादावाद के नाम पर इसे प्रक्षिप्त मानना तर्क-विरुद्ध है। इस पद्य पर अन्यत्र टिप्पणी करते हुए डा० गुप्त ने कहा है, "नहछू मे जो एक और बडी विचित्रता है, जिसकी तुलना के लिए तुलसी-ग्रथावली मे उदाहरण मिलना असभव

१ तुलसीदास, पृ० २०५
२. वही, पृ० १३०

है, वह है उसके ठेठ शृगार की—परकीया-रति भी नही छटने पायी है।"[1] आलोच्य पद्यो का विवेचन 'रामललानहछू' की समीक्षा के अन्तर्गत किया जाएगा। यहाँ पर इतना ही बता देना काफी है कि उक्त पद्यो मे शृगार रस नही है, शृगाररसाभास भी नही है, 'परकीया-रति' भी नही है, और शृगार मे ठेठता-जैसी कोई विशेषता नही होती। 'कृष्ण-गीतावली' और 'कवितावली' मे वर्णित गोपियो के प्रति कृष्ण का प्रेम परकीया-रति ही है। सात सौ रानियो के कामुक पति दशरथ का मनचलापन अस्वाभाविक नही है। 'रामचरितमानस' मे तुलसी के प्रभु ने छल करके जलधर की पत्नी के प्रति जो आचरण किया है, वह किस कोटि मे रखा जाएगा? 'रामललानहछू' का तथाकथित शृगार इन सबकी अपेक्षा अधिक मर्यादा-विरुद्ध नही है। अतएव उन तथाकथित शृगारिक पद्यो के बावजूद भी 'रामललानहछू' को तुलसी-कृत मानना समीचीन है।

दूसरी आपत्ति यह है कि 'रामललानहछू' मे इतिहास, प्रबध और शैली की दृष्टि से त्रुटियो का इतना आधिक्य है कि वह 'रामचरितमानस', 'विनयपत्रिका', 'गीतावली' आदि के रचयिता की कृति नही प्रतीत होती। इसका यथार्थ समाधान यह है कि वे तथाकथित दोष सबके सब वस्तुत दोष नही हैं। एकाध दोषो से कृति अप्रामाणिक नही हो सकती। दोष तो 'रामचरितमानस' मे भी हैं। उन्हे दोष मानने वाले विद्वानो ने 'रामललानहछू' को तुलसी की 'बाल-चेष्टा' अर्थात् प्रारभिक कृति मानकर प्रस्तुत आपत्ति का समाधान स्वय भी प्रस्तुत कर दिया है।[2]

रचना-काल

रामललानहछू मे कवि ने उसका रचना-काल नही दिया है। उसमे किसी ऐतिहासिक घटना का उल्लेख नही है जिससे काल-निर्धारण मे सहायता मिले। अतएव तुलसीदास की अन्य कृतियो के साथ उसके विषय, शैली और फलश्रुतिकथन की तुलना करके उसके निर्माण-काल का अनुमान किया गया है। अनुमानाश्रित होने के कारण उसके समय के विषय मे विद्वान् एकमत नही हैं। स्थूल रूप से दो प्रकार के मत व्यक्त किये गये हैं। एक मत के अनुसार वह 'रामचरितमानस' के पश्चात् निर्मित कृति है। दूसरे मत के अनुसार वह 'रामचरितमानस' के पूर्व की रचना है। मैं इस दूसरे मत को ग्राह्य समझता हूँ।

डा० रामकुमार वर्मा ने 'रामललानहछू' के रचना-काल के सबध मे तीन सभावनाएँ व्यक्त की हैं।[3] एक तो यह कि वह स० १६३९ की रचना है। दूसरी यह कि स० १६६९ मे कवि ने उसे चलते-फिरते बना दिया। तीसरी यह कि कवि के काव्य-जीवन के प्रभात मे उसकी रचना हुई, क्योकि उसमें 'कवि का न तो अभ्यास है और न प्रयास ही'। प्रथम दो सभावनाएँ वेणीमाधवदास के 'मूलगोसाईंचरित' पर आश्रित है जो स्वय अप्रामाणिक कृति है। तीसरी सभावना इस अर्थ मे मान्य है कि काव्य कला की

१. तुलसीदास, पृ० २३१
२. वही, पृ० २३३
३. हिंदी-साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृ० ३७२

दृष्टि से वह 'जानकीमगल' और 'रामचरितमानस' के पूर्व निर्मित प्रतीत होती है।

वावू श्यामसुदरदाम और प० रामनरेश त्रिपाठी के अनुसार 'रामललानहछू', 'जानकीमगल' और 'पार्वतीमगल' एक ही सिलसिले मे स० १६४३ के लगभग लिखे गये। 'पार्वतीमगल' मे कवि ने उसका रचना-काल 'जय सवत दिया है। विद्वानो की राय मे वह स० १६४३ का द्योतक है। वावू श्यामसुदरदास ने इन तीनो मगल-काव्यो के पौर्वापर्य पर विचार नही किया। उनकी सामान्य उक्ति है—"पार्वतीमगल, जानकीमगल और रामललानहछू एक ही समय के लिखे हुए ग्रथ जान पडते है। इनकी शैली और भापा एक ही प्रकार की है। 'पार्वतीमगल' और 'जानकीमगल' तो एक ही साँचे मे ढाले गये से लगते हैं। वही छद, वही क्रम यहाँ तक कि मगलाचरण का भी एक ही भाव है। अत ये ग्रथ १६४३ के लगभग वनाये गये होंगे।"[1]

इस मत के समर्थन मे कहा जा सकता है कि 'रामललानहछू', 'जानकीमगल' और 'पार्वतीमगल' इन तीनो कृतियो मे अद्भुत सादृश्य है

१ तीनो ही मगल-काव्य हैं,
२ तीनो का आकार सक्षिप्त है,
३ तीनो की रचना शास्त्रीय काव्य से भिन्न लोकगीत के रूप मे हुई है,
४. तीनो की भापा वोलचाल की अवधी है,
५ तीनो मे हसगति छद का उपयोग किया गया है,
६ तीनो दार्शनिकता और आलकारिकता के डवर से मुक्त हैं, और
७ तीनो की फलश्रुतियो मे समानता है।

अतएव इनका रचना-काल एक (लगभग १६४३ वि०) है।

इस मान्यता के खडन मे कई तर्क दिये जा सकते है

१ ये सव समानताएँ ऊपरी हैं। एक शैली की रचनाएँ भिन्न कालो मे लिखी जा सकती हैं। कवितावली-हनुमानवाहुक के पद्य वडी लम्बी अवधि के वीच भिन्न-भिन्न समयो पर लिखे गये हैं।

२ रचना-कौशल की दृष्टि से वह 'रामचरितमानस', 'जानकीमगल' और 'पार्वतीमगल' की तुलना में निश्चय ही अप्रौढ है। वह तुलसी के कवित्व-विकास के आरभिक अवस्थान की कृति प्रतीत होती है। एकाध आलोचको की दृष्टि मे तो वह इतनी निकृष्ट है कि उसकी रचना (यदि वह तुलसीदास की कृति है) स० १६११ के पूर्व मानी जानी चाहिए।

३ उसकी भापा मे वह समर्थता नही है जो उक्त रचनाओ मे पायी जाती है। इससे स्पष्ट है कि वह अभ्यास काल की रचना है।

४ वह 'जानकीमगल' से पहले की रचना है, यह तथ्य इस वात से भी प्रकट है कि 'जानकीमगल' की फलश्रुति मे 'उपवीत' शब्द अप्रत्यक्ष-रूप से 'रामललानहछू' की ओर निर्देश करता है। 'जानकीमगल' का रचना-काल 'रामचरितमानस' से पूर्व है।

---

१. गोस्वामी तुलसीदास, पृ० ८१, ८३

इसलिए 'रामललानहछू' उन दोनो से पूर्ववर्ती है।

ये तर्क अधिक वजनदार हैं।

त्रिपाठी जी का मत है कि 'रामललानहछू' का रचना काल 'पार्वतीमगल' के बीच मे मान्य है, और 'जानकीमगल' की रचना 'पार्वतीमगल' के समाप्त होने के दो दिन बाद हुई थी।[1] उनकी 'रामललानहछू'-विषयक मान्यता 'जानकीमगल' की फलश्रुति पर आश्रित है। उस फलश्रुति[2] से यह प्रतीत तो होता है कि 'जानकीमगल' के निर्माण के पहले उपवीतोत्सव के लिए विशेषतया उपयुक्त मगलगीत के रूप मे 'रामललानहछू' की रचना हो चुकी थी। किन्तु यह निष्कर्ष कथमपि नही निकलता कि वह गीत 'पार्वतीमगल' के साथ-साथ लिखा गया।

डा० भारद्वाज उसको स० १६६५ के कुछ पूर्व की रचना मानते हैं।[3] उनके निष्कर्ष का आधार डा० गुप्त द्वारा उपलब्ध वह हस्तलिखित प्रति है जिसका लिपि-काल स० १६६५ है। वह प्रति तुलसी द्वारा लिखित अथवा सशोधित नही है। अतएव लिपि-काल और रचना-काल को एक या आस-पास मान लेने का कोई प्रमाण नही है। उससे इतना ही अनुमेय है कि 'नहछू' का निर्माण स० १६६५ के पूर्व अवश्य हो गया था। कितने वर्ष पूर्व हुआ था—इस तथ्य के निर्धारण मे उस प्रतिलिपि से कोई सहायता नही मिलती।

प० सद्‌गुरुशरण अवस्थी की समति मे वह स० १६१६ के आस-पास की रचना है।[4] उनकी मान्यता का आधार यह सिद्धात है कि किसी कवि की आरभिक कृति मे भाषा का आडबर और अलकार-प्रियता अधिक रहती है, मध्य-युग की कृति मे भाषा और भावो का सामजस्य रहता है, अतिम युग की कृति मे भावो की प्रधानता रहती है और भाषा की उपेक्षा। 'रामललानहछू' मे भाषा की ओर बहुत ध्यान दिया गया है, उसकी भाषा 'फुदकती हुई चलती है', उसमे 'नर्तकी के पाद-विक्षेप का सा आवेग है।' वास्तविकता यह है कि 'नहछू' की भाषा मे आडबर नही है। उसमे स्वाभाविकता की विशेषता है। अलकार-प्रियता भी दृष्टिगोचर नही होती। प्रस्तुत कृति मे तुलसी ने अलकारो का सबसे कम प्रयोग किया है। उसकी भाषा धारावाहिक और प्रसन्न है। अवस्थी जी ने स्वय कहा है कि उसमे "प्रवाह का प्रस्रोत अनवरुद्ध है। कविता-सरिता स्वयनिर्मित कँकरीले मार्ग से होकर नही बहती, वरन् वह एक नहर की भाँति दीखती है जिसके दोनो ओर पक्के घाट हैं, जिसकी सतह सम है और जो मद-मद प्रवाहित हो रही है।"[5]

भावो के विषय मे उनका कथन है कि उसमे भावो की गहनता का अभाव है। कवि के प्रौढ-काल मे विचारो और भावो की जो प्रौढता होनी चाहिए वह 'नहछू' मे कही

---

१ 'जानकीमगल' के प्रकरण में इस पर विचार किया जाएगा।

२ उपवीत ब्याह उछाह जे सिय राम मगल गावहीं।
तुलसी सकल कल्यान ते नर नारि अनुदिन पावहीं।—जानकीमगल, २४

३. तुलसीदास और उनके काव्य, पृ० ४०

४ तुलसी के चार दल, पहली पुस्तक, पृ० ६६

५. वही, पृ० ६१

नही दीख पडती। 'प्रत्येक छद युवावस्था की उमग मे मुस्कराता हुआ दिखायी पडता है।' 'प्रत्येक पक्ति से यौवनोचित विनोद और प्रकाश छलकता है।' यह आलोचना विचारणीय है। 'नहछू' मे विचारो और भावो की गभीरता न होने का मुख्य कारण कवि-बुद्धि की अपरिपक्वता नही है। वह प्रस्तुत रचना के प्रयोजन की परिधि के बाहर है। 'नहछू' मगल-उछाह के अवसर पर नारियो द्वारा गाये जाने के लिए लिखित लोकगीत है। इसलिए 'रामचरितमानस' और 'विनयपत्रिका' के शास्त्रीय मानदड से उसे परखना असमीचीन है। अवेक्षणीय यह है कि कवि ने अपने प्रतिपाद्य को कितनी सफलता, स्वच्छता और अभिरामता से प्रस्तुत किया है। इस दृष्टि से वह एक सफल कृति है। नहछू'-जैसे उछाह पर गाये जाने वाले गीत मे यौवनोचित उल्लास ही शोभा देता है, 'अग गलित पलित मुडम' वाले बुड्ढो और बुढियो के दार्शनिक विचारो का प्रतिपादन नही।

डा० गुप्त ने मुद्रित पाठ के आधार पर 'रामललानहछू' का रचना-काल स० १६११ और उक्त अप्रकाशित प्रति के आधार पर स० १६१६ माना है। उसकी छीछालेदरात्मक समीक्षा प्रस्तुत करके उन्होने यह धारणा बनायी है कि "इतनी बडी ऐतिहासिक भूलो, प्रबध दोषो तथा ठेठ शृगार-पूर्ण वर्णनो और शैली की त्रुटियो से तो यही अनुमान होता है कि अपने इस रूप मे 'रामललानहछू' का कर्त्ता 'मानस', 'गीतावली', 'विनय' और 'कवितावली' का स्वनामधन्य रचयिता नही है, अन्यथा यदि यह तुलसी की रचना है तो निस्सदेह उसकी प्रारभिक कृति है। यह तो कवि की बाल-चेष्टा सी लगती है, और निश्चय ही इसकी रचना 'मानस' से कम-से-कम बीस वर्ष पूर्व अथवा 'रामाज्ञाप्रश्न' से कम-से-कम दस वर्ष पूर्व हुई होगी।"[1] मुझे दस के पहाडे का कोई औचित्य नही दिखायी देता। तुलसी की काव्य-शक्ति का विकास घोघा-गति से क्यो माना जाए? जब उन्होने काव्य-क्षेत्र मे पदार्पण किया तब उनकी बुद्धि और हृदय का समुचित विकास हो चुका था। क्या एक प्रौढ विद्वान् कवि को 'रामाज्ञाप्रश्न' और 'रामललानहछू' के सदृश रचनाओ के बीच (उनका जो भी क्रम माना जाए) तैयारी करने के लिए दस-बारह वर्षों का युग अपेक्षित था? इस अनुपात से तो 'जानकीमगल' के लिए भी कम-से-कम दस वर्ष का ही अवकाश चाहिए और उसके बाद 'रामचरितमानस' के लिए इससे कई गुना समय अपेक्षित है।

'रामललानहछू' इतनी घटिया और बचकानी कृति नही है कि उसे 'रामाज्ञाप्रश्न' से भी हीन माना जाए। उसमे 'रामाज्ञाप्रश्न' की अपेक्षा कही अधिक काव्योचित रमणीयता है। इसमे सदेह नही कि वह 'रामचरितमानस', 'विनयपत्रिका', 'कवितावली' और 'गीतावली' के समान उत्कृष्ट नही है, परतु जनसाधारण के उपयुक्त मगल-गीत के रूप मे उसकी उत्कृष्टता का प्रत्याख्यान नही किया जा सकता।

'रामाज्ञाप्रश्न' की तुलना मे 'रामललानहछू' की चित्रात्मकता, अर्थ-व्यजना और भाषा-प्रवाह से सूचित होता है कि वह उसके बाद की रचना है। परन्तु, उसका वस्तु-विन्यास और शब्दार्थ-नियोजन 'जानकीमगल' की भाँति प्रौढ नही है। अत 'रामलला-

---

१. तुलसीदास, पृ० २३३

नहछू' उन दोनो के बीच की कृति है। इन लघु-कृतियो का पारस्परिक अतर एक-दो वर्ष से अधिक नही हो सकता। इसलिए 'रामललानहछू' स० १६२८-२९ के लगभग रचा गया प्रतीत होता है।

४ जानकीमंगल

हस्तलिखित प्रतियाँ

जानकीमगल की कई हस्तलिखित प्रतियाँ प्राप्त हैं। उनमे से उल्लेखनीय ये हैं

१ कहा जाता है कि अयोध्या के 'कामद-कुज' मे स० १६३२ की लिखी हुई एक प्रति है। वह कवि की स्वहस्तलिखित बतायी जाती है। वह डा० माताप्रसाद गुप्त को देखने को नही मिल सकी।[1] इससे उसकी प्रामाणिकता मे सदेह होता है। इतना अवश्य प्रतीत होता है कि वह प्रति प्राचीन है। सभव है कि स० १६३२ उसका प्रतिलिपि-काल हो, क्योकि 'जानकीमगल' 'रामचरितमानस' के पूर्व की रचना है।

२ उक्त प्रति की एक प्रतिलिपि नागरी-प्रचारिणी सभा, काशी मे है।

३ एक प्रति अयोध्या के प० रामरक्षा त्रिपाठी के यहाँ है। उसकी प्राचीनता असदिग्ध है। वह उपर्युक्त पहली प्रति के विपय मे प्राप्त विवरण से मेल खाती है।

४ डा० गुप्त ने याज्ञिक-सग्रह मे प्राप्त तीन प्रतियो की चर्चा की है। एक का पाठ मुद्रित प्रतियो के पाठ से बिलकुल ही भिन्न है। वह किसी और की लिखी हुई स्वतत्र-कृति है। शेष दो प्रतियो का पाठ प्रकाशित सस्करणो के मेल मे है, किंतु उनमे रचना का नाम 'सीतास्वयवर' दिया हुआ है।

प्रकाशित संस्करण

'जानकीमगल' का भी पाठालोचन किसी ने नही किया है। उसके प्रकाशित सस्करणो मे से निम्नाकित चार प्रसिद्ध हैं .

१ मूलमात्र—'तुलसीग्रथावली' मे सगृहीत।

२ भावार्थ-सहित—गीता प्रेस, गोरखपुर।

३ टीका-टिप्पणी सहित—'तुलसी के चार दल' मे सकलित, स०प०सद्गुरुशरण अवस्थी।

४. 'सिद्धात-तिलक' के सहित—स० प० श्रीकातशरण।

उपर्युक्त पहले सस्करण मे टीका नही है। दूसरे मे अवधी-पद्यो का खडीबोली मे रूपातर है, विवेचन नही। तीसरे मे शब्दार्थ और व्याख्या के अनतर आलोचनात्मक टिप्पणी भी दी गयी है। चौथे मे प० श्रीकातशरण ने विस्तृत विवरण प्रस्तुत किया है। अतिम दो सटीक सस्करण क्रमश साहित्यिक और सैद्धातिक दृष्टि से उपयोगी हैं।

---

१. देखिए—तुलसीदास, पृ० २०९

रचना-काल

वेणीमाधवदास का कथन है कि तुलसी ने 'रामललानहछू', 'जानकीमगल' और 'पार्वतीमगल' की रचना अपनी मिथिला-यात्रा के समय की थी। यह समय स० १६३६ के लगभग ठहरता है।[१] डा० रामकुमार वर्मा की भी यही मान्यता है।[२] बाबू श्यामसुदरदास[३], प० सद्गुरुशरण अवस्थी[४] और प० रामनरेश त्रिपाठी[५] उसको स० १६४३ मे 'पार्वतीमगल' के अनतर रचित मानते हैं। डा० गुप्त का मत है कि उसकी रचना स० १६२६ के लगभग हुई।[६] मेरे विचार से उसका रचना-काल स० १६२६-३० के आस-पास है।

क्या तीनो मगल-काव्य समकालीन रचनाएँ हैं ? इस प्रश्न पर 'रामललानहछू' के प्रकरण मे कुछ विचार किया जा चुका है। 'जानकीमगल' और 'पार्वतीमगल' में घनिष्ठ सादृश्य है। उनकी कथा-शैली, वर्णन-शैली और छद-शैली की अतिशय समानता के आधार पर डा० रामकुमार वर्मा ने 'पार्वतीमगल' मे दी गयी तिथि के अनुसार 'जानकीमगल' को स० १६४३ मे रचित माना है। इस पर डा० माताप्रसाद गुप्त की वक्रोक्ति है— "डाक्टर रामकुमार वर्मा अभी तक 'जानकीमगल' और 'पार्वतीमगल' के सपूर्ण सादृश्य के कारण 'जानकीमगल' को भी स० १६४३ की कृति मान रहे हैं।"[७] इस उपहास से लगता है मानो तुलसी ने स्वय उपस्थित होकर डा० गुप्त का अनुमोदन करते हुए यह निर्णय दे दिया हो कि 'जानकीमगल' की रचना स० १६२६ मे हुई थी। सदृश-शैली की रचनाओं का एक ही क्रम में रचा जाना आवश्यक नही है, विशेष करके ऐसी दशा मे जब विरोधी साक्ष्य अधिक प्रबल हो। प० रामनरेश त्रिपाठी ने 'जानकीमगल' के प्रसग मे एक नया तर्क दिया है। वह भी विचारणीय है। 'जानकीमगल' की एक उक्ति है

सुभ दिन रच्यो स्वयवर मगलदायक।[८]

'सुभदिन' का अभिप्राय रविवार से है। यहाँ पर कवि ने दिन का सकेत कर दिया, किंतु सवत् और तिथि का नही। इसका कारण क्या है ? त्रिपाठी जी का उत्तर है "पार्वतीमगल को बृहस्पतिवार को समाप्त करके लगे हाथो तुलसीदास ने दो दिन के परिश्रम से जानकीमगल भी समाप्त कर लिया। इसी से उन्होंने उसमे सवत् आदि न देकर केवल दिन लिख दिया।" यह उत्तर अमान्य है, क्योकि एक कृति का रचना-काल दूसरी कृति मे देने की कोई रीति नही है। इसे हम तुलसीदास की विलक्षणता भी नही मान सकते, क्योकि इसके पक्ष मे कोई साक्ष्य नही है।

---

१ गोस्वामी तुलसीदास (बाबू श्यामसुदरदास), पृ० ८२
२. हिंदी-साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृ० ३६२
३. गोस्वामी तुलसीदास, पृ० ८३
४. तुलसी के चार दल, पहली पुस्तक, पृ० २३१
५. तुलसीदास और उनका काव्य, पृ० २२६-२-७
६. तुलसीदास, पृ० २३९
७. वही, पृ० २३८
८. जानकीमगल, ३

'जानकीमगल' को 'रामचरितमानस' के पूर्व रचित सिद्ध करने के पक्ष मे निम्नाकित प्रमाण दिये जा सकते हैं·

१ 'जानकीमगल' मे तिथि-सवत् के अनुल्लेख से यह सूचित होता है कि उसकी रचना के समय तक कवि की प्रवृत्ति तिथि-निर्देश की ओर नही थी। उसके पूर्व रचित 'रामाज्ञाप्रश्न' और 'रामललानहछू' मे उसने रचना-काल का उल्लेख नही किया। 'रामचरितमानस' की रचना समाप्त कर लेने पर ही इस दिशा मे उसकी प्रवृत्ति हुई और उसके पश्चात् लिखित एकमात्र प्रबध या निबध 'पार्वतीमगल' मे भी उस प्रवृत्ति का निर्वाह किया गया है।

२. 'रामललानहछू', 'जानकीमगल', और 'रामचरितमानस' के प्रथम सोपान की फलश्रुतियो को मिलाकर देखने से उनके पौर्वापर्य पर भी प्रकाश पडता है

वे फलश्रुतियाँ हैं—

(i) जो यह नहछू गावै गाइ सुनावइँ हो।
रिद्धि सिद्धि कल्यान मुक्ति नर पावइँ हो॥[1]

(ii) उपबीत ब्याह उछाह जे सिय राम मंगल गावहीं।
तुलसी सकल कल्यान ते नर नारि अनुदिन पावहीं॥[2]

(iii) प्रभु बिबाह जस भएउ उछाहू। सकहिं न बरनि गिरा अहिनाहू॥
कबि कुल जीवनु पावन जानी। राम सीय जसु मगल खानी॥
तेहि तें मै कछु कहा बखानी। करन पुनीत हेतु निज बानी॥
निज गिरा पावनि करन कारन राम जसु तुलसी कह्यो।
रघुबीर चरित अपार बारिधि पास कबि कौने लह्यो॥
उपवीत ब्याह उछाह मंगल सुनि जे सादर गावहीं।
बैदेहि राम प्रसाद ते जन सर्बदा सुखु पावहीं॥[3]

(क) पहली फलश्रुति मे 'नहछू' शब्द का प्रयोग है, 'उपबीत' या 'ब्याह' का नही। दूसरी में 'उपबीत ब्याह' है, यद्यपि 'जानकीमगल' मे उपवीत का वर्णन नही किया गया है। इससे प्रत्यक्ष है कि 'जानकीमगल' उपवीत और विवाह दोनो उत्सवो पर गाया जा सकता है, और उसी प्रकार 'नहछू' भी। परतु, इससे एक अप्रत्यक्ष ध्वनि यह भी निकलती है कि 'जानकीमगल' का 'उपबीत' शब्द 'नहछू' की ओर सकेत कर रहा है, क्योकि 'नहछू' के अनतर ही 'जानकीमगल' की रचना हुई है। 'जानकीमगल' की शब्दावली 'उपबीत ब्याह उछाह', 'रामचरितमानस' मे ज्यो-की-त्यो व्यवहृत हुई है, यद्यपि उसमे भी उपवीत का वर्णन नही है, केवल 'दीन्ह जनेऊ'[4] कहकर सकेत मात्र किया गया है। तो फिर मानस-गत उपर्युक्त फलश्रुति मे उपवीत-उछाह-मगल-गान की बात कैसे कही गयी? ऐसा आभासित

---

१. रामललानहछू, २०
२. जानकीमगल, २१६
३. रामचरितमानस, १।३६१
४. भए कुमार जबहि सब भ्राता। दीन्ह जनेऊ गुर पितु माता॥—१।२०४।२

होता है कि वह फलश्रुति लिखते समय कवि के मन मे 'रामललानहछू' और 'जानकीमगल' की चेतना थी। जिस प्रकार 'जानकीमंगल' की फलश्रुति में 'उपवीत' द्वारा अप्रत्यक्ष रूप से 'रामललानहछू' की ओर सकेत कर दिया था, उसी प्रकार अप्रत्यक्ष रूप से मानस-गत 'उपवीत व्याह' द्वारा दोनो मगल-गीतो 'रामलला नहछू' और 'जानकीमगल' की ओर सकेत कर दिया।

(ख) इन फलश्रुतियो मे कवि की भक्ति-भावना का क्रमिक विकास भी द्रष्टव्य है। प्रथम दो मे श्रेयस्करता का उल्लेख तो है किंतु सीता-राम के प्रसाद का निर्देश नही है। भगवान् की कृपा और भक्त की अनन्यशरणागति का महत्त्व 'रामचरित-मानस' और उसकी परवर्ती कृतियो में वल देकर प्रतिपादित किया गया है जिसकी परम परिणति 'विनयपत्रिका' मे पायी जाती है। इस प्रसग मे यह भी ध्यान देने योग्य है कि मानस-गत उमा-शभु-विवाह की फलश्रुति मे 'प्रसाद' का उल्लेख छूट गया था, उस कमी की पूर्ति परवर्ती 'पार्वतीमगल' की फलश्रुति मे कर दी गयी। मिलाकर देखिए

(i) यह उमा सभु विवाह जे नरनारि कहहिं जे गावहीं।
कल्यान काज विवाह मगल सर्वदा सुखु पावहीं ॥[1]

(ii) कल्यान काज उछाह व्याह सनेह सहित जो गाइहैं।
तुलसी उमा सकर प्रसाद प्रमोद मन प्रिय पाइहैं ॥[2]

(ग) उपसहरण-शैली से भी सूचित होता है कि 'जानकीमगल', 'रामचरितमानस' से पहले लिखा गया है। पूर्ववर्ती 'रामललानहछू' और 'जानकीमगल' के उपसहार मे रचना की समाप्ति और प्रतिपादित वस्तु का सकेत नही है, परवर्ती 'रामचरित-मानस' और 'पार्वतीमगल' मे पाया जाता है। कवि की यह प्रवृत्ति 'रामचरित-मानस' की रचना के साथ विकसित हुई है। महाकाव्य मानस[3] मे इस प्रवृत्ति का प्रतिफलन व्यास-शैली मे हुआ है, और लघुकाव्य 'पार्वतीमगल'[4] में समास-शैली मे।

(घ) 'तेहितें मैं कछु कहा बखानी' से यह भी ध्वनित होता है कि राम-विवाह की जो कथा पहले ('जानकीमगल' मे) सक्षेप मे कही गयी है, उसका 'रामचरितमानस' मे 'वखान' (व्याख्यान, विस्तार) करके कथन किया गया है।

३ रामचरितमानस के 'बालकाड' की रचना अयोध्याकाड के बाद मे हुई है[5]। अयोध्या-काड के प्रारभिक सोरठे और चौपाई से प्रतिभात होता है कि ग्रथ का आरंभ किया जा रहा है, और उसके पूर्व राम-विवाह का वर्णन हो चुका है

---

१. रामचरितमानस, १।१०३
२. पार्वतीमगल, १६४
३ रामचरितमानस, १।३६१
४ पार्वतीमगल, १६३
५. आगे देखिए रामचरितमानस का रचना-क्रम

श्रीगुरचरन सरोज रज निज मनु मुकुर सुधारि।
बरनौं रघुबर विमल जसु जो दायकु फल चारि॥
जब तें रामु ब्याहि घर आए। नित नव मगल मोद बधाए॥'[1]

पूर्व-वर्णित विवाह 'जानकीमगल' की रचना का द्योतक है।

४ डा० माताप्रसाद गुप्त ने 'जानकीमगल' मे निबद्ध कथा के आधार पर निष्कर्ष निकाला है कि वह 'रामाज्ञाप्रश्न' और 'रामचरितमानस' के बीच की रचना है। 'रामाज्ञाप्रश्न' के समान ही उसमे पुष्पवाटिका-प्रकरण का अभाव है, राम-परशुराम-मिलन बारात की वापसी मे होता है और लक्ष्मण-परशुराम-विवाद नही है। यह उसकी 'रामचरितमानस' से भिन्नता है। दूसरी ओर, 'रामचरितमानस' के समान उसमे जनक के बदीजन राजसभा मे जनक के प्रण की घोषणा करते हैं, और धनुर्भंग के अवसर पर लक्ष्मण ने दिक्पालो को सावधान किया है। फलत 'जानकी-मगल' में 'रामाज्ञाप्रश्न' की तुलना मे 'रामचरितमानस' की ओर प्रस्थान दृष्टिगोचर होता है। प० सद्गुरुशरण अवस्थी ने डा० गुप्त के तर्क का बडा मजाक उडाया है[2]। डा० गुप्त का तर्क अकाट्य न होने पर भी निस्सार नही है।

५ 'जानकीमगल' की एक अत्यत प्राचीन हस्तलिखित प्रति प्राप्त है जिस पर स० १६३२ की तिथि दी हुई है। यद्यपि तिथि की लिखावट मूल प्रति की लिखावट से भिन्न है तथापि उसकी प्राचीनता मे सदेह नही है। इससे अनुमान होता है कि वह किसी ऐसी मूल प्रति की प्रतिलिपि है जो स० १६३२ मे तैयार की गयी थी। अत 'जानकीमगल' १६३२ से पहले की रचना है।

उसका निश्चित सन्-सवत् निर्धारित करने मे किसी साक्ष्य से सहायता नही मिलती। सवत् १६२४ या स० १६२६ मानने से उसके और 'रामचरितमानस' के बीच कई वर्षों का व्यवधान पडता है। क्या कवि-प्रतिभा के उन्मिषित हो जाने पर भी तुलसी-दास ने इतने लबे समय तक काव्य-रचना नही की ? यह अस्वाभाविक लगता है। ऐसा प्रतीत होता है कि 'वैराग्यसदीपनी' से लेकर 'रामचरितमानस' तक किन्ही भी दो रच-नाओ का अतर एक-डेढ वर्ष से अधिक नही है। तुलसी मे काव्य-रचना की प्रवृत्ति, उनकी प्रज्ञा और भक्ति-भावना का उदय हो जाने के बाद उनको इतने वर्षों तक कवि-कर्म के प्रति सर्वथा उदासीन रखना असगत जँचता है। नन्ही-सी रचना के प्रणयन मे इतना परिश्रम भी नही करना पडा होगा कि उससे थक कर चूर कवि कई वर्षों के लिए काव्य-रचना से सन्यास ग्रहण कर लेता। अत 'जानकीमगल' की रचना 'रामचरितमानस' से कुछ ही समय पूर्व स० १६२९-३० के लगभग हुई होगी।

५. रामचरितमानस

हस्तलिखित प्रतियाँ

'रामचरितमानस' की असाधारण लोकप्रियता के कारण उसकी बहुसख्यक प्रतियाँ

१. रामचरितमानस, २।१।१
२ तुलसी के चार दल, पहली पुस्तक, पृ० २३०-३१

देश के विभिन्न भागो मे पायी जाती हैं। उसके योग्य सपादको ने सभी उपलब्ध महत्त्वपूर्ण प्रतियो का उपयोग किया है। इस क्षेत्र मे डा० माताप्रसाद गुप्त और आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र के नाम विशेष उल्लेखनीय है। डा० गुप्त द्वारा आलोचित प्रतियो का विस्तृत विवरण ग्रथ के रूप मे प्रकाशित हो चुका है। मिश्र जी द्वारा सपादित 'रामचरितमानस' का विवरण अभी अप्रकाशित है।

'रामचरितमानस' की महत्त्वपूर्ण प्रतियाँ निम्नाकित हैं

१ स० १७२१ की प्रति—यह प्रति भारत-कला-भवन, काशी मे है। इसमे अयोध्याकाड नही है।

२ स० १७६२ की प्रति—प० शभुनारायण (भूतपूर्व पुस्तकाध्यक्ष, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी) के निजी सग्रह मे थी। यह प्रति उपर्युक्त प्रति की प्रतिलिपि है।

३ प० सुधाकर द्विवेदी की प्रति—यह प्रति उनके पिता द्वारा स० १९१६-२१ के बीच लिखी गयी। उनके उत्तराधिकारियो के पास खजुरी, काशी मे है।

४ रघुनाथदास की प्रति—इस समय अप्राप्य है। इसके अनुसार स० १९२६ मे 'रामचरितमानस' का एक सस्करण काशी से प्रकाशित हुआ था।

५ वदनपाठक की प्रति—यह भी अप्राप्य है। इसके अनुसार भी काशी से 'रामचरितमानस' का एक सस्करण स० १९४९ मे प्रकाशित हुआ था।

६. डा० माताप्रसाद गुप्त की प्रति—यह प्रति मिर्जापुर से प्राप्त हुई थी। इसका लिपिकाल स० १८७८ है।

७ बीजक की प्रति—इस प्रति की आनुक्रमिक चौथी प्रतिलिपि के अनुसार एव कोदवराम द्वारा सपादित 'रामचरितमानस' के दो सस्करण स० १९५३ और १९६५ मे वेंकटेश्वर प्रेस, बबई से प्रकाशित हुए।

८ श्रावणकुज की प्रति—यह 'रामचरितमानस' की सबसे प्राचीन प्रति है जो अयोध्या के 'श्रावणकुज' मदिर मे है। इसमे केवल बालकाड ही प्राचीन है। यह प्रति स० १६६१ की बतायी जाती है, किंतु डा० गुप्त का कहना है कि यह वस्तुत स० १६९१ की है, इसमे दहाई का अक बदल दिया गया है।[1]

९ काशिराज की प्रति—इसका लिपि-काल स० १७०४ है। उपर्युक्त बालकाड की प्रति को छोडकर यह 'रामचरितमानस' की प्राचीनतम प्रति है। अयोध्याकाड की पुष्पिका मे किये गये सशोधन और अरण्य तथा किष्किधा काडो की प्रक्षिप्त पक्तियो के कारण डा० गुप्त ने इसकी प्रामाणिकता मे कुछ-कुछ सदेह किया है।[2]

१० राजापुर की प्रति—इसमे केवल अयोध्याकाड है। यह प्रति तुलसी-लिखित कही जाती है। परतु यह उनकी लिखी नही है, क्योकि, इसमे लिपिकार और लिपिकाल का उल्लेख नही है, इसकी लिखावट तुलसी की कथित लिखावट से मेल नही खाती, और इसमे ऐसी भूलें हैं जो किसी अन्य प्रति मे नही पायी जाती।

उपर्युक्त प्रतियाँ चार भिन्न शाखाओ की हैं। पहली-दो एक शाखा की, तीसरी

---

१ तुलसीदास, पृ० २१२-१३
२. वही, पृ० २१३

से छठी तक दूसरी शाखा की, सातवी तीसरी शाखा की, और शेष चौथी शाखा की हैं। इनके अतिरिक्त भी सैकडो प्रतियाँ हैं। हजारो पाठ-भेद हैं। महत्त्वपूर्ण प्रतियो को छाँटना और उनके पाठ का मिलान करके मूल पाठ निर्धारित करना बडी कठोर साधना का कार्य है। तपोनिष्ठ सपादको ने भगीरथ-प्रयत्न करके श्रमसाध्य कार्य को सपन्न किया है।

रचना-काल

'रामचरितमानस' के रचनाकाल की आरभिक तिथि का निर्देश कवि ने उसकी प्रस्तावना मे स्वय कर दिया है[1]

(i) संवत सोरह सै एकतीसा। करौं कथा हरिपद धरि सीसा॥
(ii) नौमी भौमवार मधु मासा। अवधपुरी यह चरित प्रकासा॥
जेहि दिन राम जनम श्रुति गार्वाहि। तीरथ सकल तहाँ चलि आर्वाहि॥
सब विधि पुरी मनोहर जानी। सकल सिद्धि प्रद मगल खानी॥
बिमल कथा कर कीन्ह अरंभा। सुनत नसाहिं काम मद दंभा॥
(iii) रचि महेस निज मानस राखा। पाइ सुसमउ सिवा सन भाषा॥
तातें रामचरितमानस बर। धरेउ नाम हिअँ हेरि हरषि हर॥
जस मानस जेहि विधि भएउ जग प्रचार जेहि हेतु।
अब सोइ कहौं प्रसग सब सुमिरि उमा वृषकेतु॥

इन पक्तियो मे सवत्, मास, तिथि और दिन का उल्लेख किया गया है, किंतु पक्ष का नही। राम जन्म की नवमी का सबध शुक्ल पक्ष से है इसका निर्देश अन्यत्र किया गया है

नौमी तिथि मधुमास पुनीता। सुकुल पच्छ अभिजित हरिप्रीता।[2]
चैत चारु नौमी तिथि सित पख मध्य गगन गत भानु।[3]

इस प्रकार 'रामचरितमानस' की रचना का आरभ स० १६३१ मे **चैत्र शुक्ला नवमी, मगलवार** को हुआ। 'मगलवार' को लक्ष्य करके डा० गुप्त ने प्रश्न उठाया है कि 'क्या तिथि का यह सारा विस्तार ठीक है। सूर्योदय-व्यापिनी तिथि को ही सारे दिन की तिथि मानने के सर्वमान्य भारतीय सिद्धात के अनुमार स० १६३१ के चैत्र शुक्ल मे नवमी बुधवार को होनी चाहिए, गणना से यह स्पष्ट ज्ञात होता है।'[4] महात्मा अजनीनदनशरण ने बल देकर कहा है कि 'नवमी उस दिन भी थी और दूसरे दिन भी। पर दूसरे दिन उनके इष्ट हनुमान्जी का दिन न मिलता, नवमी तो जरूर मिलती। और अपने तीनो इष्टो का जन्मदिन मगलवार होने से वह दिन उन्हे अतिप्रिय अवश्य होना ही चाहिए, उसे वे क्यो हाथ से जाने देते ? अतएव ग्रथ रचने के लिए मगलवार के मध्याह्नकाल मे नवमी पाकर ग्रथ रचा।"[5]

---

१. रामचरितमानस, १।३४-३५
२. रामचरितमानस, १।१६१।१
३. गीतावली, १।२।२
४. तुलसीदास, पृ० २३६
५. मानस-पीयूष, १।३४।६, पृ० ४८५

क्या उक्त तिथि पर 'रामचरितमानस' की रचना सचमुच आरंभ हुई थी ? इस शंका के दो प्रमुख कारण हैं: (i) कवि ने तिथि का उल्लेख ७ श्लोकों, १० सोरठों, ४४ दोहों, १ छंद और ३२८ अर्धालियों के बाद किया है। अतएव तिथि-निर्देश के पूर्व इस अंश की रचना स्वयंसिद्ध है। विश्वास नहीं होता कि अयोध्या में रामनवमी की चहल-पहल के दिन कुछ ही घंटों में इतनी काव्य-रचना की गयी होगी। (ii) उपर्युक्त उद्धरण में तीन इकाइयाँ हैं। उनमें देश-काल का व्यवधान दिखायी देता है। पहली इकाई में वर्तमानकालिक क्रिया 'करौं' का, दूसरी में भूतकालिक क्रिया 'कीन्ह' का और तीसरी में वर्तमानकालिक क्रिया 'कहौं' का प्रयोग किया गया है। दूसरी इकाई में दूरता-सूचक 'तहाँ' अवेक्षणीय है। उससे अवगत होता है कि वह इकाई अयोध्या में न लिखी जाकर किसी अन्य स्थान पर लिखी गयी है।

समाधान यह है कि 'रामचरितमानस' की प्रस्तावना ग्रंथ-रचना की समाप्ति के बाद लिखी गयी है। आधुनिक साहित्यकार भी प्रायः ग्रंथ पूर्ण कर लेने पर उसकी प्रस्तावना लिखा करते हैं और उसमें इच्छानुसार भूत या भविष्यत् काल की क्रियाओं का व्यवहार करते हैं। विरोधाभास पर ध्यान दीजिए—वे अपने 'पश्चात्कथन' को 'प्राक्कथन' की संज्ञा देते हैं। तुलसीदास ने भी ऐसा ही किया है, यद्यपि उन्होंने 'प्राक्कथन' शब्द का प्रयोग नहीं किया। यह कथन की एक शैली है। रामचरितमानसकार ने अपनी कृति की प्रस्तावना में भूत और वर्तमान ही नहीं, भविष्यत् काल की क्रियाओं का भी प्रयोग किया है

> तेहि बल मैं रघुपति गुन गाथा। कहिहौं नाइ राम पद माथा ॥
> कहिहौं सोइ संवाद बखानी। सुनहु सकल सज्जन सुखु मानी ॥
> सो सब हेतु कहब मैं गाई। कथा प्रबंध बिचित्र बनाई ॥
> अरथ धरम कामादिक चारी। कहब ग्यान बिग्यान बिचारी ॥
> रघुपति महिमा अगुन अबाधा। बरनब सोइ बर बारि अगाधा ॥
> बरनब राम बिबाह समाजू। सो मुद मंगल मय रितुराजू ॥[1]

संदर्भ के क्रम में, भिन्नकालिक होते हुए भी, सभी क्रियाओं का तात्पर्य भविष्यत् काल से है। कारण स्पष्ट है। प्रस्तावना ग्रंथ के आरंभ में लिखी जा रही है, इसलिए वह स्वभावतः पहले पढ़ी जाएगी और प्रकृत ग्रंथ बाद में। वास्तविकता यह है कि ग्रंथ निर्मित हो चुका है, और प्रस्तावना बाद में लिखी जा रही है। अतः प्रकृत ग्रंथ की यथोचित शृंखला मिलाने के लिए भविष्यत् अथवा भविष्यत्सूचक-वर्तमान काल की क्रियाएँ प्रयुक्त हुई हैं। भूतकालिक 'प्रकासा' पर भी चौंकने की जरूरत नहीं है। तुलसी की अभिव्यंजना-पद्धति के यथार्थ अवधारण से शंका के लिए अवकाश नहीं रह जाता। 'रामचरितमानस' के अतिरिक्त 'पार्वतीमंगल' ही कवि की ऐसी कृति है[2] जिसमें उसने निर्विवाद रूप से रचना-काल दिया है। उसकी पंक्तियाँ हैं

---

१. रामचरितमानस, क्रमशः, १।१३।५, १।३०।१, १।३३।१, १।३७।५, १।३७।१, १।४०।२

२. 'रामाज्ञाप्रश्न' के दोहे (७।७।३) से उसके रचना-काल का निष्कर्षण खींच-तान का संदिग्ध परिणाम है, और अर्द्धप्रामाणिक 'सतसई' का रचनाकाल-सूचक दोहा (१।६) तुलसीकृत नहीं है।

जय संबत फागुन सुदि पाँचै गुरु दिन।
अस्विनि बिरचेउँ मगल सुनि सुख छिनु छिनु ॥[1]

यह 'पार्वतीमगल' का पाँचवाँ ही पद्य है। सदर्भ के क्रम मे रचना के शेष १५६ पद्यो का निर्माण अभी आगे किया जाएगा। फिर भी कवि ने भूतकालिक क्रिया 'बिरचेउँ' का प्रयोग किया है। इसके तीन वैकल्पिक उत्तर हो सकते हैं। १ यह कवि का उक्ति-वैशिष्ट्य है। 'बिरचिहउँ' के अर्थ मे उसने 'बिरचेउँ' का प्रयोग किया है। प्राचीन कवियो मे भी यह शैली पायी जाती है। बाणभट्ट-रचित 'कादबरी' की प्रस्तावना मे इसका ज्वलत उदाहरण विद्यमान है। वहाँ पर कर्मवाच्य मे 'निवद्धा' क्रिया प्रयुक्त है।[2] यह भी नही कहा जा सकता कि 'कथा' को पूर्ण कर लेने के उपरात कवि ने उसकी प्रस्तावना लिखी थी, क्योकि बाणभट्ट 'कादबरी' को अपूर्ण छोडकर ही स्वर्गवासी हो गये थे। बोल-चाल मे भी भविष्यत्कालिक क्रिया के लिए भूतकालिक क्रिया का (उससे भिन्न अर्थ मे ही सही) कुछ मिलता-जुलता व्यवहार पाया जाता है, जैसे—'अभी आऊँगा' के बदले लोग लेटे ही लेटे कह देते हैं 'अभी आया'। २ तुलसी ने तिथि-सूचक पद्य की रचना कृति की समाप्ति के बाद की है। यह उत्तर 'रामचरितमानस' पर तो घटित होता है, किंतु 'पार्वतीमगल'-जैसी लघु रचना के सबध में प्रत्यायक नही है। ३ कवि ने सपूर्ण रचना का मानस-बिंब-विधान आरभ मे ही कर लिया था, उसका बाह्य रूप बाद में निर्मित हुआ, अत उसने भूतकालिक क्रिया का प्रयोग किया। 'पार्वतीमगल' के साथ इस उत्तर की सगति ठीक बैठ जाती है, लेकिन 'रामचरितमानस' के साथ नही बैठ पाती, क्योकि उसकी प्रस्तावना ग्रथ-समाप्ति के बाद लिखी गयी है, और वर्तमान और भविष्यत् काल की क्रियाएँ भी प्रयुक्त हैं। अतिम दो उत्तरो मे अव्याप्ति है। पहला उत्तर व्यापक, परपरा-समर्थित और सदर्भ-सगत है; इसलिए अधिक महत्त्वपूर्ण है।

निष्कर्ष यह है कि 'रामचरितमानस' का आरभ स० १६३१ मे रामनवमी को हुआ। यह कहना कठिन है कि उसकी समाप्ति कब हुई। तुलसी ने उसके **समाप्ति-काल** का उल्लेख कही नही किया। इस विषय मे कोई आप्त प्रमाण नही है। 'मूलगोसाईंचरित' के अनुसार स० १६३३ के अगहन मे राम-विवाह की तिथि पर पूर्ण हुआ, उसकी रचना मे कुल दो वर्ष, सात महीने और छब्बीस दिन लगे।[3] माना कि तुलसीदास महात्मा थे, परतु 'रामचरितमानस'-जैसे विशालकाय कलात्मक महाकाव्य के निर्माण के लिए इतना समय पर्याप्त नही प्रतीत होता। 'तुलसीप्रकास' मे कहा गया है कि स० १६३५ मे जेठ वदी तीज को उसकी समाप्ति हुई।[4] यह कथन अविश्वसनीय नही लगता। किंवदतियो

---

१ पार्वतीमगल, ५

२ अलब्धवैदग्ध्यविलासमुग्धया
धिया निवद्धेयमतिद्वयी कथा।—कादबरी, प्रास्ताविक श्लोक २०

३. दुइ बत्सर सातेक मास परे। दिन छब्बिस मोंझ सो पूर करे॥
तैंतीस को सवत् औ मगसर। सुभ थौस सुराम विवाहहिं पर॥ ४१।१

४. गगन व्योम सरच्द सक असित जेठ सुभ मास।
रामचरित भृगु तीज दिन पूर्‌यो तुलसीदास॥ १४६

तथा कल्पनाओ पर आश्रित और परस्पर-विरोधी कथन करने वाली इन रचनाओ की प्रामाणिकता सदिग्ध है।

मनुष्य की शक्ति सीमित है। सतो को भी आधि-व्याधियाँ सताती हैं। स्वय तुलसीदास इसके प्रमाण हैं। काव्यानुकूल भाव-दशा बहुत समय तक बनी नही रह सकती। कवि की कारयित्री प्रतिभा सयत्र की भाँति लगातार निर्माण करने मे समर्थ नही है। उसे विश्राम चाहिए। 'रामचरितमानस' के प्रथम भाग (अयोध्याकाड और बालकाड-उत्तरार्ध) की रचना के बाद कवि थका हुआ-सा दिखायी देता है। तीसरे सोपान से उसकी अजस्र भाव-धारा का वेग कुछ मद पड गया है। जटिल सविधानक और विचार-बोभिल प्रसगो के प्रयत्न-साध्य निर्वहण मे निश्चय ही अधिक समय लगा होगा। इन सब बातो को दृष्टि मे रखते हुए अनुमान किया जा सकता है कि उसकी रचना मे लगभग पाँच वर्ष का समय लगा होगा। उसके बाद भी काट-छाँट और सशोधन-परिवर्धन का क्रम चलता रहा होगा। स० १६४२ तक 'पार्वतीमगल' की रचना के पूर्व उसे अतिम रूप प्राप्त हो गया होगा। 'रामचरितमानस' के मध्यातर और परिमार्जनकाल मे कवि ने स्वत स्फूर्त भावोद्रेक के परिणामस्वरूप मुक्तक पद्यो की रचना भी अवश्य की होगी जो अपनी रूपविधा के अनुसार 'गीतावली' आदि मे यथास्थान समाविष्ट कर लिये गये होंगे।

रचना-क्रम

डा० माताप्रसाद गुप्त ने वक्ता-श्रोताओ की योजना और अर्धाली-समूह के आधार पर 'रामचरितमानस' को तीन विभिन्न प्रयासो का परिणाम माना है। उनके अनुसार प्रथम पाडुलिपि मे बालकाड दोहा १८४ से अयोध्याकाड के अत तक का अश था। द्वितीय पाडुलिपि तैयार करते समय उसके बाद का शेष सपूर्ण ग्रथ जोडा गया। अतिम पाडुलिपि मे आरभ से लेकर दोहा ३५ तक की प्रस्तावना समिलित की गयी। निम्नाकित सारणी से उनकी बात स्पष्ट हो जाएगी

प्रथम पाडुलिपि	द्वितीय पाडुलिपि	तृतीय पांडुलिपि
		बालकाड, आरभ से दोहा ३५ तक
	(i) बालकाड, दोहा ३६ से १८३ तक	
बालकाड, दोहा १८४ से अयोध्याकाड के अत तक		
	(ii) अरण्यकांड के आरभ से उत्तरकाड के अत तक	

उनके अनुसार **द्वितीय पाडुलिपि** छ बार मे निर्मित हुई

पहली बार	दूसरी बार	तीसरी बार	चौथी बार	पाँचवी बार	छठा बार
१।३६-४३					
	१।४४-४७				
१।४८-१०३					
	१।१०४-१०६				
		१।१०७-१२२			
	१।१२३-१३९				
		१।१४०-१४१			
१।१४२-१५२ अशत					
	१।१५२ शेषाश-१५३ अशत				
१।१५३ शेषाश-१७५ अशत					
	१।१७५ शेषाश-१७६				
		१।१७७-१८३			
			अरण्य+ किष्किधा		
				सुदर+लका+ ७।१-२१ अशत	
					७।२१ शेषाश-१३०

डा० गुप्त का प्रयत्न श्लाघ्य है। उनका अनुमान इस अश मे मान्य है कि बाल-काड के उत्तरार्ध तथा सपूर्ण अयोध्याकाड की रचना पहले की गयी थी, और शेष ग्रथ भिन्न प्रयास का परिणाम है। किंतु, उन्होने जो विवरण-विस्तार दिया है, वह व्यावहारिक प्रतीत नही होता। उन्होने 'प्रथम पाडुलिपि' का आरभ 'चौपाई' १८४ से माना है। उसकी आरभिक पक्तियाँ हैं

> **बाढे खल बहु चोर जुआरा। जे लंपट परधन परदारा॥**
> **मानहिं मातु पिता नहीं देवा। साधुन्ह सन करवावहिं सेवा॥**[1]

इसके विरुद्ध कई विप्रतिपत्तियाँ हैं। (1) यहाँ से किसी प्रसग का आरभ नही होता। ऊपर से रावण आदि राक्षसो की अनीति का वर्णन चला आ रहा है। प्रस्तुत चौपाई उसीका एक अग है। इसलिए उस प्रसग की इकाई से इस अग को काटकर यहाँ से 'प्रथम

१. रामचरितमानस, १।१८४।१

पाडुलिपि' का आरभ मानने मे कोई तुक नही है। (ii) 'द्वितीय पाडुलिपि' में परिगणित विभिन्न वक्ताओ-श्रोताओ तथा भिन्न-भिन्न अर्धाली-समूहो वाले अश छिन्न-भिन्न रूप मे अलग-अलग लिखे गये और आगे चलकर यथास्थान बिठा दिये गये, यह अनुमान अस-गत है। ऐसा मति-भजक व्यायाम काव्य-रचना-प्रक्रिया के अनुरूप नही है। तुलसी-जैसे प्रतिभासपन्न कवि के लिए इस हठयोग-साधना की आवश्यकता नही थी। वे स्रोत-ग्रथो की नकल मारने या नोच-नोच कर अनुवाद करने नही बैठे थे कि 'शिवपुराण' ले लिया और उसके कुछ अश खसोट लिये, 'पद्मपुराण' उठाया और उसका कुछ अश टाँक लिया, 'अध्यात्मरामायण' सामने रख लिया और उसका अधिकाश अवधी मे लिपिवद्ध कर दिया। तथ्य यह है कि कवि ने उन सव ग्रथो का अनुशीलन किया था। उनके अधीत विषय उसे उपस्थित थे। 'रामचरितमानस के रचना-क्रम मे वे विषय उसके मानस-चक्षुओ के सामने उभरते गये। उसने अपनी रुचि के अनुसार अपेक्षित वस्तु का ग्रहण और अनपेक्षित का त्याग किया। (iii) 'रामाज्ञाप्रश्न', 'रामललानहछू' और 'जानकीमगल' से सिद्ध है कि कवि प्रबध-रचना का श्रीगणेश मगलाचरण से ही करता है। व्यभिचारियो के वर्णन से रामचरितमानस-सरीखे प्रवध का श्रीगणेश तुलसी की प्रवृत्ति के नितात प्रतिकूल है।

प० रामनरेश त्रिपाठी का मत है कि सबसे पहले अयोध्याकाड की रचना हुई।[1] उन्होने इसके पक्ष मे कई युक्तियाँ दी हैं १ उसमे ग्रथारभ की निश्चित सूचना है।[2] आगे के किसी काड मे ऐसा नही है। यदि वालकाड पहले लिखा गया होता तो इस सूचना को दोहराने की आवश्यकता न पडती। २ उसका निश्चित स्वरूप है—साधारणत आठ अर्धालियो पर एक दोहा है[3], प्रति पचीस दोहो के वाद छद तथा सोरठे की योजना है।[4] इस क्रम का व्यतिक्रम कवि अथवा लिपिकार की असावधानी के कारण सभव है। रचना-सवधी उक्त विचार-धारा अन्य काडो मे नही पायी जाती। ३ उसमे शिव या किसी अन्य वक्ता की योजना नही की गयी है, कवि स्वय वक्ता है। उसकी रचना के समय तक कवि के मन मे 'घाट मनोहर चारि' की कल्पना नही थी। ४ उसकी रचना आद्योपात प्रौढ है। वह तुलसी की कविता का वसत है जिसमे उन्होने अपना पूर्ण विकास दिखाया है। ५ उसके मगलाचरण मे केवल शिव और राम की वदना है, क्योकि तब तक तुलसी 'अन्य देवो के झमेले मे नही पडे थे।' ६ वालकाड के आरभ मे वारवार भाषा-सवधी सफाई दी गयी है।[5] इससे स्पष्ट है कि अयोध्याकाड के लोकप्रिय होने पर सस्कृताभिमानी पडितो ने भाषा-कविता का विरोध किया। वालकाड मे उन्ही आक्रमणकारियो को मुँहतोड

---

१ तुलसीदास और उनका काव्य, पृ० ११६-१९

२. श्री गुर चरन सरोज रज निज मन मुकुरु सुधारि।
वरनौं रघुवर विमल जसु जो दायकु फल चारि ॥—रामचरितमानस, २।१। सोरठा

३ अपवाद—दोहा ५, ८, १०, २९, ६४, १७३, १८५, २०२ और २१८ के अर्धाली-समूह

४ इसका केवल एक अपवाद दोहा १२६ है

५ भाषानिवधमतिमजुलमातनोति ॥—१।१। श्लोक ७
भाषा भनिति भोरि मति मोरी। हँसिवे जोग हँसे नहिं खोरी ॥—१।६।२
गिरा ग्राम्य सिय राम जस गावहि सुनहिं सुजान ॥—१।१०

उत्तर दिया गया है। ७ 'अयोध्या मे बैठकर सबसे पहले अयोध्याकाड का प्रारभ करना एक राम-भक्त कवि के लिए बिल्कुल स्वाभाविक था।'

त्रिपाठी जी की पहली तीन युक्तियाँ महत्त्वपूर्ण हैं।

उनके मत से पूरे ग्रथ का रचना-क्रम इस प्रकार है। अयोध्या मे पहले-पहल अयोध्याकाड रचा गया। उसे लेकर तुलसी काशी चले गये। पुन अयोध्या मे बालकाड और अरण्यकाड लिखे गये। पूरे अयोध्याकाड और बालकाड की ३२८वी अर्धाली तक रचना कर लेने के पश्चात् सवत् १६३१ की रामनवमी को 'सबत सोरह सै इकतीसा' से "उन्होने 'मानस' का प्रारभ किया।" काशी मे पहुँचकर किष्किधाकाड का निर्माण हुआ। उसका पहला सोरठा इस बात का प्रमाण है। तत्पश्चात् सुदर और लका काड लिखे गये। अत मे उत्तरकाड की रचना हुई। त्रिपाठी जी की दो बातें युक्तिसगत नही जँचती। १ सपूर्ण बालकाड एक प्रयत्न का परिणाम नही प्रतीत होता। उसकी भूमिका और उत्तरार्ध की निरूपण-शैली मे तात्त्विक भेद है। सपूर्ण-प्रबध के अभाव मे उस प्रकार की विवृत प्रस्तावना सभव नही थी। २ पूर्वरचित अयोध्याकाड और ३२८वी अर्धाली तक के आरभिक अश की उपेक्षा करके 'सवत सोरह सै इकतीसा' वाली पक्ति से 'मानस' का आरभ मानना युक्ति-युक्त नही है। किसी भी रचना मे दिया गया रचना-काल उसके मध्यवर्ती अश के प्रारभ का सूचक नही होता। वह सवत् समग्र-ग्रथ-रचना के आरभ अथवा समाप्ति का द्योतन करता है।

रचना-क्रम-सबधी ये मत अनुमानाश्रित हैं। यहाँ भी अनुमान का आश्रय लिया जा रहा है। यह सभावना मात्र है। ऐसा प्रतीत होता है कि 'रामचरितमानस' के रचना-क्रम के चार अवस्थान हैं

१ सपूर्ण अयोध्याकाड,

२. 'भये प्रगट कृपाला दीनदयाला'[1] से लेकर बालकाड के अत तक,

३ अतिम पाँच सोपान,

४ 'वर्णनामर्थसघाना'[2] से 'अखिल लोक बिश्राम'[3] तक।

यह निर्धारित करना असभव है कि प्रत्येक अवस्थान में कितना निश्चित समय लगा, प्रत्येक इकाई कितनी बार मे पूरी की गयी अथवा अशविशेष कितनी बैठको मे समाप्त हुआ। हाँ, इन चारो अवस्थानो पर व्यापक रूप से विचार किया जा सकता है।

१ पहले अवस्थान मे अयोध्याकाड रचा गया। त्रिपाठी जी की उपर्युक्त युक्तियो के अतिरिक्त कुछ अन्य महत्त्वपूर्ण तथ्य भी ध्यान देने योग्य हैं। तुलसी ने सर्वप्रथम 'वैराग्यसदीपनी' की रचना की। उसमे न तो राम-चरित-वर्णन था और न ही काव्य की रमणीयता थी। वह उन्हे निश्चय ही तुच्छ प्रतीत हुई होगी। कुछ आलोचको को तो वह इतनी तुच्छ प्रतीत होती है कि वे उसे तुलसीदास की कृति ही नही मानते। कवि ने प्रसगवश दूसरा प्रयत्न किया, शकुन-विचार को दृष्टि मे रखकर 'रामाज्ञाप्रश्न' लिखा।

---

१ रामचरितमानस, १।१९२। छद १

२ रामचरितमानस, १।१। श्लोक १

३ रामचरितमानस, १।१९१

उसमे राम-चरित का कुछ-न-कुछ वर्णन अवश्य हुआ, किंतु रसात्मकता नही आया। अब कवि यथार्थ काव्य-रचना मे प्रवृत्त हुआ। उसने 'रामललानहछू' और 'जानकीमगल' का निर्माण किया जिनमे राम-चरित की कुछ सरस निबधना हुई। इतना होने पर भी कवि को सतोष नही हुआ, क्योकि इन तीनो कृतियो मे **रघुवर राम के विमल यश** का **विशद वर्णन** नही हो पाया था। उसकी पूर्ति के लिए कवि ने उनके विमल यश का वर्णन आरभ किया और अवतरणिका मे उसका स्पष्ट निवेदन कर दिया

श्री गुर चरन सरोज रज निज मनु मुकुरु सुधारि।
बरनौं रघुबर विमल जसु जो दायकु फल चारि।।[1]

'रामललानहछू' और 'जानकीमगल' की सफल रचना से कवि का आत्मविश्वास जाग उठा था। उसने महत्तर प्रयास का आरभ किया। अयोध्याकाड के इस पहले ही दोहे की धारावाहिकता से प्रकट है कि 'सुमिरत सारद आवति धाई'[2] की उक्ति स्वय कवि के सबध मे गतार्थ हो गयी है।

अयोध्याकाड का यह आरभ आकस्मिक नही है। 'जानकीमगल' मे राम के विवाह का वर्णन किया जा चुका था। विवाहोपरात वे अयोध्या लौट चुके थे। उसकी शृखला मिलाते हुए कवि ने अयोध्याकाड की कथा का आरभ किया

जब तें रामु ब्याहि घर आए। नित नव मगल मोद बधाए।।[3]

पूर्वोक्त दोहे मे की गयी गुरु-वदना और रघुवर-विमलयश-वर्णन की 'प्रतिज्ञा' से प्रकट है कि ग्रथ का आरभ किया जा रहा है। अन्वयव्यतिरेकी उदाहरणो से इस तथ्य की पुष्टि होती है। अतिम पाँच काडो के आमुख मे न तो गुरु-वदना है और न ही रामचरित-वर्णन-सबधी 'प्रतिज्ञा'। दूसरी ओर, 'रामचरितमानस' के ठीक पहले लिखे गये 'जानकीमगल' और ठीक पीछे रचे गये 'पार्वतीमगल' मे कवि की इस आमुख-शैली का 'रामचरितमानस' के साथ घनिष्ठ सादृश्य देखा जा सकता है

(i) गुरु गनपति गिरजापति गौरि गिरापति।
सारद सेष सुकवि श्रुति संत सरल मति।।
हाथ जोरि करि विनय सबहि सिर नावौं।
सिय रघुबीर बिबाहु जथामति गावौं।।[4]

(ii) बिनइ गुरहि गुनिगनहि गिरिहि गननाथहि।
हृदयँ आनि सिय राम धरे धनु भाथहि।।
गावउँ गौरि गिरीस बिबाह सुहावन।
पाप नसावन पावन मुनि मन भावन।।[5]

इससे विदित होता है कि जहाँ-जहाँ कवि ने निबध-रचना का आरभ मानकर कविता की

---

१ रामचरितमानस, २।१। सोरठा
२. रामचरितमानस, १।११।२
३. रामचरितमानस, २।१।१
४ जानकीमगल, १-२
५ पार्वतीमगल, १-२

है वहाँ-वहाँ उसने गुरु-वदना और 'प्रतिज्ञा' का निर्देश किया है। वालकाड से रामचरितमानस के रचना-क्रम का आरभ मान लेने पर अयोध्याकाड के आदि मे निवद्ध प्रथम दोहे का कोई समाधान नही निकलता। आगे चलकर वालकाड की रचना के बाद भी उस दोहे को वही बना रहने दिया गया, क्योकि उसकी अवस्थिति से प्रवध की कोई हानि नही हो रही थी।

अयोध्याकाड की रचना कब आरभ हुई ? स० १६३१ की रामनवमी को। कहा जा चुका है कि 'सवत सोरह सै इकतीसा' को उस पक्तिविशेष का रचना-काल मानना ग्राह्य नही है। 'रामचरितमानस' के पूर्व रचित कृतियो मे तिथि-निर्देश की रीति नही अपनायी गयी थी। सपूर्ण 'रामचरितमानस' के निष्पन्न हो जाने पर उसकी प्रस्तावना लिखते समय कवि को उसका रचना-काल दे देना उचित प्रतीत हुआ और उसने उसके वास्तविक (अयोध्याकाड के) आरभ की तिथि निर्दिष्ट कर दी। कवि को वह तिथि याद कैसे रही ? राम-जन्म की तिथि होने के कारण उसको तुलसी भूल नही सकते थे। अयोध्याकाड की सुगठन, एकरूपता और समजसता से अनुमान होता है कि उसे व्यवस्थित रूप देने मे लगभग एक वर्ष का समय अवश्य लग गया होगा।

२ दूसरे अवस्थान मे वालकाड के उत्तरार्ध का निर्माण हुआ। दोहा १८४ से आरभ मानने की असमीचीनता प्रदर्शित की जा चुकी है। जनश्रुतियो से प्रकट है कि तुलसीदास ने अयोध्या और चित्रकूट की अनेक बार यात्रा की थी। अयोध्या-यात्री के लिए रामनवमी का विशेष महत्त्व है। ऐसा प्रतीत होता है कि रामनवमी के दिन जव कवि पुन अयोध्या मे ही था तव राम-जन्म के उत्सव से अनुप्राणित होकर वालकाड के उत्तरार्ध की रचना मे प्रवृत्त हुआ

भए प्रगट कृपाला परम दयाला कौसल्याहितकारी।[1]

राम के चरित का वास्तविक आरभ यही से होता है। राम-जन्म के दिन राम-जन्म-वर्णन से राम-कथा का प्रवर्तन बिलकुल स्वाभाविक लगता है। यदि अयोध्याकाड का प्रारभिक अश वाधक न होता तो यही से 'रामचरितमानस' की रचना का आरभ मानने मे कठिनाई न होती।

इन प्रथम दो अवस्थानो मे रचे गये अशो के समिलित रूप पर विचार कर लेना भी अपेक्षित है। काव्य-कला की दृष्टि से निरीक्षण करने पर 'रामचरितमानस' के दो स्पष्ट विभाग दिखायी देते हैं। एक विभाग मे वालकाड–१९२ से अयोध्याकाड के अत तक की रचना है और दूसरे विभाग मे शेष 'रामचरितमानस'। दोनो का सवसे अधिक महत्त्वपूर्ण भेद यह है कि पहले मे तुलसी का काव्यकवित्व[2] प्रधान है और दूसरे मे उनका शास्त्रकवित्व। इससे निश्चित निष्कर्ष निकलता है कि पहले भाग का प्रणयन करते समय धर्म, दर्शन और भक्ति के सिद्धातो ने कवि की कल्पना और भावुकता को अभिभूत नही किया था। उसकी वाणी भाव-सौंदर्य के लोक मे स्वच्छदता के साथ विचरी है। वह अपनी रचना के काव्य-रूप के प्रति विशेष सजग है। इसीलिए उसमे नियमत आठ अर्धालियो के

१. रामचरितमानस, १।१९२। छद १

२. काव्यकवि और शास्त्रकवि के लक्षण के लिए देखिए—काव्य-मीमासा, पृ० १०

बाद दोहे आदि का निवेश किया है। ४६५ मे से केवल १६ अर्धाली-समूह[1] ऐसे हैं जिनमें इस नियम का व्यतिक्रम पाया जाता है। बहुत संभव है कि रचना के प्रथम आलेखन मे आठ अर्धालियो के समूह का उसी प्रकार सम्यक् निर्वाह किया गया रहा हो जिस प्रकार जायसी ने 'पदमावत' मे सात के अर्धाली-समूह का किया था। जायसी ने केवल दोहे का अंतर्निवेश किया है, तुलसी ने हरिगीतिका और सोरठे का भी। अयोध्याकाड पहले लिखा गया था, इसलिए उसमे एकरूपता लाने की सजगता अधिक पायी जाती है। एक अपवाद[2] को छोडकर, उसके हर पचीसवें अर्धाली-समूह के बाद एक हरिगीतिका और एक सोरठे की योजना की गयी है। अर्धालियो की संख्या, हरिगीतिका और सोरठे मे संबद्ध यह सजगता बालकाड के उत्तरार्ध मे कम हो गयी है और शेष अंशो मे उससे भी कम।

पहले दो अवस्थानो मे तुलसीदास काव्यधर्म से अनुप्राणित हैं, मोक्षधर्म गौण है। यह तथ्य प्रथम दो सोपानो की पुष्पिकाओं से भी निस्संदेह प्रमाणित है। अंतिम पाँच सोपानो की पुष्पिकाओ मे प्रत्येक 'सोपान' के विशेषण-रूप मे मोक्षधर्म-निरूपक पदो का प्रयोग मिलता है, जैसे—अरण्यकाड की पुष्पिका मे 'विमलवैराग्यसंपादनो नाम तृतीय सोपान समाप्त'। 'रामचरितमानस' की प्रामाणिक प्रतियो और सुसंपादित संस्करणो से विदित है कि प्रथम दो सोपानो के साथ इस प्रकार के विशेषण-पदो का प्रयोग नही है। ग्रंथ को अंतिम रूप देते समय भी कवि ने इस अभाव-पूर्ति की आवश्यकता नही समझी। इसका कारण क्या है? प्रस्तुत प्रश्न का समाधायक उत्तर यही है कि ये दोनो सोपान मोक्षधर्म-विशिष्ट नही हैं, इनका स्वरूप काव्यमय है।

इन दो सोपानो की अभिकल्पना से निस्संदेह अनुमान होता है कि इनकी रचना के समय तक कवि के मन मे मानसरोवर-रूपी 'रामचरितमानस' की संकल्पना नही थी, उसके चार घाटो की निबंधना का प्रारूप नही था, और वक्ता-श्रोताओ के रूप मे शिव-पार्वती, याज्ञवल्क्य-भरद्वाज एवं काकभुशुंडि-गरुड के अंतर्निवेश की योजना नही थी। प्रथम विभाग मे आदि से अंत तक कवि स्वयं वक्ता है। उसमे सर्वत्र ही उसका हृदय बोल रहा है। ऐसा प्रतीत होता है कि अयोध्याकाड और बालकाड-उत्तरार्ध के निर्माण के पश्चात् 'रामचरितमानस' के रचना-क्रम मे कुछ समय का अंतराल है। कवि को इसका भान है। संभवत इसी कारण से उसने अरण्यकाड का आरंभ करते समय अयोध्याकाड के मुख्य प्रतिपाद्य विषय का एक पंक्ति मे निर्देश करके वर्णित और वर्ण्य कथा की शृंखला मिलायी है, तदनंतर कथा को अग्रसर किया है

रघुपति चित्रकूट बसि नाना। चरित किए स्रुति सुधा समाना॥[3]

क्रमश लिखे गये परवर्ती काडो मे इस रीति से कडी जोडने की आवश्यकता नहीं पडी। इस मध्यांतर मे उसने कुछ और अध्ययन, मनन एवं भावन किया है। इसके परिणाम-

---

१ बालकाड, १६६, २०३, २०७, २०८, २१०, २३६, २८८, ३२५, ३२७, ३६०, अयोध्याकाड, ५, ८, २०, २६, ६४, १७३, १८५, २०२, २१८

२ १२५वें अर्धाली-समूह के अंत में हरिगीतिका और सोरठा नहीं है, उनका विनिवेश १२६वें अर्धाली-समूह के अंत में किया गया है।

३ रामचरितमानस, ३।१।१

स्वरूप उसकी दृष्टि का कायाकल्प हो गया है, काव्य-भावना पर मोक्ष-भावना अभिभावी हो गयी है।

तीसरे अवस्थान मे पहुँचकर तुलसी मोक्षधर्मपरायण कवि के रूप मे हमारे सामने आते है। अतिम पाँच काडो मे उनका शास्त्रकवित्व प्रभविष्णु है। अनेक स्थलो पर सैद्धातिक निरूपण के अतिनिर्वाह से काव्यधारा सूख-सी गयी है। अब कवि की कल्पना मे ग्रथ के सात सोपानो की रूप-रेखा प्रत्यक्ष है। इसलिए तृतीय सोपान से सप्तम सोपान तक की पुष्पिकाओ मे उन सोपानो को क्रमश **विमल वैराग्य, विशुद्ध सतोष, विमल ज्ञान, विमल विज्ञान** और **अविरल हरिभक्ति** का सपादक कहा गया है।

चौथे अवस्थान मे 'रामचरितमानस' की प्रस्तावना लिखी गयी है। प्रस्तावना की विशदता और व्यवस्थित योजना से सूचित होता है कि उसकी रचना समग्र ग्रथ को दृष्टि मे रखकर की गयी है। यदि वह पहले लिखी गयी होती तो प्रथम दो काडो के कथा-क्रम मे भी शभु-भवानी आदि वक्ता-श्रोताओ का सकेत किया जाता। रामचरित लिख लेने के पश्चात् ही कवि ने **मानस** के रूपक की उद्भावना की है। उपसहार मे 'मानस' के सात सोपान रघुपति-भक्ति के 'पथान' कहे गये हैं। उपक्रम मे सपूर्ण ग्रथ के आधार पर साग-रूपक बाँधकर काव्यशास्त्र एव मोक्षशास्त्र की दृष्टि से कृति की विशेषताओ का निरूपण किया गया है। पुष्पिकाओ के तुलनात्मक समीक्षण से ज्ञात होता है कि "इति श्रीरामचरितमानसे सकलकलिकलुषविध्वसने · सोपान समाप्त" इतना अश सर्वनिष्ठ है। 'सप्त प्रबध सुभग सोपाना' की सकल्पना के अनुसार पहले-दूसरे काडो की पुष्पि-काओ मे 'सोपान' के पूर्व काव्य-दृष्टि से केवल क्रमात्मक-सख्यावाचक विशेषण (प्रथम, द्वितीय) लगाये गये हैं, और अतिम पाँच मे 'शास्त्र दृष्टि' से 'विमलवैराग्यसपादनो नाम' आदि का विशिष्ट प्रयोग भी किया गया है।

प्रकाशित संस्करण

जितने अधिक प्रामाणिक-अप्रामाणिक सस्करण 'रामचरितमानस' के प्रकाशित हुए हैं उतने किसी अन्य हिंदी-कृति के नही। उन सबकी चर्चा यहाँ पर अनभीष्ट है। प्रकाशित सस्करण दो प्रकार के हैं—मूलमात्र और सटीक।
निम्नाकित पाँच मूल-सस्करण महत्त्वपूर्ण हैं

१ स० प० नददुलारे वाजपेयी, प्र० गीता प्रेस, गोरखपुर
२ स० प० विजयानद त्रिपाठी, प्र० लीडर प्रेस, इलाहाबाद
३ स० प० शभुनारायण चौबे, प्र० नागरी-प्रचारिणी सभा, काशी
४ स० डा० माताप्रसाद गुप्त, प्र० हिंदुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद
५ स० प० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, प्र० काशिराज न्यास, वाराणसी

वैज्ञानिक पाठालोचन की दृष्टि से अतिम दो सस्करण अधिक प्रामाणिक हैं। उनके सपादन मे पाठशोध-विशेषज्ञ सपादको ने 'रामचरितमानस' की अनेकानेक हस्तलिखित प्रतियो एव आधुनिक पाठविज्ञान-विधि का उपयोग किया है। अनुसधाताओ के लिए ये दानो सस्करण विशेष उपयोगी है।

'रामचरितमानस' पर अनेकानेक टीकाएँ लिखी गयी हैं।[1] प्रकाशित सटीक संस्करणो मे से बहुतो मे तो टीका के नाम पर खडीबोली-रूपातर मात्र दे दिया गया है। उनकी भाषा भी अत्यत निकृष्ट है। व्यवसायबुद्धि-सपन्न प्रकाशक क्षेपको तथा फूहट चित्रो से युक्त 'तुलसीकृत रामायण' के सस्करण आज भी धडल्ले से बेच रहे हैं। 'सपति नई' की उक्ति भक्ति के बिना ही वाछित फल दे रही है। क्षेपको की रोचकता और साज-सज्जा की तडक-भडक मे आकृष्ट गँवार जनता 'रामचरितमानस' के प्रामाणिक सस्करण के स्थान पर क्षेपक-सहित 'आठो कांडो वाली रामायण' को खरीदना अधिक पसद करती है। स्थूलमति साधारण जन लवकुशकाड-रहित 'रामायण' (रामचरित-मानस) को अपूर्ण समझते हैं।

'रामचरितमानस' के पाँच सटीक सस्करण विशेष महत्त्व के हैं

१　मानस-पीयूष (सर्वसिद्धात-समन्वित तिलक)　महात्मा अजनीनदनशरण
२　रामचरितमानस, सिद्धात-तिलक　श्री श्रीकातशरण
३　रामचरितमानस, विजया टीका　प० विजयानद त्रिपाठी
४　रामचरितमानस　विनायक राव की टीका
५　रामचरितमानस　महावीरप्रसाद मालवीय की टीका

'मानस-पीयूष' 'रामचरितमानस' पर लिखित सर्वाधिक व्यापक, विश्वकोशात्मक टीका है। उसमे मानस मर्मज्ञ महात्मा अजनीनदनशरण ने सर्वतत्रस्वतत्र-भाव से पूर्ववर्ती टीकाकारो के विभिन्न मतो का उल्लेख करते हुए कवि की उक्तियो का विवेचन-विश्लेषण किया है। 'सिद्धांत-तिलक' मे प० श्रीकातशरण ने रामानुज-दर्शन की दृष्टि से 'राम-चरितमानस' की व्याख्या की है। उनका अभिमत है कि तुलसीदास विशिष्टाद्वैतवादी थे। 'विजया टीका' मे प० विजयानद त्रिपाठी ने कवि को शाकर वेदात का अनुयायी मानकर 'रामचरितमानस' का तदनुसार व्याख्यान किया है। इन तीनो ही टीकाओ मे अध्ययनशील टीकाकारो की दृष्टि धर्मदर्शन-भक्ति पर केंद्रित है। कहीं-कहीं सयोगवश कवित्व का उल्लेख कर दिया गया है। श्री विनायक राव की विशद टीका मे भी इसी पद्धति का अनुसरण किया गया है। श्री महावीरप्रसाद मालवीय की सक्षिप्त टीका मे 'रामचरितमानस' के काव्य-पक्ष पर ध्यान अवश्य दिया गया है, किंतु वह यथेष्ट नही है। इन पाँचो टीकाओ के अतिरिक्त प० रामेश्वर भट्ट, बाबू श्यामसुदरदास, प० रामनरेश त्रिपाठी, प० ज्वालाप्रसाद मिश्र आदि की टीकाएँ भी अनुपेक्षणीय हैं। यह खेद का विषय है कि 'रामचरितमानस' की एक भी ऐसी टीका नही है जिसमे साहित्य के केंद्रबिंदु से सौंदर्यपरक, सामाजिक, ऐतिहासिक, मनोवैज्ञानिक, जीवनीमूलक और तुलनात्मक आलोचना-सरणियो का विधिवत् उपयोग करके इस अन्यतम महाकाव्य की काव्य-शास्त्रीय दृष्टि से व्याख्या की गयी हो।

---

१. देखिए—रामचरितमानस की टीकाओं का समालोचनात्मक अध्ययन (अप्रकाशित)

६. पार्वतीमंगल

प्रतियाँ और प्रकाशित संस्करण

'पार्वतीमगल' की भी बहुत-सी हस्तलिखित प्रतियाँ उपलब्ध हैं, परतु कोई प्रति कवि के समय की अथवा बहुत प्राचीन नही है। 'पार्वतीमगल' के निम्नाकित सस्करण महत्त्व के हैं

१ मूलमात्र—'तुलसी-ग्रथावली' मे सगृहीत
२ भावार्थ-सहित—गीता प्रेस, गोरखपुर
३ टीका-टिप्पणी-सहित—'तुलसी के चार दल' मे सकलित
४ 'सिद्धान्त-तिलक' के सहित—प० श्रीकातशरण

प्रथम दो सस्करणो मे कोई उल्लेखनीय विशेपता नही है। तीसरे मे अवस्थी जी की टीका और टिप्पणी मे विशद व्याख्या के साथ ही विशिष्ट पद्यो के काव्यात्मक सौंदर्य का तुलनात्मकविश्लेषण भी है। 'सिद्धान्त-तिलक' मे प० श्रीकान्तशरण ने विस्तारपूर्वक अर्थ-विवेचन किया है। तुलसी के अन्य ग्रथो पर लिखित तिलक की भाँति तुलनात्मक उद्धरण भी दिये गये हैं।

रचना-काल

पार्वतीमगल मे कवि ने उसका रचना-काल स्वय दे दिया है

जय संवत फागुन सुदि पांचें गुरु दिनु।
अस्विनि बिरचेउँ मगल सुनि सुख छिनु छिनु ॥[1]

अर्थात् पार्वतीमगल की रचना जय-सवत् मे फाल्गुन शुक्ला पचमी, गुरुवार को हुई। जय-सवत् के विपय मे थोडा विवाद है। प० सुधाकर द्विवेदी की गणना के अनुसार डा० ग्रियर्सन[2], डा० रामकुमार वर्मा[3], प० सद्गुरुशरण अवस्थी[4], बाबू श्यामसुन्दरदास[5] प० रामनरेश त्रिपाठी[6], बाबू शिवनदनसहाय[7] आदि ने उसे स० १६४३ का वाचक माना है। डा० माताप्रसाद गुप्त ने स्वामी कन्नू पिलाई की गणना के आधार पर बतलाया है कि कवि के जीवन-काल मे जय वर्ष स० १६४२ मे पडता है, किन्तु उस वर्ष मे फाल्गुन शुक्ला पचमी रविवार को पडती है। इसलिए कृति मे दिया गया तिथि-विस्तार अशुद्ध ठहरता है। उक्त जय वर्ष स० १६४३ मे समाप्त होता है, परतु फाल्गुन शुक्ला पचमी उसके बाहर पडती है। हाँ, उस तिथि को गुरुवार अवश्य पडता है। इस पर से उनकी

---

१. पार्वतीमगल, ५
२ इण्डियन ऐन्टिक्वैरी, जिल्द २२, १८९२ ई०, पृ० १५-१६, जिल्द २३, १८९३ ई०, पृ० ७-८
३ हिंदी-साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृ० ३७७
४ तुलसी के चार दल, पहली पुस्तक, पृ० २०८
५. गोस्वामी तुलसीदास, पृ० ८३
६. तुलसीदास और उनका काव्य, पृ० २२७
७. गोस्वामी तुलसीदास, पृ० २१०

मान्यता है कि ग्रथ की रचना फाल्गुन शुक्ला पचमी गुरुवार को ही हुई, चूंकि जय वर्ष स० १६४३ के आरभ तक चलता रहा, इसलिए कवि ने उस पूरे सवत् को जय-सवत् मान लिया है।[1]

इस प्रसग मे एक प्रश्न यह उठना है कि स० १६४३ की फागुन सुदी ५ को ग्रथ-रचना का आरभ हुआ, या उसकी समाप्ति हुई, या सपूर्ण ग्रथ एक ही दिन मे रचा गया। अतिम विकल्प असभाव्य है। एक सौ चौंसठ पद्यो की काव्य-कृति का एक ही दिन मे निर्माण विश्वसनीय नही प्रतीत होता। दूसरे विकल्प के पक्ष मे भूतकालिक क्रिया 'विरचेउँ' का स्पष्ट प्रयोग है। इसके विरुद्ध प्रबल आपत्ति यह है कि ग्रथ समाप्ति का समय उसके आरभ मे देने का कोई तुक नही है। यह बात कुछ जँचती नही है कि 'पार्वती-मगल'-जैसी पुस्तक के १६३ पद्य लिखने के बाद चार पद्यो के अनन्तर एक तिथिसूचक पद्य का अतर्निवेश करके कवि ने एक सौ उनसठ पद्यो का पुनरकन किया होगा। पहला विकल्प स्वीकार्य है। 'रामचरितमानस' के रचना-काल के प्रसग मे उदाहरण देकर स्पष्ट किया जा चुका है कि भूतकालिक क्रिया 'विरचेउँ' का तात्पर्य है—विरचिहउँ। उससे यही सूचित होता है कि कवि रचना करने जा रहा है।

अतएव स० १६४३ मे फाल्गुन शुक्ला पचमी, गुरुवार को 'पार्वतीमगल' का निर्माण आरभ हुआ। उसी दिन तो नही, किन्तु उसी पक्ष मे उसकी रचना पूर्ण हुई होगी।

७ कृष्णगीतावली

हस्तलिखित प्रतियाँ

'कृष्णगीतावली' की हस्तलिखित प्रतियाँ भी काफी सख्या मे मिलती हैं। उनका पाठ भी प्राय प्रकाशित सस्करणो के समान है। यहाँ पर दो प्रतियाँ विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। स० १७१७ की एक प्रति के आधार पर भागवतदास खत्री ने 'कृष्णगीतावली' का सपादन किया था।[2] वह प्रकाशित सस्करण उक्त प्रति की प्रतिलिपि के रूप मे मान्य है। दूसरी प्रति स १७६७ की है।[3] उसका पाठ भी अन्य प्रतियो के सदृश है।

'कृष्णगीतावली' की विभिन्न प्रतियो मे जो व्यापक सादृश्य पाया जाता है, उससे प्रकट है कि उसका सकलन-सपादन कवि ने स्वय किया था। इस पर से एक शका उठती है कि उसके जो कई पद[4] 'सूरसागर' मे भी पाये जाते हैं उनके समावेश का रहस्य क्या है? तुलसी प्रतिष्ठित महाकवि थे। उनका 'रामचरितमानस' अपने रचना-काल मे ही प्रसिद्ध हो गया था। 'विनयपत्रिका' और 'गीतावली' के पद उनके गीत-रचना-नैपुण्य के ठोस प्रमाण हैं। ऐसी स्थिति मे उन्हे सूर के कुछ सामान्य पदो को उधार लेकर या चरा कर अपना घोषित करने की तनिक भी आवश्यकता नही थी। 'कृष्णगीतावली' के परपरा-

---

१. देखिए—तुलसीदास, पृ० २४१-४२
२. सरस्वती यन्त्रालय, काशी, स० १६४३
३. महाराजा पुस्तकालय, प्रतापगढ़
४. सख्या २४ (सूरसागर, ३६१६), ३२ (सू० ३६४४), ३३ (सू० ४२४०), ३४ (सू० ४१३६), और ४२-४३-४४ (देखिए—तुलसीदास, पृ० २२५)

गत एक-समान पाठ से भी सिद्ध है कि वे गीत प्रक्षिप्त नही हैं। इसके विपरीत 'सूरसागर' का पाठ तरल रहा है। उसके एकाध सस्करणो मे तो अन्य अष्टछापी कवियो के पद भी समाविष्ट कर लिये गये हैं। सूर-रचित पदो के आकार-प्रकार और सख्या का निर्धारण अभी तक नही हुआ है। 'सूरसागर' की पदावली मे प्रक्षिप्त पदो की सभावना बहुत अधिक है। इन तथ्यो के आधार पर कहा जा सकता है कि 'कृष्णगीतावली' के पदो के रचयिता तुलसीदास ही हैं, 'सूरसागर' के अन्य प्रक्षिप्त पदो की भाँति 'कृष्णगीतावली' के पद भी उसमे अतर्निविष्ट हैं।

प्रकाशित संस्करण

'कृष्णगीतावली' का समाज मे प्रचलन, और शिक्षण-सस्थाओ मे पठन-पाठन कम हुआ। अतएव उसके अधिक सस्करण नही निकले। मुख्यतया धर्म-बुद्धि से ही उसका प्रकाशन हुआ है। तीन सस्करण अवेक्षणीय हैं

१ मूलमात्र—'तुलसी-ग्रथावली' मे सगृहीत
२ हिन्दी-अनुवाद-सहित—गीता प्रेस, गोरखपुर
३. सिद्धात-तिलक के सहित—प० श्रीकातशरण

पहला सस्करण तुलसी ग्रथावली की अन्य कृतियो की भाँति मूलरूप मे सपादित है। पाद-टिप्पणी मे कुछ शब्दो के अर्थ दे दिये गये है। दूसरे मे केवल भावार्थ है, व्याख्या नही। उसकी टीका को 'हिंदी-अनुवाद' कहा गया है, मानो तुलसी ने 'गीतावली' की रचना किसी हिंदीतर भाषा मे की हो। सभवत 'हिंदी' शब्द से अनुवादक का अभिप्राय खडीबोली से है। तीसरे मे पाठ पर तो ध्यान दिया ही गया है, ग्रथ की विस्तारपूर्वक, व्यवस्थित टीका भी लिखी गयी है। भागवतपुराण आदि सस्कृत-ग्रथो, 'सूरसागर' आदि हिंदी-कृतियो तथा तुलसी की अन्य रचनाओ से उद्धृत तुलनात्मक लेखाशो के कारण उस टीका की विशदता, व्यापकता और उपयोगिता निस्सदेह बढ गयी है।

रचना-काल

'कृष्णगीतावली' एक सग्रह-ग्रथ है। अत उसकी रचना एक ही काल मे नही हुई। बेणीमाधवदास की उक्ति को प्रमाण मानकर बाबू श्यामसुदरदास ने लिखा है कि 'कृष्ण-गीतावली' के पद 'रामगीतावली' के पदो के साथ स० १६१७ एव १६२८ के मध्य लिखे गये और उनका सग्रह कवि ने स० १६२८ मे किया।[1] डा० रामकुमार वर्मा ने भी उक्त मत को मान्यता देते हुए कहा है—"जिस तरह जानकीमगल और पार्वतीमगल युग्म है, उसी प्रकार 'रामगीतावली' और 'कृष्णगीतावली'। दोनो की रचना से ज्ञात होता है कि ग्रथ उस समय लिखे गये होंगे जब कवि पर ब्रजभाषा और कृष्ण-काव्य का अत्यधिक प्रभाव होगा।"[2] प० रामनरेश त्रिपाठी के मत से "सवत् १६४३ और १६५० के बीच मे

१. गोस्वामी तुलसीदास, पृ० ६६-६७
२ हिंदी-साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृ० २८५

'कृष्णगीतावली' का रचना-काल है। यह गीति-काव्य तुलसी ने या तो वृंदावन मे, जब वे नाभादास और नंददास से मिलने गये थे तब, या व्रज से लौट जाने के बाद लिखा होगा।"[1] डा० माताप्रसाद गुप्त 'कृष्णगीतावली' का रचना-काल 'पदावलीरामायण' के लगभग मानते हुए कहते है—"पदावलीरामायण, रामगीतावली[2] तथा कृष्णगीतावली परस्पर सापेक्ष लगती हैं, क्योकि एक विषय की पदावली दूसरे मे नही है, इसलिए उपर्युक्त दो पुस्तको के साथ इसका भी संकलन-काल स० १६५८ के लगभग मानें, तो कदाचित् हम सत्य से अधिक दूर न होगे।"[3]

कवि ने 'कृष्णगीतावली' के रचना-काल या संग्रह काल के विषय मे कहीं कुछ नही कहा है। उसकी स्वहस्तलिखित प्रति भी उपलब्ध नही है। कृति मे किसी ऐतिहासिक तथ्य का उल्लेख भी नही है। किसी समसामयिक प्रामाणिक ग्रंथ मे उसका निर्देश भी नही मिलता। इसलिए इन सभी प्रकार के साक्ष्यो के अभाव मे 'कृष्णगीतावली' के वर्ण्य-विषय और रचना-शैली के आधार पर ही उसके निर्माण-काल का अनुमान करना पडेगा।

इस संबंध मे कुछ सूत्र अवधारणीय हैं। १ रामचरित और रामभक्ति ही तुलसी का मुख्य प्रतिपाद्य है। कृष्ण-चरित-वर्णन आनुषंगिक है। यह आनुषंगिक वर्णन किसी विशेष परिस्थिति का परिणाम होना चाहिए। वह परिस्थिति क्या हो सकती है? २ 'कृष्णगीतावली' के ६१ पदो मे ही कृष्णचरित का संक्षिप्त एवं व्यवस्थित वर्णन है। इससे प्रकट है कि वह एक ही सिलसिले मे लिखी गयी है। ३ उसकी शैली प्रौढ है। यह तथ्य इस बात का द्योतक है कि उसका निर्माण ऐसे समय मे हुआ जब कवि गीति-रचना मे अभ्यस्त हो चुका था। इन सूत्रो की सहायता से हम कुछ निष्कर्ष निकाल सकते हैं।

१ किंवदंती है कि तुलसी ने कई बार व्रज की यात्रा की थी। इसलिए संभाव्य है कि 'रामचरितमानस' की रचना के बाद व्रजयात्रा के समय उन्हे कृष्ण-चरित लिखने की प्रेरणा मिली हो। यह ठीक है कि कृष्ण-चरित लिखने के लिए व्रज-यात्रा अनिवार्य नही है, काशी मे बैठे-बैठे भी उसकी रचना हो सकती है, किसी वैष्णव भक्त के आग्रह से, किसी महनीय कृष्ण-भक्त के संपर्क मे आने पर अथवा स्वतः स्फूर्ति मात्र के कारण भी उसका निर्माण संभव है। परंतु तुलसी के सामान्यतः स्वीकृत जीवन-वृत्त को देखते हुए पूर्वोक्त संभावना स्वाभाविक लगती है।

२ 'कृष्णगीतावली' का व्यवस्थित विषय-निर्वाह इस बात का प्रमाण है कि उसके रचना-काल का आयाम विस्तृत और विच्छिन्न नही है। तुलनात्मक दृष्टि से 'कृष्णगीतावली' का वैशिष्ट्य अवेक्षणीय है। रामचरितात्मक 'कवितावली' और 'गीतावली' लंबी अवधि मे लिखी गयी हैं। इसीलिए उनके मुक्तक छंदो मे विषय-निर्वाह की रक्षा नही पायी जाती। 'गीतावली' और 'विनयपत्रिका' का तो कवि ने (परवर्ती वर्षो मे लिखित गीतो के कारण) पुनः संपादन और पुनर्नामकरण भी किया है। तुलसी का मन राम-भक्ति

---

१. तुलसीदास और उनका काव्य, पृ० २२७
२. 'विनयपत्रिका' का पूर्वरूप
३. तुलसीदास, पृ० २५४

मे रमा हुआ था, इसलिए उनको लक्ष्य करके दशाब्दियो तक रचना का क्रम चलता रहा। उनका कृष्ण-काव्य प्रासगिक है। अत वह कालविशेष की रचना है। 'रामचरितमानस'-जैसे प्रवध के रचना-काल के बीच मे विषयातर करने का अवकाश नही था। उसके वाद ही कृष्ण-विषयक गीत रचे गये होगे।

३ कृष्णगीतावली की प्रौढ रचना-शैली से स्वयसिद्ध है कि वह प्रगीतकार तुलसी की अभ्यासकालीन कृति नही है। अनुमान होता है कि 'रामचरितमानस' के रचना-काल मे भी तुलसी ने बहुत से राम-विषयक पदो की रचना की होगी। उनके भाव प्रत्येक दशा मे मात्र दोहा-सोरठा, चौपाई और हरिगीतिका के माध्यम से प्रतिबद्ध नही हुए होगे। उन्होने गीतो आदि का मुक्त मार्ग भी स्वीकार किया होगा। 'गीतावली' के साधारण पद अभ्यास-दशा की ही उपज प्रतीत होते है। रामविषयक गीत-रचना मे अभ्यस्त कवि 'कृष्णगीतावली' के प्रणयन मे प्रवृत्त हुआ होगा। सभव है कि 'कवितावली' मे सकलित कृष्ण-विषयक कवित्त-सवैये 'कृष्णगीतावली' के रचनाकाल मे ही निर्मित हुए हो और छद के अनुरूप उन्हे 'कवितावली' मे समाविष्ट किया गया हो।

तुलसी के साहित्यिक जीवन मे 'रामललानहछू' (स० १६२८) से लेकर 'पार्वती-मगल' (स० १६४३) तक वर्णनात्मक रचना का एक विशिष्ट युग परिलक्षित होता है। सभी ग्रथ रामचरित-निरूपक हैं, एक 'पार्वतीमगल' अपवाद है, परतु वह भी 'रामचरित-मानस' की भूमिका के शिव-पार्वती-चरित का विस्तार है। इस एकनिष्ठ विचारधारा को देखते हुए भिन्नविषयक 'कृष्णगीतावली' का रचना-काल स० १६४२ के वाद मानना उचित है। उसका सकलन-सपादन 'पदावलीरामायण' और 'रामगीतावली' के लगभग साथ ही हुआ होगा। इस प्रकार उसका सभावित रचना-काल स० १६४३ और १६६० के बीच पडता है।

८. गीतावली

हस्तलिखित प्रतियाँ

'गीतावली' और 'विनय-पत्रिका' के पद-सग्रहो की उपलब्ध हस्तलिखित प्रतियो से सिद्ध होता है कि ये दोनो रचनाएँ अपने पूर्वरूप मे कुछ भिन्न थी। तुलसीदास ने गीत-रचना के प्रथम अवस्थान मे राम विषयक जिन गीतो का निर्माण किया उनके उन्होने दो सग्रह तैयार किये। राम-कथा-सवधी गीतो के सग्रह का नाम था 'पदावलीरामायण'। जिन गीतो मे राम के प्रति आत्मनिवेदन किया गया था उनके सग्रह की सज्ञा रामगीता-वली' थी। स्पष्ट है कि इन नामो मे प्रयुक्त 'पद' और 'गीत' शब्द पर्यायवाची है। आगे भी कवि दोनो प्रकार के गीतो की रचना करता रहा और कालातर मे इन सग्रहो के पुन -सपादन की आवश्यकता प्रतीत हुई। पुन सपादित रूप मे 'पदावलीरामायण' को 'गीता-वली' नाम दिया गया और 'रामगीतावली' को 'विनयपत्रिका'।[1]

'गीतावली' की बहुत-सी हस्तलिखित प्रतियाँ मिलती हैं, किन्तु उनमे से कोई भी

१ वाबू श्यामसुन्दर दास ने 'गीतावली' को 'रामगीतावली' कहा है (गोस्वामी तुलसीदास, पृ० ६७)। संभवत 'कृष्णगीतावली' के वजन पर 'रामगीतावली' नाम दिया गया है।

तुलसी के जीवन-काल की नही है। 'पदावलीरामायण' की एक खडित और असशोधित प्रति प्राप्त है, जिसमे सुदरकाड और उत्तरकाड के क्रमश ४० और २१ पद विद्यमान हैं। ये दोनो काड भी पूरे नही हैं। अनेक उपलब्ध पद भी खडित है। 'गीतावली' की प्राचीनतम प्रति स० १७९७ की है।[1] 'गीतावली' की हस्तलिखित प्रतियो और मुद्रित सस्करणो मे प्राय समानता है। 'गीतावली' के पाठ की अपेक्षा 'पदावलीरामायण' का पाठ निस्सदेह पूर्वकालिक है। इस निष्कर्ष के दो आधार हैं। पहला यह कि 'पदावलीरामायण' के उपलब्ध अशो की पद-सख्या 'गीतावली' के तत्सवादी अशो की पद-सख्या से कम है। अत तर्कसगत अनुमान यह है कि अधिक-पद बाद मे जोडे गये है। यह कल्पना करना समीचीन नही होगा कि 'गीतावली' को ही संक्षिप्त करके 'पदावलीरामायण' का निर्माण हुआ, क्योकि ये अधिक-पद अपेक्षाकृत कम सुदर नही है। दूसरा आधार यह है कि 'पदावली-रामायण मे पदो का क्रम अव्यवस्थित है, उदाहरण के लिए—सीता-त्रिजटा सबधी पाँच पद एक स्थल पर न होकर दो स्थलो पर आये हैं। उनमे भी दो पद काड के आरभ मे ही हैं। कथा के क्रमानुसार उनका स्थान बाद मे होना चाहिए था। इससे प्रमाणित होता है कि जिस-जिस क्रम से पद रचे गये थे उसी क्रम से 'पदावलीरामायण' मे रखे गये। कुछ काल पश्चात् अन्य पदो को भी मिलाकर उन्हे क्रम-बद्ध व्यवस्थित रूप दिया गया और वह सुसपादित कृति 'गीतावली' के नाम से अभिहित हुई।

कुछ पद न्यूनाधिक हेर-फेर के साथ 'गीतावली' और सूरसागर' दोनो मे मिलते हैं।[2] इस पर से प्रश्न उठता है कि उनका मूल रचयिता कौन है? सूर को उत्तमर्ण मानने के तीन कारण हो सकते हैं। १ सूर तुलसी के पूर्ववर्ती थे। २ सूर की पद-रचना-शैली का परवर्ती कवियो ने अनुसरण किया है, जैसे तुलसी ने 'कृष्णगीतावली' मे। ३. सूर का बाल-वर्णन अद्वितीय होने के कारण दूसरो के लिए ग्राह्य हो सकता है। परतु, ये तर्क अकाट्य नही हैं। १ किसी कवि की पूर्वगामिता उसकी उत्तमर्णता का आवश्यक आधार नही है। उसे कसौटी बनाकर चलने से निरी भ्राति की सभावना है। सूर के एक पद और तुलसी के एक सोरठे मे शब्दार्थ-साम्य देखकर एकाध आलोचको को इसी प्रकार की भ्राति हुई है। वस्तुतः इन दोनो कवियो की इन रचनाओ का स्रोत 'भागवतपुराण' की टीका है।[3] २ सूर पदरचना के आदि प्रवर्तक नही है। वे एक चली आती हुई परपरा के उन्नायक मात्र है। और, तुलसी की 'विनयपत्रिका' आदि की पद-रचना से सिद्ध है कि वे इस

---

१ राजकीय पुस्तकालय, प्रतापगढ़

२ गीतावली, १।२६ (सूरसागर, ७२२), १।२७ (सू०, ७२७), १।३१ (सू० ७१५), १।३३ (सू० ७६९), १।३४ (सू०७२४) और १।२३, २४, २८ (देखिए—तुलसीदास, पृ० २१९)

३ तुलना करके देखिए—

(क) मूक करोति वाचाल पगु लघयते गिरिम् ।
यत्कृपा तमह वदे परमानदमाधवम् ।। —भागवत पर श्रीधर-टीका, मगलाचरण

(ख) जाकी कृपा पगु गिरि लघै अधे कों सब कछु दरसाइ ।
बहिरौ सुनै गूँग पुनि बौलै रक चलै सिर छत्र धराइ ।।—सूरसागर, १

(ग) मूक होइ बाचाल पंगु चढ़ै गिरिबर गहन ।
जासु कृपाँ सो दयाल द्रवौ सकल कलि मल दहन ।। रामचरितमानस, १।१। सोरठा २

शैली के भी सिद्धहस्त कवि हैं। ३ इसमे सदेह नही कि सूर का वात्सल्य-निरूपण अप्रतिम है, किंतु तुलसी-जैसे असाधारण महाकवि को सूर के उधार के आसरे अपना गौरव बढाने की लेशमात्र भी अपेक्षा नही थी। यदि सूर के पदो को अपनाना उनका प्रयोजन होता तो सूर-साहित्य के अत्यन्त सरस पदो को चुनकर उन पर अपनी छाप लगाते, इन साधारण पदो को लेकर बेलज्जत गुनाह क्यो करते!

बाबू श्यामसुदरदास का अनुमान है—"सभवत तुलसीदास जी की रचनाओ मे मिलने वाले सूरदास के इन पदो को तुलसीदास जी ने गाने के लिए पसद किया होगा। और तुलसीदास जी को प्रिय होने के कारण आगे चलकर उनके शिष्यो ने उचित परिवर्तन के साथ उन्हें उनकी रचनाओ मे मिला दिया होगा।"[1] अधिक सभाव्य यह है कि इन पदो के मूल रचयिता तुलसीदास ही है। 'सूरसागर' के सकलयिताओ ने इन प्रचलित पदो को सूर की छाप के साथ सगृहीत कर लिया है। 'गीतावली' एव 'सूरसागर' के पदो की प्रामाणिकता और सदिग्धता को देखते हुए हम इसी निर्णय पर पहुँचते है। "गीतावली का एक ही पाठ समस्त प्रतियो मे मिलता है, इसलिए यह प्रकट है कि वे तुलसीदास द्वारा ही 'गीतावली' मे रखे गये हैं। 'सूरसागर' का पाठ तरल रहा है। उसकी विभिन्न प्रतियो मे ८०० के लगभग से लेकर तीन हज़ार से भी अधिक पद मिलते है, और कुल पद-सख्या चार हज़ार से भी अधिक होती है। फलत यह मानना पडेगा कि 'सूरसागर' मे बहुत-सा अश ऐसा होगा जो प्रक्षिप्त है, और इसी प्रक्षिप्त अश मे ये दो-चार पद भी हो सकते हैं जो 'गीतावली' मे पाये जाते हैं।"[2]

प्रकाशित संस्करण

'गीतावली' के अनेक सस्करण प्रकाशित हुए हैं। इस कृति का भी पाठानुसधान आवश्यक है। प्रकाशित सस्करणो मे से निम्नाकित तीन को अपेक्षाकृत प्रामाणिक माना जा सकता है

१ मूलमात्र—तुलसी-ग्रथावली मे सगृहीत
२ भावार्थ-सहित—गीता प्रेस, गोरखपुर
३ 'सिद्धात-तिलक' के सहित—प० श्रीकातशरण

इनमे से प्रथम दो सस्करण साधारण हैं। दूसरे मे मूल के साथ खडीबोली-अनुवाद मात्र है। केवल अतिम सस्करण मे 'गीतावली' के पदो की तात्त्विक व्याख्या की गयी है। उसमे तुलसी-साहित्य एव स्रोत-ग्रथो से तुलनात्मक उद्धरण देकर व्यापक पृष्ठभूमि में उसके पदार्थों का स्पष्टीकरण है। दार्शनिक उक्तियो का विवेचन रामानुज के दृष्टि-बिंदु से किया गया है।

रचना-काल

बाबा वेणीमाधवदास ने अपने 'मूलगोसाईंचरित' मे 'गीतावली' की (जिसे उन्होने

१ गोस्वामी तुलसीदास, पृ० ६९
२ तुलसीदास, पृ० २१९-२०

'रामगीतावली' नाम दिया है) तुलसी की प्रथम कृति माना है और उसका सकलन-सपादन काल स० १६२८ बतलाया है।[1] किसी अन्य साक्ष्य से अपुष्ट होने तथा 'मूलगोसाईंचरित' की अप्रामाणिकता के कारण उसमें उल्लिखित रचना-काल को महत्त्व नही दिया जा सकता। बाबू श्यामसुदरदास के अनुसार 'गीतावली' के पदो की रचना स० १६१६ और १६२८ के बीच हुई। उनका सग्रह स० १६२८ मे किया गया।[2] उनकी मान्यता का आधार उक्त वेणीमाधवदासकृत 'मूलगोसाईंचरित' है, जो प्रामाणिक कृति नही है।

प० रामनरेश त्रिपाठी उसे स० १६२५ से २८ तक की रचना मानते हैं।[3] उनके तर्क इस प्रकार हैं। १ 'रामचरितमानस' तुलसी का प्रथम प्रयास नही है। उन्होंने पहले रामचरित को विविध राग-रागिनियो मे गाने के लिए लिखने का प्रयास किया होगा। 'गीतावली' का प्रारभ उन्ही दिनो हुआ होगा। २ 'गीतावली' और 'रामचरितमानस' की कथाओ मे कई स्थानो पर मौलिक अतर है। उदाहरण के लिए, 'गीतावली' मे सीता-वनवास की करुण कथा है, 'रामचरितमानस' में 'गीतावली' की कथा का सशोधन किया गया है। इस प्रकार 'रामचरितमानस' मे उनके विचारो का अतिम सशोधित रूप प्रस्तुत किया गया है। ३. 'गीतावली' तुलसी के गृह-त्याग के पहले की रचना है। तब वे कवि ही थे, भक्त नही हो पाये थे। 'गीतावली' स्वय इसका प्रमाण है। उसमे काव्य तत्त्व की प्रधानता है, उसके आरभ में न तो देवी-देवताओ की स्तुति है और न अत मे भक्त-कवि का दैन्य-प्रदर्शन है।

डा० माताप्रसाद गुप्त को त्रिपाठी जी के तर्कों मे वदतोव्याघात दिखायी देता है।[4] मेरे विचार से अतर्विरोध न होने पर भी उन तर्कों मे विशेष वजन नही है। जो तर्क उन्होने 'गीतावली' के विषय मे दिये हैं वे 'कवितावली' पर भी घटित होते हैं। यह निर्विवाद सत्य है कि कवितावली' का कवित्व उत्तम कोटि का है, उसके अनेक पद्य कवि के अतिम समय मे लिखे गये हैं और उसके उत्तरकाड मे भक्ति की प्रौढ अभिव्यक्ति हुई है। उसमे सीता वनवास और साथ ही लक्ष्मण-त्याग का भी साकेतिक उल्लेख हुआ है। 'रामचरितमानस' की रचना के बाद भी उसमे उपेक्षित इन प्रसगो का 'गीतावली' और 'कवितावली' मे उल्लेख कर देना सहज सभव है। 'रामचरितमानस'-जैसे प्रबध की सफल रचना के लिए 'गीतिकाव्य' का अभ्यास करना आवश्यक नही है। 'रामचरितमानस' की प्रौढता तक पहुँचने के पूर्व कवि रामचरितात्मक 'रामाज्ञाप्रश्न', 'रामललानहछू' और 'जानकीमगल की रचना कर चुका था। इस प्रकार अभ्यास की अपेक्षित पूर्ति हो चुकी थी। जहाँ तक कवि की भक्ति-भावना का प्रश्न है, उस काल मे रचित आत्मनिवेदनात्मक गीत 'विनयपत्रिका' मे सकलित किये गये हैं और 'गीतावली' मे भी भक्ति-

---

१ मूलगोसाईंचरित, ३३।३
२. गोस्वामी तुलसीदास पृ० ६६-६७
३ तुलसीदास और उनका काव्य, पृ० २२४
४ तुलसीदास, प० २४६

परक उक्तियाँ भरी पडी हैं।[1] अतएव उसे गृहस्थ तुलसी की कृति मानने के पक्ष मे कोई ठोस आधार नही है।

डॉ० रामकुमार वर्मा ने यह सभावना व्यक्त की है कि 'गीतावली' का निर्माण 'रामचरितमानस' के पश्चात् स० १६४३ के आसपास हुआ होगा।[2] वह समय ऐसा था जब तुलसीदास सस्कृत-ग्रथो से अधिक प्रभावित थे। 'गीतावली' की कथा उत्तरकाड मे अधिकतर वाल्मीकि-रामायण से साम्य रखती है। 'अत सभव है, इसकी रचना 'मानस' के आदर्शों से स्वतत्र होकर बाद मे हुई हो।' उनसे असहमति प्रकट करते हुए डा० माताप्रसाद गुप्त ने कहा है कि वाल्मीकि-रामायण से जिन स्थलो पर साम्य पाया जाता है, लगभग उन सभी स्थलो पर 'रामाज्ञाप्रश्न' से भी 'गीतावली' का साम्य है, इसलिए वह निश्चयात्मक नही हो सकता। वस्तुत, यह खडन अनाकाक्षित है। डा० वर्मा ने स्वय स्वीकार किया है कि 'इस ग्रथ की रचना-तिथि विश्वस्त रूप से निर्धारित नही की जा सकती।'

डा० गुप्त का अनुमान है कि 'पदावलीरामायण' का पाठ स० १६५८ का है एव 'गीतावली' का रचना-काल स० १६४६ और १६६० के बीच है।[3] उन्होने 'पदावली-रामायण' की जिस प्रति का उल्लेख किया है उसका लिपि-काल स० १६६६ माना है।[4] इसलिए स० १६५८ को उसके पाठ की सीमा-रेखा मानने मे क्या औचित्य है ? अधिक से अधिक यही कहा जा सकता है कि उसके पाठ को स० १६६६ तक वह रूप प्राप्त हो गया था। इससे यह भी सिद्ध हो जाता है कि जो अधिक पद 'गीतावली' मे सगृहीत है वे स० १६६६ के बाद रचे गये। अत स० १६६० मे ही उसकी समाप्ति मान लेना असगत है।

वर्तमान 'गीतावली' को अतिम रूप कब दिया गया—इस विषय मे कोई प्रमाण उपलब्ध नही है। 'गीतावली' की हस्तलिखित प्रतियो और प्रकाशित सस्करणो की एकरूपता से प्रमाणित होता है कि उसका व्यवस्थित सकलन, सपादन और नामकरण कवि ने स्वय किया था। पुन सपादन करते समय 'रामगीतावली' (वर्तमान 'विनयपत्रिका') के पाँच पद भी उसमे से निकालकर औचित्यानुसार 'गीतावली' मे समाविष्ट कर लिये थे। 'पदावलीरामायण' के पाठ (लिपिकाल स० १६६६) के उपरात भी 'गीतावली' के गीतो की रचना होती रही। उस अवधि मे 'कवितावली', 'विनयपत्रिका' और 'दोहावली' के पद्य भी रचे जाते रहे। अत 'गीतावली' के समापन मे कुछ वर्षों का समय लग गया होगा, जैसा कि 'कवितावली' आदि के सबध मे घटित हुआ है। यदि ४-५ वर्षों का समय मान लिया जाए तो उसको स० १६७० के लगभग वर्तमान रूप प्राप्त हुआ होगा। रही आरभ करने की बात। 'गीतावली' के रचना-कौशल से यह तथ्य स्वयसिद्ध है कि वह कवि के प्रारभिक काल की कृति नही है। मेरी धारणा यह है कि 'रामचरितमानस' के रचना-काल मे भी कवि के राम-विषयक अनेक भाव गीतो के रूप मे अभिव्यक्ति पाते रहे

---

१. आगे देखिए—'गीतावली' की समीक्षा
२. हिंदी-साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृ० ३८९
३. तुलसीदास, पृ० २४८, २७६
४ तुलसीदास, पृ० २४४

होंगे। 'रामचरितमानस' के पश्चात् भी यह क्रम चलता रहा होगा। आगे चलकर राम-चरित-संबंधी गीतों को 'गीतावली' नाम से और आत्मनिवेदनात्मक गीतों को 'विनय-पत्रिका' के नाम से कवि ने संकलित-संपादित किया होगा। इस प्रकार 'गीतावली' की रचना सं० १६३० और १६७० के मध्य हुई होगी।

६. विनयपत्रिका

हस्तलिखित प्रतियाँ

'विनयपत्रिका' की बहुत-सी हस्तलिखित प्रतियाँ उपलब्ध हैं, लेकिन कोई भी प्रति कवि-लिखित अथवा कवि के जीवन-काल की नहीं है।

१ कहा जा चुका है कि 'विनयपत्रिका' का, उससे कुछ भिन्न, एक पूर्वरूप भी था। उसका नाम था 'रामगीतावली'। उसकी एक हस्तलिखित प्रति प्राप्त है,[1] जो सं० १६६६ की है। बाबू श्यामसुन्दरदास ने 'विनयावली' की एक प्रति (लिपिकाल सं० १६६६) का उल्लेख किया था।[2] डा० गुप्त ने बतलाया है कि यह प्रति 'रामगीतावली' की ही है, 'विनयावली' उसका अन्यतम नाम है।[3] 'विनयपत्रिका' पाठ की कतिपय हस्त-लिखित प्रतियों में भी 'रामगीतावली' नाम पाया जाता है। एक प्रति की पुष्पिका में विषय के साथ ही रचनाकार और रचना के नाम का भी उल्लेख है।[4] इससे निष्कर्ष निकलता है कि 'विनयपत्रिका' का पूर्वरूप 'रामगीतावली' है। 'रामगीतावली' की विश्व-सनीय हस्तलिखित प्रति में उसका लिपि-काल सं० १६६६ दिया हुआ है। स्पष्ट है कि 'रामगीतावली' के पदों का प्रणयन और संपादन सं० १६६६ तक हो गया था।

'रामगीतावली' में कुल १७४ गीत हैं। उसके पाँच गीत (२६, २७, ३६, ८०, १६६) 'विनयपत्रिका' में नहीं हैं, वे अब 'गीतावली' में पाये जाते हैं।[5] वर्तमान 'विनय-पत्रिका' में २७९ गीत हैं। महात्मा अंजनीनंदनशरण ने प्रश्न उठाया है—'क्या १०६ या १२५ पद, जो अन्य सभी पोथियों में पाये जाते हैं, प्रक्षिप्त हैं?' उनका उत्तर है—"कवि ने समय-समय पर कुछ गीत के पद रचे और फिर उनको एकत्र करके उस ग्रंथ का नाम 'श्रीरामगीतावली' रख दिया। कुछ वर्षों के बाद किसी कारण से उन्होंने कुछ विनय के पद और लिखे। दोनों को किसी समय एकत्र कर उस पूरे ग्रंथ का नाम 'विनयपत्रिका' रखा और दरबार में पेश किया।"[6] डा० गुप्त का कथन है कि "रामगीतावली को विनय-पत्रिका का वर्तमान कलेवर देने के लिए पूर्ववर्ती पाठ में न केवल पदों का क्रम बदला

---

१. रामनगर के चौ० छुन्नीसिंह के पास, देखिए—विनय-पीयूष, भूमिका, पृ० ५-८
२. नागरी-प्रचारिणी पत्रिका, वर्ष १, अंक १
३. तुलसीदास, पृ० २२४
४. यदि रघुपतिभक्तिषु वितदा प्रेक्ष्यते सा सकलक (लुपदनी) सेवनायाऽभ्यामान्
शृणुत सुमतिषु मो निर्मिता रामभक्तांजन (ति तुल) सिदासे रामगीतावलीयम्।
—तुलसीदास, पृ० २२० पर उद्धृत
५. गीतावली, क्रमश: ७।२५, ७।२४, ७।१२, ७।२८, ३।५
६. विनय-पीयूष, भूमिका, पृ० ५-६

गया, बल्कि यदि अधिक नही तो कम-से-कम १०८ नये गीत भी जोडे गये।"[1] 'विनय-पत्रिका' की उपलब्ध हस्तलिखित प्रतियो मे 'रामगीतावली' का पाठ नही पाया जाता। इससे प्रतीत होता है कि विनयपत्रिका-पाठ का सपादन कर लेने पर कवि ने उसके पूर्व-रूप को नष्ट कर दिया था। 'विनयपत्रिका' की जो हस्तलिखित प्रतियाँ पायी जाती हैं उनके पाठ और पद-क्रम मे परस्पर-विरोध नही मिलता। यह भी इस बात का सूचक है कि पदो का सकलन-सपादन कवि ने स्वय किया है।

२ भागवतदास खत्री द्वारा प्रकाशित[2] 'विनयपत्रिका' स० १७१७ की किसी हस्तलिखित प्रति पर आधारित है। अत उसको उस प्रति की ही प्रतिलिपि समझना चाहिए।

३ सपूर्ण 'विनयपत्रिका' की जो प्रतियाँ उपलब्ध हैं उनमे प्राचीनतम प्रति स० १७६० की है। उसका पाठ प्रकाशित सस्करणों के पाठ के समान है।

४. प० महावीरप्रसाद मालवीय ने स० १७७४ की एक हस्तलिखित प्रति का पाठ अपनी 'विनयपत्रिका'-टीका मे रखा है। अत उनकी टीका का पाठ उक्त प्रति की प्रतिलिपि के तुल्य है।

५ विजयानगर के व्यास की प्रति महात्मा अजनीनदनशरण का कहना है कि "वह पोथी स० १६६६ वाली (रामगीतावली) को छोड अन्य सभी पोथियो से बहुत शुद्ध प्रतीत होती है। वह पोथी दो सौ वर्ष से ऊपर की बतायी जाती है।"[3]

६ स० १८७८ की प्रति रामनगर (काशी) के चौधरी छुन्नीसिंह के यहाँ है।

७. स १८७९ की प्रति राजकीय पुस्तकालय, बलरामपुर।

और भी बहुत-सी प्रतियाँ हैं जिनका तुलनात्मक अध्ययन और पाठशोध अपेक्षित है।

प्रकाशित संस्करण

'विनयपत्रिका' भक्तो के समाज मे अत्यत समादृत रही है। सगीतज्ञो ने भी उसे गौरव दिया है। विभिन्न शिक्षा-सस्थाओ के पाठ्य-क्रम में वह निर्धारित रही है। अत उसके पठन-पाठन का क्रम बराबर चलता रहा है। साहित्यालोचको एव भगवद्-भक्तो ने उस पर अनेक टीकाएँ लिखी हैं। परीक्षोपयोगी टीकाएँ भी बहुत हैं। उसके प्रतिष्ठित सस्करण हैं

१ मूलमात्र—तुलसी-ग्रथावली मे सगृहीत
२ सरलभावार्थ-सहित—गीता प्रेस, गोरखपुर
३ सटीक[4]-सस्करण—टीकाकार लाला भगवानदीन और विश्वनाथप्रसाद चौबे, स० विश्वनाथप्रसाद मिश्र

---

१. तुलसीदास, पृ० २२३
२ सरस्वती यन्त्रालय, काशी, स० १९४२
३ विनय-पीयूष, भूमिका, पृ० ७
४. रामनारायण लाल, इलाहाबाद

४ देवदीपिका-समलंकृत[1]—देवनारायण द्विवेदी
५ हरितोषिणी-टीका-समलंकृत[2]—वियोगी हरि
६ सिद्धांत-तिलक के सहित[3]—पं० श्रीकांतशरण
७ विनय-पीयूष[4] (अपूर्ण)—महात्मा अंजनीनंदनशरण

प्रथम-दो संस्करण कामचलाऊ हैं। पहले की पाद-टिप्पणी में कहीं-कहीं शब्दार्थ भी दे दिये गये हैं। दूसरा संस्करण धर्म-भावना से अनुप्राणित, सस्ता, सरल और गीता प्रेस से प्रकाशित होने के कारण सर्वाधिक लोक-प्रचलित है। अब तक उसकी ढाई-तीन लाख प्रतियाँ बिक चुकी हैं। तीसरे, चौथे और पाँचवें संस्करणों में शब्दार्थ और भावार्थ के अतिरिक्त विशेष टिप्पणियाँ भी दी गयी हैं। 'सिद्धांत-तिलक' में पदों की बड़ी विशद व्याख्या है। विवेचन क्रम में संस्कृत-ग्रंथों एवं तुलसी-साहित्य से तुलनात्मक उद्धरण दिये गये हैं। भक्ति-दर्शन में रामानुज का दृष्टिकोण अपनाया गया है। 'विनयपीयूष' के केवल दो खंड ही मेरे देखने में आये हैं। संभवत. पूरा ग्रंथ अभी तक प्रकाशित नहीं हुआ। उसका आयोजन 'मानस-पीयूष' के ढंग पर किया गया है। परंतु, उसमें 'मानस-पीयूष' की व्यापकता और महत्ता नहीं है। इसमें संदेह नहीं कि पूरा प्रकाशित हो जाने पर वह 'विनयपत्रिका' का वृहत्तम और महत्तम विवरण होगा।

रचना-काल

तुलसीदास ने 'रामगीतावली' को 'विनयपत्रिका' का परिवर्धित-निष्पन्न रूप कब प्रदान किया—इस प्रश्न के समाधान का कोई संकेत कवि ने कहीं नहीं किया है।[5] इस विषय में कोई समसामयिक स्रोत भी ऐसा नहीं है जिसकी सहायता से 'विनयपत्रिका' की रचना और संपादन के समय का निश्चित निर्णय किया जा सके।

बाबा वेणीमाधव के 'मूलगोसाईंचरित' में 'विनयपत्रिका' के बदले 'विनयावली' का उल्लेख है[6] और उसकी रचना 'रामचरितमानस' के अनंतर ही बतलायी गयी है। उसी आधार पर बाबू श्यामसुंदरदास ने अनुमान लगाया है कि 'विनयपत्रिका' सं० १६३६ से १६३९ के बीच किसी समय बनी होगी।[7] यह तिथि मुख्यतः दो कारणों से

---

१ ज्ञानमंडल लिमिटेड, वाराणसी
२ साहित्य सेवा सदन, बनारस
३ सिद्धांत-तिलक कार्यालय, सद्गुरु कुटी, गोलाघाट, अयोध्या
४ पीयूषधारालय, विट्ठलक्रीडा भवन, बड़ौदा
५ तुलसी रचित कहे जाने वाले एक पद का अंतिम पद्य इस प्रकार है

संवत सोरह सै एकतीसा जेठ मास छठि स्वाती।
तुलसिदास इक अरज करत है प्रथम विनय की पाती॥

उद्धरण से सूचित होता है कि उक्त पद 'विनयपत्रिका' का है और इसके अनुसार 'विनयपत्रिका' का रचना-काल सं० १६३१ है। परंतु, यह पद ''विनयपत्रिका' की किसी प्रति में नहीं मिलता, अतः कपोलकल्पित है।
६ मूलगोसाईंचरित, ५१
७ गोस्वामी तुलसीदास, पृ० ७८-७९

अमान्य है—एक तो 'मूलगोसाईंचरित' अनाप्त है, और दूसरे 'विनयपत्रिका' मे पाये जाने वाले अनेक आत्मोल्लेख[1] कवि की वृद्धावस्था के द्योतक हैं।

प० रामनरेश त्रिपाठी के मतानुसार, "सभव है, सवत् १६४० मे इसके कुछ पद बने हो और फिर सबको मिलाकर सवत् १६६६ के बाद 'पत्रिका' पूर्ण कर दी गयी हो। इसमे काशी की महामारी का कही भी सकेत नही है। इससे निश्चय ही यह सवत् १६६९ के पहले बन चुकी थी।" उनकी "राय मे विनयपत्रिका को तुलसीदास के हाथ से सवत् १६६८ के आस-पास वर्तमान रूप प्राप्त हुआ है। सवत् १६६८ के बाद वृद्धावस्था मे तुलसीदास ने जो कुछ लिखा, वह कवितावली मे है।"[2] उनके मत पर डा० गुप्त की टिप्पणी है "त्रिपाठी जी ने कदाचित् केवल 'विनयपत्रिका' के पाठ को लेकर विचार किया है, 'पदावली रामायण' पाठ पर यदि उन्होने ध्यान दिया होता तो, इस प्रकार की कल्पनाएँ न करते।"[3] त्रिपाठी जी का अनुमान कोरा कल्पना-विलास नही है, तथापि स० १६४० और १६६८ का सीमाकन चित्य है। यह भी सभव है कि उसके कुछ पद स० १६४० के पहले रचे गये हों और यह भी सभाव्य है कि उसके कुछ पदो की रचना स० १६६८ के बाद हुई हो। यह आवश्यक नही था कि महामारी के बाद रचे गये पदो मे महामारी का सकेत किया ही जाता। यदि कवि के तत्सबधी भाव कवित्तो के माध्यम से नि सृत हुए तो उसने उन्हें उसी रूप मे जाने दिया और उनका समावेश 'कवितावली' में यथास्थान कर लिया गया।

डा० गुप्त ने 'रामगीतावली' पाठ का समय स० १६५८ एव समग्र 'विनयपत्रिका' का रचना-काल स० १६४६ और १६६० के बीच माना है। यहाँ पर भी दोनो परिसीमाओ का औचित्य असिद्ध है। 'रामचरितमानस' और पार्वतीमगल की रचना समाप्त कर लेने तथा ब्रज की यात्रा (स० १६४५ के लगभग) पूर्ण कर लेने के बाद ही कवि ने 'विनयपत्रिका' का प्रणयन आरभ किया हो, इसका कोई निश्चायक साक्ष्य नही है। हो सकता है कि 'रामचरितमानस' की स्तुतियो की रचना के अवसरो पर अथवा राम-भजन के भाव-विभोर क्षणो मे 'रामगीतावली' के कुछ पदो का भी यादृच्छिक निर्माण हो गया हो। हाँ, 'विनयपत्रिका' का शिल्प-नैपुण्य इस बात का निश्चित प्रमाण है कि वह 'रामचरितमानस' के पूर्व की कृति नही है। अत उसकी पूर्वसीमा स० १६३१ है। उसकी उत्तर-सीमा स० १६८० (कवि की मृत्यु) के कुछ समय पहले तक मानी जा सकती है। तुलसी का स्वर्गवास १६८० के श्रावण मे हुआ था। अतएव 'विनयपत्रिका के सपादन का कार्य अधिक से अधिक स० १६७९ तक पूर्ण हो गया होगा।

उपर्युक्त विवेचन से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि 'विनयपत्रिका' के गीतो की रचना का आरभ स० १६३१ के पश्चात् और उसका अतिम रूप स० १६७९ के पूर्व निष्पन्न हुआ होगा।

---

१. जैसे—पद २५९-२६० आदि

२ तुलसीदास और उनका काव्य, पृ० २२९

३. तुलसीदास, पृ० ७५२

१०. दोहावली

हस्तलिखित प्रतियाँ

'दोहावली' की कई हस्तलिखित प्रतियाँ प्राप्त हुई हैं। उनके आधार पर उसके विभिन्न सस्करण भी प्रकाशित हुए हैं। उनमे ५७३ दोहे सकलित हैं। उनमे कही-कहीं पाठ-भेद भी हैं। विशेष ध्यान देने योग्य बात यह है कि खोज-रिपोर्टों मे 'दोहावली' की हस्तलिखित प्रतियो से जो उद्धरण दिये गये हैं, उनके और प्रकाशित सस्करणो के पाठ मे बहुत भेद है।

'दोहावली' की जो प्राचीनतम हस्तलिखित प्रति[1] उपलब्ध हुई है वह स० १७९७ की है। डा० गप्त ने प्रकाशित सस्करणो के साथ उसका मिलान किया है, किंतु किन्ही निष्कर्षों की स्थापना नही कर सके हैं। समग्र प्राप्त-प्रतियों के तुलनात्मक पाठालोचन के बिना यह सभव नही था। उक्त प्रति मे केवल ४७८ दोहे हैं उनमे से भी छ दोहे प्रकाशित सस्करणो मे नही हैं। अत उस प्रति के पाठ और मुद्रित पाठ मे शताधिक दोहो की भिन्नता है। तुलसी-रचित 'दोहावली' का वास्तविक रूप निर्धारित करने के लिए यथोचित अनुसधान की अपेक्षा है।

'सतसई' की भी कुछ प्रतियाँ पायी जाती हैं। उनमे बहुत पाठ-भेद है। स० १९०२ की एक प्रति डा० माताप्रसाद गुप्त के पास भी है। उनकी मान्यता है कि तुलसी-रचित दोहो का एक मूल सग्रह था, कवि के देहावसान के बाद अलग-अलग ढग से दो भिन्न सग्रह तैयार किये गये। मेरे विचार से मूल सग्रह 'दोहावली' ही है। उसमे कुछ दोहे प्रक्षिप्त भी हो सकते हैं। 'सतसई' का अधिकाश प्रक्षिप्त है। उसकी अप्रामाणिकता पर विचार किया जा चुका है।

प्रकाशित संस्करण

'दोहावली' की प्रतियों के पाठ-भेद और उसके साथ 'सतसई' के गडबडझाले के कारण 'दोहावली' के प्रकाशित सस्करणो की प्रामाणिकता घट जाती है। इन सस्करणो मे अधिक पाठ-भेद नही है। वे ही ५७३ दोहे सब मे सगृहीत हैं। तीन सस्करण उल्लेखयोग्य हैं

१ मलमात्र—तुलसी-ग्रथावली मे सगृहीत
२ अनुवाद-सहित—गीता प्रेस, गोरखपुर
३ 'सिद्धात-तिलक' के साथ—प० श्रीकातशरण

'तुलसी-ग्रथावली' वाले सस्करण की पाद-टिप्पणी मे कही-कही शब्दार्थ भी दे दिया गया है। गीता प्रेस से प्रकाशित सस्करण में खडीबोली-अनुवाद मात्र है। केवल 'सिद्धात-तिलक' ऐसा है जिसमे दोहो की विस्तृत एव तुलनात्मक व्याख्या है। सैद्धातिक विवेचन विशिष्टाद्वैतपरक है।

---

१ राजकीय पुस्तकालय, प्रतापगढ

रचना-काल

वेणीमाधवदास के अनुसार 'दोहावली' का सग्रह-काल (रचना-काल नही) स० १६४० है।[1] विशेषज्ञ विद्वान् उन्हे प्रमाण नही मानते। किंवदती है कि तुलसी ने टोडर के लिए दोहो का सग्रह किया था। हो सकता है कि सं० १६४० के आस-पास कवि ने दोहो का सग्रह तैयार किया हो और बाद मे नये दोहे रचकर 'दोहावली' का परिवर्धन किया हो। बाबू श्यामसुदरदास ने वेणीमाधवदास के कथन को स्वीकार किया है।[2] प० रामनरेश त्रिपाठी की मान्यता है कि 'दोहावली' की रचना स० १६२० से १६७१ तक हुई।[3] डा० रामकुमार वर्मा और डा० माताप्रसाद गुप्त ने उसकी आरभिक तिथि के विषय मे कोई मत नही व्यक्त किया। डा० वर्मा[4] ने उसका रचना-काल १६८० तक और डा० गुप्त[5] ने स० १६६९ तक माना है।

'दोहावली' का रचना-काल निर्धारित करते समय कुछ बातें ध्यान मे रखनी होगी। १ उसका प्रामाणिक पाठ उपलब्ध नही है। सभव है कि पाठानुसधान के फल-स्वरूप उसके कुछ ऐसे दोहे छँट जाएँ जो रचनाविशेष से सगृहीत हैं या कालविशेष के द्योतक हैं। २ वह एक सग्रह-ग्रथ हैं। उसके दो दोहे 'वैराग्यसदीपनी' मे, ३५ दोहे 'रामाज्ञाप्रश्न' मे और ८५ दोहे 'रामचरितमानस' मे पाये जाते हैं। शेष दोहे स्वतत्र रूप से लिखे गये हैं। ३ स्वतत्र रूप से रचित दोहो मे एक दोहा[6] वह है जो टोडर के उत्तरा-धिकारियो के पचायतनामे के शीर्ष पर लिखा हुआ है। एक दोहे मे रुद्रबीसी का उल्लेख है।[7] तीन दोहे ऐसे हैं जिनमे जरठपन और मृत्यु की छाया का चित्राकन है।[8] तीन दोहो मे बाहु-पीडा का वर्णन है।[9]

इन सभी दोहो पर विचार करने से हम इस निश्चित निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि 'दोहावली' की रचना का आयाम 'वैराग्यसदीपनी' के रचना-काल से लेकर कवि की वृद्धावस्था तक फैला हुआ है। उसके पद्य कवि के सपूर्ण साहित्यिक जीवन से सबधित हैं, वे कालविशेष की कृति नही हैं। पहले कहा जा चुका है कि 'वैराग्यसदीपनी' तुलसी की प्रारभिक कृति है और उसका रचना-काल स० १६२६-२७ के आसपास है। उनका स्वर्गवास स० १६८० मे हुआ। सभव है कि जीवन के अतिम प्रहर का सकेत करने वाले

---

१. मिथिला ते कासी गए चालिस सवत लाग।
दोहावलि सग्रह किए सहित बिमल अनुराग ॥

२. गोस्वामी तुलसीदास, पृ० ८०

३. तुलसीदास और उनका काव्य, पृ० २२५

४ हिंदी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, प० ३८३

५. तुलसीदास, पृ० २५८-६०

६ तुलसी जान्यो दसरथहि धरम न सत्य समान।
राम तजे जेहि लागि बिनु राम परिहरे प्रान ॥—दोहावली, २१९

७ दोहावली, २४०

८ दोहावली, १५५, १७८, ५६३

९ दोहावली, २३४, २३५, २३६

दोहे अतिम वर्ष मे ही लिखे गये हो। अतएव दोहावली का रचना-काल स० १६२६ से स० १६८० तक मान्य है।

११. बरवैरामायण

हस्तलिखित प्रतियाँ

इस छोटी-सी पुस्तक के सबध मे बडी उलझनमय बात यह है कि इसकी विभिन्न प्रतियो मे आश्चर्यजनक भेद पाया जाता है। उनके पाठ भिन्न हैं, पद्यो का क्रम भिन्न है, पद्य-सख्याएँ भिन्न हैं। एक ओर ऐसी प्रतियाँ है, जिनमे केवल ६९ पद्य है और दूसरी ओर ऐसी भी हैं जिनमे ३९६ या ४०५ पद्य हैं। उनमे भी केवल १५ पद्य उभयनिष्ठ हैं। अत कुल मिलाकर ४४४ पद्यो की भिन्नता है। पुस्तक की अपेक्षा भिन्नता या आयाम कही अधिक है। अजीव चक्कर है—बित्ता भर के बाले मियाँ डेढ हाथ की दाढी !

'बरवैरामायण' की हस्तलिखित प्रतियो को हम तीन वर्गो मे रख सकते हैं

१ कहा जाता है कि सबसे पुरानी प्रति स० १७९७ की है।[1] डा० गुप्त ने बतलाया है कि "मुद्रित पाठ के प्रथम ४२ छद तथा उत्तरकाड के छद ५९-६९ इस हस्तलिखित प्रति मे नही मिलते है। इनके स्थान पर इस प्रति मे २५ अन्य छद मुद्रित पाठ के ५३-५८ से पूर्व आते हैं। इस पाठ के जो २५ छद मुद्रित पाठ मे नही मिलते वे इसी आधार पर तुलसीदास की रचनाओ से कदाचित् बहिष्कृत नही किये जा सकते, क्योकि शैली[2] तो उनकी प्रमुख रूप से तुलसीदास की ही दिखायी देती है।"[3]

२ दूसरे वर्ग मे वे प्रतियाँ हैं जिनका पाठ मुद्रित सस्करणो मे प्राप्त होता है। इन प्रतियो मे कथा का क्रम-सबद्ध निरूपण नही मिलता। पद्य-सख्या ६९ है। नायिका-भेद के उदाहरण-जैसे लगने वाले श्रृगारिक पद्य पाये जाते है, जो पहले और तीसरे वर्ग की प्रतियो मे नही मिलते।

३ इस वर्ग की प्रतियो मे पद्य-सख्या ४०० के लगभग है। तीन राजकीय पुस्तकालयो मे परिरक्षित प्रतियाँ उल्लेख योग्य हैं

(क) भिनगाराज की प्रति मे ३९६ पद्य हैं। तिथिकाल नही दिया गया है।

(ख) काशिराज की प्रति—इसका लिपि-काल स० १८७३ है। इसमे ४०५ छद है।

(ग) जौनपुरराज की प्रति—जौनपुरराज के पुस्तकालय मे स० १८७३ की लिखी हुई परस्पर मिलती-जुलती दो प्रतियाँ हैं, एक फाल्गुन मे लिखी गयी थी और दूसरी आषाढ मे। ये वस्तुत एक ही प्रति की दो प्रतिलिपियाँ हैं। प० यादवेंद्रदत्त दूबे (राजा जौनपुर) ने स० २०१० मे इसका प्रकाशन 'बरवा (बरवै) रामायण' के नाम से किया।

---

१ राजकीय पुस्तकालय, प्रतापगढ

२ उदाहरणार्थ—सोहत परन कुटी तर सीता राम।
लषन समेत बसहु तुलसी उर धाम ॥

३. तुलसीदास, पृ० २२५ २३

प्रकाशित संस्करण

'बरवैरामायण की एक टीका प्रसिद्ध रामायणी प० वदन पाठक ने लिखी थी। एक टीका वैजनाथ दास मैनपुरी की है। अधुना उपलब्ध पाँच सस्करण महत्त्वपूर्ण हैं

१ मूलमात्र—'तुलसी-ग्रथावली मे सगृहीत
२ सरलभावार्थ-सहित—गीता प्रेस, गोरखपुर
३ टीका-टिप्पणी-सहित—प० सद्गुरुशरण अवस्थी
४. सिद्धाततिलक-समन्वित—प० श्रीकातशरण
५ बरवा (बरवै) रामायण—प० यादवेंद्रदत्त दूबे (राजा जौनपुर) द्वारा प्रकाशित

प्रथम चार सस्करणो का पाठ समान है। पद्य-सख्या ६९ है। पहले दो सस्करण कामचलाऊ है। तीसरे मे काव्य-दृष्टि से तुलनात्मक और आलोचनात्मक व्याख्या की गयी है। चौथे मे प० श्रीकातशरण द्वारा तुलसी की अन्य कृतियो पर लिखित 'तिलक' के सदृश ही विशद विवेचन किया गया है। 'बरवैरामायण' के अध्ययन के लिए उक्त तीसरे-चौथे सस्करण विशेष उपयोगी हैं।

पाँचवाँ सस्करण भी मूल मात्र है। यह सस्करण अन्य सस्करणो से नितात भिन्न है। इसकी कतिपय विशेषताएँ ध्यान देने योग्य हैं

१ इसमे ४०५ पद्य हैं। अन्य सस्करणो के ५४ पद्य इसमे नही हैं, और इसके ३९० पद्य उनमे नही मिलते। अन्य सस्करणो के केवल १५ पद्य इसमे पाये जाते है। उन १५ पद्यो मे भी कुछ क्रम-भेद है। अधोलिखित दोहरी सारणी से उनके तुलनात्मक अध्ययन मे सहायता मिलेगी

	जौनपुर-संस्करण के क्रम से			अन्य सस्करणो के क्रम से	
	जौनपुर-सस्करण	अन्य सस्करण		अन्य सस्करण	जौनपुर-सस्करण
सख्या	१९२	४४	सख्या	२८	२८१
	१९३	४६		३१	३००
	१९४	५२		४४	१९२
	१९५	४८		४६	१९३
	१९६	४९		४७	१९९
	१९७	५०		४८	१९५
	१९८	५१		४९	१९६
	१९९	४७		५०	१९७
	२००	५३		५१	१९८
	२०१	५५		५२	१९४
	२०२	५४		५३	२००
	२०३	६४		५४	२०२
	२०४	६३		५५	२०१
	२८१	२८		६३	२०४
	३००	३१		६४	२०३

२ अन्य संस्करणो के आरंभ मे मंगलाचरण का कोई पद्य नही है। यह अनुमान कर लिया गया था कि 'बरवैरामायण' एक अधूरा संग्रह-ग्रंथ है जिसका संकलन-संपादन कवि स्वयं नही कर सका था। अतएव किसी मंगल-छंद का निवेश नही किया जा सका। प्रस्तुत संस्करण इस धारणा का निरास करता है। इसके आरंभ मे 'रामचरितमानस' के प्रथम दो कांडो की मंगल-स्तुतियो के सदृश रची गयी गणेश और गुरु की वंदना मिलती है।[1]

३ इसमे प्रचलित संस्करणो के वे पद्य बिल्कुल ही नही है जो शृंगारपूर्ण अथवा मर्यादा-विरुद्ध माने जाते हैं।[2]

४ इसमे कथा का सूत्र सर्वथा-विच्छिन्न नही है। मुक्तक-रचना-संग्रह होने पर भी पूर्वापर पद्यो से राम-कथा की शृखला मिल जाती है।

५ इसके मुक्त छंदो मे 'रामचरितमानस' की कथा का संक्षिप्त वर्णन है। अपवाद-स्वरूप एकाध स्थलो पर 'रामचरितमानस' मे प्रतिपादित वस्तु का किंचित् परिवर्तित रूप दृष्टिगोचर होता है, जैसे रावण के प्रति मंदोदरी की यह उक्ति .

चलहु बेगि लै सिया अग्र करि मोहि।
सरन सबद सुनि रखिहैं रघुपति तोहि॥[3]

'रामचरितमानस' मे इससे मिलता-जुलता उपदेश अंगद ने रावण को दिया है .

दसन गहहु तृन कंठ कुठारी। परिजन सहित संग निज नारी॥
सादर जनकसुता करि आगे। येहि बिधि चलहु सकलभय त्यागे॥
प्रनतपाल रघुबंसमनि त्राहि त्राहि अब मोहि।
आरत गिरा सुनत प्रभु अभय करैगो तोहि॥[4]

६ कही-कही एक या दो पंक्तियो मे पूरे प्रसंग को निबटा दिया गया है। जैसे अरण्य-कांड के अंतर्गत जटायु[5] और नारद[6] के प्रसंग को। परंतु राम-कथा के सभी महत्त्व-पूर्ण प्रसंग किसी-न-किसी रूप मे निबद्ध हो गये हैं।

७ इसमे आदि से अंत तक 'रामचरितमास' की कथा का 'सादृश्य' ही नहीं शब्दावली का भी प्रचुर प्रयोग पाया जाता है। कतिपय उदाहरण पर्याप्त होंगे .

भए कुमार जबहि सब बँ उपनंन।
बिद्या पढ़न चले प्रभु बिद्या भंन॥
एहि बिधि बाल चरित हरि बहु बिधि कीन्ह।
अति आनंद नगर के बासिन्ह दीन्ह॥

---

१. गननायक बरदायक देव मनाय। बिनबिनास प्रकासक होउ सहाय॥१॥
श्री गुरपद अंबुज रज हृदय समारि। बरनन करौं रामजस कृपासुधारि॥२॥

२ जैसे—बरवै १८, ४०

३ जौनपुर-संस्करण, ३६२

४ रामचरितमानस, ६।२०। ४-६।२०

५ जौनपुर-संस्करण, २७२

६ जौनपुर-संस्करण, ३०४

मारग देखि ताड़का कहेउ लखाय।
एकहि बान प्रान हरि सुरपुर जाय॥
काकपक्ष सिर सोहत स्यामल गौर।
हरन मार मद मूरति थक मन दौर॥
जो प्रन तजउ लाज बड़ि विधि अस कीन्ह।
कुँअरि कुआँरि रही बरु जस नहि छीन॥
अनजानत कर बिलग न करब हमार।
गौर स्याम ए सखि को आंहि तुम्हार॥
सकुचि सीय मुसुकानि सुनत प्रिय बैन।
तिन्हहि बताएउ नाहु नैन की सैन॥
जान आदि कबि तुलसी नाम प्रभाव।
उलटो जपत कोल ते भयो रिषिराव॥[1]

८ इस सस्करण का परिचय देते हुए आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने लिखा है "क्या शैली और क्या भाषा सब प्रकार से यह तुलसीदास की रचना जान पडती है। परतु शृगारबहुल पद्य क्या तुलसीदास के लिखे नही हैं ? मुझे उनमे ऐसा उत्तान शृगार नही दिखता कि उसे तुलसीदास की रचना मानने मे सदेह हो। मेरा विचार है कि प्रस्तुत सस्करण तुलसीदास जी की प्रामाणिक रचना है।"[2]

आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र उनसे सहमत नही हैं। उनका अभिमत है—"इस सस्करण के 'परिचय'-लेखक लिखते हैं—"प्रस्तुत सस्करण तुलसीदास की प्रामाणिक रचना है'। पर 'मानस' के कर्ता गोस्वामी तुलसीदास की वह कृति है, यह माननीय नही। इसका कारण यह है कि 'तुलसीभूषण' मे इस 'वृहद् बरवैरायण' के वे ही 'बरवै' आये हैं जो उभय-निष्ठ हैं। इसमे अलकारो की योजना प्रचलित बरवैरामायण की-सी कही नही है। इसमे पूरी कथा क्रमबद्ध सरस शैली मे कहने का प्रयास-मात्र है। भाषा इसकी स्थान-स्थान पर त्रुटिपूर्ण है। फिर भी, उक्त महोदय लिखते हैं 'क्या शैली और क्या भाषा सब प्रकार से यह तुलसीदास की रचना जान पडती है।' किन्ही भगतजी ने यह रचना की है जिन्हे अलकार-सलकार से कोई प्रयोजन नही था। कुछ बरवै पुराने भी रख दिये हैं, यथास्थान बैठा दिये हैं।'[3]

९ इसके जो ३९० छद अन्य सस्करणो मे नही पाये जाते उनमे से कुछ की शैली प्रचलित 'बरवैरामायण' से भिन्न है।[4] किंतु, कुछ छदो की शैली अन्य पद्यो के सदृश है। उदाहरण के लिए

---

१. बरवारामायण (जौनपुर-सस्करण), ४७, ५०, ६९, ६६, ११९, १७७, १७८, २०२, क्रमश तुलना करके देखिए—रामचरितमानस, १।२०४।२, १।२०३।१, १।२०९।३, १।२३३।१, १।२५२।३, २।११६।४, २।११७।१, २।१९४।४

२. बरवारामायण (जौनपुर सस्करण), प्राक्कथन, पृ० ८

३ हिन्दी-साहित्य का अतीत, पृ० २९३-९४

४. जैसे—छोट ललित अरु लोहित कर पद चरट (३२), सुमिरि कठिन पन आपन लगे बिसूरै (९२)

एहि विधि बाल चरित हरि बहु विधि कीन्ह।
अति आनद नगर के बासिन्ह दीन्ह ॥
नहि अस दूलह दुलहिन ब्याह उछाह।
हम सब पुन्य पयोनिधि सुष अवगाह ॥[1]

विचारणीय प्रश्न

विभिन्न प्रतियो मे इतना अधिक पाठ-भेद, सख्या-भेद और क्रम-भेद देखकर अनेक जटिल प्रश्न सामने आते हैं—उनमे से कौन-सी प्रति या प्रति-परपरा प्रामाणिक है, तुलसी-रचित छदो की वास्तविक सख्या कितनी है, पद्यो का कवि-समत क्रम और शुद्ध पाठ क्या है, आदि। वर्तमान परिस्थिति मे इन प्रश्नो के निश्चित उत्तर नही दिये जा सकते। 'बरवैरामायण' का वैज्ञानिक पाठानुसधान अपेक्षित है। उस शोध के आधार पर ही निर्णायक समाधान सभव है।

रचना-काल

उपर्युक्त भिन्नताओ ने 'बरवैरामायण' के रचना-काल-निर्धारण की समस्या को उलझा दिया है। कवि-लिखित अथवा कवि के जीवन-काल की कोई प्रति उपलब्ध नही है। उसमे किसी ऐतिहासिक घटना आदि का सकेत नही है। कवि ने स्वय रचना-तिथि का निर्देश नही किया है। प्रतियो की अतिशय भिन्नता के कारण अतस्साक्ष्य यथेष्ट सहायता नहीं कर पाता। इतना निश्चित प्रतीत होता है कि 'बरवैरामायण' किसी एक सवत् की रचना नही है। वह भिन्न-भिन्न समयो पर लिखित पद्यो का सकलन है।

एक किवदती है कि अब्दुर्रहीम खानखाना का कोई मुशी छुट्टी पर गया था। छुट्टी समाप्त होने पर वह चलने लगा। वियोग-व्यथित पत्नी ने एक बरवै[2] लिखकर अपने पति के हाथ रहीम के पास भेजा। सहृदय रहीम उससे अत्यत प्रभावित हुए। उन्होने मुशी को पुन घर जाने की अनुमति दे दी। उन्होने स्वय बरवै-छद मे रचना की और इष्ट-मित्रो से भी बरवै लिखने का आग्रह किया। कुछ बरवै रचकर तुलसी के पास भेजे। तुलसी को भी छद पसद आया और उन्होने 'बरवैरामायण' की रचना की। वेणीमाधवदास के अनुसार यह घटना स० १६६९ की है। बाबू श्यामसुदर दास[3] और डा० रामदत्त भारद्वाज[4] ने इस रचना-तिथि को मान्यता दी है। डा० रामकुमार वर्मा ने स० १६६९ को उसका सग्रह-काल माना है।

स० १६६९ का रचना-समय या सग्रह-काल मानने मे कई कठिनाइयाँ हैं

१ किवदती और किवदती-तुल्य 'मूलगोसाईंचरित' स्वत प्रमाण नही हैं। उनकी पुष्टि

---

१ बरवारामायण (जौनपुर सस्करण), ५०, १३३

२ प्रेम प्रीति कै बिरवा चलेहु लगाय।
सींचन की सुधि लीजो मुरझि न जाय ॥

३ गोस्वामी तुलसीदास, पृ० ८६-८७

४. तुलसीदास और उनके काव्य, पृ० ४०-४१

किसी अन्य साक्ष्य द्वारा नही होती ।

२ प० रामनरेश त्रिपाठी का अनुमान है कि "तुलसीदास तत्कालीन राजकर्मचारियो से दूर रहना ही पसद करते थे। अतएव रहीम ही ने तुलसीदास का अनुकरण किया हो, यह सभव हो सकता है।"[1] उन्होने एक उदाहरण द्वारा अपने कथन की पुष्टि की है। परतु त्रिपाठी जी ने रहीम-सबधी किंवदती को निस्सार बताते हुए भी 'बरवैरामायण' की रचना स० १६६० के आसपास मानी है।[2]

३ बरवैरामायण के अनेक पद्यो मे रचना विधान की प्रौढता नही दिखायी देती। डा० गुप्त ने उसके आरभिक छदो मे प्रयुक्त **मुकुत**[3], **बिगसाइ**[4], **केवल**[5], **अरुण**[6], बाल[7] और **नवला नारि**[8] का दोषोद्घाटन करके निष्कर्ष निकाला है—"शैली और विषय-निर्वाह की असमर्थता से यही ज्ञात होता है कि ये छद या तो कवि-कृत है ही नही, अन्यथा उसके अप्रौढ कवि-जीवन के है।"[9] दोनो विकल्प सभाव्य हैं। जौनपुर वाले सस्करण मे ये पद्य नही हैं।

प० सद्गुरुशरण अवस्थी का दृढ विश्वास है कि 'कवितावली', 'गीतावली', 'विनयपत्रिका' अथवा 'रामचरितमानस' के सदृश बृहद् ग्रथो का रचयिता 'बरवैरामायण' जैसे छोटे ग्रथ की रचना की ओर प्रवृत्त नही हो सकता, अतएव वह कवि के साहित्यिक जीवन के आदि-काल की रचना है और उसका रचना-सवत् अनुमानत १६१६ है। इस तर्क की निर्बलता स्पष्ट है। यदि रामचरितमानसकार 'कवितावली' और 'गीतावली' के फुटकर पद्यो की रचना कर सकता है तो 'बरवैरामायण' के मुक्त-छदो की रचना क्यो नही कर सकता? डा० गुप्त ने उसके बालकाड के कुछ छदो मे शैली-शैथिल्य देखकर उन्हें तुलसी के अभ्यास-काल मे रचित माना है, उत्तरकाड के कुछ छदो मे 'निकट आती हुई मृत्यु की धुँधली **प्रतिच्छाया**' का प्रभाव देखकर उन्हे अतिम कविता-काल मे रचित माना है, और तुलसी की कृतियो के कालक्रम का उपसहार करते हुए 'अतिम और अपूर्ण' कृतियो के अतर्गत 'बरवैरामायण' का रचना-काल स० १६६१-८० माना है।[10] डा० गुप्त की मान्यता मे थोडा-सा अतर्विरोध है। तुलसीदास के 'अप्रौढ कवि-जीवन' के छद स० १६६१ मे नही लिखे जा सकते। स० १६६१ मे उनकी आयु ७२ वर्ष की थी।

सप्रति स्वीकृत सस्करणो के आधार पर अनुमान किया जा सकता है कि 'जानकीमगल' के रचना-समय के आस पास ही कवि ने 'बरवैरामायण' के बालकाड के अप्रौढ प्रतीत होने वाले छदो की रचना की होगी। 'रामललानहछू' और 'जानकीमगल' के क्रम मे 'बरवैरामायण' की वर्ण्य वस्तु की सगति ठीक बैठ जाती है। भाषा की दृष्टि से इन रचनाओ मे साम्य है—बोलचाल की अवधी को गौरव दिया गया है, सस्कृत की समास-शैली और फारसी-शब्दावली का व्यवहार नही है। 'वैराग्यसदीपनी', 'रामाज्ञाप्रश्न'

---

१. तुलसीदास और उनका काव्य, पृ० २२८
२. तुलसीदास और उनका काव्य, पृ० २२९
३-८. क्रमश १, ३, ६, १३, ४ और १६ (नागरी-प्रचारिणी सभा का सस्करण)
९. तुलसीदास, पृ० २५५-५६
१०. तुलसीदास, पृ० २५५-५६, २७६

आदि की तुलना मे 'बरवैरामायण' का कवित्व उत्कृष्ट है, इसलिए उसके बालकाड को भी कवि-जीवन के बिल्कुल आरभ मे नहीं रखा जा सकता। उसके छद मुक्तक हैं। 'कविता-वली' की भाँति उन्हे काडो के अनुसार सकलित कर दिया गया है। प्रतियो की परस्पर अतिभिन्नता से प्रकट है कि 'बरवैरामायण' का सकलन-सपादन कवि ने स्वय नहीं किया है। वृद्धावस्था के व्यजक पद्यो से प्रमाणित है कि कुछ छदो[1] की रचना कवि-जीवन के अतिम वर्षों मे हुई। अत कुल मिलाकर यह अनुमान होता है कि 'बरवैरामायण' का रचना-काल स० १६३० और १६८० के मध्य है।

१२. कवितावली-हनुमानबाहुक

हस्तलिखित प्रतियाँ

'कवितावली' या 'कवित्तावली'[2] एक सग्रह-ग्रथ है। उस युग मे सवैये, घनाक्षरी, छप्पय और झूलना—ये छद कवित्त नाम से अभिहित होते थे। अतएव, तुलसीदास ने समय-समय पर 'कवित्त-शैली' मे जो कुछ लिखा वह सब इस ग्रथ मे सकलित हुआ। यही कारण है कि इसमे कृष्ण विषयक कवित्त भी सगृहीत हैं और 'बाहुक' या 'हनुमानबाहुक' के कवित्त भी[3]। 'कवितावली' की अधिकतर प्रतियो मे 'हनुमानबाहुक' उसके परिशिष्ट-रूप मे उपलब्ध होता है। काशी की नागरी-प्रचारिणी-सभा द्वारा प्रकाशित 'तुलसी-ग्रंथावली' मे उसका इसी प्रकार प्रकाशन हुआ है। दूसरी ओर, गीता प्रेस, लाला भगवान-दीन, प० श्रीकातशरण आदि के सस्करणो मे 'हनुमानबाहुक' समिलित नही है। 'बाहुक' को 'कवितावली' का अग मानना ही उचित है, क्योकि उसकी प्रकृति 'कवितावली' के अतिम पद्यो की प्रकृति से भिन्न नही है और वह 'कवितावली' की प्रतियो के अतर्गत परिशिष्ट-रूप मे पाया भी जाता है। 'कवितावली' की जो हस्तलिखित प्रतियाँ मिली हैं उनमे काफी पाठ-भेद है। क्रम और सख्या का भी अतर है। कवि के जीवन-वृत्त की दृष्टि से 'कवितावली' का महत्त्व तुलसी-साहित्य मे अन्यतम है। अत उसका पाठालोचन विशेष रूप से आवश्यक है।

१ सभवत सबसे प्राचीन उपलब्ध प्रति स० १७९७ की है जो प्रतापगढ के महाराजा पुस्तकालय मे है। उसके उत्तरकाड के कुछ पद्यो का क्रम मुद्रित प्रतियो से भिन्न है और मुद्रित पाठ के कुछ पद्य उसमे नहीं हैं।

२ स० १८७० की एक प्रति काशी के प० विजयानद त्रिपाठी के सग्रह मे है। प्रकाशित सस्करणो की तुलना में उसकी पद्य-सख्या बहुत कम है, उसमे पाठ-भेद भी बहुत है, पद्यो का क्रम भी भिन्न है। उसमे महामारी, विभिन्न अगो की पीडा, 'बरतोर' और

---

१. जैसे—५, ६, १८ आदि

२. आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र ने (हिंदी-साहित्य का अतीत, पृ० २३७, २९५) इसे 'कवित्तावली' कहा है। परतु अन्य आलोचकों और लाला भगवानदीन की टीका का सपादन करते हुए मिश्रजी ने भी लोक-प्रचलित नाम 'कवितावली' का व्यवहार किया है। तदनुसार प्रस्तुत ग्रथ में उसी को गौरव दिया गया है।

खिए दे—हिंदी-साहित्य का अतीत, पृ० २३७

'पयान' वाले पद्य नही हैं। इससे विदित होता है कि जिस मूल प्रति से उसकी (साक्षात् अथवा परपरया) प्रतिलिपि की गयी है। उस मूल प्रति का निर्माण महामारी आदि के पूर्व हो चुका था।

अपने कवित्व के कारण 'कवितावली' लोकप्रिय रही है। अनेक शिक्षा-सस्थाओ ने उसे पाठ्यक्रम में निर्धारित किया है। अत उसके बहुत से सस्करण प्रकाश मे आये हैं। प्रमुख सस्करण चार हैं

१ मूलमात्र—तुलसी-ग्रथावली में सगृहीत
२ अनुवाद-सहित—गीता प्रेस, गोरखपुर
३ टीका-सहित—टीकाकार लाला भगवानदीन, स० प० विश्वनाथप्रसाद मिश्र
४ 'सिद्धात-तिलक'-सहित—प० श्रीकांतशरण

उपर्युक्त प्रथम सस्करण की अवेक्षणीय विशेषता यह है कि उसमे 'हनुमानबाहुक' भी समिलित है। शेष तीन में 'हनुमानबाहुक' नही है। दूसरा सस्करण गीता प्रेस की अन्य पुस्तको की भाँति सर्वाधिक लोक-प्रचलित है। उसमें मूल कृति का खडीबोली-रूपातर मात्र है। साहित्यिक दृष्टि से तीसरा सस्करण सर्वोत्तम है। उसकी टीका मे सूक्ष्म अर्थ-विवेचन के साथ ही पद्यो के काव्य-सौंदर्य का भी उद्‌घाटन किया गया है। उसकी विस्तृत भूमिका मे कवितावली की व्यापक और प्रौढ समीक्षा प्रस्तुत की गयी है। 'सिद्धांत-तिलक' का अपना वैशिष्ट्य है। उसमें कवि की अन्य कृतियो, और सस्कृत-ग्रथों से तुलनात्मक उद्धरण देते हुए भक्ति-दर्शन-प्रधान दृष्टिकोण से व्याख्या की गयी है। दार्शनिक स्थलो पर विशिष्टाद्वैतवाद का अनुसरण किया गया है।

रचना-काल

बाबू श्यामसुदर दास का मत है कि 'कवितावली' का कथा-भाग और सीतावट-विषयक कवित्त स० १६२८ और १६३१ के बीच बनाये गये और उसका शेष भाग स० १६६९ के पश्चात्[1]। 'बाहुक' के विषय मे उन्होने 'मूलगोसाईंचरित' मे दी हुई तिथि को प्रामाणिक माना है।[2] यदि उसे प्रामाणिक न माना जाए तो भी बाबू साहब के अनुमान मे कोई विशेष असगति नहीं दिखायी देती। प० रामनरेश त्रिपाठी के अनुसार उसकी रचना स० १६१० से लेकर १६७१ के बाद तक हुई, और यदि क्षेमकरी वाले छद को महाप्रयाण-सूचक माना जाए तो स० १६८० तक।[3] उनके द्वारा निर्दिष्ट उत्तर-सीमा के सबध मे आपत्ति की गुजाइश नही है, किंतु 'कवितावली' की प्रौढ-कला को देखते हुए स० १६१० से उसका आरभ मानना न्यायोचित नहीं जँचता। डा० माताप्रसाद गुप्त ने 'कवितावली' को तुलसी की अतिम और अपूर्ण कृतियो मे से एक माना है। उनका अनुमान है कि इसका रचना-काल स० १६६१-८० है।[4] स० १६६१ से आरभ मानने के पक्ष मे

१. गोस्वामी तुलसीदास, पृ० ८३
२. गोस्वामी तुलसीदास, पृ० १०१
३. तुलसीदास और उनकी कविता, पृ० ३६८
४. तुलसीदास, पृ० २७६

कोई उचित कारण नही है। यह कल्पना निराधार है कि स० १६६० तक 'गीतावली', 'विनयपत्रिका' और 'कृष्णगीतावली' समाप्त कर लेने के बाद कवि ने 'कवितावली' की रचना का श्रीगणेश किया होगा।

तुलसीदास ने 'कवितावली' मे उसके रचना-काल का कोई उल्लेख नही किया। उनकी अन्य कृतियो मे भी इसका कोई सकेत नही मिलता। 'कवितावली' या 'हनुमान-वाहुक' की जो हस्तलिखित प्रतियाँ उपलब्ध हैं उनमे से कोई प्रति ऐसी नही है जो कवि के जीवन-काल मे लिखी गयी हो। कुछ पद्यो मे ऐसी घटनाओ का उल्लेख अवश्य हुआ है जिनमे उनके रचना-काल पर किंचित् प्रकाश पडता है। ये घटनाएँ हैं—रुद्रबीसी[1], मीन की सनीचरी[2] और महामारी[3]।

रुद्रबीसी—तुलसी के जीवन-काल मे रुद्रबीसी का अस्तित्व केवल एक बार पाया जाता है। उसकी अवधि के विषय मे मतभेद है। मिश्रबधुओ ने उक्त रुद्रबीसी का समय स० १६६५-८५ माना है।[4] प० सुधाकर द्विवेदी और तदनुसार डा० ग्रियर्सन के मतानुसार उसकी अवधि स० १६५५ से १६७५ है।[5] स्वामी कन्नू पिलाई की गणना के अनुसार उसका काल स० १६२३–१६४२ है।[6] तीनो की तिथियाँ 'कवितावली' के रचना-काल के अतर्गत हैं। आश्चर्य की बात है कि डा० गुप्त[7] अतिम मत को 'सबसे अधिक मान्य' समझते हुए भी कवितावली-बाहुक का रचना-काल स० १६६१-८० मानते हैं।

मीन की सनीचरी—तुलसी के युग मे 'मीन की सनीचरी' (अर्थात् मीन मे शनि की स्थिति) दो बार पायी जाती है—एक बार स० १६४० के चैत्र-शुक्ल ५ से स० १६४२ के ज्येष्ठ तक, और दूसरी बार स० १६६९ के चैत्र-शुक्ल २ से स० १६७१ के ज्येष्ठ तक। ज्योतिष-गणना के अनुसार दोनो ही तिथियाँ शुद्ध हैं। डा० गुप्त ने दूसरी तिथि को अधिक सभव माना है, क्योकि वही तिथि कवि के जीवनात के निकट पडती है।[8] डा० भारद्वाज ने पहली तिथि को ही तुलसी-समत माना है।[9]

महामारी—उस महामारी का क्या रूप था, यह बात तुलसी की उक्ति से स्पष्ट

---

१. बीसी विस्वनाथ की बिषाद बड़ो बारानसीं
 बूझिये न ऐसी गति सकर सहर की।—कवितावली, ७।१७०

२ एक तौ कराल कलिकाल सलमल तामें
 कोढ में की खाजु सी सनीचरी है मीन की।—कवितावली, ७।१७७

३ रोष महामारी परितोष महतारी दुनी
 देखिये दुखारी मुनि मानस मरालिके।—कवितावली, ७।१७३

सकर सहर सर नारिनर बारिचर
 बिकल सकल महामारी माँजा भई है।—कवितावली, ७।१७६

४ तुलसी-ग्रथावली, तीसरा खड, पृ० ८५

५ इन्डिअन ऐन्टिक्वेरी, १८९३ ई०, पृ० ९७

६ इन्डिअन क्रॉनॉलॉजी, चक्र १४

७ देखिए—तुलसीदास, पृ० १८४, २७६

८ तुलसीदास, पृ० १८६

९ तुलसीदास और उनके काव्य, पृ० ३०

नही है। 'महामारी' शब्द उस भयानक बीमारी का द्योतक है जिसके कारण बहुत-से लोग काल-कवलित हो जाएँ, जैसे—हैजा या ताऊन। इतिहासकारो के अनुसार स० १६७३ मे भारत मे पहली बार ताऊन का प्रकोप हुआ था। अत डा० गुप्त को 'अधिक सभावना ताऊन की ही मालूम पडती है।'[1] इसके विपरीत डा० भारद्वाज ने विसूचिका (हैजा) की सभावना पर बल दिया है और उसका समय स० १६४२ के पूर्व माना है। मेरे विचार से दोनो महामारियो का समसामयिक होना भी सभव है, क्योकि कवि ने एक अन्य पद्य मे 'महामारिन्ह' का बहुवचन मे प्रयोग किया है

देवता निहोरे महामारिन्ह सों कर जोरे,
भोरानाथ जानि भोरे आपनी सी ठई है।[2]

स १६७३ के पूर्व ताऊन के होने का उल्लेख नही मिलता। इसलिए उपर्युक्त महामारियो का समय स० १६७३ और उसके बाद ही मानना चाहिए।

अनेक पद्यो मे कवि ने अपनी वृद्धावस्था मे अनुभूत रोगों और कष्टो का वर्णन किया है

१ **घेरि लियो रोगनि कुजोगनि कुलोगनि ज्यों**
वासर जलद घनघटा धुकि धाई है।[3]
२ **पांय पीर पेटपीर बाँहपीर मुंहपीर**
जरजर सकल सरीर पीरमई है।[4]
३ **बाहुक सुबाहु नीच लीचर मरीच मिलि**
मुंहपीर केतुजा कुरोग जातुधान हैं।[5]
४ **रोगसिंधु क्यो न डारियत गाय खुर कैं।**[6]

बहुविध रोग, नाना प्रकार के क्लेश और शरीर का लीचरपन बुढौती के सूचक हैं। बर-तोड और बाहु की पीडा असह्य थी। कवि ने इन वेदनाओ का बहुश उल्लेख तो किया है,[7] किंतु अपने नीरोग हो जाने का सकेत नही किया। ऐसा प्रतीत होता है कि कवि व्याधि-मुक्त नही हो सका और इसी बीमारी से उसने शरीर-त्याग किया। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि ये पद्य कवि के जीवन के अतिम काल मे रचे गये।

कतिपय पक्तियो मे कवि के अतिम काल का स्पष्ट सकेत मिलता है .

१ **कियो न कछू करिबो न कछू**
कहिबो न कछू मरिबोई रहो है।[8]

---

१. तुलसीदास, पृ० १८७
२. कवितावली, ७।१७५
३ हनुमानबाहुक, ३५
४. हनुमानबाहुक, ३८
५ हनुमानबाहुक, ३९
६. हनुमानबाहुक, ४३
७. हनुमानबाहुक, २०, २१, २३, २४, २५, २६, २७, २८, ३०, ३१, ३४, ३६, ३७, ४१, ४२
८. कवितावली, ७।६१

२ ज्याइये तो जानकीरमन जन जानि जियँ
मारिये तो माँगी मीचु सूधियै कहत हौं।[1]
३ पेखि सप्रेम पयान समै सब
सोच बिमोचन छेमकरी है।[2]

यदि उपर्युक्त 'मीचु' और 'पयान' को कवि के देहावसान का निर्देशक न माना जाए तो भी इसमे सदेह नही प्रतीत होता कि वे उसके अतिम समय के द्योतक हैं।

उपर्युक्त विवेचन से यह निश्चित निष्कर्ष निकलता है कि 'कवितावली' के उत्तर-काड के अनेक कवित्तो और 'हनुमानबाहुक' की रचना तुलसी के जीवन-काल के अतिम वर्षों मे हुई, सभव है कि तुलसी के मृत्यु-सवत् १६८० तक हुई हो। अब प्रश्न यह है कि उसका आरभ कब माना जाए।

प० रामनरेश त्रिपाठी[3] की धारणा है कि 'कवितावली' के कुछ पद्य कवि की छात्रावस्था के मालूम देते हैं जब उसकी प्रवृत्ति समस्या-पूर्ति की तरफ रही होगी; उनकी भाषा मे सहज सौंदर्य नही है, जान-बूझ कर उसे सजाने की चेष्टा की गयी है और छदो की रचना मे त्रुटियाँ हैं।[4] त्रिपाठी जी ने 'कवितावली' के जिन पद्यो की ओर सकेत किया है उन्हें बाल-प्रयास मानने का कोई उचित कारण नही हैं। यत्र-तत्र सप्रयत्न अलकरण की प्रवृत्ति तो 'रामचरितमानस' और 'विनयपत्रिका' मे भी पायी जाती है। एकाध शब्दो की तोड-मरोड और कही-कही प्रवाह-बाधा उन महती कृतियो मे भी देखी जा सकती है। कवित्त-सवैयो की यह विशेषता है कि उनके अतिम चरण मे प्राय चमत्कार रहता है। अत वे समस्यापूर्ति के रूप मे आभासित हो सकते हैं। वस्तुत काव्य-कला की दृष्टि से सपूर्ण 'कवितावली' एक प्रौढ कृति है। उसकी सर्वांगीण प्रौढता से सिद्ध है कि वह कवि की आरभिक रचना नही हो सकती। 'रामचरितमानस' के पूर्व की रचनाएँ उत्कृष्ट कलाकृतियाँ नही हैं। समर्थ कवि-तुलसी के प्रौढ कवित्व का सर्वप्रथम निदर्शन 'मानस' मे मिलता है। अत यह अनुमान करना असमीचीन नही होगा कि 'मानस' की योजना और रचना-क्रम के समय कवि के अनेक भाव-विचार कवित्तो के माध्यम से व्यक्त होते रहे, और उसके बाद भी जीवन के अतिम वर्षो तक कवित्तो का विभिन्न परिस्थितियो मे निर्माण होता रहा। इस प्रकार स० १६३१ और १६८० के अतराल मे समय-समय पर 'कविता-वली' के फुटकर पद्य रचे गये। बाद मे उनका व्यवस्थित सकलन हुआ।

परपरा मे तुलसी की पाँच लघु-कृतियो 'वैराग्यसदीपनी', 'रामललानहछू', 'जानकीमगल', 'पार्वतीमगल' और 'बरवैरामायण' को 'पचरत्न' कहा जाता है। 'गीतमचद्रिका' के लेखक कृष्णदत्त मिश्र ने तुलसी की रचनाओ के 'अष्टांगयोग' का उल्लेख किया है। उसके आठ अग हैं—रामगीतावली, पदावली, कृष्णगीतावली, बरवै, दोहावली, सुगुनमाला, कवितावली और सोहिलोमगल।

---

१ कवितावली, ७।१६७
२ कवितावली, ७।१८०
३. तुलसी और उनका काव्य, पृ० २२४
४ जैसे—कवितावली, १।१०

कालक्रमानुसार तुलसीदास की रचनाएँ हैं

काल	क्रम	रचना		समय
आरभकालीन	१	वैराग्यसदीपनी	लगभग	स० १६२६-२७
	२	रामाज्ञाप्रश्न	लगभग	स० १६२७-२८
	३	रामललानहछू	लगभग	स० १६२८-२९
	४	जानकीमगल	लगभग	स० १६२९-३०
मध्यकालीन	५	रामचरितमानस		स० १६३१
	६	पार्वतीमगल		स० १६४३
मध्योत्तरकालीन	७	कृष्णगीतावली	लगभग	स० १६४३-६०
	८	गीतावली	लगभग	स० १६३०-७०
	९	विनयपत्रिका	लगभग	स० १६३१-७९
	१०	दोहावली	लगभग	स० १६२६-८०
	११	बरवैरामायण	लगभग	स० १६३०-८०
	१२	कवितावली-हनुमानबाहुक	लगभग	स० १६३१-८०

छद-शैली की दृष्टि से तुलसीदास की रचनाओ का चक्र इस प्रकार है
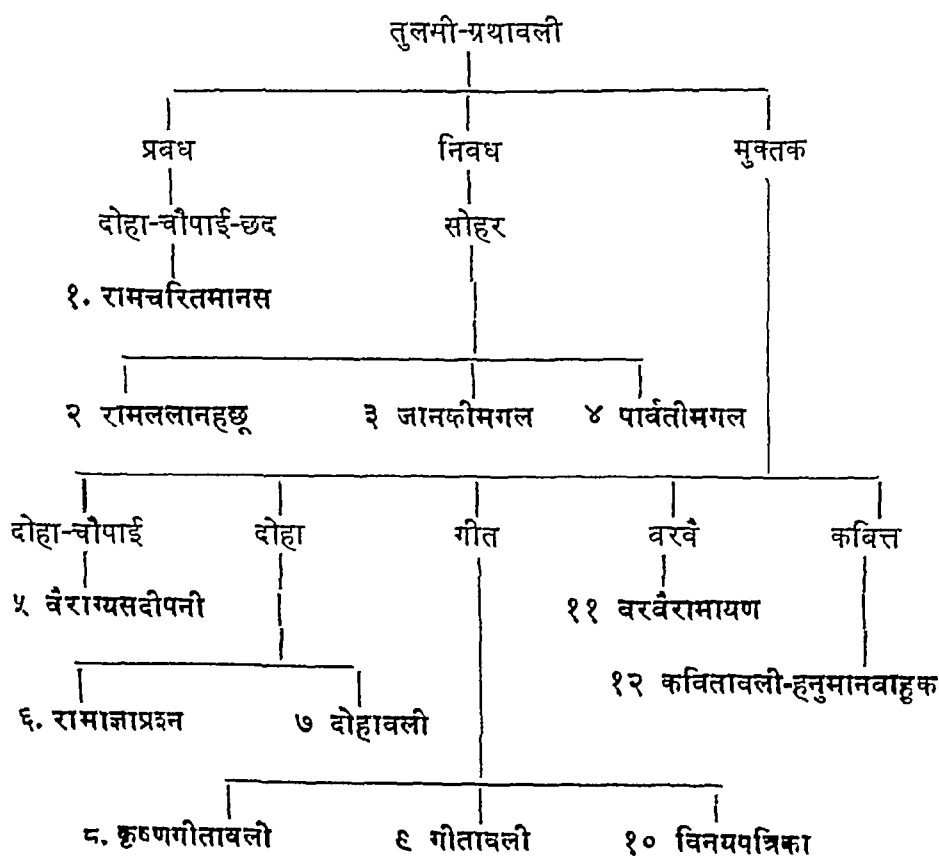
३ जीवनचरित

पूर्ववर्ती अध्यायो मे तुलसीदास के जीवनचरित की आधारभूत सामग्री पर विचार किया जा चुका है। बहिस्साक्ष्य का अधिकाश दतकथाओ पर आश्रित और माया-मोह की भावना से व्याप्त होने के कारण सदिग्ध है। वस्तुत अतस्साक्ष्य को ही हम प्रामाणिक मान सकते हैं। कवि की आत्मकथात्मक अनेक उक्तियो के भी विभिन्न आलोचको ने अपनी-अपनी मति, प्रतीति और रुचि के अनुसार भिन्न-भिन्न अर्थ किये हैं। अनेक आत्मपरिचयरहित उक्तियो को भी आत्मकथात्मक मान लिया गया है। दोनो प्रकार के साक्ष्यो के आधार पर तुलसी के जीवन-वृत्त का विवरण प्रस्तुत कर देना समीचीन होगा।

जन्म-सवत्

उपलब्ध सामग्री के आधार पर तुलसी की जन्मतिथि का सर्वथा निश्चित निर्धारण सभव नही है। विभिन्न लेखको और जनश्रुतियो के भिन्न-भिन्न मत हैं। कुल मिलाकर उनके छ भिन्न जन्म-सवत् बतलाये गये हैं—

स० १५५४, स० १५६०, स० १५६८, स० १६००, स० १५८३, और स० १५८९।

१ 'मूलगोसाईचरित' और 'मानसमयक' मे जनश्रुति के आधार पर तुलसी का जन्म-सवत् १५५४ माना गया है।[1] यह सभाव्य नही प्रतीत होता, क्योकि इसके अनुसार उन्होने 'रामचरितमानस' की रचना (स० १६३१) सतहत्तर वर्ष की अवस्था मे, वाल्मीकि-रामायण के उत्तरकाड की प्रतिलिपि (स० १६४१) सत्तासी वर्ष की आयु मे और टोडर के वशजो का 'पचायतनामा' (स० १६६९) एक सौ पद्रह वर्ष की अवस्था मे किया होगा। 'विनयपत्रिका' और 'कवितावली' के बहुत-से उत्कृष्ट पद्यो की रचना लगभग सवा सौ वर्ष की आयु मे की होगी। महापुरुषो के लिए यह बात असभव नही है, किंतु विश्वसनीय नही जँचती। 'मूलगोसाईचरित' की प्रामाणिकता एक अन्य कारण से भी सदिग्ध है। डा० माताप्रसाद गुप्त ने बतलाया है कि 'मूलगोसाईचरित' मे दिया गया तिथि-विस्तार गणना से शुद्ध नही उतरता।[2] अत अमान्य है।

सभवत वेणीमाधवदास ने अपने चरितनायक को असाधारण रूप से दीर्घायु

---

१. पद्रह सै चौवन विषै कालिंदी के तीर।
सावन सुक्ला सत्तिमी तुलसी धरेउ सरीर ।।—मूलगोसाईंचरित, २

२. तुलसीदास, पृ० ५१५

सिद्ध करने के लिए ही उन्हे १२६ वर्ष की आयु प्रदान की है।

२ 'राममुक्तावली' के आधार पर जगमोहन वर्मा ने सं० १५६० को तुलसी का जन्म-सवत् स्वीकार किया है।[1] इसके विरुद्ध दो तर्क है। एक यह कि 'राममुक्तावली' तुलसी की रचना नही है। विचार-धारा, भाषा-शैली और छद-योजना की दृष्टि से परीक्षा करने पर वह तुलसी की कृति नही पतीत होती। दूसरा तर्क यह है कि जिस पक्ति के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला गया है कि तुलसी का जन्म स० १५६० मे हुआ था, उस पक्ति से वाछित निष्कर्ष नही निकलता। आलोच्य पक्ति है

पवन तनय मोसन कह्यो पांच बीस अरु बीस।

इस पर से यह अनुमान किया गया है कि तुलसी पाँच वीस (१००) और बीस अर्थात् १२० वर्ष की आयु तक जीवित रहे, इसलिए तुलसी का जन्म-सवत् १६८०-१२०=१५६० हुआ। पहली बात यह है कि 'पाँच बीस अरु बीस' का 'एक सौ बीस' अर्थ करने मे खीच-तान है। डा० गुप्त ने 'पैंतालिस' को 'पाँच बीस अरु बीस' का अधिक समीचीन अर्थ माना है।[2] दूसरी बात यह है कि इससे जन्म-सवत् १५६० की सिद्धि नही होती है। उक्त वाक्याश का अर्थ १२० मान लेने पर भी उससे इतना ही सूचित होता है कि उसकी रचना १२० वर्ष की आयु मे हुई। उससे यह नही ज्ञात होता कि उसके बाद कवि कितने वर्षों तक जीवित रहा। इसलिए स० १६८० मे से १२० घटाकर जन्म-तिथि निकालना भ्रामक है। तीसरी बात यह है कि इस हिसाब से भी तुलसी की आयु लगभग सवा सौ वर्ष ठहरती है जो पूर्वोक्त कारणो से विश्वसनीय नहीं जँचती।

३ 'तुलसीप्रकास' के लेखक अविनाश राय के अनुसार तुलसी का जन्म स० १५६८ मे हुआ। उनकी उक्ति है

राम राम सागर मही सक सित सावन मास।
रवि तिथि भृगु दिन दुतिय पद नषत बिसाषा वास॥

इसका आशय है—शक स० १४३३, श्रावण शुक्ला सप्तमी, शुक्रवार, अर्थात् सन् १५११ ई० या स० १५६८ वि०। इस तिथि-निर्देश के पक्ष मे तीन तर्क दिये जा सकते हैं। १ यह तिथि गणना से शुद्ध उतरती है।[3] २ इसके अनुसार तीन जन्म-कुडलियाँ बन सकती हैं जिनमे से एक तुलसी के जीवन पर घटित होती है।[4] ३ सोरो-सामग्री के अनुसार तुलसी ने ३६ वर्ष की अवस्था (स० १६०४) मे गृह-त्याग किया था[5] और ६३ वर्ष की अवस्था (स० १६३१) मे 'रामचरितमानस' का आरभ किया था। इस प्रकार के ३६ और ६३ का सकेत 'सतसई' के एक दोहे मे मिलता है :

जग ते रहु छत्तीस ह्वै रामचरन छत्तीस।
तुलसी देखु विचारि हिय यह मत परम प्रवीन॥[6]

---

१ सरस्वती, जिल्द २०, पृ० ७७
२ तुलसीदास, पृ० १३८
३. गोस्वमी तुलसी (डा० रामदत्त भारद्वाज), पृ० १७१
४ गोस्वामी तुलसीदास (डा० भारद्वाज), पृ० १७२
५ गोस्वामी तुलसीदास (डा० भारद्वाज), पृ० १७२
६ सतसई, ३।७

ये सयोग तभी सटीक माने जा सकते हैं। जब स० १५६८ को उनका जन्म-समय माना जाए।

उक्त तर्कों मे बल नही है। इनका मूल ही निराधार है। 'तुलसीप्रकास' प्रामाणिक कृति नही है। उसमे दी गयी अशुद्ध तिथियाँ भी अनेक हैं। कोई भी परवर्ती लेखक किसी योग्य पडित की सहायता से सैंकडो वर्ष पूर्व की शुद्ध तिथियों का उल्लेख अपनी कृति मे कर सकता है। अभीष्ट जन्म-कुडली के अनुसार तिथि निकाली जा सकती है। ३६ और ६३ वाली बात मनोरजक अवश्य है, किंतु उसे जन्म-तिथि-निर्धारण के लिए प्रमाण मानना हास्यास्पद है। 'सतसई' स्वय सदिग्ध कृति है।

४ 'गौतमचद्रिका', विल्सन और गार्सां द तासी के अनुसार तुलसी का जन्म स० १६०० मे हुआ। इस सवत् के विषय मे जो भ्राति हुई है उसके दो कारण प्रतीत होते हैं। (क) 'गौतमचद्रिका' के लेखक कृष्णदत्त ने सभवत **'सवत सोरह सै असी असी गग के तीर'** का यह अर्थ किया है कि तुलसी का शरीरावसान सवत् १६८० मे अस्सी वर्ष की अवस्था में अस्सी-गगा के तट पर हुआ।[1] पर अर्थ असभाव्य नहीं है। (ख) विल्सन ने कदाचित् 'सवत सोरह सै इकतीसा' का यह भ्रामक तात्पर्य निकाल लिया है कि तुलसी ने एकतीस वर्ष की आयु में 'रामचरितमानस' का प्रणयन आरभ किया।[2] गार्सां द तासी ने उन्ही का अनुसरण करते हुए इस जन्म-सवत् को ठीक मान लिया है।

डा० गुप्त ने इस तिथि को इस आधार पर असमीचीन माना है कि 'रामचरितमानस'-जैसे अत्यत विद्वत्तापूर्ण एव गहन ग्रथ का निर्माण एकतीस वर्ष की आयु मे सभव नही है।[3] डा० भारद्वाज ने शकराचार्य का उदाहरण देते हुए डा० गुप्त के मत का खडन किया है, परतु स० १६०० को इस कारण से अग्राह्य वतलाया है कि सोरो-सामग्री से उसकी सगति नही बैठती।[4] सोरों-सामग्री के अनुसार जब तुलसी की पत्नी रत्नावली २७ वर्ष की थी तब स० १६०४ मे वे सोरो छोडकर चले गए थे। इस प्रकार गृहत्याग के समय सत्ताईस-वर्षीया पत्नी के पति तुलसी केवल चार वर्ष के ठहरते हैं, जो हास्यास्पद है।

सोरो-सामग्री को प्रामाणिक माना जाए अथवा न माना जाए, डा० गुप्त का तर्क वजनदार है। शकर के अपवाद से उसका निराकरण नही होता। शकर को आलोचनात्मक ग्रथ लिखने थे। प्रबुद्ध पडित एक ही सिलसिले मे अनवरत श्रम से उस प्रकार के आलोचना-ग्रथो का निर्माण कर सकता था। 'रामचरितमानस'-जैसे महाकाव्य के विशाल आकार, योजना-बद्ध सभार, परिष्कृत रूप और उत्कृष्ट काव्य-वैभव से स्वत प्रमाणित है कि वह अभ्यासनिपुण प्रौढकवि के मानस की उपज है, किसी अल्पवयस्क कवि की कृति

---

१ सोरह अनगुन असी वय तुलसी सहित हुलास।
राम-राम कहि बिदा ह्वै असी गग किय बास।।—गौतमचंद्रिका

२. ए स्केच आफ द रेलिजस सेक्ट्स ऑफ़ द हिन्दूज, पृ० ४१

३ तुलसीदास, पृ० १३६

४ गोस्वामी तुलसीदास, पृ० १७१

नही। यही कारण है कि काव्य-साहित्य के इतिहास मे उत्कृष्ट कोटि की मुक्तक रचना करने वाले अल्पवयस्क कवियो मे बहुसख्यक उदाहरण मिल जाते हैं, परतु किसी अल्पवयस्क कवि द्वारा 'रामचरितमानस' के समान महान् महाकाव्य की रचना का कोई अपवाद कदाचित् ही कही मिले।

डा० गुप्त की पूर्वोक्त मान्यता का तीव्र खडन करते हुए डा० राजाराम रस्तोगी कहते हैं कि "उनके आक्षेपो की क्षीणता तब स्पष्ट हो जाती है जब हम हिंदी-साहित्य के इतिहास को देखते हैं। प्रसादजी की 'कामायनी' और महादेवी वर्मा की 'यामा' मे सकलित कविताएं क्या उसी अवस्था मे नही लिखी गयी हैं ?"[1] उक्त दोनो उदाहरणो पर आश्रित उत्तर भिन्न हैं। डा० रस्तोगी ने उदाहरण चुनने मे सतर्कता से काम नही लिया। यह तथ्य निर्विवाद है कि 'कामायनी' प्रसाद की एकतीस वर्ष की अवस्था मे नही लिखी गयी। उसकी समाप्ति स० १९९२ (शिवरात्रि) मे हुई। तब कवि की अवस्था ४६ वर्ष की थी। 'कामायनी' का आरभ स० १९८५ के पूर्व किसी भी प्रकार नहीं माना जा सकता। इसमे भी एक आपत्ति है। स० १९८५ मे 'मनु की चिंता' की रचना स्वतत्र कविता के रूप मे हुई थी। तत्पश्चात् 'कोशोत्सव-स्मारक-सग्रह' मे प्रकाशित 'आवरण' ('काम' का कुछ अश) भी स्वतत्र कविता के रूप मे लिखा गया है। इन दोनो कविताओ की रचना के समय तक कवि के मन मे 'कामायनी' महाकाव्य की सकल्पना नही हुई थी। यह सकल्पना बाद मे हुई। डा० द्वारिकाप्रसाद का यह कथन सर्वथा समीचीन है कि "आगे चलकर उनमे[2] सशोधन एव परिवर्धन करके प्रसादजी ने उन्हे 'कामायनी' मे स्थान दिया है।"[3] इस प्रकार 'कामायनी' की रचना का श्रीगणेश कम-से-कम ३९-४० वर्ष की आयु मे हुआ। 'यामा' का दृष्टात नितात अनुपयुक्त है। 'रामचरितमानस' से उसकी तुलना करना तुलनात्मक समीक्षा के मानदड का अपकर्षण है। महादेवी द्वारा समय-समय पर लिखित फुटकर गीतो के चार सकलन थे—'नीहार' (१९२४-२८ ई०), 'रश्मि' (१९२८-३१ ई०), 'नीरजा' (१९३१-३४ ई०) और 'साध्यगीत' (१९३४-३६ ई०)। इन चारो सकलनो का सकलन 'यामा' है। 'यामा' स्वय इसका प्रमाण है। वह महाकाव्य नही है, गीत-सग्रहो का सग्रह है। लघुकाय गीत भावावेग का उच्छलन है। नवयौवन से उसकी खूब पटरी बैठती है। प्रौढता से उसका आवश्यक संबध नहीं है। यशस्वी गीतकारो के महादेवी जी से अधिक प्रसिद्ध उदाहरण मिल जाते हैं। विश्व-विख्यात अँगरेजी-कवि कीट्स और शेली क्रमश छब्बीस और तीस वर्ष की आयु मे ही दिवगत हो चुके थे। महाकाव्य के व्यापक समायोजन, विस्तीर्ण वस्तु-विन्यास और गरिमामडित सस्थान के निर्वाहार्थ प्रौढ़-कौशल की अनिवार्य अपेक्षा है।

५ तुलसी के आविर्भाव-काल के सबध मे शिवसिंह सेंगर ने अपने 'शिवसिंहसरोज' मे लिखा है कि "यह महाराज स० १५८३ के लगभग उत्पन्न हुए थे।" इस पर डा० भारद्वाज का कथन है कि "सेंगर जी ने अपनी सूचना का आधार 'गोसाईंचरित्र'

---

१. तुलसीदास · जीवनी और विचारधारा, पृ० ९७

२ अर्थात् 'मनु की चिंता' और 'आवरण' नामक कविताओं में

३ कामायनी में काव्य, सस्कृति और दर्शन, पृ० २७

लिया है और उससे एक उद्धरण भी दिया है, 'गोसाईंचरित्र' में तो १५५४ वि० दिया है। अतएव इसका उल्लेख न करके उन्होंने १५८३ वि० का उल्लेख क्यों किया ? हो सकता है कि उन्होंने १५५४ वि० को उचित न समझकर उसे त्याग दिया, अथवा उनके सामने 'गोसाईंचरित्र' का कोई पुराना संस्करण रहा हो जिसमें जन्म-संवत् का उल्लेख नहीं किया गया।"[1] डा० गुप्त का उससे कुछ भिन्न अभिमत है—"बहुधा यह समझा जाता है कि हमारे कवि के संबंध में जो कुछ सेंगर जी ने लिखा है वह उस 'गोसाईंचरित्र' के आधार पर लिखा है जिसका उल्लेख उन्होंने स्वतः हमारे कवि की सूचना में किया है। पर उपर्युक्त कथन में 'लगभग' शब्द स्पष्ट ही इस कथन का निराकरण कर देता है। यदि उन्होंने उस चरित के आधार पर यह तिथि दी होती तो इस उल्लेख में 'लगभग' की आवश्यकता न पड़ती।"[2] यह तर्क न्यायसंगत है। प्रतीत यह होता है कि शिवसिंह सेंगर की मान्यता किसी जन-श्रुति अथवा अनुमान पर आश्रित है। सं० १५८३ को तुलसी का जन्म-संवत् मानने में असंभाव्यतामूलक कोई कठिनाई नहीं है। उसे संदिग्ध मानने का प्रबल कारण यह है कि किसी लिखित या मौखिक स्रोत से, जनश्रुति या किंवदंती से, उसका समर्थन नहीं होता।

६ 'घटरामायन' में तुलसी साहब ने अपने पूर्वजन्म का जो वृत्त दिया है, उसके अनुसार तुलसी का जन्म-संवत् १५८९ है। 'घटरामायन' की प्रामाणिकता संदिग्ध है। परंतु यह बात ध्यान देने योग्य है कि जिस जनश्रुति के आधार पर तुलसी साहब ने इस जन्म-संवत् का उल्लेख किया है वह अन्य परंपराओं के प्रभाव से मुक्त एवं स्वतंत्र है, उन्होंने जो तिथि-विवरण (सं० १५८९ भादों सुदी ११, मंगलवार) दिया है, वह सर्वथा उपेक्षणीय नहीं है। दूसरी बात। पं० रामगुलाम द्विवेदी तुलसीदास की शिष्य-परंपरा में माने जाने वाले प्रसिद्ध रामायणी हो गये हैं। उन्होंने भी सं० १५८९ में तुलसी का आविर्भाव माना है। तीसरी बात। डा० ग्रियर्सन का भी यही अभिमत है कि सर्वाधिक विश्वसनीय स्रोतों से यह बात प्रकट होती है कि कवि का जन्म सं० १५८९ में हुआ था। उन्होंने उन स्रोतों का उल्लेख नहीं किया, तथापि उनके कथन को निस्सार समझना अन्याय होगा। वे अंधविश्वास और क्षिप्रानुमान से ग्रस्त नहीं थे, वे सभी उपलब्ध तथ्यों का सत्यापन करके निष्कर्ष निकालने वाले अनुसंधायक थे। मैं समझता हूँ कि तुलसी साहब, रामगुलाम द्विवेदी और ग्रियर्सन में से कोई भी एकैकश, अन्य प्रमाणों से निरपेक्ष होकर अपने-आप में, ठोस प्रमाण नहीं है। परंतु, उन तीनों का त्रिगुणत्व या योगफल महत्त्वपूर्ण है। अन्य साक्ष्यों की तुलना में उनका साक्ष्य अधिक ग्राह्य है।

अतएव सं० १५८९ को तुलसीदास का जन्म-संवत् मानना अपेक्षाकृत अधिक समीचीन है।

---

१. गोस्वामी तुलसीदास, पृ० १६६
२. तुलसीदास, पृ० १३६

जन्म-स्थान

तुलसी के जीवनचरित से सबधित जिन विभिन्न समस्याओ पर मनीषी शोध-कर्ताओ ने अनुसधान और ऊहापोह किया है, उन सब मे कवि की जन्मभूमि के प्रश्न को सुलझाने मे अधिकतम समय, शक्ति, धन और स्याही का व्यय हुआ है। जितनी खोज-बीन और जाँच-पडताल इस पक्ष को लेकर की गयी है, जितना बुद्धि-विलास एव वाद-विवाद अथवा जल्प-वितडा-वाद इस प्रश्न पर खडा किया गया है, उतना किसी अन्य समस्या पर नही। फिर भी यह समस्या समाहित नही हुई और न भविष्य मे इसकी कोई सभावना ही दीखती है, यह दूसरी बात है कि अनेक परस्पर-भिन्न मत वाले गवेषकों मे से प्रत्येक का जोरदार दावा है—मैंने तुलसी के जन्मभूमि-विषयक जटिल प्रश्न का अतिम-अकाटच समाधान प्रस्तुत कर दिया है।

विभिन्न विद्वानो ने निम्नाकित स्थानो को तुलसी की जन्मभमि बतलाया है

१ अवध मे कही	४ हाजीपुर	७ तारी
२ अयोध्या	५ हस्तिनापुर	८ सोरो
३ काशी	६ राजापुर	९ रामपुर

१-२ **अवध-अयोध्या**—यह मत प० चद्रवली पाडे का है। उनका कथन है "निश्चय ही तुलसीदास का घर कही अवध मे था और वही था कही उनका जन्मस्थान भी।"[१] उन्होने अन्यत्र कहा है, "वस्तुत 'अवधपुरी' ही तुलसी का जन्मभूमि और 'अवध' ही उनका 'जन्मदेश' है।"[२] उनकी 'स्थापना' है कि "राम की जन्मभूमि ही तुलसी की जन्मभूमि है।"[३] उन्होने अपने पक्ष के समर्थन मे अतस्साक्ष्य और बहिस्साक्ष्य दोनो का उपयोग किया है।

अतस्साक्ष्य के अन्तर्गत दो बातें हैं एक यह कि तुलसी ने अपने को राम का घर-जाया कहा है, और दूसरी यह कि उन्होने अयोध्या का वर्णन जिस रुचि के साथ किया या कराया है उससे उनकी अपनी जन्मभूमिप्रियता सूचित होती है। पहली बात का मूला-धार कवि का निम्नाकित वाक्य है

तुलसी तिहारो घरजायऊ है घर को।[४]

पाडे जी के अनुसार 'घर' शब्द राम की जन्मभूमि का द्योतक है। डा० गुप्त ने कबीर का एक उदाहरण[५] देकर बतलाया है कि 'घर का गुलाम' मुहावरा है, वह जन्मस्थान का सूचक नही है।[६] पाडे जी का प्रत्युत्तर है : "हमारी बुद्धि जहाँ तक काम करती है और हमारे ज्ञान का जहाँ तक प्रसार है वहाँ तक तो हम निर्विवाद रूप में धडल्ले से कह सकते

---

१. तुलसीदास, पृ० २४
२. तुलसी की जीवन-भूमि, पृ० १२६
३ तुलसी की जीवन-भमि, पृ० १६०
४ कवितावली, ७।१००
५. कहि कबीर गुलाम घर का जीआइ भावै मारि।—सत कबीर, पृ० ७२
६ तुलसीदास, पृ० १४१

हैं कि हो न हो इसमे तुलसीदास के घर का स्फुट उद्घोष है। पर करें क्या ? कही से कोई प्राध्यापक जी बीच ही मे बोल पडते हैं कि अरे ! ऐसा अर्थ लगाने से घोर अनर्थ हो जाएगा। तपस्वी करें क्या ?"[1] वे इसे व्यक्तिगत प्रश्न न बनाएँ। डा० गुप्त के पक्ष-पोषण मे तुलसी-साहित्य से अन्य उद्धरण भी दिये जा सकते हैं

(i) खास दास रावरो निवास तेरो तासु उर।[2]
(ii) कौन ईस किये की सभालु खास माहली।[3]
(iii) श्रास विबस खास दास ह्वै नीच प्रभुनि जनायो।[4]

भक्तो की यह विशेषता है कि वे अपने प्रेम (भक्ति) की अतिशयता के लिए भगवान् से घनिष्ठ सबध स्थापित करना चाहते हैं। निर्गुण-सतो तक ने ऐसा किया है। तुलसी का आदर्श दास्य-भक्ति है, अत वे स्थान-स्थान पर अपने को राम का खास दास कहकर सामीप्य की व्यजना करते हैं। लोक-जीवन मे घरेलू नौकर की अतरगता सर्वविदित है। यह प्राय देखा जाता है कि पीढी-दर-पीढी का गुलाम स्वामी का विशेष कृपापात्र हो जाया करता है। आलोच्य पक्ति मे प्रयुक्त 'घर जायऊ' का वाच्य है—घर मे उत्पन्न, लक्ष्य है—गृहजात सेवक, और व्यग्य है—आत्मनिक्षेप या अनन्यशरणागति। तुलसी का अभीष्टार्थ है—हे राम ! मैं तुम्हारा प्रपन्न-दास हूँ, अत असोच हूँ, क्योकि मेरे रक्षण-पोषण का दायित्व तुम्ही पर है। हनुमान् के द्वारा इसी प्रवृत्ति की व्यजना करायी गयी है

सेवक सुत पति मातु भरोसें। रहइ असोच बनइ प्रभु पोसें।[5]

इस बात मे किसी को आपत्ति नही हो सकती कि कवि ने रस लेकर यथावसर अयोध्या का विशद वर्णन किया है। परतु, इस आधार पर अयोध्या को उसकी जन्मभूमि मान लेना असगत है। कालिदास, सूरदास आदि ने भी अयोध्या का वैसा ही सुदर वर्णन किया है। क्या इसी कारण से अयोध्या को उनका भी जन्मस्थान मान लेना चाहिए ? वास्तविकता यह है कि राम के नाम, रूप, गुण, लीला और धाम सभी तुलसी के वर्ण्य हैं। उन्होने अपने लीलावतारी आराध्य के लौकिक धाम को महत्त्व दिया है। यदि ऐसा न करते तो आश्चर्य की बात होती।

बहिस्साक्ष्य के रूप मे पाडेजी ने अनन्य कवि के एक पद, मोहनसाई के एक गीत और भवानीदास के 'गोसाईंचरित' के उद्धरण दिये हैं। अपेक्षित पक्तियाँ हैं

(i) कोसल देस उजागर कीनों। सबहिन को अद्भुत रस दीनों।[6]
(ii) वह घडी अजब थी कि जिस घड़ी वह दरख्त बट का उगा वहाँ।
तुम्हीं बने कलि मे बोध बिरवा वो मानसी बट यहाँ प्रकट भी।[7]

---

१. तुलसी की जीवन-भूमि, पृ० १३१
२ हनुमानबाहुक, २४
३. कवितावली, ७।२३
४. विनयपत्रिका, २७६।२
५. रामचरितमानस, ४।३।२
६. अनन्य कवि, देखिए—तुलसी की जीवन-भूमि, पृ० ११०
७. मोहन साईं, देखिए—तुलसी की जीवन-भूमि, पृ० १३८, १४१

(iii) जानि अवध सनवध जिय नैनन्ह आयौ नीर।
बस्तु भावना भवन भरि चले नगर रघुबीर ॥[1]

पाडे जी ने 'कोसल देस उजागर कीनों' का अर्थ किया है कि कोशलदेश मे जन्म लेकर तुलसी ने उसे धन्य कर दिया।[2] उन्होने आकाश मे महल बनाया है। उक्त पंक्ति का सीधा तात्पर्य है—अयोध्या मे कुछ समय तक निवास करके और 'रामचरितमानस का प्रकाश' करके कवि ने उसे धन्य कर दिया। दूसरे उद्धरण मे 'वट' शब्द आया है। उनकी मान्यता है कि वह 'निरा वृक्ष नही है', 'किसी सत्ता का प्रतीक है'।[3] उनके इस कथन का अभिप्राय यह है कि अयोध्या मे उपर्युक्त वट का उगना या प्रकट होना वहाँ पर तुलसी के जन्म लेने का ज्ञापक है। व्यजना-शक्ति का यह काल्पनिक प्रयोग कुछ जँचता नही है। तीसरे उद्धरण मे प्रयुक्त 'अवध सनवध' और 'वस्तु भावना भवन भरि' के अतस्तल से उन्होने इस 'रहस्य' का उद्घाटन किया है कि अवध मे ही तुलसी का घर अर्थात् जन्म-स्थान था।[4] यहाँ भी पानी को मथकर घृत निकालने की चेष्टा की गयी है।

निष्कर्ष यह कि पाडे जी ने अयोध्या को तुलसी की जन्मभूमि सिद्ध करने के लिए जो तथाकथित साक्ष्य उपस्थित किये हैं, वे वस्तुत साक्ष्य-कोटि मे आते ही नही है। किसी अन्य लेख, परपरा अथवा जनश्रुति से भी ऐसा कोई सकेत नही मिलता जिसके बल पर उसको तुलसी का जन्मस्थान माना जा सके।

३. **काशी** तुलसी का जन्म काशी मे ही हुआ था, इस वाद के अनन्य अधिवक्ता प० रजनीकात शास्त्री हैं। उनकी मान्यता के अनुसार, उनका 'यह अनुमान गोसाईं जी के निजी लेखो से, जिनके द्वारा काशी ही आपकी जन्मभूमि सकेतित होती है, पूरा-पूरा मेल खा जाता है।'[5] तुलसी के 'निजी लेख' है

(१) जायो कुल मंगन बधावनो बजायो सुनि।[6]
(२) मात-पिता जग जाइ तज्यो।[7]
(३) जाति के सुजाति के कुजाति के पेटागि बस
खाए टूक सबके बिदित बात दुनीं सो।[8]
(४) बारें ते ललात बिललात द्वार-द्वार दीन।[9]
(५) रामबोला नाम हौं गुलाम राम साहि को।[10]

---

१. भवानीदास, देखिए—तुलसी की जीवन-भूमि, पृ० १२६
२. तुलसी की जीवन-भूमि, पृ० ११४
३. तुलसी की जीवन-भूमि, पृ० १४२
४. तुलसी की जीवन-भूमि, पृ० १३५-३७
५. मानस-मीमासा, पृ० ४५
६ कवितावली, ७।७३
७. कवितावली, ७।५७
८ कवितावली, ७।७२
९. कविनावली, ७।७३
१०. कवितावली, ७।१००

(६) लोग कहैं पोच सो न सोच न सँकोच मेरे
ब्याह न बरेखी जाति पाँति न चहत हौं।[१]

(७) धूत कहौ अवधूत कहौ रजपूत कहौ जोलहा कहौ कोऊ।[२]

(८) कोऊ कहै करत कुसाज दगाबाज बडो
कोऊ कहै रामको गुलामु खरो खूब है।
साधु जानें महासाधु खल जानें महाखल
बानी झूँठी साँची कोटि उठत हबूब है।[३]

(९) एते पर हूँ जो कोऊ रावरो ह्वै जोर करै
ताको जोर देव दीन द्वारें गुदरत हौं।[४]

(१०) दियो सुकुल जनम सरीर सुंदर हेतु जो फल चारि को।
जो पाइ पडित परमपद पावत पुरारि मुरारि को॥
यह भरतखड समीप सुरसरि थल भलो सगति भली।
तेरी कुमति कायर कलप बल्ली चहति विष फल फली।[५]

(११) मुक्ति जन्म महि जानि ज्ञान खानि अघ हानि कर।
जहँ बस सभु भवानि सो कासी सेइअ कस न॥[६]

प्रथम चार उद्धरणो के आधार पर शास्त्री जी का अनुमान है कि तुलसी जारज पुत्र थे, अत माता-पिता द्वारा फेंक दिये गये थे, लडकपन मे अपने पालक गोसाईं का भिखमगा पेशा अपना लिया था, और 'बनारस-भूमि' ही उनकी जन्मभूमि थी, क्योकि "गोसाइयो के बालक एकतारा और करताल बजा-बजाकर और भजन गा-गाकर घर-घर भीख माँगा करते हैं। ये प्राय बनारस प्रात मे रहते हैं और वही से सर्वत्र भिक्षाटन के लिए जाया करते हैं।'[७] तुलसी की तथाकथित जारजता, मातृ-पितृ-वियोग और गोसाईंपन से सबधित अनुमान स्वच्छद-कल्पना की उपज है। उपर्युक्त आत्मोल्लेखो मे यह कही नही सकेतित है कि वे 'अवैध-सन्तान' थे या 'फेंक दिये गये थे' या किसी 'गोसाईं' द्वारा 'पाले-पोसे' गये थे। यदि शास्त्री जी के इस कथन को तथ्य-सगत मान लिया जाए कि गोसाइयो के बालक एकतारा और करताल बजाकर ही भीख माँगा करते हैं तो भी तुलसी को उस वर्ग मे नही रखा जा सकता, क्योकि उनके एकतारा-करताल बजाने का कही पर भी कोई उल्लेख नही मिलता। तुलसी का गोसाईं-पालित होना असिद्ध है, उस पर भी यह मान बैठना कि समस्त गोसाईं-जाति 'काशी-प्रात' के घेरे मे ही बद है, वास्तविकता के विरुद्ध है। काशी से दूर के जिलो मे भी गोसाईं बसे हुए है और बिना एकतारा-करताल के भी

---

१ विनयपत्रिका, ७६।४
२ कवितावली, ७।१०६
३. कवितावली, ७।१०८
४ कवितावली, ७।१६५
५. विनयपत्रिका, १३५।१
६ रामचरितमानस, ४।१। आरभिक सोरठा
७. मानस-मीमासा, पृ० १९-२३, ४४

भीख माँगा करते हैं।

काशीवासियो मे तुलसी के निंदक भी थे। क्यो ? पूर्वोद्धृत प्रथम नौ उद्धरणो पर से शास्त्री जी का अनुमान है कि वे तुलसी को अवैध सतान मानते थे, उनके बचपन की दुर्दशा से खूब परिचित थे—'ओल्ती का भूत सात पुश्त का नाम जाने', इसलिए उनकी 'महात्मागरी' उन्हे असह्य थी। "साराश यह कि गोसाईं जी स्वकालीन जनता की दृष्टि मे कभी भी प्रतिष्ठा के पात्र नही रहे। वह आपकी जाति-पाँति के विषय मे सदा सदिग्ध रहती थी तथा आपको पोच, धूर्त, अजाति आदि कहा करती थी।"[1] इस प्रकार तुलसी की उक्तियो का आश्रय लेकर यह निष्कर्ष निकाला गया है कि वे काशी मे ही पैदा हुए थे।

शास्त्री जी ने कवि की उक्तियो के उन्ही पक्षो को ग्रहण किया है जो उनकी प्राक्कल्पना के अनुकूल पडते हैं। अधिक गौरवशाली अशो को उन्होने कतई छोड दिया है। यह कहना नितात असत्य है कि तत्कालीन जनता की दृष्टि मे तुलसी की कोई प्रतिष्ठा नही थी। कवि ने तो अत्यन्त पारदर्शी शब्दो मे समझाकर कह दिया है—**भलेउ पोच सब बिधि उपजाए,**[2] **साधु जानै महासाधु खल जानै महाखल; कोऊ कहै करत कुसाज दगाबाज बडो कोऊ कहै राम को गुलाम खरो खूब है।**[3] यदि कोई 'धूत' कहता था तो उसके विरुद्ध दूसरा 'अवधूत' भी कहता था, एक ओर '**जोलहा**' कहने वाले थे तो दूसरी ओर 'रजपूत' कहने वाले भी थे। यदि अतस्साक्ष्य से इतनी ही उक्तियो को लिया जाए तो दोनो पक्षो की बराबरी प्रकट होती है। परतु वास्तविकता इसके आगे तक जाती है।

'गोसाईं जी के निजी लेखो से' निस्सदेह प्रमाणित है (और यदि उनके निंदा वाले वचन प्रमाण हैं तो उसी विश्वास-भाव से ये प्रतिष्ठा वाले वचन भी प्रामाणिक माने जाने चाहिएँ) कि वे 'स्वकालीन जनता की दृष्टि मे' अवश्य ही 'प्रतिष्ठा के पात्र' थे। वे स्वय कहते हैं

(i) **रामनाम को प्रभाउ पाउ महिमा प्रतापु**
तुलसी सो जग मानिअत महामुनी सो।[4]

(ii) **घर-घर माँगे टूक पुनि भूपति पूजे पाय।**[5]

(iii) **हौं तो सदा खर को असवार तिहारोइ नामु गयद चढ़ायो।**[6]

तुलसी की प्रतिष्ठा सिद्ध करने के लिए इससे प्रबलतर अतस्साक्ष्य और क्या हो सकता है ? इसके अतिरिक्त, बहिस्साक्ष्य भी उनकी तत्कालीन प्रतिष्ठा का प्रमापक है। उनके समसामयिक नाभादास की निर्विवाद उक्ति है—**कलि कुटिल जीव निस्तार हित बाल्मीकि तुलसी भए।**[7] और, तुलसी की श्लाघा मे जो इतनी सभव-असभव किंवदतियाँ

१. मानस-मीमांसा, पृ० ४८
२. रामचरितमानस, १।६।२
३ कवितावली, ७।१०८
४ कवितावली, ७।७२
५ दोहावली, १०९
६. कवितावली, ७।६०
७. भक्तमाल, छप्पय १२९

चल पडी, वे अकारण नही थी। वे असाधारणतया प्रतिष्ठित महात्मा थे, इसी कारण से श्रद्धालु जनता ने उनके साथ लौकिक-अलौकिक चमत्कारो का सबध स्थापित कर दिया।

इस प्रकार स्पष्ट है कि तुलसी के जिन आत्मोल्लेखो के अवलबन से काशी मे उनके जन्म का अनुमान लगाया गया है उनमे ऐसा कोई सकेत नही है जिसके आधार पर काशी या काशी-प्रात को कवि का जन्म-स्थान माना जा सके।

४. हाजीपुर . विलसन ने किसी जनश्रुति को प्रमाण मानकर भ्रातिवश चित्रकूट के समीपस्थ किसी हाजीपुर को तुलसी का जन्म-स्थान मान लिया था। गार्सा द तासी ने भी उनका अनुसरण किया। इन विदेशी विद्वानो ने इस विषय मे कोई अनुसधान नही किया। प० रामबहोरी शुक्ल का कथन है—"जहाँ तक मुझे ज्ञात है ऐसा कोई स्थान आजकल तो है नही। सभव है अग्रेज विद्वान् विलसन और फ्रासीसी पडित तासी राजापुर को भ्रमवश हाजीपुर लिख गये हो।"[1] डॉ० भारद्वाज की टिप्पणी है—'भारत मे अनेक हाजीपुर हैं, किंतु प्रतीत होता है कि विलसन ने गोस्वामीजी के विषय मे जहाँ अनेक भ्रात बातो की चर्चा की है वहाँ हाजीपुर की भी की।"[2] हाजीपुर के पक्ष मे कोई अतस्साक्ष्य अथवा बाह्य प्रमाण उपलब्ध नही है। इसी कारण किसी शोधकर्ता ने उसे कवि की जन्मभूमि सिद्ध करने का प्रयास भी नही किया। उसके पक्ष-विपक्ष मे कुछ कहना अनावश्यक है।

५ हस्तिनापुर हस्तिनापुर मेरठ जिले मे गढमुक्तेश्वर के पास स्थित है। किसी ने यह दावा नही किया है कि वह तुलसी की जन्मभूमि है। केवल एफ० एस० ग्राउज की अचिंतित उक्ति है कि 'भक्तिसिधु' के अनुसार तुलसीदास का जन्म हस्तिनापुर मे हुआ था। उन्होने स्वय ही इस बात को गौरव नही दिया।

६. राजापुर तुलसी की जन्मभूमि के वस्तुत शक्तिशाली दावेदार राजापुर और सोरो हैं। दोनो उत्तर प्रदेश मे हैं—पहला बाँदा जिले मे है, दूसरा एटा मे। जन्म-स्थान-निर्धारण का अनत वाग्युद्ध मुख्यतया इन्ही दो स्थानो के पक्ष-विपक्ष से चलता रहा है। थोडा गहरे पैठकर देखिए तो इन दोनो के अतर्गत भी विकल्प मिलेंगे। कुछ लोग तो खास राजापुर को तुलसी की जन्मभूमि मानते हैं और कुछ लोग उससे पाँच-छ कोस दूर के तारी-गाँव को। तारी भी दो हैं। एक राजापुर के समीप है, एक सोरो के पास। सोरो-क्षेत्र मे तीन विकल्प हैं। कोई कहता है कि तुलसी का जन्म सोरो से कुछ दूर पर अवस्थित तारी गाँव में हुआ, कोई कहता है कि सोरो कस्बे के योगमार्ग मुहल्ले मे और कोई कहता है कि सोरो के समीप गगा-पार के रामपुर गाँव मे। दोनो पक्षो से सबद्ध मतभेदाभेदवाद एकता मे अनेकता और अनेकता मे एकता का विलक्षण उदाहरण है।

राजापुर बाँदा जिले मे यमुना के तट पर स्थित एक कस्बा है। शिवसिंह सेगर, मिश्रबधु, प० रामचद्र शुक्ल, बाबू श्यामसुदरदास, प० विजयानद त्रिपाठी, प० रामबहोरी शुक्ल, उत्तर-प्रदेश सरकार आदि के अनुसार वह तुलसी की जन्मभूमि है। कुछ ने

१ तुलसी, पृ० १०
२ गोस्वामी तुलसीदास, पृ० १२५

झमेले मे न पड़कर उल्लेख मात्र किया है, दूसरो ने तर्क देकर उसको जन्मस्थान सिद्ध करने का उद्योग किया है। सरकार ने उसे तुलसी की निवास-भूमि ही नही, जन्मभूमि मानकर स्मारक वनवाया है। राजापुर के पक्ष मे निम्नाकित अतस्साक्ष्य और वहिस्साक्ष्य उपस्थित किये गये हैं

(१) 'रामचरितमानस' के द्वितीय सोपान का तापस-प्रसग,
(२) उसी के आगे स्नेह-विकल नर नारियो का मर्मस्पर्शी वर्णन,
(३) तुलसी-साहित्य से राजापुर की भाषा-सस्कृति का साम्य,
(४) अयोध्याकाड की प्रति,
(५) तीन सनदें,
(६) हनुमान् की मूर्ति और तुलसी का मकान,
(७) तुलसीचरित, मूलगोसाईंचरित और घटरामायन,
(८) जनश्रुति।

इन साक्ष्यो पर विचार कीजिए

(१) तापस-प्रसग 'रामचरितमानस' के अयोध्याकाड मे राम ने प्रयाग से आगे चलकर यमुना को पार किया, तव

सुनत तीर वासी नर नारी। धाए निज निज काज विसारी॥
लखन राम सिय सुंदरताई। देखि करहिं निज भाग्य बड़ाई॥
अति लालसा सवहि मन माहीं। नाउँ गाउँ बूझत सकुचाहीं॥
जे तिन्ह महुँ वयबिरिध सयाने। तिन्ह करि जुगुति रामु पहिचाने॥
सकल कथा तेन्ह सवहिं सुनाई। वनहि चले पितु आयेसु पाई॥
सुनि सविषाद सकल पछिताहीं। रानी राय कीन्ह भल नाहीं॥[1]

यही पर सूत्र टूट गया और अचानक

तेहि अवसरु एकु तापसु आवा। तेज पुंज लघु वयसु सुहावा॥
कवि अलखित गति वेषु विरागी। मन क्रम वचन राम अनुरागी॥
सजल नयन तन पुलकि निज इष्ट देउ पहिचानि।
परेउ दंड जिमि धरनि तल दसा न जाइ वखानि॥
राम सप्रेम पुलकि उर लावा। परम रंकु जनु पारसु पावा॥
मनहुँ प्रेमु परमारथु दोऊ। मिलत धरें तनु कह सवु कोऊ॥
वहुरि लखन पायन्ह सोइ लागा। लीन्ह उठाइ उमगि अनुरागा॥
पुनि सिय चरन धूरि धरि सीसा। जननि जानि सिसु दीन्हि असीसा॥
कीन्ह निषाद दंडवत तेही। मिलेउ मुदित लखि राम सनेही॥
पिअत नयन पुट रूपु पियूषा। मुदित सुअसनु पाइ जिमि भूखा॥[2]

यहाँ पहुँचकर कवि ने प्रकरण के छिन्न सूत्र को फिर पकडा

ते पितु मातु कहहु सखि कैसे। जिन्ह पठए वन वालक ऐसे॥

---
१. रामचरितमानस, २।११०।१-३
२ रामचरितमानस, २।११०।४-१११।२

राम लखन सिय रूपु निहारी। सोच सनेह विकल नर नारी ॥[1]

इससे निष्कर्ष निकाला गया है कि कथा-क्रम मे विक्षेप उपस्थित करके तापस का सहसा प्रवेश अभिप्राय-रहित नही है। प्रवध-निपुण कवि ने ऐसा क्यो किया? उत्तर दिया गया है कि जव कवि के इष्टदेव उसके जन्मस्थान पर पहुँचे तव उसने अभिनदन किया। इसके प्रत्याख्यान मे डॉ० गुप्त ने एक प्रश्न उठाकर उसका उत्तर दिया है—"क्या अपनी तपोभूमि होने के नाते ही वह वहाँ इस प्रकार की अभ्यर्थना अपने इष्टदेव की नही कर सकता था? कवि का 'तापस' और 'विरागी वेप' होना तो सभवत इसी तथ्य की ओर सकेत करता है और तपोभूमि से जन्मभूमि होना सिद्ध नही होता, वल्कि अधिकतर एक-दूसरे का वाध ही करता है।"[2] डॉ० गुप्त का अनुमान सवल है। कुछ अन्य तर्क भी अवेक्षणीय हैं।

'रामचरितमानस' के पाठानुसधायक प० शभुनारायण चौवे का कथन है[3] कि तापस-प्रसग सर्वथा अप्रासगिक और असगत है, किसी पौराणिक कथा से उसकी पुष्टि नही होती, सपूर्ण 'रामचरितमानस' की ग्रथ-सख्या मिलाते समय उसको ग्रहण करने से प्रामाणिक प्रतियो की ग्रथ-सख्या मे अतर पडता है, और तेरह प्राचीन पोथियो मे वह प्रसग नही पाया जाता। इसलिए तापस-प्रसग का प्रक्षिप्त होना सभाव्य है। तापस को तुलसी मान लेने मे भी कठिनाइयाँ हैं। वे अपने लिए 'तेजपुज', 'सुहावा', 'पारस' आदि अहमन्यता-सूचक और राम के लिए 'रक'-जैसे तुच्छता-सूचक शब्द का प्रयोग नही कर सकते। उक्त प्रसग मे निषाद के दडवत करने के वाद तापस उससे मिला है। जो कवि अपने को राम-भक्तो के पग की पनहीं समझता है[4] वह निपादराज-सरीखे भक्त से मिलने मे विलव तथा सकोच नही कर सकता। अत यदि तापस-प्रसग को प्रक्षिप्त न माना जाए तो भी तापस को तुलसी का प्रतीक मानना अनुचित है।

प० चद्रवली पाडे[5] ने तुलसी की जन्मभूमि के अन्वेषको का ध्यान इस तथ्य की ओर आकृष्ट किया है कि 'रामचरितमानस' के 'तापस' की भाँति ही गीतावली मे एक सखी भी है। उसके विषय मे कवि की उक्ति है

सखिहि सुसिख दई प्रेम मगन भई
सुरति विसरि गई आपनी ओही।
तुलसी रही है ठाढ़ी पाहन गढ़ी-सी काढ़ी
कौन जाने कहाँतें आई कौनकी को ही ॥[6]

---

१ रामचरितमानस, २।१११।४

२. तुलसीदास, पृ० १४७

३ देखिए—रामचरितमानस के प्राचीन क्षेपक, नागरी-प्रचारिणी पत्रिका, वर्ष ४६, अंक ३, कार्तिक १९९८ वि०, पृ० २३०-३१

४ आप आपने ते अधिक जेहि प्रिय सीताराम।
तेहि के पग की पानहीं तुलसी तनु को चाम ॥—दोहावली ५९
तुलसी जाके वदन तें धोखेउ निकसत राम।
ताके पग की पगतरी मेरे तनु को चाम ॥—वैराग्यसदीपनी, ३७

५. देखिए—तुलसी की जीवन भूमि, पृ० १२६-२८

६ गीतावली, २।१९।४

उनके विचार से 'तुलसी रही है ठाढी' मे 'तुलसी' का अभिप्राय है—**तुलसी सखी**। सखी-सप्रदाय मे तुलसी को सखी माना गया है। 'अनन्य' कवि ने उन्हें सब सखियो में शिरोमणि कहा है।[1] 'न जाने कहाँ ते आई' से स्पष्टतया सिद्ध है कि वह कही अन्यत्र से आयी थी, वह उस स्थान (राजापुर के आस-पास) की नही थी। अतएव राजापुर को तुलसी की मातृभूमि नही माना जा सकता।

वस्तुत, 'तापस' और 'सखी' दोनों मे से कोई भी तुलसी का प्रतीक नही है। यह कवि की शैलीगत विशेषता है। नाटकीयता के प्रभावशाली चमत्कार का सनिवेश करने के लिए उन प्रसगो मे तापस और सखी की योजना की गयी है। प्रासगिक पात्रो के पिहितापिहित व्यक्तित्व से, उनके किंचित्-रहस्यमय प्रवेश एव निष्क्रमण से, सरस कुतूहल तथा चित्रात्मक रमणीयता की सृष्टि होती है। 'एक सखी',[2] 'एक',[3] 'कोऊ',[4] आदि जिज्ञासा-जनक शब्दो के प्रयोग द्वारा कवि ने इसी उद्देश्य की पूर्ति की है। अपने उक्ति-वैचित्र्य को आकर्षक बनाने के लिए अन्य प्राचीन एव अर्वाचीन कवियो ने भी इस औत्सुक्यवर्धिनी युक्ति का विविध रूपो मे उपयोग किया है।[5]

(२) **स्नेह-विकल नर-नारियो का मर्मस्पर्शी वर्णन** प० रामबहोरी शुक्ल ने राजापुर का पक्ष समर्थित करते हुए कहा है—"अयोध्या से यमुनाजी पहुँचने तक गोस्वामीजी कही भी इस प्रकार भावावेश मे नही आये जिस प्रकार यमुनाजी के पार करने पर आये। इसी प्रदेश मे राजापुर है और जन्मभूमि के अनुराग से ही गोस्वामीजी ने ग्रामवासी स्त्री-पुरुष आदि का मार्मिक और अत्यत प्रभावशाली वर्णन अपनी अलौकिक अनुभूति से इसी प्रदेश से सबधित किया है 'मेघदूत' मे कालिदास ने भी रामगिरि से अलका जाते समय मार्ग मे न पडने पर भी मेघ से उज्जयिनी होते जाने का अनुरोध करवाकर जैसे अपना उज्जयिनी-प्रेम प्रदर्शित किया है वैसे ही गोस्वामी जी के कथा-प्रसग-युक्त इस वर्णन से इस प्रदेश के प्रति उनका स्वाभाविक अनुराग

---

१ सकल सखियन में सिरोमनि दास तुलसी तुम रहौ।
—भजननिधि-ग्रथावली, पृ० २७५, रामभक्ति में रसिक संप्रदाय, पृ० १०६

२. एक सखी सिय सगु बिहाई। गई रही देखन फुलवाई।।—रामचरितमानस, १।२२८।४

३. एक कहहिं नृप सुत तेइ आली।—रामचरितमानस, १।२२९।०
रामहि देखि एक अनुरागे। चितवत चले जाहिं सँग लागे।।
एक नयन मग छबि उर आनी। होहिं सिथिल तन मन बर बानी।।—रामचरितमानस, २।११४।४

४. कोउ कह सत्य झूठ कह कोऊ जुगल प्रबल कोउ मानै।
तुलसिदास परिहरै तीनि भ्रम सो आपन पहिचानै।।—विनयपत्रिका, १११।४

५. कश्चित्कान्ताविरहगुरुणा स्वाधिकारात्प्रमत्त.
शापेनास्तंगमितमहिमा वर्षभोग्येण भर्तु ।—मेघदूत, प्रथम श्लोक
ध्रुव कश्चित्सर्वं सकलमपरस्त्वध्रुवमिति
परो ध्रौव्याध्रौव्ये जगति गदति व्यस्तविषये।—महिम्नस्तोत्र, ६
एक पुरुष भीगे नयनों से देख रहा था प्रलय-प्रवाह।—कामायनी, १।१
वह कौन रोता है वहाँ—
इतिहास के अध्याय पर,—कुरुक्षेत्र, पृ० १

ही सूचित होता है। इस तरह यह सिद्ध होता है कि राजापुर मे भक्त गोस्वामीजी ने जन्म लिया था।"[1]

उपर्युक्त मत के निराकरण मे डॉ० गुप्त का व्यवस्थित उत्तर है—"शृंगवेरपुर के कुछ आगे तक तो साथ-साथ मत्री सुमत्र थे तथा उनका रथ भी था। उनका साथ छूटने पर प्रयाग तक निषादराज साथ था। प्रयाग से यमुना-सतरण तक निषादराज के अतिरिक्त भरद्वाज द्वारा नियुक्त कुछ वटु भी साथ थे। यमुना पार करने के समय राम ने वटुओ को विदा किया, और यमुना पार करने के वाद ही निषादराज को विदा किया। यहाँ तक मार्ग के ग्रामवासी नर-नारियो मे कवि ने समवेदना का विशेष उद्रेक नही किया, तो कुछ आश्चर्य नही। इसके वाद वन-पथ पर एकाकी अग्रसर राजकुल के ये निर्वासित सदस्य अवश्य ही विशेष सहानुभूति के पात्र थे।"[2]

मैं कुछ अधिकोत्तर देना चाहूँगा। प्रत्यालोचन की प्रतीति के लिए 'रामचरित-मानस' के उद्धरण सामने रख लेना आवश्यक है। कथित राजापुर-क्षेत्र के ग्रामीण नर-नारियो का 'भावावेश'-पूर्ण वर्णन है

सीता लखन सहित रघुराई। गाँव निकट जव निकसहिं जाई॥
सुनि सब बाल वृद्ध नर नारी। चलहिं तुरत गृह काज बिसारी॥
राम लखन सिय रूप निहारी। पाइ नयन फलु होहिं सुखारी॥
सजल बिलोचन पुलक सरीरा। सब भए मगन देखि दोउ बीरा॥
बरनि न जाइ दसा तिन्ह केरी। लहि जनु रकन्हि सुरमनि ढेरी॥
एकन्ह एक बोलि सिख देहीं। लोचन लाहु लेहु छन एहीं॥
रामहि देखि एक अनुरागे। चितवत चले जाहिं सँग लागे॥
एक नयन मग छबि उर आनी। होहिं सिथिल तन मन बर बानी॥
एक देखि वट छाँह भलि डासि मृदुल तृन पात।
कहहिं गँवाइअ छिनुकु स्रमु गवनब अबहिं कि प्रात॥[3]

वर्णन की मार्मिकता मे सदेह की गुजाइश नही है। यहाँ पर एक बात बुरी तरह खटकती है। ऐसा कौन-सा भलामानुस है जो अतिथि के पधारते ही शिष्टाचार को ताक पर रखकर उससे पूछ बैठता है—गवनब अबहि कि प्रात? यदि राम तुलसी की जन्म-भूमि मे पधारे थे तो प्रस्थान के अभिलाषी राम से भी आग्रहपूर्वक कहा जाना चाहिए था—अभी तो आप आए हैं, कुछ दिन यहाँ रहकर हमे कृतार्थ कीजिए।

तुलनात्मक दृष्टि से ध्यान दीजिए, चित्रकूट के कोल-किरातो तक ने इस प्रकार का अशिष्ट प्रश्न नही किया। उन्होंने राम के प्रति कही अधिक निजत्व प्रदर्शित किया है

येह सुधि कोल किरातन्ह पाई। हरषे जनु नव निधि घर आई॥
कद मूल फल भरि भरि दोना। चले रक जनु लूटन सोना॥

---

१. वीणा, वैशाख, स० १९९५, पृ० ५४६; तुलसीदास, पृ० १४४
२ तुलसीदास, पृ० १४७
३. रामचरितमानस, २।११४

तिन्ह महँ जिन्ह देखे दोउ भ्राता। अपर तिन्हहि पूँछहिं मग जाता ॥
कहत सुनत रघुबीर निकाई। आइ सबन्हि देखे रघुराई ॥
करहिं जोहारु भेंट धरि आगे। प्रभु हि बिलोकहिं अति अनुरागे ॥
चित्र लिखे जनु जहँ तहँ ठाढ़े। पुलक सरीर नयन जल बाढ़े ॥
राम सनेह मगन सब जाने। कहि प्रिय बचन सकल सनमाने ॥
प्रभुहि जोहारि बहोरि बहोरी। बचन बिनीत कहहिं कर जोरी ॥
अब हम नाथ सनाथ सब भए देखि प्रभु पाय।
भाग हमारे आगमनु राउर कोसलराय ॥
धन्य भूमि बन पंथ पहारा। जहँ जहँ नाथ पाउ तुम्ह धारा ॥
धन्य बिहग मृग कानन चारी। सफल जनम भए तुम्हहि निहारी ॥
हम सब धन्य सहित परिवारा। दीख दरसु भरि नयन तुम्हारा ॥
कीन्ह बासु भल ठाउँ बिचारी। इहाँ सकल रितु रहब सुखारी ॥
हम सब भाँति करब सेवकाई। करि केहरि अहि बाघ बराई ॥
बन बेहड गिरि कदर खोहा। सब हमार प्रभु पग पग जोहा ॥
जहँ तहँ तुम्हहि अहेर खेलाउब। सर निरझर भल ठाउँ देखाउब ॥
हम सेवक परिवार समेता। नाथ न सकुचब आयेसु देता ॥[1]

इस निजत्व के आधार पर चित्रकूट वाले पूछ सकते हैं—चित्रकूट को ही तुलसी का जन्मस्थान क्यो न माना जाए ? 'भावावेशपूर्ण वर्णन' के आधार पर शृंगवेरपुर के लोग भी दावा जताने से नही चूकेंगे। तुलना करके देख लीजिए। राजापुर-क्षेत्र के निवासी कहे जाने वाले ग्रामवासियो की सविपाद उक्ति है :

सहित बिषाद परसपर कहहीं। बिधि करतब उलटे सब अहहीं ॥
निपट निरकुस निठुर निसंकू। जेहिं ससि कीन्ह सरुज सकलंकू ॥
रूखु कलपतरु सागरु खारा। तेहिं पठए बन राजकुमारा ॥
जौं पै इन्हहिं दीन्ह बनबासू। कीन्ह बादि बिधि भोग बिलासू ॥
ये बिचरहिं मग बिनु पदत्राना। रचे बादि बिधि बाहन नाना ॥
ये महि परहिं डासि कुस पाता। सुभग सेज कत सृजत बिधाता ॥
तरुबर बास इन्हहिं बिधि दीन्हा। धवल धाम रचि रचि स्रमु कीन्हा ॥
जौं ये मुनिपट धर जटिल सुदर सुठि सुकुमार।
बिबिध भाँति भूषन बसन बादि किए करतार ॥
जौं ये कद मूल फल खाहीं। बादि सुधादि असन जग माहीं ॥[2]

शृंगवेरपुर का निषाद 'प्रेमबस' होकर हार्दिक 'विषाद' के साथ कहता है :

सोवत प्रभुहि निहारि निषादू। भएउ प्रेमबस हृदयँ बिषादू ॥
तनु पुलकित जल लोचन बहई। बचन सप्रेम लखन सन कहई ॥
भूपति भवनु सुभायँ सुहावा। सुरपति सदनु न पटतर आवा ॥

---

१. रामचरितमानस, २।१३५।१–१३६।४
२. रामचरितमानस, २।११९।१–१२०।१

मनियम रचित चारु चौवारे। जनु रतिपति निज हाथ संवारे ।।
सुचि सुबिचित्र सुभोगमय सुमन सुगध सुवास।
पलंग मजु मनि दीप जहँ सव विधि सकल सुपास ।।
विविध वसन उपधान तुराईं। छीर फेन मृदु विसद सुहाईं ।।
तहँ सिय रामु साथरी सोए। स्रमित वसन विनु जाहि न जोए ।।
मातु पिता परिजन पुरवासी। सखा सुसील दास अरु दासी ।।
जोगवहिं जिन्हहिं प्रान की नाईं। महि सोवत तेइ राम गोसाईं ।।
पिता जनकु जग विदित प्रभाऊ। ससुर सुरेस सखा रघुराऊ ।।
रामचदु पति सो वैदेही। सोवति महि विधि वाम न केही ।।[1]

रामबहोरी जी ने जो कालिदास का दृष्टात दिया है वह अनुपयुक्त है। उज्जयिनी मे उनका जन्म होना सिद्ध नही है। एक सदिग्ध दृष्टात द्वारा किसी सदिग्ध प्रतिपाद्य का समर्थन भ्राति-सतान का प्रसारण मात्र है। उससे किसी तथ्य की सत्यता प्रमाणित नही की जा सकती।

यह तथ्य भी अनुपेक्षणीय है कि यमुना पार करने पर वन-पथगामी राम का जो चित्र अकित किया गया है उसमे राम की सुकुमारता, सुदरता और परिस्थिति-वैषम्य पर विशेष वल दिया गया है। यह वैशिष्ट्य इस वात का ज्ञापक है कि कवि मे प्रवध के मार्मिक स्थलो को पहचानने की यथोचित शक्ति है। 'कवितावली' के मुक्तक कवित्तो मे भी (जहाँ स्थान का कोई निर्देश नही है) इन तीन विशेषताओ का मार्मिक निरूपण हुआ है।[2] इन सब उदाहरणो से प्रकट है कि भाव-प्रवणता को कवि की जन्मभूमि का निर्णायक समझ लेना युक्ति-सिद्ध नही है।

(३) **तुलसी-साहित्य से राजापुर की भाषा-सस्कृति का साम्य** प० अयोध्याप्रसाद पाडेय ने भाषा-सस्कृति के आधार पर राजापुर का पक्षपोषण करते हुए कहा है · तुलसी ने राजापुर के प्रसिद्ध खेलो 'भौंरा', 'गोली' और 'चकडोरी' का वर्णन किया है, उनके साहित्य मे राजापुर की बहुप्रचलित कहावतें 'कहहु फाग पुरि वाता', 'दूध भात की दोनी दैहो सोने चोच मढै हो,' 'अनभल ताका' आदि प्रचुरतया प्रयुक्त हुई हैं, कवि ने **फुर, पनहीं, गभुआर, महतारी, फरसा, कदराहू, किधौं, पुचकारे, ओहार, कुराईं, वियाना, पाहुर, चिराव** आदि शब्दो का उसी रूप मे वहुश प्रयोग किया है जिस रूप मे वे राजापुर-क्षेत्र मे व्यवहृत होते हैं, राजापुर मे 'रामचरितमानस'-वर्णित विवाह-विधि और 'नहछू' के गीत आज भी प्रचलित हैं, तुलसी और तुलसी-सबधी लोकगीत राजापुर के कहारो, धोवियो, अहीरो आदि के गीतो मे गहरी पैठ पाकर वहाँ के वातावरण को तुलसीमय वनाये हुए हैं, इसलिए राजापुर ही तुलसी की जन्मभूमि है।[3]

---

१ रामचरितमानस, २।९०।३–९१।४
२ कवितावली, २।१९-२५
३. जन-भारती, भाग १, १९४९ ई०, पृ० ६१-६२

उनका यह मत तर्क-समत नहीं है। इसके विरुद्ध दो आपत्तियाँ हैं। पहली यह कि जिन खेलो, कहावतो और शब्दो को राजापुर-क्षेत्र में परिसीमित माना गया है वे उस क्षेत्र के बाहर भी पाये जाते हैं। इस तथाकथित प्रमाण का उल्लेख सोरो के समर्थक अपने पक्ष मे भी करते हैं। राजापुर-क्षेत्र के लोकगीतो का प्रामाणिक सग्रह अभी तक प्रस्तुत नही किया जा सका है जिसके आधार पर कोई मान्य निष्कर्ष निकाला जा सके। दूसरी आपत्ति यह है कि यदि इन बातो को सापत्ति स्वीकार कर भी लिया जाए तो इससे कवि की जन्मभूमि नही प्रमाणित हो जाती। भक्त कवि के वहाँ पर पर्याप्त समय तक रहने के कारण भी इस प्रकार का आदान-प्रदान सहज सभाव्य है। रीतिशृगार-काल के अधिकाश ब्रजभाषा-कवियो की जन्मभूमि ब्रज-क्षेत्र के बाहर है।

(४) **'रामचरितमानस' के अयोध्याकांड की प्रति** कहा जाता है कि जब तुलसीदास राजापुर छोडकर जाने लगे तब उन्होने 'रामचरितमानस' की एक स्वलिखित प्रति अपने शिष्यो को दी थी। उसे किसी चोर ने नदी में फेंक दिया था। उसका केवल अयोध्याकाड बचा रह गया है। डॉ० गुप्त ने बतलाया है कि वह प्रति राजापुर के प० मुन्नीलाल उपाध्याय के पास है।[१] वह प्रति कवि के हाथ की लिखी है या नही, अयोध्याकाड ही क्यो और कैसे बच रहा, इस विषय मे प्रचलित किंवदतियाँ कहाँ तक विश्वसनीय अथवा परस्पर-विरोधिनी होने के कारण अविश्वसनीय हैं—इन पचडोका प्रस्तुत प्रश्न से कोई सबध नही है। तत्त्व की बात यह है कि किसी रचना की किसी प्रति के किसी स्थान पर विद्यमान होने से वह स्थान कवि की जन्मभूमि कहलाने का अधिकारी नही हो जाता।

(५) **तीन सनदें** राजापुर के समर्थन मे तीन सनदो का साक्ष्य भी प्रस्तुत किया गया है। इनमे से केवल एक सनद ऐसी है जिसमें तुलसीदास के नाम का उल्लेख है। परतु उसमे उनके जन्म-स्थान का कोई सकेत नही है। माना कि राजापुर से उनका सबध था, उन्होंने वहाँ पर निवास किया था, उन्हे मुआफी मिली थी और वह मुआफी उनके शिष्य या शिष्यो की वश-परपरा मे चलती रही, किंतु इससे यह प्रमाणित नही होता कि राजापुर मे उनका जन्म हुआ था।

(६) **हनुमान् की मूर्ति और तुलसी का मकान** राजापुर मे तुलसी द्वारा स्थापित की हुई सकट-मोचन हनुमान् की एक मूर्ति है। एक कच्चा मकान है जो तुलसी का निवास-स्थान कहा जाता है। उसमे प्रतिष्ठित एक मूर्ति है जो तुलसीदास की बतायी जाती है। इन तथ्यो को प्रामाणिक मान लेने पर भी इनसे इतना ही अनुमान होता है कि तुलसी राजापुर मे रहे थे। कही पर रहना एक बात है, वहाँ पर जन्म लेना दूसरी बात है। निवास से जन्मभूमि होने की पुष्टि नही होती।

(७) **तुलसीचरित, मूलगोसाईंचरित और घटरामायन** इन तीनो पुस्तको के अनुसार तुलसी का जन्म राजापुर मे हुआ था। इनमे से प्रथम दो की प्रामाणिकता नितात सदिग्ध है। 'घटरामायन' अपेक्षाकृत अधिक महत्त्वयुक्त है। इसके तीन कारण हैं

---

१. तुलसीदास, पृ० १६६

वह अन्य परपराओ से स्वतत्र है, उसका लेखक राजापुर से बहुत दूर और सोरों से कुछ ही दूर पर स्थित हाथरस का निवासी रहा है, अपने तथाकथित पूर्वजन्म का जीवनवृत्त लिखते समय उसने भरसक अवधानपूर्वक प्रयास किया होगा कि लोकदृष्टि मे अपने को आप्त सिद्ध करने के लिए जनता मे प्रचलित तुलसीदास की जीवन-कथा को अधिकाधिक प्रामाणिक रूप मे प्रस्तुत किया जाए। परतु, तुलसीसाहब की समस्त जानकारी तत्कालीन जनश्रुतियो पर ही आश्रित है। ये जनश्रुतियाँ उन प्रतिमुखी जनश्रुतियो से टकराकर खडित हो जाती हैं जो स्वय राजापुर के आस-पास प्रचलित रही और जिनके अनुसार सोरो या किसी अन्य स्थान से आकर तुलसी ने राजापुर को बसाया। अत उक्त रचनाओ के साक्ष्य पर राजापुर को तुलसी का जन्म-स्थान नही माना जा सकता।

(८) जनश्रुति 'घटरामायन' के तुलसी-चरित की आश्रयभूत जनश्रुति के अतिरिक्त एडविन ग्रीव्ज ने भी किसी जनश्रुति का हवाला देते हुए कहा है कि राजापुर तुलसी की जन्मभूमि है।[1] लेकिन, इसके विरुद्ध बहुत-सी ऐसी जनश्रुतियो की चर्चा की गयी है जो राजापुर से भिन्न स्थानो को तुलसी की जन्मभूमि बतलाती हैं। अंग्रेज-शासको द्वारा प्रस्तुत किये गये चार विवरणो मे विभिन्न जनश्रुतियो के आधार पर तुलसी और राजापुर के सबध का उल्लेख मिलता है। पश्चिमोत्तर-प्रात के विवरण मे कहा गया है कि अकबर के शासन-काल मे एक सोरो-निवासी महात्मा उस स्थान पर आये जहाँ राजापुर स्थित है, एक मदिर बनवाकर वे वही रहने लगे, बहुत से लोग उनके अनुयायी हो गये और वह स्थान धर्म एव व्यापार का केंद्र बन गया। इम्पीरियल गजेटियर मे लिखा है कि राजापुर सोरो के सत तुलसीदास द्वारा बसाया गया। बाँदा जिले के विवरण से विदित है कि सोरोवासी भक्त-तुलसीदास यमुना के किनारे उस स्थान पर आकर भजन करने लगे जहाँ राजापुर बसा हुआ है, इसी तुलसीदास ने 'रामायण' (रामचरितमानस) की रचना की। ये सभी विवरण किवदतियो पर अवलबित हैं। यह बात बडी विचित्र और उलझनपूर्ण है कि सोरो से अदूरवर्ती हाथरस के आस-पास तुलसी साहब को यह जनश्रुति सुनने को मिली कि तुलसीदास राजापुर के थे, और राजापुर के आस-पास की जनश्रुतियो से गजेटियर-लेखकों को यह पता चला कि तुलसी सोरो के थे। निष्कर्ष यह है कि राजापुर को तुलसी की जन्मभूमि बताने वाली जनश्रुतियो की अपेक्षा उसके विरुद्ध पडने वाली जनश्रुतियाँ अधिक प्रबल हैं।

राजापुर के विपक्ष मे कुछ अन्य तर्क भी दिये गये हैं। प० रामनरेश त्रिपाठी का कहना है कि "अब भी राजापुर और उसके आस-पास के गाँवो मे बहुत से वृद्ध ऐसे मिलते हैं जो राजापुर को तुलसीदास का जन्म-स्थान नहीं मानते।"[2] डॉ० माताप्रसाद गुप्त ने भी "कुछ लोगो से इस आशय की बातें सुनी थी।"[3] त्रिपाठी जी के अनुसार एक जनश्रुति

१. देखिए—माधुरी, अगस्त, १९२३, पृ० २४
२. तुलसीदास और उनकी कविता, पृ० ९२
३. तुलसीदास, पृ० १५१

यह भी है कि तुलसीदास गगा पार करके ससुराल गये थे। राजापुर मे गगा नहीं, यमुना है। उनके इस कथन पर डॉ० गुप्त की व्यग्यार्थमयी टिप्पणी है—"राजापुर मे तो कोई ऐसी जनश्रुति नही सुनायी पडी है, सभव है त्रिपाठी जी ने यह जनश्रुति सोरो के विद्वानो से सुनी हो।"[1] एक दलील यह भी विचारणीय है कि राजापुर से विरक्त होकर निकले हुए तुलसीदास फिर उसी गाँव मे कैसे आकर रहते।"[2] इससे अनुमान होता है कि उनका जन्म-स्थान कही अन्यत्र था, और गृह-त्यागी होने पर उन्होने कुछ काल के लिए राजापुर को अपना निवास-स्थान बनाया था।

राजापुर-सबधी समग्र सामग्री के पर्यालोचन से तत्त्वत इतना ही प्रमाणित होता है कि तुलसीदास ने वहाँ पर निवास किया था। उन्होने उसे बसाया हो या न बसाया हो, किंतु यह निश्चित है कि उनके निवास से उसकी महत्ता बढ गयी। राजापुर के पक्ष मे ऐसा कोई निर्णायक साक्ष्य नही है जिसके आधार पर उसे तुलसी का जन्म-स्थान स्वीकार कर लिया जाए।

७ तारी बाबू शिवनदन सहाय ने तारी का पक्ष सक्षेप मे प्रस्तुत किया है "ग्रियर्सन साहब ने तारी का दावा जबरदस्त समझा है। परतु उन्होने इसका कोई कारण नही बताया है। हाँ, श्री सीतारामशरण भगवानप्रसादजी ने स्वरचित 'भक्तमाल' की टीका मे लिखा है कि राजापुर मे जाकर यह बात भली-भाँति निश्चय की गयी है कि गोसाईं जी का जन्म तारी मे हुआ था और विरक्त होने के पीछे राजापुर मे निवास कर उन्होने वहाँ भजन किया। इसी से वहाँ गोस्वामी जी की स्थापित की हुई सकटमोचन श्री हनुमान् जी की मूर्ति है और श्री रामायण अयोध्याकाड भी है। और इस विषय मे पत्र द्वारा पूछने पर उन्होने कृपापूर्वक हमे लिख भेजा है कि तारी मे जन्मे बूढे-बूढे भक्तमाली बताते हैं; कई एक प्रसिद्ध रामायणी लोगो ने अपने-अपने रामायणी गुरुओ से सुना है, सस्कृत मे जो भक्तमाल का उल्था है उसमे भी तारी ही लिखा है, राजापुर के बूढों से भी सुना गया है कि तारी ही मे गोस्वामी जी का जन्म हुआ था, राजापुर मे नही। अयोध्या-निवासी श्री रामरसरगमणि जी ने भी कवित्तरामायण की टीका मे तारी ही को जन्म-स्थान माना है।"[3] वे आगे कहते हैं· "जैसे प० रामगुलाम जी ने इस विषय मे अन्वेषण कर राजापुर को जन्म-स्थान माना है वैसे ही औरो के अन्वेषण से तारी जन्मभूमि सिद्ध हुई है और बहुत से लोग तारी को प्रधानता देते हैं।"[4] राजापुर और तारी के परस्पर-विरोधी दावो का रोचक समन्वय प० महादेवप्रसाद ने अपने 'भक्ति-विलास' मे किया है। उनका कहना है कि "गोस्वामी जी के पिता-माता का स्थान पत्योजा था, गर्भस्थिति अतर्वेद तारी मे हुई और वही से उन लोगो के आने पर

---

१. तुलसीदास, पृ० १५१
२. तुलसीदास और उनकी कविता, पृ० ११२
३. गोस्वामी तुलसीदास, पृ० २-३
४. गोस्वामी तुलसीदास, पृ० ४

राजापुर मे गोसाईं जी का जन्म हुआ।"[1]

तारी कहाँ है ? ग्रियर्सन और 'सस्कृत भक्तमाला' के अनुसार उसकी स्थिति दो-आब अथवा अतर्वेद मे है।[2] बाबू शिवनदन सहाय ने बताया है कि तारी एक गाँव है जो राजापुर से पाँच-छः कोस दूर यमुना के उसी किनारे पर स्थित है।[3] डॉ० रामदत्त भारद्वाज का कहना है कि "यमुना के तट वाला गाँव 'तारी' नही है, 'ताड़ी' है, असली 'तारी' एटा जिले मे सोरो से कुछ दूर गगा के किनारे है जो तुलसी की नही, उनकी माता हुलसी की जन्मभूमि है।"[4]

तारी चाहे जहाँ हो, उसके प्रत्यभिज्ञान से तुलसी की जन्मभूमि के निर्धारण मे कोई सहायता नही मिलती। तारी के पक्ष मे जो कुछ कहा गया है वह सब केवल जन-श्रुतियो के आधार पर है। उन जनश्रुतियो की प्रतिवादिनी और तुल्य बल वाली जन श्रुतियाँ भी है। वे एक-दूसरी का खडन करके अपने-आप खडित हो जाती हैं।

८-९. सोरो-रामपुर प० रामनरेश त्रिपाठी ने सोरो के प्रसग मे एक प्रश्न उठाकर उसका उत्तर दिया है। "किसी ने इस शका का समाधान नही किया है कि तुलसीदास जब बहुत बालक 'अति अचेत' थे[5] तब वे सूकरखेत कैसे पहुँच गए।"[6] उन्होने स्वय इसका समाधान किया है—"सोरो जाकर मुझे निश्चय हो गया है कि तुलसीदास का जन्म-स्थान सोरो ही है। वही उन्होने पहले-पहल बाल्यावस्था मे गुरु-मुख से राम-कथा सुनी थी।"[7] कवि द्वारा उल्लिखित 'सूकरखेत' की स्थिति के विषय मे विवाद है। यहाँ पर इतना ही विचारणीय है कि एटा जिले मे गगा के किनारे स्थित सूकरखेत (सोरो) तुलसी का जन्म-स्थान है या नही।

इस सूकरखेत के परिमाण के विषय मे दो प्रकार की धारणाएँ पायी जाती हैं। सकुचित अर्थ मे, 'सूकरखेत' का व्यवहार सोरो कस्बे के लिए किया जाता है। व्यापक अर्थ मे, सोरो-केंद्र से उसके चारो ओर पाँच योजन तक का क्षेत्र 'सूकरखेत' माना जाता है। इस प्रकार सोरो से डेढ-दो मील पूर्वस्थ रामपुर गाँव भी 'सूकरखेत' के अतर्गत मान्य है। सोरो-सामग्री के प्रमुख विवरणकारो मे से प० गोविंदवल्लभ भट्ट, प० भद्रदत्त शर्मा और प० वेदव्रत शर्मा खास सोरो को तुलसी का जन्म-स्थान मानते हैं। डॉ० रामदत्त भारद्वाज के मतानुसार तुलसी का जन्म रामपुर गाँव मे हुआ था। अस्तु।

सोरो-पक्ष के समर्थक विद्वानो ने बहिस्साक्ष्य और अतस्साक्ष्य दोनो के आधार पर सोरो को तुलसी की जन्मभूमि सिद्ध करने का प्रयास किया है। बहिस्साक्ष्य के दो वर्ग हैं—सोरो-सामग्री और सोरो-इतर सामग्री। अतस्साक्ष्य के भी दो रूप हैं—कवि के

---

१ देखिए—गोस्वामी तुलसीदास (बाबू शिवनदनसहाय), पृ० ७-८
२ देखिए—गोस्वामी तुलसीदास (डॉ० भारद्वाज), पृ० १५६
३ गोस्वामी तुलसीदास, पृ० ३, ४
४. गोस्वामी तुलसीदास, पृ० १५८-५९
५. उनका सकेत 'तब अति रहेउँ अचेत' (रामचरितमानस, १।३०) की ओर है।
६. तुलसीदास और उनका काव्य, पृ० ६९
७ तुलसीदास और उनका काव्य, प० ७०

आत्मकथात्मक उल्लेख और कृतियो की भाषागत विशेषताएँ। इन चारो प्रकारो की अलग-अलग सक्षिप्त विचार-चर्चा अपेक्षित है।

(क) **सोरो-सामग्री का साक्ष्य** पूर्व-विवेचित 'सूकरक्षेत्रमाहात्म्यभाषा', मुरलीधर के छप्पयो, 'रत्नावलीचरित''दोहारतनावली', 'भ्रमरगीत' की पुष्पिका, 'वर्षफल', सेवारास की टीका और 'तुलसीप्रकास' के आधार पर प्रतिपादित किया गया है कि तुलसी का जन्म सोरो के योगमार्ग मोहल्ले अथवा सूकरखेत के अतर्गत रामपुर गाँव मे हुआ था। वहाँ से कुछ दूर तारी गाँव मे उनका ननिआउर था, बदरिया मे ससुराल थी। उनका बालपन सोरो मे बीता। वही पर गुरु नरसिंह की पाठशाला मे उन्होने विद्याध्ययन किया। गृहस्थ होकर सोरो मे ही रहे। इस मत की पुष्टि मे रामपुर, बदरिया तथा तारी गाँवो, नरसिंह-मदिर, तुलसी के गृह-स्थान, सीता-राम-मदिर, नरसिंह एव नददास के वशजो, और कतिपय जनश्रुतियो की साक्षी भी दी जाती है।

प० रामनरेश त्रिपाठी, डॉ० दीनदयालु गुप्त, डॉ० रामदत्त भारद्वाज, डॉ० राजाराम रस्तोगी आदि सोरो-सामग्री को प्रामाणिक मानते हुए सोरो या सूकरखेत को तुलसी का जन्म-स्थान मानते हैं। प० चद्रबली पाडे, आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, डॉ० भगवतीप्रसाद सिंह आदि उस सामग्री को सदेह की दृष्टि से देखते हैं। डॉ० माताप्रसाद गुप्त की छानबीन का निचोड है कि "वह समस्त सामग्री न केवल बहिरग और अतरग परीक्षाओ से अप्रामाणिक सिद्ध होती है, वरन् कवि के द्वारा किये हुए आत्मोल्लेखो के भी प्रतिकूल जाती है। इसलिए यह प्रकट है कि किसी भी अश में उसका उपयोग कवि के जीवन-वृत्त के निर्माण मे नही किया जा सकता।"[१]

(ख) **सोरो-इतर बाह्य साक्ष्य** डॉ० रामदत्त भारद्वाज ने अधिकारपूर्वक कहा है कि यदि एटा बदायूँ जिलो से प्राप्त 'सोरो-सामग्री' को अलग रख दिया जाए तो भी ऐसी प्रचुर सामग्री भारत के विभिन्न कोनो मे विद्यमान है जो सोरो-सामग्री का समर्थन करती है।[२] वह सामग्री है

(१) **श्री गुसाईं जी के सेवक चारि अष्टछापी तिनकी वार्ता** मे बतलाया गया है कि नददास सनाढ्य सुकुल थे, और तुलसीदास के छोटे भाई थे।

(२) प्रियादास-रचित 'भक्तमाल'-टीका (स० १७६९) पर लिखित **'भक्तिरसबोधिनी'** (स० १८९४) मे सेवादास ने कहा है कि तुलसीदास भादो की अर्धरात्रि मे अपनी पत्नी रत्नावली से मिलने के लिए गगा पार करके बदरी गये थे।

(३) **श्री अष्टछाप की वार्ता** मे लिखा है कि नददास सनाढ्य ब्राह्मण, रामपुर-निवासी और तुलसीदास के छोटे भाई थे।

(४) गोकुलनाथ के **वचनामृतों** से स्पष्ट है कि जब नददास विटठलनाथ के सेवक बने थे तब तुलसीदास ने उनसे मतभेद प्रकट किया था।

(५) **बावन वचनामृत** से प्रकट है कि तुलसीदास के भाई नददास रामपुर-निवासी थे।

१. तुलसीदास, पृ० १५१-५२
२. गोस्वामी तुलसीदास, पृ० २४७-५४

वे वल्लभ सप्रदाय मे दीक्षित हुए। तुलसी ने उन्हे कृष्ण-भक्ति से हटाकर राम-भक्ति की ओर ले जाना चाहा।

(६) अष्टसखामृत मे कहा गया है कि कृष्ण-भक्त नददास राम-भक्त तुलसीदास के छोटे भाई थे। वे सनाढ्य सुकुल और रामपुर के निवासी थे। उन्होंने रामपुर का नाम बदलकर श्यामपुर कर दिया था और स्वय कृष्ण-भक्त हो गये थे।

(७) दो सौ बावन वैष्णव वार्ता मे विदित होता है कि नददास तुलसीदास के छोटे भाई थे। वे ब्राह्मण थे। उन्होने तुलसी को गोवर्धननाथ के दर्शन राम-रूप मे कराये, उनको विट्टलनाथ से मिलाया। तुलसी ने विट्ठलनाथ को साष्टाग प्रणाम नहीं किया, उनके पुत्र और पुत्रवधू रघुनाथ-जानकी को साष्टाग दडवत किया।

(८) सप्रदायकल्पद्रुम मे विट्ठलनाथ भट्ट ने लिखा है कि तुलसीदास सं० १६२० के लगभग व्रज मे और गोवर्धनधारी के दर्शन के लिए गये। उनकी इच्छा के अनुसार भगवान् ने राम-रूप मे दर्शन दिया। उन्होने विट्ठलनाथ से शरण-मत्र लेना चाहा, परतु विट्ठलनाथ ने उन्हें रामभक्त समझकर उनको अपने पुत्र रघुनाथ के पास भेज दिया।

(९) भक्तिविलास मे महादेवप्रसाद त्रिपाठी ने कहा है कि तुलसी की गर्भ-स्थिति तारी मे हुई थी।

(१०) भारतेंदु हरिश्चद्र ने 'भक्तमाल' मे नददास को तुलसीदास का अनुज बताया है।

(११) पश्चिमोत्तर-प्रात के ऐतिहासिक विवरण मे जनश्रुति के आधार पर लिखित है कि तुलसीदास सोरो (परगना अलीगज, जिला एटा) के निवासी थे।

(१२) इम्पीरियल गजेटियर का कथन है कि अकबर के शासन-काल मे तुलसीदास ने सोरो से आकर राजापुर की स्थापना की।

(१३) बाँदा के डिस्ट्रिक्ट गजेटियर मे भी बतलाया गया है कि तुलसीदास सोरो के रहने वाले थे।

(१४) एफ० एस० ग्राउज ने लिखा है कि तुलसीदास ने सूकरखेत (सोरो) मे शिक्षा पायी। उन्होने 'भक्तिसिंधु' का हवाला देकर बताया है कि तुलसी के पिता का नाम आत्माराम था।

(१५) जार्ज ग्रियर्सन ने जनश्रुति के आधार पर कुछ दोहे उद्धृत करके तुलसीदास के पिता, माता, श्वसुर, पत्नी, और पुत्र के रूप मे क्रमश आत्माराम, हुलसी, दीनबधु पाठक, रत्नावली तथा तारक का उल्लेख किया है।[1]

(१६) मिश्रबधु आदि आलोचको तथा रामेश्वर भट्ट, ज्वालाप्रसाद मिश्र आदि अनेक टीका-

---

१. दुबे आतमाराम है पिता नाम जग जान।
माता हुलसी कहत सब तुलसी के सुन कान॥
प्रह्लाद उद्धरए नाम करि गुर को सुनिये साधु।
प्रकट नाम नहिं कहत जग कहे होन अपराधु॥
दीनबधु पाठक कहत ससुर नाम सब कोइ।
रत्नावलि तिय नाम है सुत तारक गन होइ॥

कारो ने भी तुलसी को आत्माराम-हुलसी का पुत्र और रत्नावली का पति माना है।

अनेक समीक्षको ने इन कथित साक्ष्यो का प्रत्याख्यान किया है। उसका साराश यह है कि प्रथम दस अनुच्छेदो मे परिगणित रचनाओ की प्रामाणिकता सदिग्ध है, ग्यारहवें मे पद्रहवें तक का साक्ष्य जनश्रुतियो पर अवलबित है जो स्वत प्रमाण नही है, सोलहवें अनुच्छेद मे निर्दिष्ट आलोचक और टीकाकार गड्डलिका-प्रवाह मे वह गये है—एक जनश्रुति प्रसारित हो गयी और वे आँख मूंद कर लकीर पीटने लगे।

(ग) **आत्मकथात्मक उल्लेख** तुलसीदास की निम्नाकित पक्तियो के आधार पर उनके जन्म और वाल्यकाल का सबध सोरो-क्षेत्र से स्थापित किया गया है[1]

१ तुलसी तिहारो घर जायऊ है घर को।[2]
२ जो पहुंचाव रामपुर तन अवसान।[3]
३ वरु वारहि वार सरीर धरौ रघुवीर को ह्वै तव तीर रहौगो।[4]
४ यह भरतखड समीप सुरसरि थल भलो सगति भली।[5]

डॉ० भारद्वाज की मान्यता है कि तुलसी (पहली पक्ति मे निर्दिष्ट) जिस घर के घर-जाये हैं वह घर राम का है, अर्थात् रामपुर है, यह वात दूसरी पक्ति से समर्थित है। यह 'रामपुर' अयोध्या का ज्ञापक नही हो सकता, क्योकि तीसरी और चौथी पक्तियो से उसका गगा-तट पर स्थित होना सूचित होता है। "जब घर के गगा-तट को त्यागकर अनेक गिरि-काननो मे घूमने से भी शाति न मिली तव उन्हे कुछ पश्चात्ताप हुआ होगा।[6] यही कारण है कि उन्होने विरक्त होकर स्थायी निवास के निमित्त गगा-तटस्थ काशी का ही मनोनीत[7] किया।"[8] रामपुर सोरो से लगभग दो मील की दूरी पर गगा के किनारे है। अत सोरो-क्षेत्र के अतर्गत रामपुर ही उनका जन्मस्थान है।

उक्त पक्तियो से रामपुर-ग्राम के जन्मस्थान होने की वात प्रमाणित नही होता। मैं समझता हूँ कि देहावसान के वाद 'रामपुर' पहुँचने से तुलसी का अभिप्राय सालोक्य-मुक्ति से है। **'रामधाम'**[9], **'निजधाम'**,[10] **'ममधाम'**[11] आदि की भाँति ही **रामपुर** का अर्थ

१. देखिए—गोस्वामी तुलसीदास, (डॉ० रामदत्त भारद्वाज), पृ० १६१-६३, २५५
२. कवितावली, ७।२०
३. वरवैरामायण, ६५
४. कवितावली, ७।१४७
५. विनयपत्रिका, १३५।१
६. तृषावत सुरसरि विहाय सठ फिरि-फिरि विकल अकास निचोयो।—विनयपत्रिका, २४५।३
७. चेरो राम राय को सुजस सुनि तेरो हरि
पायँ तरि आय रह्यौं सुरसरि तीर हौं।—कवितावली, ७।१६६
जीबे की न लालसा दयालु महादेव मोहिं
मालुम है तोहि मरिवेई को रहत हौं।—कवितावली, ७।१६७
८ गोस्वामी तुलसीदास, पृ० १६३
९. राम धामदा पुरी सुहावनि।—रामचरितमानस, १।३५।२
१०. राम वालि निज धाम पठावा।—रामचरितमानस, ४।११।१
११. मम धामदा पुरी सुखरासी।—रामचरितमानस, ७।४।४

भी वैकुंठ है। गंगाविषयक कथन केवल काशी-माहात्म्य के द्योतक हैं

(घ) कवि की भाषा का साक्ष्य पं० रामनरेश त्रिपाठी का मत है कि तुलसी ने ऐसे बहुत-से शब्दों और मुहावरों का प्रयोग किया है जो सोरों में आमतौर से प्रचलित हैं, जैसे—तायो,[1] ओर को[2] भौंरा-चकडोरि[3], कुटिल कीट[4], तिजरा को सो टोटक[5] आदि। तायो का अर्थ है—जाँचा। सोरों की बोलचाल में इसका आज भी प्रचलन है, राजापुर आदि में इस क्रिया का प्रयोग गरम करने के अर्थ में किया जाता है। सोरों में ओर को का अर्थ है—अंत का। राजापुर-क्षेत्र में उसका अर्थ है—आदि, आरंभ, जैसे—'ओर-छोर' में। भौंरा-चकडोरी का सोरों में बड़ा प्रचार है। अयोध्या, बनारस या राजापुर में इन खेलों का प्रचार शायद ही है। कुटिल कीट केकड़े की जाति का एक कीड़ा है। सोरों में उसे 'कुटीला' कहते हैं। उसके जन्मते ही उसकी माँ मर जाती है। तुलसी के जन्म के समय भी उनकी माता का देहांत हो गया होगा। सोरों में तिजरा का अर्थ तिजारी-ज्वर नहीं है, यह पसली चलने का एक रोग है। इसके निवारण के लिए टोटका किया जाता है।[6]

उन्होंने आगे कहा है कि सोरों ब्रज, राजपुताना, पंजाब, काठियावाड़ और गुजरात के निवासियों का मुख्य तीर्थस्थान है। उन प्रांतों के बहुत-से शब्द सोरों का बोलचाल में स्वभावतः भर गये हैं। तुलसी ने उन परिचित शब्दों का सहज-प्रयोग किया है। उदाहरण के लिए—ब्रज में व्यवहृत मायजायो[7] (माँ से उत्पन्न), मारवाड़ी के मैन[8] (मोम), मोखे[9] (गवाक्ष), म्हाको[10] (मेरा), दारू[11] (बारूद), नारि[12] (गरदन), और गुजराती के मौंगी[13] (चुप), मूकी[14] (छोड़ी), बियो[15] (दूसरा) आदि इसी प्रकार के प्रयोग हैं। ये उनके घरू शब्द थे जो उनकी विचार-धारा में आप-से-आप निकल पड़े थे।[16]

---

१ स्रवन नयन मन मग लगे सब थलपति तायो।—विनयपत्रिका (ना० प्र० सभा), २७६।५
'थलपति तायो' का अत्यंत सुंदर पाठांतर है—थल पतितायो (गीता प्रेस का संस्करण)

२. हौं तौ बिगरायल ओर को बिगरो न बिगरिये।—विनयपत्रिका (सं०विश्वनाथप्रसाद मिश्र),२७१।२
'ओर' का पाठांतर है—और, गीता प्रेस आदि के संस्करण

३. खेलत अवध खोरि गोली भौंरा चकडोरि—गीतावली, १।४३।३

४ तनु जन्यो कुटिल कीट ज्यों तज्यो मातु पिता हू।—विनयपत्रिका, २७५।२

५. स्वारथ के साथिन्ह तज्यो तिजरा को सो टोटक—विनयपत्रिका, २७२।२

६. देखिए—तुलसीदास और उनका काव्य, पृ० ७२-७३

७. तोसे माय जायो को—विनयपत्रिका, १७९।३

८. मैन के दसन कुलिस के मोदक—कृष्णगीतावली, ५१

९ नयन बीस मंदिर के से मोखे।—गीतावली, ५।१२

१० मदमति कंत सुनु मंत म्हाको।—कवितावली, ६।२१

११ काल तोपची तुपक महि दारू अनय कराल।—दोहावली, ५१५

१२. नियत न नाई नारि चातक घन तजि दूसरहि।—दोहावली, ३०५

१३ सुनि खग कहत अंब मौंगी रहि समुझि प्रेमपथ न्यारो।—गीतावली, २।६६।५

१४. मन मानि कुबानि गलानि न मूकी।—कवितावली, ७।८८

१५. कहाँ रघुबीर सो बीर बियो है।—कवितावली, ६।५३

१६. तुलसीदास और उनका काव्य, पृ० ७३-७५

उपर्युक्त मत के प्रतिवाद मे कई तर्क दिये जा सकते हैं ·

(१) त्रिपाठीजी ने जिन पुस्तको से उदाहरण दिये हैं वे सब-की-सब ब्रजभाषा की रचनाएँ हैं। उद्धृत शब्द चाहे जिस स्रोत से आये हो, वे ब्रजभाषा मे प्रचलित थे। किसी भी क्षेत्र का ब्रजभाषा-कवि उनका निर्बाध प्रयोग कर सकता था। वे सभी प्रयोग ब्रज क्षेत्र तक ही परिसीमित नही हैं। बारूद का अर्थ वाचक 'दारू' फारसी शब्द है। मोम के अर्थ मे 'मैन' का प्रयोग मलिक मुहम्मद जायसी ने भी किया है।[1] गोली भौंरा-चकडोरि पर सोरो या ब्रज का एकाधिकार नही है। राजापुर के समर्थक इन खेलो को वहाँ का ही विशिष्ट खेल बतलाते हैं। गोली और भौंरा तो उत्तर-प्रदेश के पूर्वी जिलो मे खूब प्रचलित हैं। अतएव इस प्रकार के शब्द तुलसी के जन्म-स्थान के निश्चायक प्रमाण नही हैं।

(२) उनका कथन है कि "तुलसीदास ने ब्रजभाषा और अवधी-मिश्रित (ब्रज-) भाषा मे सफलता के साथ रचना की है, यह भी उनके ब्रज और अवध की सरहद पर होने का प्रबल प्रमाण है।"[2] यह कथन तर्कसगत नही है। वास्तविकता यह है कि तुलसी के युग मे ब्रजभाषा हिंदी की प्रतिष्ठित काव्य-भाषा थी। वैष्णव-भक्तिधारा ने उसे उत्तर-भारत की राष्ट्रभाषा का पद प्रदान कर दिया था। तुलसी ने युगधर्म का पालन किया और ब्रजभाषा मे भी काव्य-रचना की। ब्रज से दूरवर्ती प्रदेशो के बहुत से कवियो ने भी ब्रजभाषा मे सफल रचना की है। भिखारीदास ने तो बल देकर कहा है कि ब्रजभाषा मे रचना करने के लिए ब्रज-वासी होना आवश्यक नही है।[3] बगाल और आसाम तक के कवियो द्वारा 'ब्रजबुली' का प्रयोग[4] ब्रजभाषा की व्यापकता सूचित करता है।

(३) त्रिपाठी जी ने तुलसी-साहित्य मे अरबी-फारसी-शब्दो के स्वच्छद प्रयोग को भी उनके पश्चिम-प्रात-निवासी होने का प्रमाण माना है। "सोरो और उसके आसपास के ज़िलो मे मुसलमानो की बस्तियाँ बहुत हैं। इसी से अरबी-फारसी के जितने शब्द पश्चिमी हिंदी मे मिलते हैं, उतने पूर्वी हिंदी मे नही।"[5] अत तुलसी सोरो-वासी थे, यह तर्क निराधार है। तुलसी के 'लघु भ्राता' कहे जाने वाले नददास और सूरदास आदि अन्य कवि तो जीवन-भर 'पश्चिम-प्रात-निवासी' रहे। इस हिसाब से उनके साहित्य मे अरबी-फारसी शब्दो का अधिक प्रयोग होना चाहिए था, किंतु ऐसा हुआ नही। तुलसी का अधिकाश जीवन निर्विवाद रूप से पूर्वी प्रदेश मे बीता था, फिर भी उन्होने ऐसे शब्दो का बहुतायत से प्रयोग किया है। डॉ० राजाराम रस्तोगी के अनुसार नददास के काव्य मे अरबी-फारसी शब्दो के

---

१. देखिए—पदमावत, १६६।३, २७३।५
२ तुलसीदास और उनका काव्य, पृ० ७३
३ ब्रजभाषा हेत ब्रजबास ही न अनुमानौ
ऐसे ऐसे कविन की बानी हू सों जानिए।—काव्यनिर्णय, १।१६
४. देखिए—ब्रजबुली, डॉ० कनिका विश्वास
५. तुलसीदास और उनका काव्य, पृ० ७५

कम प्रयोग का "कारण है वल्लभ-सप्रदाय का विशेषता, कवि की रुचि और स्वभाव।"[1] ठीक है। इसी सिद्धात को तुलसी पर भी लागू कर दीजिए। अपनी सप्रदाय-निरपेक्षता, रुचि और स्वभाव के कारण उन्होने शब्दों के प्रयोग मे सर्वतन्त्र-स्वतन्त्रता से काम लिया। सोरो से उनका अविनाभाव-सम्बध नही है। "मुसलमानो की बस्तियो मे रहने के कारण तथा अपने भाषा-सबधी ज्ञान के कारण उनके स्वभाव मे एक मृदुता होगी, फलत उन्होने अरबी-फारसी का प्रचुर प्रयोग किया।"[2] यह सभावना सिद्ध नही होती। नददास के स्वभाव मे 'एक मृदुता' क्यो नही आयी ? यदि उन पर वल्लभ-सप्रदाय का प्रभाव था, तो तुलसी पर 'नाना-पुराणनिगमागम' का प्रभाव कम नही था। वस्तुत तुलसी-साहित्य मे अरबी-फारसी शब्दो के प्रयोग का कारण है मुसलमानी शासन और सस्कृति का व्यापक प्रभाव। पूर्वी प्रदेश भी मुस्लिम साम्राज्य का अग था। फारसी उनकी राजभाषा थी। उसकी प्रचुर शब्दावली का लोक मे व्यवहार होता था। तुलसी ने निस्सकोच भाव से उसे ग्रहण किया।

(४) कल्पना-प्रवण गवेषको ने तुलसी की अनेक उक्तियो मे से मुद्रालकार के नाम पर सोरो-समर्थक निर्देश ढूंढ निकाले हैं। उनके अनुसार—'पहुँचे दूत रामपुर पावन'[3] मे तुलसी ने अपने जन्म-स्थान (या ननिहाल) रामपुर गाँव का उल्लेख कर दिया है, 'प्रनवउँ दीनबंधु दिनदानी'[4] मे अपने ससुर दीनबधु पाठक को प्रणाम किया है, 'सो मो सन कहि जात न कैसे'[5] मे 'सन' के द्वारा अपने सनाढ्य होने का सकेत कर दिया है। डॉ० देवकीनदन श्रीवास्तव की मान्यता है कि 'इस पद्धति पर राजापुर विषयक जीवनवृत्त की अपेक्षा सोरो-विषयक जीवन-वृत्त की अधिक पुष्टि होती है, परतु इस पद्धति की वैज्ञानिक सार्थकता एव उपयोगिता असदिग्ध नही कही जा सकती।'[6] मेरे विचार से, यह उडान सोरो-पक्ष की पुष्टि करती ही नही है, अपितु उसे हास्यास्पद बनाती है। इस प्रकार का अनुसधान शश-विषाण के अन्वेषण से कम निरर्थक नहीं है।

सोरो-पक्ष की समग्र सामग्री और तर्क-समूह का तटस्थ दृष्टि से आलोचन करने के उपरात मैं इसी निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि ऐसा कोई अकाट्य प्रमाण नही है जिसके बल पर सोरों अथवा रामपुर को तुलसी की जन्मभूमि मान लिया जाए। यह निष्कर्ष उनकी जन्मभूमि बताये जाने वाले सभी स्थानो पर लागू होता है। अतएव वर्तमान परिस्थिति मे निश्चयपूर्वक यह कहना सभव नहीं है कि तुलसीदास का जन्म किस स्थान पर हुआ था। इतना अवश्य कहा जा सकता है कि सोरो का पक्ष अन्य पक्षो की तुलना मे बलहीन नही

१. तुलसीदास जीवनी और विचारधारा, पृ० १११
२. तुलसीदास जीवनी और विचारधारा, पृ० ११२
३. रामचरितमानस, १।२९०।१
४. रामचरितमानस, १।१५।२
५. रामचरितमानस, १।३।६
६. तुलसीदास की भाषा, पृ० ३६७

है। सोरों-पक्ष की सामग्री को फूंक मारकर उडाया नही जा सकता। उसमे सत्य का कुछ-न-कुछ अश अवश्य होना चाहिए। अत उस विपुल सामग्री और राजापुर तक में पायी जाने वाली किवदतियो को दृष्टि मे रखते हुए कम-से-कम इतना मान लेना बुद्धि-सगत होगा कि सोरो मे भी तुलसी ने कुछ काल तक निवास अवश्य किया था। यह बात ध्यान देने योग्य है कि उनके साहित्य में इतने स्थानो का उल्लेख हुआ है, किंतु उनकी जन्मभूमि के प्रबलतम दावेदारो 'राजापुर' और 'सोरो' का नही।

जाति और आस्पद

तुलसीदास ब्राह्मण-जाति मे उत्पन्न हुए थे। सभी प्रकार के वहिस्साक्ष्य इस तथ्य का समर्थन करते हैं। अतस्साक्ष्य के आधार पर कवि के आत्मोल्लेख भी इसकी पुष्टि करते हैं। इसके विरोध मे कोई साक्ष्य नही है। तुलसी की उपजाति, आस्पद या गोत्र के विषय मे कोई निर्णायिक साक्ष्य नही मिलता। विभिन्न विद्वानो ने विभिन्न स्रोतो के अनुसार विभिन्न मत व्यक्त किये हैं।[1]

सोरो-सामग्री के अनुसार वे सनाढ्य शुक्ल थे। रानी कँवल कुँवरि ने भी उन्हे 'सनौडिया' कहा है। राजापुर-पक्ष के पोषक ग्रथ 'मूलगोसाईंचरित' के अनुसार वे सरयू-पारीण दूबे थे और पराशरगोत्री थे। प० रामगुलाम द्विवेदी, प० सुधाकर द्विवेदी, डॉ० ग्रियर्सन, प० रामचद्र शुक्ल आदि ने भी उन्हे सरयूपारीण माना है। रघुवरदास-रचित 'तुलसीचरित' के अनुसार वे सरयूपारीण मिश्र थे। तुलसी साहब ने अपने 'घटरामायन' मे उनको कान्यकुब्ज बतलाया है। मिश्रबधु, शिवनदन सहाय, भगीरथप्रसाद दीक्षित आदि इसी पक्ष के समर्थक हैं। लोगो ने अपने मत की अतस्साक्ष्य द्वारा पुष्टि करने का भी अध्यवसाय किया है। परतु सारे प्रयत्न निष्फल हैं। किसी पक्ष मे अखडनीय प्रमाण नही हैं। और, गोत्र-आस्पद की खोज-बीन भी भूसी कूटने के समान है।

माता-पिता

सोरो-सामग्री के अनुसार तुलसी की माता का नाम हुलसी और पिता का नाम आत्माराम शुक्ल था। राजापुर-पक्ष की कथा-प्रथा मे आत्माराम को दूबे बतलाया गया है। सामान्य परपरा मे आत्माराम और हुलसी के नाम ही प्रचलित रहे हैं। 'हुलसी' की अधिक प्रसिद्धि रही है। यह नाम 'मूलगोसाईंचरित' और 'जनश्रुतियो' मे भी मिलता है। इसकी ख्याति का सभावित कारण यह है कि तुलसी ने अपनी एक चौपाई मे 'हुलसी' का उल्लेख किया है।[2] परतु, निश्चयपूर्वक यह नही कहा जा सकता कि 'हुलसी' शब्द मे तुलसी ने अपनी माता का निर्देश किया है। इस सबध मे विशेष बात यह है कि किसी परपरा, जन-श्रुति अथवा किसी लिखित रचना मे तुलसी की माता के लिए 'हुलसी' के अतिरिक्त कोई अन्य

---

१. देखिए—तुलसीदास, पृ० १६१-६४, गोस्वामी तुलसीदास (डॉ० भारद्वाज), पृ० २८४-८७, तुलसीदास जीवनी और विचारधारा, पृ० ११६-१८

२. रामहि प्रिय पावनि तुलसी सी। तुलसिदास हित हिय हुलसी सी ॥—रामचरितमानस, १।३१।६

नाम नही मिलता। इसके विरुद्ध उनके पिता के नामातर भी पाये जाते हैं। रघुवरदास ने उनके पिता का नाम मुरारी मिश्र दिया है और 'भविष्यपुराण' मे वे अनूप शर्मा के पुत्र कहे गये हैं। आत्माराम भी किसी के अनुसार दूबे थे, और किसी के मत से शुक्ल। ये सभी नाम सदिग्ध हैं। हाँ, सापेक्ष दृष्टि से 'हुलसी' नाम कम अविश्वसनीय है।

बचपन की क्लेश-कथा

'तुलसीचरित' मे उनके बाल्यकाल की कष्ट-कहानी नही मिलती, उन्होने बहुत समय तक अपने माता-पिता के साथ और फिर उनसे अलग भाई-बहनो के साथ सुखमय जीवन व्यतीत किया। यह बात कवि की आत्मकथात्मक उक्तियो के सर्वथा विरुद्ध है। 'मूलगोसाईंचरित' मे कवि की स्वकथित जीवनी के साथ सगति बिठाने का प्रयास किया गया है। पाँचवें दिन माता का स्वर्गवास हो गया। दासी मुनियाँ की सास चुनियाँ बालक का पालन करती रही। छठे वर्ष वह दिवगत हो गयी। तुलसी के पिता ने उन्हे ग्रहण करने से इन्कार किया। अत वे अनाथ हो गये और दर-दर ठोकरें खाते फिरे।

डॉ० गुप्त की धारणा है कि सोरो-सामग्री मे तुलसी के सुखमय बाल-जीवन का वर्णन है, इस वर्णन तथा कवि की आत्मकथा मे आकाश-पाताल का अतर है, और दोनो का सामजस्य किसी प्रकार भी सभव नही है। उनका कथन है—"सोरो की सामग्री के अनुसार सोरो मे तुलसीदास का एक पक्का मकान था। उनका एक अत्यत समावृत और बडा परिवार था जिसके अधिकतर लोग यद्यपि सोरो के बाहर रामपुर मे रहा करते थे, किंतु तुलसीदास के परिवार के साथ स्नेह रखते थे। तुलसीदास की शिक्षा-दीक्षा का प्रबध अच्छा था।"[१] यह सोरो-पक्ष का निष्पक्ष और यथार्थ निरूपण नही है। उस पक्ष के प्रौढ समर्थक डॉ० रामदत्त भारद्वाज ने 'तुलसीप्रकास' के आधार पर लिखा है कि "अविनाश राय के साक्ष्य के अनुसार तुलसीदासजी केवल दस मास के थे जब उनके माता-पिता का देहात हुआ था। तुलसीदासजी का बचपन कष्टमय रहा। उन्हे अपनी जीविका के लिए भिक्षा तक माँगनी पडी। यद्यपि उनके माता-पिता खाते-पीते थे तथापि माता-पिता तथा चाचा जीवाराम की मृत्यु के पश्चात् आय का कोई साधन न रह गया था। उनकी दादी उन्हें अवश्य राम का भरोसा देती थी और वे राम के नाम पर भिक्षा-वृत्ति करते थे।"[२] 'तुलसीप्रकास' मे कहा गया है कि वे सोरो मे और कभी-कभी अपने जन्म-स्थान रामपुर मे जाकर भीख माँगा करते थे।

परतु, उपर्युक्त रचनाओ की प्रामाणिकता सदिग्ध है। ऐसा प्रतीत होता है कि समझदार लेखको ने तुलसी की आत्मकथा का आश्रय लेकर उनकी स्वमन कल्पित जीवनी प्रस्तुत करने का उद्योग किया है। अत उनका उतना ही अश मान्य है जितना कवि के स्वकथित जीवन-वृत्त से मेल खाता है।

---

१. तुलसीदास, पृ० ११३-१४

२. गोस्वामी तुलसीदास, पृ० २९०-९१

तुलसीदास का मूल नाम

रघुबरदास ने 'तुलसीचरित' मे कहा है कि मुरारी मिश्र के कुल गुरु तुलसीदास ने उनके पुत्र का नामकरण किया—तुलाराम, और प्रेमवश उसका नाम रखा तुलसी। यही 'तुलाराम' आगे चलकर तुलसीदास के नाम से विख्यात हुए। वेणीमाधवदास ने 'मूलगोसाईंचरित' मे तुलसीदास के नामकरण-सस्कार का उल्लेख नही किया। उनके अनुसार, जब शिव की प्रेरणा से नरहर्यानद हरिपुर पहुँचे तब उन्होने बालक (तुलसी) को 'रामबोला' कहकर सबोधित किया। 'तुलसीप्रकास' मे अविनाशराय ने कवि की आत्मकथा का ध्यान रखा है। उनका कहना है कि हुलसी विष्णु-भक्त थी, वे नियमित रूप से तुलसी-पूजा किया करती थी, इसलिए गुरु ने शिशु का नाम तुलसी रखा, और जब निस्सहाय हो जाने पर तुलसी राम का नाम लेकर भीख माँगने लगे तब लोग उन्हे 'रामबोला' कहने लगे। सदिग्ध रचना मे निबद्ध होने पर भी यह कल्पित कथा विश्वसनीय जँचती है, क्योकि इसके मूल सूत्र कवि के आत्मोल्लेखो के अनुरूप हैं।

गुरु और शिक्षा

विभिन्न लेखको ने विभिन्न व्यक्तियो को तुलसीदास के गुरु होने का श्रेय प्रदान किया है। पाँच नाम हमारे सामने हैं—राघवानद, जगन्नाथदास, शेषसनातन, नरसिंह और नरहरि। तुलसी साहब ने मूल ही नदारद कर दिया है। न रहेगा बाँस, न बजेगी बाँसुरी। उनके अनुसार, तुलसी ने अलौकिक रीति से 'अगम का सौदा' कर लिया, हृदयस्थित गुरु (ईश्वर) ने उन्हे राह बतायी, उन्होने शरीरधारी गुरु किया ही नही।[1] तुलसी के आत्मकथन के विरुद्ध होने के कारण यह दावा नितात तिरस्करणीय है। 'भविष्यपुराण' मे राघवानद को उनका गुरु कहा गया है। कहा जा चुका है कि यह कथन प्रमाण-समर्थित नही है। विलसन ने किसी अपुष्ट किवदती के आधार पर जगन्नाथदास को उनका गुरु बतलाया है। तुलसी के कनिष्ठ समसामयिक नाभादास के शिष्य जगन्नाथदास को तुलसी का गुरु मानना अनुपयुक्त है। शेषसनातन के विषय मे 'मूलगोसाईंचरित' का साक्ष्य सदिग्ध है।

तुलसीदास के गुरु के सबध मे जो व्यवस्थित वृत्त बहिस्साक्ष्य के रूप मे उपलब्ध है उसका अधिकाश उनके आत्मकथन से अनुप्राणित दिखायी देता है। उन्होने 'नररूप हरि' और 'सूकरखेत' का उल्लेख किया है।[2] 'नररूप हरि' के आधार पर नरहरि या नरहर्यानद और नरसिंह या नृसिंह नामो की उद्भावना की गयी है। तुलसी से सबधित 'सूकरखेत' की दो भिन्न स्थितियाँ बतलायी गयी हैं— (क) एटा जिले मे गगा के किनारे और (ख) गोडा जिले मे सरयू-घाघरा के सगम के निकट।

सोरो-सामग्री के अनुसार तुलसीदास के गुरु नरसिंह (या नृसिंह) थे। सोरो मे

---

१ सवत सोला सै थे चौदा। ता दिन भया अगम का सौदा ॥—घटरामायन, भाग २, पृ० १८६
कज गुरू ने राह बताई। देह गुरू से कछु नहिं पाई ॥—घटरामायन, भाग २, पृ० १८७

२. रामचरितमानस, १।१। सोरठा ५, १।३०

जहाँ नरसिंह-मंदिर है वहीं पर उनकी पाठशाला थी। उसी में तुलसी ने अपने लघु-भ्राता नंददास के साथ विद्याध्ययन किया। 'तुलसीप्रकास' में कहा गया है कि भिखमंगे रामबोला को गुरु नृसिंह करुणापूर्वक अपने घर लिवा ले गये और उनके भोजन-वस्त्र आदि की व्यवस्था की। पितामही से अनुमति लेकर तुलसी ने पढ़ना आरंभ किया। वे व्याकरण, कोश, काव्य, गणित, संगीत, इतिहास-पुराण और दर्शनशास्त्र के प्रवीण पंडित हो गये।

'मूलगोसाईंचरित' में इससे भिन्न कथा मिलती है। रामगिरि के नरहरि स्वामी अथवा नरहर्यानंद शिव की प्रेरणा से हरिपुर पहुँचे और रामबोला को साथ लेकर अयोध्या चले गये। पंच-संस्कार करके उसे राममंत्र दिया। अपने शिष्य को विद्या पढ़ाने लगे, उसको पाणिनि-सूत्र घोखाया। दस महीने के बाद वे शिष्य-सहित सरयू-घाघरा के संगम के समीप स्थित सूकरखेत[1] चले आये। वहाँ पर पाँच वर्ष रहे। जब तुलसी पढ़कर 'सुबोध' और 'प्रबीन' हो गये तब उन्हें 'रामचरितमानस' की गूढ़ कथा बार-बार सुनायी और समझायी। बालक तुलसी ने सुनकर तत्त्व-ग्रहण किया। तदनंतर गुरु-शिष्य काशी पहुँचे। निगमागम के पारंगत आचार्य शेषसनातन के आग्रह पर नरहरि ने तुलसी को उन्हें सौंप दिया। उनसे वेद-शास्त्र, इतिहास-पुराण और काव्य-कला का अध्ययन करके तुलसी महान् विद्वान् हुए। इस प्रसंग में यह भी उल्लेखनीय है कि इन्हीं शेषसनातन के शिष्य होने के नाते नंददास तुलसीदास के गुरुभाई थे।

इस संबंध में डॉ० माताप्रसाद गुप्त की समीक्षा युक्तियुक्त है—"नरहरि अथवा उसके पर्यायवाची नामों के अनेक महात्मा तुलसीदास के समय में और कुछ पूर्व मिलते हैं। अकेले नाभादास ने ही इस नाम के छः संतों का उल्लेख किया है, और इनमें तीन तो नाभादासजी के अनुसार रामानंदजी की शिष्य-परंपरा के अंतर्गत ही हुए थे, जिससे ज्ञात होगा कि 'नरहरि' उस युग का एक बहुप्रचलित नाम था। फलतः 'नररूप हरि' से किन्हीं 'नरहरि' या 'नरसिंह' नामक तुलसीदास के गुरु का संकेत लेने पर भी हमारी वास्तविक ज्ञान-वृद्धि नहीं होती है और न 'सूकरखेत' मात्र का उल्लेख मिलने से हमारा कोई विशेष उपकार होता है।"[2]

सांप्रदायिकता की कल्पना

तुलसीदास के विषय में यह किंवदंती चल पड़ी थी (और अब भी कुछ आलोचक उसे सच माने हुए हैं) कि वे रामानंदी थे। किसी मौखिक परंपरा का अनुसरण करते हुए डॉ० ग्रियर्सन ने तुलसी की गुरु-परंपरा की दो सूचियाँ प्रस्तुत की हैं।[3] उन दोनों के

१. डॉ० भगवतीप्रसाद सिंह ने बताया है कि उक्त सूकरखेत में वाराह मंदिर है। उससे दो सौ गज की दूरी पर नरहरिदास की कुटी है। उनकी शिष्य-परंपरा में आठवीं पीढ़ी पर इस समय (सं० १९९० में) रामअवधदास हैं। परंपरा इस प्रकार है। नरहरिदास के दो शिष्य थे—तुलसीदास रामकिशुनदास। तुलसी के शिष्य केवल बेणीमाधवदास हुए। रामकिशुनदास की परंपरा चलती रही जिसमें रामअवधदास हैं (सरस्वती, जून, १९४३, पृ० २८७)। डॉ० माताप्रसाद गुप्त ने इस परंपरा को अमान्य ठहराया है (तुलसीदास, पृ० १७३)।

२. तुलसीदास, पृ० १७४

३. इन्डियन ऐन्टिक्वेरी, जिल्द २२, १८९३ ई०, पृ० २६६

ही अनुसार तुलसी रामानद की आठवी पीढ़ी में आते हैं। गुरु-शिष्य-परपरा इस प्रकार है १ रामानद, २ सुरसुरानद, ३ माधवानद, ४ गरीबानद (या गरीबदास) ५ लक्ष्मीदास, ६ गोपालदास, ७ नरहरिदास, ८ तुलसीदास। वासुदेवदास-कृत 'रसिक-प्रकाशभक्तमाल' की टीका मे तुलसीदास से सबधित एक गुरु-परपरा दी गयी है जो ग्रियर्सन की उक्त सूचियो से मेल खाती है। 'भविष्यपुराण मे तुलसी को राघवानद का शिष्य और 'रामानदमतेस्थित' कहकर प्रकारातर से उनके रामानदी होने का समर्थन किया गया है। इस मत के पक्ष-पोषण मे अतस्साक्ष्य की कडी भी जोडी जा सकती है, क्योंकि तुलसी-साहित्य मे रामानदी सिद्धातो की बहुधा अभिव्यक्ति हुई है। परतु, तुलसी को रामानद-सम्प्रदाय का अग सिद्ध करने के लिए इतना ही पर्याप्त नहीं है। इसके विरोधी तर्क बहुत अधिक प्रबल हैं।

१ तुलसी ने अनेक आस्तिक सम्प्रदायो से इच्छानुसार ग्राह्य-सिद्धात ग्रहण किये हैं। इसका कारण उनकी सप्रदाय-मुक्तता है, साम्प्रदायिकता नही। २. नाभादास स्वय रामानदी थे। उन्होने तुलसी अथवा उनके कथित गुरु नरहरिदास का रामानद की शिष्य-परपरा मे उल्लेख नही किया। यदि वे रामानदी होते तो नाभादास अपने समसामयिक और 'भक्तमाल के सुमेरु' तुलसीदास का अपने अभीष्ट सप्रदाय के अतर्गत अवश्य उल्लेख करते। ३. ग्रियर्सन की सूचियो, वासुदेवदास की टीका और 'भविष्यपुराण' का साक्ष्य सदिग्ध है। ४ अतस्साक्ष्य से तुलसी की साम्प्रदायिक निष्ठा का समर्थन नही होता।[1] ५ प० रामचद्र शुक्ल का यह कथन यथार्थ है कि तुलसीदास रामानद की वैरागी परपरा मे नहीं जान पडते। उक्त सम्प्रदाय के अतर्गत जितनी शिष्य-परपराएँ मानी जाती हैं, उनमे तुलसी-दासजी का नाम कही नही है। रामानद-परपरा मे समिलित करने के लिए उन्हे नरहरि-दास का शिष्य बताकर जो परपरा मिलायी गयी है, वह कल्पित प्रतीत होती है।[2] रामा-नद-सम्प्रदाय के विशेषज्ञ अनुसधाता डॉ० बदरीनारायण श्रीवास्तव का निष्कर्ष और भी अधिक प्रामाणिक है—"रामानद-सम्प्रदाय के इतिहास का निर्माण करते समय मेरे समक्ष जितनी भी प्रमुख गादियो की परपराएँ आयी उनमे कही भी गोस्वामी तुलसीदास का नाम नही था।"[3]

सोरो-सामग्री के अनुसार तुलसी के गुरु स्मार्त वैष्णव थे।[4] वे राम और हनुमान् के भक्त थे। "गुरुजी की पाठशाला मे हनुमान् जी की प्रतिष्ठा आज भी विद्यमान है। गुरुजी के प्रभाव से तुलसीदास जी भी भगवान् राम और हनुमान् जी के भक्त बन गये।"[5] अतस्साक्ष्य से पुष्ट यह तथ्य निर्विवाद है कि तुलसी के गुरु राम-भक्त थे और उनकी

---

१. "यदि वे किसी रामानदी साधु के शिष्य होते तो 'रामचरितमानस' के प्रारंभ में वे पहले-पहल वाणी और विनायक की स्तुति न करते। वे कहीं न कहीं स्वामी रामानुज या रामानद की प्रार्थना अवश्य करते।"—तुलसीदास और उनका काव्य, पृ० ८५

२. हिंदी-साहित्य का इतिहास, पृ० १३२

३. रामानद सम्प्रदाय तथा हिंदी-साहित्य पर उसका प्रभाव, पृ० ३३७

४. स्मारत वैष्णव सो पुनीत। सकल बेद आगम अधीत ।।—रत्नावलीचरित, ६०

५. गोस्वामी तुलसीदास (डॉ० भारद्वाज), पृ० २६४

राम-भक्ति ने तुलसी को प्रभावित किया, परतु उनकी पाठशाला का सोरो मे स्थित होना विवादग्रस्त है।

गार्हस्थ्य और वैराग्य

जनश्रुतियाँ एक स्वर से इस बात का समर्थन करती हैं कि तुलसीदास का विवाह हुआ था, वे अपनी पत्नी मे आसक्त थे और उसी के उपदेश से वे विरक्त हुए। परतु, कवि की कृतियो एव समकालीन प्रामाणिक रचनाओं में इसका कोई उल्लेख नही मिलता। 'भक्तिरसबोधिनी'[1] से प्रकट है कि उनकी पत्नी बिना पूछे नैहर चली गयी, अतिशय आसक्तिवश वे रात को ही ससुराल पहुँच गये, और लज्जित पत्नी की भर्त्सना से विक्षुब्ध होकर वैराग्य ले लिया।[2] 'तुलसीचरित', 'मूलगोसाईंचरित', 'गोसाईंचरित', 'तुलसी-प्रकास' आदि मे भी यह वृत्त वर्णित है। 'घटरामायन' मे पत्नी-विषयक अतिराग और रस-रग का उल्लेखमात्र है। मूल रूप मे साम्य रखते हुए भी विभिन्न रचनाओ द्वारा पल्लवित विवरण बहुत कुछ भिन्न हैं।

'तुलसीचरित', 'मूलगोसाईंचरित' और 'गोसाईंचरित' मे राजापुर-निवासी तुलसी के पारिवारिक जीवन की कथा है। 'तुलसीचरित' के अनुसार उनके तीन विवाह हुए थे। उनकी प्रथम दो पत्नियाँ भार्गव-पुत्रियाँ थी। तीसरा विवाह कचनपुर के लक्ष्मण उपाध्याय की कन्या 'बुद्धिमति' से हुआ। बुद्धिमती अत्यत सुदरी, गुणवती और शील-वती थी। उसी के उपदेश से तुलसी विरक्त हुए। 'मूलगोसाईंचरित' मे एक ही विवाह का विस्तृत वर्णन है। तुलसी अपने गाँव राजापुर मे राम-कथा कहा करते थे। यमुना-पार स्थित तारपिता गाँव के एक भारद्वाज-गोत्रीय ब्राह्मण[3] उनके सौंदर्य तथा पाडित्य पर रीझ गये। उन्होने हठपूर्वक अपनी कन्या का विवाह (स० १५८३) तुलसी से किया। उनका मन प्राणप्रिया पर लट्टू था। निरतर रस-केलि मे पाँच वर्ष बीत गये। एक दिन पत्नी अपने भाई के साथ चुपके से नैहर चली गयी। तुलसी वियोग न सह सके। किंवदती है कि उन्होने अँधेरी रात मे शव पर चढकर नदी पार की, ससुराल पहुँचे, और साँप को रस्सी समझकर उसके सहारे तिवारे पर चढकर लोगो को पुकारा। सब जाग पडे। पत्नी

---

१ 'भक्तमाल' पर प्रियादास की टीका, स० १७६९

२ निसा सो सनेह बिन पूछे पिता गेह गई
भूलि सुधि देह भजे वाही ठौर आये है।
बधू अति लाज भई रिस सों निकस गई
प्रीति राम नई तन हाड़ चाम छाये हैं।
सुनी जग बात मानो ह्वै गयो प्रभात वह
पाछे पछिताय तजि काशीपुर धाये हैं।
कियो तहाँ वास प्रभु सेवा लै प्रकास कीनौ
लीनों दृढ भाव नेम रूप के तिमाये हैं॥—भक्तिरसबोधिनी, ५००

३ "जनश्रुति इन ब्राह्मण-देवता को दीनबधु पाठक और उनकी कन्या को रत्नावली नाम से जानती है। पर वेणीमाधवदास इस विषय में चुप हैं।"—गोस्वामी तुलसीदास (श्यामसुदरदास), पृ० ३७

ने फटकारते हुए चुटकी ली

> हाड़ माँस को देह मम तापर जितनी प्रीति।
> तिसु आधी जो राम प्रति अवसि मिटिहि भवभीति।[1]

इस झिडकी ने तुलसी को प्रबुद्ध कर दिया। वे उलटे पाँव लौट पडे। पत्नी ने बहुत अनुनय-विनय की, साले ने मनाने के बहुत प्रयत्न किये, परतु वे लौटे नही। निराश पत्नी ने (स० १५८९) शरीर त्याग दिया।

अधिकतर जनश्रुतियाँ उनकी पत्नी को वृद्धावस्था तक जीवित बतलाती हैं। यह भी कहा जाता है कि उसने एक दोहा[2] पति को लिख भेजा था और उन्होने एक दोहा[3] लिखकर उसका उत्तर भी दिया था। एक बार चित्रकूट से लौटते समय वे अनजान मे अपने ससुर के घर आ टिके थे। वहाँ पर पत्नी से भेंट हो गयी थी। उसने साथ चलने की इच्छा व्यक्त की, परतु तुलसी ने ऐसा करना स्वीकार नहीं किया। तब उसने 'खरिया खरी कपूर' वाला दोहा[4] कहा था और उसे सुनकर तुलसी ने अपनी झोली खाली कर दी थी।

सोरो-पक्ष की कृतियो—'दोहा रत्नावली', 'रतनावलीचरित' और 'तुलसीप्रकास' में तुलसी के विवाहित जीवन का विशेष विस्तार से वर्णन किया गया है। उनमे भी दीनबधु पाठक को तुलसी का ससुर और रत्नावली को पत्नी बतलाया गया है। परतु, उनकी ससुराल सोरो के निकट गगा के पार बदरिया (बदरिका या बदरी) गाँव मे बतायी गयी है। उनका दापत्य जीवन सुखमय था। वे पुराण वाँचकर धन और यश कमाते थे। उनके तारापति नाम का एक पुत्र हुआ, किंतु दुर्भाग्यवश उसका स्वर्गवास हो गया। इस एक शोक को छोडकर पद्रह वर्षों तक उनका गृहस्थ-जीवन आनद से बीता। एक बार रत्नावली पति की आज्ञा लेकर भाई के साथ मायके चली गयी। तुलसी ग्यारह दिन बाद कथा बाँचकर घर आये। उनके मन मे रत्नावली के दर्शन की उत्कट अभिलाषा जगी। उन्होने आधी रात को तैरकर गगा पार की। ससुराल पहुँचने पर उनका उचित समान किया गया। एकात मे रत्नावली ने उन्हें उपदेश दिया।[5] उनके मन मे सासारिक विषयो के

---

१ मूलगोसाईंचरित, दोहा १७, जनश्रुतियों में उक्त दोहे का किंचित्परिवर्तित रूप इस प्रकार मिलता है

> अस्थि चरम मम देह मम तामें जैसी प्रीति।
> तैसी जो श्रीराम महँ होत न तौ भवभीति॥
>
> —रामचरितमानस की भूमिका, पाँचवाँ खड, पृ० ८

२. कटि की खीनी कनक सी रहत सखिन सँग सोय।
मोहि फटे की डर नहीं अनत कटे डर होय॥—किंवदती

३. कटे एक रघुनाथ सँग बाँधि जटा सिर केस।
हम तो चाखा प्रेम रस पतिनी के उपदेस॥—किंवदंती

४. खरिया खरी कपूर सब उचित न पिय तिय त्याग।
कै खरिया मोहिं मेलि कै विमल विवेक विराग॥—दोहावली, २५५

५ मम सुप्रेम निज हिये धार। उतरे प्रिय सुरसरित पार।
जग अधार पद प्रेम धार। जातु मनुज भव उदधि पार॥—रत्नावलीचरित, १३०-३१

प्रति ग्लानि उत्पन्न हुई। सबके सो जाने पर वे निकल पडे।[1] उनके वियोग में रत्नावली बहुत व्यथित हुई। वह तपस्विनी का जीवन बिताने लगी। कभी बदरिया मे रहती और कभी रामपुर मे अपने देवर नददास के यहाँ। उन्ही दिनो उसने २०१ दोहो की रचना की जिनमें से कुछ आत्मपरिचयात्मक हैं। स० १६५१ मे उसका देहात हुआ।

उपर्युक्त विवरणो से अनुमान किया जा सकता है कि वे प्रचलित जनश्रुतियों के आधार पर लेखको की स्वरुचि के अनुसार प्रथित हैं। जनश्रुतियाँ तिल का ताड बना देती हैं, लेकिन शून्य से तिल नही बनाती। अत उनके मूल मे कुछ-न-कुछ सच्चाई अवश्य होनी चाहिए। परतु विवरणो का परस्पर-विरोधी विस्तार अवश्य ही सदिग्ध है। उनसे इतना ही ग्राह्य निष्कर्ष निकल पाता है कि तुलसी का विवाह हुआ था, उनका गृहस्थ-जीवन आसक्तिपूर्ण था और वे विरक्त हो गये। उनकी कृतियो से यह तथ्य अशत समर्थित है।

विरक्त जीवन

'मूलगोसाईंचरित', 'तुलसीप्रकास' आदि रचनाओ और जनश्रुतियो में सचित इतिवृत्त से विदित होता है कि विरक्त तुलसीदास ने प्रयाग, काशी, अयोध्या, सूकरखेत, चित्रकूट, सीतामढी, मिथिला, ब्रज, बदरिकाश्रम आदि स्थानो की यात्रा की। एक बार वे बादशाह के बुलावे पर दिल्ली भी गये थे। तुलसीदास-जैसे महात्मा के द्वारा तीर्थस्थलो की यात्रा निस्सदेह स्वाभाविक है, किंतु उनका दिल्ली-गमन किसी ऐतिहासिक साक्ष्य पर अवलबित न होने के कारण प्रमाण-समत नही है।

चरितात्मक ग्रथो तथा जनश्रुतियो से सिद्ध है और सभी विद्वानो को मान्य है कि चित्रकूट, राजापुर, अयोध्या और काशी मे तुलसी ने न्यूनाधिक समय तक निवास किया था। राजापुर, अयोध्या और काशी की स्थानीय सामग्री से भी यह बात भली-भाँति प्रमाणित है। चित्रकूट, अयोध्या और काशी के विषय मे कवि का अतस्साक्ष्य भी उपलब्ध है। उन्होने काशी को मुख्य वासस्थान बनाया और वहाँ रहकर महाप्रस्थान किया।

विभिन्न तीर्थों की यात्रा करने के बाद तुलसीदास स्थायी रूप से काशी मे रहने लगे। लोक मे उनका समान बढ़ा। इन्ही दिनो वे किसी मठ के महत हुए। अतस्साक्ष्य से स्पष्ट है कि 'गोसाईं'[2] अभिधान उनकी जितेंद्रियता से प्रभावित समाज द्वारा प्रदत्त उपाधि मात्र नही है, अपितु वह उनकी मठाधीशता का द्योतक है। डॉ० माताप्रसाद गुप्त ने पता चलाया है कि काशी मे लोलार्क-कुड पर एक 'तुलसीदास मठ' था।[3] उनके नाम पर मठ के नाम की लोक-प्रसिद्धि उनकी ख्याति के फलस्वरूप ही चली होगी। इतना निश्चित है

---

१ नाथहि नींद लगी जिय जानि पलोटत पायनु वदि सयानी।
पीय अगाध सनेहहि पाय गई रतनावलि हीय सिहानी॥
सोइ रही विधि वाम लिखी अविनास मिटी न ललाट निसानी।
रातिहि में तुलसी गृह त्यागि गए कित औचक काहु न जानी॥—तुलसीप्रकास, ११

२ तुलसी गोसाईं भयो भोंडे दिन भूलि गयो—हनुमानबाहुक, ४०

३ तुलसीदास, पृ० १६०

कि स० १७६७ तक वह मठ विद्यमान था। इसका प्रमाण यह है कि इन्डिया ऑफिस लाइब्रेरी में परिरक्षित 'न्यायसिद्धातमजरी' की एक प्रतिलिपि की पुष्पिका[1] मे 'तुलसीदासमठ' का उल्लेख किया गया है। किसी शिवरतनसिंह का स० १८४८ का एक दानपत्र[2] प्राप्त हुआ है। उसमे 'स्थान श्री गोसाईं तुलसीदास जी' और 'श्री गोसाईं जी पीताबर वैष्णव' का उल्लेख है। इससे तीन बातें सूचित होती है (i) तुलसी जिस मठ के गोसाईं हुए थे वह वैष्णव मठ था। (ii) स० १८४८ तक 'तुलसीदासमठ' का नाम बदलकर 'स्थान तुलसीदास' हो गया था। (iii) इस परिवर्तन का कारण वैष्णव-मतानुयायियो की परपरा का अनुकरण है। अयोध्या मे इस प्रकार के केंद्र को 'मठ' न कहकर 'स्थान' कहने की प्रथा रही है, जैसे—'बडा स्थान'। निष्कर्ष यह है कि तुलसीदास ने काशी मे कुछ समय तक मठाधीश का जीवन बिताया। निश्चय के साथ यह नही कहा जा सकता कि महत की गद्दी पर वे कब से कब तक रहे।

वैराग्योदय के बाद उनकी कारयित्री प्रतिभा का विकास हुआ। उन्होने पचास-साठ वर्षों तक काव्य-सर्जना की। यह क्रम अतिम समय तक चलता रहा। उनके साहित्यिक जीवन का कोई प्रामाणिक लेखा-जोखा प्राप्त नही है। लोक-रीति के अनुसार वे तत्कालीन अनेक महान् साहित्यकारो के सपर्क मे आये होगे। इस सभावना के आधार पर विभिन्न किंवदतियो मे सूरदास, नददास, मीराँबाई, केशवदास, अब्दुर्ररहीम खानखाना, बनारसीदास, मधुसूदन सरस्वती आदि के साथ उनके सबध की चर्चा की गयी है। अपने जीवन-काल मे ही सत-महात्मा और भक्तकवि के रूप मे उनकी असाधारण प्रतिष्ठा हुई। नाभादास का 'भक्तमाल' इसका उज्ज्वल प्रमाण है। मधुसूदन सरस्वती से सबधित जन-श्रुति उनकी महामहिमा की इयत्ता सूचित करती है। परवर्ती मध्ययुगीन कवियो ने भी मुक्तकठ से उनका गुणगान किया है। उनकी कीर्ति-पताका हिंदी-प्रदेशो के बाहर भी फैली। मराठी-कवि मोरोपत (स० १७६६-१८५१) ने 'तुलसीदास-स्तव' लिखकर उनकी स्तुति की है।[3]

तुलसीदास के अनेक मित्रो और स्नेहियो की चर्चा की गयी है। प० गगाराम ज्योतिषी और जमीदार टोडर के नाम विशेष उल्लेखनीय है। प० गगाराम के उत्तराधिकारी उनके साथ तुलसीदास का घनिष्ठ सबध बताते हैं। टोडर के सबध मे पचायतनामे का लिखित प्रमाण विद्यमान है। जिस व्यक्ति ने दिवगत टोडर के उत्तराधिकारियो में कलहकारिणी सपत्ति का निर्विरोध बँटवारा कराने मे महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की थी, उस व्यक्ति का उस परिवार के साथ निश्चय ही घनिष्ठ सबध रहा होगा। दोनो पक्षो द्वारा उनका मान्य होना उनके प्रति व्यक्तिगत आदर का ही नही, अपितु उनकी सामाजिक प्रतिष्ठा का भी सूचक है। अब्दुर्रहीम खानाखाना की गणना भी उनके मित्रो मे की जाती है। इसका कोई लिखित प्रमाण नहीं है। परतु, पारिस्थितिक साक्ष्य अनुपेक्षणीय

---

१. "स० १७६७ वैशाष शुद्धी पूर्णिमा लिखितम् लोलार्क तुलसीदास मठे जयकृष्णदास शुभम"

२. देखिए—तुलसीदास, पृ० १६१

३. देखिए—सरस्वती, जिल्द १५६, ० ३७

है। ऐतिहासिक तथ्य है कि स० १६४६ से ४८ तक खानखाना बनारस के हाकिम थे।[1] वे स्वय कवि, काव्य-प्रेमी, गुणग्राही और कवियो के सरक्षक थे। काशी मे रहकर तुलसीदास-जैसे समादृत महाकवि के सपर्क मे उनका न आना ही अविश्वसनीय माना जा सकता है।

बहिस्साक्ष्य के रूप मे उपलब्ध सामग्री विरक्त तुलसीदास की आधि-व्याधियो का विवरण नही देती। आत्मकथात्मक उल्लेखो मे कवि ने अपने जीवन के जिस पक्ष की व्यजना को अत्यधिक महत्त्व दिया है, चरित लेखको ने उसकी नितात उपेक्षा की है। इसके दो कारण प्रतीत होते हैं (i) उन लेखको का प्रयोजन तुलसी का गौरव-गान था, इसलिए उन्होने उन्ही वृत्तो का निरूपण किया जो चरित-नायक की महिमा को उत्कर्ष प्रदान करने मे सहायक थे। (ii) आधिदैविक, आधिभौतिक अथवा आध्यात्मिक बाधाओ से विकल तुलसी का चित्राकन उन्हे अरुचिकर लगा। उनके वर्णन में न तो उन्हे आनद मिल सकता था और न ही पाठको का मनोरजन हो सकता था।

महाप्रस्थान

जनश्रुति-परपरा मे तुलसी की निधन-तिथि के सबध मे तीन प्रकार की उक्तियाँ मिलती हैं

(i) स० १६८०, श्रावण शुक्ला ७
(ii) स० १६८०, श्रावण कृष्णा ३, शनिवार
(iii) स० १६८०, श्रावण कृष्णा ३

उपरिलिखित तीन उक्तियो के अतिरिक्त, प० रजनीकात शास्त्री ने डॉ० ग्रियर्सन की उक्ति के आधार पर एक और प्रश्न भी उठाया है। "यदि डॉ० ग्रियर्सन साहब के मतानुसार गोसाइँ जी की मृत्यु प्लेग के कारण हुई और गिल्टी आपकी बाँह (काँख) मे निकली थी तो यह घटना 'हनुमानबाहुक' के रचना-काल (स० १६६९-७१) मे हुई होगी। इस दशा मे आपके सर्व-समत मृत्यु-सवत् १६८० को सदिग्ध मानने का एक और भी कारण देख पडता है।"[2] यह शका निराधार है। १ शास्त्री जी ने वेणीमाधवदास का अनुसरण करते हुए 'हनुमानबाहुक' का जो रचना-काल माना है वह प्रामाणिक नही है। अधिक सभाव्य यह है कि 'हनुमानबाहुक' और 'कवितावली' के कुछ पद्य स० १६८० के लगभग कवि के जीवन के अतिम वर्षों मे लिखे गये। २. यदि ताऊन के कारण तुलसी की मृत्यु मान ली जाए तो भी स० १६८० का प्रतिवाद नही होता। सबसे पहले ताऊन स० १६७३ मे आया था और तदनतर स० १६८१ तक देश के विभिन्न भागो मे बना रहा। इसलिए स० १६८० में तुलसीदास पर उसका प्रकोप असभव नही है।

तुलसी की मृत्यु के सबध मे कोई समकालीन अथवा ऐतिहासिक प्रमाण उपलब्ध नही है। परतु, लिखित और मौखिक परपरा के जितने भी साक्ष्य मिलते हैं उन सभी मे स० १६८० को उनका मृत्यु-सवत् माना गया है। उसकी निरपवाद सर्वमान्यता अपने-

१. हिस्ट्री ऑफ़ इन्डिया (इलियट), जिल्द ५, पृ० ४५८
२. मानस-मीमासा, पृ० ८२-८२

आप मे निश्चित प्रमाण है। सदेह का विषय केवल तिथि-वार है। एक जनश्रुति है '

सवत सोरह सै असी असी गग के तीर।
सावन सुक्ला सत्तमी तुलसी तजेउ सरीर ॥

इसके अनुसार स० १६८० मे अस्सी-गगा के सगम पर श्रावण-शुक्ला सप्तमी के दिन तुलसी ने शरीर-त्याग किया। इस जनश्रुति के पक्ष मे दो तर्क दिये जा सकते हैं १ लोक मे सर्वाधिक मानित जनश्रुति यही है। आज भी देश के विभिन्न भागो मे इस तिथि को तुलसी-जयती मनायी जाती है। २. लोक मे यह बात प्रचलित है कि गोसाईं जी की जो मृत्यु-तिथि है वही उनकी जन्म-तिथि भी थी। बावा वेणीमाधवदास और अविनाशराय दोनो के ही अनुसार जन्म-तिथि श्रावण शुक्ला सप्तमी है। अत निधन-तिथि भी यही मानी जानी चाहिए।

इस जनश्रुति में निर्दिष्ट तिथि-विवरण सर्वमान्य नही है। इसके विपक्ष मे दो सबल तर्क हैं (1) इस जनश्रुति का एक अन्य जनश्रुति से विरोध होता है और वह जनश्रुति चरित-ग्रथो मे लिखित रूप मे भी पायी जाती है। 'श्रावण शुक्ला सप्तमी' को तुलसी की जन्म-तिथि मानने वाले वेणीमाधवदास ने 'सावन स्यामा तीज सनि' को उनका दिवगत होना स्वीकार किया है

सवत सोरह से असी असी गंग के तीर।
सावन स्यामा तीज सनि तुलसी तजेउ सरीर॥[1]

गणना से यह तिथि अशुद्ध ठहरती है। उक्त तीज को शनिवार नही था,[2] शुक्रवार था।[3] उपर्युक्त दोहे के तीसरे चरण मे वावू श्यामसुदरदास ने तीज के बाद 'सनि' पाठ ही माना है। प० रामनरेश त्रिपाठी का कथन है कि 'तीज' के आगे कोई 'सनि' शब्द बताते हैं और कोई-कोई 'को'। 'गौतमचद्रिका' मे 'सनि' का लोप हो गया है

सोरह अनु गुन असी वय तुलसी सहित हुलास।
राम राम कहि विदा ह्वै असी गग किय बास॥

इस प्रकार गणना की अशुद्धि का परिहार हो जाता है। इसके अतिरिक्त, 'गौतमचद्रिका' मे सावन बदी तीज को तुलसी की वर्षी बतायी गयी है,[4] और इस रीति से उनकी जन्म तिथि एव मृत्यु-तिथि की एकरूपता प्रतिपादित की गयी है। परतु, 'मूलगोसाईंचरित' और 'गौतमचद्रिका' का साक्ष्य सदिग्ध है। उनका महत्त्व केवल इस दृष्टि से है कि उन्होने किसी परपरागत जनश्रुति का अभिलेख प्रस्तुत किया है।

(ii) 'श्रावण शुक्ला सप्तमी' के विरुद्ध दिया गया दूसरा तर्क अधिक समर्थ है। तुलसी के मित्र टोडर के उत्तराधिकारी परपरानुसार सावन वदी तीज को तुलसी की वर्षी मनाते हैं और उनकी स्मृति मे सीधा बाँटते हैं। कवि से घनिष्ठतया सबद्ध परिवार

---

१. मूलगोसाईंचरित, दोहा ११६
२ मानस मीमासा, पृ० ८४
३. तुलसीदास, पृ० ५१५
४. सबत सोरह सै एकासी। तुलसी वरषी असी प्रकासी।
सावन कृष्ण तीज तिथि पाई। यह्‌ गौतमचद्रिका बनाई॥

की परपरा विश्वसनीय है। इसके विरुद्ध डॉ० भारद्वाज का कथन है—"एक ओर जनश्रुति की रक्षा और दूसरी ओर टोडर-कुटुंब की परपरा। व्यक्ति तो विस्मृति आदि के कारण इतने लवे काल मे धोखा खा सकता है पर जनश्रुति तो बहुत से लोगो की जिह्वा पर विराजती रहती है। अतएव मेरा झुकाव 'श्रावण शुक्ला सप्तमी' की ओर है।"[1] उनके इस निष्कर्ष को मानने मे कठिनाई है। यहाँ पर व्यक्ति और जनश्रुति की तुलना विधेय नही है। तुला के एक पलडे पर व्यक्ति नही, कौटुविक परपरा है और उसके साथ ही एक जनश्रुति भी है। दूसरे पलडे पर केवल एक जनश्रुति है। अतएव पहले पक्ष का गौरव न्यायत. अधिक है।

डॉ० माताप्रसाद गुप्त के मतानुसार—"यह नितात सभव ज्ञात होता है कि कवि की मृत्यु इसी तिथि (अर्थात् सावन कृष्णा तीज) को हुई हो, भले ही वेणीमाधवदास द्वारा दिया हुआ वार अशुद्ध हो और पीछे कभी इस तिथि मे और 'सावन शुक्ला सप्तमी' मे भ्रम हो गया हो, जो कि घाघ की कुछ अति प्रसिद्ध कहावतो[2] मे भी आती है।"[3] प० रामनरेश त्रिपाठी ने उनका नामोल्लेख किए विना उनके मत का प्रतिवाद किया है—"सावन सुक्ला सप्तमी को तो यह कहकर अशुद्ध वताया जा रहा है कि वह 'भड्डर' के कई दोहो मे आने से लोगो की जवान पर थी, इससे लोग सावन स्यामा तीज के वदले उसे कहने लगे। पर इसी तरह कोई तर्क करना चाहे, तो कर सकता है कि असी (अक) और असी (नदी) का तुक मिलता देखकर किसी ने उक्त दोहे मे १६८० सवत् डाल दिया है। सभव है, तुलसीदास वर्ष-दो वर्ष आगे पीछे लोकातरित हुए हो। मेरी राय मे उक्त सवत् पचो की राय के सिवाय और कोई वल नही रखता।"[4]

इस तर्क से 'सावन स्यामा तीज' का पक्ष निरस्त नही होता, क्योकि वह भी जनश्रुति है, उसे भी पचो का वल प्राप्त है, वह परवर्ती चरित-लेखको द्वारा अभिलिखित है और सवसे वढकर वह टोडर की वश-परपरा द्वारा समर्थित है। इन कारणो से स० १६८० की सावन वदी तीज को तुलसी की निधन तिथि मानना उचित है।

---

१. गोस्वामी तुलसीदास, पृ० १७३

२ उदाहरणार्थ—सावन सुक्ला सप्तमी जो गरजै अधिरात।
तू पिय जाओ मालवा मैं जैहौं गुजरात॥

३. तुलसीदास, पृ० १८९

४. तुलसीदास और उनका काव्य, पृ० १११

४. तुलसी की आत्मकहानी

भारतीय कवियो की परपरा आत्मचरित-वर्णन के प्रति उदासीन रही। उसी परपरा मे तुलसीदास का आविर्भाव हुआ। वे भक्त-कवि थे, सत-महात्मा थे। भगवान् के चरित-गान मे, उनकी गुण-कथा मे, लीन कवि आत्मकथा की ओर उन्मुख नही हो सकता था। आत्मश्लाघा भक्ति-भावना के विपरीत थी। अपनी बात कहने का एक ही अवसर था—'आत्मनिवेदन'। इसलिए 'आत्मनिक्षेप' और 'कार्पण्य' की व्यजना के अवसरो पर ही कवि ने प्राय आत्मचरितात्मक उल्लेख किये हैं। प्रसगवश वश, गुरु, प्रतिष्ठा आदि का साकेतिक निर्देश हुआ है। आत्मकथात्मक निर्देशो की दृष्टि से पाँच रचनाएँ महत्त्व की हैं—कवितावली, दोहावली, विनयपत्रिका, रामचरितमानस और बरवै-रामायण। उनके आधार पर तुलसीदास के जीवन-वृत्त की रूपरेखा इस प्रकार बनती है

जाति और आस्पद

(१) ब्राह्मन ज्यो उगिल्यो उरगारि हौं त्यो ही तिहारे हिए न हितैहौं।[१]

(२) जायो कुल मगन बधावनो बजायो सुनि।
भयो परितापु पापु जननी जनक को।[२]

(३) राम सनेही सो तै न सनेह कियो।
अगम जो अमरनि हूँ सो तनु तोहि दियो॥
दियो सुकुल जनम सरीर सुदर हेतु जो फल चारि को।
जो पाइ पडित परमपद पावत पुरारि मुरारि को॥
यह भरतखड समीप सुरसरि थल भलो संगति भली।
तेरी कुमति कायर कलप बल्ली चहति विषफल फली।[३]

(४) भलि भारतभूमि भले कुल जन्मु समाजु सरीरु भलो लहि कै।[४]

(५) राखे रीति आपनी जो होइ सोई कीजै बलि।
तुलसी तिहारो घरजायऊ है घर को।[५]

---

१. कवितावली, ७।१०२
२. कवितावली, ७।७३
३. विनयपत्रिका, १३५।१
४. कवितावली, ७।३३
५ कवितावली, ७।१२२

प्रथम दो उद्धरणो से सिद्ध है कि तुलसीदास ब्राह्मण-कुल मे उत्पन्न हुए थे, और उनके जन्म पर माता-पिता को हर्ष के स्थान पर अन्यत परिताप हुआ था। पहले उद्धरण से तुलसी के ब्राह्मणत्व की व्यजना होती है। 'ब्राह्मण' शब्द गरुड के द्वारा उगले गये व्यक्ति और तुलसीदास दोनो के वर्ण (जाति) का द्योतक है। कवि कलियुग से कह रहा है—'हे कलियुग! जिस प्रकार गरुड ब्राह्मण को निगल नही सके, वह गले मे अटक गया और उन्हे उस ब्राह्मण को उगल देना पडा, उसी प्रकार तुम भी मुझ ब्राह्मण को निगल नही सकोगे, और तुम्हे बाध्य होकर मुझको छोडना पडेगा'। यह अर्थ स्वत अखडनीय न होते हुए भी अन्य सकारात्मक-नकारात्मक प्रमाणो से पुष्ट होने के कारण अवश्य मान्य है। शतियो से चली आती हुई लिखित और मौखिक परपरा तुलसी को ब्राह्मण मानती रही है। उनकी ब्राह्मणेतर जाति मानने के विषय मे कोई साक्ष्य नही मिलता। सभी विद्वानो की दृष्टि मे वे ब्राह्मण हैं। प० चपाराम मिश्र और प० रजनीकात शास्त्री अपवाद है।

मिश्रजी को तुलसी के ब्राह्मण होने मे सदेह है। उनके शब्द है—"हमे तो कवितावली पढकर तुलसीदास के 'ब्राह्मण-कुल' मे उत्पन्न होने में बडा सदेह हो गया। जन्म ही से जिसने 'जाति के कुजाति के अजाति के' टूक खाकर अपना पेट भरा हो वह अपने-आपको 'जायो कुल मगन' अवश्य कहेगा। तुलसीदास जी को अपनी जाति का स्वय पता न था"।[1] शास्त्री जी की स्वमति के अनुसार, तुलसीदास अब्राह्मण और अवैध सतान थे।

निष्पक्ष भाव और समाहित चित्त से प्रयत्न करने पर भी मुझे उनके कथन मे सार नही दिखायी देता। एक तो उनका स्ववचन-विरोध ही उनकी स्थापना को निर्मूल कर देता है, दूसरे, उन्होने अपनी धारणा के समर्थन मे कवि की पक्तियो के जो अर्थ किये हैं वे अग्राह्य हैं। एक स्थल पर वे कहते हैं कि "गोसाईजी सद्योजातावस्था मे ही अपने माता-पिता द्वारा तजे गये थे। इस दशा मे आपको या किसी अन्य को यह कैसे मालूम हुआ कि आप ब्राह्मण जाति के बच्चे थे, क्योकि जिस परिस्थिति मे आप फेंक दिये गये थे, उस परिस्थिति मे आज भी कितने बच्चे फेंक दिये जाते हैं, पर उनकी जाति का पता किसी को भी मालूम नही रहता।"[2] उनकी यह सकल्पना उन्ही की दूसरी सकल्पना से सर्वथा खडित हो गयी है। 'जाति के सुजाति के कुजाति के' का व्याख्यान करके वे घोषित करते हैं कि "गोसाईं जी ब्राह्मण न होकर ब्राह्मण से किसी नीच जाति के थे, क्योकि यदि आप ब्राह्मण होते तो ब्राह्मण से किसी जाति की ऊँची नही होने के कारण, अपने से 'सुजाति का' ऐसा कथन नही बनता।"[3] पहली घोषणा से टकराकर उसके समेत चकनाचूर इस दूसरी घोषणा पर मैं शास्त्री जी के प्रश्न को उन्ही के शब्दो मे ज्यो-का-त्यो दुहराकर पूछना चाहता हूँ—'गोसाईं जी सद्योजातावस्था मे ही अपने माता-पिता द्वारा तजे गये थे, इस दशा मे आपको या किसी अन्य को यह कैसे मालूम हुआ कि आप'

१ कवितावली (टीका), भूमिका, पृ० ९
२ मानस-मीमासा, पृ० २४
३ मानस-मीमासा, पृ० ३६

'ब्राह्मण न होकर ब्राह्मण से किसी नीची जाति के थे ?' और जब सद्योजातावस्था मे परित्यक्त तुलसी को अपने जन्म आदि के विषय मे कोई जानकारी थी ही नहीं तब उन्हे यह कैसे पता चला कि वे पापी माता-पिता की अवैध सतान थे ?

'जायो कुल मगन' को एक इकाई मानते हुए शास्त्री जी ने लोक-परपरा का आश्रय लेकर सकल्पना की है—"लोक मे हम प्रत्यक्ष देखते हैं कि ऐसे अनाथ बच्चे होश सँभालने पर अपनी वही जाति बताते हैं जो उनके पालक की रहती है। गोसाईं जी का पालक कोई मगन जाति का मनुष्य था जिसके सबध से आपने अपने को भी मगन लिखा है।"[1] यहाँ पर प्रश्न उठता है—यदि तुलसी ने अपने को अतिथि-मगन-कुल-जात[2] माना तो फिर यह निकृष्ट जाति 'सुजाति' और 'कुजाति' के मध्य मे कैसे रखी जा सकती है ? उन्होने 'बधावनो बजायो' को सदर्भ मे 'अनफिट' समझकर उसका स्वरुचि के अनुकूल पाठ-सशोधन भी कर लिया है—'बधावो न बजायो'। पाठ-शोध के कुछ निश्चित सिद्धात है। उन्होने यह नही बताया कि किन हस्तलिखित प्रतियो के आधार पर इस नवीन पाठ का आविष्कार किया गया है। उनका कहना है कि "कोई-कोई 'जायो कुल मगन' वाले छद मे 'बधावो न बजायो' की जगह 'बधावनो बजायो' पाठ मानते हैं।"[3] किंतु वास्तविकता यह है कि उपलब्ध प्रतियो मे 'बधावनो बजायो' पाठ ही शुद्ध माना गया है[4], केवल शास्त्री जी ने उसका अन्यथा-सभावन किया है। 'निष्पक्ष समालोचक' होने के नाते वे 'विवश होकर' इस निर्णय पर पहुँचे हैं कि तुलसी के परित्याग का कारण किसी लोकापवाद का भय ही था जिसका सामना करने मे आपके जननी-जनक नितात असमर्थ थे।"[5] तुलसी की उक्ति है

जायो कुल मगन बधावनो बजायो सुनि
भयो परिताप पाप जननी जनक को।[6]

जो समालोचक इस उक्ति को तुलसी का आत्मकथात्मक उल्लेख मानते है उन्हे यह भी मानना पडेगा कि तुलसी को किसी-न-किसी माध्यम से अपने जन्म और माता-पिता के विषय मे पूरी जानकारी थी। उक्त उद्धरण मे पाँच शब्द विशेष महत्त्व के हैं—जायो, मगन, बजायो, सुनि और पाप। जायो का कर्ता 'हौं' (मैं) अर्थात् 'तुलसीदास' है। इसे सभी स्वीकारते हैं। 'मगन' के दो अर्थ किये गये हैं—ब्राह्मण (माँगने वाली जाति) और अतीथ या गोसाईं (भिखमगी जाति)। दोनो ही प्रकार के व्याख्याकारो ने 'मगन' का पदान्वय

---

१. मानस-मीमासा, पृ० २४
२ देखिए—मानस-मीमासा, पृ० २५-२६
३. मानस-मीमासा, पृ० २३
४. 'बधावनो बजायो' मुहावरा है। तुलसी ने इसका भिन्न-भिन्न स्थलों पर विविध रूपों में प्रयोग किया है, जैसे—
घर घर उत्सव बाज बधावा।—रामचरितमानस, १।१७२।३
सुनि पुर भएउ अनद बधाव बजावहि।—जानकीमंगल, १३२
गावहिं गीत सुआसिनि बाज बधावन।—जानकीमगल, १२७
५ मानस-मीमांसा, पृ० १७
६. कवितावली, ७।७३

किया है—'मगन'-कुल जायो, अर्थात् मगन-वश मे उत्पन्न हुआ। मेरे विचार से यह असगत है। व्याख्या आगे की जाएगी। 'वजायो' क्रिया का कर्ता कौन है ? इस प्रश्न पर विचार नही किया गया। कुछ ने कर्मवाच्य (वधावा वजाया गया) का प्रयोग करके इसकी उपेक्षा की है। दूसरो ने जननी-जनक को ही उसका कर्ता मान लिया है। भूलना नही चाहिए कि वाक्य मे 'वज्यो', 'वाज्यो' अथवा 'वजवायो' क्रिया का प्रयोग नही है। प्रयुक्त क्रिया है—वजायो। वेचारी 'जननी' भला किस प्रकार वाजा वजाती या वजवाती ? 'सुनि' का कर्म क्या है—पुत्र-जन्म या वधावन-वाजा ? यदि पुत्र-जन्म सुनकर परिताप हुआ तो वाजा वजवाने का प्रश्न ही नही उठता। यदि वधावन-वाजा सुनकर परिताप हुआ तो 'वजाये' का कर्ता किसी और को होना चाहिए। मेरे विचार से 'जननी-जनक' के साथ 'सुनि' की सगति ठीक नही वैठती। तात्पर्यार्थ के रूप मे प० श्रीकातशरण ने एक तीसरा विकल्प प्रस्तुत किया है—अर्थात् 'मेरे कुलक्षणो को सुनकर'। यह आक्षिप्तार्थ तिरस्करणीय नही है, परतु पूरे चरण का अर्थ क्या है ? कवि ने विराम-चिह्नो का प्रयोग नही किया था। अल्पविराम और पदान्वय की गडवडी के कारण अर्थ-निर्णय का झमेला उठ खडा हुआ। उपर्युक्त आलोचको ने आलोच्य-पक्ति मे विराम-चिह्न का प्रयोग इस प्रकार स्वीकार किया है

जायो कुलमगन, वधावनो वजायो, सुनि
भयो परिताप-पाप जननी-जनक को।

तदनुरूप अर्थ किया गया है—तुलसीदास मगन-कुल मे उत्पन्न हुए, उनके जन्म पर वधावा वजाया गया, सुनकर जननी-जनक को पाप-परिताप हुआ। एक सपादक ने जैसा कर दिया लोक-प्रवाह उधर ही मुड गया। उपर्युक्त चरण को आधुनिक विराम-चिह्नो का प्रयोग करके पढना चाहिए

जायो, कुल मगन वधावनो वजायो सुनि,
भयो परिताप पाप जननी जनक को।

प्रथम पक्ति मे विराम के दो अन्य विकल्प भी हो सकते हैं

(i) जायो, कुल मगन वधावनो वजायो, सुनि
(ii) जायो कुल मगन वधावनो वजायो सुनि,

इस अतिम का पदान्वय होगा—जायो सुनि, मगन-कुल वधावनो वजायो। प्रत्येक दशा मे मैं इस अर्थ पर वल देना चाहता हूँ कि 'अमुक' की पुत्रोत्पत्ति (तुलसी के जन्म) का समाचार सुनकर मगनो ने वधावा वजाया। यह अर्थ अधिक स्वाभाविक है, तुलसी के स्वकथित जीवनवृत्त के अनुरूप है, इससे 'वजायो' और 'सुनि' क्रियाओ की यथोचित सगति वैठ जाती है, और यति-भग दोष का परिहार हो जाता है। ये मगन दो प्रकार के हो सकते हैं। एक कुलक्रमागत हैं, जो 'पौनी' की कोटि मे आते हैं। वे अपनी 'यजमानी' मे पुत्र-जन्म के अवसर पर वधावा वजाकर इनाम लिया करते हैं। दूसरे आगतुक हैं, जो भिक्षाटन के क्रम मे किसी की भी पुत्रोत्पत्ति का समाचार सुनकर उसके दरवाजे पर जा धमकते हैं और गा-वजाकर पुरस्कार लेते हैं। अत 'कुल मगन' का पदान्वय है 'मगन-कुल', उसका आशय है 'मगन-वर्ग'। 'कुलमगन' को समस्त पद मानकर उसका अर्थ किया

जा सकता है—जिस कुल (परिवार) मे तुलसी उत्पन्न हुए थे उस कुल के 'पौनी' मगन। 'पाप' के अर्थ किये गये हैं—अधर्म, अधर्मी, कष्ट। ये अर्थ किये जा सकते हैं, मैं इन्हे गलत नही कहता। परतु प्रस्तुत सदर्भ मे यह व्याख्या हास्यास्पद लगती है कि 'अवैध रीति से' उत्पन्न तुलसी ने अपने जननी-जनक को 'पापी' कहा है। स्वय आलोचक के अनुसार उन्हे अपने माँ-बाप का पता ही नही था। दूसरी मजेदार बात यह है कि जननी को पुत्र-जन्म के बाद इस बात का परिताप हुआ कि उसकी सतान अवैध है, यानी नौ-दस महीने तक उसे इस बात का पता ही नही चला कि वह गर्भवती है। तीसरी बात यह है कि तुलसी ने यह पद्य वृद्धावस्था मे उस समय लिखा है जब वे वीतराग महात्माओ की महत्तम कोट मे प्रतिष्ठित हो चुके थे। संपूर्ण जगत् को सीताराममय समझकर प्रणाम करने वाला[1] व्यक्ति अपने माता-पिता को गाली नही दे सकता। उपर्युक्त कल्पित अर्थ को अनर्थक सिद्ध करने के लिए कवि का स्वकथन ही पर्याप्त है। 'विनयपत्रिका' मे उसने अपने माता-पिता की अत्यत श्रद्धा-भक्ति के साथ वदना की है

मातु पिता गुरु गनपति सारद। सिवा समेत सभु सुक नारद॥
चरन बदि बिनवौं सब काहू। देहु राम पद नेह निबाहू॥[2]

यह उसकी मातृपितृ भक्ति का अकाट्य प्रमाण है। ऐसे पुरुष को माता-पिता का विदूपक मानना घोर अन्याय है। चौथी, सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण और आश्चर्य की बात यह है कि ज्योतिपाचार्य प० रजनीकात शास्त्री ने 'पाप' शब्द के ज्योतिप-समत अर्थ के प्रति आँख ही मूँद ली है। वही अर्थ सबसे अधिक सटीक है। मोनियर विलियम्स ने वराहमिहिर का हवाला देकर बतलाया है कि ज्योतिष मे 'पाप' का अर्थ है—अशुभ, अमगल-सूचक। निश्चयपूर्वक नही कहा जा सकता कि माता-पिता का देहात हो गया था। प्रस्तुत स्थल पर तुलसी ने केवल इतना ही कहा है कि अमगल की आशका से उनके माँ-बाप को मानसिक क्लेश हुआ, इसके आगे अर्थ निकालना कल्पना-विलास है।

तुलसीदास की जाति-पाँति-सबधी उक्तियो के सबध मे यह तथ्य भी स्मरणीय है कि वे उनके वैराग्य-काल मे उस समय रची गयी थी जब वे वैष्णव भक्त के रूप मे प्रतिष्ठित हो चुके थे। जाति-पाँति और कुल-प्रतिष्ठा का महत्त्व गृही लोगो मे माना जाता है। भक्त साधु उस महत्त्व को त्याग देते हैं। 'रामचरितमानस' के वाल्मीकि से कवि ने इस त्याग की आवश्यकता पर यथेष्ट बल दिलाया है।[3] उन्होने स्वय भी इस सिद्धात को अपने जीवन मे कार्यान्वित किया। उनका अमायिक निवेदन है :

देसु कासु कुलु कर्म धर्म धनु धामु धरनि गति।
जाति पाँति सब भाँति लागि रामहि हमारि पति॥[4]

'साह ही को गोत गोत होत है गुलाम को' का भी यही अभिप्राय है। 'विनयपत्रिका' के एक

---

१. सीय राम मय सब जग जानी। करौं प्रनाम जोरि जुग पानी॥—रामचरितमानस, १।८।१
२ विनयपत्रिका, ३६।३-४
३ जाति पाँति धनु धरम बड़ाई। प्रिय परिवार सदन सुखदाई॥
सब तजि तुम्हहि रहइ लउ लाई। तेहि कें हृदय रहहु रघुराई॥—रामचरितमानस, २।१३१।३
४ कवितावली, ७।११०

पद्य से कुछ ऐसा ध्वनित होता है कि पहले उनके मन मे अपनी ऊँची जाति या कुल-प्रतिष्ठा की भावना थी, परतु राम-भक्ति के उपचय के साथ-साथ उस भावना का क्षय होता गया

रटत रटत लट्यो जाति पाँति भाँति घट्यो
जूठनि को लालची चहौं न दूध नह्यो हौं।[१]

तुलसीदास कौन-से ब्राह्मण थे ? विद्वानो ने उनकी उपजाति निर्धारित करने की भी चेष्टा की है। कोई कहता है कि वे सनाढ्य-शुक्ल थे, क्योकि 'विनयपत्रिका' मे उन्होंने अपने 'सुकुल' आस्पद का स्पष्ट उल्लेख किया है

दियो सुकुल जनम सरीर सुदर हेतु जो फल चारि को।[२]

इस प्रसग मे एक बात बडी रोचक है। कुछ लोग सनाढ्यो को उत्कृष्ट मानते हैं, अन्य लोग उन्हे निकृष्ट समझते हैं। पहले प्रकार के लोग तुलसी को सनाढ्य सिद्ध करने के लिए पूरक तर्क यह देते हैं कि वे अपनी जातीय हीनता के कारण अपनी जाति-पाँति बताने मे आनाकानी करते थे और झुँझलाकर अड-बड उत्तर देते थे।[३] दूसरे प्रकार के लोगो का पूरक-तर्क यह है कि उन्हे अपने सनाढ्य होने (कुल-श्रेष्ठता) का गर्व था, यह भाव उन्होने बडी युक्ति से व्यक्त किया है

बहुत प्रीति पुजाइबे पर पूजिबे पर थोरि।[४]

कोई कहता है कि वे कान्यकुब्ज-वाजपेयी थे क्योंकि उन्होंने 'बाजपेई' शब्द का उत्कृष्टार्थक प्रयोग किया है -

कौन धौं सोमयाजी अजामिल अधम कौन गजराज धौं बाजपेई।[५]

सभव है कि आगे चलकर कोई उन्हें दीक्षित सिद्ध करने का प्रयास करे, क्योकि जिस गज की तुलना उन्होंने वाजपेयी से की है उसी की तुलना दीक्षित से भी की है

सोई सुकृती सुचि साँचो जाहि राम तुम रीझे।
गनिका गीध बधिक हरिपुर गये लै करसी प्रयाग कब सीझे॥
कबहुँ न डग्यो निगम मगतें पग नृग जग जानि जिते दुख पाये।
गज धौं कौन दिछित जाके सुमिरत लै सुनाभ बाहन तजि धाये॥[६]
सुर मुनि विप्र विहाय बडे कुल गोकुल जनम गोपगृह लीन्हो।
बायों दियो विभव कुरुपति को भोजन जाइ विदुर घर कीन्हो॥
मानत भलहि भलो भगतनि तें कछुक रीति पारथहि जनाई।
तुलसी सहज सनेह राम बस और सबै जल की चिकनाई॥[६]

अस्तु। उपजाति, गोत्र आदि के गवेषण मे मूँड मारने से कोई लाभ नही दिखायी पडता।

---

१. विनयपत्रिका, २६०।३
२. विनयपत्रिका, १३५।१
३. जैसे, कवितावली, ७।१०६ ८ में
४ विनयपत्रिका, १५८।२
५ विनयपत्रिका, १०६।३
६. विनयपत्रिका, २४०

तुलसी ने अपने माता-पिता का उल्लेख नही किया। हुलसी को तुलसी की माता सिद्ध करने के लिए 'रामचरितमानस' की एक पक्ति प्राय. उद्धृत की जाती है .

रामहि प्रिय पावनि तुलसी सी। तुलसिदास हित हियँ हुलसी सी।[1]

इसके पोषण मे रहीम की एक उक्ति[2] का साक्ष्य भी प्रस्तुत किया जाता है। यह सभावना निराधार न होते हुए भी विकल्प-रहित नही है। तुलसी या रहीम की उक्ति से यह निश्चित बोध नही होता कि 'हुलसी' व्यक्तिवाचक नाम है। उसका क्रिया-साधित विशेषण-रूप अधिक उपयुक्त लगता है। रहीम का वाक्य सामान्य-परक प्रतीत होता है, और तुलसी की माँ के नाम के विषय मे रहीम की जानकारी सदेहास्पद है। प्रसग के आग्रह से तुलसी का प्रतीयमान आशय है—यह कथा राम को पावन तुलसी के समान प्रिय है, और मानो कवि-तुलसी के कल्याण के लिए उनके मानस मे उल्लसित हुई है। यह भाव कवि ने अन्यत्र भी व्यक्त किया है—

सभु प्रसाद सुमति हिय़ँ हुलसी।[3]

डॉ० रामदत्त भारद्वाज का कहना है कि 'विनयपत्रिका' की निम्नाकित पक्ति मे कवि ने 'कूट और गूढार्थ' के द्वारा अपने माता-पिता का नाम जता दिया है

अगम जो अमरनि हू सो तन तोहि दियो।[4]

''अगम' का अर्थ है परब्रह्म अर्थात् तुलसीदास जी के राम। गीता कहती है 'मा तु वेद न कश्चन।' और 'अमरनि' का अर्थ है 'जो न मरे' अर्थात् आत्मा। गीता कहती है ' न जायते म्रियते वा कदाचित्। दोनो शब्दो का अर्थ हुआ राम, आत्मा अथवा 'आत्मा-राम।' तत्पश्चात् कूट मे 'हु—सो' की विद्यमानता है जिसमे मध्याक्षर का अत्यय हो गया है। पूर्व शब्द था—हुलासो। कवि ने अपने पिता 'आत्माराम' और माता 'हुलासो' का उल्लेख कैसी गूढ रीति से किया है।''[5] भारद्वाज जी की इस व्याख्या से सहमत होना बड़ा मुश्किल है।

जन्म-स्थान

तुलसी ने अपने जन्म-स्थान का भी कोई विवरण नही दिया है। तथापि अन्वेषको ने उक्तियो को खीच-तान करके उनके जन्म-स्थान की स्थिति का अनुसधान किया है। मत-भेद से वे स्थान हैं—अयोध्या, रामपुर, राजापुर और काशी। 'कवितावली' की एक उक्ति है

---

१ रामचरितमानस, १।३०।१०

२ गोद लिए हुलसी फिरै तुलसी सो सुत होय। —किंवदंती

३. रामचरितमानस, १।३६।१, और भी देखिए—
हुलसि हुलसि हिये तुलसिहु गाये हैं।—गीतावली, ७।१४
पुलक तन हुलस्यो हियो।—रामचरितमानस, १।३२४। छ० ३
राखिहै राम सो जासु हिये तुलसी हुलसै बल आखर दू को।—कवितावली, ७।६०

४. विनयपत्रिका, १३५।१

५. गोस्वामी तुलसीदास, पृ० ३०८

तुलसी तिहारो घर जायऊ है घर को।[1]

अयोध्या उपर्युक्त पक्ति एव 'जायो कुलमगन'[2], मांगि कै खैवो मसीत कै सोइवो'[3], 'काहे को रोस दोस'[4] आदि उक्तियो के आधार पर प० चद्रबली पाडे ने प्रस्थापना की है कि "राम की जन्मभूमि (अयोध्या) ही वास्तव मे तुलसी की जन्मभूमि है, और जो यह 'बधावनो बजायो' काड है[5] वह भी वास्तव मे 'बावरी-मस्जिद' के सामने वाजा बजाने का काड है।"[6] "तुलसी के जननी-जनक का निवास इसी (मस्जिद) के पास कही था।"[7] इस प्रकार पाडेजी के अनुसार 'तिहारो घर' का अर्थ है—राम का घर, अयोध्या। अयोध्या पर विचार करते समय इस मत की समीक्षा की जा चुकी है।

रामपुर डॉ० रामदत्त भारद्वाज के अनुसार उसका अर्थ है—राम का घर, रामपुर[8] (एटा जिले मे सोरो के निकट एक गांव)। उन्होने अपने पक्ष के समर्थन में 'बरवै-रामायण'[9], कवितावली[10] और विनयपत्रिका[11] की उक्तियाँ उद्धृत की हैं। सोरो के प्रकरण में इस पर विचार किया जा चुका है।

राजापुर 'रामचरितमानस' के तापस-प्रसग[12] के आधार पर प० रामबहोरी शुक्ल ने राजापुर को तुलसी की जन्मभूमि माना है।[13] राजापुर के प्रसग मे इसकी विस्तृत आलोचना की गयी है।

काशी प० रजनीकात शास्त्री ने अधोलिखित सोरठे के आधार पर गगा के किनारे स्थित काशीपुरी को अथवा काशी-प्रात के किसी स्थान को तुलसी की जन्मभूमि माना है

मुक्ति जन्म महि जानि ज्ञान खानि अघ हानि कर।
जहँ बस संभु भवानि सो कासी सेइअ कस न॥[14]

शास्त्रीजी की मान्यता पर तीसरे अध्याय मे विचार किया जा चुका है। उनके अनुसार—'मुक्ति-जन्म' मे तत्पुरुष-समास न होकर द्वद्व-समास है, अर्थात् मुक्ति और जन्म, काशी मोक्ष-

---

१. कवितावली, ७।१२२
२ कवितावली, ७।७३
३. कवितावली, ७।१०६
४. विनयपत्रिका, २७५।२
५. उनकी मान्यता है कि "जब तुलसी का जन्म हुआ तब रामभक्तों में आनन्द की लहर दौड़ उठी और 'बधावनो बजायो' की धूम हुई। धूम-धाम के कारण माता-पिता राजदड से दहल उठे और अपने बच्चे को अपने से अलग कर दिया।" (तुलसी की जीवन-भूमि, पृ० १५१)
६. तुलसी की जीवन-भूमि, पृ० १६०
७. तुलसी की जीवन-भूमि, पृ० १६८
८ गोस्वामी तुलसीदास, पृ० २८२-८३
९ जो पहुँचाव रामपुर तन अवसान। —बरवैरामायण, ६७
१० बरु बारहिं बार सरीर धरौं रघुबीर को ह्वै तव तीर रहौंगो। —कवितावली, ७।१४७
११. यह भरतखड समीप सुरसरि थल भलो सगति भली। —विनयपत्रिका, १३५।१
१२ रामचरितमानस, २।११०।४-१११।३
१३. वीणा, वैशाख, स० १९९५, पृ० ५४६
१४. रामचरितमानस, ४।१।सोरठा

भूमि है, तुलसी की जन्मभूमि है[1], 'विनयपत्रिका'[2] और 'कवितावली'[3] के पद्यो से इसका समर्थन भी होता है। इसमे सबसे अधिक खटकने वाली बात यह है कि कवि ने 'मुक्ति जन्म' क्यो लिखा? 'जन्म मुक्ति' क्यो नही लिखा? बिना किसी कठिनाई के लिखा जा सकता था, और उससे शास्त्रीजी का अभिप्रेत अर्थ सहजतया निकल आता। कवि अर्थ-भ्रम नही पैदा करना चाहता था, इसलिए अवधानपूर्वक उचित क्रम से शब्दो का विन्यास किया। यह तर्क निस्सार है कि मुक्ति जन्मती-मरती नही है, अत 'मुक्ति-जन्म' मे षष्ठी तत्पुरुष अमान्य है। 'जन्म' का प्रयोग लाक्षणिक है, उसका तात्पर्य है—मोक्ष देने वाली। 'आविर्भाव' के अर्थ मे 'जन्म' का लाक्षणिक प्रयोग कवि ने 'अज'-'अनादि'-'अशेषकारणपर' राम के लिए भी अनेकश किया है।[4] शास्त्री जी के अनुसार राम को भी मरना चाहिए। परतु तुलसी ऐसा नहीं मानते। इसलिए उन्होंने शकर द्वारा पार्वती के सभी प्रश्नो का उत्तर दिलवाया, किंतु अनपेक्षित समझ कर इस प्रश्न का उत्तर नहीं दिलवाया कि

प्रजा सहित रघुबंस मनि किमि गवने निज धाम।[5]

उपर्युक्त विभिन्न मता का प्रतिपादन करने वाले विद्वाना की तर्क-पद्धति मे मुझे क्लिष्ट-कल्पना दिखायी देती है।

बाल्यावस्था

'कवितावली' और 'विनयपत्रिका' के अनेक प्रसगो मे तुलसी ने अपनी बाल्यावस्था की दयनीय दशा का चित्र अकित किया है। वे बचपन मे ही मातृ-पितृ-विहीन हो गये थे

(i) मातु पिता जग जाय तज्यो बिधि हू न लिखी कछु भाल भलाई।[6]
(ii) जननी जनक तज्यो जनमि करम बिनु बिधिहु सृज्यो अव डेरे।[7]
(iii) तनु जन्यो[8] कुटिल कीट ज्यो तज्यो मातु पिता हूं।[9]

इन उद्धरणो से अभिधा द्वारा स्पष्ट है कि तुलसी के माता-पिता ने उन्हें 'त्याग दिया।' इनके आधार पर यह निश्चयपूर्वक नही कहा जा सकता कि उन्होने जान-बूझकर अपने पुत्र को त्यागा अथवा उनकी अकालमृत्यु हो गयी। अन्यत्र विनयपत्रिका[10] मे कवि ने अपने माता-पिता के प्रति जो प्रगाढ श्रद्धा-भक्ति व्यक्त की है उससे सशय-रहित निष्कर्ष निकलता है कि उनमें वात्सल्य का अभाव नही था और देहावसान के कारण ही

---

१ मानस-मीमांसा, पृ० ४६, ५४
२. विनयपत्रिका, १३५।१
३. कवितावली, ७।१६५
४. रामचरितमानस, १।१२१, १।१२०।१, १।१०४।०, २।२५४।२
५. रामचरितमानस, १।११०
६. कवितावली, ७।५७
७. विनयपत्रिका, २२७।२
८. पाठातर—तनुज तऊ, तुन्या तजत, तनु जनतेउ
९ विनयपत्रिका, २७५।०
१०. विनयपत्रिका, ३६।३-४

उनका पुत्र-वियोग हुआ। इस प्रबल साक्ष्य के सामने 'अभुक्तमूल' वाला विवरण अविश्वसनीय जँचता है, और शास्त्री जी की 'अवैध सतान' वाली कल्पना अकल्पनीय प्रतीत होती है। इसलिए दूसरे उद्धरण मे व्यवहृत 'जनमि' का सगत व्यग्यार्थ यही है कि जन्म के कुछ समय पश्चात् माता-पिता का स्वर्गवास हो गया। 'कुटिल कीट' का तात्पर्य-निर्णय करने के पूर्व इस प्रश्न का उत्तर पा लेना आवश्यक है कि उसका उपमेय क्या है—तुलसी अथवा माता-पिता।

उपर्युक्त प्रथम दो उद्धरणो के उत्तरार्ध मे तुलसी ने अपने दुर्भाग्य को कोसा है। इस पर से यह धारणा बना लेना कि उन्हे अभागा समझकर जनक-जननी ने छोड दिया था, समीचीन नही है। उस धारणा के अनुमोदन मे (कोष्ठ के बाहर रखी गयी) निम्नाकित पक्तियो का उपयोग व्यर्थ है

(i) अगुन अनायक आलसी जानि अधम अनेरो।
स्वारथ के साथिन्ह तज्यो तिजरा को सो टोटक औचट उलटि न हेरो।[1]

(ii) स्वारथ परमारथ साथिन्ह सो भुज उठाइ कही टेरे।
(जननी जनक तज्यो जनमि करम बिनु बिधिहु सृज्यो अवडेरे।)[2]

(iii) (तनु जन्यो कुटिल कीट ज्यो तज्यो मातु पिता हूँ)
काहे को रोस दोस काहि धौ मेरे ही अभाग मोसो सकुचत सब छुइ छाहूँ।[3]

'स्वारथ के साथिन्ह' का प्रयोग सपर्क मे आनेवाले अन्य लोगो के लिए किया गया है, माता-पिता के लिए नही। दूसरा उद्धरण इसका प्रमाण है। उसमे 'स्वारथ परमारथ साथिन्ह' को मध्यम-पुरुष मे रखा गया है और जननी-जनक को अन्य पुरुष मे। अत दोनो मे विशेषण-विशेष्य-सबध नही हो सकता। तीसरे उद्धरण मे 'रोस-दोस' का प्रयोग भी उन्ही व्यक्तियो के लिए किया गया है। ये सारी उक्तियाँ तुलसी के दैन्य का प्रतिपादन कर रही हैं। वे कहना चाहते है—'मैं बहुत अभागा हूँ। मेरे माता-पिता मेरे जन्म के बाद ही मुझे छोडकर चल बसे। स्वार्थ के साथियो ने मुझे टोटकेकी भाँति तज दिया। मैं किसी पर क्रोध क्यो करूँ, किसी को दोष क्यो दूँ? यह सब मेरे अपने अभाग्य का कुफल है।'[4] प्रथम उद्धरण के पूर्वापर-सदर्भ मे इस दैन्य की इतनी सुव्यक्त विवृति हुई है कि सदेह के लिए अवकाश नही रह जाता। उसकी परवर्ती पक्तियाँ हैं

भगति हीन वेद बाहिरो लखि कलिमल घेरो।
देवनि हू देव परिहर्यो अन्याव न तिनको हौं अपराधी सब केरो॥[5]

उनका बालपन अत्यत कष्ट मे बीता। उन्हे दूसरो के दान पर जीवन-निर्वाह करना पडा,

---

१. विनयपत्रिका, २७२।२
२. विनयपत्रिका, २२७।१-२
३. विनयपत्रिका, २७५।२
४. तुलना करके देखिए—
देउँ अभागहि भागु को।—विनयपत्रिका, १६१।७
सो सब मोर पाप परिनामू।—रामचरितमानस, २।२६१।१
५. विनयपत्रिका, २७२।३

पेट की ज्वाला शात करने के लिए उन्होने ऊँच-नीच जातियो के भिक्षान्न का आहार किया। लाचार होकर उनकी दया की भीख माँगनी पडी। अनेक बार अपमानित हुए। बहुतो ने बात तक नही की

१ बारें तें ललात बिललात द्वार-द्वार दीन
जानत हौं चारि फल चारि ही चनक को।[1]
२ द्वार द्वार दीनता कही काढि रद परि पाहूँ।
हैं दयालु दुनी दस दिसा दुख दोष दलन छम कियो न सभाषन काहूँ।[2]
३. फिर्यौ ललात बिनु नाम उदर लगि दुखउ दुखित मोहि हेरे।[3]
४ नीच निरादर भाजन कादर कूकर टूकन लागि ललाई।[4]
५ जाति के सुजाति के कुजाति के पेटागि बस
खाए टूक सबके बिदित बात दुनी सो।[5]
६ चाटत रह्यो स्वान पातरि ज्यो कबहुँ न पेट भरो।[6]
७. बालपने सूधे मन राम सनमुख भयो रामनाम लेत माँगि खात टूक टाक हौं।[7]
८. हुतो ललात कृसगात खात खरि मोद पाइ कोदो कनै।[8]

आलोचको ने निम्नाकित उद्धरणो को भी तुलसी की बाल्यकालीन भीषण दरिद्रता का ज्ञापक मान लिया है[9]

१ छाछी को ललात जे ते रामनाम के प्रसाद
खात खुनसात सोधें दूध की मलाई है।[10]
२ कहा न कियो कहाँ न गयो सीस काहि न नायो।
राम रावरे बिन भये जन जनमि जनमि जग दुख दसहू दिसि पायो।।
आस बिबस खास दास ह्वै नीच प्रभुनि जनायो।
हा हा करि दीनता कही द्वार द्वार बार बार परी न छार मुँह बायो।।
असन बसन बिनु बावरो जहँ तहँ उठि धायो।
महीमान प्रिय प्रानते तजि खोलि खलनि आगे खिनु खिनु पेट खलायो।।
नाथ हाथ कछु नाहिं लग्यो लालच ललचायो।
साँच कहौं नाच कौन सो जो न मोहि लोभ लघु निलज नचाया।।[11]

---

१ कवितावली, ७।७३
२. विनयपत्रिका, २७५।१
३. विनयपत्रिका, २२७।३
४. कवितावली, ७।५७
५. कवितावली, ७।७२
६. विनयपत्रिका, २२६।१
७. हनुमानबाहुक, ४०
८ गीतावली, ५।४०।४
९. देखिए—मानस-मीमांसा, पृ० १३-१४, तुलसीदास और उनका काव्य, पृ० १७-१८
१०. कवितावली, ७।७४
११ विनयपत्रिका, २७६।१-४

३. पातक पीन कुदारिद दीन मलीन धरें कथरी करवा है।
लोक कहै विधिहूँ न लिख्यो सपनेहूँ नहीं अपने बर बाहे ॥[१]

४ माँगि कै खैबो मसीत को सोइबो लैबे को एकु न दैबे को दोऊ।[२]

५. हौं तो जैसो तब तैसो अब अधमाई कै कै
पेटु भरौं राम रावरोई गुन गाइकै।[३]

प्रथम उद्धरण का आत्मचरितात्मक होना सदिग्ध है। उसके आरभिक शब्दों (छाछी को ललात) को सदर्भ से निकालकर कवि के बाल्यजीवन पर लागू कर दिया जाता है। यह असगत है। पूरे चरण के वाक्यार्थ से प्रमाणित है कि यह कवि की स्वपरक उक्ति मात्र न होकर सामान्यपरक लोकोक्ति है। दूसरे उद्धरण की पहली पक्ति से सिद्ध है कि इस दैन्य-निवेदन का सबध राम-भक्त हो जाने के बाद की अवस्था से है। इतना ही नही, प्रस्तुत पद जन्म-जन्मातर की तृष्णा का निरूपण करता है। पद की पहली पक्ति में कवि ने 'जनमि जनमि' द्वारा[४] ससार-चक्र मे पडे हुए 'जन' की आशाजनित दुर्दशा का सकेत किया है। तीसरे, चौथे और पाँचवें उद्धरणो के प्रसग से सूचित होता है कि वे तुलसी के वार्धक्य से सबद्ध हैं। हाँ, अतिम उद्धरण मे प्रयुक्त 'तब' एव उस कवित्त[५] के प्रथम तथा चतुर्थ चरणो मे व्यवहृत 'छार तें सँवारि', 'व्याल बाल' और 'रुख' मे बाल्यावस्था की भी अभिव्यजना होती है तथा उसके बाद की अवस्था की भी।

'हनुमानबाहुक' की कतिपय पक्तियो के आधार पर डॉ० माताप्रसाद गुप्त का अनुमान है कि बाल्यावस्था मे कवि किसी हनुमान्-मदिर से अपने जीवन-निर्वाह के लिए सहायता प्राप्त करने लगा था[६]

---

१. कवितावली, ७।७६
२. कवितावली, ७।१०६
३ कवितावली, ७।६१
४ राम रावरे बिन भये जन जनमि जनमि जग दुख दस हू दिसि पायो।
उपर्युक्त पक्ति से तुलना करके देखिए—
मोहि मूढ़ मन बहुत बिगोयो।
याके लागि सुनहु करुनामय मैं जग जनमि जनमि दुख रोयो ॥
—विनयपत्रिका, २४५।१

५ छार तें सँवारि कै पहार हू तें भारी कियो
गारो भयो पच में पुनीत पच्छु पाइ कै।
हौं तौ जैसो तब तैसो अब अधमाई कै कै
पेटु भरौं राम रावरोई गुन गाइ कै।
आपने निवाजे की पै कीजै लाज महाराज
मेरी ओर हेरि कै न बैठिए रिसाइ कै।
पालि कै कृपाल ब्यालबाल को न मारिए
औ काटिए न नाथ बिष हू को रूख लाइ कै॥
—कवितावली, ७।६१

६ तुलसीदास, पृ० १६६

(i) बालक बिलोकि बलि बारें ते आपनो कियो[1]
(ii) भोरानाथ भोरे ही सरोष होत थोरे दोष
पोषि तोषि थापि आपनो न अवडेरिये ॥[2]
(iii) टूकनि को घर घर डोलत कँगाल बोलि[3]

पहले उद्धरण मे 'बारे तें' निश्चय ही कवि की बाल्यावस्था की ओर निर्देश करता है। सभव है कि उसने मदिर का आश्रय लिया हो। 'विनयपत्रिका' की एक पक्ति से इसका अनुमोदन भी होता है।[4] परन्तु, दूसरे और तीसरे उद्धरणो मे कवि के बाल-जीवन का चित्र देखना गलत है, क्योकि उन पद्यो मे प्रयुक्त 'डिंभ', 'बालक' और 'बाल' वृद्धावस्था मे बाहुपीडा-ग्रस्त तुलसी के उपमान हैं।

ऐसा प्रतीत होता है कि बालपन मे ही जीवन-सघर्ष के उग्र थपेडो से व्यग्र तुलसी पर सतो की कृपादृष्टि पडी थी। उन सतो ने तुलसी को अतिशय क्लेशाभिभूत देखकर ढाढस बँधाया

दुखित देखि सतन कह्यो सोचै जनि मन माहूँ।[5]

'विनयपत्रिका' का हवाला देकर बतलाया गया है कि "सतो के अनुरोध से या स्वजाति का अनाथ बालक जानकर नरसिंह जी नाम के एक सत ने तुलसीदास को अपने पास रख लिया। उन्होने तुलसी की पीठ पर हाथ फेरा और बाँह पकडकर अपना लिया

मींजो गुरु पीठ अपनाइ गहि बाँह बोलि—"

उपर्युक्त व्याख्या कवि के तात्पर्य से दूर है। 'विनयपत्रिका' की उक्त पक्ति मे निर्दिष्ट 'गुरु' रामचरितमानस मे उल्लिखित 'नररूप हरि' का द्योतक नही है। सभवत 'गुरु' शब्द के कारण आलोचक को अन्यथा प्रतीति हो गयी है। सदर्भ से साफ प्रकट है कि यहाँ पर 'गुरु' भगवान् राम के लिए आया है।[6] स्पष्ट का स्पष्टीकरण अनावश्यक है।

मूलनाम

'कवितावली' के एक कवित्त से स्पष्टतया ज्ञात होता है कि तुलसीदास का मूलनाम तुलसी था

---

१. हनुमानबाहुक, २१
२ हनुमानबाहुक, ३४
३ हनुमानबाहुक, २६
४. खाई खोंची मांगि मैं तेरो नाम लियो रे।—विनयपत्रिका, ३३।४
५. विनयपत्रिका, २७५।३
६ आरत अनाथ नाथ कोसलपाल कृपाल
लीन्हों छीन दीन देख्यो दुरित दहत हों॥
बूझ्यो ज्योंही कह्यो मैं हूँ चेरो ह्वैहों रावरो जू
मेरो कोऊ कहूँ नाहिं चरन गहत हों।
मींजो गुरु पीठ अपनाइ गहि बाँह बोलि
सेवकसुखद सदा बिरद बहत हों॥—विनयपत्रिका, ७६।२-३

नाम तुलसी पै भोंडो भाँग ते कहायो दासु
किये अंगीकार ऐसे बड़े दगाबाज को।[1]

यही बात 'रामचरितमानस', 'दोहावली' और 'बरवै रामायण' में अविकल रूप से कही गयी है

(i) नाम राम को कल्पतरु कलि कल्यान निवासु।
जो सुमिरत भयो भाँग ते तुलसी तुलसीदासु ॥[2]

(ii) केहि गिनती महँ गिनती जस बनघास।
राम जपत भये तुलसी तुलसीदास ॥[3]

उपर्युक्त पद्यों में तुलसी का अभिप्राय यही है कि "मेरा नाम तो तुलसी था, पर मैं नगण्य वन-घास था, भाँग से भी बुरा और त्याज्य था। जब राम ने मुझे अपने दास-भक्त के रूप में अंगीकार कर लिया तब लोग मुझे आदरपूर्वक 'तुलसीदास' कहने लगे।" तुलनात्मक दृष्टि से यह तथ्य स्मरणीय है कि भक्त-कोटि में प्रतिष्ठित निर्गुण-संतों, कृष्ण-भक्तों आदि के नामों के अंत में आदरास्पद 'दास' का प्रयोग पाया जाता है, जैसे—कबीरदास, सुंदरदास, सूरदास, परमानंददास आदि। यह कहना कठिन है कि 'तुलसी' के साथ 'दास' का संयोग कब और कैसे हुआ।

पं० रामनरेश त्रिपाठी का मत है कि "तुलसीदास का पहला नाम रामबोला था। संभव है राम-राम बोलकर वे भीख माँगा करते थे, इससे लोगों ने उनका नाम 'रामबोला' या 'रामबोलवा' रख लिया होगा। माता-पिता तो मर ही चुके थे, नाम कौन रखता? तुलसीदास को किसी व्यक्तिविशेष का नाम नहीं मालूम था कि किसने उनका नाम रामबोला रखा था, इसी से वे कहते हैं कि राम ने नाम रख दिया था :"[4]

राम को गुलाम नाम रामबोला राख्यो राम।[5]

उपर्युक्त कथन का पूर्वार्ध चिंत्य है। तिरस्कार-सूचक 'राम-बोलवा' से प्रकट है कि तुलसी के बचपन में किसी के द्वारा आरोपित यह नाम तुलसीदास के प्रतिष्ठित होने पर विस्मृत हो गया होगा, परंतु वस्तुस्थिति ऐसी नहीं है। उनका 'रामबोला' नाम वृद्धावस्था में भी प्रचलित था। 'कवितावली' के एक पद्य में कवि ने स्वयं इसका उल्लेख किया है

साहेबु सुजान जिन्ह स्वानहू को पच्छु कियो
रामबोला नामु हौं गुलामु रामसाहि को ॥[6]

इस पर से डॉ० माताप्रसाद गुप्त का यह निष्कर्ष ग्राह्य है कि "यह उसका आध्यात्मिक नाम था, जैसा कभी-कभी वैष्णव भक्तों का हुआ करता है, और केवल इतना ही व्यक्त करता है कि नाम-स्मरण हमारे कवि की भक्ति का एक प्रमुख अंग था।"[7] बहुत संभव

१. कवितावली, ७।१३
२. दोहावली, ११, रामचरितमानस, १।२६
३ बरवैरामायण, ७।५६
४. तुलसीदास और उनका काव्य, पृ० १८-१९
५. विनयपत्रिका, ७७।१
६ कवितावली, ७।१००
७. तुलसीदास, पृ० १७६

है कि तुलसी को लोग केवल 'रामबोला' न कहकर लोक-प्रतिष्ठा के अनुरूप 'रामबोला बाबा' कहते रहे हो।

गुरु और विद्याध्ययन

तुलसी ने अपने गुरु की जो वदना और प्रशस्ति की है उसका उद्देश्य उनका परिचय देना नही है। यदि कवि इस प्रयोजन से अनुप्राणित होता तो उनका कुछ विस्तार से वर्णन करता। उसके दो हेतु प्रतीत होते है। पहला हेतु कृतज्ञता-ज्ञापन है। तुलसी के गुरु वस्तुत सिद्ध-महात्मा थे, महान् विद्या-विशारद थे, और राम-कथा के मर्मज्ञ पडित थे। उन्होने अज्ञानाधकार का निरोध करके 'गुरु' की सार्थकता[1] सिद्ध की थी, तुलसी के मन मे ज्ञान की ज्योति जगायी थी

(१) बंदौं गुरु पद कंज कृपा सिंधु नररूप हरि।
महामोह तम पुज जासु बचन रविकर निकर॥[2]

(२) वंदे बोधमयं नित्य गुरु शकररूपिणं।
यमाश्रितो हि वक्रोपि चद्र. सर्वत्र वद्यते॥[3]

(३) श्री गुर पद नख मनिगन जोती। सुमिरत दिव्य दृष्टि हिय्रँ होती॥
दलन मोह तम सो सुप्रकासू। बड़े भाग उर आवै जासू॥
उघरहिं बिमल बिलोचन ही के। मिटहिं दोष दुख भव रजनी के॥
सूझहिं रामचरित मनि मानिक। गुपुत प्रगट जहँ जो जेहि खानिक॥[4]

(४) गुर पद रज मृदु मजुल अजन। नयन अमिअँ दृग दोष विभजन॥
तेहि करि बिमल बिबेक बिलोचन। बरनौं रामचरित भव मोचन॥[5]

उनके गुरु के नाम और व्यक्तित्व आदि के विषय मे विद्वानो की राय एक नही है। पहले उद्धरण मे आये हुए 'नररूप हरि' के आधार पर कोई कहता है कि उनका नाम 'नरसिंह'[6] था, कोई कहता है 'नृसिंह'[7] था और कोई कहता है—'नरहरिदास' अथवा 'नरहर्यानद'[8] था। 'विनयपत्रिका' की एक उक्ति[9] के आधार पर और 'भविष्यपुराण' की गवाही[10] पेश करके कोई कह सकता है कि उनके गुरु राघवानद थे। परतु यह सब केवल अनुमान है। अस्पष्ट कथन का अवलब लेकर नाम के सबध मे कोई निश्चित धारणा नही बनायी जा सकती। दूसरे उद्धरण को हम गुरु-वदना भी मान सकते हैं और शकर-स्तुति भी। तीसरे-

---

१. अधकारनिरोधत्वाद् गुरुरित्यभिधीयते।
२. रामचरितमानस, १।१। सोरठा ५
३. रामचरितमानस, १।१। श्लोक ३
४. रामचरितमानस, १।१।३-४
५. रामचरितमानस, १।२।१
६. प० रामनरेश त्रिपाठी, तुलसीदास और उनका काव्य, पृ० १६
७. गोस्वामी तुलसीदास (डॉ० भारद्वाज), पृ० २६२
८. डॉ० भगवतीप्रसाद सिंह, रामभक्ति में रसिक सप्रदाय, पृ० ६६
९. विनयपत्रिका, ७६।२-३
१०. नारीशिष्या समादाय राघवानदमागत।

चौथे उद्धरणों से इतना ही प्रमाणित है कि गुरु ने तुलसी के अज्ञानान्धकार को दूर करके उन्हें निर्मल ज्ञान-दृष्टि प्रदान की।

उन्होंने बाल्यावस्था में ही गुरु-मुख से राम-कथा सुनी। तब उनका बौद्धिक विकास नहीं हुआ था, इसलिए कथा के मर्म को भली-भाँति ग्रहण नहीं कर पाये। गुरु ने बारबार कथा सुनायी। प्रौढ़ होने पर उस सुनी हुई कथा को स्वाध्याय-अर्जित ज्ञान से सँवारकर कवि ने 'रामचरितमानस' के रूप में भाषाबद्ध किया :

मैं पुनि निज गुर सन सुनी कथा सो सूकरखेत।
समुझी नहिं तसि बालपन तब अति रहेउँ अचेत॥
श्रोता बकता ग्याननिधि कथा राम कै गूढ़।
किमि समुझौं मैं जीव जड़ कलि मल ग्रसित बिमूढ़॥
तदपि कही गुर बारहिं बारा। समुझि परी कछु मति अनुसारा॥
भाषाबद्ध करबि मैं सोई। मोरें मन प्रबोध जेहिं होई॥[1]

तुलसी ने 'सूकरखेत' में अपने गुरु से राम कथा सुनी थी। इस 'सूकरखेत' की वास्तविक स्थिति के निर्धारण पर बड़े वाचनिक दंगल हुए हैं। इसकी विस्तृत विचार-चर्चा अन्यत्र की गयी है।

उक्त गुरु ने ही तुलसी को राम-भजन का उपदेश दिया। तदनन्तर उन्होंने पुराण आदि शास्त्रों का पारायण किया। अंत में वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि जिन शास्त्रकर्त्ता मुनियों ने संसार-सागर से पार जाने के उपायों का निरूपण किया है उनमें मतैक्य नहीं है, विभिन्न पुराणों में भी जहाँ-तहाँ परस्पर-विरोधी विचार व्यक्त किये गये हैं, केवल गुरु-प्रतिपादित राम-भजन का पथ ही राजमार्ग के समान कल्याणकारी है :

बहु मत मुनि बहु[2] पंथ पुराननि जहाँ तहाँ झगरो सो।
गुरु कह्यो रामभजन नीको मोहिं लगत राजडगरो सो॥[3]

ऐसे उद्धारक गुरु के स्तवन द्वारा कवि ने उनके प्रति हार्दिक कृतज्ञता ज्ञापित की है। तुलसी की गुरु-स्तुति का दूसरा हेतु परंपरा-पालन है। कबीर, जायसी, सूर आदि महान कवियों ने गुरु-महिमा का सादर गान किया है। आदर्श भक्त-कवि तुलसी ने भी उसका सम्यक् निर्वाह किया है। उन्होंने गुरु को राम के समान ही नहीं, उनसे भी बढ़कर माना है।[4]

तुलसीदास की गुरु-संबंधी उक्तियों से हम इतना ही जान पाते हैं कि उनके गुरु योग्य विद्वान् थे, 'सूकरखेत' में उन्होंने सुकुमारबुद्धि बालक तुलसी को बारबार राम-कथा सुनायी, और उन्हें राम-भक्ति के प्रशस्त मार्ग पर चलने की प्रेरणा दी। आगे चलकर तुलसी ने व्यापक वाङ्मय का विशद अध्ययन किया। इस पर यथास्थान विचार किया जाएगा।

---

१. रामचरितमानस, १।३०-१।३१।१
२ पाठांतर—बहुमत सुनि गुनि
३. विनयपत्रिका, १७३।५, तुलना कीजिए—
सुनहु मधुप निरगुन कटक तें राजपथ क्यों रूँधौ।—सूरसागर, ४५१०
४. तुम्ह तें अधिक गुरहि जिअँ जानी।—रामचरितमानस, २।१२९।४

विवाह और गार्हस्थ

तुलसीदास की कृतियो में ऐसा कोई उल्लेख नही मिलता जो उनके विवाह एव गार्हस्थ जीवन का निश्चायक प्रमाण हो। कतिपय उक्तियाँ इस दिशा मे इगित मात्र करती हैं। डॉ० रामदत्त भारद्वाज का यह कथन युक्तियुक्त है कि तुलसी के विवाह के सबध मे 'हनुमानबाहुक' का निम्नलिखित साक्ष्य प्रबलतम प्रतीत होता है[1]:

बालपने सूधे मन राम सनमुख भयो
रामनाम लेत माँगि खात टूकटाक हौं।
परयो लोकरीति मे पुनीत प्रीति रामराय
मोहबस बैठो तोरि तरकि तराक हौं।
खोटे खोटे आचरन आचरत अपनायो
अजनीकुमार सोध्यो रामपानि पाक हौं।
तुलसी गोसाईं भयो भोड़े दिन भूलि गयो
ताको फल पावत निदान परिपाक हौं॥[2]

तुलसी का तात्पर्य है—'मैं बाल्यावस्था मे ही निश्छल भाव से राम के समुख हुआ, 'राम-राम' जपता हुआ भीख-टुकडा माँग-खाकर सुख-शाति से जीवन-यापन करता रहा, परतु सहसा अज्ञानवश राजा रामचद्र की पवित्र-प्रीति (भक्ति) को एक ही झटके मे तोड बैठा और लोक-रीति (विवाह करके गृहस्थी के जाल) मे फँस गया।' लोक-रीति मे पडना दार-परिग्रह का ही व्यजक है। तुलसीदास ने विवाहित जीवन व्यतीत किया था, इसका सकेत 'दोहावली' के एक दोहे से भी मिलता है

खरिया खरी कपूर सब उचित न पिय तिय त्याग।
कै खरिया मोहि मेलि कै बिमल बिबेक बिराग॥[3]

इस दोहे की प्रसग-कल्पना करते समय इसमें किसी अन्य व्यक्ति के दापत्य-जीवन का सकेत मानने की अपेक्षा स्वय तुलसीदास के विवाहित जीवन का निर्देश मानना अधिक स्वाभाविक और युक्तिसगत प्रतीत होता है। 'विनयपत्रिका' की एक पक्ति से भी इस धारणा का समर्थन होता है

सखा न सुसेवक न सुतिय न प्रभु आप माय बाप तुही साँचो तुलसी कहत।[4]

जो आलोचक 'सुतिय न' का यह अर्थ करते हैं कि तुलसी के कोई पत्नी नही थी (क्योकि उन्होने विवाह ही नही किया) उन्हे उसी साँस मे यह भी मान लेना पड़ेगा कि उनके माँ-बाप भी नहीं थे। और यह अनर्थकता की चरम सीमा होगी।

कुछ आलोचको ने 'विनयपत्रिका' के अनेक पदो मे तुलसी की यौवनकालीन कामासक्ति और विषय-वासना की आत्माभिव्यक्ति स्वीकार की है

---

१. गोस्वामी तुलसीदास, पृ० २९६
२. हनुमानबाहुक, ४०
३ दोहावली, २५५
४. विनयपत्रिका, २७६।३

(१) जोवन जुर जुवती कुपथ्य करि भयो त्रिदोष भरि मदन बाय ।[1]

(२) जोवन जुवती सँग रँग रात्यो । तब तू महा मोह मद मात्यो ।
ताते तजी धरम मरजादा । बिसरे तव सव प्रथम विषादा ॥[2]

(३) नयन मलिन परनारि निरखि मन मलिन विषय सँग लागे ।
हृदय मलिन वासना मान मद जीव सहज सुख त्यागे ॥[3]

उपर्युक्त उद्धरणो के विषय मे इतना ही सकेत कर देना पर्याप्त है कि उनमे कवि की स्वगत जीवनी नही है, विषयासक्त सासारिक जीव के जीवन का वैराग्य-प्रेरक सामान्य चित्र अकित किया गया है । अतिम उद्धरण मे प्रयुक्त 'जीव' शब्द स्वय प्रमाण है । 'विनय-पत्रिका' के १३६वें पद मे जीव के ससृति-चक्र का, गर्भ-दशा से लेकर वृद्धावस्था तक के जुगुप्सनीय जीवन का, सक्षिप्त एव व्यवस्थित चित्रण करके वैराग्य की पृष्ठभूमि मे भक्ति-ज्ञान का निरूपण किया गया है । उसे तुलसी की आत्मकथा समझना ठीक नही है ।

प० रामनरेश त्रिपाठी का कथन है कि धन के लिए तुलसीदास ने खेती की, व्यापार किया और अनेक उपाय रचे ।[4] उनकी मान्यता का आधार है

मध्य वयस धन हेतु गँवाई कृषी बनिज नाना उपाय ।[5]

कहा जा चुका है कि इस प्रकार की उक्तियाँ आत्मचरितात्मक न होकर जीव (मानव) मात्र की ससार-दशा का निदर्शन करती हैं । अपने उक्त कथन का वल-वर्धन करते हुए उन्होने आगे कहा है कि तुलसी ने 'नापे-जोखे', 'खेत के से धोखे', 'साग खाइ जाये माइ', 'पीना खाइपोखे', 'गाँठि पानी परे सनकी', 'लेवा देई', 'लसम', 'मुलाखि' आदि किसानो और व्यापारियो की ठेठ वोल-चाल के जो सटीक प्रयोग किये है वे इस तथ्य के प्रमाण हैं कि उन्होने खेतिहर और व्यापारी का जीवन बिताया था ।[6] उनकी इस अनुमिति मे दम नहीं है । लोक-जीवन का अवेक्षक प्रतिभावान् कवि इस प्रकार की विशिष्ट शब्दावली का सहज व्यवहार कर सकता है । कुछ शब्दो के यथोचित प्रयोग के हिसाब से कवि को तत्सबधी व्यवसायी मानने पर तो तुलसी को वैद्य, साग्रामिक आदि भी मानना पडेगा क्योकि उन्होने रोगो और पुटपाक, शस्त्रास्त्रो एव युद्ध का भी सटीक वर्णन किया है । अतएव किसान अथवा वणिक् के रूप मे तुलसी की कल्पना दूर की कौडी है ।

प० रजनीकात शास्त्री के विचार से तुलसीदास का 'तथाकथित विवाह' हुआ ही नही । उनका कहना है कि तुलसी का समूचा जीवन-काल दो ही विभागो मे वंटा हुआ है—वाल्य-काल और वैराग्य-काल । उनके जीवन मे गार्हस्थ्य-काल कभी आया ही नही—कोई पिता इतना मूर्ख नही हो सकता कि एक कुत्ते की तरह घर-घर की जूठन खाकर

---

१ विनयपत्रिका, ८३।२, देखिए—तुलसीदास, पृ० १७५, तुलसीदास और उनका काव्य, पृ० २१

२ विनयपत्रिका, १३६।७, देखिए—गोस्वामी तुलसीदास (डा० भारद्वाज) पृ० २९६

३. विनयपत्रिका, ८२।२, देखिए—गोस्वामी तुलसीदास, (डॉ० भारद्वाज), पृ० २९७

४ तुलसीदास और उनका काव्य, पृ० २०

५ विनयपत्रिका, ८३।३

६ तुलसीदास और उनका काव्य, पृ० २२-२३

पेट पालने वाले अनाथ लडके से अपनी कन्या का पाणिग्रहण करवाकर उसे जीते-जी भाड मे झोक दे।[1] उनकी इस आपत्ति का परिहार स्वय कवि के पूर्वोद्धृत आप्तवचनो से हो जाता है :

परयो लोकरीति मे पुनीत प्रीति रामराय
मोहबस बैठो तोरि तरकि तराक हौं।[2]
सखा न सुसेवक न सुतिय न प्रभु आप
माय बाप तुही साँचो तुलसी कहत।[3]

पहले उद्धरण मे कवि साफ कह रहा है कि मैं बालपन मे राम-नाम लेता था, लेकिन उसके बाद मोहवश राम-प्रेम को छोडकर लोकरीति मे पड गया। पद्य के प्रसग मे 'लोकरीति' से गृहस्थाश्रम के अतिरिक्त कोई दूसरा व्यग्य निकालना अप्रासगिक है। बाल्य-काल बीत चुका है, और वैराग्य-काल मे लोकरीति का होना सभव नही है क्योंकि लोकरीति से विरक्त-दशा ही वैराग्य-काल है। अत इन दोनो के बीच गार्हस्थ-काल का अस्तित्व मानना अपरिहार्य है। दूसरे उद्धरण का तात्पर्य भी असदिग्ध है—'मेरे माँ-बाप थे, सखा थे, सुसेवक थे, सुतिय थी, परतु अब कोई नही हैं। हे प्रभो ! तुम्ही मेरे सब कुछ हो।' कवि का यह निवेदन साभिप्राय है। वह शरणागतवत्सल राम के स्वभाव को जानता है

जननी जनक बधु सुत दारा। तनु धन भवन सुहृद परिवारा॥
सब कै ममता ताग बटोरी। मम पद मनहिं बाँधि बरि डोरि॥
समदरसी इच्छा कछु नाहीं। हरष सोक भय नहिं मन माही॥
अस सज्जन मम उर बस कैसें। लोभी हृदयँ बसै धनु जैसें॥
तुम्ह सारिखे सत प्रिय मोरें। धरौं देह नहिं आन निहोरें॥[4]

इसलिए सभी जागतिक सबधो का भगवान् मे आरोप करके उनकी कृपा का अधिकार बन जाना चाहता है।

वैराग्य-काल मे सभावित विवाह की सभावना को लक्ष्य करके शास्त्री जी क उपपत्ति है—"इस काल मे आपका विवाह हुआ मानना केवल और भी असभव होने के साथ-साथ हास्यजनक ही नही है, बल्कि आपके निजी लेखो के विरुद्ध होने के कारण निरी मूर्खता है, क्योकि आपने तो अपने वैराग्य-काल मे अपने श्रीमुख से ही यह कहक-कि 'ब्याह न बरेखी जाति-पाँति न चहत हौं' अन्वेषक-गण को इस विषय मे अधिक जाँच पडताल करने की परेशानी से मुक्त कर दिया है।"[5] जहाँ तक मेरी जानकारी है, किस भी अन्वेषक ने तुलसी के वैराग्य-काल मे उनके विवाह की सकल्पना करने की बुद्धिमत्त नही की है। कदाचित् इस प्रश्न का उठाना ही उन्होने हास्यास्पद समझा है। शास्त्री ज

१ मानस-मीमांसा, पृ० ३७-३८
२ हनुमानबाहुक, ४०
३. विनयपत्रिका, २५६।३
४. रामचरितमानस, ५।४८।२-४
५. मानस-मीमांसा, पृ० ३९-४०

ने इस अकल्पित मान्यता का प्रत्याख्यान करके वन्ध्या-पुत्र के नाम का प्रशंसनीय पराक्रम किया है। 'ब्याह न बरेखी' से यह व्यंजना नहीं निकलती कि वैराग्य से पूर्व तुलसी का विवाह नही हुआ था। यदि इस उक्ति से यह अर्थ निकल सकता है कि तुलसी आजीवन अविवाहित रहे तो 'काहू की बेटी सो बेटा न ब्याहब'[1] से यह अर्थ क्यो नहीं निकल सकता कि उनके एक बेटा भी था? निष्कर्ष यह कि तुलसी-साहित्य मे ऐसा कोई प्रामाणिक अतस्साक्ष्य नही है जिससे उनके आजीवन अविवाहित रहने की पुष्टि हो सके।

'दोहावली' का एक दोहा है

घर कीन्हें घर जात है घर छोड़े घर जाइ।
तुलसी घर बन बीच ही राम प्रेम पुर छाइ॥[2]

इस दोहे की व्यंजना के आधार पर डॉ० माताप्रसाद गुप्त ने यह निष्कर्ष निकाला है कि "गृह-त्याग के उपरात कवि को एकात-जीवन और समाज-सबद्ध जीवन मे से एक को ग्रहण करना था, उसने मध्यम-मार्ग अपनाया।"[3] उक्त दोहे के सदर्भ मे 'एकांत-जीवन और समाज-सबद्ध जीवन' का गोलमोल अर्थ सदिग्ध है। कवि का आशय स्पष्ट है। एक 'घर' भौतिक गृह है। कहावत है—न गृह गृहिणी बिना (घरनी के बिना घर नहीं होता)। अतएव उसका लक्ष्यार्थ हुआ—गृहस्थाश्रम। उस 'घर' को छोड़ना वैराग्यपूर्वक वानप्रस्थ अथवा सन्यास ग्रहण करना है।[4] दूसरे 'घर' का लक्ष्यार्थ है—जीव का पारमार्थिक निवास-स्थल, अर्थात् आनद-सिंधु राम।[5] पूरी पक्ति का तात्पर्य है—गृह-त्याग से, अर्थात् सन्यास-ग्रहण करने से, गृहस्थी चली जाती है, और गृहस्थी को बनाये रखने से पारमार्थिक गृह अर्थात् राम-भक्ति और सालोक्य मुक्ति की प्राप्ति नहीं होती। यह 'उभयदश' है। समन्वयवादी कवि ने इस द्विविधा का समाधान उक्त दोहे की दूसरी पक्ति मे प्रस्तुत किया है—राम-भक्ति के लिए गृहत्याग अनिवार्य नहीं है, अनासक्त-भाव से गृहस्थाश्रम मे रहकर भी भगवद्भजन किया जा सकता है। अब प्रश्न यह है कि क्या कवि का यह वचन स्वविषयक है। मेरे विचार से, नहीं है। ऐसा कोई भी अतस्साक्ष्य या बहिस्साक्ष्य उपलब्ध नही है जिससे इस अनुमान की पुष्टि हो सके कि तुलसी ने इस प्रकार के 'मध्यम-मार्ग' का स्वय अनुसरण किया था। इसलिए इस दोहे को आत्मपरक न मानकर सामान्याश्रित सामान्य-उक्ति ही समझना चाहिए।

वैराग्य और तीर्थसेवन

तुलसीदास का विरक्त होना निर्विवाद है। उन्होंने किन परिस्थितियो के कारण कब और कैसे वैराग्य लिया, इस विषय मे कोई अतस्साक्ष्य नही मिलता। उनकी कृतियो के अनुशीलन मे ज्ञात होता है कि उनके साहित्यिक जीवन का आरभ वैराग्य लेने के

१. कवितावली, ७।१०६
२. दोहावली २५६
३. तुलसीदास, पृ० १७६
४. मिलाइए—रामचरितमानस, १।१४२
५. मिलाइए—विनयपत्रिका, १३६।२; रामचरितमानस, १।१६७।३

उपरात हुआ। वीतराग तुलसी ने किन-किन स्थानो की यात्रा की और कब से कब तक कहाँ रहे, इसका विस्तृत विवरण उनकी रचनाओ में नही पाया जाता। उनकी कृतियो से इतना निश्चित है कि उन्होने काशी, अयोध्या और चित्रकूट मे निवास किया था, प्रयाग और सीतामढ़ी की भी यात्रा की थी। उनके वैराग्य-काल का अधिकाश काशी मे व्यतीत हुआ था, वही पर उनकी लोक-यात्रा समाप्त हुई।

'रामचरितमानस' से प्रमाणित है कि वे अयोध्या मे कुछ समय तक रहे थे और वही अपने महाकाव्य का आरभ किया था .

(i) नौमी भौमवार मधु मासा। अवधपुरी यह चरित प्रकासा॥[1]

(ii) सब विधि पुरी मनोहर जानी। सकल सिद्धिप्रद मगल खानी॥
बिमल कथा कर कीन्ह अरभा। सुनत नसाहिं काम मद दंभा॥[2]

'विनयपत्रिका' की निम्नाकित पक्तियो मे लौकिक जीवन की 'मोह-माया' से व्याकुल चित्त की चित्रकूट-यात्रा के प्रति जो छटपटाहट व्यक्त की गयी है उससे सूचित होता है कि गृह-त्याग के अनतर ही तुलसी ने चित्रकूट-यात्रा की थी

अब चित चेति चित्रकूटहि चलु।
कोपित कलि लोपित मगल मगु विलसत बढत मोह माया मलु॥
न करु बिलब विचारु चारुमति वरष पाछिले सम अगिले पलु।
मत्र सो जाइ जपहि जो जपि भे अजर अमर हर अचइ हलाहलु॥[3]

दूसरी पक्ति के आधार पर डॉ० भारद्वाज का यह अभिकथन सदेहास्पद है कि 'कोपित कलि' का इगित क्रुद्धा पत्नी की ओर है जिसे वे कल्याण-मार्ग से हटाने वाली और मोहमायामल को बढाने वाली समझे थे।[4] 'रामाज्ञाप्रश्न' के अधोलिखित दोहे भी उनकी चित्रकूट-यात्रा की ओर सकेत करते हुए प्रतीत होते हैं

पय पावनि बन भूमि भलि सैल सुहावन पीठ।
रागिहि सीठ बिसेषि थलु बिषय बिरागिहि मीठ॥
सगुन सकल सकट समन चित्रकूट चलि जाहु।
सीता राम प्रसाद सुभ लघु साधन बड लाहु॥[5]

अपने विभिन्न ग्रथो[6] में तुलसी ने चित्रकूट का वर्णन जिस निष्ठा और विस्तार से किया है उससे इस तीर्थस्थान के प्रति उनका अतिशय प्रेम प्रकट होता है। किवदती है कि चित्रकट मे तुलसी को राम का दर्शन हुआ था। 'चित्रकूट को चरित्र'[7] सभवत इसी दर्शन की ओर निर्देश करता है। गीतावली[8] के पदो में चित्रकूट का सश्लिष्ट चित्राकन उस

१. रामचरितमानस, १।३४।३
२ रामचरितमानस, १।३५।३
३ विनयपत्रिका, २४।१,४
४ गोस्वामी तुलसीदास, पृ० ३११
५. रामाज्ञाप्रश्न, २।६।१, ३
६ रामचरितमानस, २।१३२।२-१३९।४, कवितावली, ७।१४१-४३, विनयपत्रिका, २३-२४, २६६
७ विनयपत्रिका, २६४।५
८. गीतावली, २।४३-५०

तीर्थस्थल की महिमा के साथ ही तुलसी की उत्कृष्ट काव्य-कला का प्रकृत निदर्शन है। व्यापक आयाम मे विखरे हुए चित्रकूट-विषयक विविध वर्णनो से अनुमान किया जा सकता है कि उन्होने चित्रकूट की अनेक वार यात्रा की थी। परतु उनके निवास-काल की अवधि निश्चित करना सभव नही है। 'रामाज्ञाप्रश्न' का निम्नलिखित दोहा उद्धृत करते हुए डॉ० माताप्रसाद गुप्त ने निर्धारित किया है कि "तुलसीदास ने विरक्त होने के अनतर कुछ काल तक—कम से कम छ मास तक— चित्रकूट-सेवन किया था"[1]

पय नहाइ फल खाइ जपु राम नाम षट मास।
सगुन सुमगल सिद्धि सव करतल तुलसीदास॥[2]

डॉ० भारद्वाज ने भी इस मान्यता का समर्थन किया है।[3] इसमे सदेह नही कि वैराग्य धारण करने के उपरात तुलसी ने चित्रकूट-सेवन किया, किंतु 'छ मास' वाली वात सभाव्य होते हुए भी निर्णयात्मक नही जँचती। कारण यह है कि जिस दोहे को प्रमाण माना गया है वह इस विषय मे आभास मात्र है। 'षटमास' का उल्लेख जिस दोहे मे किया गया है वह दोहा सप्तम सर्ग के चतुर्थ सप्तक के अत मे आया है। वहाँ पर चित्रकूट-वर्णन का कोई प्रसग ही नही है। अत उसे चित्रकूट-विषयक मानना काल्पनिक है। 'विनयपत्रिका' के एक पद से सूचित होता है कि अशात तुलसीदास ने शाति-लाभ के लिए अनेक तीर्थस्थानो की लवी यात्राएँ की और फिर स्थिर होकर चित्रकूट मे कुछ समय तक निवास किया

अगनित गिरि कानन फिर्‌यो विनु आगि जर्‌यो हौं।
हौं सुवरन कुवरन कियो नृप तें भिखारि करि सुमति तें कुमति कर्‌यो हौं।[4]

'कवितावली'[5] के तीन पद्यो मे कवि ने सीतामढी और सीतावट का जो सजीव चित्रण किया है उससे जान पडता है कि उसने इस दृश्य को अपनी आँखो से देखकर शब्दवद्ध किया है। 'विनयपत्रिका'[6] के एक पद मे नर-नारायण की स्तुति की गयी है। गधमादन पर्वत पर वदरिकाश्रम क्षेत्र है। वह नर-नारायण का स्थान है।[7] पूरे पद से, विशेषकर उसके अतर्गत वदरिकाश्रम के वर्णन से, सूचित होता है कि तुलसी ने वहाँ की भी यात्रा की थी।

तुलसी के वैराग्यकालीन जीवन का सर्वाधिक सवध काशी से रहा। जीवन के अतिम वर्षों मे, महाप्रयाण के समय तक, वे वही रहे। वे काशी कव पहुँचे ? इस प्रश्न का निर्णयात्मक उत्तर नही दिया जा सकता। 'रामचरितमानस' के पूर्व रचित 'रामाज्ञाप्रश्न' का एक दोहा है

---

१. तुलसीदास, पृ० १७३
२. रामाज्ञाप्रश्न, ७।४।७
३ गोस्वामी तुलसीदास, पृ० २९९
४. विनयपत्रिका, २६६।२
५. कवितावली, ७।१३८-४०
६. पद ६०
७. विष्णुपुराण, ५।३७।३४

सगुन प्रथम उनचास सुभ तुलसी अति अभिराम।
सब प्रसन्न सुर भूमिसुर गो गन गंगा राम ॥[1]

कहा जाता है कि गगाराम काशी मे प्रह्लादघाट पर रहते थे। यदि उक्त दोहे के 'गगाराम' को व्यक्तिवाचक नाम मान लिया जाए तो कहा जा सकता है कि तुलसी विरक्त होने के कुछ ही काल पश्चात् वहाँ पहुँच गये थे। काशी को उन्होने अपना स्थायी निवास-स्थान बना लिया था। 'विनयपत्रिका' और 'रामचरितमानस' मे उन्होने जीवनपर्यंत काशी-सेवन पर बल दिया है।[2] उससे यही धारणा बनती है। उन्होने काशी की सहारकारिणी रुद्रबीसी, भयकर 'मीन की सनीचरी' और प्रचड महामारी का जो व्यापक वर्णन किया है[3] उससे इस धारणा की पुष्टि होती है। विभिन्न विद्वानो के अनुसार रुद्रबीसी का समय स० १६२३-१६४२, स० १६५५-१६७५ अथवा स० १६६५-८५ है, मीन की सनीचरी का काल स० १६४०-४२ अथवा १६६६-७१ है; और महामारी (ताऊन) का आगमन स० १६७३ मे हुआ। इन सबसे उनके दीर्घकालीन काशी-वास का निश्चय होता है। 'कवितावली' और 'हनुमानबाहुक' के दो पद्यो से सकेत मिलता है कि वे अपने जीवन के अतिम काल मे काशी मे रहकर ही मृत्यु की प्रतीक्षा कर रहे थे।[4]

स्नेही-मित्र

तुलसी की काव्य-कृतियो से उनके किसी स्नेही-मित्र का परिचय नही मिलता। 'रामाज्ञाप्रश्न' के पूर्वोक्त दोहे में उल्लिखित 'गगाराम' को उनका मित्र बतलाया गया है। उनके दूसरे मित्र टोडर माने जाते हैं। काव्यो मे उनका उल्लेख नही है, परतु उनकी मृत्यु के अनतर उनके उत्तराधिकारियो के बीच समझौता कराने के लिए स० १६६६ मे जो पचायतनामा हुआ था वह तुलसी-कृत कहा जाता है। ऐसी मान्यता है कि कम से कम उसका सिरनामा तुलसी का हस्तलेख है। उनके तीसरे शसित मित्र अब्दुर्रहीम खानखाना हैं। कवि ने उनका भी कहीं नाम-निर्देश नही किया है। कहा जाता है कि 'बरवैरामायण' की रचना उन्ही की मैत्री का परिणाम है। मीराँबाई के साथ तुलसी के पत्र-व्यवहार की बात भी कही जाती है। कुछ लोगो[5] का विश्वास है कि 'विनयपत्रिका' का १७४वाँ पद मीराँ के पत्र का तुलसी द्वारा लिखित उत्तर है। किसी-किसी[6] का खयाल है कि यह पद तुलसीदास की कथित पत्नी रत्नावली के पत्र का उत्तर है।

संमान और विरोध

तुलसीदास की उक्तियो से सिद्ध है कि अपने जीवन के उत्तरकाल मे वे महामुनि माने जाते थे

---

१. रामाज्ञाप्रश्न, १।७।७
२ विनयपत्रिका, २२।१, रामचरितमानस, ४।१।सोरठा
३ दोहावली, २४०, कवितावली, ७।१७०, ७।१७७, ७।१७३-७६, १८३
४ कवितावली, ७।१६७, हनुमानबाहुक, ४२
५ हिंदी-साहित्य का इतिहास, पृ० १८४-८५
६. गोस्वामी तुलसीदास (डॉ० भारद्वाज), पृ० ३१६

राम नाम को प्रभाउ पाउ महिमा प्रतापु
तुलसी से जग मानियत महामुनी सो ।[1]

कवि और संत के रूप में उनकी लोकव्यापी प्रतिष्ठा थी

जो सुमिरत भयो भाँग ते तुलसी तुलसीदास ।[2]

बड़े-बड़े पदाधिकारी और भूपति उनका चरण-स्पर्श करते थे

घर घर माँगे टूक पुनि भूपति पूजे पाय ।
जे तुलसी तब राम बिनु ते अब राम सहाय ।।[3]

फूलों के साथ काँटे भी थे। कवि की अनेक उक्तियों से ध्वनित होता है कि ऐसे मत्सरी जीवों की भी कमी नहीं थी जो सहस्र नेत्रों से तुलसी के दोष देखने का प्रयत्न करते थे, जिनके हृदय में उनका यश शूल की भाँति चुभ रहा था, और जो उनकी हानि में ही अपना लाभ समझते थे।[4] 'रामचरितमानस' में प्रयुक्त भविष्यत्कालिक क्रिया 'हँसिहहिं' (हँसिहहिं कूर कुटिल कुविचारी। जे परदूषन भूषन धारी[5]) से सूचित होता है कि इस महाकाव्य की रचना के पूर्व भी तुलसी के निंदक थे और पश्चात्काल में भी। कवि की लोकप्रियता के साथ-साथ द्वेषियों का विरोध-भाव भी बढ़ता गया। 'दोहावली' के साक्ष्य से इसकी निस्संदेह पुष्टि होती है

माँगि मधुकरी खात ते सोवत गोड़ पसारि ।
पाप प्रतिष्ठा बढ़ि परी ताते बाढ़ी रारि ।।[6]

उन्होंने अनुभव किया कि लोकमान्यता की आग तपोवन को जला देती है, समान योगश्री का अपकारक है और प्रतिष्ठा के कारण असहनशील खलों की जलन बड़ी संतापकारिणी है। जब वे भीख माँगकर खाते थे तब निश्चिंत भाव से पाँव पसारकर सोते थे। पापरूपिणी प्रतिष्ठा के बढ़ने पर स्पर्धी एवं ईर्ष्यालु जनों की रार भी बढ़ गयी। रावण के समान अत्याचारी, खर-दूषण के सदृश अहंकारी और मारीच के तुल्य कपटी दुष्ट उन्हें अनेक प्रकार से तंग करते थे। उनके साहस-कर्मों का यथातथ्य अभिधान कवि ने नहीं किया, परंतु व्यंजना की सहायता से उनका कुछ संकेत अवश्य मिल जाता है :

बासर ढासनि से ढका रजनीं चहुँ दिसि चोर ।
संकर निज पुर राखिए चितै सुलोचन कोर ।।[7]

तुलसी के पास कोई संपत्ति नहीं थी। अतः इस दोहे से ध्वनित होता है कि विद्वेषी लोग उन्हें परिपीड़ित करने के लिए इस प्रकार के उपद्रव करवाते थे।

तुलसी के तत्कालीन विरोधियों को तीन वर्गों में रखा जा सकता है—साहित्य से

---

१ कवितावली, ७।७२
२ रामचरितमानस, १।२६
३. दोहावली, १०९
४ रामचरितमानस, १।४।१-२, दोहावली, ३८८-८९
५. रामचरितमानस, १।८।५
६. दोहावली, ४९४
७. दोहावली, २३९

परिचित सस्कृतवादी, कट्टर जातिवादी ब्राह्मणऔर सप्रदायवादी शैव। संस्कृतवादी उनके 'भाषा-निबध' का उपहास करने वाले दोषदर्शी आलोचक थे। कवि की निम्नाकित पक्तियो के लक्ष्य वे ही प्रतीत होते हैं

हँसर्हाहि क्रूर कुटिल कुविचारी। जे पर दूषन भूषन धारी॥
खल परिहास होइ हित मोरा। काक कहहि कलकठ कठोरा॥
हंसहि बक दादुर चातक ही। हँसहि मलिन खल विमल वतकही॥
कवित रसिक न राम पद नेहू। तिन्ह कहँ सुखद हास रस एहू॥
भाषा भनिति भोरि मति मोरी। हँसिबे जोग हँसे नहि खोरी॥[१]

का भाषा का सस्कृत प्रेम चाहिए साँच।
काम जु आवै कामरी का लै करिअ कुमाच॥[२]

जातिवादी ब्राह्मण अपने को हिंदू-धर्म का ठेकेदार समझते थे। वे धर्म-कोष की कुजी अपने हाथ में रखना चाहते थे। भाषाबद्ध 'रामचरितमानस' सर्वसुलभ था। वह समाज मे धर्मग्रथ के रूप मे समादृत होने लगा था। कट्टर ब्राह्मण इसे नहीं सह सकते थे। तुलसी और 'रामचरितमानस' के गौरव को जनता की दृष्टि मे गिराने के लिए उन्होने तुलसी की जाति पर भी आक्षेप करना आरभ किया। वैष्णव तुलसीदास उदार थे। वे जाति-पाँति के भेद-भाव से दूर रहकर सभी भक्तो के साथ समानता का व्यवहार करते थे। उनकी इस उदारता से कट्टर ब्राह्मणो को और बल मिला। वे जन-मानस में यह बात बिठा देने का प्रयत्न करने लगे कि तुलसी ब्राह्मण नही है, क्योकि वह ब्राह्मण-व्यवस्था का पालन नहीं करता। तुलसीदास किस-किस को अपने ब्राह्मणत्व की सफाई देते फिरते। इस अपवाद से ऊबकर उन्हे कहना पड़ा

(i) लोग कहैं पोच सो न सोच न संकोच मेरे
ब्याह न बरेखी जाति पाँति न चहत हौं॥[३]

(ii) मेरे जाति पाँति न चहौं काहू की जाति पाँति
मेरे कोऊ काम को नहौं काहू के काम को॥[४]

इन उद्धरणो का यह अर्थ निकालना न्याय-सगत नही है कि तुलसी को अपनी जाति का पता नही था और न उनका विवाह हुआ था। पहली पक्ति मे प्रयुक्त 'पोच' की व्यजना प्रसग-कल्पना मे सहायक है। लोग आक्षेप करते थे—अपने को ब्राह्मण बताने वाला तुलसी लबार है, वह निम्न वर्ण का व्यक्ति होकर कुलीन होने का ढोग करता है। तुलसी का झुँझलाहट-भरा खरा उत्तर था—जिसके मन मे जो आए, बके; मुझे इसका कोई सोच-सकोच नही है, मुझे किसी के यहाँ व्याह-शादी नही करनी है, मुझे किसी की जाति-पाँति नही चाहिए, मेरी कोई जाति नही है, मैं किसी की जाति-बिरादरी मे नहीं रहना चाहता हूँ। ऐसा ही खीझ-भरा उत्तर उन्होने दुराग्रही अवतार-विरोधियो को भी दिया था

१. रामचरितमानस, १।८।५, १।९।१-२
२. दोहावली, ५७२
३. विनयपत्रिका, ७६।४
४. कवितावली, ७।१०७

जौं जगदीस तौ अति भलो जौं महीस तौ भाग।
तुलसी चाहत जनम भरि राम चरन अनुराग॥[1]

सम्प्रदायवादी शैव कम त्रासकारक नही थे। काशी शिव की नगरी कही गयी है। उस नगरी मे तुलसी के 'रामचरितमानस' ने राम-भक्ति की वेगवती धारा बहा दी। फलत शैवो का, विशेषतया शिव-मदिर के पुजारियो का, तिलमिला उठना स्वाभाविक था। तुलसी का समन्वयवादी दृष्टिकोण उन्हे सतुष्ट न कर सका। वे तुलसी को अनेक प्रकार की बाधा पहुँचाने लगे, उनके पीछे पड गये। उनके शक्ति-प्रयोग से परेशान होकर उन्होने शैवो के स्वामी भगवान् शिव से ही उनके भक्तो के दुर्व्यवहार की शिकायत और उन्हे बरजने की प्रार्थना की

(i) देवसरि सेवौं बामदेव गाउं रावरेहीं
नाम राम ही के मांगि उदर भरत हौं।
दीबे जोग तुलसी न लेत काहू को कछुक
लिखी न भलाई भाल पाच न करत हौं।
एते पर हूं जो कोऊ रावरो ह्वै जोर करै
ताको जोर देव दीन द्वारे गुदरत हौं।
पाइ कै उराहनो उराहनो न दीजो मोहि
कालकला कासीनाथ कहें निवरत हौं॥[2]

(ii) गांव बसत बामदेव मैं कबहूं न निहोरे।
अधिभौतिक बाधा भई ते किंकर तोरे॥
बेगि बोलि बलि बरजिये करतूति कठोरे।
तुलसी दलि रूंध्यो चहैं सठ साखि सिहोरे॥[3]

दूसरे उद्धरण पर त्रिपाठी जी की टिप्पणी है "इससे प्रकट होता है कि शिव के किंकरो ने तुलसीदास को कोई शारीरिक कष्ट पहुँचाया था। सभवत उन्हे मारा-पीटा हो। वे शिव जी से प्रार्थना करते थे कि कृपया अपने सेवको को रोकिए कि वे अपना कठोर कम बद करें। पर घिघियाते हुए भी वे शिव के किंकरो को 'शठ' कहते ही जाते थे।"[4] एक अन्य कवित्त में उन्होने तीक्ष्ण लक्षणा-व्यजना के द्वारा रामभक्त-विद्वेषी घोर शैवो को भूत-प्रेत-पिशाचो की श्रेणी मे रखकर शकर-भवानी की दुहाई दी है

भूतभव भवत पिसाच भूत प्रेत प्रिय
आपनो समाज सिव आपु नीकें जानिये।
नाना वेष बाहन बिभूषन बसन बास
खान पान बलि पूजा बिधि को बखानिये॥

---

१. दोहावली, ९१
२. कवितावली, ७।१६५
३ विनयपत्रिका, ८।३-४
४ तुलसीदास और उनका काव्य, पृ० ३०

राम के गुलामनि की रीति प्रीति सूधी सब
सब सों सनेह सबही को सनमानिये।
तुलसी की सुधरै सुधारे भूतनाथ ही के
मेरे माय बाप गुरु संकर भवानिये॥[1]

रामभक्ति-निंदकों के विरोध ने उनकी सहनशीलता को अतिक्रांत कर दिया। विक्षुब्ध तुलसी ने खूब किचकिचाकर उन पर भरपूर प्रहार किया है

तिन्ह तें खर सूकर स्वान भले जड़ता बस ते न कहैं कछु वै।
तुलसी जेहि राम सो नेहु नहीं सो सही पसु पूंछ बिषान न द्वै॥
जननी कत भार मुई दस मास भई किन बाँझ गई किन च्वै।
जरि जाउ सो जीवनु जानकीनाथ जियै जग मे तुम्हरो बिनु ह्वै॥[2]

तीसरे चरण तक पहुंचते-पहुंचते कवि की मर्यादावादी चेतना बिखर गयी है। 'भई किन बाँझ गई किन च्वै' मे आवेश के आपूर से श्लीलता-अश्लीलता का सीमा-बंध भहरा कर टूट गया है।

इस गुणदोषमय विश्व मे देवतात्मा साधु भी हैं, और राक्षसी प्रवृत्ति वाले असाधु भी—एक शीलगुणाकर हैं, अमर्ष-रहित हैं, दूसरे परद्रोही हैं, परापवादी हैं[3]। तुलसी को चाहे-अनचाहे दोनो ही प्रकार के लोगो के संपर्क मे आना पडा था। उस संपर्क से उत्पन्न भली-बुरी प्रतिक्रियाओ का निबंधन कवि ने अनेक पद्यो मे किया है

१ छमिहहिं सज्जन मोरि ढिठाई। सुनिहहिं बाल बचन मन लाई॥
जौं बालक कह तोतरि बाता। सुनहिं मुदित मन पितु अरु माता॥
हँसहहिं कूर कुटिल कुबिचारी। जे पर दूषन भूषन धारी॥[4]
प्रभुपद प्रीति न सामुझि नीकी। तिन्हहिं कथा सुनि लागिहि फीकी॥
हरि हर पद रति मति न कुतरकी। तिन्ह कहँ मधुर कथा रघुबर की॥
राम भगति भूषित जिअ जानी। सुनहहिं सुजन सराहि सुबानी॥[5]

२. धूत कहौ अवधूत कहौ रजपूत कहौ जोलहा कहौ कोऊ।
काहूकी बेटी सों बेटा न ब्याहब काहूकी जाति बिगार न सोऊ।
तुलसी सरनाम गुलामु है रामको जाको रुचै सो कहै कछु ओऊ।
माँगि कै खैबो मसीत को सोइबो लैबे को एक न दैबे को दोऊ॥[6]

३. कोऊ कहै करत कुसाज दगाबाज बड़ो
कोऊ कहै रामको गुलामु खरो खूब है।
साधु जानैं महासाधु खल जानैं महाखल
बानी झूंठी साँची कोटि उठत हबूब है॥

---

१. कवितावली, ७।१६८
२. कवितावली, ७।४०
३. रामचरितमानस, १।६।२-३, ७।३८।१, ७।३६
४. रामचरितमानस, १।८।४-५
५ रामचरितमानस, १।६।३-४
६ कवितावली, ७।१०६

चहत न काहू सो न कहत काहू की कछू
सवकी सहत उर अतर न ऊव है।
तुलसी को भलो पोच हाथ रघुनाथ ही के
राम की भगति भूमि मेरी मति दूब है।[1]

तुलसीदास की कतिपय उक्तियो से प्रकट है कि विरोधियो ने उन्हे भाँति-भाँति से डराया-धमकाया, उनके जीवन को दूभर कर देने के लिए कितने ही उपाय किये। यहाँ तक कि नृशस पामरो ने उनके प्राण लेने की भी चेष्टा की। उपद्रवो के भयकर तूफान मे भी वे निर्भय और अविचल रहे, भक्त-रक्षक भगवान् की बाँहो की छाया उन पर बनी रही, उनका वाल बाँका नही हुआ

(i) को भरिहै हरि के रितएं रितवै पुनि को हरि जौं भरिहै।
उथपै तेहि को जेहि रामु थपै थपिहै तेहि को हरि जौं टरिहै॥
तुलसी यहु जानि हिएँ अपने सपनें नहि कालहु तें डरिहै।
कुमयां कछु हानि न औरन कीं जो पै जानकीनाथु मया करिहै॥[2]

(ii) कौनकी त्रास करै तुलसी जो पै राखिहै रामु तौ मारिहै को रे॥[3]

(iii) जो पै कृपा रघुपति कृपालु की वैर और के कहा सरै।
होइ न बाँको वार भगत को जो कोउ कोटि उपाय करै॥
तकै नीचु जो मीचु साधु की सो पामर तेहि मीचु मरै।
वेद विदित प्रह्लाद कथा सुनि को न भगति पथ पाँउ धरै।
जोइ जोइ कूप खनैगो पर कहँ सो सठ फिरि तेहि कूप परै।
सपनेहु सुख न सत द्रोही कहँ सुरतरु सोउ बिष फरनि फरै॥
हैं काके द्वै सीस ईस के जो हठि जन की सीवँ चरै।
तुलसिदास रघुबीर बाहुवल सदा अभय काहू न डरै॥[4]

लोक-प्रसिद्धि है कि जहाँगीर ने तुलसी को कारागार मे डलवा दिया था, उस बदीगृह से मुक्ति पाने के लिए उन्होने हनुमान् की स्तुति की, और उनकी यह वदना 'कविता-वली' के एक सवैये एव 'विनयपत्रिका' के पाँच पदो मे निबद्ध है।[5] यह प्रसिद्धि मुख्यत 'बदिछोर', 'सिंह के सिसु मेढक लीले', 'साँसति', 'समय साँकरे', 'गाढे परे' आदि शब्दो पर आश्रित है। परतु इससे यह प्रमाणित नही होता कि तुलसी बदी हुए थे। किसी ऐति-हासिक साक्ष्य से इस तथ्य की पुष्टि नही होती। यह बात अधिक सभाव्य जँचती है कि इन निवेदनो का निबधन भव-बधन और कलि की करालता के सदर्भ मे किया गया है। कवि ने राम और उनके नाम को अन्यत्र भी 'बदिछोर' कहा है,[6] क्योकि जिसने जीव को

---

१ कवितावली, ७।१०८
२. कवितावली, ७।४७
३ कवितावली, ७।४८
४ विनयपत्रिका, १३७।१-२, ५-६
५ कवितावली, ७।५०; विनयपत्रिका, ३१-३५
६. विनयपत्रिका, १४६।३, ९८।२, १०२।५

मोह-रज्जु मे बाँधा है वही उसे बधन-मुक्त कर सकता है।

'गोसाईं' उपाधि

तुलसीदास 'गोसाईं तुलसीदास' के रूप मे विख्यात है। 'गोसाईं' उपाधि का स्वरूप क्या था, यह उपाधि तुलसी को कब, क्यो और कैसे प्राप्त हुई—इन प्रश्नो का निर्विवाद उत्तर देना शक्य नही है। इस सबध मे तीन धारणाएँ प्रचलित है। पहली यह है कि तुलसीदास गोस्वामी (गो+स्वामी) अर्थात् इद्रियो के वशीकर्ता थे। इसलिए तत्कालीन जनता ने उन्हे गोस्वामी की उपाधि से अलकृत किया। 'गोस्वामी' का अपभ्रश-रूप 'गोसाईं' है। इस धारणा के समर्थन मे कोई अतस्साक्ष्य नही मिलता। अत इसको तुलसी के प्रशसको द्वारा कल्पित उपाधि मानना चाहिए। दूसरी धारणा यह है कि सद्यो-जातावस्था मे माता-पिता द्वारा परित्यक्त तुलसी का पालन किसी 'मगन' ने किया था। वह मगन अतीथ था। अतीथो की जातीय उपाधि 'गोसाईं' है। 'मगन-कुल' अर्थात् गोसाईं-वश मे पालित-पोषित होने के कारण वे 'गोसाईं' पुकारे जाने लगे। कहा जा चुका है कि 'कवितावली' मे उल्लिखित 'कुल मगन' का यह विवरण असगत है। इसलिए गोसाईं-विषयक यह सकल्पना भी अमान्य है। इस विषय मे कवि का कथन स्वय आप्त है

> बालपने सूधे मन राम सनमुख भयो
> रामनाम लेत माँगि खात टूकटाक हौं।
> परयो लोकरीति मे पुनीत प्रीति रामराय
> मोहबस बैठो तोरि तरकि तराक हौं।
> खोटे खोटे आचरन आचरत अपनायो
> अजनीकुमार सोध्यो रामपानि पाक हौं।
> तुलसी गोसाईं भयो भोंडे दिन भूलि गयो
> ताको फल पावत निदान परिपाक हौं॥
> असन बसन हीन बिषम बिषाद लीन
> देखि दीन दूबरो करै न हाय हाय को।
> तुलसी अनाथ सो सनाथ रघुनाथ कियो
> दियो फल सीलसिंधु आपने सुभाय को।
> नीच यहि बीच पति पाइ भरुहाइ गो
> बिहाइ प्रभुभजन बचन मन काय को।
> तातें तनु पेषियत घोर बरतोर मिस
> फूटि फूटि निकसत लोन रामराय को॥[1]

उपर्युक्त उद्धरण की सातवी और तेरहवी पक्तियो से स्पष्ट निष्कर्ष निकलता है कि तुलसी बचपन से ही गोसाईं नही थे। पूरे सदर्भ से सकेतित है कि दारिद्र्य-ग्रस्त बालपन और आसक्तिपूर्ण यौवन के उपरात ही वे गोसाईं हुए। गोसाईं होने पर वे अपने खोटे दिनो को भूल गये, उन्हे गोसाईंपन के गौरव का अभिमान हो गया। डॉ० माताप्रसाद गुप्त ने

१ हनुमानबाहुक, ४०-४१

प्रमाण देकर बतलाया है कि काशी में लोलार्क कुंड पर 'तुलसीदास मठ' था, जो सं० १७६७ तक अवश्य विद्यमान था। उस मठ के महंतों (मठाधीशों) की उपाधि 'गोसाईं' थी। तुलसीदास कभी-न-कभी उस मठ के 'गोसाईं' (मठाधीश) हुए थे, इसलिए 'गोसाईं' कहलाये।[1] यह तीसरी धारणा ही युक्तियुक्त प्रतीत होती है।

वृद्धावस्था

तुलसी के अंतस्साक्ष्य से विदित है कि उनकी वृद्धवस्था अत्यंत संताप में बीती। उन्हें अनेक प्रकार के हार्दिक और शारीरिक क्लेश सहने पड़े। हार्दिक क्लेश के मूल में समवेदना अधिक थी। उन दिनों काशी पर आधिदैविक विपत्तियों का पहाड़ टूट पड़ा था। दुर्भिक्षों और महामारियों के भयंकर प्रकोप से समस्त जनता त्राहि-त्राहि कर रही थी।[2] चारों ओर हाहाकार मचा हुआ था। ऐसी विकट परिस्थिति में सहृदय कवि का आकुल अंतर कराह उठा था। यह उसकी हार्दिक वेदना थी जिसकी अभिव्यक्ति किये बिना वह नहीं रह सका। यह ठीक है कि दानवीकृत नृशंस कलियुग के लोमहर्षक अत्याचारों का जो अतिशयित वर्णन किया गया है वह बहुत-कुछ परंपरा-प्रथित है, और जीवन-वृत्त के संदर्भ में चरित-संबंधी तथ्य ही संग्राह्य हैं। परंतु, इतना निश्चित है कि कलि के प्रभाव को, 'दारिद दसानन' से सीद्यमान लोगों को, देखकर तुलसी को सहानुभूतिपूर्ण दुःख होता था। एक अन्य प्रकार की मानसिक व्यथा पहुँचाने वाले 'कुलोग' भी थे। इन दारुण विरोधियों की चर्चा की जा चुकी है।

तुलसी ने अपनी बुढ़ौती के जिन शारीरिक कष्टों का उल्लेख किया है वे तीन प्रकार के हैं—जरा-जीर्णता, बाहु-पीड़ा और 'बरतोर'। बुढ़ापे में उनका शरीर विविध रोगों से आक्रांत था

रोग निकर तनु जरठपनु तुलसी संग कुलोग।
राम कृपा लै पालिए दीन पालिबे जोग॥[3]

उन वार्धक्य-जनित रोगों का पूरा विवरण नहीं मिलता। 'विनयपत्रिका' में जीव-सामान्य की वृद्धावस्था के शूल, कंप आदि कष्टों का संकेत किया गया है।[4] वह नियति-नियम है। अतः तुलसी पर भी समान-रूप से घटित होता है। देह स्वभावतः रोगों का घर है—शरीरं व्याधिमंदिरम्। बुढ़ौती में शक्ति के प्रतिहत हो जाने पर व्याधियों की वृद्धि अनिवार्य है।

कुलोगों की भाँति कुरोगों ने तुलसी को बुरी तरह घेर लिया था

घेरि लियो रोगनि कुजोगनि कुलोगनि ज्यौं
बासर जलद घन घटा धुकि धाई है।[5]

---

१. तुलसीदास, पृ० १८६-६२
२ कवितावली, ७।६६-६७, १७३-७७
३ दोहावली, १७८
४. विनयपत्रिका, १३६।८
५. हनुमानबाहुक, ३५

इन रोगो मे सबसे अधिक कष्टकारिणी बाहु-पीडा थी जिसकी निवृत्ति के लिए उन्होने 'हनुमानबाहुक' की रचना की। उसके अनेक पद्यो मे इस पीडा का उल्लेख है।[1] यह पीडा अत्यत असह्य थी

१ आपने ही पापतें त्रितापतें कि सापतें
बढ़ी है बाँहबेदन कही न सहि जाति है।[2]

२ काल की करालता करम कठिनाई कीधौं
पाप के प्रभाव की सुभाय बाय बावरे।
बेदन कुभाँति सो सही न जाति राति दिन
सोई बाँह गही जो गही समीरडावरे।।[3]

३ भारी पीर दुसह सरीर तें बिहाल होत।[4]

४. तुलसी तनु सर सुख जलज भुज रुज गज वर जोर।
दलत दयानिधि देखिये कपि केसरी किसोर।।[5]

डॉ० माताप्रसाद गुप्त का कथन है कि "कवि पीडा का कारण 'वात' बतलाता है।" उनके द्वारा उल्लिखित 'बात' 'तुलसी-ग्रथावली' से उद्धृत प्रतीत होता है। उसका पाठ है

बात तरुमूल बाहुसूल कपिकच्छु बेलि
उपजी सकेलि कपि खेल ही उखारिये।[6]

इसके विरुद्ध, प० श्रीकातशरण द्वारा सपादित 'हनुमानबाहुक' का पाठ है

बाँहु तरुमूल बाहुसूल कपिकच्छु बेलि
उपजी सकेलि कपिकेलि ही उखारिये।

'बात' को शुद्ध माना जाए या 'बाहुँ' को ? यद्यपि इसका अतिम निर्णय पाठानुसधान करेगा, तथापि दृष्टिगत वस्तु के आधार पर भी शुद्धता की कुछ परीक्षा की जा सकती है। 'बात' (वायु) को 'तरु' या 'तरुमूल' का उपमेय मानने मे साधर्म्य-जन्य आलकारिक चमत्कार नही है। बाहु-शूल का आश्रय बाहु है। इसलिए बाहु की उपमेयता शोभाकारिणी है। 'दोहावली' के दो दोहो में भी कवि ने यही रूपक ज्यो-का-त्यो बाँधा है

भुज तरु कोटर रोग अहि बरबस कियो प्रवेस।
बिहगराज बाहन तुरत काढ़िअ मिटै कलेस।।
बाहु बिटप सुख बिहँग थलु लगी कुपीर कुआगि।
रामकृपा जल सींचिए बेगि दीन हित लागि।।[7]

अतएव 'बात' के स्थान पर 'बाँहु' पाठ शुद्ध प्रतीत होता है। इस पीडा के शमन के लिए

---

१ हनुमानबाहुक, २०, २१, २३, २४, ३०, ३१, ३६
२ हनुमानबाहुक, ३०
३. हनुमानबाहुक, ३७
४. हनुमानबाहुक, ४२
५. दोहावली, २३४
६. हनुमानबाहुक, २४
७ दोहावली, २३५-३६

उन्होने सभी प्रकार के उपाय किये। औषधियो का सेवन किया, जत्र-मत्र-टोटके किये, देवी-देवताओ की मनौतियाँ मानी। परतु, सब निष्फल गया, पीडा बढती ही गयी

औषध अनेक जंत्रमंत्र टोटकादि किये
बादि भये देवता मनाये अधिकाति है।

सारी देह पीडामयी हो गयी, अशक्त शरीर जर्जर हो गया, अन्य कुरोग भी सताने लगे

पांय पीर पेटपीर बाँहपीर मुँहपीर
जरजर सकल सरीर पीरमई है।[1]
बाहुक सुबाहु नीच लीचर मरीच मिलि
मुँहपीर केतुजा कुरोग जातुधान हैं।[2]

'हनुमानबाहुक' मे ही 'बरतोर' का भी उल्लेख है

तातें तनु पेषियत घोर बरतोर मिस
फूटि फूटि निकसत नोन रामराय को।[3]

इससे ज्ञात होता है कि जिन दिनो वे बाहु-पीडा आदि क्लेशो तथा अन्य कुरोगो से आक्रात थे उन्ही दिनो बालतोड का कष्ट भी हुआ था।

इस जिज्ञासा का समाधान असाध्य है कि तुलसी इन कष्टो से मुक्त होकर स्वस्थ हो गये थे या नही। डॉ० माताप्रसाद गुप्त ने निम्नाकित पद्य के आधार पर निष्कर्ष निकाला है कि उनकी बाहु तथा अन्य अगो की पीडा का अत हो गया था

बाहुक सुबाहु नीच लीचर मरीच मिलि
मुँहपीर केतुजा कुरोग जातुधान हैं।
रामनाम जपजाग कियो चहौं सानुराग
काल कैसे दूत भूत कहा मेरे मान हैं॥
सुमिरे सहाय रामलखन आखर दोऊ
जिनके समूह साके जागत जहान हैं॥
तुलसी सँभारि ताडका सँहारि भारी भट
बेधे बरगद से बनाइ बानवान हैं॥[4]

प्रस्तुत पद्य से यह निश्चित निष्कर्ष नही निकलता कि पीडा का अत हो गया था। 'बेधे' का भूतकालिक प्रयोग केवल उपमान-विषयक प्रतीत होता है। प्रथम दो चरणो से पीडा की अक्षुण्णता स्पष्ट है। 'कियो चहौं' ध्यान देने योग्य है। कवि का आशय यह है कि स्मरण-भक्ति से प्रसन्न होकर राम इन क्लेशो को उसी प्रकार नष्ट करेंगे जिस प्रकार उन्होंने ताडका, सुबाहु आदि राक्षसो का सहार किया था। हाँ, एक अन्य पद्य से यह अवश्य विदित होता है कि तुलसी को इन कुरोगो से छुटकारा मिल गया था

१ हनुमानबाहुक, ३८
२ हनुमानबाहुक, ३९
३ हनुमानबाहुक, ४१
४. हनुमानबाहुक, ३६

> करुनानिधान हनुमान महाबलवान
> हेरि हँसि हाँकि फूँकि फौजै तै उडाई है।
> खाये हुते तुलसी कुरोग राढ राकसनि
> केसरीकिसोर राखे बीर बरिआई है ॥[1]

यह 'हनुमानबाहुक' का ३५वाँ पद्य है। इसमे एक-दूसरा सदेह उत्पन्न होता है। इसके परवर्ती पद्यो मे विभिन्न पीडाओ की असह्यता का उल्लेख है, तदनतर 'बरतोर' का और उसके भी बाद 'रोगसिंधु' का। 'हनुमानबाहुक' के अतिम शब्द है

> हौं हूँ रहौं मौन ही बयो सो जानि लुनिये।

यदि पीडा का अत हो गया होता तो हाहाकार की नौबत न आती। यदि यह माना जाए कि उक्त ३५वाँ पद्य पीडात का निश्चायक है, तो उसे अत मे ४४वाँ पद्य होना चाहिए था। यदि यह माना जाए कि वह केवल बाहु तथा अन्य भागो की पीडा का द्योतक है, बरतोर का नही, तो भी उसे कम-से-कम ३९वाँ पद्य होना चाहिए। हो सकता है कि तुलसी के रचना-क्रम मे वह अतिम छद रहा हो, किंतु सग्रहकार के प्रमाद के कारण उसका यथा-स्थान विन्यास नही हो सका। यह सभावना मात्र है। सभव है कि पाठानुसधान से इसकी पुष्टि हो जाए। सप्रति जो तथ्य हमारे सामने है उसी के आधार पर सत्य की स्थापना उचित है। पूर्वापर-सदर्भ से अवगत होता है कि उनकी पीडा हनुमान् की स्तुति से दब गयी थी। वह कुछ समय तक शात रही, और फिर अधिक भयकरता से उभरी। उस दुरवस्था मे बरतोर हुआ। वे स्वस्थ नही हो सके। इसीलिए अतिम पद्य मे किसी फलश्रुति या धन्यवाद-प्रशस्ति के स्थान पर उनका विक्षोभ, खीझ, सताप, चुनौती और अभिमान से पूर्ण अधूरा आत्मनिवेदन है

> कहौं हनुमान सो सुजान रामराय सो
> कृपानिधान सकर सों सावधान सुनिये।
> हरष विषाद राग रोष गुन दोष मई
> बिरची बिरचि सब देखियत दुनिये॥
> माया जीव काल के करम के सुभाय के
> करैया राम बेद कहैं साँची मन गुनिये।
> तुम्हतें कहा न होय हा हा सो बुझैये मोहि
> हौं हूँ रहौं मौन ही बयो सो जानि लुनिये॥

डॉ० माताप्रसाद गुप्त ने कहा है कि "कवि के शरीर मे बरतोड के घिनौने फोडे निकल आये थे, जिनमे से रुधिर और पीव बहता था। कवि यह नही लिखता कि वह इन फोडो से अच्छा हो गया था, और यह असभव नही यदि इसी रोग से उसकी मृत्यु हो गयी हो। यदि प्रार्थनाओ आदि पर विशेष विश्वास न करके बनारसीदास की भाँति वह भी दवा-दारू पर उतारू हो जाता तो सभवत उसे इतना कष्ट न उठाना पडता जितना उसे अन्यथा उठाना पडा।"[2] उनका यह अनुमान तो मान्य है कि सभवत इसी कारण से तुलसी की

---

१ हनुमानबाहुक, ३५

२. तुलसीदास, पृ० १८७-८८

मृत्यु हुई, किंतु यह कथन अतस्साक्ष्य-विरुद्ध है कि उन्होने दवा-दारू की उपेक्षा की थी। निदान के अनुसार रोग-निवारण का उपाय किया जाता है। तुलसी की उक्तियों[1] से निर्दिष्ट है कि उनके कष्ट के तीन सभावित कारण थे—दैहिक, भौतिक[2] (भूत-प्रेत-बाधा) और दैविक (भगवान् की अप्रसन्नता)।[3] इसी क्रम से उन्होंने उपचार किया। पहले बनारसीदास की भाँति ही 'दवा-दारू पर उतारू' हुए—एक नही, अनेक दवाइयाँ की। वे व्यर्थ सिद्ध हुई। फिर यत्र-मत्र-टोटके किये। उनसे भी कुछ लाभ नही हुआ। तब सामान्य देवताओं और फिर हनुमान्, राम तथा शकर की स्तुति की। कवि के पारदर्शक वाक्य हैं

> औषध अनेक जत्र मत्र टोटकादि किये
> बादि भये देवता मनाये अधिकाति है।[4]
> कपिनाथ रघुनाथ भोलानाथ भूतनाथ
> रोगसिंधु क्योंन डारियत गायखुर कै॥[5]

महाप्रयाण

कहा जा चुका है कि अतिम वर्षों मे तुलसी जिन व्याधियो से प्रपीडित थे उनसे कदाचित् मुक्त नही हो सके और उनके परिणामस्वरूप उनका देहात हुआ। 'कवितावली' के कुछ कवित्तो से ध्वनित होता है कि पीडा-ग्रस्त कवि मृत्यु की प्रतीक्षा-सी कर रहा था

> जीबे की न लालसा दयाल महादेव मोहि
> मालुम है तोहि मरिबेई को रहतु हौं।[6]

'कवितावली' की स० १८७० की हस्तलिखित प्रति मे बाहु-पीडा के कुछ छद और सर्वांग-पीडा, क्षेमकरी-दर्शन तथा 'बरतोर' के छद नही है। इससे सूचित होता है कि ये छद कवि-जीवन के अतिम वर्षों मे लिखे गये थे।

किसी-किसी का अनुमान है कि तुलसी की मृत्यु प्लेग (ताउन) से हुई थी। जिस दुस्सह बाहुपीडा का उन्होने उल्लेख किया है वह प्लेग-प्रसूत थी। उससे चार दिन पडे रह कर वे परलोकगामी हुए। यह बात विश्वसनीय नही जँचती। प्लेग के भयानक चगुल मे फँसे हुए विक्षिप्त कवि द्वारा सपूर्ण 'हनुमानबाहुक', और 'कवितावली' तथा 'दोहावली' के अनेक पद्यो का व्यवस्थित निर्माण शक्य नही प्रतीत होता।

ऐसी धारणा है कि महाप्रस्थान के समय तुलसी को क्षेमकरी का दर्शन हुआ था।[7] यह धारणा 'कवितावली' के एक सवैये पर आधारित है

---

१ हनुमानबाहुक, २६, ३०
२ हनुमानबाहुक, ३२, ४३
३. हनुमानबाहुक, ४०-४१
४. हनुमानबाहुक, ३०
५. हनुमानबाहुक, ४३
६. कवितावली, ७।१६७, और भी देखिए—७।१६६
७ गोस्वामी तुलसीदास (बाबू शिवनदन सहाय), पृ० ११६; तुलसीदास, पृ० १८८

कुकुम रग सुअग जितो मुखचद सो चद सो होड परी है।
बोलत बोल समृद्धि चुवै अवलोकत सोच बिषाद हरी है॥
गौरी कि गग विहगिनिबेष कि मंजुल मूरति मोदभरी है।
पेखि सप्रेम पयान समै सब सोच बिमोचन छेमकरी है॥[1]

बहुत सभव है कि मरण-काल मे उनका शरीर कुछ हल्का हो गया हो, और अत करण की मुक्तावस्था मे उन्होने इस छद की रचना की हो। इस मान्यता के पक्ष मे एक तर्क दिया जा सकता है। स० १८७० वाली प्रति मे यह छद नही है। इसका सभावित कारण यही हो सकता है कि उसकी मूल प्रति तब तैयार की गयी थी जब उन्हे पहली बार बाहु-पीडा हुई थी। अतिम समय मे लिखे गये छद को सग्रहकार ने कवि के स्वर्गवास के उपरात 'कवितावली' मे सकलित किया। परतु, इसके विपक्ष मे भी एक सदेह उठता है। जानकार सग्रहकार ने इस अतिम पद्य को 'कवितावली' के एकदम अत मे क्यो नही रखा ? क्या यह उसकी भूल है ? अथवा, यह छद अतिम नही है, और इसमे आया हुआ 'पयान' शब्द कवि के महाप्रयाण का द्योतक न होकर किसी अन्य यात्रा का सकेत करता है ? सग्रहकार गलती कर सकता है। दूसरी ओर, 'पयान' से किसी अन्य यात्रा का अर्थ भी सहज-ग्राह्य है। 'रामचरितमानस' मे बारात के 'पयान' के समय दशरथ को भी क्षेमकरी-दर्शन का मगल-शकुन हुआ था

छेमकरी कह छेम बिसेषी। स्यामा बाम सुतरु पर देखी॥[2]

ऐसा भी कहा जाता है कि उनकी अतिम रचना एक दोहा है जिसको 'पढते हुए' उन्होने 'सर्वदा के लिए मौन साधन किया'

रामचद्र जस बरनि के भयो चहत अब मौन।
तुलसी के मुख दीजिए अब ही तुलसी सोन॥[3]

इस दोहे का तुलसी-कृत होना प्रमाणित नही है। अतएव उनकी आत्मकथा मे इसका समावेश वर्जनीय है।

तुलसी के जीवनचरित की रूपरेखा

इन अध्यायो मे बाह्य एव आतर साक्ष्य के आधार पर तुलसीदास के जीवनवृत्त का जो अध्ययन किया गया है उसके आधार पर निष्कर्ष-रूप मे उनके जीवन-चरित की रूपरेखा इस प्रकार प्रस्तुत की जा सकती है

१ तुलसीदास का जन्म स० १५८९ मे हुआ था।

२ उनके जन्म-स्थान के विषय मे निश्चयपूर्वक कुछ नही कहा जा सकता। विवाद-ग्रस्त स्थानो के विषय मे इतना निश्चित और निर्विवाद है कि उन्होने राजापुर, काशी और अयोध्या मे निवास किया था।

३ वे ब्राह्मण-कुल मे उत्पन्न हुए थे। उनके गोत्र आदि के विषय मे कोई निश्चित

---

१ कबितावली, ७।१८०

२. रामचरितमानस, १।३०३।४, देखिए—रामाज्ञाप्रश्न, ५।५।७

३. मूलगोसाईंचरित, ११८

बात नही कही जा सकती। उनके माता-पिता के नाम, आर्थिक दशा आदि की भी प्रामाणिक जानकारी नही है।

४ तुलसी के जन्म पर उनके माता-पिता को परिताप हुआ था। उस परिताप का यथार्थ कारण ज्ञात नही है।

५. बचपन मे ही उन्हे माता-पिता का वियोग सहना पडा। उसके कारण के सबध मे कोई विश्वसनीय साक्ष्य नही मिलता।

६ उनका बाल्य-जीवन अत्यत कष्ट मे बीता। सगे-सबधियो का भी आश्रय नही मिला। दर-दर की ठोकरें खानी पडी। भीख माँग-माँगकर पेट पालना पडा। कभी हनुमान्-मदिर की खोची से जीवन-निर्वाह किया।

७ सौभाग्य से, उस विपन्नावस्था मे उन पर सतो की कृपा-दृष्टि पडी। सतो के उपदेश से उन्हे शाति मिली। वे रामभक्ति की ओर प्रेरित हुए।

८ ईश्वर की कृपा से उन्हे आदर्श गुरु मिले। वे परम कृपालु, रामभक्त और प्रकाड पडित थे। बाल्यावस्था मे ही तुलसी ने 'सूकरखेत' मे उनके श्रीमुख से राम-कथा बारबार सुनी। उनके द्वारा कही गयी कथा और प्रतिपादित राम-भक्ति का तुलसी ने आगे चलकर अपने साहित्य मे निबधन किया। गुरु के नाम और 'सूकरखेत' की स्थिति का अभिनिर्धारण अभी तक नही हो सका है।

९. उनका विवाह हुआ था। उनकी ससुराल, पत्नी आदि का प्रामाणिक ब्योरा उपलब्ध नही है। उनका विवाहित जीवन आसक्तिपूर्ण था। उनके मन मे सहसा वैराग्य उत्पन्न हुआ। इस मोड का निश्चित कारण विदित नही है।

१० सभवत स० १६२४-२५ के आस-पास लगभग ३५-३६ वर्ष की आयु मे उन्होंने गृहस्थाश्रम का त्याग किया।

११ विरक्त तुलसीदास ने चित्रकूट, प्रयाग, काशी, अयोध्या, सीतामढी आदि तीर्थस्थानो की यात्रा की। कुछ काल तक वे चित्रकूट और राजापुर मे रहे। तदनतर उन्होने काशी को अपना स्थायी निवास-स्थान बनाया। वहाँ से समय-समय पर वे अन्य तीर्थस्थलो की यात्रा करते रहे। उनके जीवन के अतिम वर्ष काशी मे ही व्यतीत हुए।

१२ विरक्त होने पर काशी मे निवास करते हुए वे किसी मठ के 'गोसाईं' हुए। 'गोसाईं' होने पर वे सुखमय जीवन बिताने लगे। गोसाईंपन के विरुद्ध भी उनकी अतरात्मा ने विद्रोह किया। वे सदा के लिए सन्यासी हो गये।

१३. तुलसी का वैराग्य निषेधात्मक नही रहा, वे साहित्य-रचना मे प्रवृत्त हुए। विरक्त होने के कुछ ही समय बाद उन्होने 'वैराग्यसदीपनी लिखी जिसमे उनके नवोदित वैराग्य की प्रतिच्छाया दृष्टिगोचर होती है। तदनतर उन्होने 'रामाज्ञाप्रश्न', 'रामलला-नहछू', 'जानकीमगल', 'रामचरितमानस' आदि ग्रथो का निर्माण किया।

१४ लोक-प्रतिष्ठा के साथ ही उनके भक्त-प्रशसको और विरोधियो की सख्या भी बढ़ी। उन्हे आधिभौतिक बाधाएं सहनी पडी। काशी के कट्टर शैवो ने उनको बहुत कष्ट दिया।

१५ काशी मे उनके कई इष्ट-मित्र थे। उनमे टोडर का नाम विशेष महत्त्वपूर्ण

है। तुलसी ने उनके उत्तराधिकारियो मे स० १६६९ मे सपत्ति-सबधी समझौता कराया था।

१६ काशी के मेघा भगत वाल्मीकि-रामायण के अनुसार रामलीला कराते थे। तुलसी ने 'रामचरितमानस' के अनुसार रामलीला का प्रवर्तन किया। उनके द्वारा चलायी हुई रामलीला का लोक मे व्यापक प्रचार हुआ।

१७ उनकी वृद्धावस्था क्लेश मे वीती। लगभग अस्सी वर्ष की आयु मे उन्हे वाहुपीडा हुई। अकाल और महामारियो के कारण चारो ओर हाहाकार मच गया। इस लोक-दुर्दशा से तुलसी को वडी व्यथा हुई। ये सकट किसी प्रकार टले। अव उन्हें वालतोड का भयकर कष्ट हुआ। जर्जर शरीर विभिन्न रोगो से आक्रात हो गया। वाहुपीडा भी फिर उभरी। सारा शरीर पीडामय हो गया। वे अतिम समय तक स्वस्थ नही हो सके।

१८ स० १६८० मे श्रावण कृष्णा ३ को तुलसीदास का स्वर्गवास हुआ।

तुलसीदास का व्यक्तित्व

सभी मानते हैं कि तुलसी का व्यक्तित्व महान् था। उनकी रूपाकृति और स्वभाव की विशेषताओ का व्योरेवार, यथातथ्य और प्रामाणिक विवरण नही मिलता। चित्रो की अनुकृतियो, उनकी निजी कृतियो, सदिग्धप्रमाण चरित-ग्रथो और किवदतियो के सकेत पर इस सवध मे कुछ निश्चित धारणा वनायी जा सकती है।

रूपाकृति—तुलसीदास ने अपने वर्ण और आकृति का निरूपण नही किया। कतिपय सदिग्ध उक्तियो के आधार पर ही उनकी रूप-रेखा का अनुमान किया जा सकता है .

१ हौं सुबरन कुबरन कियो नृप तें भिखारि करि सुमति तें कुमति कर्‌यो हौं।

२. दियो सुकुल जन्म सरीर सुदर हेतु जो फल चारि को।

३ भलि भारतभूमि भलें कुल जन्म समाजु सरीरु भलो लहि कै।'

उपर्युक्त उद्धरणो मे आये हुए 'सुवरन', 'सरीर सुदर' और 'सरीर भलो' से तुलसी के गौर वर्ण और रूपसपन्न शरीर का अर्थ भी ग्रहण किया जा सकता है। विभिन्न चित्रो से भी उनकी सुरूपता का समर्थन होता है।

चरित-लेखको ने उनके सौंदर्य, आकृति और वेषभूषा का विशद वर्णन किया है

१ सुदर सुजान मतिमान आजानवाहु
भगत जन प्रधान तेहि गले माल मानिये।
गान परवीन हरि ध्यान लवलीन कवि
विषय विकार हीन छीन सिष जानिये।
मुडित सीस मुच्छ सो सेत सेत केस वेस
पीन देह सूत्र कटि गौर त्यों वखानिये।

---

१. क्रमश, विनयपत्रिका, २६ ६।२, १३५।१, कवितावली, ७।३३

कहै अविनास भाल तिलक तुलसिदास
सेत कटि अधोवास तासु पहिचानिये ॥[1]

२. असन मधुकरी कपिस पट सिपा सूत्र सधान।
उरसि तुलसिका माल सुचि रुचि लेपनी प्रधान ॥[2]

३ गौर 'रा'पदमात्रसश्रवणतोऽप्युद्भूतरोमांकुर
वक्ष श्रीतुलसीप्ररूढगुटिकामाल पटीशालिनम्।
वारवारमिद पद 'भरतु मे ठाढे'ऽतिगाढस्वर
गायन्त नररूपिणं कमपि त वदेऽनवद्ये हितम् ॥[3]

४ गौर वरन विद्या निधान। विविध शास्त्र पडित महान ॥[4]

तुलसीदास का रग गोरा था। वे सुदर और आजानबाहु थे, उपवीत और तुलसी की माला धारण करते थे। चित्रो मे वे छापा-तिलक लगाये हुए भी दिखाये गये हैं। विभिन्न चित्रो से यह भी सूचित होता है कि पहले वे मोटे नही थे, लेकिन प्रौढावस्था मे उनका शरीर कुछ स्थूल हो गया था। उपर्युक्त कवित्त मे अविनाश राय ने भी उनकी पीनता का उल्लेख किया है। उनका यह भी कथन है कि तुलसी चोटी और दाढी-मूंछ नही रखते थे। दूसरी ओर, तुलसी के दाढी वाले चित्र भी मिलते हैं। भिन्न कालो मे दोनो ही बातें सभव हो सकती हैं। परतु तुलसी का जो रूप-वर्णन किया गया है वह आप्त-कोटि मे नही आता।

प० रामनरेश त्रिपाठी ने एक दिलचस्प खोज की है। उनका कहना है कि तुलसीदास वृद्धावस्था मे गजे हो गये थे[5]। कहा गया है कि यह तथ्य कवि के अतस्साक्ष्य से प्रमाणित है

ऊँचो मन ऊँची रुचि भागु नीचो निपट ही
लोकरीति लायक न लगर लवारु है।
स्वारथु अगमु परमारथ की कहा चली
पेट की कठिन जगु जीव को जवारु है।
चाकरी न आकरी न खेती न बनिज भीख
जानत न कूर कछु किसब कबारु है।
तुलसी की बाजी राखी राम ही के नामनतु
भेंट पितरन को न मूडहू में बारु है ॥[6]

उपर्युक्त कवित्त मे न तो पितरो की भेंट का प्रसग है और न ही मूंड के बालो का। 'भेंट पितरन को न मूडहू मे बारु है'—इस कहावत का प्रयोग कवि ने अपनी अकिंचनता द्योतित करने के लिए किया है। यह लाक्षणिक उक्ति है। मुख्यार्थ-बाध लक्षणा की पहली शर्त है। ऐसी उक्तियो मे गजेपन के अन्वेषण से भयकर खतरा यह है कि इससे उत्साहित होकर

१ अविनाशराय, तुलसीप्रकाश, १६३
२ कृष्णदत्त मिश्र, गौतमचद्रिका
३ रामू द्विवेदी, प्रेमरामायण, देखिए—'मानस' की रूसी भूमिका, वक्तव्य, पृ० ३०
४ मुरलीधर चतुर्वेदी, रत्नावलीचरित, ६६
५. तुलसीदास और उनका काव्य, पृ० ४०
६. कवितावली, ७।६७

उर्वरबुद्धि गवेषक 'कवितावली' के निम्नाकित सवैये के आधार पर तुलसी के ललाइन-प्रेम की प्रस्थापना करने लगेंगे

> वर दत की पगति कुदकली अधराधर पल्लव खोलन की।
> चपला चमकै घन बीच जगै छवि मोतिन माल अमोलन की।
> घुँघुरारि लटै लटकै मुख ऊपर कुडल लोल कपोलन की।
> निवछावरि प्रान करै तुलसी वलि जाउँ लला इन वोलन की ॥[1]

और यह सिद्ध करने लगेंगे कि तुलसीदास पहले गधे की सवारी किया करते थे किंतु वाद में हाथी पर चढने लगे, क्योकि उन्होने स्वय कहा है

> हौं तौ सदा खर को असवार तिहारोई नामु गयद चढायो।[2]

मनुष्यता—जव हम तुलसीदास की चारित्रिक विशेषताओ पर दृष्टिपात करते हैं तव उनका जो गुण हमे सबसे अधिक प्रभावित करता है वह है उनकी मनुष्यता। वे महामानव थे। आहार, निद्रा, भय और काम की प्रवृत्ति तो प्राणिमात्र मे, मनुष्यो और पशुओ मे, समान रूप से पायी जाती है।[3] मनुष्य का गौरव इस बात मे है कि वह इन सहज प्रवृत्तियो से ऊपर उठकर आत्मकल्याण और विश्वमगल का विधान करे। तुलसी ने ऐसा ही किया। उन्होने स्वात सुख को लोकहित मे लीन कर दिया। अहिंसा, सत्य, इद्रियनिग्रह आदि जो मानवधर्म वतलाये गये हैं उन्हे अपने जीवन मे उतारने का सफल प्रयास किया। वालपन, यौवन और गोसाईंपन में उनसे गलतियाँ हुई थी। उन्होने सच्चाई के साथ उन्हे स्वीकार किया है। रामभक्ति के राजपथ पर अग्रसर हो जाने के वाद वे मानवता के प्रशस्त मार्ग से कभी विचलित नही हुए।

उदारता—वे उदार और परोपकारी थे। उनमे दया और कोमलता थी। जन-श्रुतियो और चरितग्रथो की अतिशयोक्तियो को छानकर निकाल देने पर भी उनके चरित्र की यह विशेषता ध्यान आकृष्ट करती है। गुणो के अभाव मे असाप्रदायिक सत की महिमा का अतिशयित वर्णन सभव नही था। तुलसी के साहित्य मे भी उनकी उदारता का प्रति-फलन द्रष्टव्य है। उनकी लोकसग्रह-भावना उदारता का ही परिणाम है। उनके सभी अनुकरणीय पात्र उदार हैं। महामारियो आदि के प्रकोप के समय उन्होने अपने निंदक काशीवासियो के उद्धार की भी प्रार्थना की है। जगत् को सीताराममय समझकर सवको प्रणाम किया है।

सहिष्णुता—तुलसी ने वचपन से ही नाना प्रकार के क्लेश सहे थे। जीवन-सग्राम की विषम परिस्थितियो ने उन्हे अनिवार्यत कष्ट-सहिष्णु वना दिया था। मजवूरी मे अर्जित यह गुण आगे चलकर उदात्त रूप मे फलित हुआ। त्रासकारी विरोधियो के उपद्रवो को उन्होने धैर्य के साथ सहा। अनेक आधि-व्याधियो से आक्रात होने पर भी उनका मान-सिक सतुलन नष्ट नही हुआ। हाथ, पाँव, मुँह आदि सभी अगो की पीडा से कराहते हुए भी

---

१. कवितावली, १।५
२. कवितावली, ७।६०
३. भय निद्रा मैथुन अहार सवके समान जग जाये।—विनयपत्रिका, २०१।४
आहारनिद्राभयमैथुनच समानमेतत्पशुभिर्नराणाम्।—हितोपदेश, प्रस्ताविका, २५

उन्होंने समाहित चित्त से उत्कृष्ट काव्य-रचना की। 'हनुमानबाहुक' और 'कवितावली' के अनेक पद्य इसके प्रमाण हैं।

अनेक स्थलों पर उनकी असहनशीलता दृष्टिगत होती है। उन्होंने निर्गुण मतों, रामभक्ति-विरोधियों, प्रेत-पूजकों आदि पर अपशब्दों की आक्रामक बौछार की है

१ कहहिं सुनहिं अस अधम नर ग्रसे जे मोह पिसाच।
पाषंडी हरिपद बिमुख जानहिं झूठ न साच॥[1]

२ तिन्ह तें खर सूकर स्वान भले जड़ता बस ते न कहैं कछु वै।
तुलसी जेहि राम सों नेहु नहीं सो सही पसु पूँछ बिषान न द्वै।
जननी कत भार मुई दस मास भई किन बाँझ गई किन च्वै।[2]

३ तुलसी परिहरि हरि हरहि पावँर पूजहिं भूत।
अंत फजीहति होहिंगे गनिका के से पूत॥[3]

सहनशीलता का यह अभिव्यक्तिकरण व्यक्तिगत द्वेष की प्रतिक्रिया नहीं है। यदि ऐसी उक्तियों के मूल में निहित वैयक्तिक विरोध की कारणता मानी जाए तो भी वह उसका उदात्तीकृत रूप है। इसी प्रकार खलों की निंदा और सज्जनों की प्रशंसा में कवि ने अपने विरोधियों की द्वेष-भावना और अपनी सहिष्णुता को व्यक्तिसत्ता के बंधन से मुक्त करके सामान्यीकृत रूप में प्रस्तुत किया है।[4] शिव से शैवों के विरुद्ध की गयी शिकायत में उनका लक्ष्य सम्प्रदाय है, व्यक्ति नहीं।[5]

श्रद्धालुता—श्रुति कहती है "मातृदेवो भव। पितृदेवो भव। आचार्यदेवो भव।"[6] तुलसी श्रद्धावान् थे। उन्होंने भक्तिभाव से माता-पिता और गुरु की नम्रतापूर्वक वंदना की है।[7] व्यास, वाल्मीकि आदि कवियों को प्रणाम किया है।

विनयशीलता—तुलसी की विनयशीलता दो प्रकार की है प्रपत्त्यात्मक और लौकिक। भगवान् के प्रति आत्मनिवेदन करते हुए उन्होंने अपने दैन्य का पुनः पुनः निरूपण किया है। यह नम्रता (कार्पण्य) शरणागति का आवश्यक अंग है। यह वृत्ति भक्त-लोक-सामान्य है। लोक-व्यवहार की दृष्टि से भी उन्होंने अपनी विनयशीलता की अभिव्यक्ति की है

बाल विनय सुनि करि कृपा राम चरन रति देहु।[8]
कबि न होउँ नहिं बचन प्रबीनू। सकल कला सब बिद्या हीनू॥

---

१ रामचरितमानस, १।११४
२ कवितावली, ७।४०
३ दोहावली, ६५
४ रामचरितमानस, १।४, ७।३७।४ आदि
५. कवितावली, ७।१६७, विनयपत्रिका, ८।३-४
६ तैत्तिरीय उपनिषद्, १।११।२, देखिए—मनुस्मृति, २।२२८ ३७, रामचरितमानस, १।२०३।१, २।३१५।३
७ विनयपत्रिका, ३६।३-४
८ रामचरितमानस, १।३

कवित विवेक एक नहिं मोरे। सत्य कहौं लिखि कागद कोरे ॥[1]

निर्भीकता—विनम्र होते हुए वे निर्भीक थे। उनमे आत्मविश्वास था। स्वकालीन समाज की तीव्र आलोचना मे, कलियुग आदि के वर्णनो मे, उनकी स्पष्टवादिता परिलक्षित होती है। शकर की दुहाई देते हुए भी उन्होने शैवो को 'किकर', 'शठ' आदि कह ही डाला।[2] उपद्रवियो ने कितने ही ववडर उठाये, किंतु वे निडर रहे

तुलसी यहु जानि हिएँ अपने सपने नहिं कालहु ते डरिहैं।
कुमयाँ कछु हानि न औरन की जो पै जानकीनाथ मया करिहैं ॥[3]

निष्पक्षता—तुलसी की निष्पक्षता और न्यायप्रियता का ठोस प्रमाण टोडर के वशजो का पचायतनामा है। उनके व्यक्तित्व की इस विशेषता से प्रभावित होने के कारण ही दोनो पक्षो ने उन्हें मध्यस्थ माना होगा। तुलसी पर आक्षेप किया गया है कि उन्होने ब्राह्मणो के प्रति पक्षपात और नारी-जाति के प्रति अन्याय किया है। आधुनिक समाज की कसौटी पर वे इस दोष से बरी नही किये जा सकते। परतु, यह भी स्मरण रखना चाहिए कि इतिहास-पुराण एव धर्मशास्त्र के प्रणेता ऋषि-मुनि तुलसी से कम अपराधी नही हैं। समाज की कसौटी देश-काल के अनुसार बदलती रहती है। उन्होने युगधर्म का अनुसरण किया है, अत दोषभाजन नही हैं। यह भी अविस्मरणीय है कि तुलसी ने धर्मभ्रष्ट ब्राह्मणो की विगर्हणा की है और सदाचारी नारीपात्रो को आदर दिया है।

पाडित्य—तुलसी की रचनाओ से प्रमाणित है कि उन्होने वाङ्मय के विविध अगो का गभीर अनुशीलन किया था। वे काव्य और शास्त्र के प्रकाड पडित थे। 'नाना-पुराणनिगमागमसमत यद् रामायणे निगदित क्वचिदन्यतोऽपि' का प्रतिज्ञापन ढोग नही है। अपनी महापोथियो की सहायकग्रथ-सूची मे अनदेखे ग्रथो का गलत-सलत उल्लेख करके कोमलमति पाठको को अभिभूत करने वाले आधुनिक आचार्यों की भाँति तुलसी ने धोखा नही खडा किया है। उन्होने उन ग्रथो का तात्त्विक अध्ययन किया था। उनका वह ज्ञान निजी अनुभव, देशाटन और सत्सग से समृद्ध हुआ था।

सूक्ष्मेक्षण शक्ति—तुलसी ने लोक का सूक्ष्म अवेक्षण किया था। वे जन-मानस के पारखी थे। जीवन की विभिन्न परिस्थितियो, पात्रो के तन और मन के विविध पक्षो, विभिन्न वस्तुओ तथा प्राकृतिक दृश्यो के वर्णन मे उनकी पैनी ईक्षण-शक्ति का परिचय मिलता है।

भावुकता—तुलसीदास भावुक और सहृदय थे। वे पत्नी मे आसक्त थे, किसी कन्या को पुरुष बना दिया, किसी विधवा के मृत पति को जीवित कर दिया—इस प्रकार की किवदतियाँ उनकी भावुकता का किंचित् सकेत करती हैं। उनकी भावुकता और सहृदयता का वास्तविक प्रमाण उनका काव्य है। उन्होने रामकथा के मार्मिक स्थलो को भली भाँति पहचाना है, विभिन्न मानव-स्थितियो मे अपने को डालकर तदनुरूप भावानुभूति की है, उन मर्मस्पर्शी अशो का साक्षात्कार तथा भावो की समानुभूति करके उन्हें

---

१. रामचरितमानस, १।९।४,६
२ विनयपत्रिका, ८।३-४
३ कवितावली, ७।४७

पाठको एव श्रोताओ तक सप्रेषित करने मे वे पूर्णतया सफल हुए हैं। 'मानव-प्रकृति के जितने अधिक रूपो के साथ गोस्वामी जी के हृदय का रागात्मक सामजस्य हम देखते हैं, उतना अधिक हिंदी भाषा के और किसी कवि के हृदय का नही। यदि कही सौंदर्य है तो प्रफुल्लता, शक्ति है तो प्रणति, शील है तो हर्षपुलक, गुण है तो आदर, पाप है तो घृणा, अत्याचार है तो क्रोध, अलौकिकता है तो विस्मय, पाषड है तो कुढन, शोक है तो करुणा, आनदोत्सव है तो उल्लास, उपकार है तो कृतज्ञता, महत्त्व है तो दीनता तुलसीदास जी के हृदय मे बिंब-प्रतिबिंब-भाव से विद्यमान है'।[1]

गुणग्राहकता—तुलसी की गुणग्राहकता का निदर्शन उनकी समन्वय-साधना मे मिलता है। उन्होने अपने साहित्य मे माधुकरी वृत्ति अपनायी है, वैदिक साहित्य, रामायण-महाभारत, विभिन्न पुराणो, आगम-शास्त्रो, काव्यो तथा नाटको से बिना किसी सकोच के ग्राह्य सामग्री ग्रहण की है 'सत हस गुन गहहि पय परिहरि बारि बिकार।'[2]

आदर्शवादिता—वे आदर्शवादी थे। उन्होने अपने साहित्य मे वैयक्तिक, पारिवारिक और सामाजिक आदर्शो की प्रतिष्ठा का प्रयत्न किया है। आदर्श-नारी और आदर्श-राजा के चरित्र पर विशेष बल दिया गया है, क्योकि ये दोनो क्रमश आदर्श-गृहस्थी और आदर्श-समाजव्यवस्था के आधार हैं। उनकी आदर्शवादिता कही-कही कट्टरता की कोटि तक पहुँच गयी है। कारण यह है कि अपने मनोवाछित सामाजिक-आदर्श के विरोधी तत्त्वो को वे बर्दाश्त नही कर सके हैं। रामराज्य की कल्पना उनकी आदर्श-भावना का परिणाम है। लोकहितकारी महत्तर आदर्श के लिए व्यक्तिगत आदर्श की बलि दी गयी है। विश्व-कल्याण की दृष्टि से भगवान् ने वृदा का व्रत-भग किया है[3], नारी ताडका को मारा है, कामिनी सूर्पणखा के नाक-कान कटवाये हैं, वृक्ष की ओट से बालि-वध किया है, सीता-लक्ष्मण को त्यागा है[4] (और तपस्वी शबूक का सिर काट लिया है[5])।

परपरानुयायिता—वे परपरा के अनुयायी थे। पुराणनिगमागमसमत तथा रामायणादि-प्रथित रघुनाथ-गाथा, सनातन से चले आते हुए वर्णाश्रमधर्म, परमार्थवादी मुनियो द्वारा प्रतिपादित दर्शन और श्रुति-समत हरिभक्ति-पथ मे उनकी अगाध आस्था थी। काव्य-दृष्टि से उन्होने प्राचीन कवियो की परपरा का अनुसरण किया है। महाकाव्य 'रामचरितमानस' पर तो पौराणिक प्रभाव इतना अधिक है कि कुछ आलोचक उसे काव्य न मानकर पुराण मानते हैं।

प्रगतिशीलता—परपरा के प्रति आस्थावान् होते हुए भी वे प्रगतिशील थे। उन्होने युग-धर्म को पहचानकर परिस्थितियो के अनुसार आडबरपूर्ण एव धनाधीन कर्मकाड तथा कष्टसाध्य ज्ञानमार्ग की तुलना मे रामभक्ति और नामभक्ति की श्रेष्ठता प्रतिपादित की। अपने युग की राजनैतिक, आर्थिक और सामाजिक दुरवस्था का आलोचनात्मक चित्र अकित

---

१ प० रामचद्र शुक्ल, गोस्वामी तुलसीदास, पृ० ८५
२ रामचरितमानस, १।६
३ रामचरितमानस, १।१२३
४ कवितावली, ७।६
५ रामाज्ञाप्रश्न, ६।५।१-४ से ध्वनित

किया। राजतत्र का अनुमोदन करते हुए भी दशरथ और राम के द्वारा जनमत को गौरव दिलाया। सस्कृताभिमानी पडितो के विरोध के बावजूद जनभाषा मे काव्य-रचना की। महाकाव्य के परपरा-प्रतिष्ठित नियमो की उपेक्षा करके केवल सात ही सर्गों (सोपानो) का महाकाव्य (रामचरितमानस) लिखा, उसके प्रत्येक सर्ग मे अनेक छदो का प्रयोग किया, और अगी रस के रूप मे अब तक उपेक्षित भक्तिरस की प्रतिष्ठा की।

भक्तिनिष्ठता—अपनी लोक-यात्रा के आरभिक वर्षों मे घोर सांसत सहकर तुलसी राम-भक्ति की ओर उन्मुख हुए थे। वे बार-बार यह कहते हुए अघाते नही हैं कि राम ने यातना के नरक से मेरा उद्धार किया और मुझ-जैसे तुच्छ को महान् बना दिया। यह कृतज्ञता उनके मन से कभी तिरोहित नही हुई। उनका काव्य इस स्वानुभूति की स्वत-स्फूर्त अभिव्यक्ति है। इसकी व्यजना मे उन्होने अपना हृदय उँडेल दिया है। आराध्य की इतनी एकनिष्ठ भक्ति और भक्तिरस का इतना अजस्र प्रवाह अन्यत्र दुर्लभ है।

प्रतिभासपन्नता—तुलसीदास का एक असाधारण गुण उनकी प्रतिभाशीलता है। प्रतिभा के अभाव मे सारी व्युत्पत्ति व्यर्थ है। अपार वाङ्मय-समुद्र का मथन करके 'राम-चरितमानस'-जैसे ग्रथ-रत्न का प्रणयन नवनवोन्मेषशालिनी प्रज्ञा का ही कार्य हो सकता है। उनकी 'विनयपत्रिका', 'कवितावली', 'गीतावली' आदि अन्य कृतियाँ भी प्रतिभा की ज्योति से जगमगा रही हैं। काव्य और मोक्षधर्म के विविध पक्षो का इतना विराट् एव सफल समन्वय अद्भुत प्रतिभा का परिणाम है।

साराश यह है कि तुलसीदास का व्यक्तित्व महान् था। वह व्यक्तिगत अनुभवो और युगीन परिस्थितियो से निर्मित हुआ था, परतु वह व्यक्तिमत्ता और देश-काल की सीमा से ऊपर उठ गया। उनके व्यक्तित्व मे महाकवि, महान् समाजसुधारक और महनीय भक्त के अपेक्षित गुण विद्यमान थे। तुलसी की यथार्थ महत्ता इस बात मे है कि उन्होने उन गुणो का पूरा सदुपयोग किया और लोक-मानस को तरगायित कर देने वाला वह काव्य दिया जो कम-से-कम हिंदी-साहित्य मे बेजोड है।

५. युग का प्रभाव

मनुष्य सामाजिक प्राणी है। वह समाज का अभिन्न अग है, उसका अस्तित्व समाज-निरपेक्ष नही है। वैयक्तिक अनुभवो के साथ ही सामाजिक वातावरण के प्रभावो की छाप भी उसके मानस पर पडती रहती है। इस क्रम से उसके सस्कारो का निर्माण होता है। कवि इस प्राकृतिक नियम का अपवाद नहीं है। उसकी भी आतर वृत्तियाँ बाह्य परिवेश से निरतर प्रभावित होती रहती हैं। काव्य मूलत उसकी मानसी सृष्टि है, उसकी सकल्पात्मक अनुभूति की वाणी-बद्ध अभिव्यक्ति है। अत काव्य मे उसके भीतर और बाहर का विश्व प्रतिबिंबित हुआ करता है। इसीलिए साहित्य को समाज का दर्पण कहा गया है। इस उक्ति मे 'समाज' शब्द सामाजिक परिस्थिति के सकुचित अर्थ मात्र का द्योतक नही है। उसका परिसर व्यापक है। उसमे समाज की राजनैतिक, आर्थिक, धार्मिक, दार्शनिक, साहित्यिक आदि परिस्थितियाँ भी समाविष्ट हैं। लोकदर्शी कवि के काव्य मे इन विविध परिस्थितियो का सकलित प्रभाव प्रसगानुसार सश्लिष्ट अथवा विश्लिष्ट रूप मे प्रतिफलित होता है।

तुलसीदास लोकदर्शी कवि थे। जीवन के विभिन्न पक्षो को उन्होने सूक्ष्मता से देखा-परखा था। विश्व-कल्याण की भावना से अनुप्राणित उनकी पैनी दृष्टि क्लेशकारिणी परिस्थितियो और कष्ट-निवारक उपायो के बिंब-ग्रहण मे पूर्णत समर्थ थी। वे सर्वात्मभाव की पराकाष्ठा पर पहुँचे हुए महात्मा थे। इसके फलस्वरूप लोकानुभूति उनकी स्वानुभूति बन गयी थी। उदाहरण के लिए, 'कवितावली' मे दारिद्र्य-पीडित जनता के जिन हृदय-विदारक कष्टो का वर्णन है उनसे तुलसी स्वय व्यथित हैं। दूसरी ओर, उनकी स्वानुभूति व्यक्तिमत्त्व की सकुचित परिधि को लाँघकर लोकानुभूति की विस्तृत भूमि पर प्रतिष्ठित है। 'विनयपत्रिका' के रूप मे सप्रेषित उनका आत्मनिवेदन वैयक्तिक प्रार्थना-पत्र मात्र न होकर कलिकाल-निपीडित जन-समष्टि का आत्मनिवेदन है। तुलसी सार्वजनिक अधिवक्ता हैं। एक और बात भी स्मरणीय है। तुलसी प्रगतिशील होते हुए भी आधुनिक अर्थ मे 'प्रगतिवादी' या 'प्रयोगवादी' नही हैं। 'वाद' की दृष्टि से वे परपरावादी की श्रेणी मे ही आएँगे। अत उनका लोक-दर्शन शास्त्र-प्रतिपादित परपरा के अनुरूप है। उदाहरण के रूप मे उनके कलि-वर्णन को लीजिए। उसमे 'भागवत' आदि शास्त्र-ग्रथो की छाया स्पष्ट है। परतु, तुलसी का युगधर्म-निरूपण परपरा-प्रसिद्ध प्रस्थानो की उद्धरणी नही है। उनकी उक्तियो मे उनका युग स्फुट स्वर से बोल रहा है। वे युग की दशा से प्रभावित हैं, युगीन जन-समुदाय के मगल-विधान के लिए प्रयत्नशील है। इसी परिप्रेक्ष्य मे तत्कालीन राजनैतिक, आर्थिक, धार्मिक, सामाजिक, आध्यात्मिक और साहित्यिक परिस्थितियो के प्रभावो का प्रतिफलन उनके काव्य मे द्रष्टव्य है।

राजनैतिक परिस्थिति

तुलसीदास मुस्लिम शासन-काल मे हुए थे। उस समय देश उन विदेशी विजेताओ से पादाक्रांत था। मुसलमानो से पूर्व भी विदेशी जातियाँ भारत मे आयी थी, उन्होने विजय करके राज्य-स्थापन किया था, परतु वे भारतीय सस्कृति मे खप गयी। मुसलमान विजेता अपनी सस्कृति लेकर आये थे। भारत मे बस करके भी वे अपनी सस्कृति को बनाये रहे। इतना ही नही, अपनी शासन-शक्ति और आर्थिक प्रलोभनो से उन्होने उस सस्कृति का आशातीत विस्तार किया। पहली बार भारत का विदेशी सस्कृति से सघर्ष हुआ।

तुलसी का जीवन-काल स० १५८९-१६८० है। यद्यपि उनका जन्म हुमायूँ के शासन-काल मे हुआ था तथापि उनके जीवन के आरभिक वर्ष मुगल-अफगान-सघर्ष के कारण उत्पन्न राजनैतिक उथल-पुथल के वातावरण मे व्यतीत हुए। शेरशाह का अल्प-कालीन शासन सुराज्य की स्थापना नही कर सका। तुलसी से दस वर्ष छोटा अकबर स० १६१३ मे गद्दी पर बैठा और स० १६६२ तक राज्य करता रहा। उसने मुगल-साम्राज्य की प्रतिष्ठा की। अपने शासन-काल के उत्तरार्ध मे बहुत-कुछ सुधार किये। तुलसी के जीवन के अतिम अठारह वर्ष जहाँगीर के शासन-काल मे पडते हैं। मेहरबस जहाँगीर 'बुद्धिमान् शराबी' के नाम से विख्यात है। उन दोनो मुगल-सम्राटो का शासन-काल 'मध्यकालीन' भारतीय इतिहास मे महत्त्वपूर्ण माना जाता है। वे महान् समझे जाते है।

तुलसी के मन मे रामराज्य की आदर्श भावना थी। उसका शताश भी उन बादशाहो के शासन मे उन्हे दिखायी नही पडा। राजा का अन्यतम कर्तव्य प्रजा-पालन है। 'रामचरित-मानस के राम ने भरत के प्रति राजधर्म का सार निम्नाकित पक्तियो मे प्रस्तुत कर दिया है

(i) कहब सँदेसु भरत के आएँ। नीति न तजिअ राजपदु पाएँ॥
पालेहु प्रजहि करम मन बानी। सेएहु मातु सकल सम जानी॥[1]

(ii) तुम्ह मुनि मातु सचिव सिख मानी। पालेहु पुहुमि प्रजा रजधानी॥
मुखिआ मुखु सो चाहिअइ खान पान को एक।
पालइ पोषइ सकल अँग तुलसी सहित बिबेक॥
राजधरम सरबस एतनोई। जिमि मन माँह मनोरथ गोई॥[2]

उन मुगल-सम्राटो का शासन सैनिक शासन था। उनका उद्देश्य प्रजा-पालन और प्रजा-रजन नही था। उन्होने अपने साम्राज्य की स्थापना, निजी योग-क्षेम और अपने भोग-विलास पर ध्यान दिया। शक्ति से जीतकर कितनी ही रूपवती कुमारियो को अकशायिनी बनाया।[3] इसका पुष्टतम प्रमाण यह है कि अकबर के अत पुर मे पाँच हजार[4] और जहाँगीर

---

१. रामचरितमानस, २।१५२।२

२ रामचरितमानस, २।३१५।४ ३१६।१

३. रावण के व्याज से इसकी व्यग्यात्मक व्यजना द्रष्टव्य है—
जीति बरीं निज बाहु बल बहु सुदर बर नारि।—रामचरितमानस, १।१८२

४ मेडीवल इन्डिया अन्डर मुहमडन रूल, पृ० २५२, ऐन ऐडवान्स्ड हिस्ट्री ऑफ़ इन्डिया, पृ० ५५६

के हरम मे तीन सौ युवतियाँ एकत्र की गयी थीं।[1] विलास के लिए धन चाहिए। वह प्रजा से ही उगाहा जा सकता था। धर्म और मोक्ष मे उनकी आस्था नही थी। अर्थ और काम की अभिलाष-पूर्ति के लिए प्रजा का शोषण अनिवार्य था। सम्राटो के कर्मचारी बडी नृशसता के साथ इस कर्म का सपादन करते थे। सम्राटो के पदचिह्नो पर चलने वाले छोटे-मोटे अधीनस्थ राजा भी दड को ही सर्वोत्तम राजनैतिक उपाय मानते थे

गोड गँवार नृपाल महि जमन महामहिपाल।
साम न दान न भेद कलि केवल दड कराल ॥[2]

इन दडपाशिक शासको के प्रशासन की तुलना मे रामराज्य कितना मगलमय था

दड जतिन्ह कर भेद जहँ नर्तक नृत्य समाज।
जीतहु मनहि सुनिअ अस रामचद्र के राज ॥[3]

किंतु तुलसी के समसामयिक राजाओ मे कृपा का लेश नही था, पाप-परायण शासक कठोर दड द्वारा प्रजा की विडबना करते थे

काल कराल नृपाल कृपाल न राजसमाज बडोई छली है।[4]
नृप पाप परायन धर्म नहीं। करि दड बिडब प्रजा नितहीं ॥[5]

उन आतककारी शासको की अपेक्षा उनके कर्मचारी नौकर कही अधिक अत्याचारी थे

त्रिबिध एक बिधि प्रभु अनुग अवसर करहिं कुठाट।
सूधे टेढ़े सम बिषम सब महँ बारहबाट ॥
प्रभु तें प्रभु गन दुखद लखि प्रजहिं सँभारै राउ।
करतें होत कृपान को कठिन घोर घन घाउ ॥[6]

राजपुरुषो के अत्याचारो मे त्रस्त प्रजा की सुनवाई नही थी। अधिनायक शासको के दरबार मे भगवद्भजननिष्ठ धर्मात्माओ को भी अपमान सहना पडता था .

बडे बिबुध दरबार तें भूमि भूप दरबार।
जापक पूजक पेखिअत सहत निरादर भार ॥[7]

उन शोषक शासको के अनैतिक शासन मे दुर्दशा-ग्रस्त प्रजा की दयनीयता को देखकर लाचार तुलसी भाग्य को ही कोसते थे

माली भानु कृसानु सम नीति निपुन नरपाल।
प्रजा भाग बस होंहिगे कबहुँ कबहुँ कलिकाल ॥[8]

उस युग मे राष्ट्रीयतावाद का अवसर नही था। परिस्थिति के अनुकूल तुलसी ने प्रतीकात्मक

---

१ मेडीवल इन्डिया अन्डर मुहमडन रूल, पृ० २६६
२ दोहावली, ५५६
३. रामचरितमानस, ७।२२
४ कवितावली, ७।८५
५ रामचरितमानस, ७।१०१।३
६. दोहावली, ५००-५०१
७ दोहावली, ३६३
८. दोहावली, ५०७

युक्ति का सहारा लिया। उन्हे 'रामचरितमानस' मे रावण आदि राक्षसो के अत्याचारो का वर्णन करना था। उनके माध्यम से उन्होने अपने युग के राक्षसी प्रवृत्ति वाले यवन-शासको का यथार्थ चित्र भी अकित कर दिया

करहिं उपद्रव असुर निकाया। नाना रूप धरहिं करि माया॥
जेहिं बिधि होइ धर्म निर्मूला। सो सब करहिं बेद प्रतिकूला॥
जेहिं जेहिं देस धेनु द्विज पावहिं। नगर गाउँ पुर आगि लगावहिं॥
सुभ आचरन कतहुँ नहिं होई। देव बिप्र गुरु मान न कोई॥
नहिं हरिभगति जग्य तप ग्याना। सपनेहुँ सुनिअ न बेद पुराना॥
बरनि न जाइ अनीति घोर निसाचर जो करहिं।
हिंसा पर अति प्रीति तिन्ह के पापहि कवनि मिति॥[1]

तत्कालीन आततायी शासको का भी इन पक्तियो मे चरित्राकन है। पाठको के मन मे इस विषय मे सदेह की गुजाइश न रहे, इसलिए कवि ने अपनी प्रतीक-व्यजना[2] का स्पष्टीकरण भी कर दिया है

जिन्ह के यह आचरन भवानी। ते जानेहु निसिचर सब प्रानी॥[3]

तुलसी-साहित्य पर मुस्लिम शासको की सस्कृति का प्रभाव अनेक रूपो मे परिलक्षित होता है। वे राक्षसो के प्रतिरूप हैं। अत युद्ध के अवसरो पर उनके शस्त्रास्त्रो का वर्णन करते हुए तुलसी ने प्राय उन हथियारो का उल्लेख किया है जो उन शासको द्वारा प्रयोग मे लाये जाते थे

सक्ति सूल तरवारि कृपाना। अस्त्र सस्त्र कुलिसायुध नाना॥
डारइ परसु परिघ पाषाना। लागेउ बृष्टि करै बहु बाना॥[4]
बहु कृपान तरवारि चमकहिं। जनु दह दिसि दामिनी दमकहिं॥[5]
सर तोमर सेल समूह पवाँरत मारत बीर निसाचर के।
इत ते तरु ताल तमाल चले खर खड प्रचड महीधर के॥
तुलसी करि केहरिनाद भिरे भट खग्ग खगे खपुवा खरके।
नख दतन सो भुजदड बिहडत मुड सो मुंड परे झरके॥[6]

तलवार, कटार और बरछे मुसलमान आक्राताओ के बहुप्रचलित हथियार थे। सपूर्ण तुलसी-साहित्य मे इनका उपयोग राम-विरोधी पात्रो ने किया है, राम या राम-पक्ष के

१. रामचरितमानस, १।१८३
२ एक दोहे में अफीम की निंदा की गया है—
ब्यालहुतें बिकराल बड़ ब्यालफेन जियँ जानु।
वहि के खायें मरत है वहि खायें बिनु प्रान॥—दोहावली, ५०२
यदि कोई प्रज्ञावान् आलोचक इस दोहे से अफीमची हुमायूँ और उस अफीमची के पुत्र अकबर की ध्वनि निकाले तो उसकी कल्पना सर्वथा निराधार नहीं होगी।
३. रामचरितमानस, १।१८४।२
४. रामचरितमानस, ६।७३।१
५. रामचरितमानस, ६।८७।२
६. कवितावली, ६।३५

किसी पात्र ने नही।

मुसलमान शासकों के दरबारी ऐश्वर्य से भी तुलसी प्रभावित हैं। पौराणिक आख्यान के पात्र दशरथ और राम के 'दरबार' का वर्णन उन्होने युग के अनुसार किया है

भइ बडि भीर भूप दरबारा। बरनि न जाइ बिषादु अपारा ॥[1]

मुसलमान सम्राटो के दरबार मे भेजी जाने वाली अरजी की भाँति ही उनकी 'विनयपत्रिका' राम के दरबार मे भेजी गयी है।[2] 'विनयपत्रिका' की समीक्षा के अतर्गत इस पर विस्तार से विचार किया जाएगा। मधुवन के माली फरियाद करने के लिए सुग्रीव के देवान' मे पहुँचे थे।[3] कराल कलिकाल के अत्याचारो की शिकायत राम के दरबार मे करते हुए तुलसी ने दरबारी कवियो की भाँति राजाधिराज राम का गुणगान करते हुए उनकी उम्रदराजी (दीर्घायुष्य) की शुभकामना की है

जाहिर जहान में जमानो एक भाँति भयो बेंचिये बिबुधधेनु रासभी बेसाहिये।
ऐसेऊ कराल कलिकाल मे कृपाल तेरे नाम के प्रताप न त्रिताप तन दाहिये ॥
तुलसी तिहारो मन बचन करम तेहि नातो नेम नेह निज ओर ते निबाहिये।
रक के निवाज रघुराज राजा राजनि के उमर दराज महाराज तेरी चाहिये ॥[4]

अनादि-अनत राम की उम्रदराजी की मगलाशा से कवि पर दरबारी सस्कृति के प्रभाव की सहज अनिवार्यता परिलक्षित होती है।

मुगल-शासन मे राजभाषा का पद फारसी को प्राप्त था। शासको द्वारा समादृत भाषा की जानकारी जनता के लिए आवश्यक थी। आदर्श की वेदी पर व्यवहार की बलि चढाना बुद्धि-सगत नही था। परिणाम यह हुआ कि प्रशासन मे व्यवहृत शब्दावली का जन-समुदाय मे अबाध गति से प्रचलन होने लगा। उसका प्रभाव इतना अभिभावी था कि भारतीय सस्कृति के परम भक्त और सस्कृत-साहित्य के गभीर ज्ञानी तुलसी ने हिंदी-जगत् मे स्वाभाविकतया प्रचलित फारसी-शब्दसमूह को निस्सकोच भाव से स्वच्छदता के साथ ग्रहण किया। उपर्युक्त पद्य मे जाहिर, जहान, जमानो, निवाज, उमर और दराज सहज-तया प्रयुक्त हुए है। तुलसी-साहित्य मे विन्यस्त फारसी शब्दो की सख्या बहुत बडी है। तुर्की[5] और अरबी के शब्द भी उन शासको की सस्कृति के माध्यम से अतर्निविष्ट हुए है। ऊपर के उद्धरण मे जहान, नवाज और दराज फारसी-शब्द हैं, जाहिर, जमान और उम्र अरबी के हैं। 'नानापुराणनिगमागमसमत रघुनाथगाथा' की निबधना करने

१ रामचरितमानस, २।७६।३
२ स्वामी सरबग्य सों चलै न चोरी चार की।
प्रीति पहिचानि यह रीति दरबार की ॥—विनयपत्रिका, ७२।४
३. मारे बागबान ते पुकारत देवान गे
उजारे बाग अगद देखाए घाय तन मैं।—कवितावली, ५।३१
४ कवितावली, ७।७६
५. निम्नांकित दोहे में 'तोपची' और 'तुपक' तुर्की के शब्द हैं--
काल तोपची तुपक महि दारू अनय कराल।
पाप पलीता कठिन गुरु गोला पुहुमीपाल ॥—दोहावली, ५१५

वाले तुलसी ने भूपशिरोमणि निर्गुण-सगुण-रूप राम को बारबार साहिब[1] कहा है। भक्त कवि तत्कालीन जालिम साहबो की देश-काल-परिच्छिन्न साहबी के सिर पर राम की सार्वदेशिक और सार्वकालिक 'साहिबी' का दर्शन करता है

आदि मध्य अंत राम साहिबी तिहारी।[2]

कालभैरव काशी के 'कोतवाल' माने गये हैं,[3] और राम की शक्तिरूपा सीता को तुलसी ने 'साहिबिनी' की सज्ञा प्रदान की है[4]

मेरी साहिबिनी सदा सीस पर बिलसति देवि क्यो न दास को देखाइयत पाय जू।[5]

उनके रासरसिक कृष्ण भी 'साहिब' हैं।[6] अंतर्यामी ब्रह्म के लिए 'साहिब'[7] का प्रयोग निर्गुण-संत कवियो की परपरा मे लोकप्रिय रहा है। साहब की लोक-मान्यता इतनी बढी कि अनेक कवि ही 'साहब' के उच्चासन पर प्रतिष्ठित हो गये, जैसे—दरया साहब, तुलसी साहब आदि। सिखो का धर्मग्रथ (आदिग्रथ) 'ग्रथ साहब' के नाम से विख्यात हुआ। प्रकृत बात यह है कि युगधर्म से प्रभावित तुलसी ने तत्कालीन मुसलमान बादशाहो की सरकारी भाषा के लोकप्रचलित अरबी-फारसी शब्दो का सैकडो स्थलो पर बहुश व्यवहार किया है। अपनी प्रवृत्ति के अनुसार उन्हें जहाँ तहाँ हिंदी के साँचे मे ढाल लिया है।

आर्थिक परिस्थिति

तुलसी के युग मे निरकुश और विलासी शासको तथा उनके उच्च अधिकारियो का जीवन चाहे जितना सुखमय रहा हो, किंतु जनसाधारण की आर्थिक दशा दयनीय थी।[8] अधिकारो के प्रति सतत जागरूक अधिकारी-वर्ग अपने कर्तव्यो के प्रति नितात उदासीन था। जनता के भारस्वरूप शासक किसानो से बलपूर्वक विविध प्रकार के कर वसूल करते थे।[9] तुलसी ने प्रशासको द्वारा किये गये शोषण के विरुद्ध कोई विद्रोह तो नही खडा किया, झकझोर देने वाली शब्दावली मे उथल-पुथल मचा देने वाला लोमहर्षक वर्णन भी नही

---

१ जैसे—सरल सबल साहिब रघुराजू।—रामचरितमानस, १।१३।४
जाको ऐसो दूत सो साहेबु अबै आवनो।—कवितावली, ५।६

२. विनयपत्रिका, ७८।३

३ कालनाथ कोतवाल दडकारि दडपानि
सभासद गनप से अमित अनूप हैं।—कवितावली, ७।१७१

४. इस प्रसग में एक रोचक घटना उल्लेखनीय है। कहते हैं कि गांधी जी की हिंदुस्तानी को कार्यान्वित करते हुए एक परीक्षक ने राष्ट्रभाषा-कोविद की परीक्षा में 'बेगम सीता' के विषय में प्रश्न पूछ दिया था। इससे लोगों को बड़ा असंतोष हुआ। उन्होंने अपनी भावना को मुखरित किया—'हम अपनी सीता को बेगम नहीं होने देंगे'।

५. कवितावली, ७।१३६, प्रसगानुकूल न होने पर भी 'साहिबिनी' शब्द में नूरजहाँ का निर्देश असभाव्य नहीं है।

६. तऊ न होत कान्ह को सो मन सबै साहिबहि सोहैं।—कृष्णगीतावली, ३१

७. तुलसी रत मन होइ रहै अपने साहिब माहि।—वैराग्यसंदीपनी, २५

८. ऐन ऐडवान्स्ड हिस्ट्री ऑफ़ इन्डिया, पृ० ५३६

९. देखिए—मुगल ऐडमिनिस्ट्रेशन, टैक्सेशन

किया, परतु कर उगाहने की आदर्श रीति वतला कर व्यजना द्वारा उस शोषण का सकेत अवश्य किया है

माली भानु किसान सम नीतिनिपुन नरपाल।
प्रजा भाग वस होहिंगे कवहुँ कवहुँ कलिकाल॥
वरषत हरषत लोग सव करषत लखै न कोइ।
तुलसी प्रजा सुभाग ते भूप भानु सो होइ॥
सुधा सुनाज कुनाज फल आम असन सम जानि।
सुप्रभु प्रजा हित लेहिं कर सामादिक अनुमानि॥[1]

किसी सामत या सपन्न भूमिधर की मृत्यु पर उसकी भूमि राजसात् कर ली जाती थी। इसके परिणाम-स्वरूप, उस पर आश्रित कितने ही परिवार विपन्न हो जाते थे।[2] इस प्रकार के शासको को तुलसी ने 'भूमिचोर' अथवा 'चोरभूप' कहा है

वेदधर्म दूरि गये भूमिचोर भूप भये[3] या वेदधर्म दूरि गये भूप चोरभूप भये[4]

शक्तिमान् लोग धन के लिए ब्रह्महत्या तक कर सकते थे। वे येन-केन प्रकारेण लूट-मार कर धन-सग्रह करते थे

मारग मारि महीसुर मारि कुमारग कोटिक कै धन लीयो।[5]

उस कुराज्य मे किसी की भी सपत्ति सुरक्षित नही थी। वह किसी भी समय हडपी जा सकती थी। उसकी स्थिति ववडर मे पडे हुए कटे पतग की-सी थी

चढ़े वघूरे चग ज्यों ग्यान ज्यो सोक समाज।
करम धरम सुख सपदा त्यों जानिवे कुराज॥[6]

इन आधिभौतिक कष्टो से पीडित प्रजा पर आधिदैविक विपत्तियो का वज्रपात भी होता था। तुलसी के जीवन-काल मे कई वार भयकर अकाल पडे। विशेष कर के स० १६१३-१४, स० १६३०-३१ और स० १६८० के भीषण दुर्भिक्षो ने देश को तवाह कर दिया। प्राण-रक्षा के लिए मनुष्य मनुष्य को खाने लगा। सडके और गलियाँ लाशो से पट गयी।[7] कवि ने इन अकालो की करालता का अनेक स्थलो पर निर्देश किया है

(i) कलि वारहिं वार दुकाल परै। विनु अन्न दुखी सव लोग मरै॥[8]

(ii) दिन दिन दूनो देखि दारिदु दुकाल दुख दुरितु दुराजु सुख सुकृत सकोच है।
मागें पैंत पावत पचारि पातकी प्रचड काल की करालता भले को होत पोच है॥[9]

ईति-भीतियो के चक्र मे पिष्टपेषित प्रजा किंकर्तव्यविमूढ थी। काल मुँह वाये खडा था,

---

१ दोहावली, ५०७।६
२ मुगल ऐडमिनिस्ट्रेशन, पृ० १६५, १७५
३ कवितावली (गीता प्रेस), ७।१७७
४ कवितावली, सपादक प० श्रीकांतशरण
५ कवितावली, ७।१७६
६ दोहावली, ५१३
७ ऐन ऐडवान्स्ड हिस्ट्री ऑफ इन्डिया, पृ० ५७१-५७२
८. रामचरितमानस, ७।१०१।५
९. कवितावली, ७।८१

जीविका का कोई उपाय नही सूझता था। दारिद्रय-रूपी रावण ने उसे दबोच रखा था। आर्त जनता की शोचनीय दुरवस्था को देखकर तुलसी-जैसा वीतराग तत्त्वज्ञानी भी हाहाकार कर उठा

खेती न किसान को भिखारी को न भीख बलि वनिक को बनिज न चाकर को चाकरी।
जीविकाविहीन लोग सीद्यमान सोचबस कहैं एक एकन सो कहां जाई का करी।।
बेद हू पुरान कही लोक हू बिलोकियत सांकरे सबै पै राम रावरे कृपा करी।
दारिददसानन दबाई दुनी दीनबधु दुरित दहत देखि तुलसी हहा करी।।[1]

जन-समुदाय के कष्टो की सीमा यही नही थी। विपत्तियाँ अकेली नही आती। छिद्रेष्वनर्था वहुलीभवन्ति। दैविक भौतिक सकट तो थे ही, दैविक-दैहिक आपत्ति के रूप मे महामारियो[2] का घोर आक्रमण हुआ। इस प्रकार तुलसी की काशी तीनो प्रकार के तापो से जलने लगी, वह उजाड हो गयी।[3] सभवत सबसे प्रचड महामारी ताऊन के रूप आयी थी जो स० १६७३ से स० १६८१ तक देश के विभिन्न भागो मे फैला रहा।[4] प्रलयकर महामारी की ज्वालाओ मे दहती हुई काशी का मर्मवेधी दृश्य 'कवितावली' मे अकित है। मांजा के कारण अकुलाती, छटपटाती और मरती हुई मछलियो के समान काशी-निवासियो की दारुण अवस्था का दृश्य अत्यत हृदय-विदारक था

संकरसहर सर नरनारि वारिचर विकल सकल महामारी माजा भई है।
उछरत उतरात हहरात मरि जात भभरि भगात जल थल मीचुमई है।।[5]

धार्मिक-सामाजिक परिस्थिति

तुलसीदास सनातनधर्मी थे। सनातनधर्म 'मजहव' या 'रेलिजन' मात्र नही है। उसमे भक्ति-द र्शन, श्रद्धा-विश्वास श्रेय-प्रेय, आचार-व्यवहार, न्याय-विधि, समाज-व्यवस्था आदि सभी बातो का अतर्भाव है। तुलसी का दृष्टिकोण स्मार्त-भावना-प्रधान है। उनकी दृष्टि मे मानव-धर्म, वर्ण-धर्म, आश्रम-धर्म, राजधर्म और स्त्री-धर्म ही धर्म के प्रमुख तत्त्व है, इनके समुचित परिपालन पर ही समाज का कल्याण निर्भर है। अपनी धर्म-भावना की इसी पृष्ठभूमि मे उन्होने अपने युग की धार्मिक-सामाजिक परिस्थितियो का चित्रण किया है।

मुसलमानो के सपर्क मे आने के बाद हिंदू-धर्म की एक विदेशी धर्मसे सीधी टक्कर हुई। मुसलमान विजेता और शासक थे। वे अपना बद्धमूल धर्म लेकर भारत मे आये थे।

---

१. कवितावली, ७।९७
२. देवता निहोरे महामारिन्ह सों कर जोरे
भोरानाथ जानि भोरे आपनी सी ठई है।—कवितावली, ७।१७५
३ लोगनि के पाप कैधौं सिद्ध सुर साप कैधौं काल कै प्रताप कासी तिहू ताप तई है।
ऊँचे नीचे बीच के धनिक रंक राजा राय हठनि बजाइ करि डीठि पीठि दई है।।
—कवितावली, ७।१७५
४. हिस्ट्री ऑफ़ जहागीर, पृ० २९५
५. कवितावली, ७।१७६

उनमे कट्टरता कूट-कूटकर भरी हुई थी। जाति-पाँति का भेद-भाव नही था। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से दूसरी जाति के देश मे शक्ति-सगठन बनाये रखना उनके लिए अत्यत आवश्यक था। 'काफिरो' को मारकर, मदिरो को ढहाकर मूर्तियो को तोडकर और अपने धर्म का विस्तार करके 'बिहिश्त' मे स्थान आरक्षित करा लेने की कामना भी बलवती थी। उनके पूर्वागतुक विधर्मियो को हिंदू-धर्म ने आत्मसात् कर लिया था। इस्लाम का फौलादी कवच अभेद्य था। उनके पास सैनिक शक्ति थी, वित्तीय साधन थे, अत तलवार और प्रलोभन के बल पर इस्लाम बाढ के जल की भाँति अप्रतिहत गति से फैलने लगा।

निशाचर-रूपी यवन हिंदू-धर्म को निर्मूल करने के लिए कटिबद्ध थे। असुरो के उपद्रव का वर्णन करते हुए तुलसी ने उनके धार्मिक अत्याचारो का साकेतिक निदर्शन किया है

देखत भीमरूप सब पापी। निसिचर निकर देव परितापी।। ··
जेहि बिधि होइ धर्म निर्मूला। सो सब करहिं बेद प्रतिकूला।।···
नहिं हरिभगति जग्य तप ज्ञाना। सपनेहुँ सुनिअ न बेद पुराना।।· ·
अस भ्रष्ट अचारा भा ससारा धर्म सुनिअ नहि काना।
तेहि बहु बिधि त्रासइ देस निकासइ जो कह बेद पुराना।।[1]

धर्म की अतिशय ग्लानि देखकर भयभीत पृथिवी व्याकुल थी, शासित हिंदू-जाति सत्रस्त थी। प्रतिकार उसकी सामर्थ्य के बाहर था। रावण-सरीखे विधर्मियो की धर्म-विरुद्ध धर्मांधता को देखते हुए भी उनके विरोध मे मुँह खोल सकना सभव नहीं था

अतिसय देखि धर्म कै ग्लानी। परम सभीत धरा अकुलानी।। ··
सकल धर्म देखइ बिपरीता। कहि न सकइ रावन भय भीता।।[2]

ऐसी विषम परिस्थिति मे हिंदू-धर्म के प्रसार का प्रश्न नही उठ सकता था। तत्कालीन हिंदू-जाति की सकुचित धार्मिक-दृष्टि पर प्राय आक्षेप किया गया है। तथ्य यह है कि विजित हिंदू-जाति की स्थिति उस पराजित सेना की-सी थी जो बलवान् शत्रु द्वारा गढ के भीतर घेर ली गयी हो। अतएव उसकी सर्वप्रमुख समस्या आत्मरक्षा की थी। उसका ध्यान क्षेम पर केंद्रित था, योग[3] पर नही। इस्लाम को आत्मसात् नही किया जा सकता था, वह दूसरो को ही निगल रहा था। उस तिमिंगिलगिल से अपने को बचाये रखना ही बहुत जरूरी था। इसका परिणाम यह हुआ कि हिंदू-समाज-व्यवस्था का शिथिलायमान ढाँचा अवधानपूर्वक कसा जाने लगा। फक्कड और अक्खड निर्गुणियो के वाचनिक आक्रमणो के बावजूद जाति-पाँति की स्मृति-प्रतिपादित प्रथा कठोर हो उठी। इस स्मार्त धर्म-पताका के सबसे महान् नायक तुलसीदास हुए।

अपने युग मे धर्म की सर्वतोमुखी हानि देखकर तुलसी अत्यत क्षुब्ध हुए। उनका

---

१ रामचरितमानस, १।१८३
२. रामचरितमानस, १।१८४।२,३
३. अप्राप्तस्य प्रापणं योग क्षेम प्राप्तस्य रक्षणम्।

क्षोभ कलिकाल-वर्णन के प्रसग मे आवेग के साथ अभिव्यक्त हुआ है। मानव-धर्म[1] का लोप हो गया था। सत्य, अहिंसा, क्षमा, धृति, दम, अस्तेय, शौच, इद्रियनिग्रह, धी, विद्या, अक्रोध, दया, दान और ह्री मानव-धर्म है।[2] इनमे भी सत्य, अहिंसा, अस्तेय (दूसरे के धन का अपहरण न करना), शौच और इद्रियनिग्रह का आचरण मानव-धर्म का सार है।[3] उस युग मे सत्य के बदले मिथ्या और पाखड का राज्य था

सांति सत्य सुभ रीति गई घटि बढ़ी कुरीति कपट कलई है।
सीदत साधु साधुता सोचति खल बिलसत हुलसति खलई है॥[4]

कलिमल ग्रसे धर्म सब लुप्त भए सदग्रथ।
दंभिन्ह निज मति कल्पि करि प्रगट किए बहु पथ॥
सुनु खगेस कलि कपट हठ दभ द्वेष पाषड।
मान मोह मारादि मद ब्यापि रहे ब्रह्मड॥[5]

दभ सहित कलि धरम सब छल समेत ब्यवहार।
स्वारथ सहित सनेह सब रुचि अनुहरत अचार॥[6]

अहिंसा के बदले हिंसा पर ही राजा और प्रजा दोनो की प्रीति थी।[7] जन-साधारण की कौन कहे, शासक तक भूमिचोर और चोरो के सरदार हो गये थे।[8] ब्रह्मज्ञान की बात करने वाले ढोगी कौडी के लिए विप्र-गुरु की हत्या कर सकते थे

ब्रह्म ग्यान बिनु नारि नर करहिं न दूसरि बात।
कौड़ी लागि लोभ बस करहिं बिप्र गुर घात॥[9]

उस म्लेच्छ-शासन मे बाह्य तथा आभ्यतर शौच का नाम मिट गया था

सुनु ब्यालरि काल कलि मल अवगुन आगार।[10]

यथा राजा तथा प्रजा[11] की लोकोक्ति इद्रिय-निग्रह के उल्लघन मे सबसे अधिक चरितार्थ हो रही थी। सैकडो-हजारो रमणियो का सग्रह करने वाले भौतिकतावादी विलासी बादशाहो की प्रजा का देह-पोषक और कामासक्त होना स्वाभाविक था

---

१ मानवधर्म या साधारण धर्म के विशद विवेचन के लिए देखिए—तुलसी-दर्शन-मीमांसा, पृ० १९८-२०९
२. मनुस्मृति, ६।९२, याज्ञवल्क्यस्मृति, १।१२२, ३।६६
३. मनुस्मृति, १०।६३
४. विनयपत्रिका, १३९।५
५ रामचरितमानस, ७।९७, १०१
६ दोहावली, ५४८
७ रामचरितमानस, १।१८३, ७।९९
८. कवितावली, ७।१७७
९ रामचरितमानस, ७।९९ क, दोहावली, ५५२
१०. रामचरितमानस, ७।१०२
११ काल बिलोकत ईस रुख भानु काल अनुहारि।
रबिहि राउ राजहि प्रजा बुध ब्यवहरहि बिचारि॥—दोहावली, ५०४

तनु पोषक नारि नरा सगरे। परनिंदक जे जग मो वगरे ॥[1]
नारि विवस नर सकल गोसाईं। नाचहिं नट मर्कट की नाईं ॥[2]
कलिकाल विहाल किए मनुजा। नहिं मानत कोउ अनुजा तनुजा ॥[3]

तुलसी वर्णाश्रम-धर्म[4] के दृढ समर्थक थे। अत उस युग मे वर्णाश्रम-धर्म की दुर्दशा देखकर उनका चित्त विचलित हो गया था। उन्होने वारवार वल देकर वर्णाश्रम-धर्म की तत्कालीन शोचनीयता का उल्लेख किया है

१ वरन धरमु गयो आश्रम निवासु तज्यो त्रासन चकित सो परावनो परो सो है।
२ वर्न विभाग न आश्रमधर्म दुनी दुख दोष दरिद्र दली है।
३ आश्रम वरन कलि विवस विकल भये निज निज मरजाद मोटरी सी डार दी।[5]
४ वरन धर्म नहिं आश्रम चारी। श्रुति विरोध रत सव नर नारी ॥
५ भए वरन सकर कलि भिन्नसेतु सव लोग।
करहिं पाप पावहिं दुख भय रुज सोक वियोग ॥[6]
६ आश्रम वरन धरम विरहित जग लोक वेद मरजाद गई है।
प्रजा पतित पाखड पाप रत अपने अपने रग रई है ॥[7]

ब्राह्मण-पक्षपाती कहे जाने वाले तुलसी ने तत्कालीन धर्म-भ्रष्ट ब्राह्मणो का भी निष्पक्ष चरित्राकन किया है

विप्र निरच्छर लोलुप कामी। निराचार सठ वृषली स्वामी ॥[8]
द्विज श्रुति वेचक भूप प्रजासन। कोउ नहिं मान निगम अनुसासन ॥[9]
प्रभु के वचन वेद वुध समत मम मूरति महिदेवमई है।
तिनकी मति रिस राग मोह मद लोभ लालची लीलि लई है ॥[10]

धर्मशास्त्रीय विधान के अनुसार शूद्र का एकमात्र धर्म द्विजातियो की सेवा है[11]। सनातन-धर्म की मर्यादा को तोडकर वे ब्राह्मणो से प्रतिस्पर्धा और वाद-विवाद करते थे, गुर्राकर उन्हें आँख दिखाते थे

वादहिं सूद्र द्विजन्ह सन हम तुम्ह ते कछु घाटि।
जानइ ब्रह्म सो विप्रवर आँखि देखावहिं डाटि ॥[12]

---

१ रामचरितमानस, ७।१०२।५
२. रामचरितमानस, ७।९९।१, जैसे जहाँगीर नूरजहा के सकेत पर नाचता था।
३. रामचरितमानस, ७।१०२।३
४ विस्तृत विवेचन के लिए देखिए—तुलसी-दर्शन-मीमासा, पृ० २०९-२२१
५. कवितावली, क्रमश ७।८४, ८५, १८३
६ रामचरितमानस, क्रमश, ७।९८।१, ७।१००
७ विनयपत्रिका, १३९।४
८ रामचरितमानस, ७।१००।४
९ रामचरितमानस, ७।९८।१
१० विनयपत्रिका, १३९।२
११ मनुस्मृति, १।९१, गीता, १८।४४, याज्ञवल्क्यस्मृति, १।१२०, भागवतपुराण, ७।११।२४
१२ दोहावली, ५५३, रामचरितमानस, ७।९९

वर्णाधम तेलियो, कुम्हारो, कलवारोआदि का पाखडवश सन्यासी बन कर जप-तप करना, पुराण बाँचना और ब्राह्मणो से पुजवाना तुलसी को बहुत अखरता था

जे बरनाधम तेलि कुम्हारा। स्वपच किरात कोल कलवारा॥
नारि मुई गृह सपति नासी। मूंड मुडाइ होहिं सन्यासी॥
ते बिप्रन्ह सन आपु पुजावहिं। उभय लोक निज हाथ नसावहिं॥
सूद्र करहिं जप तप ब्रत नाना। बैठि बरासन कहहिं पुराना॥
सब नर कल्पित करहिं अचारा। जाइ न बरनि अनीति अपारा॥[1]

भारतीय धर्मशास्त्र मे राजधर्म और स्त्रीधर्म को विशेष महत्त्व दिया गया है, क्योकि समाज का अभ्युदय और नि श्रेयस इन्ही दोनो पर मुख्यतया अवलबित है। तुलसी भी इस मान्यता के पोषक हैं। शासक के कर्तव्यच्युत हो जाने पर प्रजा भी पतित हो जाती है। तत्कालीन शासको का आचार-भ्रष्टता की चर्चा की जा चुकी है। स्त्री के चरित्रहीन हो जाने पर समाज का मूलाधार ही दूषित हो जाता है। जीवन के आलोचक तुलसी ने उस युग की सदाचारिणी और दुराचारिणी नारियो की गिरी हुई दशा का चित्र भी प्रस्तुत किया है

गुन मदिर सुंदर पति त्यागी। भजहिं नारि पर पुरुष अभागी॥
सौभागिनी बिभूषन हीना। बिधवन्ह के सिंगार नवीना॥[2]
कुलवति निकारहिं नारि सती। गृह आनहिं चेरि निबेरि गती॥[3]
अबला कच भूषन भूरि छुधा। धनहीन दुखी ममता बहुधा॥[4]

इस प्रकार पारिवारिक जीवन विषमय था। पुत्रो की श्रद्धाहीनता, कामासक्ति, और ससुराल-प्रियता से कौटुबिक आदर्श टूट रहा था

सुत मानहिं मातु पिता तब लौं। अबलानन दीख नहीं जब लौं॥
ससुरारि पिआरि लगी जब तें। रिपुरूप कुटुब भए तब तें॥[5]

और, गुरु-शिष्यो ने तो ज्ञान गरिमा की नाव ही बोर दी थी

गुर सिष बधिर अंध का लेखा। एक न सुनइ एक नहिं देखा॥[6]

तात्पर्य यह कि तुलसी के युग का समूचा समाज विशृखल, अस्तव्यस्त और छिन्न-भिन्न हो रहा था। तीर्थों और मदिरो तक मे भ्रष्टाचार फैला हुआ था

सुर सदननि तीरथ पुरिन निपट कुचालि कुसाज।
मनहुं मवासे मारि कलि राजत सहित समाज॥[7]

सब धर्म-बधन से स्वतत्र होकर मनमानी कर रहे थे। अमायिक गुणियो का समाज मे निरादर होता था। मायावी धूर्त लोक-मान्यता प्राप्त करते थे

---

१ रामचरितमानस, ७।१००।३-५
२. रामचरितमानस, ७।९९।२-३
३. रामचरितमानस, ७।१०१।२
४. रामचरितमानस, ७।१०२।१
५ रामचरितमानस, ७।१०१।२-३
६ रामचरितमानस, ७।९९।३
७ दोहावली, ५५८

मारग सोइ जा कहुँ जोइ भावा। पंडित सोइ जो गाल बजावा ॥
मिथ्यारभ दभ रत जोई। ता कहुँ सत कहत सब कोई ॥
सोइ सयान जो परधनहारी। जो कर दभ सो बड आचारी ॥
जो कह झूंठ मसखरी जाना। कलिजुग सोइ गुनवत बखाना ॥
निराचार जो श्रुति पथ त्यागी। कलिजुग सोइ ग्यानी सो बिरागी ॥
जाकें नख अरु जटा बिसाला। सोइ तापस प्रसिद्ध कलिकाला ॥
असुभ बेष भूषन धरें भच्छाभच्छ जे खाहिं।
तेइ जोगी तेइ सिद्ध नर पूज्य ते कलिजुग माहिं ॥
जे अपकारी चार तिन्ह कर गौरव मान्य तेइ।
मन क्रम बचन लबार तेइ बकता कलिकाल महुँ ॥[1]

जनता मे भेडियाधसान की प्रवृत्ति जोरो पर थी। मूढ हिंदुओ ने बहराइच को भी तीर्थ-स्थान मान लिया था। अधे नेत्र-प्राप्ति के लिए, वध्याएँ पुत्र-लाभ की कामना से और कोढी कचन-काया के लिए बहराइच जाते थे। वे गाजी मियाँ (सालार मसऊद गाजी) की कब्र पर मनौतियाँ मनाते, दान-दक्षिणा देते, और चढावा चढाते थे। तुलसी इस प्रकार के कुमार्गगामियो से पूछते हैं

लही आँख कब आँधरे बाँझ पूत कब ल्याइ।
कब कोढ़ी काया लही जग बहराइच जाइ ॥[2]

ऐसे भी लोग थे जो विष्णु-शिव की उपेक्षा करके भूत-प्रेत-पूजा पर विश्वास रखते थे। उनको लक्ष्य करके तुलसी ने कस कर करारी चोट की है

तुलसी परिहरि हरि हरहिं पावँर पूजहिं भूत।
अत फजीहति होहिंगे गनिका के से पूत ॥[3]

यह तुलसी का अपनी आँखो से देखा हुआ समाज था। समाज का यह चित्र केवल परपरा-वर्णित कलियुग का निरूपण-मात्र नही है। इसका आधार प्रत्यक्ष-प्रमाण है। इस सबध मे किसी सदेहवादी को कोई भ्राति न हो जाए, इसलिए उन्होने अपनी प्रत्यक्षदर्शिता का स्पष्ट निर्देश कर दिया है

पर त्रिय लपट कपट सयाने। मोह द्रोह ममता लपटाने ॥
तेइ अभेदवादी ग्यानी नर। देखा मैं चरित्र कलिजुग कर ॥[4]

तत्कालीन हिंदू-समाज आतरिक सघर्षों से भी जर्जर हो रहा था। वह अनेक धार्मिक

---

१ रामचरितमानस, ७।९८
२. दोहावली, ४९६
३. दोहावली, ६५। मिलाकर देखिए—
जे परिहरि हरि हर चरन भजहि भूतगन घोर।
तिन्ह कै गति मोहि देहु बिधि जौं जननी मत मोर ॥ —रामचरितमानस, २।१६७
भूतानि यान्ति भूतेज्या यान्ति मद्याजिनोऽपि माम्। —गीता, ९।२५
४. रामचरितमानस, ७।१००।१

सप्रदायो और उपसप्रदायो मे बँटा हुआ था। तीन प्रमुख सप्रदाय थे—वैष्णव, शैव और शाक्त। उनमे पारस्परिक विद्वेष की आग धधकती रहती थी। कभी-कभी वह इतने जोर से भडक उठती थी कि दगा-फसाद भी हो जाया करता था। तुलसी की काशी इस तरह के उपद्रवो का केंद्र थी। कहा जाता है कि वल्लभ-सप्रदायी गोसाइयो ने तुलसी को भी बहुत तग किया था। जनश्रुति है कि उन लठ गोसाइयो ने तुलसी के मित्र टोडर की हत्या कर दी थी। तुलसी की वैष्णव-भक्ति के कारण असहिष्णु शैवो ने उन्हे कम परेशान नही किया। कहावत है जिसका बदर वही नचाए। अत उनके त्रासकारी उत्पातो से नकुआ कर तुलसी ने स्वय भगवान् शकर की दुहाई दी ·

गाँव बसत बामदेव मैं कबहूँ न निहोरे।
अधिभौतिक बाधा भई ते किंकर तोरे॥
बेगि बोलि बलि बरजिये करतूति कठोरे।
तुलसी दलि रूँध्यो चहै सठ साखि सिहोरे॥[1]

लोक-सग्रह के लिए इतनी-सी प्रार्थना पर्याप्त नही थी। आतरिक वैमनस्य से जीर्ण हिंदू-समाज की साप्रदायिक समस्या के स्थायी समाधान के लिए तुलसी ने शैव, शाक्त और वैष्णव मतो के समन्वय का प्रयास किया। 'समन्वय-साधना' के अतर्गत इसकी विस्तृत मीमासा की जाएगी। धार्मिक परिस्थिति के सदर्भ मे साप्रदायिक समन्वय की दृष्टि से यह बात अवेक्षणीय है कि 'कबीर का प्रमुख उद्देश्य हिंदू-मुस्लिम एकता की स्थापना है और इसके लिए उन्होने दोनो ही धर्मों की कट्टरपथी नीति और आचरणो का खडन किया है। इस्लाम धर्म के अनुकूल वे मूर्तिपूजा और अवतार के विरोधी थे और एक ईश्वर की सत्ता को मानते थे।'[2] तुलसी ने हिंदुओ-मुसलमानो मे भावनात्मक एकता स्थापित करने का कोई प्रत्यक्ष प्रयास नही किया। उनका उद्देश्य श्रौत-स्मार्त धर्म का सरक्षण एव पुन सस्थापन था। उनके नायक राम ने असुरो का वध करके, अधर्म का नाश करके और रामराज्य की स्थापना करके इस उद्देश्य की पूर्ति की है। तुलसी-साहित्य मे 'हिंदू' और 'मुसलमान' शब्दो का प्रयोग कही नही है। 'जमन' शब्द श्वपच आदि की भाँति उनके शूद्रत्व का द्योतक है।[3] तुलसी के मन्तव्यानुसार 'धर्म' स्मार्तधर्मपरक है जिसमे विश्वजनीन मानवधर्म की परमोदार भावनाएँ भी समाविष्ट है और जिसके उत्थान से ही समाज का सर्वतोमुख उन्नयन हो सकता है।

दार्शनिक परिस्थिति[4]

तुलसीदास दार्शनिक कवि थे। भारतवर्ष मे वही कवि महान् समझा जाता रहा है जिसकी सौंदर्यमयी रचना मे स्वस्थ जीवन-दर्शन का प्रतिपादन किया गया हो। अश्वघोष,

---

१ विनयपत्रिका, ८।३-४
२ डॉ० भगीरथ मिश्र, देखिए · तुलसी, पृ०११
३ स्वपच सबर खस जमन जड़ पावँर कोल किरात।—रामचरितमानस, २।१९४
४. देखिए—'उपक्रम', तुलसी-दर्शन-मीमासा, पृ० १७-४१

कालिदास, भवभूति आदि इसी प्रकार के कवि हैं। तुलसी के काव्य मे दार्शनिक सिद्धातो की सहज-सुदर अभिव्यक्ति हुई है। दर्शन ने सजीवता और सरसता प्राप्त कर ली है। वह ब्रह्मानदरूप रस और ब्रह्मानदसहोदर रस दोनो का ही व्यजक है।

तुलसी का आविर्भाव भारतीय दर्शन के टीका-युग मे हुआ था। उस युग के दार्शनिको मे मौलिक चिंतन नही पाया जाता। उन्होने पूर्ववर्ती तत्त्वचितको के मतो के सग्रह और व्याख्यान को अधिक उपयोगी समझा। शासन-शक्ति से रहित समाज को रूढि और परपरा के प्रति निष्ठा का कवच ही विधर्मियो के आक्रामक विचारो के विरुद्ध सुरक्षा का अमोघ उपाय प्रतीत हुआ। तर्क के स्थान पर विश्वास की प्रतिष्ठा हुई।

उस युग की विचार-धारा मुख्यतया वेदात से प्रभावित थी। देश-व्यापी भक्ति-आदोलन का प्रासाद उसी की आधार-शिला पर खडा हुआ था। वेदात ने साख्य-योग की अधिकाश मान्यताएँ आत्मसात् कर ली थी। वेदात के क्षेत्र मे सभी वैष्णव-वेदाती आचार्य शकर के मायावाद और केवलाद्वैतवाद के विरोधी थे। विशिष्टाद्वैतवाद, शुद्धाद्वैतवाद आदि में अद्वैतभावना किसी-न-किसी रूप मे मान्य थी। द्वैतवादी माध्वमत अद्वैतवाद का पूर्णत विरोधी था। अतएव इन दोनो विचार-धाराओ का सीधा सघर्ष अनिवार्य था। फलत एक-दूसरे पर आलोचना-प्रत्यालोचना के कटु प्रहार किये गये। तुलसी के युग की काशी इन दार्शनिक वाद-विवादो का भी केंद्र थी। अनेक दार्शनिको ने साख्य एव वेदात और ज्ञानमार्ग तथा भक्तिमार्ग के समन्वय का प्रशसनीय प्रयास किया। विज्ञानभिक्षु ने 'साख्य-प्रवचनभाष्य' आदि मे वेदात और पुराणो को गौरव दिया, 'विज्ञानामृतभाष्य' मे वेदात-सूत्रो की साख्य-समत व्याख्या प्रस्तुत की। साख्य नारायणतीर्थ ने शाडिल्य-भक्तिसूत्र पर 'भक्तिचद्रिका' लिखी। शकरमतानुयायी मधुसूदन सरस्वती ने 'भक्तिरसायन' लिखकर अद्वैतवेदात मे भक्तिदर्शन की विशेष प्रतिष्ठा की, 'महिम्नस्तोत्र' पर विशद व्याख्या लिखकर शैव-वैष्णव मतो का सुदर समन्वय किया।

तत्कालीन दार्शनिक विचार-धाराओ ने परमार्थवादी तुलसी को भरपूर प्रभावित किया। आध्यात्मिक अनुभूति से ओत-प्रोत उनके साहित्य मे तत्त्वचिंतन की तत्कालीन प्रवृत्तियाँ कवित्व के माध्यम से प्रतिफलित हुईं। उन्होने 'रामचरितमानस' मे इतिहास-पुराण की कथात्मक पद्धति से और 'विनयपत्रिका' आदि मे स्तोत्रो आदि की मुक्तक-शैली का अनुसरण करते हुए साख्य-योग एव वेदात की विभिन्न विचारधाराओ का समन्वय उपस्थित किया। उनके समन्वित सिद्धात की धारा धर्म और भक्ति के कूलो के बीच प्रवाहित हुई।

भक्ति-आदोलन का युग

तुलसी का युग भक्ति-आदोलनो का युग था। शताब्दियो पूर्व भक्ति का जो प्रवाह दक्षिण भारत से चला था वह धीरे-धीरे सपूर्ण उत्तर भारत मे फैल गया। उसके दो अन्यतम प्रचारक रामानद और वल्लभाचार्य हुए। तुलसी के समय मे सारा देश विभिन्न प्रकार की भक्तिधाराओ से परिप्लुत था। असख्य मदिर, मठ, अखाडे आदि उनके केंद्र थे। काशी से राम-भक्ति का, और वृदावन से कृष्ण-भक्ति का प्रसार हुआ जिससे सपूर्ण

उत्तर भारत आदोलित हो गया। इस आदोलन को लोकव्यापी बनाने मे भक्तकवियो ने विशेष महत्त्वपूर्ण योगदान किया।

भजनीय के स्वरूप, भक्ति-साधना आदि की दृष्टि से भक्तिधारा की दो उपधाराएँ थी—निर्गुण-भक्तिधारा और सगुण-भक्तिधारा। एक मे निर्गुण-निराकार ईश्वर की भक्ति पर बल दिया गया और दूसरी मे सगुण-साकार भगवान् की भक्ति पर। हिंदी-साहित्य मे निर्गुण-भक्तिधारा के दो रूप थे—निर्गुण-काव्यधारा और सूफी-काव्यधारा। प० रामचद्र शुक्ल ने इन्हे क्रमश ज्ञानाश्रयी और प्रेममार्गी शाखा कहा है। शुक्ल जी से असहमति प्रकट करते हुए एकाध आलोचको ने पहली शाखा को ज्ञानाभासाश्रयी माना है। शुक्ल जी ने स्वय कहा है "निर्गुण-पथ के सतो के सबध मे यह अच्छी तरह समझ रखना चाहिए कि उनमे कोई दार्शनिक व्यवस्था दिखाने का प्रयत्न व्यर्थ है। उन पर द्वैत-अद्वैत, विशिष्टाद्वैत आदि का आरोप करके वर्गीकरण करना दार्शनिक पद्धति की अनभिज्ञता ही प्रकट करेगा।"[1] निर्गुण-पथ ज्ञानवादी था। उसका स्रोत भारतीय था। उसमे अतस्साधना पर बल दिया जाता था। निर्गुण-सप्रदाय के भीतर बहुत-से पथ और सप्रदाय चल पडे थे कबीरपथ, सेनपथ, रैदासी-सप्रदाय, नानकपथ, साध-सप्रदाय आदि।[2] सबसे शक्तिशाली और प्रभावोत्पादक व्यक्तित्व कबीर का था। उन्होने निराकार ईश्वर की भक्ति पर जोर देते हुए अवतार-वाद का खडन किया, वेद-शास्त्र की निंदा की, मूर्तिपूजा और वर्णाश्रमधर्म पर प्रहार किया। यह सब तुलसी के लिए असह्य था। उन्होंने उत्तेजित होकर कबीर के मत का ओजस्वी शब्दो मे प्रतिवाद किया। कबीर ने कहा था[3]

(i) सर्गुण की सेवा करौ निर्गुण का करु ज्ञान।
निर्गुण सर्गुण के परे तहैं हमारा ध्यान।।
(ii) वह तो इन दोऊ ते न्यारा जानै जाननहारा।

तुलसी ने उसका प्रत्याख्यान करते हुए अपने सिद्धात का प्रतिपादन किया[4]

(i) अगुन सगुन दुइ ब्रह्म सरूपा। अकथ अगाध अनादि अनूपा।।
(ii) सगुनहिं अगुनहिं नहिं कछु भेदा। गावहिं मुनि पुरान बुध बेदा।।

कबीर का अवतार-विरोधी कथन था[5]

(i) दसरथ सुत तिहुँ लोक बखाना। राम नाम का मरम है आना।।
(ii) दसरथ कुल अवतरि नहिं आया। नहिं लका के राय सताया।।
(iii) वे रघुनाथ एक कै सुमिरै जो सुमिरै सो अंधा।

तुलसी ने 'आना' और 'अधा' शब्दो को लक्ष्य करके शिव से मुँहतोड उत्तर दिलाया[6]

(i) एक बात नहिं मोहिं सोहानी। जदपि मोहवस कहेहु भवानी।।

---

१. हिंदी-साहित्य का इतिहास, पृ० ११२
२ उत्तरी भारत की सत-परपरा, पृ० २२३, २४६, २६१, २८७, ३९१ आदि
३ कबीर-वचनावली, पृ० ९५, १६६
४. रामचरितमानस, १।२३।१, १।११६।१
५ कबीर-वचनावली, पृ० १६३, १६४
६. रामचरितमानस, १।११४, ३।११५।२-३, १।१०८

तुम्ह जो कहा राम कोउ आना। जेहि श्रुति गाव धरहिं मुनि ध्याना॥
कहहिं सुनहिं अस अधम नर ग्रसे जे मोह पिसाच।
(ii) मुकुर मलिन अरु नयन बिहीना। राम रूप देखहिं किमि दीना॥
जिन्हकें अगुन न सगुन बिबेका। जल्पहिं कल्पित बचन अनेका॥
(iii) जेहि इमि गावहिं बेद बुध जाहि धरहिं मुनि ध्यान।
सोइ दसरथ सुत भगत हित कोसलपति भगवान॥

कबीर आदि निर्गुणिया-सतो के अवतार-विरोधी वचनो से उद्दीप्त 'तुलसीदास प्रचार कर यह कह देना चाहते हैं कि परब्रह्म निर्गुण-निराकार राम और दाशरथ सगुण-साकार राम मे कोई तात्त्विक भेद नही है। अपने को सत कहने वाले कबीर आदि ने वस्तुत सत समाज का दर्शन नही किया। उन मोहपिशाच-ग्रस्त पाखडियो को सत्यासत्य का कोई ज्ञान नही है। वे निर्गुण और सगुण के स्वरूप-ज्ञान से सर्वथा अनभिज्ञ हैं। इसी कारण वे वेद-असमत बानी की रचना करके मनमानी बकवास करते हैं।'[1] कबीर वेद-शास्त्र, मूर्तिपूजा, वर्णाश्रम व्यवस्था आदि प्रतिष्ठित मान्यताओ की छीछालेदर करके[2] समाज-सुधार करना चाहते थे। इसके विरुद्ध तुलसी ने मानव धर्म और वर्णाश्रम-धर्म के आधार पर सनातनधर्म के माध्यम से समाज के नवनिर्माण का प्रयास किया। अतएव अपनी रचनाओ मे उन्होने वेद-पुराण आदि की आप्तता तथा सनातनधर्म की विविध मान्यताओ की प्रतिष्ठा, एव इनके विरोधी विचारो की विगर्हणा की।

निर्गुण-सप्रदाय के बहुत-से सत अशिक्षित निम्न जातियो के थे, और द्विज-वर्णों द्वारा उपेक्षित शूद्र-समाज मे वे स्वभावत आदर के पात्र समझे जाते थे। सभवत उन्ही शूद्रवर्गीय निर्गुण-सतो की ज्ञान-कथनी से उत्तेजित होकर तुलसी ने कहा था

बादहिं सूद्र द्विजन्ह सन हम तुम्ह तें कछु घाटि।
जानइ ब्रह्म सो बिप्रबर आँखि देखावहिं डाँटि॥[3]

तुलसीदास के समय मे वज्रयानी सिद्धो और नाथपथी योगियो का समाज पर जो प्रभाव था उसे वे अवाछनीय समझते थे। यह बात लक्ष्य करने योग्य है कि निर्गुणपथ की विचारधारा का तीव्र खडन करते हुए भी उन्होने कबीर आदि का नामोल्लेख नही किया, परतु गोरख का उल्लेख किये बिना नही रह सके। इससे सूचित होता है कि वे गोरखनाथ को सामाजिक रोग का प्रधान कारण समझते थे। उन्होने अनुभव किया कि गोरखपथियो का प्रभाव समाज-घातक है, ये पाखडी योगी अपने वाचनिक ज्ञान और वैरागी-वेष से लोगो को भरमा रहे हैं, इनके त्रास से वर्णाश्रमधर्म का लोप हो गया है, इनकी कुवासना ने कर्म और उपासना का सत्यानाश कर दिया है, गोरख द्वारा उपदिष्ट हठयोग-साधना[4] के कारण लोग भक्ति के वास्तविक स्वरूप को भूल गये हैं, ऐसा प्रतीत होता है कि गोरख के व्याज से कलियुग ने ही निगम-समत योग का ढोग रचकर जगत् को ठग लिया है

१ तुलसी-दर्शन मीमांसा, पृ० ३५
२ कबीर-वचनावली, पृ० १००, २५२, २४२, २४३, ३६, ३६, २०८
३ दोहावली, ५५३, रामचरितमानस, ७।९९
४ देखिए—नाथ-सप्रदाय, पृ० १२३-३१

बरनधरम गयो आश्रमनिबास तज्यो त्रासन चकित सो परावनो परो सो है।
करम उपासना कुबासना विनास्यो ज्ञान बचन विराग वेष जगत हरो सो है।
गोरख जगायो जोग भगति भगायो लोग निगम नियोग ते सो कलि[1] ही छरो सो है।
काय मन वचन सुभाय तुलसी है जाहि रामनाम को भरोसो ताहि को भरोसो है।।[2]

निम्नांकित दोहे मे उन्होने किसी अलख-निरजन-वादी अलखिया-साधु को फटकारते हुए उसे राम-भक्ति का उपदेश दिया है

हम लखि लखहि हमार लखि हम हमार के बीच।
तुलसी अलखहि का लखहि रामनाम जपु नीच।।[3]

निर्गुण-भक्तिधारा का दूसरा रूप सूफी कवियों ने प्रस्तुत किया था। सूफियो के भी अनेक सप्रदाय-उपसप्रदाय थे चिश्तिया, सुहर्वदिया, कादिरिया, नक्शबदिया आदि।[4] सूफीभक्ति-काव्यधारा के प्रतिनिधि कवि मलिक मुहम्मद जायसी हुए। जायसी आदि पर भारतीय लोक-कथाओ, वेदात दर्शन, सहजयानी सिद्धो, नाथपथी योगियो, निर्गुण-सतो आदि का बहुत-कुछ प्रभाव पड़ा था, किंतु उनकी भक्ति-भावना का मूल स्रोत इस्लाम था। वे 'कुरान' आदि को प्रमाण मानकर चले थे।[5] उनके अनुसार परमात्मा से सर्वप्रथम नरुल-मुहम्मदिया (मुहम्मदीय आलोक) की उत्पत्ति और उसी मुहम्मद के लिए जगत् की रचना हुई।[6] उन्होने लौकिक प्रेम को आध्यात्मिक प्रेम का सोपान माना। भक्ति के क्षेत्र मे परमात्मा को प्रेमी आत्मा की कामरति का आलबन बनाकर नारी-रूप मे चित्रित किया[7], कही-कही पर प्रेमिका को आत्मा का प्रेमपात्र बनाकर उसे नर-रूप मे अकित किया।[8] प्रेम-मार्ग मे भी हठयोग की साधना को आवश्यक बतलाया।[9] ये सब मान्यताएँ तुलसी के सस्कारो के प्रतिकूल थी।

निर्गुणभक्तिधारा का जो प्रभाव तुलसी पर पड़ा था वह उत्तेजनात्मक था। उन्होने वेद-पुराण-प्रतिकूल मार्ग पर चलने वाले तत्कालीन सिद्धो, गोरखपथियो, निर्गुण-सतो, कहानी-लेखक सूफियो और उपाख्यान-लेखक मार्गोपदेशको को लक्ष्य करके उनके मोह-कल्पित पथों की व्यर्थता बतलाते हुए अनुसरणीय भक्ति-पथ का निर्देश किया

साखी सबदी दोहरा कहि किहनी उपखान।
भगति निरूपहिं भगत कलि निंदहि वेद पुरान।।[10]

---

१. पाठातर—'केलि'
२. कवितावली, ७।८४
३ दोहावली, १९
४ देखिए—जायसी के परवर्ती हिंदी-सूफी कवि और काव्य, पृ० २१-२८
५. पदमावत, १।११-१२, आखिरी कलाम
६. पदमावत, १।११, आखिरी कलाम, ७
७ देखिए—हिंदी-साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृ० १९९-२००
८ पदमावत, ८।६, २४।१७
९ पदमावत, १६।३
१०. दोहावली, ५५४

श्रुति समत हरि भगति पथ सजुत विरति विवेक।
तेहि न चलहि नर मोहवस कल्पहि पथ अनेक ॥[1]

सगुणभक्तिधारा का मूल स्वर अवतारवाद था। हिंदी-साहित्य के मध्यकाल मे अवतार-भावना का जो वेगवान् प्रवाह चला उसने अक्खड निर्गुणसतो को भी अभिभूत कर दिया। अवतार-सिद्धात का घोर खडन करने वालो ने भी उसका मडन किया।[2] यही नही, आगे चल कर उन सतो के अधविश्वासी अनुयायियो ने उन्हे ही अवतार बनाकर उनकी पूजा आरभ कर दी। सगुणकाव्यधारा मे विष्णु के दो प्रमुख अवतारो राम और कृष्ण का, उनके नाम-रूप-गुण-लीला-धाम का, और उनकी भक्ति तथा भक्तो का मुक्तकठ से गौरवगान किया गया। आराध्य अवतार के अनुसार उसकी दो शाखाएं हुई कृष्णभक्ति-शाखा और रामभक्तिशाखा।

मध्व, निंबार्क, वल्लभ और चैतन्य के दार्शनिक सिद्धातो के अनुसार कृष्णभक्तो के अनेक सप्रदाय हुए। उनके अतिरिक्त राधावल्लभ-सप्रदाय, सखी-सप्रदाय आदि भक्ति-सप्रदायो की स्थापना हुई। कृष्णभक्ति का केंद्र वृदावन था। उन भक्तो की दृष्टि भगवान् की सौदर्य-विभूति और लोकरजन पर केंद्रित रही। उनके लोकमगलकारी रूप पर कम ध्यान दिया गया। राधा-कृष्ण की युगल-उपासना, रासलीला, नित्यविहार आदि पर बल दिया गया। भगवान् के नित्यविहार की भावना तुलसी को अमान्य थी। वे कृष्णभक्त दार्शनिको के भक्तिदर्शन से अवश्य प्रभावित हुए, किंतु उनके मधुररस-सिद्धात की उन्होने उपेक्षा की, भगवान् के सौंदर्य के साथ ही उनके शील और शक्ति को विशेष महत्त्व दिया। उन्होने युग और समाज की आवश्यकता को पहचाना। तत्कालीन समाज को नीवी-बंधन-मोचक[3] कृष्ण की नही अपितु 'दीनबधु प्रनतारति मोचन'[4] राम की आवश्यकता थी।

कबीर आदि का मार्गोपदेश निवृत्तिमूलक था। उनकी 'टेढ़ी-सीधी निर्गुण-वाणी' मे खिन्नता और शुष्कता थी। उनकी डाँट-फटकार से भावात्मक एकता की पुष्ट भूमि तैयार नही हो सकी। प्रेममार्गी सूफियो ने विश्व के कण-कण मे परमसत्ता के आभास का दर्शन किया, प्रवृत्तिमूलक प्रेम के द्वारा भक्ति की सरस व्यजना की, परतु अदृश्य ईश्वर से व्याप्त कण-कण को वे वस्तुत आकर्षक नही बना सके, लोक का मन साप्रदायिकता और अहता से मुक्त होकर उनकी भक्ति-भावना मे पूर्णत रम नही सका। यह कार्य कृष्णभक्तो ने सपन्न किया। उन्होने व्रज के कण कण को मनोमोहक बना दिया, कृष्ण की रूप-माधुरी के प्रत्यक्षीकरण द्वारा लोक-मानस की रागात्मिका वृत्ति को जागृत किया। जातिगत भेद-भाव को सहज स्वाभाविक रूप से भूलकर भक्तिरस मे लीन हो जाने वाले मुसलमान कवि कृष्णभक्तिशाखा मे ही हुए। 'साँवरे ग्वार' पर मुग्ध रसखानि ने करील की कुजो पर कलधौत के कोटियो धाम निछावर कर दिये[5], और आगे चल कर, नदकुमार

१. रामचरितमानस, ७।१००, दोहावली, ५५५
२. देखिए—कबीर-ग्रथावली, पृ० २१४, ३१६, हिंदी-काव्य में निर्गुण-सप्रदाय, पृ० २२०, २२३
३ हितचौरासी, ७, राधावल्लभ सप्रदाय सिद्धांत और साहित्य, पृ० २४३
४. रामचरितमानस, ६।११५।४
५. सुजान रसखानि, ३, ६

की सूरत पर कुर्बान ताज वदनामी सह कर भी 'हिंदुआनी' होने के लिए तैयार हो गयी।[1]

कृष्ण-कवियो ने मधुर लीलाओ का निरूपण करके लोक-जीवन मे उल्लास और सरसता का वातावरण तो निर्मित किया, किंतु उनकी लोकदृष्टि समाज-कल्याण और धर्म-सौदर्य के प्रात तक नही पहुँच सकी। वे भगवान् के लोकसग्रहकारी रूप का प्रकाश करके ज्ञान वैराग्य-समन्वित भक्ति का साक्षात्कार नही करा सके। लोकप्रिय शृगारिक वर्णनो और रासलीलाओ के प्रभाव से समाज मे भी 'कन्हैया' उत्पन्न होने लगे। "असस्कृत हृदयो मे जाकर कृष्ण की शृ गारिक भावना ने विलास-प्रियता का रूप धारण किया और समाज केवल नाच कूद कर जी वहलाने के योग्य हुआ।"[2] तुलसी ने मर्यादापुरुषोत्तम और लोकधर्म-सस्थापक राम का रजनकारी चित्र अकित करके सामाजिक उत्कर्ष का मार्ग प्रशस्त किया।

रामानद द्वारा प्रवर्तित रामभक्तिधारा के दो रूप थे : निर्गुणरामभक्ति और सगुणरामभक्ति। रामानद के शिष्य कवीर आदि ने निर्गुणभक्ति का प्रचार किया। कहा जा चुका है कि उन निर्गुणसतो ने वर्णधर्म, वेदशास्त्र, अवतारवाद आदि का खडन किया। "लोक-मर्यादा का उल्लघन, समाज की व्यवस्था का तिरस्कार, अनधिकार चर्चा, भक्ति और साधुता का मिथ्या दभ, मूर्खता छिपाने के लिए वेद शास्त्र की निंदा, ये सव वातें ऐसी थी जिनसे गोस्वामी जी की अतरात्मा वहुत व्यथित हुई।"[3] निर्गुण-निराकार राम से जनता का कल्याण नही हो सकता था। अतएव तुलसी ने भक्तो की पुकार पर अवतीर्ण होकर अधम असुरो का सहार करने वाले लोकरक्षक राम की भक्ति का उपस्थापन किया। सगुणरामभक्ति की भी दो विधाएँ थी माधुर्य-विशिष्ट और मर्यादा विशिष्ट। कात-कात-भाव की माधुर्य-विशिष्ट रसिकभक्ति शृ गारिकता से ओतप्रोत थी। वह तुलसी की मनोवृत्ति के प्रतिकूल थी। वह समाज का उन्नयन नही कर सकती थी। इसलिए उन्होंने सेव्य-सेवक-भाव की मर्यादावादी भक्ति का प्रतिपादन किया।

साहित्यिक परिस्थिति

तुलसी के सामने सस्कृत, प्राकृत और हिंदी का विपुल साहित्य विद्यमान था। उनकी रचनाओ से प्रमाणित है कि उन्होंने प्रतिष्टित साहित्य का व्यापक अध्ययन किया था। उस समय तक हिंदी-क्षेत्र की दो वोलियाँ अवधी और व्रजी साहित्यिक भाषा के रूप मे समादृत हो चुकी थी। प्रवध कवियो ने अवधी को अपनाया था। उसमे 'पदमावत'-जैसा गौरवग्रथ लिखा जा चुका था। गीति काव्यो और मुक्तक-रचनाओ मे प्राय व्रजभाषा

१. सुनो दिलजानी मेरे दिल की कहानी
तुम दस्त ही विकानी वदनामी भी सहूँगी मैं।
नद के कुमार कुरवान त्वाडी सूरत पै
त्वाड नाल प्यारे हिंदुआनी ह्वै रहूँगी मैं।।

२. गोस्वामी तुलसीदास (प० रामचद्र शुक्ल), पृ० ३३

३. रामचंद्र शुक्ल, गोस्वामी तुलसीदास, पृ० २५

का व्यवहार होता था। कृष्ण-कविता ने माँज-सँवार कर उसके रूप को निखार दिया था। तुलसी ने अपने पूर्ववर्ती कवियो का अनुसरण किया। उन्होंने अपने प्रबंध-निबंध-काव्य अवधी मे लिखे, गीतो तथा अधिकांश मुक्तकों की रचना ब्रजभाषा मे की। यह स्वाभाविक था कि अवधविहारी रघुनाथ की गाथा (रामचरितमानस) लिखने के लिए उन्होने अवधी को चुना, और ब्रजवल्लभकृष्ण-विषयक कवित्तो एव गीतो का माध्यम ब्रजभाषा को बनाया।

भाषा की दृष्टि से काशी का वातावरण तुलसी के विरुद्ध था। परिस्थिति की विषमता मे वे खूब परिचित थे। उन्होने 'रामचरितमानस' के विभिन्न सोपानो के मगलश्लोक सस्कृत मे लिखे, स्तुतियो और गीताओ मे सस्कृत-पदावली का व्यवहार किया, और सपूर्ण काव्य मे ठेठ अवधी के स्थान पर सस्कृतगर्भित साहित्यिक अवधी का प्रयोग किया। परतु, काशी के सस्कृताभिमानी पडितो को इससे सतोष नही हुआ। 'रामचरितमानस'-जैसा ग्रथ जनभाषा मे लिखा जाए, यह बात उन्हें असह्य थी। इस सबध मे प्रचलित किवदतियो और स्वय तुलसीदास द्वारा बारबार पेश की गयी 'भाषा'-विषयक सफाई'[1] से पता चलता है कि उनका विरोध बड़ा कड़ा था। प्रगतिशील समाज-हितैषी तुलसी ने उन आधिभौतिक बाधाओं की परवाह नही की और लोक-भाषा मे ही अपने महाकाव्य का प्रणयन किया।

रूप-विधान की दृष्टि मे, परपरागत तीन काव्य-रूप तुलसी के युग मे प्रचलित थे प्रबध, निबध और मुक्तक। अवधी के प्रेमाख्यानक-प्रबध दोहा-चौपाई-शैली मे रचे गये थे। 'रामचरितमानस' के निर्माण मे तुलसी ने उसी शैली को अपनाया, किंतु बीच-बीच मे सोरठो और छदो का भी विनिवेश किया। 'पदमावत' आदि की अभारतीय मसनवी शैली का तिरस्कार करके सस्कृत-प्राकृत के महाकाव्यो और अपभ्रंश के चरित-काव्यो की रचना-शैली को गौरव दिया। उन्होंने तीन निबधकाव्य लिखे रामललानहछू, जानकीमगल और पार्वतीमगल। प्रयोजन के अनुरूप उनमे लोकगीतो की सोहर-शैली का प्रयोग किया गया। मुक्तक रचनाएँ प्राय दोहा, कवित्त, सवैया और बरवै छदो तथा गीतो के रूप मे की गयी थी। तुलसी ने उन सभी शैलियो का उपयोग किया। दोहा-चौपाई-शैली मे 'वैराग्यसदीपनी' की, दोहा-शैली मे 'दोहावली' की, कवित्त-शैली मे 'कवितावली-हनुमान-बाहुक' की, बरवै-शैली मे 'बरवैरामायण' की, और गीत-शैली मे 'गीतावली' आदि की रचना की।

जब तुलसीदास ने साहित्यिक क्षेत्र मे पदार्पण किया तब हिंदी का भक्ति-काल उत्कर्ष के सोपान पर पहुँच चुका था। उस युग का श्रेष्ठ साहित्य भक्तिनिष्ठ है। लोकदर्शी कवि का युगीन प्रवृत्तियो से प्रभावित होना अनिवार्य था। पूर्वजन्म और व्यक्तिगत अनुभव के सस्कार तो पहले से थे ही, तत्कालीन भक्तिधाराओ ने भी उन्हे विध्यात्मक अथवा निषेधात्मक रूप से प्रभावित किया। वे भक्तिकाव्य रचना की ओर प्रेरित हुए। विभिन्न धाराओ के भक्तकवियो की कुछ सामान्य विशेषताएँ थी। सभी पर वेदात का प्रभाव था।

---

१. रामचरितमानस, १।१ श्लोक ७, १।९।२, १।१५, दोहावली, ५७२

सभी ने सच्चिदानदस्वरूप एक-अद्वितीय ईश्वर का निरूपण किया, उस ईश्वर और उसके प्रेम की प्राप्ति को भक्त का साध्य माना, ईश्वर के सयोग की कामना की, उस लक्ष्य-सिद्धि के लिए आत्मनिवेदन की आवश्यकता बतलायी, भक्त और भगवान् के व्यक्तिगत सबध पर बल दिया, भक्त-भक्ति भगवत-गुरु की महिमा का बहुधा गान किया, नीति, चेतावनी और उपदेश को महत्त्व दिया, जगत् की निस्सारता प्रतिपादित करके भोग-विषयो के प्रति वैराग्य जगाने का प्रयत्न किया, चित्तशुद्धि के लिए सत्य, अहिंसा, परोपकार आदि मानव-धर्मों को श्रेयस्कर और कर्मकाड के वाह्याडवर, पाखड, परपीडन आदि को हेय बतलाया। तुलसी-साहित्य मे ये समस्त विशेषताएँ सुनियोजित विस्तार के साथ लोक-धर्म की मगलमय भूमि पर मनोहारिणी कविता के माध्यम से प्रतिफलित हुईं।

६. काव्य-सिद्धांत

तुलसीदास काव्यशास्त्री नही थे, कवि थे। वे काव्यकवि होने के साथ ही शास्त्र-कवि भी थे। उनमे प्रतिभा और व्युत्पत्ति (बहुज्ञता) का सयोग था। राजशेखर ने प्रतिभा-व्युत्पत्तिमान् कवि के तीन प्रकार बतलाये हैं काव्यकवि, शास्त्रकवि और उभयकवि।[1] काव्यकवि कवित्व को विशेष महत्त्व देता है। वह अपने प्रतिपाद्य विषय के उपस्थापन मे उक्ति-वैचित्र्य का सहारा लेता है, और इस प्रकार तर्ककर्कश विषय को भी रमणीयता के साथ प्रस्तुत करता है। शास्त्रकवि की दृष्टि सैद्धातिक निरूपण पर केंद्रित रहती है। वह काव्य मे भी शास्त्रार्थ का निरूपण करता है। जिसमे दोनो विशेषताएँ हो वह उभयकवि है। समन्वय के कारण वह सर्वश्रेष्ठ है। तुलसीदास की रचनाओ मे कविकल्पना और शास्त्रीय चिंतन, उक्ति-वैचित्र्य और सिद्धात-प्रतिपादन, दोनो का सुदर समन्वय पाया जाता है। अतएव वे उभयकवि थे।

रीति की दृष्टि से हिंदी मे तीन प्रकार के कवि पाये जाते हैं रीतिग्रथकार, रीतिबद्ध, और रीतिमुक्त। रीतिग्रथकार वे हैं जो अपनी कृति मे काव्यागो के लक्षणो का निरूपण करके उदाहरण-रूप मे कविताएँ प्रस्तुत करते हैं। रीतिबद्ध वे हैं जो स्वय तो लक्षणो का निरूपण नही करते, किंतु पूर्ववर्ती आचार्यो द्वारा निरूपित लक्षणो के नियमानुसार काव्य-रचना करते हैं। रीतिमुक्त कवि न तो लक्षण-निरूपण करते है और न रूढ लक्षणो का अनुसरण करते हैं, वे स्वच्छद माग पर लीक छोडकर चलते हैं। तुलसीदास कुछ विलक्षण प्रकार के रीतिबद्ध कवि हैं। उन्होने परपरागत मार्ग[2] का प्रगतिशील-भाव[3] से अनुधावन किया है। सैद्धातिक लक्षणो के उदाहरण-रूप मे रचना न करके 'रामचरितमानस' की प्रस्तावना एव अन्य स्थलो पर काव्य-सिद्धातो का प्रासगिक रूप से प्रतिपादन किया है।

वे दार्शनिक-भक्त कवि हैं। अत शास्त्रीय दृष्टि से उन्होने मुख्यतया धर्म, दर्शन और भक्ति के सिद्धातो का उपस्थापन किया है। काव्यशास्त्रीय मान्यताओ का निदर्शन उन्होने यत्र-तत्र साररूप मे ही किया है। 'रामचरितमानस' के रूपक-निरूपण मे समन्वय-

---

१. काव्यमीमासा, पृ० १७

२. मुनिन्ह प्रथम हरि कीरति गाई। तेहि मग चलत सुगम मोहि भाई ॥
अति अपार जे सरित वर जौं नृप सेतु कराहि।
चढ़ि पिपीलिकौ परम लघु बिनु श्रम पारहि जाहि ॥—रामचरितमानस, १।१३

३. कीन्हि प्रस्न जेहि भाँति भवानी। जेहि बिधि सकर कहा बखानी ॥
सो सब हेतु कहब मैं गाई। कथा प्रबध बिचित्र बनाई ॥—रामचरितमानस, १।३३।१

वादी दृष्टि से काव्य के प्रतिपाद्य विषय और प्रतिपादन-शैली की परपरा-प्रथित विशेषताओ का साकेतिक उल्लेख किया गया है

गप्त प्रबध सुभग सोपाना। ज्ञान नयन निरखत मन माना ।।
रघुपति महिमा अगुन अबाधा। बरनब सोइ बर बारि अगाधा ।।
राम सीअ जस सलिल सुधा सम। उपमा बीचि बिलास मनोरम ।।
पुरइनि सघन चारु चौपाईं। जुगुति मजु मनि सीप सुहाईं ।।
छंद सोरठा सुदर दोहा। सोइ बहु रंग कमल कुल सोहा ।।
अरथ अनूप सुभाव सुभाषा। सोइ पराग मकरद सुबासा ।।
सुकृत पुज मंजुल अलि माला। ज्ञान बिराग बिचार मराला ।।
धुनि अवरेब कबित गुन जाती। मीन मनोहर ते बहु भाँती ।।
अरथ धरम कामादिक चारी। कहब ज्ञान बिज्ञान बिचारी ।।
नव रस जप तप जोग बिरागा। ते सब जलचर चारु तड़ागा ।।
सुकृती साधु नाम गुन गाना। ते बिचित्र जल बिहग समाना ।।
सत सभा चहुँ दिसि अँवराई। श्रद्धा रितु बसत सम गाई ।।
भगति निरूपन बिबिध बिधाना। छमा दया दम लता बिताना ।।
सम जम नियम फूल फल ज्ञाना। हरिपदरति रस बेद बखाना ।।[1]

इस रूपक मे भक्तिरसात्मक काव्य के केंद्र-बिंदु से काव्य के प्रसिद्ध अगो वस्तु, नेता, रस, अलकार, ध्वनि, वक्रता, गुण, जाति, भाषा, भाव, अर्थ, और भक्तिरस के पोषक वैराग्य, ज्ञान आदि का निर्देश किया गया है। तुलसी की बिखरी हुई उक्तियो को समन्वित करके उनके काव्यमत का समजस विवेचन किया जा सकता है।

काव्य-लक्षण

'रामचरितमानस' के प्रथम मगल-श्लोक मे तुलसी ने काव्य की पचसूत्री योजना प्रस्तुत करते हुए अप्रत्यक्ष रूप से काव्य-लक्षण का निरूपण किया है

वर्णानामर्थसघाना रसाना छदसामपि।
मगलाना च कर्त्तारौ वदे वाणीविनायकौ ।।

इस श्लोक के आधार पर उनके अनुसार काव्य की शास्त्रीय परिभाषा हुई

काव्य वह शब्दार्थमयी रचना है जो रसात्मक, छदोबद्ध और मगलकारिणी हो।

अभिप्राय यह है कि काव्य मे पाँच तत्त्वो की योजना अभीष्ट है वर्ण, अर्थ, रस, छद और मगल। इन पर सक्षेप मे विचार कर लेना अपेक्षित है।

१ **वर्ण** : प्रस्तुत सदर्भ मे 'वर्ण' शब्द भाग-त्याग-लक्षणा से वर्ण, अक्षर, शब्द, वाक्य और भाषा सभी का द्योतक है। 'कवि' का एक अर्थ है वर्णन करने वाला।[2] 'अर्थ'

---

१ रामचरितमानस, १।३७।१-७, तुलना करके देखिए—
साधुशब्दार्थसन्दर्भं गुणालकारभूषितम्।
स्फुटरीतिरसोपेत काव्य कुर्वीत कीर्तये ।।—वाग्भटालकार, १।२

२ कविशब्दश्च कवृ वर्णे इत्यस्य धातो काव्यकर्मणो रूपम्।—काव्यमीमासा, पृ० १०

आदि शब्दो के सानिध्य मे प्रयुक्त 'वर्ण' के द्वारा यहाँ पर वर्णन या अर्थ-व्यजना के माध्यम का निर्देश किया गया है। 'आखर', 'गिरा' आदि शब्दो द्वारा कवि ने इसी तात्पर्य का प्रकाशन किया है।[1] 'विविक्तवर्णाभरणा सुखश्रुति', 'विशिष्टा पदरचना रीति', 'वाक्य रसात्मक काव्यम्' आदि मे व्यवहृत 'वर्ण', 'पद' और 'वाक्य' इसी प्रकार के प्रयोग हैं। अत 'वर्ण' का अभिप्राय है कवि के अभीष्ट अर्थ का भावक तथा सप्रेषण करने वाली भाषा।

जिस प्रकार सगीतज्ञ स्वरो के माध्यम से, चित्रकार रगो के माध्यम से, अथवा मूर्तिकार पत्थर आदि के माध्यम से अपने अभिप्रेत अर्थ की अभिव्यक्ति करता है उसी प्रकार कवि शब्दो या भाषा के माध्यम से। काव्य की भाषा में वाक्य और शब्द का ही नही, प्रत्येक वर्ण का महत्त्व होता है। इसीलिए गुणो और वृत्तियो के विवेचन मे वर्ण-विन्यास के औचित्य पर इतना बल दिया गया है।

२ अर्थ : जिस वस्तु की प्रतीति कराने के लिए शब्द का व्यवहार किया जाता है उसको 'अर्थ' कहते है। कवि जो कुछ भी अपनी शब्द-रचना के द्वारा पाठक या श्रोता तक पहुँचाना चाहता है वह सब अर्थ के अतर्गत है। इसलिए कुशल कवि शब्द और अर्थ को तुला पर तोल कर काव्य की रचना करता है। इन दोनो का सतुलित नियोजन आवश्यक है। तुलसी इस मर्म को जानते हैं

कविहि अरथ आखर बलु साँचा। अनुहरि ताल गतिहि नटु नाचा ॥[2]

शब्द और अर्थ के सबध मे एक महत्त्वयुक्त प्रश्न विचारणीय है। काव्य का काव्यत्व कहाँ होता है शब्द मे या अर्थ मे ? दूसरे शब्दो मे, शब्द को काव्य कहते हैं या अर्थ को ? तुलसीदास के अनुसार, तात्त्विक दृष्टि से यह प्रश्न उठना ही नहीं चाहिए क्योंकि दोनो परमार्थत अभिन्न हैं

गिरा अरथ जल बीचि सम कहिअत भिन्न न भिन्न।
बदौं सीताराम पद जिन्हहिं परम प्रिय खिन्न ॥[3]

पतजलि आदि ने शब्द और अर्थ मे नित्यसबध माना है।[4] अद्वैतवादी व्याकरणदर्शन मे अर्थभाव को शब्द का विवर्त माना गया है।[5] कालिदास ने वाणी और अर्थ मे सपृक्तता स्वीकार की है।[6] तुलसी ने भेदाभेद माना है। सत्य यह है कि राम ही वाच्य-

---

१. आखर अरथ अलकृति नाना।—रामचरितमानस, १।९ ८
गिरा अरथ जल बीचि सम कहिअत भिन्न न भिन्न।—रामचरितमानस, १।१८
२ रामचरितमानस, २।२४१।२
३ रामचरितमानस, १।१८
४. सिद्धे शब्दार्थसम्बन्धे। (नित्यपर्यायवाची सिद्धशब्द)—व्याकरणमहाभाष्य, १।१।१
५. अनादिनिधन ब्रह्म शब्दतत्त्व यदक्षरम्।
विवर्ततेऽर्थभावेन प्रक्रिया जगतो यत ॥
अविभक्तो विभक्तेभ्यो जायतेऽर्थस्य वाचक।
शब्दस्तत्रार्थरूपात्मा सम्भेदमुपगच्छति ॥—वाक्यपदीय, १।१, ४४
६. वागर्थाविव सपृक्तौ वागर्थप्रतिपत्तये।
जगत पितरौ वन्दे पार्वतीपरमेश्वरौ ॥—रघुवश, १।१

वाचक-रूप हैं।[1] उनकी दृष्टि में जिस प्रकार 'रवि आतप भिन्न न भिन्न' हैं[2], जिस प्रकार जल-वीचि 'भिन्न न भिन्न' हैं, उसी प्रकार राम और सीता तथा वाणी और अर्थ भी पारमार्थिक दृष्टि से एक हैं, केवल व्यावहारिक दृष्टि से भिन्न प्रतीत होते हैं।

व्यावहारिक दृष्टि से भी उक्त प्रश्न अनावश्यक है। भामह[3], मम्मट[4] आदि ने काव्य को शब्दार्थमय माना है। अग्निपुराणकार[5], विश्वनाथ[6] आदि ने उसे शब्दमय माना है। इन दोनो मतो मे वास्तविक भेद नही है। दोनो मे काव्य की शब्दमयता स्वीकार की गयी है। पहले मत मे 'अर्थ' शब्द का अधिक प्रयोग किया गया है। अग्निपुराण वाले लक्षण मे प्रकारातर से 'अर्थ' का समावेश किया गया है। वस्तुत 'अर्थ' का प्रयोग आवश्यक नही है, क्योकि निरर्थक अथवा अनिष्ट अर्थ का व्यजक वाक्य रसात्मक हो ही नहीं सकता। तुलसीदास तर्क के झमेले मे नही पडना चाहते थे। प्राय भारतीय आचार्यों की यह विशेषता रही है कि लक्षण-निरूपण करते समय उन्होने सैद्धातिक तर्क की अपेक्षा व्यावहारिक उपयोगिता का अधिक ध्यान रखा है। उनका लक्ष्य रहा है प्रतिपाद्य वस्तु से पाठक को अवगत कराना। इसलिए उन्होने काव्य की महत्त्वपूर्ण विशेषताओ का उल्लेख करके जिज्ञासुओ को उसका मर्म समझाने की चेष्टा की है। तुलसी ने इस परपरागत सरणि का अनुसरण करके काव्य-रचना के महत्त्वपूर्ण तत्त्वो शब्द और अर्थ दोनो का निवेश किया है।

३. रस · सस्कृत के बहुत-से आचार्यों ने काव्य का लक्षण लिखते समय रस का उल्लेख नही किया है।[7] वे रस को काव्य का अनिवार्य तत्त्व नही मानते। दूसरी ओर, अनेक काव्यशास्त्रियो ने काव्य की अन्य विशेषताओ के साथ ही रस का भी उल्लेख किया है।[8] विश्वनाथ ने तो 'वाक्य रसात्मक काव्यम्' कहकर काव्य-स्वरूप-निरूपण के प्रकरण मे एकमात्र रस को ही काव्य का व्यावर्तक धर्म माना है। समन्वयवादी तुलसी ने अपने विशिष्ट दृष्टिकोण से काव्य-तत्त्व के रूप मे रस का उल्लेख किया है। इसकी विवेचना आगे की जाएगी।

४ छंद : सस्कृत-आचार्यों ने काव्य-लक्षण के अतर्गत छद की चर्चा नही की है। उन्होने काव्य के तीन प्रकार (गद्य, पद्य और चपू) बतला कर गद्य को भी पद्य के समकक्ष स्थान दिया है।[9] गद्य की महिमा यहाँ तक बढी कि लोग उसे कवियो की कसौटी मानने

---

१ सिद्धसाधकसाध्य वाच्यवाचकरूप मन्त्रजापकजाप्य सृष्टिस्रष्टा ।—विनयपत्रिका, ५३।७

२. रवि आतप भिन्न न भिन्न यथा ।—रामचरितमानस, ६।१११।८

३ शब्दार्थौ सहितौ काव्यम् ।—काव्यालकार, १।१६

४ तददोषौ शब्दार्थौ सगुणावनलकृती पुन क्वापि—काव्यप्रकाश, १।४

५. सक्षेपाद्वाक्यमिष्टार्थव्यवच्छिन्ना पदावली ।
काव्य स्फुरदलकार गुणवद्दोषवर्जितम् ॥—अग्निपुराण, ३३७।६-७

६ वाक्य रसात्मक काव्यम् ।—साहित्यदर्पण, १।३

७ काव्यालकार, १।१६, काव्यालकारसूत्र, १।१।१-३, वक्रोक्तिजीवित, १।७ काव्यप्रकाश, १।४, रसगगाधर, पृ० ४

८. सरस्वतीकठाभरण, १।२, वाग्भटालकार, १।२, चद्रालोक, १।७

९. काव्यालकार, १।१०-११, साहित्यदर्पण, ६।३१२, ३३६

लगे और 'गद्य कवाना निकष वदन्ति' की लोकोक्ति चल पड़ी। हिंदी की स्थिति इससे भिन्न थी। उसमे गद्यमय काव्य लिखा ही नही गया था। तुलसी के युग मे पद्यबद्ध कविता का ही बोलबाला था। अत भाषा-कवि ने युग-धर्म के अनुसार काव्य की विशेषताओ में छद को महत्त्वपूर्ण स्थान दिया। उनके समसामयिक केशवदास ने भी कविता की विशेषताएँ बतलाते हुए सुवृत्त का उल्लेख किया है

जदपि सुजाति सुलच्छनी सुबरन सरस सुवृत्त।[1]

परवर्ती आचार्यो ने भी वर वृत्त की आवश्यकता बतलायी है:

चित्त हरै जो प्रवीनन को वर वित्त रहै सो कवित्त कहावै।

५ मगल · प्राचीन आचार्यो ने काव्य के स्वरूप-निरूपण के प्रसग मे मगल का समावेश नही किया है। प्रयोजन का निर्देश करते हुए उन्होने अमगल-निवारण, कांता-समित उपदेश, चतुर्वर्ग-प्राप्ति आदि के द्वारा मगल की योजना की है।[2] यथार्थत मगल काव्य का लक्षण नही है, उसका फल है। तुलसी का इस तथ्य से कोई विरोध नही है। परतु, उनकी दृष्टि मे लोक-कल्याण का लक्ष्य इतना महत्त्वपूर्ण है कि वे अवसर मिलते ही उसका निर्देश कर देना चाहते हैं। उक्त श्लोक मे उन्होने 'मगल' का सनिवेश दो कारणो से किया है धर्म-बुद्धि से और काव्य-बुद्धि से। वे काव्य की परिभाषा न लिख कर मगलाचरण, लिख रहे हैं, अत उसमे 'मगल' का न होना ही असमीचीन होता। इसके अतिरिक्त, वे मगल-विधान को काव्य-महिमा का व्यावर्तक धर्म मानते हैं। उनके मतानुसार काव्य की कसौटी दुहरी है एक रमणीयता की और दूसरी श्रेष्ठता की। कविता की रमणीयता रस, भाव, ध्वनि, वक्रता, गुण, अलकार, पद-सघटना, छद-योजना प्रबध-कल्पना और वैचित्र्य-विधान मे है। पूर्वोक्त मानस-रूपक और आत्मनिवेदन के प्रसगो मे उन्होने यह बात स्पष्ट कर दी है। काव्य की श्रेष्ठता का एक मात्र निकष लोक-मगल है

कीरति भनिति भूति भलि सोई। सुरसरि सम सब कहँ हित होई॥

काव्य का शरीर

किसी विषय का सम्यक् अवबोध कराने मे उपमानो से बड़ी सहायता मिलती है। नैयायिको ने तो उपमान को प्रमाण-रूप मे मान्यता दी है। उपमान को प्रमाण न मानने वाले दार्शनिको ने भी विभिन्न उपमानो द्वारा पुरुष, प्रकृति, जगत् आदि के गूढ स्वरूप का चित्ताकर्षक विवेचन किया है। काव्याचार्यो ने शास्त्रीय विवेचन को रमणीय तथा बोध-गम्य बनाने के लिए काव्य या कविता की कल्पना पुरुष[3] अथवा नारी[4] के रूप मे की है। वाणी की अधिष्ठात्री देवी सरस्वती है। अत तुलसी ने नारी को कविता का उपमान बनाया है

१. कविप्रिया, ५।१

२. भामह, काव्यालकार, १।२, रुद्रट, काव्यालकार, १।८, काव्यप्रकाश, १।२ आदि

३. काव्यमीमासा, पृ० १, ५-१०

४ काव्यालकार (भामह), १।१३; ध्वन्यालोक, १।४

भनिति बिचित्र सुकबि कृत जोऊ। राम नाम बिनु सोह न सोऊ॥
बिधुबदनी सब भाँति सँवारी। सोह न बसन बिना बर नारी॥[1]

कविता के मानवीकरण के फलस्वरूप उसके शरीर, आत्मा, अवयव-सस्थान, लावण्य, गुण, अलकार आदि की भी परिकल्पना की गयी है।[2] कहा जा चुका है कि कोई शब्द को काव्य मानता है, और काई शब्दार्थ को। तदनुसार शब्द को अथवा शब्दार्थ को काव्य का शरीर माना गया है।[3] अधिकतर आचार्यों ने शब्द और अर्थ को सयुक्त रूप से काव्य-शरीर की सज्ञा दी है। तुलसी ने इसी परिपाटी का पालन किया है। 'वर्णानामर्थसघाना', 'आखर अरथ अलकृति नाना', 'कबिहि अरथ आखर बलु साँचा' आदि उक्तियो मे दोनो का साथ-साथ उल्लेख करके उन्होने इस मान्यता की व्यजना की है।

काव्य की आत्मा

प्रस्तुत प्रसग मे 'आत्मा' का लाक्षणिक अर्थ है सारभूत तत्त्व, आवश्यक विशेषता अर्थात् काव्य का व्यावर्तक धर्म जिसके बिना काव्य काव्य नही रह जाता। काव्य की आत्मा के विषय मे सस्कृत आचार्य एकमत नही हैं। कोई रीति को[4], कोई वक्रोक्ति को[5], कोई ध्वनि को[6], कोई रस को[7], और कोई अलकार[8] को काव्य का सारभूत तत्त्व मानते हैं। तुलसी के समकालीन दरबारी-कवि केशवदास ने निरलकार कविता-वनिता को शोभाहीन समझा है।[9] परतु भक्तकवि तुलसी का मत भिन्न है। वे समन्वयवादी होते हुए भी रसवादी हैं। उन्होने काव्य के सर्वतोमुख सौदर्य के लिए परपरा-प्रसिद्ध काव्यागो की आवश्यकता स्वीकार की है

---

१. रामचरितमानस, १।१०।२

२ शब्दार्थों ते शरीरम । उक्तिचण च ते वच, रस आत्मा, रोमाणि छन्दासि, प्रश्नोत्तरप्रवह्लिकादिक च वाक्केलि, अनुप्रासोपमादयश्च त्वामलकुर्वन्ति।—काव्यमीमासा, पृ० ६
काव्यस्य शब्दार्थौ शरीरम्, रसादिश्चात्मा, गुणा शौर्यादिवत्, दोष। काणत्वादिवत्, रीतयोऽवयवसस्थानविशेषवत्, अलकारा कटककुण्डलादिवत्। —साहित्यदर्पण, १।२ पर वृत्ति, पृ० ११

३ शरीर तावदिष्टार्थव्यवच्छिन्ना पदावली।—काव्यादर्श, १।१०
शब्दार्थशरीरन्तावत्काव्यम्।—ध्वन्यालोक, १।१ पर वृत्ति

४ रीतिरात्मा काव्यस्य।—वामन, काव्यालकारसूत्र, १।२।६

५ वक्रोक्ति काव्यजीवितम्।—कुतक

६ काव्यस्यात्मा ध्वनि।—आनदवर्धन, ध्वन्यालोक, १।१

७. वाग्वैदग्ध्यप्रधानेऽपि रसमेवात्र जीवितम्।—अग्निपुराण, ३३७।३३
वाक्य रसात्मक काव्यम्।—विश्वनाथ, साहित्यदर्पण, १।३

८ काव्य ग्राह्यमलकारात्।—वामन, काव्यालकारसूत्र, १।१
अगीकरोति य काव्य शब्दार्थावनलकृती।
असौ न मन्यते कस्मादनुष्णमनल कृती॥—जयदेव, चद्रालोक, १।८

९ भूषन बिनु न बिराजई कविता बनिता मित्त।—कविप्रिया, ५।१
तुलना कीजिए—
न कान्तमपि निर्भूष विभाति वनितामुखम्।—भामह, काव्यालकार, १।१३

आखर अरथ अलकृति नाना। छद प्रबंध अनेक विधाना॥
भाव भेद रस भेद अपारा। कवित दोष गुन विविध प्रकारा॥
धुनि अवरेब कवित गुन जाती। मीन मनोहर ते वहु भाँती॥[1]

कविता की अनिद्य चारुता के लिए दोषो के परिहार का भी सकेत किया है।[2] इन सब काव्यागो मे रस का स्थान अन्यतम है। उनकी दृष्टि मे रस काव्य का सुदरतम धर्म है। अतएव उन्होने रस को सर्वाधिक महत्त्व दिया है[3]

१ सम जम नियम फूल फल नाना। हरिपदरति रस वेद बखाना॥
२ निज कवित्त केहि लाग न नीका। सरस होउ अथवा अति फीका॥
३ जदपि कवित रस एकौ नाहीं। राम प्रताप प्रगट एहि माहीं॥

इन उक्तियो से ध्वनित है कि रस काव्य का सर्वप्रधान तत्त्व है, काव्यात्मा है। परतु, तुलसीदास के सबध मे यह स्मरण रखना चाहिए कि वे जिस रस को काव्य की आत्मा मानते हैं वह भक्तिरस है, शृ गार आदि रस नही।

स्वरूप और आश्रय आश्रय के विषय मे आचार्यो के स्थूल रूप से दो मत है। भरत आदि रस को वस्तुनिष्ठ या विषयनिष्ठ मानते हैं। उनके मत से विभावादि-सामग्री ही रस है, उसके आस्वाद से जनित आनद भिन्न वस्तु है। अभिनवगुप्त आदि रस को भावकनिष्ठ या विषयिनिष्ठ मानते हैं। उनके मत से काव्य-निबद्ध विभावादि के भावन से सहृदय को जो आनदानुभूति होती है वही रस है। इन मतो के अनुसार रस के स्वरूप के विषय मे तीन प्रकार की धारणाएं मिलती है १ रस वस्तुरूप है, अर्थात् विभावादि का समिलित रूप रस है। २ रस भावरूप है, अर्थात् विभावादि से उपचित स्थायी भाव ही रस है। ३ रस अलौकिकचमत्कार-रूप है, अर्थात् विभाव आदि के भावन से सहृदय द्वारा अनुभूत आनद रस है। तुलसी की कोई ऐसी उक्ति नही है जिसके आधार पर यह निष्कर्ष निकाला जा सके कि वे इनमे से किस मत के अनुयायी हैं। उनका रस-सिद्धात मूलत भक्तिरस से सबद्ध है। अतिम दो मत भक्तिरस पर समान रूप से लागू होते हैं। भक्त्याचार्यो के मतानुसार कीर्तन आदि के द्वारा द्रुत भक्त-चित्त की भगवदाकारता भक्तिरस है, और भक्तिपरक विभावादि के निरूपक काव्य की भावना से प्रतीत आनद भी भक्तिरस है। भक्त के लिए भक्ति-दशा ही रस-दशा है चाहे वह भगवान् के स्मरण मात्र से हो, चाहे अर्चन आदि से और चाहे काव्य से। भक्ति स्वयमेव रस है।[4] भक्त के मन मे प्रतिबिंबित परमानदस्वरूप भगवान् ही स्थायिभावता और रसता को प्राप्त होता है।[5] इद्रियो की आनदमयी भगवद्रूपता भक्तिरस ही है।[6] रस का आनदवादी सिद्धात भक्ति-

---

१ रामचरितमानस, १।९।४-५, ८।३७।४
२ सखर सुकोमल मजु दोष रहित दूषण सहित।—रामचरितमानस, १।१४
३ रामचरितमानस, १।३७।७, १।८।६, १।१०।४
४. भक्ति ईश्वरविषया रतिरेव रस —वाचस्पत्य बृहत्संस्कृताभिधान
५ भक्तिरसायन, १।१०
६ यत्र मन सर्वेन्द्रियाणामानन्दमात्रकरपदमुखोदरादिभगवद्रूपता तत्र भक्तिरस एव।—भक्तिमार्तण्ड, पृ० १०२१ अ हिस्ट्री ऑफ इन्डिअन फिलॉसफी, जिल्द ४, पृ० ३५२

रस मे सबसे अधिक गतार्थ होता है, क्योकि वह प्रत्येक दशा मे आनदमय है।

रस-सख्या : सस्कृत-काव्यशास्त्र मे प्रसिद्ध नौ रसो के अतिरिक्त प्रेयस्, वात्सल्य, भक्ति, स्नेह, श्रद्धा, लौल्य, मृगया, अक्ष, व्यसन, दु ख, सुख, उदात्त, उद्धत, स्वातत्र्य, पारवश्य, क्रीडनक, कार्पण्य, माया आदि रसो की भी चर्चा की गयी है। यहाँ तक कि समस्त व्यभिचारी और सात्त्विक भावो का रसत्व स्वीकार किया गया है।[1] किन्तु अभिनवगुप्त, मम्मट, विश्वनाथ आदि गौरवशाली आचार्यों ने रसो की सख्या नौ ही मानी है। तथाकथित अथवा वास्तविक रसो को या तो रस माना ही नही या शात आदि नौ रसो मे उनका समावेश कर लिया। विश्वनाथ ने दबी जबान से वात्सल्य रस को मान्यता दी है।[2] भक्ति का रसत्व स्वीकार नही किया गया। किसी ने उसे रति का प्रकारविशेष माना,[3] किसी ने शात रस मे अतर्भाव किया[4] और किसी ने हर्षोत्साह आदि मे।[5] कुछ ने उसे भाव-कोटि मे रखा[6] तो किसी ने अनुभाव-कोटि मे।[7] वैष्णव आचार्यों ने उसे रस-कोटि में प्रतिष्ठित किया।[8]

तुलसी के अनुसार रस दस हैं काव्यशास्त्रीय परपरा मे विख्यात नवरस (शात, शृ गार, वीर, करुण, अद्भुत, हास्य, रौद्र, भयानक और वीभत्स) तथा भक्तिरस। उन्होने नवरस[9] और भक्तिरस[10] का साक्षात् उल्लेख किया है। आश्चर्य है कि उन्होने वात्सल्य रस का नाम नही लिया, यद्यपि उनके काव्य मे वात्सल्य रस की व्यजना हुई है, सूर का अप्रतिम वात्सल्य-वर्णन उनके समक्ष था और पूर्ववर्ती विश्वनाथ-जैसे आचार्य उसका रसत्व मान चुके थे। इसके दो कारण हैं। एक तो तुलसी के समय तक वात्सल्यरस की प्रतिष्ठा नही हुई थी, दूसरे उनकी कविता मे अभिव्यक्त वात्सल्य प्राय भक्तिमिश्रित है अथवा वत्सल-भक्तिरस है। अस्तु, उनके काव्य मे ग्यारह रसो की व्यजना हुई है।

रसराज : आचार्यों ने शृंगार को रसराज की सज्ञा दी है। तुलसी के समय मे ही 'प्राकृत कवि' केशवदास ने शृ गार को सभी रसो का नायक बतलाया है।[11] तुलसी का मत इसके ठीक विपरीत है। वे शृ गार-सरीखे रसो को विषय-रस मानकर हेय समझते हैं

---

१. देखिए—दि नम्बर ऑफ़ रसज्, पृ० १०७-४३
२ अथ मुनीन्द्रसमतो वत्सल ।—साहित्यदर्पण, ३।२५१-५४ की अवतरणिका
३ काव्यादर्श, २।२७५-७६, सरस्वतीकठाभरण, ५।१६६, हेमचद्र, काव्यानुशासन (टीका), पृ० ८१
४ अभिनवभारती, जिल्द १, पृ० ३४०, ३४१
५ दशरूपक, ४।८३
६ काव्यप्रकाश, ४।३५-३६, चद्रालोक, ६।१४, साहित्यदर्पण, ३।२६०-६१
७ देवगुरुमुनिपुत्रादिविषया तु रतिरनुभाव एव ।—द्वितीय वाग्भट, काव्यानुशासन (व्याख्या), पृ० ५३
८ देखिए तुलसी-दर्शन-मीमासा, पृ० ३७७-४०६
९. रामचरितमानस, १।३७।५, विनयपत्रिका, १६६।१
१० रामचरितमानस, १।३७।७, २।२०८, ७।१२५।१, विनयपत्रिका, २०३।१६
११. नवहू रस के भाव बहु तिनके भिन्न विचार ।
सबको केसवदास हरि नायक है सृ गार ॥—रसिकप्रिया, १।१६

सवुक भेक सेवार समाना। इहाँ न विषय कथा रस नाना॥
तेहि कारन आवत हिअँ हारे। कामी काक बलाक विचारे॥[1]

वे प्रत्येक भाव की सहजाभिव्यक्ति को श्रेष्ठ कविता नही मानते। जो कविता भावक के चित्त को विषय-रस से ही प्रभावित करती है वह तिरस्करणीय है। श्रेष्ठ विचारो से अनुप्राणित भक्तिरस की कविता ही श्रेष्ठ पद की अधिकारिणी है। भक्तिरस रसविशेष है

रामचरित जे सुनत अघाहीं। रस विसेष जाना तिन्ह नाहीं॥[2]

भक्तिशास्त्रियो का तर्क है कि शृगार आदि लौकिक रसो मे विषयावच्छिन्न चित् के आनद के अशमात्र का ही स्फुरण होता है, किंतु भक्तिरस मे अनवच्छिन्न चिदानद-घन भगवान् के स्फुरण के कारण आनद का अत्यताधिक्य होता है।[3] अत भक्तिरस रस ही नही अपितु सभी रसो मे महत्तम है। तुलसी उसे सब रसो का सिरताज मानते हैं। एक बार भक्तिरस का आस्वाद, उसकी मिठास, मिल जाने पर अन्य सभी रस सीठे प्रतीत होते हैं

जो मोहि राम लागते मीठे।
तो नवरस षटरस रस अनरस ह्वै जाते सब सीठे॥[4]

मूल रस : अनेक आचार्यों की मान्यता है कि मूलत रस एक है, उसकी प्रकृति एक है। अत उन्होने किसी विशिष्ट रस को प्रकृति तथा अन्य रसो को उसकी विकृति कहा है। भरत[5] और अभिनवगुप्त[6] के विचार से शात रस प्रकृति है, अन्य रस तथा भाव उसके विकार हैं। अग्निपुराणकार[7] और भोज[8] ने शृगार को अन्य रसो तथा भावो का मूल बतलाया है। भवभूति के अनुसार करुण ही एक मात्र स्थायी रस है।[9] कवि कर्णपूरने प्रेमरस में सभी रसो का अतर्भाव माना है।[10] विश्वनाथ आदि के मत से अद्भुत के स्वरूप मे ही रस की एकता और अखडता है।[11] तुलसी ने मूल रस की बात कही नही की है। उन्होने राम और राम-भक्ति को परमार्थ-रूप कहा है।[12] अन्य रसो की निबधना करते समय भी भक्ति उनके मन से कभी तिरोहित नही हुई है। इसलिए खीच-तानकर कहा जा सकता है कि उनके अनुसार अन्य रस भक्तिरस से ही प्रकट होते हैं और फिर उसी मे

---

१ रामचरितमानस, १।३८। ७-८
२ रामचरितमानस, ७।५३।१
३ शांडिल्य-भक्तिसूत्र, १।१।२ पर भक्तिचद्रिका
४ विनयपत्रिका, १६९।१
५ नाट्यशास्त्र, ६।८३ के बाद कोष्ठगत श्लोक ५
६ अभिनवभारती, जिल्द १, पृ० ३४०
७ अग्निपुराण, ३३९। १-३
८ देखिए—दि नम्बर ऑफ रसज, पृ० १६७-६९
९ उत्तररामचरित, ३।४७
१० देखिए—दि नम्बर ऑफ रसज, पृ० १७०
११ साहित्यदर्पण, ३।३ पर वृत्ति
१२ रामचरितमानस, २।९३।३-४

लीन हो जाते हैं।

अगी रस प्रवधकाव्य मे, विशेष करके महाकाव्य मे, अनेक रसो की निवधना की जाती है। अत काव्य के घनीभूत प्रभाव के लिए किसी एक रस को स्थायी, मुख्य या अगी रस के रूप मे निबद्ध करने पर बल दिया गया है।[1] अन्य रस सचारी, गौण, अगभूत और उस अगी रस के पोषक होते हैं। सभी रस अगी होने के योग्य नही हैं। महाकाव्य मे शृ गार, वीर अथवा शात रस की अगी रस के रूप मे योजना की जा सकती है।[2] तुलसी ने पूर्वोक्त मानस-रूपक मे अन्य रसो को जलचर कहकर उनकी गौणता और भक्तिरस को फल का रस कहकर उसकी मुख्यता सूचित की है। भक्तो के लिए भक्तिरस ही रस है। वल्लभाचार्य ने तो काव्यमात्र को असत्य या सत्त्वहीन कहकर धर्म के विषय मे उसकी अनुपयोगिता की घोषणा की है।[3] तुलसी ने अन्य रसो का सर्वथा तिरस्कार किये बिना ही भक्तिरस की मुख्यता प्रतिपादित की है। उन्होने इस सिद्धात को व्यवहार मे उतारा है। अगीरस के रूप मे भक्तिरस का सफल विधान करके उन्होने काव्यशास्त्र की रूढ मान्यता के विरुद्ध एक नया मानदड स्थिर किया। इस कथन मे रत्ती भर भी अतिशयोक्ति नही है कि अगी रस की जैसी घनीभूत निवधना, जैसी अविच्छिन्न धारा और जैसी सशक्त प्रबधध्वनि 'रामचरितमानस' मे है वैसी अन्यत्र दुर्लभ है।

काव्य का प्रयोजन

'प्रयोजन' का अर्थ है वह उद्देश्य या फल जिसकी सिद्धि के लिए काव्य-रचना की जाती है। प्राचीन काव्यशास्त्र मे काव्य के अनेक प्रयोजन बतलाये गये हैं यश, अर्थ, व्यवहार-ज्ञान, अमगल-निवारण, आनद, काता-समित उपदेश, पुरुषार्थचतुष्टय आदि।[4] ये प्रयोजन दो वर्गो मे रखे जा सकते है। यश आदि कवि-निष्ठ प्रयोजन हैं। उपदेश आदि सहृदय-निष्ठ हैं। तुलसी ने इन दोनो ही प्रकार के प्रयोजनो का उपस्थापन किया है। कवि और सहृदय दोनो के केंद्र-विंदु से स्वात सुख काव्य का मूल प्रयोजन है। ससार मे जीव की जितनी प्रवृत्तियाँ हैं उन सब का लक्ष्य दु ख निवृत्ति और सुख-प्राप्ति है। काव्य-रचना और काव्य-भावन भी उन्ही के अतर्गत हैं। अत उनका भी मूल उद्देश्य सुखोपलब्धि है। एकाध आलोचक आत्माभिव्यक्ति को काव्य या साहित्य का मूल प्रयोजन मानते हैं। उनकी मान्यता तर्कसगत नही है। इसके दो कारण हैं। १. इस प्रसग मे प्रयोजन का तात्पर्य है फल। और, 'आत्माभिव्यक्ति' का चाहे जितना तोड-मरोडकर अर्थ किया जाए, वह काव्य का फल नही है। यदि सूक्ष्म दृष्टि से देखा जाए तो काव्य स्वय ही कवि की आत्माभिव्यक्ति है। इसलिए उसको फल मानना न्याय-विरुद्ध है। २ 'मूल, प्रयोजन' उसको कहते है जो अन्य प्रयोजनो का प्रयोजन हो, जिसका कोई अन्य प्रयोजन न हो।

---

१. ध्वन्यालोक, ३।२१ और उस पर लोचन

२. साहित्यदर्पण, ६।३१७

३ तत्त्वदीप, २।८०, अणुभाष्य पर बालबोधिनी का उपोद्घात, पृ० ५३

४ काव्यालकार (भामह), १।२, काव्यालकारसूत्र, १।१।५, वक्रोक्तिजीवित, १।३-५, काव्यप्रकाश, १।२, साहित्यदर्पण, १।२ आदि

यदि आत्माभिव्यक्ति को आपत्ति के साथ प्रयोजन मान लिया जाए तो भी वह अतिम प्रयोजन नही है। स्वात सुख ही उसका भी मूल प्रयोजन ठहरता है। अर्थ, यश आदि इस प्रयोजन की शाखाएँ हैं। 'रामचरितमानस' के प्रतिज्ञावचन मे तुलसी ने अनुवध के अनुसार केवल कवि के केंद्र-विंदु से इस मूल प्रयोजन का निर्देश किया है

स्वातःसुखाय तुलसी रघुनाथगाथाभाषानिवधमतिमंजुलमातनोति।[1]

उन्होने अर्थ, काम और यश की एषणाओ को मोहमूल तथा नश्वर समझा है

सुत वित लोक ईषना तीनी। केहि कै मति इन्ह कृत न मलीनी॥[2]

अतएव इन तीनो को उन्होने अपने काव्य का प्रयोजन नही माना। यश कामना उदात्त मानव की बहुत बडी कमजोरी है।[3] वीतराग भक्तकवि तुलसी ने प्रयोजन-रूप मे उसकी स्पष्ट निवधना तो नही की, परतु उनकी अनेक पक्तियाँ ऐसी अवश्य हैं जिनसे यशोऽभिलाषा की अस्पष्ट ध्वनि निस्सदेह प्रतीत होती है[4]

१ भाषा भनिति भोरि मति मोरी। हँसिवे जोग हँसे नहिं खोरी॥

२ जो प्रवध बुध नहिं आदरहीं। सो श्रम वादि वालकवि करीं॥

३ सपनेहु सांचेहु मोहि पर जौं हर गौरि पसाउ।
तौ फुर होउ जो कहेउँ सव भाषा भनिति प्रभाउ॥

गौण प्रयोजन के रूप मे उन्होने 'प्रवोध' का उल्लेख किया है

भाषावद्ध करवि मैं सोई। मोरे मन प्रवोध जेहि होई॥
जस कछु वुधि विवेक वल मेरें। तस कहिहौं हिअँ हरि के प्रेरें॥
निज सदेह मोह भ्रम हरनी। करौं कथा भव सरिता तरनी॥[5]

इस प्रयोजन के सवध मे यह स्मर्तव्य है कि इसकी सिद्धि केवल भक्तिरस या शान्तरस की कविता से ही हो सकती है, शृ गार आदि से नही।

भावक के केंद्र-विंदु से वे काव्य के दो प्रयोजन मानते हैं रसानुभूति औरमगल। निम्नाकित पक्ति से पहले प्रयोजन की व्यजना होती है

कवित रसिक न राम पद नेहू। तिन्ह कहँ सुखद हास रस एहू॥[6]

---

१. रामचरितमानस, १।१।श्लोक ७

२. रामचरितमानस, ७।७१।३

३ Fame is the spur that the clear spirit doth raise
(That last infirmity of noble mind)
To scorn delights, and live laborious days —Lycidas
—The Poems of John Milton, p 99

मन्द कवियश प्रार्थी गमिष्यान्युपहास्यताम्।—रघुवश, १।३

४. रामचरितमानस, १।६।२, १।१४।४, १।१५

५. रामचरितमानस, १।३१।१-२

६ रामचरितमानस, १।६।२, और भी देखिए
भए जे अहहिं जे होइहहिं आगे। प्रनवौं सवहिं कपट छल त्यागे॥
होहु प्रसन्न देहु वरदानू। साधु समाज भनति सनमानू॥–१।१४।३-४

आरभिक मगलश्लोक के अतिरिक्त अनेक स्थलो पर लोकमगल को काव्य का प्रयोजन बतलाया है[1]

१ कीरति भनिति भूति भलि सोई। सुरसरि सम सब कहँ हित होई॥

२ मगल करनि कलिमल हरनि तुलसी कथा रघुनाथ की।

३ बुध विश्राम सकल जन रजनि। रामकथा कलि कलुष बिभजनि॥

अतिम पक्ति मे प्रयुक्त 'बुध विश्राम' भक्तिजन्य ब्रह्मानद और ब्रह्मानदसहोदर काव्यरस दोनो का ही द्योतक है।

एक तीसरे प्रकार के प्रयोजनो (अर्थ, ऋद्धि, सिद्धि, मुक्ति आदि मनोवाछित फलो) की चर्चा विभिन्न अवसरो पर कही गयी फलश्रुतियो मे की गयी है[2]

१. ऋद्धि सिद्धि कल्यान सकल नर पावइँ हो।

२ तुलसी उमा सकर प्रसाद प्रमोद मन प्रिय पाइहैं।

३ सुनहिं बिमुक्त बिरत अरु बिषई। लहहिं भगति गति सपति नई॥

तुलसी के काव्य-प्रयोजन के विषय मे एक सगत प्रश्न यह उठता है कि उन्होने काव्य-रचना स्वात सुखाय की है अथवा बहुजनहिताय। इसका उत्तर यह है कि दोनो मे कोई विरोध नही है, क्योकि, सर्वहित मे तुलसी का स्वात सुख है।

काव्य-हेतु

आचार्यों ने शक्ति या प्रतिभा, व्युत्पत्ति या निपुणता और अभ्यास को समिलित रूप से काव्य का हेतु माना है।[3] उनका यह मत तुलसीदास को मान्य है। समाहित चित्त में शब्दार्थ-समूह का स्फुरण करनेवाली नवनवोन्मेषशालिनी प्रज्ञा को शक्ति या प्रतिभा कहते हैं।[4] उनकी दृष्टि मे शक्ति अर्थात् ईश्वर-दत्त प्रतिभा शक्ति काव्य-रचना के लिए सबसे महत्त्वपूर्ण और आवश्यक तत्त्व है। अपनी भक्ति-भावना के अनुरूप व्यजना द्वारा उन्होने यह मान्यता व्यक्त की है[5]

१ सारद दारुनारि सम स्वामी। रामु सूत्रधर अतरजामी॥
जेहि पर कृपा करहिं जनु जानी। कबि उर अजिर नचावहिं बानी॥

२ सभु प्रसाद सुमति हिय हुलसी। रामचरितमानस कवि तुलसी॥

'व्युत्पत्ति' का अर्थ है बहुज्ञता, विविध कलाओ, विद्याओ, काव्यशास्त्र, लोक-जीवन आदि का ज्ञान।[6] राजशेखर ने उचितानुचित-विवेक को व्युत्पत्ति कहा है।[7] 'प्रबीन' और 'कबित विवेक' द्वारा तुलसी ने प्रकारातर से दोनो ही मतो का निर्देश किया है

१ क्रमश, रामचरितमानस, १।१४।५, १।१० छद, १।३१।३
२. रामललानहछू, २०, पार्वतीमगल, १६४, रामचरितमानस, ७।१५।३
३ काव्यप्रकाश, १।३, काव्यादर्श, १।१०३, वाग्भटालकार, १।३
४ काव्यालकार (रुद्रट), १।१५, काव्यालकारसूत्र, १।१।१ पर कामधेनुटीका
५ क्रमश, रामचरितमानस, १।१०५।३, १।३६।१
६. भामह, काव्यालकार, ५।४; काव्यप्रकाश, १।३ और उस पर वृत्ति
७. काव्यमीमांसा, पृ० १६

कवि न होउँ नहिं चतुर प्रवीनू। सकल कला सब विद्या हीनू॥
आखर अरथ अलकृति नाना। छद प्रबध अनेक विधाना॥
भाव भेद रस भेद अपारा। कवित दोष गुन विविध प्रकारा॥
कवित विवेक एक नहिं मोरे। सत्य कहौं लिखि कागर कोरे॥[1]

प्रतिभा और व्युत्पत्ति के सापेक्ष महत्त्व के विषय में विवाद है। आनद के मतानुसार प्रतिभा अधिक श्रेयस्कर है, मगल व्युत्पत्ति को अधिक श्रेयस्कर मानते हैं, और राजशेखर की मान्यता है कि दोनो समान रूप मे श्रेयस्कर हैं।[2] दडी का कहना है कि प्रतिभा के अभाव मे व्युत्पत्ति और अभ्यास के बल पर भी काव्य-रचना सभव है।[3] तुलसीदास शक्ति को अनिवार्य मानते हैं। तत्त्वत प्रतिभा ही काव्य-रचना का मूल हेतु है, व्युत्पत्ति और अभ्यास उसके सस्कारक हैं। अत तीनो को समिलित रूप मे हेतु बतलाया गया है।

'अभ्यास' शब्द निरतर प्रयत्नशीलता का द्योतक है। कोई कवि प्रथम प्रयत्न मे ही उत्कृष्ट काव्य-रचना नही कर सकता। अनवरत अभ्यास से उसकी प्रतिभा और रचना-शैली का परिष्कार होता है। तुलसी ने अभ्यास की स्पष्ट चर्चा नही की है, परन्तु इस सबध मे श्रम शब्द के अनेकधा उल्लेख से अभ्यास की व्यजना हो जाती है।[4]

भाव-पक्ष प्रतिपाद्य विषय

काव्य मात्र के दो पक्ष होते हैं भाव-पक्ष और कला-पक्ष। जो कुछ भी कवि का कथ्य, प्रतिपाद्य विषय या वर्ण्य वस्तु है वह सब भाव-पक्ष के अतर्गत है। उस कथन, प्रतिपादन या वर्णन की रीति, पद्धति या शैली कला-पक्ष है। सस्कृत-काव्यशास्त्र के अनुसार काव्य मे वर्णित स्थायी भाव, आश्रयालबन विभाव, विषयालबन विभाव, उद्दीपन विभाव, सचारी भाव, अनुभाव और सात्त्विकभाव[5] भाव-पक्ष के अग हैं। इन सभी के साथ लगा हुआ 'भाव' शब्द ध्यान देने योग्य है। आधुनिक ढग से तुलसी-साहित्य की समीक्षा मे हम कह सकते हैं कि उनके काव्य मे निबद्ध इतिवृत्त, चरित्राकन, पात्रो की अतर्वृत्तियो, बाह्य रूप तथा चेष्टाओ का निरूपण, वस्तु-वर्णन, प्रकृति-चित्रण, और नीति, काव्य, धर्म, दर्शन एव भक्ति का सैद्धातिक प्रतिपादन—ये सब उनके काव्य का भाव-पक्ष प्रस्तुत करते हैं।

इस सबध मे तुलसीदास द्वारा उपस्थापित सिद्धात से सामान्य कवि या आलोचक का सहमत होना कठिन है। उन्होने अपने काव्य मे निखिल भाव-राशि की निबधना राम और राम-भक्ति के केंद्र-बिंदु से की है। वे केवल रामविषयक वृत्त को ही महान् और वर्णनीय समझते हैं। उनके मतानुसार प्राकृत जनो का गुणगान सरस्वती का अपमान है

कीन्हे प्राकृत जन गुन गाना। सिर धुनि गिरा लगति पछिताना॥[6]

---

१ रामचरितमानस, १।९।४–३
२ काव्यमीमांसा, पृ० १६
३. काव्यादर्श १।१०४–५
४. रामचरितमानस, १।११।३,१।१४।४
५ सात्त्विक-भाव अनुभाव ही हैं। सत्त्व से उत्पन्न और विशिष्ट होने के कारण उन्हें स्वतंत्र नाम दिया गया है।
६. रामचरितमानस, १।११।४

और, भक्ति-निरूपण मे कवि-प्रतिभा की सार्थकता है

भगति हेतु बिधि भवन बिहाई। सुमिरत सारद आवति धाई ॥[1]

उनकी यह निश्चित धारणा है कि सुकवियो की वैचित्र्य-युक्त रचना भी राम-नाम मे रहित होने पर सर्वश्रृ गारवती वसन-हीन सुंदरी की भाँति भद्दी प्रतीत होती है[2]

१. भनिति बिचित्र सुकबि कृत जोऊ। राम नाम बिनु सोह न सोऊ ॥
विधुवदनी सब भाँति सँवारी। सोह न बसन बिना बर नारी ॥

२. राम नाम बिनु गिरा न सोहा। देखु बिचारि त्यागि मद मोहा ॥
वसन हीन नहि सोह सुरारी। सब भूषन भूषित बर नारी ॥

राम के सबध से कुकवियो की गुण-रहित वाणी[3] भी विद्वज्जनो द्वारा समादृत होती है[4]

१ सब गुन रहित कुकवि कृत बानी। राम नाम जस अकित जानी ॥
सादर कहहिं सुनहिं बुध ताही। मधुकर सरिस सत गुनग्राही ॥

२ प्रभु सुजस सगति भनिति भलि होइहि सुजन मन भावनी ॥
भव अग भूति मसान की सुमिरत सुहावनि पावनी ॥

यह दार्शनिक भक्तकवि की आध्यात्मिक दृष्टि है। जो काव्य भावक को लोक-सामान्य निम्नतर स्तर से उठाकर भाव की उच्चतर भूमि पर प्रतिष्ठित नही करता, जो निःश्रेयस का भी साधक नही है, वह उसकी दृष्टि मे निकृष्ट है। वह तो भक्तिदर्शन से अनुप्राणित काव्य को ही आदर्श-काव्य समझता है।

भक्तिरस के काव्य की श्रेष्ठता का दार्शनिक और मनोवैज्ञानिक कारण अवेक्षणीय है। काव्य और दर्शन दोनो का ही लक्ष्य है चित्त-मुक्ति के द्वारा आनदानुभूति कराना। काव्यानद और ब्रह्मानद दोनो की ही अनुभूति के लिए साधारणीकरण आवश्यक है। साधारणीकरण क्या है ? साख्य-दर्शन मे अत करण की वृत्तियाँ दो प्रकार की वतलायी गयी है असाधारण (विशिष्ट) एव साधारण। अत करणत्रय अर्थात् बुद्धि, अहकार और मन की असाधारण वृत्तियाँ क्रमश अध्यवसाय, अभिमान तथा सकल्प-विकल्प है। साधारण वृत्ति है प्राणवायु का सचरण।[5] उक्त विभिन्न असाधारण वृत्तियो को त्याग कर, अत -करण का अपने साधारण रूप मे स्थित हो जाना ही उसका साधारणीकरण है। जब बुद्धि, अहकार और मन अपने-अपने विशिष्ट विषयो के सबध से मुक्त हो जाते है तब अत करण मे केवल प्राण-व्यापार का अस्तित्व रह जाता है। यही उसकी साधारणीकृत अवस्था है। यही चित्त-मुक्ति है।

भक्ति और ज्ञान की दशा मे अत.करण का साधारणीकरण पूर्ण और स्थायी होता

---

[1] रामचरितमानस, १।११।२

[2] रामचरितमानस, १।१०।२, ५।२३।२

[3] बाबू मैथिलीशरण गुप्त की उक्ति है
राम ! तुम्हारा वृत्त स्वय ही काव्य है,
कोई कवि बन जाय, सहज सभाव्य है।—साकेत, मुखपृष्ठ

[4] रामचरितमानस, १।१०।३, १।१० छद

[5] साख्यसूत्र, २।३०-३१ पर साख्यप्रवचनभाष्य

है, काव्य के भावन की दशा मे यह साधारणीकरण अपूर्ण एव अस्थायी होता है। अत काव्यानद ब्रह्मानद से हीन है, ब्रह्मानद-सहोदर है। तारतम्य की दृष्टि से भक्तिरसात्मक काव्य भक्ति-ज्ञान तथा सामान्य काव्य का मध्यवर्ती है। अन्य काव्यो के मुकाबिले भक्तिरस के काव्य मे साधारणीकरण की अधिक शक्ति है

रामचरितमानस एहि नामा। सुनत स्रवन पाइग्र बिस्रामा॥
मन करि विषय ग्रनल वन जरई। होइ सुखी जौ येहिं सर परई॥[1]

भक्तिरसात्मक काव्य के भावन से भावक को ब्रह्मानद और ब्रह्मानदसहोदर रस दोनो की अनुभूति हो सकती है। अत भक्तिरस के आचार्यों और तुलसीदास ने उसे अन्य काव्यो की तुलना मे श्रेष्ठ माना है।

रसवादी वेदातियो की मान्यता है कि भगवान् परमानदस्वरूप है। जीवात्मा माया से आवृत है। काव्यगत विभावादि के द्वारा यह माया का आवरण क्षण-भर के लिए तिरोहित हो जाता है, और भावक को परमानदस्व-रूप की अनुभूति होने लगती है। यही अनुभूति रस है। इस अनुभूति-दशा मे भावक विषय से सर्वथा अनवच्छिन्न नही होता। अत काव्य-रस ब्रह्म-रस मे न्यून है।[2] साख्य के अनुसार सभी कार्यों का हेतु प्रकृति है जो सत्त्वरजस्तमोगुणमयी है। सत्त्वगुण की विशेषता है आनदमयता। विभावादि के भावन से तमोगुण और रजोगुण अभिभूत हो जाते हैं। सत्त्वगुण का उद्रेक होने पर भावक को आनदानुभूति होने लगती है। यही आनदानुभूति रस है। सत्त्व के साथ मिश्रित रजोगुण और तमोगुण के तारतम्य के अनुसार ही रस की आनदानुभूति मे भी न्यूनाधिकता होती है।[3] सत्त्वगुण का उद्रेक करने तथा परमानदस्वरूप की अनुभूति कराने मे जितना समर्थ भक्तिकाव्य है उतना दूसरा काव्य नही। इसलिए भक्तिकाव्य महत्तम है। इसीलिए तुलसीदास का मत है कि भक्तिरस का आस्वाद मिल जाने पर अन्य रस नीरस प्रतीत होते हैं।[4]

कला-पक्ष

लोकोत्तर आनद की अनुभूति कराने वाली अभिव्यजन-शैली कला है। भावों के अभीष्ट सप्रेषण के लिए कवि अनेक प्रकार के रमणीय उपायो का सहारा लेता है। कविता शब्दार्थमयी रचना है। अत शब्द-विन्यास और अर्थ-व्यजना से सबधित सपूर्ण लालित्य-विधान काव्य का कला-पक्ष है। तुलसी की निम्नाकित उक्तियो मे उसके विभिन्न तत्त्वो का सकेत किया गया है[5]

१ ग्राखर ग्ररथ ग्रलकृति नाना। छद प्रबध ग्रनेक बिधाना॥

---

१ रामचरितमानस, १।३५।४
२ भक्तिरसायन, १।४-१३ और उन पर टीका
३ भक्तिरसायन, १।१५-१८ और उन पर टीका
४ विनयपत्रिका, १६६।१
५. रामचरितमानस, १।६।५, १।६।५, १।१०।२, १।११, १।३३।१, १।३६, १।३७।२, १।३७।२, १।३७।३, १।३७।३, १।३७।४, २।२६४।१, ७।१२३।१, गीतावली, २।१५

२ कबित दोष गुन बिबिध प्रकारा।
३ भनिति बिचित्र मुकवि कृत जोऊ।
४ जुगुति बेधि पुनि पोहिअहि रामचरित वर ताग।
५. कथा प्रवध विचित्र वनाई।
६ सुठि सुदर सवाद वर बिरचे बुद्धि विचारु।
७ उपमा वीचि बिलास मनोरम।
८ जुगुति मजु मनि सीप सुहाई।
९ छद सोरठा सुदर दोहा।
१० अरथ अनूप सुभाव सुभाषा।
११ धुनि अवरेब कबित गुन जाती।
१२ सुगम अगम मृदु मजु कठोरे। अरथ अमित अति आखर थोरे।
१३ व्यास समास स्वमति अनुरूपा।
१४ उघटहि छद प्रबध गीत पद राग तान बधान।

उपर्युक्त सकेतो के आधार पर कला-पक्ष के निम्नाकित तत्त्व निर्धारित किये जा सकते हैं

१ **शब्दार्थ-सतुलन** अभिप्रेत वाच्य, लक्ष्य और व्यग्य अर्थों की सम्यक् प्रतीति कराने के लिए वाचक, लक्षक और व्यजक शब्दो का सटीक प्रयोग, उनकी आकाक्षा, योग्यता और सन्निधि का यथोचित निर्वाह।[1]

२ **ध्वनि-योजना**. 'ध्वनि' शब्द का व्यवहार, काव्यशास्त्र की दृष्टि से, पाँच अर्थों मे हुआ है व्यजक शब्द, व्यजक अर्थ, व्यजना-व्यापार, व्यग्यार्थ और वह विशिष्ट काव्य जिसमे व्यग्य का अतिशायी चमत्कार हो।[2] ध्वनिवादियो ने ध्वनि को काव्य की आत्मा कहा है। चमत्कारपूर्ण व्यग्य के अर्थ मे ध्वनि काव्यात्मा है। परतु, व्यजना-वृत्ति के द्वारा व्यजक शब्दार्थ के माध्यम से उस व्यग्य का विनिवेश कला है।

३ **वक्रोक्ति-विधान** 'अवरेब' शब्द वक्रता का वाचक है। काव्य मे चातुर्यगर्भित शोभा-शालिनी उक्ति आह्लादकारिणी होती है। सामान्य अभिधा द्वारा कही गयी वात मे रमणीयता नही आती। अभिधा से भिन्न वैचित्र्य-पूर्ण कथन-शैली गे विशेप प्रकार का लालित्य आ जाता है। इसीलिए कुतक ने अलौकिक-चमत्कार-विधायिनी वैदग्ध्य-भगी-भणिति को वक्रोक्ति कहा है।[3]

४ **जाति-विन्यास**. तुलसीदास के मतानुसार 'जाति' शब्द से दो अर्थ ग्रहण किये जा सकते हैं। एक अर्थ है स्वभावोक्ति। 'अवरेब' अर्थात् वक्रोक्ति के समीपवर्ती प्रयोग (धुनि अवरेब कवित गुन जाती) के कारण यह असमीचीन नही है। उक्ति-कौशल की दृष्टि से वाङ्मय की दो विधाएँ वतलायी गयी हैं स्वभावोक्ति और वक्रोक्ति।[4]

---

१. देखिए काव्यप्रकाश, द्वितीय उल्लास, साहित्यदर्पण, द्वितीय परिच्छेद
२ ध्वन्यालोक, १।१३ पर लोचन
३. वक्रोक्तिजीवित, १।२,१०
४ भिन्न द्विधा स्वभावोक्तिर्वक्रोक्तिश्चेति वाङ्मयम्।—काव्यादर्श, २।३६२

वस्तुओं के रूप आदि का साक्षात् या नैसर्गिक वर्णन स्वभावोक्ति है। और, सर्व-साधारण के प्रयोग से विलक्षण प्रयोग द्वारा भंगिमा-विशिष्ट वर्णन वक्रोक्ति है। स्वभावोक्ति ही जाति है।[1] बाणभट्ट ने 'अग्राम्या जाति' या 'सुजाति' की मनोहरता का उल्लेख किया है।[2] तुलसी को यह मत मान्य है। जाति और वक्रोक्ति के रूप में उक्ति की द्विविधता निम्नलिखित उक्तियों से भी सूचित होती है[3]:

१ मति कूर कविता सरित की, २ सरल कवित कीरति बिमल

भोज ने वाङ्मय के तीन प्रकार बतलाये हैं: अलंकारप्रधान वक्रोक्ति, गुणप्रधान स्वभावोक्ति और रसप्रधान रसोक्ति।[4] 'गुन जाती' से गुणप्रधान स्वभावोक्ति का सादृश्य स्पष्ट है।

'जाति' का दूसरा अर्थ है वृत्ति। वृत्तियाँ वर्णानुप्रास पर आश्रित हैं। अतः उन्हें अनुप्रासजाति[5] कहा गया है। ये तीन प्रकार की मानी गयी हैं:

१ नागरिका: परुषानुप्रासा, जिसमें कठोर वर्णों का प्रयोग किया गया हो।

२ उपनागरिका: मसृणानुप्रासा, जिसमें मधुर वर्णों की सघटना की गयी हो।

३. ग्राम्या: कोमलानुप्रासा, जो स्वभावसुकुमारी ग्राम्य वनिता के सदृश वैदग्ध्य-विहीन और अपरुष हो।

इन तीनों के क्रमशः नामांतर हैं: परुषा, ललिता, और कोमला। 'आखर' के विशेषण 'मृदु मंजु कठोरे'[6] में 'कठोर', 'मंजु' और 'मृदु' द्वारा क्रमशः इन जातियों या वृत्तियों के निर्देश का अनुमान किया जा सकता है।

'जाति' के दो अन्य अर्थ हैं: १ मात्रिक छंद, २ भारतीय संगीत में स्वरग्राम के सात स्वर। 'जाति' के पहले की पंक्तियों में 'रामचरितमानस' के प्रमुख छंदों चौपाई, दोहा, सोरठा तथा छंद का उल्लेख किया जा चुका है, और 'रामचरितमानस' पारिभाषिक दृष्टि से गीतिकाव्य नहीं है। इसलिए प्रस्तुत प्रसंग में इन दोनों अर्थों का ग्रहण संगत नहीं प्रतीत होता।

५ अलंकार-निबंधना: अपने पूर्ववर्ती महाकवियों की भाँति तुलसी भी अलंकार-प्रेमी हैं। 'अलंकार' शब्द लालित्य-वाचक है।[7] काव्य शब्दार्थमय है। अतः उक्ति-वैचित्र्य और अर्थ-वैचित्र्य के विविध सौंदर्य-रूपों की विवेचना की गयी है। एकाध नभ्रांत आलोचकों का अंधविश्वास है कि रस-सिद्धांत भारतीय काव्यशास्त्र का सर्वाधिक व्यापक सिद्धांत है, उनकी कल्पना है कि संस्कृत के अलंकारवादी आचार्य रस-विरोधी हैं। वास्तविकता यह है कि कोई भी अलंकारवादी रस-विरोधी नहीं है। रसवादियों से

---

१ स्वभावोक्तिश्च जातिश्चेत्याद्या सालंकृतिर्यथा।—काव्यादर्श, २।८

२ हर्षचरित, प्रास्ताविक श्लोक ८, कादंबरी, प्रास्ताविक श्लोक ६

३ रामचरितमानस, १।१०। छंद, १।१४। प्रथम दोहा

४. देखिए: भारतीय साहित्यशास्त्र, पृ० २४८

५ ध्वन्यालोकलोचन, १।१, पृ० १७-१८

६ रामचरितमानस, १।२६४।१

७. सौन्दर्यमलंकार: ।—काव्यालंकारसूत्र, १।१।२

अलकारवादियो का मतभेद रस के आपेक्षिक महत्त्व के विषय में है। अलकारमत की व्यापकता सर्वविदित है। सस्कृत-काव्यो की व्यावहारिक समीक्षा टीकाओ मे उपलब्ध है। उनमे सर्वाधिक महत्त्व अलकारो को दिया गया है। काव्य-शास्त्र मे भी सर्वाधिक विवेचन अलकारो का ही हुआ है। रसवादी रस को ध्वनि का एक भेद मानता है। व्यापक ध्वनि का व्याप्य रस सर्वाधिक व्यापक कैसे हो सकता है ?

ध्वनि-सिद्धात मे अलकार को गौण स्थान दिया गया है। उसका अलकार्य ध्वनि है। वह रसादि का उत्कर्ष-हेतु है, शोभावर्धक है। अत काव्य का अनिवार्य तत्त्व नही है। परतु काव्य के सौंदर्य-वर्धन मे उसकी उपयोगिता असदिग्ध है। यही कारण है कि 'काव्यप्रकाश', 'साहित्यदर्पण', और उत्तरकालीन 'रसगगाधर' के सदृश ग्रथो का बहुत बडा भाग अलकार-निरूपण मे लगाया गया है। मध्यकालीन हिंदी-आचार्यों ने अलकारो को प्रतिष्ठित पद दिया है। केशवदास तो कट्टर अलकारवादी थे। भक्त कवि तुलसी ने भक्तिरस को अलकार्य मानकर अलकारो को उसके शोभावर्धक धर्म के रूप मे ही स्वीकार किया है। सुकवियो की भा सब-भूषण-भूषित विचित्र भणिति को राम-नाम के बिना शोभाहीन[1] कहने का यही तात्पर्य है।

६ **गुण-सनिवेश** गुणो के स्वरूप और महत्त्व के विषय मे दो मुख्य मत हैं। १. गुण काव्य के शोभा-विधायक धर्म हैं। उनके बिना काव्य की शोभा सभव नही है। अलकारो का सबध भी काव्य-शोभा से है, किंतु वे गुण-कृत शोभा को केवल उत्कर्ष प्रदान करते हैं, अत अपरिहार्य नही हैं।[2] गुणो की सख्या दस है। वे शब्दगत भी हो सकते हैं और अर्थगत भी।[3] इस मत के अनुसार प्रतिपादित गुण निर्विवाद रूप से कला-पक्ष के अतर्गत आते हैं। २. गुण रस के धर्म हैं, शब्दार्थ के नही। यह और बात है कि समुचित वर्णों द्वारा उनकी व्यजना होती है। गुणो और अलकारो मे तात्त्विक भेद है। गुण अगी रस पर आश्रित है, वे रस के उत्कर्ष-हेतु हैं, और रस से उनका नित्य-सबध है। अलकार अग-रूप शब्दार्थ पर आश्रित है, वे रस के उपकारक मात्र हैं, और काव्य मे उनकी सत्ता अनिवार्य नही है। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से गुण रसानुभूति की हार्दिक भूमिका प्रस्तुत करते हैं। गुण तीन ही हैं। शृगार, करुण और शात मे चित्त की आह्लाद-रूपा द्रुति-अवस्था **माधुर्य** है। वीर, वीभत्स और रौद्र मे चित्त की विस्तार-रूपा दीप्ति-अवस्था **ओज** है। सभी रसो मे चित्त की प्रसन्नता **प्रसाद** है। इस प्रकार माधुर्य और ओज परस्पर प्रतिद्वद्वी हैं, प्रसाद की स्थिति सर्वत्र विहित है।[4] ध्वनिवादियो के इस मत के अनुसार गुण को रस का धर्म और मानसिक स्थिति मान लेने पर उसे कला-पक्ष का अग मानना सगत नही है। परतु, इन आचार्यो ने भी गुणो को लक्षणा के द्वारा शब्दार्थ का धर्म मान

---

१. रामचरितमानस, १।१०।२, ५।३२।२

२. काव्यालकारसूत्र, ३।१।१-३ और उन पर वृत्ति

३. ओज, प्रसाद, श्लेष, समता, समाधि, माधुर्य, सौकुमार्य, उदारता, अर्थव्यक्ति और कांति।
—देखिए काव्यालकारसूत्र, ३।१।४–३।२।१५

४ ध्वन्यालोक, २।६-१० और उस पर लोचन, काव्यप्रकाश, अष्टम उल्लास, साहित्यदर्पण, अष्टम परिच्छेद

लिया है।[1] अत इस दृष्टि से भी कला-पक्ष के अतर्गत उनका समावेश उचित है।

तुलसी को कौन-सा मत मान्य है? 'भनिति मोरि सब गुन रहित'[2] मे उन्होने गुण का प्रयोग काव्य की समस्त सौंदर्य-विधायिनी विशेषताओ के लिए किया है। पूर्वोक्त 'धुनि अवरेब कवित गुन जाती' और 'कवित दोष गुन विविध प्रकारा' मे प्रयुक्त **गुण** की सगति उपर्युक्त दोनो मतो के साथ ठीक बैठ जाती है। अत समन्वयवादी तुलसी को उक्ति-वैचित्र्य के केंद्र-बिदु से पहला मत, और रस की दार्शनिक व्याख्या के दृष्टिकोण से दूसरा मत भी स्वीकार्य होता है। टीकाकारो ने 'गुन जाती' का अर्थ 'गुण-समूह' किया है। 'बिबिध प्रकारा' भी बडी सख्या का सूचक है। इस प्रकार पहले मत की ओर उनका कुछ अधिक झुकाव दिखायी पडता है।

७ **दोष-परिहार**. सपूर्ण सृष्टि गुण-दोष-मयी है।[3] कवि की सृष्टि उसी का एक अश है। काव्य के गुण-दोष चतुर भावक की दृष्टि मे आये विना नही रह सकते। यह मानव-स्वभाव है कि उसकी दृष्टि गुणो की अपेक्षा दोषो पर अधिक जाती है। तुलसी- दास को इस तथ्य का परिज्ञान है। खलो के व्याज से उन्होने इसकी ओर सकेत भी कर दिया है।[4] इसलिए निपुण कवि अपने काव्य को दोष-मुक्त रखने का प्रयत्न करता है। दोष-रहित रचना करने वाला कवि वदनीय है

बर्दौं मुनिपद कजु रामायन जेहिं निरमएउ।
सखर सुकोमल मजु दोष रहित दूषन सहित॥[5]

गुण और दोष मे विरोध-भाव है। 'गुण' का विलोम 'दोष' है। भरत[6] ने दोषो के विपर्यय को गुण कहा था, वामन[7] ने गुणो के विपर्यय को दोष कहा है। 'दोष' का व्युत्पत्त्यर्थ है विनष्ट, भ्रष्ट क्षतिग्रस्त या कलकित करने वाला। समाज ने औचित्य के कुछ मानदड बना रखे हैं। उनकी अवहेलना दोष है। गुण-विषयक उपर्युक्त दोनो मतो के अनुसार दोष का भी निरूपण किया गया है। १ काव्य-शोभा के विघातक तत्त्व दोष हैं उनके दस भेद हैं पाँच शब्द-दोष हैं[8] और पाँच अर्थ-दोष[9]। दोषो का साक्षात् सबध शब्दार्थ-नियोजन से है। अत उनके भाव से काव्य-कला की हानि और अभाव से सौंदर्य-वृद्धि होती है। २ दोष तत्त्वत रस के अपकर्षक हैं। रस अर्थ पर आश्रित है और अर्थ

---

१. गुणवृत्त्या पुनस्तेषा वृत्ति शब्दार्थयोर्मता।—काव्यप्रकाश, ८।७१
एषा शब्दगुणत्व च गुणवृत्त्योच्यते बुधै।—साहित्यदर्पण, ८।१
२. रामचरितमानस, १।६
३ रामचरितमानस, १।६
४ जे परदोष लखहि सहसाँखी।—रामचरितमानस, १।४।२
सहस नयन परदोष निहारा।—रामचरितमानस, १।४।६
हँसिहहि कूर कुटिल कुबिचारी। जे परदूषन भूषन धारी॥—रामचरितमानस, १।८।५
५. रामचरितमानस, १।१४ घ
६. नाट्यशास्त्र, १६।६६
७ काव्यालकारसूत्र, २।१।१
८ असाधु, श्रुतिकटु, ग्राम्य, अप्रतीत, अनर्थक—काव्यालकारसूत्र, २।१।४-६
९ अन्यार्थ, नेयार्थ, गूढार्थ, अश्लील, क्लिष्ट—काव्यालकारसूत्र, २।१।१०-२१

शब्दो पर । अत शब्दार्थ-गत दोषो की भावना भी सगत है ।[1] इस प्रकार इस मत में भी कला-पक्ष के साथ दोषो का सबध स्वीकार्य है । उनके पाँच भेद बतलाये गये है पद-दोष, पदाश-दोष, वाक्य-दोष, अर्थ-दोष और रस-दोष । उनके भी अनेक उपभेद हैं ।[2] 'कबित दोष गुन बिबिध प्रकारा' मे निर्दिष्ट विविध प्रकार के दोषो से तुलसी का तात्पर्य व्यापकरूपेण सभी प्रकार के दोषो से है ।

८ **चित्रात्मकता :** सभी ज्ञानेंद्रियो मे नेत्र श्रेष्ठ है । रूप के प्रति आकर्षण नेत्र-वान् प्राणियो की नैसर्गिक विशेषता है । जिस कला से नेत्र-समेत अनेक ज्ञानेंद्रियो की तृप्ति होती है, वह अधिक रमणीय है । नाटय-कला की इसी अतिशयता के कारण 'काव्येषु नाटक रम्यम्' की लोकोक्ति चल पडी । श्रव्य-काव्य मे दृश्य-विधान की अपेक्षित सपूर्ति कल्पना के द्वारा की जाती है । प्रतिभावान् कवि मानस-लोचनो से प्रतिपाद्य विषय का साक्षात्कार करके चित्रात्मक शैली मे उसका निरूपण करता है और सहृदय भावक प्रातिभ नेत्रो से उसे ग्रहण करके आनदित होता है ।[3] काव्य मे अमूर्त के मूर्तीकरण का यही रहस्य है । अचेतन के चेतनीकरण और अमानव के मानवीकरण द्वारा कवि उसके हृदय-सवादी क्रिया-कलाप का रूपाकन करके चित्र-विधान को और भी अधिक सजीव बना देता है । आगमनात्मक विधि से तुलसी के काव्य का अध्ययन करके हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि उन्होने चित्र-योजना को काव्य-कला का सौंदर्य-विधायक तत्त्व माना है । 'भनिति बिचित्र' से भी इस सिद्धात की मान्यता सूचित होती है ।

९ **प्रबध-कल्पना .** 'छद प्रबध अनेक बिधाना' मे 'प्रबध' शब्द प्रबध-काव्य के परिसीमित अर्थ का वाचक नही है । तुलसी ने 'रामचरितमानस' को 'निबध' और उसके प्रत्येक सोपान को 'प्रबध' कहा है ।[4] वस्तुत 'प्रबध' का अर्थ है रचना, अर्थात् काव्य-रूप । उसके अतर्गत सामान्यत स्वीकृत प्रबध, निबध और मुक्तक (गीतिकाव्य-समेत) सभी भेद समाविष्ट हैं । 'जो प्रबध बुध नहिं आदरहीं' और 'कथा प्रबध बिचित्र बनाई' से भी इस निष्कर्ष का समर्थन होता है । प्रबध-काव्य 'रामचरितमानस' की निबध एव मुक्तक से व्यावृत्ति करने के लिए भेदक-शब्द 'कथा' का प्रयोग किया गया है । तुलसी ने उक्त तीनो ही प्रकार की रचनाएँ की हैं । प्रत्येक काव्य-रूप की अपनी निजी विशेपताएँ हैं । उनके उचित निर्वाह से काव्यकला का सौंदर्य निखरता है ।

१०. **छद-विनियोग .** मध्ययुगीन हिंदी-कविता पद्यबद्ध ही थी । अत तुलसी की दृष्टि मे छदो का विशेष महत्त्व है । 'छद प्रबध अनेक बिधाना' मे उन्होने छदो के विभिन्न प्रकारो की ओर सकेत किया है। उनके अनेक भेदोपभेद हैं । उनका सक्षिप्त चक्र

---

१. काव्यप्रकाश, ७।४९, साहित्यदर्पण, ७।१
२. देखिए काव्यप्रकाश, सप्तम उल्लास, साहित्यदर्पण, सप्तम परिच्छेद ।
३. उघरहिं बिमल बिलोचन ही के ।—रामचरितमानस, १।१।४
ज्ञान नयन निरखत मन माना ।—रामचरितमानस, १।३७।१
४. रामचरितमानस, १।१।श्लोक ७, १।३७।१, तुलना करके देखिए .
प्रत्यक्षरश्लेषमयप्रबन्धविन्यासवैदग्ध्यनिधिर्निबन्धम् ।
—वासवदत्ता, ६, हर्षचरित का इन्ट्रोडक्शन, पृ० १३

इस प्रकार है[1]
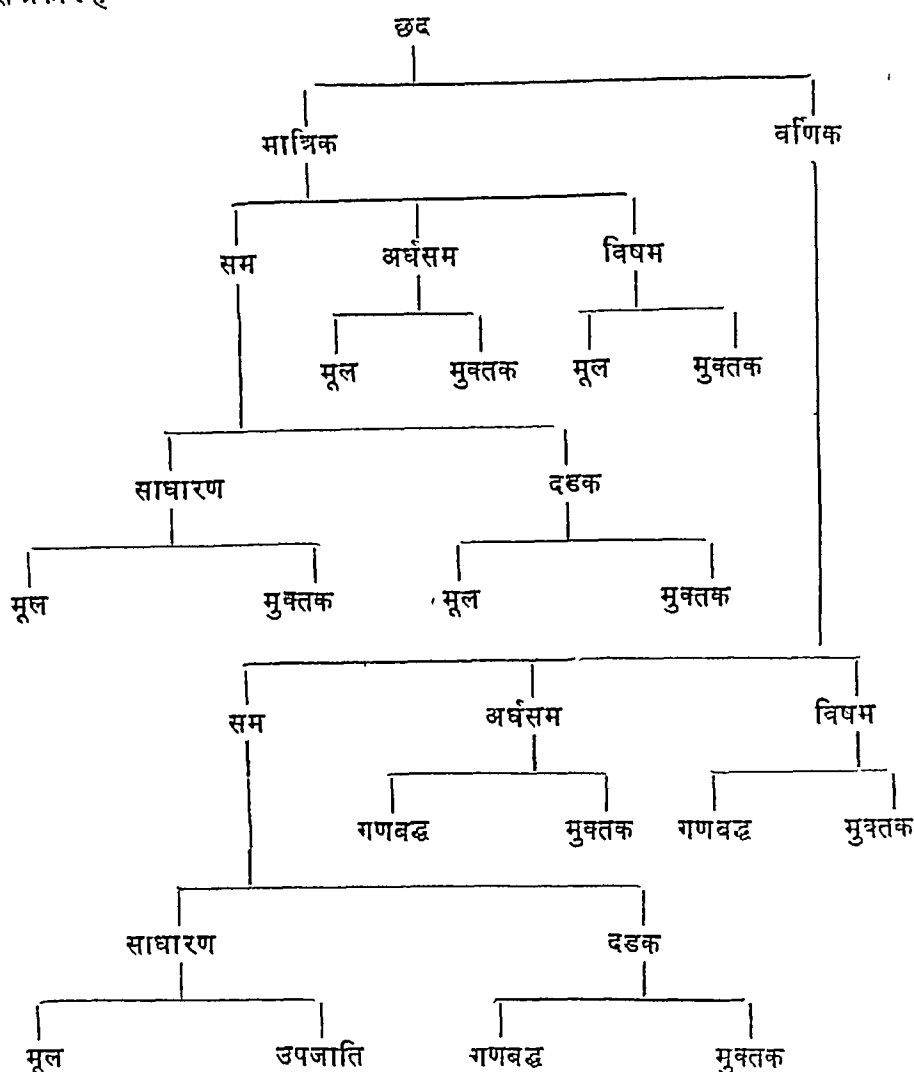
पिंगल-ग्रथो मे सैकडो प्रकार के मात्रिक और वर्णिक छदो का सोदाहरण ,निरूपण किया गया है। उनके उचित विनियोग से कविता मे लालित्य आता है, अपेक्षित लय-प्रवाह से भाव-धारा अधिक प्रभावशालिनी हो जाती है, अत्यानुप्रास से चमत्कार बढ जाता है। छदो के यति-भग, गति-भग आदि दोष कविता के कलात्मक सौंदर्य को क्षति पहुँचाते हैं।

सभी छद सभी प्रकार के भावो की व्यजना के उपयुक्त नहीं होते। उदाहरण के लिए द्रुतविलवित अथवा हसगति छद दीप्तिप्रधान रौद्र या भयानक रस के अनुकूल

---

१ पिंगल-प्रकाश, पृ० ५९

नही है, वे माधुर्य-विशिष्ट करुण या शृगार रस की निबधना के अधिक उपयुक्त हैं। काव्यकला का मर्मज्ञ कवि अपने वर्ण्य भावो के अनुसार ही छदो का चुनाव करके अपनी अभिव्यजना को सशक्त और रमणीय बनाता है।[1] तुलसी ने अपने युग मे प्रचलित सभी प्रमुख छद-शैलियो का प्रयोग किया है।[2] उन्होने छदो और भावो के सामजस्य का पूरा ध्यान रखा है, जैसे 'रामललानहछू' आदि मे मगलगीतो के लिए हसगति(सोहर)और 'कवितावली' मे लकादहन का भयानक दृश्य अकित करने के लिए घनाक्षरी की योजना की गयी है।

११ **राग-तान-बंधान :** तुलसी ने गीति-काव्य भी लिखा है जो इयत्ता और ईदृक्ता की दृष्टि से पर्याप्त है। परतु, उन्होने सगीत का सैद्धातिक उपस्थान नहीकिया है। गीत-रचना के क्रम मे सगीतशास्त्रीय चर्चा की गुजाइश नही थी, और 'रामचरित-मानस' की प्रस्तावना मे उसके सनिवेश का कोई तुक नही था। केवल 'गीतावली' के एक पद मे सगीत-मग्न नर-नारियो का वर्णन करते हुए उन्होने प्रसगवश 'राग तान बधान' का उल्लेख किया है। उससे गीत-कला के प्रति उनकी जागरूकता प्रकट होती है। राग गीत का प्राण-तत्त्व है। वह अपनी माधुरी से भावक के चित्त को मुग्ध और वशीभूत कर लेता है। चित्त-रजन के कारण ही उसकी सज्ञा 'राग' है। गान मे तान के बिना राग को निस्सार माना गया है।[3] छदो की भाँति रागो की भी भावानुकूलता अपेक्षित है। अत कला-कुशल गीतकार भावाभिव्यक्ति के उपयुक्त राग-रागिनियो का अनुसरण करते हुए गीतो का निर्माण करता है।

१२. **भाषा-सौष्ठव :** कविता का माध्यम भाषा है, इसलिए उसका कलात्मक सौंदर्य मुख्यतया भाषा-सौष्ठव पर निर्भर है। तुलसी ने जिस 'सुभापा' का उल्लेख किया है उसमे उक्ति-सबधी (शब्दार्थ-सतुलन, ध्वनि, वक्रोक्ति, जाति, अलकार और गुण का) उपर्युक्त लालित्य-विधान समाविष्ट है। उनके अतिरिक्त भी, भाषा की सुष्ठुता के लिए कतिपय गुण अपेक्षित हैं। १ **औचित्य :** पात्र, भाव और वर्ण्य वस्तु के औचित्यानुसार प्रयोग, २ **प्रांजलता** अमायिकता एव असदिग्धता, ३. **धारावाहिकता,** ४ **सटीकता :** व्यजना मे पूर्णत समर्थ नपे-तुले शब्दो का विन्यास, ५ **लोकधर्मिता :** लोक के साँचे मे ढले हुए शब्दो, न्यायो, मुहावरो और कहावतो का व्यवहार, ६. **नूतनशब्द-विधान .** सशक्त अर्थाभिव्यक्ति के लिए रूढि से भिन्न नवीन शब्दो का निर्माण।

काव्य-भाषा . तुलसीदास के युग मे 'भाषा' अर्थात् जन-भाषा की कविता विद्वानो की दृष्टि मे समादरणीय नही थी। सस्कृत के पडित भाषा-काव्य को निकृष्ट समझते थे। 'भाषा भनिति', 'भनिति भदेस', 'गिरा ग्राम्य' आदि उक्तियो द्वारा तुलसी ने युग की भाषा-विषयक इस ओछी धारणा का सकेत किया है।[4] उनके समकालीन आचार्य-कवि

---

१ काव्ये रसानुसारेण वर्णनानुगुणेन च।
कुर्वीत सर्ववृत्ताना विनियोग विभागवित् ॥—सुवृत्ततिलक, ७

२ देखिए इस ग्रथ का पृष्ठ १३७

३ यथा तान विना राग —भामिनीविलास, १।११९

४ रामचरितमानस, १।९।२, १।१०।५, १।१० ख

केशवदास ने तो अपने को 'भापा' मे काव्य-रचना करने के कारण 'मदमति' कहकर कोसा भी है

भाषा वोलि न जानई जिनके कुल को दास।
भाषा-कवि भो मदमति तिहि कुल केसवदास ॥[1]

लोकसग्रहाभिलाषी तुलसी का दृष्टिकोण उदार था। उन्होने काव्य-निर्माण के लिए सस्कृत भापा को आवश्यक नहीं माना। उनके मतानुसार, यदि कवि मे भाव की सच्चाई है तो वह लोक-भापा मे भी सरस रचना कर सकता है

का भाषा का सस्कृत प्रेम चाहिए सांच।[2]

कुछ ऐसी ही वात राजशेखर ने भी शुद्ध काव्यदृष्टि से कही है। 'भापा' अर्थात् प्राकृत भापा मे 'कर्पूरमजरी' की रचना करते समय उन्हे सस्कृत-प्रेमी भापा-विरोधियो का सामना करना पडा होगा, जिसके कारण प्राकृत के पक्ष-पोषण मे उन्हे भी सफाई देनी पडी

अत्थविसेसा ते चिअ सद्दा ते चेअ परिणमता वि।
उत्तिविसेसो कव्व भासा जा होइ सा होउ ॥[3]

जनसाधारण के लिए उनकी भापा मे की गयी रचना ही उपादेय है। काव्य की लोकप्रियता के लिए भापा का सरल होना आवश्यक है

सरल कवित कीरति बिमल सोइ आदरहिं सुजान।
सहज वयर विसराइ रिपु जो सुनि करहिं बखान ॥[4]

१३. अन्य युक्तियाँ 'जुगुति मजु मनि सीप सुहाई' और 'जुगुति वेधि पुनि पोहिअहिं' मे युक्ति का व्यवहार कवि ने व्यापक अर्थ मे किया है। उसका तात्पर्य है कलात्मक विधान के कौशलपूर्ण उपाय। कला के जिन तत्त्वो की ऊपर चर्चा की गयी है वे युक्ति के ही विशिष्ट प्रकार हैं। काव्य की चारुता के लिए कवि अनेक अन्य युक्तियो का भी अवलवन करता है, जैसे प्रसग-कल्पना, सवाद-योजना, व्यास-समास-शैली का प्रयोग, 'शब्दार्थ-हरण'[5] आदि। तुलसी की उक्तियो से इन युक्तियो का सकेत मिलता है[6]

१ कथा प्रवध विचित्र वनाई।
२ सुठि सुदर सवाद वर विरचे वुद्धि विचारु।
३ व्यास समास स्वमति अनुरूपा।
४ नानापुराणनिगमागमसमत यद्रामायणे निगदित क्वचिदन्यतोऽपि।
स्वात सुखाय तुलसी रघुनाथगाथाभापानिवधमतिमजुलमातनोति ॥

---

१ कविप्रिया, २।१७
२ दोहावली, ५७२
३ कर्पूरमजरी, १।७ (प्राकृत में भी सस्कृत की-सी विशिष्ट अर्थ-योजना होती है, रूप-परिवर्तन के बावजूद वे ही शब्द रहते हैं। उक्तिविशेष ही काव्य है, भापा चाहे जो हो।)
४ रामचरितमानस, १।१४; तुलना कीजिए
विविक्तवर्णाभरणा सुखश्रुति प्रसादयन्ती हृदयान्यपि द्विषाम्।—किरातार्जुनीय
५ शब्दार्थ-हरण के लिए देखिए काव्यमीमासा, अ० ११-१२-१३
६ रामचरितमानस, १।३३।१, १।३६ ७।९२।१, १।१। श्लोक ७

'त्रिचित्र', 'सुठि सुदर' और 'अति मजुल' से कला-सौदर्य का निर्देश किया गया है। प्रवध-काव्य में प्रसग-कल्पना कथा की शृखला मिलाने और वस्तु-विन्यास को रमणीय बनाने के लिए की जाती है। मुक्तक मे प्रसगोद्भावना से चित्ताकर्षक परिवेश की सृष्टि होती है। उपयुक्त सवादो की योजना काव्य मे रोचकता, नाटकीयता आदि गुणो का विधान करती है। काव्य को सरस बनाये रखने और नीरसता से बचाने के लिए, अधिक सरस वस्तु का विस्तार और कम सरस का सक्षिप्त वर्णन वाछनीय है। 'व्यास समास' का यही अभिप्राय है। पूर्ववर्ती कवियो द्वारा प्रयुक्त शब्द और अर्थ का उपनिवधन कवियो का स्वभाव है। निपुण कवि गृहीत शब्दार्थ को अपनी प्रतिभा द्वारा युक्तिपूर्वक सुदरतर रूप मे प्रस्तुत करता है। इसी मे उसकी काव्य-कला का चमत्कार है।

काव्य मे प्रतिपादित वस्तु और प्रतिपादन-शैली को लक्ष्य करके यह प्रासगिक प्रश्न उठाया जा सकता है कि भाव-पक्ष का अपेक्षाकृत अधिक महत्त्व है अथवा कला-पक्ष का। इस विषय मे भी तुलसीदास समन्वयवादी हैं। उनके मतानुसार काव्य मे दोनो का समान महत्त्व है। 'भनिति भदेस वस्तु भलि बरनी' आदि मे प्रतिपाद्य वस्तु को, 'सिअनि सुहावनि टाट पटोरें' आदि मे प्रतिपादन-कला को, और 'जुगुति वेधि पुनि पोहिअहिं रामचरित बर ताग' आदि मे दोनो को गौरव देकर उन्होने दोनो की समान महत्ता स्वीकार की है।[1] शब्द-अर्थ के अभेद-निरूपण और मानस-रूपक-वर्णन से भी दोनो की समानता ध्वनित होती है।

रचना-प्रक्रिया

तुलसीदास ने अपने भक्ति-विशिष्ट दृष्टिकोण से काव्यरचना-प्रक्रिया का स्पष्ट निर्देश किया है। उनकी उक्तियाँ भक्त-कवि की अनुभूति और उसकी काव्य-रचना से सवद्ध हैं। उनमे से भक्ति-भावना को अलग कर के शुद्ध काव्य-सिद्धात की दृष्टि से विचार किया जा सकता है। निम्नाकित पक्तियो से अभिव्यक्त है कि प्रतिभा[2] का उदय होने पर भाग्यशाली[3] कवि की दिव्य दृष्टि का उन्मेप होता है, और उसके मानस-लोचनो के समक्ष शब्दार्थ-समूह प्रतिभासित होने लगते हैं[4]

१ श्रीगुरपद नख मनिगन जोती। सुमिरत दिव्य दृष्टि हिअँ होती ॥
दलन मोहतम सो सुप्रकासू। बडे भाग उर आवहिं जासू ॥
उघरहिं बिमल बिलोचन ही के। मिटहिं दोष दुख भव रजनी के ॥
सूझहिं रामचरित मनि मानिक। गुपुत प्रगट जहँ जो जेहि खानिक ॥
२ सभु प्रसाद सुमति हिअँ हुलसी। रामचरितमानस कवि तुलसी ॥

---

१. रामचरितमानस, १।१०।५, १।१४।६, १।११
२ या शब्दग्राममर्थसार्थमलकारतन्त्रमुक्तिमार्गमन्यदपि तथाविधमधिहृदय प्रतिभासयति सा प्रतिभा।—काव्यमीमासा, पृ० ११
३. प्रवर्तते नाकृतपुण्यकर्मणां प्रसन्नगम्भीरपदा सरस्वती।—किरातार्जुनीय
४ रामचरितमानस, १।१।३-४, १।३६।१

अपने मूल रूप मे काव्य कवि की मानसी सृष्टि है।[१] उसकी वाह्य अभिव्यक्ति वाद मे हुआ करती है। इस विषय मे शिव-विषयक उक्ति ध्यान देने योग्य है

रचि महेस निज मानस राखा। पाइ सुसमउ सिवा सन भाखा ॥[२]

श्यामदेव का मत है कि काव्य-रचना के लिए समाधि (मन की एकग्रता) आवश्यक है।[३] तुलसीदास उनसे सहमत हैं

सुमति भूमि थल हृदय श्रगाधू। वेद पुरान उदधि घन साधू॥
वरषहि राम सुजस वर वारी। मधुर मनोहर मगलकारी॥
मेघा महि गत सो जल पावन। सकिलि स्रवन मग चलेउ सुहावन॥
भरेउ सुमानस सुथल थिराना। सुखद सीतरुचि चारु चिराना॥[४]

इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि साहित्य के अनुशीलन (अथवा लोक के अवेक्षण) के फलस्वरूप विषय के प्रभाव से कवि का हृदय भाव-विभोर हो जाता है, और चित्त के समाहित होने पर कविता के रूप मे उस भाव की अभिव्यक्ति होती है। इसी को वर्ड्स्वर्थ ने समाहित दशा मे अनुवुद्ध मनोवेगो का स्वत स्फूर्त उच्छलन कहा है।[५]

मनोदृष्टि से महान् विषय का साक्षात्कार होने पर कवि की वुद्धि निर्मल हो जाती है, हृदय आनद से उल्लसित हो उठता है। जब भाव हृदय मे नही समाता तब वह कविता के माध्यम से उमड पडता है

श्रस मानस मानस चष चाही। भइ कवि वुद्धि विमल श्रवगाही॥
भएउ हृदयँ श्रानंद उछाहू। उमगेउ प्रेम प्रमोद प्रवाहू॥
चली सुभग कविता सरिता सो। राम बिमल जस जल भरिता सो॥
सरजू नाम सुमगल मूला। लोक वेद मत मजुल कूला॥[६]

मानस के उपमान-रूप मे मानसरोवर और कविता के उपमान-रूप मे सरयू की निवघना अवेक्षणीय है। जिस प्रकार सरयू मानस (ब्राह्म सर) से नि सृत धारा है,[७] उसी प्रकार कविता मानसी रचना है। तुलसी ने 'विनयपत्रिका' मे वतलाया है कि विश्व मनोनिर्मित है

विटप मध्य पुतरिका सूत महँ कचुक विनहिं वनाये।
मन महँ तथा लीन नाना तनु प्रगटत श्रवसर पाये॥[८]

यह सिद्धात काव्य-रचना पर विशेष रूप से लागू होता है।

---

१. अपारे काव्यससारे कविरेव प्रजापति ।
यथा वै रोचते विश्व तथेद परिवर्तते ॥—अग्निपुराण, ३३९।१०

२. रामचरितमानस, १।३५।६

३ देखिए काव्यमीमासा, पृ० ११

४ रामचरितमानस १।३६।२, ४-५

५ दि स्टडी ऑफ़ पोइट्री, पृ० २७

६ रामचरितमानस, १।३९।५-८

७ ब्राह्म सर कारणमाप्तवाचो वुद्धेरिवाव्यक्तमुदाहरन्ति ।—रघुवश, १३।६०

८ विनयपत्रिका, १२४।४

परतु, धर्मनिष्ठ तुलसी प्रत्येक मनोवेग के उच्छलन को आदर्श-कविता नही मानते। उनका मत है

हृदय सिधु मति सीप समाना। स्वाती सारद कहहिं सुजाना॥
जौं बरखै बर बारि विचारू। होहिं कबित्त मुकुता मनि चारू॥
जुगुति बेधि पुनि पोहिअहिं रामचरित बर ताग।
पहिरहिं सज्जन विमल उर सोभा अति अनुराग॥[1]

इस रूपक का तात्पर्य स्पष्ट है। वही काव्य श्रेष्ठ है जिसमें प्रेय भावो, श्रेय विचारो और कलात्मक युक्तियो का कमनीय समन्वय हो। निर्मलहृदय सहृदय उसी काव्य का प्रीति के साथ आदर करते हैं।

कवि और भावक

काव्य-सिद्धात-विवेचन के प्रसग मे कवि और भावक के ऐक्य पर विचार कर लेना भी अपेक्षित है। इस सबध मे दो प्रश्न विचारणीय हैं। पहला प्रश्न है क्या कवि भावक, और भावक कवि हो सकता है? दूसरे शब्दो मे, क्या एक ही व्यक्ति मे कारयित्री प्रतिभा और भावयित्री प्रतिभा दोनो का समुचित विकास सभव है? इस प्रश्न के उत्तर मे राजशेखर का कथन है कि अनेक प्राचीन आचार्यों ने कवि और भावक (समालोचक) मे अभेद स्वीकार किया है, किंतु कालिदास इसे नही मानते। कवित्व और भावकत्व एक-दूसरे से पृथक् हैं, क्योकि दोनो मे स्वरूप-भेद और विषय-भेद है। एक काव्य-रचना मे निपुण है, दूसरा उसके भावन मे प्रवीण है। एक व्यक्ति मे ही भिन्न गुणो का समन्वय कठिन है एक पत्थर स्वर्ण को उत्पन्न करता है, और दूसरा (कसौटी का पत्थर) उसकी परीक्षा करता है[2]। तुलसीदास ने भी अप्रत्यक्ष रूप से इसी का समर्थन किया है:

मनि मानिक मुकुता छबि जैसी। अहि गिरि गज सिर सोह न तैसी॥
नृप किरीट तरुनी तनु पाई। लहहिं सकल सोभा अधिकाई॥
तैसेहि सुकबि कबित बुध कहहीं। उपजहिं अनत अनत छबि लहहीं॥[3]

दूसरा प्रश्न है क्या कवि को स्वरचित कविता से रसानुभूति होती है या नही? तुलसीदास का मत है नही। अपनी रचना के द्वारा कवि को जो आनदानुभूति होती है, वह विश्रातचित्त की रसानुभूति से भिन्न सुखानुभूति है। 'स्वात सुखाय' से यही निष्कर्ष निकलता है। रसानुभूति के लिए 'स्वगतत्व' का तिरोभाव आवश्यक है। अपनी रचना को पढते समय कवि के मन मे उसके प्रति अपनेपन की भावना बनी रहती है। इससे साधारणीकरण मे बाधा पहुँचती है। दूसरा अकाट्य तर्क यह है कि रचनाकार को अपनी नीरस रचना भी अच्छी लगती है

---

१. रामचरितमानस, १।११

२ कश्चिद्वाच रचयितुमलं श्रोतुमेवापरस्तां कल्याणी ते मतिरुभयथा विस्मयं नस्तनोति।
नह्येकस्मिन्नतिशयवतां सन्निपातो गुणानामेकः सूते कनकमुपलस्तत्परीक्षाक्षमोऽन्यः॥
—काव्यमीमांसा, पृ० १४

३ रामचरितमानस, १।११।१-२

निज कवित्त केहि लाग न नीका। सरस होउ अथवा अति फीका।।[1]

जो रसाभाव मे भी रसानुभूति कर लेता है वह निश्चय ही रसानुभूति से शून्य है। उसे प्रमाण मानने मे कोई बुद्धिमत्ता नही है।

तुलसी का आदर्श

तुलसी ने भरत की भारती की जो विशेषताएँ बतलायी हैं वे उनकी कविता की भी विशेषताएँ हैं। वही उनका आदर्श है

१ हियँ सुमिरी सारदा सुहाई। मानस तें मुखपकज आई।।
विमल बिबेक धरम नय साली। भरत भारती मजु मराली।।[2]

२ सुगम अगम मृदु मजु कठोरे। अरथु अमित अति आखर थोरे।।
ज्यों मुख मुकुर मुकुर निज पानी। गहि न जाइ अस अद्भुत बानी।।[3]

यह तथ्य लक्ष्य करने योग्य है कि तुलसी के परवर्ती बहुसख्यक कवियो ने उनके प्रतिपाद्य विषय एव प्रतिपादन-शैली का अनुकरण किया है, अनेक टीकाकारो, आलोचको और अनुसधाताओ ने उनकी कविता के मर्म को यथाशक्ति समझने-समझाने का प्रयास किया है, परतु तुलसीदास की अद्भुत वाणी अभी तक गही नही जा सकी।

१ रामचरितमानस, १।८।६
२. रामचरितमानस, २।२९७।४
३. रामचरितमानस, २।२९४।१-२

७. भाव-पक्ष

तुलसीदास के कवित्व की सर्वाधिक प्रशस्य विशेषता यह है कि उनके काव्य मे प्रतिपाद्य विषय की महत्ता और प्रतिपादन-शैली की रमणीयता का अनुपम समन्वय है। जितना पुष्ट उसका भाव-पक्ष है उतना ही पुष्ट कला पक्ष भी। कवि ने अपनी विराट् भाव-योजना के लिए जिस विशाल फलक की अभिकल्पना की है उसे यथोचित निपुणता के साथ सँभाला है। उक्त दोनो पक्षो को एक-दूसरे से छिन्न-भिन्न करके काव्य-समीक्षा नही की जा सकती। एक के विवेचन मे दूसरे की विचार-चर्चा अनिवार्य है। सापेक्ष दृष्टि से पक्षविशेष का उद्घाटन करने के लिए दो अलग-अलग शीर्षको के अतर्गत उनका अध्ययन प्रस्तुत किया जा रहा है। इन दो अध्यायो मे व्यापक दृष्टि अपनायी गयी है। महत्त्वपूर्ण कृतियो के भाव-पक्ष और कला-पक्ष की विशद समीक्षा आगे की जाएगी।

तुलसी-साहित्य मे भाव-पक्ष का विधान मूलत दो दृष्टियो से किया गया है काव्य-दृष्टि से और मोक्ष-दृष्टि से। फुलवारी-प्रसग, लगभग सारा अयोध्याकाड, लका-दहन, अगद-रावण-सवाद, युद्ध-वर्णन आदि मे काव्य-दृष्टि की प्रधानता है। 'रामचरितमानस' और 'कवितावली' के उत्तरकाड, 'विनयपत्रिका' आदि मे मोक्ष-दृष्टि प्रधान है। तुलसी की लोक-दृष्टि सर्वत्र विद्यमान है। लौकिक जीवन की सुखमयता को लक्ष्य करके लिखे गये नीति-वचनो मे इस दृष्टि की प्रधानता पायी जाती है।

उनके सपूर्ण भाव-विधान का वर्गीकरण सात विभागो के अन्तर्गत किया जा सकता है १ कथावस्तु, २ पात्राकन, ३ रस-सामग्री, ४ वस्तु-वर्णन, ५ प्रकृति-चित्रण, ६ नीति निरूपण, और आध्यात्मिक विचार। यह विभाजन व्यावहारिक है। साहित्यिक विवेचन मे गणित की-सी विभाजन-रेखा नही खीची जा सकती। ये अग परस्पर-सबद्ध हैं। यहाँ सीमोल्लघन पर कोई प्रतिबध नही है। इन विभागो के भी उप-विभाग हैं। उनकी चर्चा यथास्थान की जाएगी।

कथा-वस्तु

तुलसीदास के काव्य मे पाँच प्रकार की कथाएँ मिलती हैं मुख्य कथा, प्रासगिक कथा, अवातर कथा, हेतु-कथा और अत कथा। प्रबध-काव्य 'रामचरितमानस', निबध-काव्य 'रामललानहछू' एव 'जानकीमगल' और मुक्तक-काव्य 'रामाज्ञा-प्रश्न', 'गीतावली', 'बरवैरामायण' और 'कवितावली' मे राम की मुख्य कथा का निरूपण है। 'पार्वतीमगल' मे शिव-पार्वती की और 'कृष्णगीतावली' मे कृष्ण की मुख्य कथाएँ वर्णित हैं। प्रासगिक कथा के दो रूप हैं पताका और प्रकरी। सुग्रीव और जटायु

के वृत्त क्रमश पताका और प्रकरी के प्रसिद्ध उदाहरण हैं। 'रामचरितमानस' की प्रस्तावना मे सती-मोह की, और उत्तरकाड मे काकभुशुडि की कथाएं अवातर कथाएँ है। उनका प्रयोजन राम-महिमा का प्रतिपादन है। रामावतार के हेतु समझाने के लिए 'रामचरितमानस' के आरभ मे जय-विजय, कश्यप-अदिति, जलधर, नारद, मनु-शतरूपा, और प्रतापभानु की हेतु-कथाओ की योजना की गयी है। तुलसी-साहित्य मे बहुत-सी अत कथाएं निर्दिष्ट हैं, उनका वर्णन नही किया गया है, जैसे शिवि, दधीचि, हरिश्चद्र, श्वान, शबूक आदि की कथाओ के सकेत।

मुख्य कथा के रूप मे तुलसीदास द्वारा किया गया इतिवृत्त-वर्णन तीन कथा-नायको पर केंद्रित है राम, शिव और कृष्ण। उनका मुख्य प्रतिपाद्य राम-चरित है। शिव और कृष्ण के वृत्त राम-चरित से सर्वथा स्वतत्र नही हैं। 'पार्वतीमगल' मे शिव-पार्वती-विवाह की कथा स्वतत्र दिखायी देती है, किंतु वह 'रामचरितमानस' की प्रस्तावना मे निबद्ध शिव-चरित के एक अश का परिवर्धित सस्करण है। राम अवतार मात्र नही हैं, वे अवतारी भी हैं। कृष्ण राम के ही अवतार हैं। अत उनकी अवतार-लीला भी रूपातर से राम की ही अवतार-लीला है। परतु, तुलसी के कीर्ति-विस्तार मे शिव-कृष्ण-वर्णन का विशेष योगदान नही है। उनके विश्वव्यापी यश का आधार उनकी रामकथा है।

तुलसी की रामकथा तुलसी ने रामकथा का व्यवस्थित निरूपण 'रामचरितमानस' मे किया है, अन्य कृतियो मे उसके विभिन्न प्रसगो का खडश वर्णन किया गया है। उन कृतियो की समीक्षा मे उनके कथानक पर भी विचार किया जाएगा। यहाँ पर तुलसी की राम-कथा की सामान्य विशेषताओ की चर्चा ही अभीष्ट है।

तुलसी के पूर्व रामकथा-विषयक प्रचुर वाङ्मय निर्मित हो चुका था। उसकी तीन परपराएं थी १ सस्कृत मे अभिलिखित ब्राह्मण-परपरा,[1] २ पाली मे परिरक्षित बौद्ध-परपरा,[2] और ३ विशेषतया प्राकृत-अपभ्र श मे उपलब्ध जैन-परपरा।[3] ब्राह्मण-परपरा मे लिखित ग्रथ ही तुलसी-साहित्य के स्रोत हैं। कुछेक स्थलो पर बौद्ध-जैन राम-कथाओ से तुलसी-वर्णित रामचरित का सादृश्य देखकर यह अनुमान कर लेना ठीक नही है कि तुलसी ने उनसे प्रभावित होकर वस्तु-ग्रहण किया है। दोनो के दृष्टिकोण मे तात्विक भेद है। बौद्ध और जैन अनीश्वरवादी, वेदनिंदक एव ब्राह्मण-व्यवस्था के विरोधी हैं। इसके

१ इतिहास वाल्मीकि-रामायण, महाभारत, हरिवश
पुराण अध्यात्मरामायण, विष्णुपुराण, वायुपुराण, भागवतपुराण, कूर्मपुराण, अग्निपुराण, नारदपुराण, ब्रह्मपुराण, गरुडपुराण, स्कदपुराण,, पद्मपुराण, विष्णुधर्मोत्तरपुराण, नृसिंहपुराण, शिवपुराण, देवीभागवतपुराण आदि तथा सत्योपाख्यान
काव्य रघुवश, भट्टिकाव्य या रावणवध, जानकीहरण, रामचरित, उदारराघव आदि
नाटक प्रतिमानाटक, अभिषेकनाटक, महावीरचरित, उत्तररामचरित, कुदमाला, अनर्घराघव, बालरामायण, महानाटक या हनुमन्नाटक, आश्चर्यचूडामणि, प्रसन्नराघव, दूतागद, उन्मत्तराघव, रामाभ्युदय आदि

२ दशरथ जातक, अनामक जातक, दशरथकथानम्

३. विमलसूरि पउमचरिय (प्राकृत), स्वयभू पउमचरिउ (अपभ्र श), गुणभद्र उत्तरपुराण (सस्कृत) पुष्पदत महापुराण (अपभ्र श), क्षेमेंद्र दशावतारचरित (सस्कृत)

प्रतिकूल, तुलसीदास ईश्वर आदि के प्रति परम निष्ठावान् हैं। इसीलिए उन्होने वेद-निंदक बुद्ध को 'निंदित' घोषित किया है।[1] बौद्ध-जैन-विचारधाराओ का ब्राह्मण-विचारधारा से बद्धमूल विरोध रहा है। अतएव उन्होने हिंदू-समाज मे समादृत राम-कथा को बहुत-कुछ विकृत रूप मे प्रस्तुत किया। हिंदुओ ने कुछ कम नही किया। उन्होने बौद्ध के 'बुद्ध' या 'बौद्ध' से 'बुद्धू' और 'देवाना पिय' से 'देवाना प्रिय' (महामूर्ख) तथा जैनो के 'नग्न' से 'नगा' और 'लुचित' से 'लुच्चा' का प्रचलन किया। ये शब्द अपने अपकृष्ट अर्थों मे आज भी प्रचलित हैं।

तुलसी-वर्णित राम-कथा को बौद्ध-जैन-रामकथाओ से मिलाकर देखने पर दोनो का अनुपेक्षणीय अतर सरलता से समझा जा सकता है। तुलसी की रामकथा के सूत्र हैं

१. भगवान् ने मनु-शतरूपा को वर दिया था कि मैं तुम्हारे पुत्र के रूप मे अवतार लेकर तुम सबको लीला का आनद दूंगा।

२ मनु-शतरूपा ने दशरथ-कौशल्या के रूप मे जन्म लिया। अयोध्यानरेश दशरथ के सात सौ रानियाँ थी।[2] उनमे तीन प्रमुख थी कौशल्या, कैकेयी और सुमित्रा। कौशल्या की कोख से राम प्रकट हुए। कैकेयी से भरत का, और सुमित्रा से लक्ष्मण तथा शत्रुघ्न का जन्म हुआ। अपनी बाल-लीलाओ से राम आदि ने सभी को आनदित किया।

३ राक्षसो से पीडित विश्वामित्र आये। उनकी याचना पर दशरथ ने राम-लक्ष्मण को उनके साथ कर दिया। मार्ग मे राम ने ताडका और सुबाहु का वध किया। विश्वामित्र ने उन्हे दिव्यास्त्र दिये।

४ सीता-स्वयवर का समाचार पाकर विश्वामित्र ने राम-लक्ष्मण को साथ लेकर मिथिला के लिए प्रस्थान किया। यात्रा के क्रम मे राम ने पाषाणी अहल्या का उद्धार किया।

५ वे जनकपुर पहुँचे। राम-लक्ष्मण ने घूम कर नगर की शोभा देखी। गुरु विश्वा-मित्र के आदेश से फूल लेने के लिए वे जनक की फुलवारी मे पहुँचे। माता की आज्ञा से गिरिजा-पूजन के लिए सीता वहाँ आयी। दोनो का साक्षात्कार हुआ।

६ स्वयवर मे उपस्थित राज-समाज शिव के धनुष को टस से मस नही कर सका। राम ने उसे तोडा। सीता ने उन्हे जयमाल पहनायी।

७. 'रामचरितमानस' मे लिखा है कि धनुर्भंग के अनतर ही क्रुद्ध परशुराम आये। उनसे वाद-विवाद हुआ। वे राम को विजयी मान कर लौट गये। जनक ने दशरथ के पास शुभ-समाचार भेजा। बारात आयी। राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न का क्रमश. सीता, उर्मिला, माडवी और श्रुतकीर्ति से विवाह हुआ। 'मानस' के पूर्व लिखित 'रामाज्ञाप्रश्न' तथा 'जानकीमगल' और 'गीतावली' मे राम-परशुराम की भेंट बारात की वापसी के समय

---

१ अतुलित महिमा वेद की तुलसी किये विचार।
जो निंदित निंदत भयो विदित बुद्ध अवतार॥—दोहावली, ४६४

२ पालागनि दुलहियन सिखावति सरिस सासु सत साता।—गीतावली, १।११०।२

मार्ग मे हुई है।[1] यह क्रम वाल्मीकि-रामायण,[2] अध्यात्मरामायण,[3] पद्मपुराण,[4] नारद-पुराण[5] आदि के अनुसार है। 'मानस' मे नाटकीय दृश्य-विधान,[6] मर्यादा-निर्वाह और अमगल-निवारण के उद्देश्य से कथा-क्रम मे परिवर्तन कर दिया गया।

८ अपनी वुढ़ौती का आभास पाकर दशरथ ने राम के यौवराज्याभिषेक का आयोजन किया। सरस्वती की प्रेरणा से मथरा ने अपनी स्वामिनी कैकेयी को उकसाया। कैकेयी ने वचनवद्ध दशरथ से दो वरदान माँगे १ भरत का राजतिलक, और २ राम का चौदह वर्ष के लिए वनवास। सीता तथा लक्ष्मण के साथ राम ने वन के लिए प्रस्थान किया।

९ सुमन्त्र के साथ रथ पर वे शृगवेरपुर पहुँचे। निषादराज गुह से भेंट हुई। सुमन्त्र को विदा कर गगा पार की। प्रयाग और वाल्मीकि-आश्रम से होकर चित्रकूट मे रहने लगे।

१० राम के वियोग मे दशरथ ने प्राण त्याग दिये। भरत ननिहाल से लौटे। माँ के आचरण पर उन्हे वडी ग्लानि हुई। वे राम को मनाकर लौटाने के लिए चल पडे। सारी अयोध्या उनके साथ उमड पडी।

११. राम के मार्ग का अनुसरण करते हुए भरत आदि चित्रकूट पहुंचे। जनक भी दलबल-सहित आ गये। राम को लौटाने के सारे प्रयत्न निष्फल सिद्ध हुए। उनकी पादुका लेकर भरत लौट आये।

१२ पचवटी मे रावण की वहन शूर्पणखा कामातुर होकर राम के पास आयी। उन्होने लक्ष्मण से उसके नाक-कान कटवा लिये। प्रतिशोध के लिए आई हुई खर-दूषण की समस्त सेना का राम ने सहार किया। शूर्पणखा रावणके पास गयी। रावण की प्रेरणा से मारीच सोने का मृग वना। राम उसके पीछे दौडे। अपने नाम की पुकार सुनकर लक्ष्मण भी उधर ही चल पडे। रावण सीता को हर ले गया।

१३ राम ने सीता की खोज आरभ की। हनुमान् के द्वारा राम और सुग्रीव की मैत्री हुई। राम ने सुग्रीव के अग्रज वालि को वृक्ष की ओट से मार कर सुग्रीव को किष्किधा का राजा वनाया। वानर-सेना सीता की खोज मे रवाना हुई। राम ने पहचान के लिए अपनी मुद्रिका हनुमान् को दी।

१४ हनुमान् समुद्र लाँघ कर लकापति रावण की 'अशोक' वाटिका मे सीता से मिले। उन्होने वाटिका उजाड दी, अक्षकुमार को मारा, लकादहन किया, और राम को समाचार दिया।

१५ वानर-सेना के साथ राम समुद्र-तट पर पहुंचे। रावण का अनुज विभीषण

---

१. रामाज्ञाप्रश्न, १।३।४, जानकीमगल, १९९, गीतावली, ७।३८।३
२. वाल्मीकि-रामायण, १।७४।१८-१।७६।२२
३ अध्यात्मरामायण, १।७।१-५०
४ पद्मपुराण, ६।२४२।१५५-१८०
५. नारदपुराण, २।७५।२१
६. देखिए प्रसन्नराघव, अक ४

राम की शरण मे आया। समुद्र पर पुल बाँधा गया। वालि-पुत्र अगद दूत बन कर रावण के पास गये। समझौता नही हुआ।

१६ युद्ध छिड़ा। राक्षस मरने लगे। मेघनाद की शक्ति से लक्ष्मण मूर्च्छित हो गये। हनुमान् सजीवन-बूटी लाये। मूर्च्छा दूर हुई। लक्ष्मण ने मेघनाद को और रामने कुभकर्ण तथा रावण को मारा।

१७ विभीपण का राजतिलक किया गया। आदर के साथ विभीपण सीता को ले आया। सीता की अग्नि-परीक्षा हुई।

१८ सीता-लक्ष्मण और विभीषण, सुग्रीव, हनुमान्, अगद आदि के साथ राम पुष्पक विमान से अयोध्या लौटे। उनका राज्याभिपेक हुआ। धर्मप्राण रामराज्य की प्रतिष्ठा हुई। राम ने अनेक अश्वमेध किये।

१९ 'रामचरितमानस'[1] मे उल्लेख है कि अयोध्या मे ही सीता ने दो सुदर पुत्रो लव और कुश को जन्म दिया। आदर्शवादी कवि ने मर्यादापरुपोत्तम आराध्य राम को सीता-निर्वासन के अवाछनीय कर्म से बचाने के लिए परपरा की उपेक्षा की है।

२० वाल्मीकि-रामायण, पुराणो, 'रघुवश', 'उत्तररामचरित' आदि के अनुसार अन्य कृतियो मे वर्णन है कि चरो के मुख से लोक-निंदा की बात सुनकर राम ने सीता को निर्वासित किया।[2] लक्ष्मण उन्हे वाल्मीकि के आश्रम मे छोड आये।[3] वही पर लव-कुश का जन्म और लालन-पालन हुआ।[4]

२१ राम ने शूद्र-तपस्वी शबूक का वध करके ब्राह्मण के मृत पुत्र को जीवित किया। ('रामाज्ञाप्रश्न' के षष्ठ सर्ग का पचम सप्तक)

२२ राम की राजसभा मे लव-कुश ने 'रामायण' का गान किया। वाल्मीकि सीता को ले आये। उन्हे पाकर राम प्रसन्न हुए। सीता धरती मे समा गयी।[5]

बौद्ध-रामकथा तुलसी-साहित्य मे निरूपित यह कथा बौद्ध-जैन-कथाओ से नितात भिन्न है। बौद्ध-रामकथा[6] की भिन्नता इस प्रकार है

१ दशरथ वाराणसी के राजा थे। उनकी बडी रानी से तीन सताने हुईं राम-पडित, लक्ष्मण और सीता। बडी रानी के मरने पर उन्होने दूसरी रानी को अग्रमहिषी बनाया। उससे भरत का जन्म हुआ। दूसरी कथा के अनुसार चार रानियो से राम आदि चार पुत्र उत्पन्न हुए।

२ एक बार दशरथ बीमार पडे। उन्होने राम का राज्याभिपेक कर दिया। अग्रमहिषी ने अपने पुत्र के लिए राज्य माँगा। दशरथ ने षड्यत्रो के भय से राम-लक्ष्मण को वन भेजा। ज्योतिषियो के अनुसार उनकी आयु बारह वर्ष शेप थी। उन्होने पुत्रो को

१. रामचरितमानस, ७।२५।३
२. गीतावली, ७।२७; रामाज्ञाप्रश्न, ६।६।५, ६।७।२; कवितावली, ७।६
३ गीतावली, ७।२८
४ गीतावली, ७।३४-३६, रामाज्ञाप्रश्न, ६।७।३
५ रामाज्ञाप्रश्न, ६।७।४-६
६ देखिए राम-कथा, पृ० ५२-५६

बारह वर्ष बाद लौटकर अपना अधिकार प्राप्त करने का निर्देश किया। एक अन्य कथा के अनुसार राजा राम अपने राज्यलोभी मामा के भय से वनवासी हुए।

३ नौ वर्ष बाद दशरथ की मृत्यु हो गयी। भरत ने राजा बनने से इनकार किया। वे रामपंडित से मिले। राम लौटे नही। उनकी तृणपादुकाएं (कथांतर के अनुसार चर्म-पादुका) लेकर लक्ष्मण और सीता के साथ भरत वापस आये। अन्याय होने पर वे पादुकाएं एक-दूसरी पर आघात करती थी।

४ तीन वर्ष बाद वाराणसी लौटकर रामपंडित ने अपनी बहन सीता से विवाह किया। सोलह हजार वर्ष तक राज्य करके वे स्वर्ग सिधारे।

बौद्ध-रामकथा बौद्ध-धर्मदर्शन के रंग मे रँगी हुई है। अपने पूर्वजन्म मे शुद्धोदन दशरथ थे, महामाया उनकी अग्रमहिषी थी, यशोधरा सीता थी, आनंद भरत थे और बुद्ध रामपंडित थे। उसमे उस मनुष्य राम का वर्णन है जिसने अपनी सगी बहन को पत्नी बनाया है। ये सब बातें तुलसी को अग्राह्य हैं। उनके राम कहते हैं

अनुजवधू भगिनी सुतनारी। सुनु सठ ये कन्या सम चारी॥
इन्हहिं कुदृष्टि विलोकइ जोई। ताहि बधें कछु पाप न होई॥[1]

जैन-रामकथा जैन साहित्य मे राम-कथा की दो परंपराएँ हैं विमलसूरि की, और गुणभद्र की। दोनो मे बहुत-कुछ कथा-भेद है।[2] तुलसी के केंद्र-बिंदु से उनके समन्वित रूप की भिन्नता इस प्रकार है

१ दशरथ वाराणसी के राजा थे। बाद मे उन्होंने साकेत को राजधानी बनाया। उनके चार पुत्र हुए एक परंपरा के अनुसार कौशल्या या अपराजिता से पद्म या राम, सुमित्रा से लक्ष्मण, कैकेयी से भरत, और सुप्रभा से शत्रुघ्न, दूसरी के अनुसार सुबाला से राम, कैकेयी से लक्ष्मण, और तीसरी रानी से भरत तथा शत्रुघ्न।

२ जनक की विदेहा नामक रानी से सीता का जन्म हुआ। दूसरी परंपरा के अनुसार सीता रावण और मंदोदरी की औरस पुत्री थी। नाश के भय से रावण ने मारीच द्वारा सीता को मंजूषा मे रखवा कर मिथिला मे गड़वा दिया। हल जोतते समय वह मंजूषा निकली। जनक ने कन्या का नाम सीता रखा।

३ जनक ने अपने यज्ञ की रक्षा के लिए राम लक्ष्मण को बुलाया। राम और सीता की सगाई हो गयी। बाद मे स्वयंवर और धनुष यज्ञ का आयोजन किया गया। दो धनुष रखे गये वज्रावर्त और समुद्रावर्त। राम-लक्ष्मण ने उन्हे चढाया। राम ने सीता के अतिरिक्त सात अन्य कुमारियो से तथा लक्ष्मण ने पृथ्वीदेवी आदि सोलह राजकुमारियो से विवाह किया।

४ राम ने स्वेच्छा से सोलह वर्ष का वनवास स्वीकार किया। राम के वन जाने पर दशरथ ने जैन-धर्म मे दीक्षित होकर सन्यास ले लिया।

५ वनवासी राम ने तीन गंधर्व-कन्याओ से, और लक्ष्मण ने ग्यारह कन्याओ से

---

१. रामचरितमानस, ४।६।४

२. देखिए राम-कथा, पृ० ६०-७१, अपभ्रंश का राम-साहित्य, राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त अभिनंदन-ग्रंथ, पृ० ६८८-९८

विवाह किया।

६ चद्रनखा (शूर्पणखा) खरदूषण की पत्नी थी। उनका पुत्र शबूक था। लक्ष्मण ने उसे मार दिया। चद्रनखा ने राम-लक्ष्मण से विवाह का प्रस्ताव किया। वह व्यर्थ हुआ। लक्ष्मण ने खरदूषण की सेना को पराजित किया। सहायता के लिए रावण आया। वह सीता पर आसक्त हो गया। उसने सिंहनाद करके लक्ष्मण को राम के पास भेज दिया और सीता का हरण किया। कथांतर यह है कि नारद से सीता के रूप का बखान सुन कर रावण ने उन्हे हर लाने का निश्चय किया। राम की अनुपस्थिति मे उसने राम का रूप धारण करके सीता को पुष्पक विमान मे बैठने का आदेश दिया। इस प्रकार सीता-हरण हुआ।

७ राम ने साहसगति को मार कर विद्याधर सुग्रीव को उसका राज्य पुन प्राप्त कराया, और उसकी तेरह कन्याओ से विवाह किया। दूसरी परपरा के अनुसार, लक्ष्मण ने बालि का वध किया।

८ हनुमान् खर और सुग्रीव दोनो के दामाद थे। वे रावण के घनिष्ठ मित्र थे। सुग्रीव के आग्रह पर वे सीता को खोजने लका पहुँचे। लकासुदरी से विवाह कर के रात भर उसके साथ रहे।

९ सीता से वियुक्त राम ने दधिमुख की तीन कन्याओ से विवाह किया।

१० युद्ध मे शक्ति लगने पर लक्ष्मण विशल्या की चिकित्सा से अच्छे हुए। उन्होने उससे विवाह कर लिया। लक्ष्मण ने ही चक्र से रावण का वध किया।

११ अर्धचक्रवर्ती बनकर लक्ष्मण अयोध्या मे राज्य करने लगे। लक्ष्मण के सोलह हजार और राम के आठ हजार रानियाँ थी। भरत ने जैन-दीक्षा ली।

१२ निर्वासिता सीता के पुत्र लवण और अकुश से राम-लक्ष्मण का सग्राम हुआ। बाद मे पिता-पुत्रो का मिलन हुआ। सीता बुलायी गयी। वे अग्नि-परीक्षा मे सफल हुईं। उन्होने जैन-दीक्षा ले ली और स्वर्ग चली गयी। दूसरी कथा है कि सीता के आठ पुत्र हुए। वे अन्य रानियो के साथ जैन-धर्म मे दीक्षित होकर अच्युत स्वर्ग मे पहुँची।

१३ दोनो ही परपराओ के अनुसार, लक्ष्मण मर कर नरकगामी हुए। राम ने विरक्त होकर जैन-दीक्षा ले ली और मोक्ष प्राप्त किया।

जैन-रामकथा की कुछ प्रमुख विशेषताएँ अवेक्षणीय हैं। उसमे शूर्पणखा के नाक-कान काटे जाने और लकादहन का उल्लेख नही है। बालि तथा रावण का वध और अयोध्या पर राज्य लक्ष्मण ने किया है। हिंदू-परपरा के बालब्रह्मचारी बजरगबली बहुतो के दामाद बन गये हैं। राम-लक्ष्मण को तो मानो राह चलते झुड-की-झुड पत्नियाँ मिल जाती हैं। धार्मिक रग का चटकीलापन खूब गहरा है। दशरथ, भरत, सीता और राम ने जैन-दीक्षा ली, उन्हे स्वर्ग का पारपत्र मिल गया। कदाचित् जैन-दीक्षा न लेने और जैनी रावण को मारने के कारण ही लक्ष्मण को नरकगामी होना पडा। ऐसी जैन-राम-कथा की ओर सनातनधर्मी तुलसी का आकृष्ट होना असभव था।

मार्मिक स्थलो की पहचान : लिखित और मौखिक रूप मे उपलब्ध राम-कथा

का आयाम अत्यंत विस्तृत है हरि अनंत हरि कथा अनंता ।[1] सभी कुछ काव्योचित नहीं है । कुछ सर्वथा तिरस्करणीय है, कुछ संक्षेपतः ग्राह्य है, और कुछ विशदतया वर्णनीय है । उस अनंत वृत्त-राशि में से उपयोगी और सरस अंश का संग्रह तथा अनुपयोगी एवं नीरस का त्याग कर अपेक्षित वस्तु का मंजुल निबंधन पारखी कवि की प्रतिभा का ही कार्य है संग्रह त्याग न बिनु पहिचाने ।[2] शुक्लजी ने कहा है 'प्रबंधकार की भावुकता का सबसे अधिक पता यह देखने से चल सकता है कि वह किसी आख्यान के अधिक मर्म-स्पर्शी स्थलों को पहचान सका है या नहीं' ।[3] यह बात प्रबंध के समान ही कथाश्रित निबंध और मुक्तक पर भी घटित होती है । तुलसी ने रामकथा के मार्मिक स्थलों को भली भाँति पहचाना है और प्रबंधकाव्य 'रामचरितमानस' में ही नहीं मुक्तक 'गीतावली', 'कवितावली आदि में भी उनका हृदयग्राही चित्रण किया है । राम-कथा के विशेष मार्मिक स्थल हैं धनुष-यज्ञ, राम का अयोध्या-त्याग, तापस-वेष में उनकी वनयात्रा, चित्रकूट में भरत-राम-मिलन, सीता-हरण और लक्ष्मण-मूर्च्छा के अवसरों पर राम का विलाप, भरत् की प्रतीक्षा, सीता-निर्वासन ।

इससे अधिक मर्मवेधी वैषम्य और क्या हो सकता है कि 'सीता-स्वयंवर' हो रहा है और सीता को स्वयं वरण करने का कोई अधिकार नहीं है ! सारे जनकपुर की लालसा है कि राम का सीता से विवाह हो जाए, वे दोनों परस्पर अनुरक्त हैं, राम को विश्वामित्र और सीता को गिरिजा का आशीर्वाद प्राप्त है, परंतु शंकर का शरासन बीच में बाधक होकर पड़ा है । एक-से-एक दिग्गज वीर हार मान गये, धनुष हिला तक नहीं ।[4] सीता ने अपनी आँखों से देखा है । कुसुमकोमल राम उस वज्रकठोर धनुष को कैसे तोड़ेंगे ! सीता की स्थिति संवेदनीय है ! कवि ने उस मर्म को समझा है

> नीकें निरखि नयन भरि सोभा । पितु पनु सुमिरि बहुरि मनु छोभा ॥
> अहह तात दारुनि हठ ठानी । समुझत नहिं कछु लाभु न हानी ॥
> सचिव सभय सिख देइ न कोई । बुध समाज बड़ अनुचित होई ॥
> कहँ धनु कुलिसहुँ चाहि कठोरा । कहँ स्यामल मृदु गात किसोरा ॥
> बिधि केहि भाँति धरौं उर धीरा । सिरिस सुमन कन बेधिअ हीरा ॥
> सकल सभा कै मति भै भोरी । अब मोहि संभुचाप गति तोरी ॥
> निज जड़ता लोगन्ह पर डारी । होहि हरुअ रघुपतिहि निहारी ॥
> अति परिताप सीय मन माहीं । लव निमेष जुग सय सम जाहीं ॥

---

१ रामचरितमानस, १।१४०।३
२ रामचरितमानस, १।६।१
३ गोस्वामी तुलसीदास, पृ० ७८
४. सीय स्वयंबर भूप अनेका । समिटे सुभट एक तें एका ॥
संभु सरासन काहुँ न टारा । हारे सकल बीर बरिआरा ॥
तीन लोक महँ जे भटमानी । सब कै सकति संभुधनु भानी ॥
सकै उठाइ सरासुर मेरू । सोउ हिअँ हारि गयउ करि फेरू ॥
जेहि कौतुक सिवसैलु उठावा । सोउ तेहि सभाँ पराभव पावा ॥—रामचरितमानस, १।२९२।२-४

प्रभुहि चितै पुनि चितव महि राजत लोचन लोल ।
खेलत मनसिज मीन जुग जनु विधुमंडल डोल ॥[1]

पिता ने अपने सर्वप्रिय पुत्र को राज्य देने का विज्ञापन करके उसे निर्वासित कर दिया । यदि बाहुबली दशरथ[2] चाहते तो कैकेयी का झोटा पकडकर उसे अधकूप मे ढकेल देते, परतु कुल-प्रतिष्ठा[3] ने उन्हें ऐसा नही करने दिया । वे पत्नी के आगे गिडगिडाते रहे, शकर को मनाते रहे । कर्म-गति नही रुकी । सीता और लक्ष्मण के साथ राम चले गये । अयोध्या अनाथ हो गयी । कालरात्रि का अधकार छा गया[4]

१ लागति अवध भयावनि भारी । मानहुँ कालराति अँधिआरी ॥
घोर जतु सम पुर नर नारी । डरपहिं एकहि एक निहारी ॥
घर मसान परिजन जनु भूता । सुत हित मीतु मनहुँ जमदूता ॥
२. एकहि एक देहिं उपदेसू । तजे राम हम जानि कलेसू ॥
निंदहिं आपु सराहहिं मीना । धिग जीवनु रघुबीर बिहीना ॥

कमलकोमल किशोर राजकुमारो का सुकुमारी राजकिशोरी के साथ तापस-वेष मे नगे पाँव वन के बीहड मार्ग पर चलना अपने मे अत्यत हृदयस्पर्शी दृश्य है । कोमलता, करुणा, प्रीति और सहानुभूति की मूर्ति ग्रामवधुओ की योजना करके कवि ने उस मार्मिक प्रसग को मार्मिकतर बना दिया है । वे उन निर्वासितो के रूप और वेप की विपमता पर खेद प्रकट करती और दशरथ-कैकेयी को कोसती हैं

१ साँवरे गोरे सलोने सुभायँ मनोहरताँ जिति मैनु लियो है ।
बान कमान निसग कसें सिर सोहैं जटा मुनिवेषु कियो हैं ।
सग लिए बिधुबैनी वधू रति को जेंहि रचक रूप दियो है ।
पायन तौ पनहीं न पयादेंहि क्यों चलिहैं सकुचात हियो है ॥
२ रानी मै जानी अयानी महा पबि पाहन हू तें कठोर हियो है ।
राजहुँ काजु अकाजु न जान्यो कह्यो तिय को जेंहि कान कियो है ।
ऐसी मनोहर मूरति ए बिछुरें कैसे प्रीतम लोग जियो है ।
आँखिन मे सखि राखिबे जागु इन्हैं किमि कै बनवासु दियो है ॥[5]

भरत ननिहाल से लौटे । पिता की मृत्यु का समाचार सुनकर उन्हे गहरी ठेस लगी । राम का वन-गमन सुनकर पिता-मरण का शोक भूल गया । अपने को राम के निर्वासन का हेतु समझकर उन्हे अत्यत परिताप हुआ । उन्हे मनाकर लौटा लाने के लिए वे पुरवासियो के साथ चित्रकूट पहुंचे । सभा जुडी । माताएँ, सासुएं, वसिष्ठ, जनक आदि

---

१ रामचरितमानस, १।२५८
२ सुरपति बसइ बाँह बल जाकें । नरपति रहहिं सकल रुख ताकें ॥
—रामचरितमानस, २।२५।१
३. रघुकुल रीति सदा चलि आई । प्रान जाहिं बरु बचन न जाई ॥
—रामचरितमानस, २।२८।२
४. रामचरितमानस, २।८३।३-४, २।८६।२-३
५ कवितावली, २।१६-२०, और भी देखिए—रामचरितमानस, २।११३।१-२।१२१

सभी वरिष्ठ व्यक्ति उपस्थित थे। उस असाधारण परिस्थिति की मार्मिकता सहृदय के हृदय को गला देने वाली है। निरपराध होते हुए भी भरत ग्लानि से दबे जा रहे हैं। इस ससार मे चार अगुल जमीन के लिए भाई अपने सगे भाई का सिर काट लेता है। यहाँ राज्य का प्रश्न है। सघर्ष इस बात पर नही है कि मैं राज्य करूँगा, अपितु सारा जोर इस बात पर डाला जा रहा है कि तुम राज्य करो। गुरुजनो की आज्ञा को राम टाल नही सकते, लेकिन कोई भी साफ-साफ कहने को तैयार नही है। सभी पर धर्मसकट है। दूसरो से काम न बनते देखकर भरत साक्षात् आत्म-निवेदन करने का निश्चय करते है। सकोच मे गडे हुए वे हाथ जोडकर सभा मे खडे होते हैं।[1] उनका चित्तद्रावक अमायिक निवेदन अपनी मार्मिकता मे अप्रतिम है

जानत हौं सबही के मन की।
तदपि कृपालु करौं बिनती सोइ सादर सुनहु दीन हित जन की॥
ए सेवक सतत अनन्य अति ज्यों चातकहि एक गति घन की।
यह बिचारि गवनहु पुनीत पुर हरहु दुसह आरति परिजन की॥
मेरो जीवन जानिय ऐसोइ जियै जैसो अहि जासु गई मनि फन की।
मेटहु कुलकलक कोसलपति आग्या देहु नाथ मोहि बन की॥
मोको जोइ लाइय लागै सोइ उतपति है कुमातु तें तन की।
तुलसिदास सब दोष दूरि करि प्रभु अब लाज करहु निज पन की॥[2]

कामिनियो के वियोग मे झुलसते हुए कामियो की अत्यधिक मनोव्यथा का निदर्शन बहुत मिलेगा। कुठाग्रस्त प्रेमी मरे भी हैं, और उनका जनाजा भी निकला है। विरह-विदग्धा नायिकाओ की दसवी अवस्था (मरण) की मार्मिक व्यजना साहित्य मे भरी पडी है। परतु सौतेले भाई के वियोग मे भाई की इस कारुणिक दशा का हृदयस्पर्शी चित्रण अन्यत्र अप्राप्य है। चित्रकूट मे भरत ने राम का चरणस्पर्श करके उन्हे सचेत करते हुए अपना प्रण जता दिया था

तुलसी बीते अवधि प्रथम दिन जो रघुबीर न ऐहौ।
तौ प्रभु चरन सरोज सपथ जीवित परिजनहि न पैहौ॥[3]

जब अवधि मे एक दिन शेष रह गया तब शुभ शकुन होते हुए भी उनकी विरहा-कुलता तीव्रतम हो उठी। उन्हे ऐसा लगने लगा मानो अवधि बीत चुकी हो। उत्कठित जनो के मन का यही स्वभाव है, उनकी तर्क-बुद्धि चित्तानुवर्तिनी हो जाया करती है। भरत को लक्ष्मण के सौभाग्य की तुलना मे अपना दुर्भाग्य और भी खलने लगा। उनको विश्वास है कि राम आएँगे, लेकिन कातर मन आशका से मुक्त नही होता। यदि अवधि बीतते ही राम न आये तो? तो भरत अधम होकर जीवित नही रह सकेंगे, उनके लिए प्राण-त्याग कर देना ही श्रेयस्कर होगा

---

१ भरत भए ठाढे कर जोरि।
कहि न सकत सामुहैं सकुचबस समुझि मातुकृत खोरि॥—गीतावली, २।७०।१
२ गीतावली, २।७१, और भी देखिए—रामचरितमानस, २।२६०।१-२।२६९
३ गीतावली, २।७६।४

रहेउ एक दिन अवधि अधारा। समुझत मन दुख भएउ अपारा ।।
कारन कवन नाथ नहिं आएउ। जानि कुटिल किधौं मोहि बिसराएउ ।।
अहह धन्य लछिमन बड भागी। राम पदारबिंदु अनुरागी ।।
कपटी कुटिल मोहि प्रभु चीन्हा। ता तें नाथ संग नहिं लीन्हा ।।
जौं करनी समुझै प्रभु मोरी। नहि निस्तार कलप सत कोरी ।।
जन अवगुन प्रभु मान न काऊ। दीनबंधु अति मृदुल सुभाऊ ।।
मोरें जिअँ भरोस दृढ सोई। मिलिहहिं रामु सगुन सुभ होई ।।
बीते अवधि रहहिं जौं प्राना। अधम कवन जग मोहि समाना ।।[1]

भायप भक्ति का यह नमूना अद्वितीय है। इस परमविरहासक्ति का सादृश्य खोजने पर नही मिलेगा।

रस-सामग्री

तुलसीदास रस-सिद्ध कवि हैं। उनकी सभी महत्त्वपूर्ण कृतियो मे प्रभावशालिनी रस-निबधना हुई है। सस्कृत काव्यशास्त्र की परपरा मे प्रतिष्ठित नवरस, विश्वनाथ आदि द्वारा स्वीकृत वात्सल्य और वैष्णव आचार्यों द्वारा प्रतिपादित भक्ति-रस ये ग्यारहो रस उनके काव्य मे अभिव्यक्त हुए हैं। उनके प्रतिपाद्य विषय के अनुरूप भक्तिरस ही मुख्य है, अन्य रसो की योजना गौण रूप मे की गयी है।

भरत के सूत्र[2] की विभिन्न प्रकार से व्याख्या करते हुए आचार्यों ने विभावो, अनुभावो और व्यभिचारी भावो के सयोग से रस-निष्पत्ति मानी है। 'सयोग' और 'निष्पत्ति' का चाहे जो अर्थ किया जाए, रस विभाव-आदि के समिलित प्रभाव का फल है। रस-निष्पत्ति के लिए यह आवश्यक नही है कि विभाव आदि सभी का वर्णन किया जाए। यदि कवि उनमे से एक या दो का ही सफल चित्रण करता है तो उस कलात्मक अभिव्यक्ति के सहारे सहृदय अपनी प्रतिभा से शेष की प्रतीति कर लेता है, और फलत रसास्वाद करता है। सूत्र मे स्थायी के अनुल्लेख से यह भ्राति नही होनी चाहिए कि रति आदि स्थायी भावो के अभाव मे भी शृगार आदि रसो की अनुभूति सभव है। सामान्यत स्वीकृत मत के अनुसार स्थायी भाव ही रस-रूप मे परिणत होता है जैसे दूध दही के रूप मे। अत रस-सामग्री के प्रसग मे स्थायी की चर्चा भी अपेक्षित है। यह बात भी ध्यान मे रखने योग्य है कि रस-सामग्री का प्रत्येक अग अन्य अगो से प्रत्यक्षतया अथवा परोक्षतया अनिवार्यत सबद्ध है, सर्वथा स्वतत्र रूप मे उसकी कल्पना नही की जा सकती। एक-एक अग का अलग से विवेचन केवल उनके स्वरूप को समझाने के लिए किया जाता है।

---

१ रामचरितमानस, ७।१।१-४

२. विभावानुभावव्यभिचारिसंयोगाद् रसनिष्पत्तिः। —नाट्यशास्त्र, ६।३२ गद्य

सख्यप्रेयान् तथा उभयात्मक प्रेयान्। तुलसी की लगभग सभी सरस रचनाओ मे दास्य-प्रेयान् रस का शक्तिमान् प्रवाह है। दास्य-भाव उनकी भक्तिरसात्मक कृतियो का अतर्यामी भाव है। यही कारण है कि वात्सल्य के आश्रय दशरथ, कौशल्या आदि का स्थायी वात्सल्य भी प्राय तुलसी के स्थायी दास्य से मुक्त नही हो सका है। भरत[1] एव लक्ष्मण[2] राम के भाई, और सुग्रीव[3] तथा विभीषण[4] राम के सखा होकर भी उनके प्रति दास्य-भाव का निवेदन करते हैं। शिव, ब्रह्मा आदि ज्ञानी-विज्ञानी भी सेव्य-सेवक-भाव की भक्ति को अनिवार्य समझते हैं।[5]

तुलसीदास मूलत दास्यभक्ति के कवि है, अतएव उनके काव्य मे सख्यप्रेयान् रस की विशिष्ट निबधना नही हो सकी है। इस प्रकार के एकाध ही स्थल देखने को मिलते हैं, यथा

पुर बालक कहि कहि मृदु बचना। सादर प्रभुहि देखावहिं रचना॥
सब सिसु येहि मिसु प्रेमबस परसि मनोहर गात।
तनु पुलकहिं अति हरषु हिअँ देखि देखि दोउ भ्रात॥
सिसु सब राम प्रेमबस जाने। प्रीति समेत निकेत बखाने॥
निज निज रुचि सब लेहिं बोलाई। सहित सनेह जाहिं दोउ भाई॥
रामु देखावहिं अनुजहि रचना। कहि मृदु मधुर मनोहर बचना॥
लव निमेष महुँ भुवन निकाया। रचै जासु अनुसासन माया॥
भगति हेतु सोइ दीनदयाला। चितवत चकित धनुष मखसाला॥[6]

उपर्युक्त पक्तियो मे मित्रवृत्ति-विशिष्ट प्रेयान् रस की व्यजना हुई है।

उभयात्मक प्रेयान् अनेक स्थलो पर पाया जाता है। कारण यह है कि सखातुल्य भक्तो की राम-विषयक प्रीति का आधार भी सेव्य-सेवक-भाव ही है। अधोलिखित पद मे विश्वास-विशिष्ट सख्यप्रेयोरति की निदर्शना द्रष्टव्य है

केसव कारन कौन गुसाईं।
जेहि अपराध असाधु जानि मोहि तजेउ अग्य की नाईं॥
परम पुनीत सत कोमलचित तिन्हहिं तुम्हहिं बनि आई॥
तौ कत बिप्र ब्याध गनिकहि तारेहु कछु रही सगाई॥
काल करम गति अगति जीव की सब हरि हाथ तुम्हारे॥
सोइ कछु करहु हरहु ममता प्रभु फिरउँ न तुम्हहि बिसारे॥[7]

इस पद के प्रथम दो पद्यो मे की गयी सामीप्य-सूचक अनौपचारिक प्रश्न-योजना, और

---

१ मोरे सरन राम की पनहीं। रामु सुस्वामि दोसु सब जनहीं।—रामचरितमानस, २।२३४।१
२ नाथ दास मैं स्वामि तुम्ह तजहु त कहा बसाइ।—रामचरितमानस, २।७१
३ बिषयबस्य सुर नर मुनि स्वामी। मैं पाँवर पसु कपि अति कामी॥—रामचरितमानस, ४।२१।२
४. स्रवन सुजस सुनि आएउँ प्रभु भंजन भव भीर।
त्राहि त्राहि आरतिहरन सरन सुखद रघुबीर॥—रामचरितमानस ५।४५
५ रामचरितमानस, ७।११६, ७।१२२।६-७
६ रामचरितमानस, १।२२४।४-५।२२५।३
७ विनयपत्रिका, ११२।१-३

भगवान् को दी गयी 'अवरेब'-युक्त लताड मे सख्यभाव का समावेश है। अतिम तीन पद्यो मे आत्मनिवेदनात्मक दास्यभक्ति का ज्ञापन है।

वत्सल भक्तिरस का स्थायी भाव ईश्वर-विषयक वात्सल्य है। स्मरण रखना चाहिए कि भक्तो के प्रति भजनीय भगवान् का वात्सल्य या अनुकपा वत्सल भक्तिरस का स्थायी भाव नही है। उसे औचित्यानुसार भक्तिरस-व्यजक उद्दीपन विभाव ही माना जा सकता है। वत्सल भक्तिरस मे भगवान् वात्सल्य के विषयालबन ही हो सकते हैं, आश्रय कदापि नही।

तुलसी-साहित्य मे वत्सल-भक्ति के आश्रय दो प्रकार के हैं १ दशरथ, कौशल्या आदि जिनका राम से वस्तुत पाल्य पालक-सबध है, अथवा जो इस वास्तविक सबध के विना भी उन्हे लाल्य-पाल्य रूप मे देखते हैं, जैसे निम्नाकित पद्य मे

पद कजनि मजु बनीं पनहीं धनुहीं सर पंकज पानि लियें।
लरिका सँग खेलत डोलत हैं सरजू तट चौहट हाट हियें।
तुलसी अस बालक सो नहि नेहु कहा जप जोग समाधि कियें।
नर ते खर सूकर स्वान समान कहौ जग मे फल कौन जियें॥[1]

२ दूसरे प्रकार के आश्रय काकभुशुडि आदि हैं जिनका पाल्य-पालक-भाव व्यक्त नही है और जो बालक-रूप राम को आराध्य मान कर उनकी भक्ति करते हैं :

जब जब राम मनुज तनु धरही। भगत हेतु लीला बहु करहीं॥
तब तब अवधपुरी मैं जाऊँ। बालचरित बिलोकि हरषाऊँ॥
जनम महोत्सव देखौं जाई। बरष पाँच तहँ रहौं लोभाई॥
इष्टदेव मम बालक रामा। सोभा वपुष कोटि सत कामा॥
निज प्रभु बदन निहारि निहारी। लोचन सुफल करौं उरगारी॥
लघु बायस बपु धरि हरि सगा। देखौं बालचरित बहु रगा॥
लरिकाई जहँ जहँ फिरहिं तहँ तहँ सग उड़ाउँ।
जूठन परइ अजिर महँ सो उठाइ करि खाउँ॥[2]

रूप गोस्वामी[3] आदि के द्वारा प्रतिपादित मधुर भक्तिरस, जिसे उन्होने उज्ज्वल-रस भी कहा है, शुद्ध भक्तिरस के रूप मे तुलसी को मान्य नही है। मध्यकालीन हिंदी का अधिकाश कृष्णपरक काव्य सामान्य काव्य-रसिक की दृष्टि मे शृगार-काव्य है। यह दूसरी बात है कि माधुर्य-भक्ति के उपासक भक्त लोग उसे भक्तिरस कहते हैं, और भक्तिरस-पचक मे सर्वश्रेष्ठ मानकर उसको उज्ज्वलरस या रसराज के आसन पर प्रतिष्ठित करते हैं।

मिश्रित भक्तिरस वह है जिसमे भगवद्रति के साथ कामरति, हास आदि भावो का भी मिश्रण हो। मधुसूदन सरस्वती का मत है कि भगवद्भक्ति के साथ केवल कामरति, शोक, हास, भयरति, विस्मय, युद्धोत्साह और दानोत्साह का ही मिश्रण हो सकता है,

---

१ कवितावली १।५
२ रामचरितमानस, ७।७५
३ उज्ज्वलनीलमणि; हरिभक्तिरसामृतसिन्धु, ३।५

तदनुसार मिश्रित भक्तिरस केवल सात हैं।[1] भगवान् जुगुप्सा, धर्मोत्साह, दयोत्साह तथा शाम के आलबन नही हो सकते, और द्वेष भगवद्विषयक होने पर भी प्रीति का साक्षात् विरोधी है। अतएव शुद्ध-रौद्र, रौद्रभयानक, बीभत्म, धर्मवीर, दयावीर और शात रसो का भक्तिरसत्व प्राप्त करना सर्वथा असभव है।[2] उनका कथन तर्कसगत है। परतु मिश्रित भक्तिरस को सकुचित परिधि मे क्यो प्रतिबद्ध किया जाए ? मिश्रित रस भाव-सधि की भाँति रस-सधि नही है, क्योंकि एक ही रचना मे दो या दो से अधिक भाव रस-कोटि तक नही पहुँच सकते। भावविशेष की अतिशयता के अनुसार एक ही रस तत्त्वत रस होगा, दूसरा कथित रस उसका अग या सहायक बन कर ही आएगा। यदि दोनो भावो का प्रभाव समान हो जाएगा तो वे भाव कोटि से ऊपर नही उठ सकेंगे। अत मिश्रित भक्तिरस मे भक्ति के साथ मिश्रित भाव भक्ति का समकक्ष नही हो सकता। फिर भी उसे भक्ति का सचारी न कह कर किसी मिश्रित रस का स्थायी कहा जाता है। यह सकल्पना सापेक्ष दृष्टि का परिणाम है। इसका कारण यह है कि वह भाव किसी अन्य रस का स्थायी है, उसकी अभिव्यक्ति सामान्यत व्यजित व्यभिचारी भावो की तुलना मे अधिक सशक्त है और वह भक्तिरस की प्रतीति मे अभिन्न रूप से सहायक है।

इस व्यापक परिप्रेक्ष्य मे मिश्रित भक्तिरस के दो रूप हैं। एक रूप वह है जिसमें भक्ति और भक्ति के साथ मिलित भाव दोनो के आलवन भगवान् हैं। उदाहरण के लिए कौशल्या को अपने विराट् रूप का दर्शन कराने वाले राम ही उनके भय, विस्मय और भक्ति के आलवन हैं[3]। उन पक्तियो को पढने से सहृदय को अद्भुत-मिश्रित भक्तिरस की अनुभूति होती है। दूसरा रूप वह है जिसमे भक्ति के साथ मिश्रित भाव का आलवन भिन्न है, अथवा विषयालवन के एक होने पर दोनो भावो के आश्रय भिन्न हैं। दोनो के क्रमश उदाहरण लीजिए

तो सों कहौं दसकधर रे रघुनाथ बिरोधु न कीजिये बौरे।
बालि बली खरु दूषनु और अनेक गिरे जे जे भीति मे दौरे।
ऐसिय हाल भई तोहि धौं न तु लै मिलु सीय चहै सुख जौ रे।
राम के रोष न राखि सकै तुलसी बिधि श्रीपति सकरु सौ रे॥[4]

इस सवैये मे अगद के क्रोध और उत्साह का आलवन रावण है, किंतु भक्ति के आलबन राम हैं। निम्नलिखित उद्धरण मे शृगार-मिश्रित भक्ति की ध्वनि है। दोनो भावो के आलवन राम हैं, परतु रति का आश्रय सीता हैं और भक्ति के आश्रय स्वय तुलसीदास हैं

हरषीं सहेली भयो भावतो गावतीं गीत
गवनीं भवन तुलसीस हियो हरि कै।[5]

---

१. भक्तिरसायन, २।३१-३३
२. भक्तिरसायन, २।२७-३०
३. रामचरितमानस, १।२०१।१-१।२०२
४. कवितावली, ६।१०
५. गीतावली, १।७२।५

उपर्युक्त रीति से भक्ति के साथ भक्तीतर शम, वत्सल-स्नेह, कामरति, उत्साह, शोक, विस्यय, हास, क्रोध, भय और जुगुप्सा, इन दस स्थायी भावो के मिश्रण के आधार पर तुलसीदास के काव्य मे दस प्रकार के मिश्रित भक्तिरसो की निबधना हुई है शात-मिश्रित[1], वात्सल्य-मिश्रित[2], शृगार-मिश्रित[3], वीर-मिश्रित[4], करुण-मिश्रित[5], अद्भुत-मिश्रित[6], हास्य-मिश्रित[7], रौद्र-मिश्रित[8], भयानक-मिश्रित[9] और वीभत्स-मिश्रित[10]। उन सदर्भों मे भक्तिरस के रसिक को शात आदि के साथ-साथ भक्तिरस की अनुभूति होती है, अत मिश्रित भक्तिरस है।

शम और शांतरस : शात और भक्तिरस मे तात्त्विक भेद है। शात का स्थायी भाव शम अर्थात् तत्त्वज्ञान या आत्मज्ञान है।[11] काम-स्पृहा-रहित वशीकार-नामक वैराग्य के द्वारा द्रुत चित्त के प्रकाश को शम कहते हैं।[12] भक्तिरस का स्थायी भाव भक्ति अर्थात् भगवद्विषयक रति है।[13] भगवद्धर्म के कारण द्रुत चित्त की ईश्वरविषयक धारावाहिक वृत्ति भक्ति है।[14] शम निवृत्तिमूलक है, और भक्ति प्रवृत्तिमूलक। पहली का आलबन है ससार की असारता एव परमात्मा का चितन और दूसरी के आलबन भगवान् तथा भक्त-गण हैं। अत तुलसी-साहित्य मे जहाँ स्थायी भाव के रूप मे केवल शम की व्यजना हुई है वहाँ शात रस है, जैसे

स्रग महँ सर्प बिपुल भयदायक प्रगट होइ अविचारे।
बहु आयुध धरि बल अनेक करि हारहिं मरइ न मारे।
निज भ्रम ते रबिकरसंभव सागर अति भय उपजावै।
अवगाहत बोहित नौका चढ़ि कबहूँ पार न पावै।
तुलसिदास जग आपु सहित जब लगि निरमूल न जाई।
तब लगि कोटि कलप उपाय करि मरिय तरिय नहिं भाई।[15]

तुलसी ने 'कवितावली' के उत्तरकाड, 'विनयपत्रिका' और 'वैराग्यसदीपनी' के कतिपय पद्यो मे ही शुद्ध शातरस की याजना की है। इसका कारण उनकी सगुणभक्ति-

१ विनयपत्रिका, १८८
२ गीतावली, १।१८-१९
३ गीतावली, ७।२१; कृष्णगीतावली, ४१
४ गीतावली, ६।८
५ कवितावली, ६।५२; गीतावली, ६।१३-१४
६ रामचरितमानस, १।११८।३-१।११६।१
७ रामचरितमानस, १।६१-१।६४
८. रामचरितमानस, ५।४७-५।५६।४
९ रामचरितमानस, ५।२५।४-५।२६।४
१० विनयपत्रिका १३६।३-४
११. अभिनवभारती, जिल्द १, पृ० ३३६; साहित्यदर्पण, ३।२४९
१२ भक्तिरसायन, २।२४
१३ हरिभक्तिरसामृतसिन्धु, २।५।२
१४ भक्तिरसायन, १।३
१५ विनयपत्रिका, १२२।३-५

निष्ठता है। यह तथ्य ध्यान देने योग्य है कि 'रामचरितमानस' मे शान्त रस भी भक्तिरस से स्वतन्त्र नही है। जहा-जहा शम का निरूपण किया गया है वहां वहां उसका पर्यवसान भक्ति मे ही हुआ है।

वात्सल्य : वात्सल्य रस का स्थायी भाव पाल्य-पालक-सम्बन्ध से सम्बद्ध पुत्रादि-विषयक स्नेह है। तुलसी के वात्सल्य-वर्णन का क्षेत्र अत्यन्त व्यापक है। उन्होंने इस भाव की विविध भूमिकाओं मे जीवन की विविध परिस्थितियो का चित्रण किया है। पार्वती, राम, लक्ष्मण, सीता आदि के प्रति माता-पिता[1] एव राय ऋषि[2] के वात्सल्य का वर्णन तो मार्मिक है ही, राम सीता के प्रति सास-ससुर[3], अन्य गुरुजनों[4] तथा सामान्य नर-नारियों[5] का वात्सल्य भी अवेक्षणीय है। वात्सल्यमयी मां के ममतापूर्ण हृदय की हृदयस्पर्शी व्यजना हिंदी के अनेक कवियो ने की है, परन्तु सपत्नी-पुत्रो के प्रति मौसेली माताओ के स्नेह का जो चित्ताकर्षक निरूपण तुलसी ने किया है[6] वह अन्यत्र दुर्लभ है। यह आवश्यक नही है कि बालक ही वात्सल्य का आलम्बन और वयोवृद्ध जन ही उसका आश्रय हो। पाल्य-पालक-भाव के कारण दास-दासियो तथा भक्तो के प्रति राम का स्नेह भी वात्सल्य ही है।[7] इसी कारण से उन्हे भक्तवत्सल कहा गया है। राम की भक्तवत्सलता का निरूपण तुलसी के अतिशय प्रिय विषयो मे से एक है। स्नेह के इस रूप की निरूपणा भी तुलसी के वात्सल्य-निरूपण की अनुपेक्षणीय विशेषता है।

वात्सल्य के दो पक्ष हैं : सयोग-पक्ष और वियोग-पक्ष। तुलसी ने दोनो का विशद वर्णन किया है। 'गीतावली', 'रामचरितमानस' और 'कवितावली' मे बालकाड मे सयोग-पक्ष की वैविध्यपूर्ण झांकियां प्रस्तुत की गयी है : राम आदि के नैसर्गिक रूप की, उनके आकल्प-मडन की, और आनददायिनी बाल-लीलाओ की। एक-चित्र की अपेक्षा सश्लिष्ट चित्र अपने सौंदर्य-समुच्चय के कारण अधिक चित्ताकर्षक होता है। अत कवि ने राम की सुदरता का घनीभूत प्रभाव प्रदर्शित करने के लिए प्राय सश्लिष्ट चित्राकन किया है, जसे निम्नोद्धृत पद मे

छोटिऐ, धनुहियां पनहियां पगनि छोटी
छोटिऐ कछौटी कटि छोटिऐं तरकसी।
लसत झंगूली झीनी दामिनि की छवि छीनी
सुदर वदन सिर पगिया जरकसी।

---

१. रामचरितमानस, १।९६।४-८८, १।२०८।१-३, १।३३७।३-१।३३८।४, गीतावली १।१८, २।८
२ कवितावली, १।५,७
३ रामचरितमानस, १।३३६।१-४, २।५६।१-३, २।७८।२, २।२९२।१-२
४ कह मुनि राम सत्य तुम भाषा। भरत सनेह विचारु न राखा॥
तेहि तें कहउँ बहोरि बहोरी। भरत भगति बस भइ मति मोरी॥
—रामचरितमानस, २।२५८।३-४
५. गीतावली, १।३४, १।४३
६. रामचरितमानस, १।३५६।४-१।३५७।४; गीतावली, १।८, ९, ११, १६
७. रामचरितमानस, २।८० ३, ३।०३।२-१

बय अनुहरत बिभूषन बिचित्र अंग
जोहे जिय आवति सनेह की सरक सी।
मूरति की सूरति कही न परै तुलसी पै
जानै सोई जाके उर कसकै करक सी।[1]

'धनुहियाँ' और 'तरकसी' से राम की शरक्रीडा ध्वनित हो रही है। उनका सहज सौंदर्य आभूपणों के सहयोग से और भी आकर्षक हो गया है। वस्तुत अलकार विद्यमान सौंदर्य को ही उत्कृष्ट बनाते हैं, वे सुदरता की सृष्टि नही कर सकते। राम निसर्ग-सुदर हैं। उनका लावण्य वर्णनातीत है। अत उस शोभा का केवल अनुभव किया जा सकता है उसे वाणी-बद्ध नही किया जा सकता। अतिम दो पक्तियो मे अपनी असमर्थता प्रकट करके कवि ने उसके घनीभूत प्रभाव की मर्मस्पर्शी व्यजना की है।

बाल-वर्णन के प्रसग मे खेलो का वर्णन स्वाभाविक है। राम की क्रीडाओ के चित्रण मे भी तुलसी के विशिष्ट दृष्टिकोण की झलक पायी जाती है। उनके राम मर्यादापुरुषोत्तम, धर्म-सस्थापक और लोक-रक्षक हैं। इसलिए आँखमिचौनी, माखन-चोरी अथवा बालाओ से छेड-छाड उनके स्वभाव के प्रतिकूल है। वे बचपन मे बाल-स्वभाव-वश एकाध बार गोली, भौंरा और चकडोरी खेल लेते हैं[2], परतु ये उनके इष्ट खेल नही हैं। वे राजकुमार हैं और आगे चलकर उन्हे आततायी राक्षसो का वध करना है। तदनुरूप वे आखेट, चौगान और शर-क्रीडा मे विशेष रुचि रखते हैं।[3]

परतु कृष्ण की बाल-लीला के चित्रण मे तुलसी ने कृष्ण-काव्य की परिपाटी का पालन किया है। यशोदा के सामने अपनी सफाई देते हुए शरारती कृष्ण उलाहना देने वाली गोपियो पर बातें बनाने का उलटा दोष लगाते हैं

मोकहँ झूठेहु दोष लगावहिं।
मैया इन्हहिं बानि परगृह की नाना जुगुति बनावहिं॥
इन्हके लिये खेलिबो छाँड़्यो तऊ न उबरन पावहिं।
भाजन फोरि बोरि कर गोरस देन उरहनो आवहिं॥
कबहुँक बाल रोवाइ पानि गहि मिस करि उठि उठि धावहिं।
करहिं आपु सिर धरहिं आन के बचन बिरचि हरावहिं॥[4]

तुलनात्मक दृष्टि से अवेक्षणीय है कि यहाँ भी मर्यादावादी तुलसीदास 'मेरे कर अपने उर धारति आपन ही चोली धरि फारि'[5]-जैसी उक्तियो को साफ बचा गये हैं।

वात्सल्यमयी माताओ का स्वभाव है कि वे सहज स्नेहवश अपने अपराधी पुत्र का प्रतिरक्षात्मक पक्ष-समर्थन किया करती हैं। यशोदा की इस स्निग्ध प्रवृत्ति का यथार्थ चित्रण मनोहारी है

---

१ गीतावली, १।४४
२. गीतावली, १।४३।३
३. गीतावली, १।२२।१३-१४, १।४५, रामचरितमानस, १।२०५।१, कवितावली, १।७
४, कृष्णगीतावली, ४
५. सूरसागर, ६२२

कबहुँ न जात पराये धामहिं।
खेलत ही देखौं निज आँगन सदा सहित बलरामहिं॥
मेरे कहा थाकु गोरस को नवनिधि मंदिर यामहिं।
ठाली ग्वालि ओरहने के मिस आइ बकहिं बेकामहिं॥
हौं बलि जाउँ जाहु कितहूँ जनि मातु सिखावत स्यामहिं।
बिनु कारन हठि दोष लगावति तात गये गृह तामहिं॥[1]

राम का प्राय संपूर्ण बाल-वर्णन संयोग-वात्सल्य का उदाहरण है। माता-पिता उन्हें गोद मे खिलाते हैं, कौशल्या उन्हें सेज पर सुलाती हैं, तेल-उबटन लगाती हैं, नहलाती हैं, सजाती हैं, पालने मे झुलाती हैं, दुलारती हैं, अँगुली पकडकर चलना सिखाती हैं, चुटकी बजाकर नचाती हैं। सभी माताएँ और पुर-नारियाँ उनकी बाल-केलि को देख-देखकर आनंदित होती हैं

१ ललित सुतहि लालति सचु पाये।
कौसल्या कल कनक अजिर महँ सिखवति चलन अँगुरियाँ लाये।
किलकि किलकि नाचत चुटकी सुनि डरपति जननि पानि छुटकाये।
गिरि घुटुरुवनि टेकि उठि अनुजनि तोतरि बोलत पूप देखाये।
बालकेलि अवलोकि मातु सब मुदित मगन आनँद न अमाये॥[2]

२. मनमोहनी तोतरी बोलनि मुनिमन हरनि हँसनि किलकनियाँ।
बालसुभाय बिलोल बिलोचन चोरति चितहि चारु चितवनियाँ।
सुनि कुलवधू झरोखनि झाँकति रामचंदछबि चंदवदनियाँ।
तुलसिदास प्रभु देखि मगन भईं प्रेमबिबस कछु सुधि न अपनियाँ॥[3]

प्रेम की यह विशेषता है कि वह विरह मे तप कर निखरता है। वत्सल-स्नेह की भी यही गति है। राम के वियोग मे कौशल्या और दशरथ का प्रेम तीव्रतर हो गया है। यद्यपि तुलसी ने विश्वामित्र के प्रसंग मे भी वियोग-वात्सल्य का किंचित् चित्रण किया है[4], तथापि उसका व्यापक निरूपण राम-वन-गमन के संदर्भ मे हुआ है। वत्स के प्रति जननी के वात्सल्य की अतिशयता प्राय सर्वत्र देखी जाती है, किंतु पुत्र-वियोग की भावना मात्र से सुरलोकप-रक्षक पिता के भाव-विगलित चित्त की कातरता की पराकाष्ठा का मर्मभेदी कारुणिक आलेखन समर्थ कवि तुलसी की लेखनी का ही चमत्कार है[5]

१ जिअइ मीन बरु बारि बिहीना। मनि बिनु फनिकु जिअइ दुख दीना॥
कहउँ सुभाउ न छल मन माहीं। जीवनु मोर राम बिनु नाहीं॥
समुझि देखु जिअँ प्रिया प्रबीना। जीवनु राम दरस आधीना॥

---

१ कृष्णगीतावली, ५
२ गीतावली, १।३२।१, ५-६
३ गीतावली, १।३४।५-६
४. रामचरितमानस, १।२०८।१-३
५. रामचरितमानस, २।३३।१-२, २।४५।२

२ अजसु होउ जग सुजसु नसाऊ। नरक परौं बरु सुरपुर जाऊ ॥
सब दुख दुसह सहावउ मोहीं। लोचन ओट रामु जनि होहीं ॥

चित्त की विषयाकारता ही भाव है। वात्सल्य भाव की स्थिति मे वत्सल व्यक्ति का मन वत्समय हो जाता है। सयोग की अवस्था मे उसकी दृष्टि शेष जगत् से हटकर अपने स्नेहभाजन पर ही केंद्रित रहती है। वियोग की दशा मे वह सर्वत्र अपने स्नेहपात्र की झलक देखता है। परतु यह अनुभूति धारावाहिक नही होती। सयोग-सुख का अभाव रह-रहकर उसके विह्वल मन को कुरेदता रहता है। राम के विरह मे व्यथा-व्याकुल कौशल्या की इस मनोदशा की तर्क द्वारा उपचित अभिव्यजना द्रष्टव्य है :

माई री मोहि कोउ न समुझावै।
रामगवन सांचो किधौं सपनो मन परतीत न आवै ॥
लगेइ रहत मेरे नैननि आगे राम लषन अरु सीता।
तदपि न मिटत दाह या उर को बिधि जो भयो बिपरीता ॥
दुख न रहै रघुपतिहि बिलोकत तनु न रहै बिनु देखे।
करत न प्रान पयान सुनहु सखि अरुझि परी यहि लेखे ॥[1]

रति और श्रृंगार रति तत्त्वत कामरति है। 'श्रृग' का अर्थ है कामोद्रेक। इसीलिए रति का सवादी रस 'श्रृंगार' कहलाता है। अन्य प्रवृत्तियो की तुलना में काम प्राणिमात्र की वलवत्तम तथा व्यापकतम प्रवृत्ति है। फलत काव्य मे श्रृंगार का इतना अधिक वर्णन मिलता है और उसे 'रसराज' का पद प्रदान किया गया है। श्रृंगार का लक्ष्य सौंदर्य है। मगल-विधान उसकी आवश्यक विशेषता नही है। शिव तत्त्व से रहित श्रृंगार विषय-कथा-रस होने के कारण तुलसी की दृष्टि मे हेय है।[2]

भक्तकवि तुलसीदास श्रृंगार के कवि नही हैं, फिर भी कवि होने के नाते काव्य-दृष्टि से उन्होने श्रृंगार का भी वर्णन किया है और बहुत खूबी के साथ किया है। शकर-पार्वती-चरित मे उन्होने श्रृंगार की उपेक्षा की है जगत मातु पितु सभु भवानी। तेहि सिंगारु न कहौं बखानी।[3] यहां पर 'सिंगारु' का अर्थ सभोग-विलास है। किंवदती है कि जगत पितरौ[4] शभु-भवानी के घोर श्रृंगार का वर्णन[5] करने के कारण कालिदास को कोढ हो गया था जो 'रघुवश' की रचना से दूर हुआ। दतकथा झूठी है, किंतु उसका निष्कर्ष महत्त्वपूर्ण है। वह यह है कि भारतीय मनीषा ने मगल-विधायक सरस काव्य को गौरव दिया है। तुलसी का भी यही दृष्टिकोण है। उनके काव्य मे श्रृंगार के आलवन सीता-राम और गोपी-कृष्ण हैं। श्रृंगार की अवहेलना से दोनो का चरित-वर्णन अधूरा रह जाता और काव्य-धर्म की दृष्टि से उन कथाओ के अत्यत हृदयग्राही स्थल छूट जाते। सहृदय कवि ने उसे उचित स्थान देकर श्लाघ्य कवि-कर्म का सम्यक् निर्वाह किया है।

---

१ गीतावली, २।५३
२. सबुक भेक सेवार समाना। इहां न विषय कथा रस नाना ॥—रामचरितमानस, १।३८।२
३ रामचरितमानस, १।१०३।२
४. रघुवश, १।१
५. कुमारसम्भव, अष्टम सर्ग

शृंगार के दो भेद हैं : सयोग और वियोग । नायक-नायिका का परस्पर अनुकूल वहिरिंद्रिय-सबध सयोग है । इसके विपरीत, अनुकूल इंद्रिय-सबध का अभाव वियोग है । तुलसी ने 'रामचरितमानस', 'गीतावली', 'कवितावली' और 'कृष्णगीतावली' मे इन दोनो पक्षो का विशेष मनोहर चित्रण किया है । सीता-राम के वर्णन मे उनका मन अधिक रमा है, इसलिए उसमे दोनो की विशदता है । उन्होने गोपी-कृष्ण के सयोग-वर्णन की उपेक्षा की है, क्योकि उसमे मर्यादा के उल्लघन का भय था । उक्त कृतियो मे रति-भाव की विभिन्न अवस्थाओ की सटीक और मर्यादित व्यजना की गयी है ।

विश्वामित्र से धनुष-यज्ञ का समाचार सुन कर राम प्रसन्न हुए[1] । उनके मन मे सीता के प्रति उत्सुकता और लालसा उत्पन्न हुई । यही से कवि ने साकेतिक रूप से दोनो के सयोग की पृष्ठभूमि तैयार की है । जनक की फुलवारी मे उनके प्रथम साक्षात्कार के लिए जिस पवित्र वातावरण का निर्माण और जिस सुदरता से आदर्श-मर्यादा का निर्वाह किया है, वह अनुपम है । राम अकेले नही हैं, उनके साथ लक्ष्मण हैं । सीता अकेली नही हैं, उनके साथ सखियाँ हैं । एकात मे किया गया प्रेम व्यभिचार हो सकता है, लेकिन समाजानुमोदित प्रेम पाप नही हो सकता । इसके अतिरिक्त, राम गुरु की आज्ञा से पूजा के फूल लेने के लिए आये हैं,[2] और सीता माँ के आदेश से गिरिजा-पूजन के निमित्त आयी हैं[3] । सीता को पार्वती से और राम को विश्वामित्र से मनोरथ सफल होने की 'असीस' मिलती है ।[4] शृंगार के प्रसग मे इससे अधिक पुनीत परिवेश और क्या हो सकता है !

आदर्श प्रेम वही है जो दोनो ओर से हो । उभयाश्रित रति-भाव ही शृंगाररसत्व प्राप्त करता है । एकागी होने पर उसकी परिणति रसाभास मे होती है । सीता और राम दोनो एक-दूसरे पर मुग्ध हैं[5]

१ अस कहि फिरि चितए तेहि ओरा । सिय मुख ससि भए नयन चकोरा ॥
भए बिलोचन चारु अचचल । मनहुँ सकुचि निमि तजेउ दृगचल ॥
२ थके नयन रघुपति छबि देखें । पलकन्हिहूँ परिहरीं निमेषें ॥
अधिक सनेह देह भै भोरी । सरद ससिहि जनु चितव चकोरी ॥

शब्दार्थ-साम्य पर ध्यान दीजिए दोनो के नेत्र निर्निमेष है, एक-दूसरे के चद्र-मुख के चकोर हैं, दोनो ही स्तभित हैं । निमि का निर्देश भी चमत्कारोत्पादक है । वे जनक के पूर्वपुरुष हैं, पलको पर उनका निवास माना जाता है । अपने कुल की कन्या और भावी दामाद के प्रणय-व्यापार को देखना अनुचित है । इस सकोच के मारे वे दृगचल से हट गये, पलको का झपकना बद हो गया । निर्निमेषता अनुभाव है । उससे व्यजित 'जडता' सचारी भाव है ।

कोई भी प्रेमी अपने प्रेमपात्र को दृष्टिपथ से ओझल नही होने देना चाहता ।

---

१ धनुषजग्य सुनि रघुकुलनाथा । हरषि चले मुनिवर के साथा ॥—रामचरितमानस, १।२१०।५
२ समय जानि गुर आयेसु पाई । लेन प्रसून चले दोउ भाई ॥—रामचरितमानस, १।२२७।१
३. तेहि अवसर सीता तहँ आई । गिरिजा पूजन जननि पठाई ॥—रामचरितमानस, १।२२८।१
४. रामचरितमानस, १।२३६।४, १।२३७।२
५ रामचरितमानस, १।२३०।२, १।२३२।.

सीता लाचार हैं। आयी थी पूजा करने, बँध गयी प्रेम-पाश मे। बडी देर हो गयी है, सखियाँ चेतावनी दे रही हैं, परतु सीता का मन नही मानता। वे किसी-न-किसी बहाने से राम की शोभा को निरखती ही रहना चाहती हैं

देखन मिस मृग विहग तरु फिरै बहोरि बहोरि।
निरखि निरखि रघुबीर छबि बाढ़ै प्रीति न थोरि॥[1]

दोनो लौटने के लिए बाध्य हैं। नारी की नैसर्गिक और परिस्थितिजन्य विवशता का अनुमान किया जा सकता है। चलते समय दोनो ही एक-दूसरे के रूप को हृदय मे धारण कर लेते हैं

जानि कठिन सिव चाप बिसूरति। चली राखि उर स्यामल मूरति॥
प्रभु जब जात जानकी जानी। सुख सनेह सोभा गुन खानी॥
परम प्रेम मय मृदु मसि कीन्ही। चारु चित्त भीती लिखि लीन्ही॥[2]

आलबन की दृष्टि से दूसरी पक्ति ध्यान देने योग्य है। रति का आलवन होने के लिए किसी पात्र मे शोभा और गुण की सत्ता अनिवार्य है। किसी जुगुप्सनीय व्यक्ति के प्रति अनुराग की उत्पत्ति पागलपन की निशानी है। अतएव भारतीय महाकाव्य और नाटक की परपरा नायक एव नायिका मे रूप तथा गुण के रमणीय समन्वय का विधान करती आयी है। रति को उत्कर्ष प्रदान करने और नायक-नायिका को द्विविधा से मुक्त रखने के लिए दोनो की अद्वितीयता का चित्रण[3] किया जाता रहा है। मर्मज्ञ तुलसी ने इस तथ्य पर भरपूर ध्यान रखा है।[4] लक्ष्मण-जैसे गौराग-सुदर किशोर के साथ भी राम का रूप उजागर है, शोभाशालिनी सखियो के बीच मे भी सीता की सुदरता निराली है[5]

१. देखन बाग कुँअर दोउ आए। बय किसोर सब भाँति सुहाए॥
स्याम गौर किमि कहौं बखानी। गिरा अनयन नयन बिनु बानी॥
२. सुमन समेत बाम कर दोना। साँवर कुँअर सखी सुठि लोना॥
३ जनु बिरचि सब निज निपुनाई। बिरचि बिस्व कहँ प्रगट देखाई॥[6]
सुदरता कहुँ सुदर करई। छबिगृहँ दीपसिखा जनु बरई॥
४. सखिन्ह मध्य सिय सोहति कैसी। छबिगन मध्य महाछबि जैसी॥

उद्दीपन विभाव के रूप मे पुष्प-वाटिका का वर्णन भी उपयुक्त है।[7] धनुष-यज्ञ के अवसर पर अनुभावो और सचारी भावो की एक अलकार-मडित एव मर्मस्पर्शी सश्लिष्ट योजना देखिए

१. रामचरितमानस, १।२३४
२. रामचरितमानस, १।२३५।१-२
३. नैषधीयचरित, १।३८
४. रामु से न बर दुलही न सिय सारिखी, सीय सी न तीय न पुरुष राम सारिखो। —कवितावली, १।१५, १६
५. क्रमश, रामचतितमानस, १।२२६।१, १।२३३।४, १।२३०।३-४, १।२६४।१
६. सा निर्मिता विश्वसृजा प्रयत्नादेकस्थसौन्दर्यंदिदृक्षयेव।—कुमारसम्भव, १।४९
७. रामचरितमानस, १।२२७।२-दोहा

प्रभुहि चितै पुनि चितव महि राजत लोचन लोल।
खेलत मनसिज मीन जुग जनु विधु मडल डोल॥
गिरा अलिनि मुख पकज रोकी। प्रगट न लाज निसा अवलोकी॥
लोचन जल रह लोचन कोना। जैसे परम कृपन कर सोना॥[1]

सीता की चितवन आदि अनुभाव हैं। अश्रु सात्त्विक भाव है। व्रीडा, विषाद और चिंता सचारी भाव हैं। इनके सयोग से रति-भाव की अतिशय मार्मिक व्यजना हुई है, क्योकि धनुर्भंग मे विलब होने के कारण सयोग-सुख भी विरह-वेदना से मिश्रित हो गया है। मनोरथ के सफल होने पर विवाह-मडप मे

राम को रूप निहारति जानकी ककन के नग की परछाहीं।
या तें सबै सुधि भूलि गई कर टेकि रही पल टारति नाहीं॥[2]

तुलसी-वर्णित सयोग-शृगार प्रेमालाप, चुबन, आलिगन आदि से मुक्त और दर्शन तक ही सीमित होने पर भी अत्यत प्रौढ एव परिपक्व है।

वियोग-शृगार के चार भेद बतलाये गये हैं पूर्वराग, मान, प्रवास और करुण। पूर्वराग और मान सामान्यत काम-विलास से सबद्ध हैं। तुलसी के कर्तव्यपरायण राम को उनके लिए फुर्सत नही है। कृष्ण-चरित-वर्णन मे अवकाश था, किंतु आदर्शवादी तुलसी की दृष्टि उधर प्रवृत्त नही हुई। उन्होने केवल प्रवास-विप्रलभ का वर्णन किया है। 'कृष्णगीतावली' मे वर्णित प्रवास रूढिबद्ध है, किंतु राम-सीता का वियोग-चित्रण प्रवास-वर्णन की सामान्य परपरा से कुछ भिन्न है। राम निर्वासित होकर भी सीता के साथ वन गये थे। एक वनवासी राजकुमार की पत्नी का हरण हुआ है। हरण के अनतर सीता और राम की स्थायी चित्तवृत्ति शोक-मिश्रित रति है। इसलिए काव्यदृष्टि से उस स्थलविशेष पर करुण-विप्रलभ मानना चाहिए। यदि राम को ईश्वर मान कर चला जाएगा तो उनके विलाप मे करुण का अस्तित्व भी सदिग्ध हो जाएगा। यथार्थत, अशोक-वाटिका मे स्थित सीता का विरह-वर्णन विप्रलभ-शृगार का प्रकृत उदाहरण है।[3]

'मेघदूत' आदि कुछ अपवादो को छोड कर हमारे यहाँ के प्राचीन साहित्य मे विरह वेदना प्राय नारियो के मत्थे मढी गयी है। प्रकृति, लालित्य और समाज के केंद्र-बिंदु से इसके क्रमश तीन कारण प्रतीत होते है १ वे अबलाएँ हैं, अत रोने के लिए बाध्य हैं, व्यथा के भार को ढोना उनका जाति-धर्म हो गया है। रावण ने सीता का अपहरण किया, उनसे प्रतिरोध नही हो सका, वे लडकर मर नही सकी। कृष्ण जाने लगे, बालाएँ उन्हें रोक नही सकीं। कृष्ण मथुरा मे ही हैं, गोपियाँ उन तक पहुँच नही सकती। २ वे सुकुमारी रमणियाँ हैं, उनमे सहज सौरस्य है (याद रखिए कि किसी कर्कशा को नायिका होने के योग्य समझा ही नही गया), अत उनके विरह-निवेदन मे सहृदय के हृदय को गला देने की अधिक शक्ति है। एक सुदूर टापू के बीच रावण-जैसे आतककारी राक्षस-राज के बधन मे पडी हुई निस्सहाय सीता की विरहावस्था मे जो मार्मिकता है वह धनुर्धर

१ रामचरितमानस, १।२५८-१।२५६।१
२. कवितावली, १।१७, श्रीकातशरणजी इसे क्षेपक मानते हैं कवितावली, पृ० २८
३ देखिए रामचरितमानस, ५।३१, गीतावली, ५।७, ६-१०, १६-२०, बरवैरामायण, ३६-४१

राम की वियोग-दशा मे सभव नही है। कस-वध मे समर्थ कृष्ण का विप्रलभ पराधीन व्रजबालाओ की मर्मव्यथा का समकक्ष नही हो सकता। ३ नारी के कर्मक्षेत्र की सीमा बहुत सकुचित है। परिस्थितियाँ उसे आत्मकेंद्रित होकर घुलने के लिए विवश करती हैं। पुरुष का बाह्य सघर्ष अनेकमुखी है। उत्साह, क्रोध आदि विभिन्न मनोवृत्तियो की दीप्ति के कारण उसे प्रणय-चिंतन का अवकाश कम मिलता है। स्थानातर मे पहुँचकर कृष्ण राजनैतिक झझटो मे व्यापृत हैं। इसके विपरीत, गोपियाँ वही हैं जहाँ कृष्ण ने उनके साथ सरस लीलाएँ की थीं। सयोग-दशा की आनददायिनी वस्तुएँ वियोग-दशा मे उनकी रति-भावना को अनिवार्यत उद्दीप्त करती हैं।[1] हनुमान् से सीता का समाचार पाकर राम का रति-भाव केवल क्षण-भर के लिए उद्बुद्ध हुआ। तत्काल ही उसका स्थान प्रतिशोध-भावना और उत्साह ने ले लिया, क्योकि उन्हे रावण का वध करके सीता का उद्धार करना था।[2] दूसरी ओर, राक्षसियो से घिरी हुई निरुपाय सीता केवल अनु-चिंतन कर सकती थीं। उस मजबूरी मे उनकी विरह-वेदना का तीव्रतर होना स्वाभाविक था

> अतिहि अधिक दरसन की आरति।
> राम वियोग असोक विटप तर सीय निमेष कलप सम टारति।
> बार बार बर बारिज लोचन भरि भरि बरत बारि उर ढारति॥
> मनहु विरह के सद्य घाय हिये लखि तकि तकि धरि धीरज तारति॥
> तुलसिदास जद्यपि निसिबासर छिन छिन प्रभु मूरतिहि निहारति।
> मिटति न दुसह ताप तउ तन की यह विचारि अतरगति हारति॥[3]

'भ्रमरगीत' के नाम से प्रसिद्ध उद्धव-गोपी-सवाद गोपियो के विरह-वर्णन का एक मार्मिक प्रसग है। 'कृष्णगीतावली' मे उसकी सरस निबधना की गयी है।

उत्साह और वीररस उत्साह की चार वृत्तियाँ बतलायी गयी हैं दया, दान, धर्म और युद्ध। तदनुसार वीररस के दयावीर आदि चार भेद माने गये है। वस्तुत प्रथम तीन मे व्यक्त उत्साह रस-कोटि तक नही पहुँचता। उन्हे गौरव देने के लिए काव्य-शास्त्रियो ने उनका भी वीररस मे परिगणन किया है। युद्धवीर ही प्रकृत वीररस है। उत्साह भारतीय नायक का सहज गुण है। किसी भी कार्य-सिद्धि के लिए उसका होना आवश्यक है। दयालुता, वदान्यता, धार्मिकता और शूरवीरता उन नायको की सामान्य

---

१. ससि ते सीतल मोको लागै माई री तरनि।
याके उए बरति अधिक अँग अँग दव वाके उए मिटति रजनिजनित जरनि॥
सब बिपरीत भये माधव बिनु हित जो करत अनहित की करनि।
तुलसिदास स्यामसुदर विरह की दुसह दसा सो मो पै परति नहि बरनि॥
—कृष्णगीतावली, ३०

२ कपि के सुनि कल कोमल बैन।
प्रेम पुलकि सब गात सिथिल भये भरे सलिल सरसीरुह नैन॥
धरि धरि धीर बीर कोसलपति किये जतन सकै उत्तरु दै न।
तुलसिदास प्रभु सखा अनुज सों सैननि कह्यो चलहु सजि सैन॥—गीतावली, ५।२१

३. गीतावली, ५।१९

विशेषताएँ हैं।[1] तुलसी के राम इन सभी गुणों के निधान हैं। वे दीनदयालु हैं। जयंत और बालि जैसे विरोधी पात्रों पर भी उन्होंने दया की है।[2] धर्म-संस्थापन के लिए तो उनका अवतार ही हुआ है।[3] उनके दयोत्साह और धर्मोत्साह के बहुधा वर्णनों को पढ़कर वीररस की अनुभूति नहीं होती। धर्मोत्साह की कवित्वमयी व्यंजना धर्ममय रथ के निरूपण में अवश्य हुई है[4], किन्तु उसकी रमणीयता युद्धोत्साह और अलंकार-विधान पर ही आश्रित है। एक स्थल पर, विभीषण-शरणागति के प्रसंग में, दानोत्साह का सरस चित्रण किया गया है

नगर कुबेर को सुमेरु की बराबरी बिरंचि बुद्धि को बिलास लंक निरमान भो।
ईसहिं चढ़ाय सीस बीस बाहु बीर तहाँ रावन सो राजा रजतेज को निधान भो।
तुलसी तिलोक की समृद्धि सौंज संपदा सकेलि चाकि राखी रासि जाँगर जहान भो।
तीसरे उपास बनबास सिंधु पास सो समाज महाराज जू को एक दिन दान भो॥[5]

तुलसी-साहित्य में वीररस की हृद्य निबंधना राम, लक्ष्मण, हनुमान्, अंगद आदि पात्रों के युद्धोत्साह के वर्णन में अनेक स्थलों पर हुई है। उदाहरणार्थ, क्रमशः लक्ष्मण एवं अंगद की निम्नांकित उक्तियों में वीररस का ओजस्वी प्रवाह द्रष्टव्य है[6]

१. सुनहु भानुकुल पंकज भानू। कहौं सुभाउ न कछु अभिमानू॥
जौं तुम्हारि अनुसासनि पावौं। कंदुक इव ब्रह्मांड उठावौं॥
काचे घट जिमि डारौं फोरी। सकौं मेरु मूलक जिमि तोरी॥
कमलनाल जिमि चाप चढ़ावौं। जोजन सत प्रमान लै धावौं॥
तोरौं छत्रकदंड जिमि तव प्रताप बल नाथ।
जौं न करौं प्रभु पद सपथ कर न धरौं धनु भाथ॥

२. कोसलराज के काज हौं आज त्रिकूट उपारि लै बारिधि बोरौं।
महाभुजदंड द्वै अंडकटाह चपेट की चोट चटाक दै फोरौं।
आयसु भंग ते जौं न डरौं सब मीजि सभासद सोनित खोरौं।
बालि को बालक तौ तुलसी दसहू मुख के रन में रद तोरौं॥

'कवितावली' और 'रामचरितमानस' के लंकाकांड का अधिकांश युद्धोत्साह की दीप्तिमयी व्यंजना से परिपूर्ण है। संग्राम की उग्रता और प्रचंडता के दृश्य अत्यंत सजीवता एवं ओजस्विता के साथ प्रस्तुत किये गये हैं।[7]

---

१. दशरूपक, ३।१-२
२. रामचरितमानस, ३।२।६-७, ४।१०।१
३. रामचरितमानस, १।१२१, ४।६।३, ७।२१।२
४. रामचरितमानस, ६।८०।२-६
५. कवितावली, ५।३२
६. क्रमश, रामचरितमानस, १।२५३, कवितावली ६।२४
७. सर तोमर सेल समूह पँवारत मारत बीर निसाचर के।
इत तें तर ताल तमाल चले खर खंड प्रचंड महीधर के।
तुलसी करि केहरिनाद भिरे भट खग्ग खगे खपुआ खरके।
नख दंतन सों भुजदंड विहंडत मुंड सों मुंड परे झरके॥ —कवितावली, ६।३५

शोक और करुणरस इष्ट-विच्छेद के कारण चित्त मे क्लेश का उदय शोक है। तुलसी ने राम-वन-गमन और लक्ष्मण-मूर्च्छा के प्रसगो मे शोक का विशेष रूप से हृदय-द्रावक चित्रण किया है। कवि की निम्नाकित उक्ति उसकी रस-व्यजना पर पूर्णत चरितार्थ होती है

नगर व्यापि गइ बात सुतीछी। छुअत चढ़ी जनु सब तन बीछी॥
सुनि भए बिकल सकल नरनारी। बेलि बिटप जिमि देखि दवारी॥
जो जहँ सुनइ धुनइ सिर सोई। बड़ बिषादु नहिं धीरजु होई॥
मुख सुखाहिं लोचन स्रवहिं सोकु न हृदय समाइ।
मनहुँ करुन रस कटकई उतरी अवध बजाइ॥[१]

उपर्युक्त दोहे मे 'सोक' और 'करुन रस' का प्रयोग देखकर स्वशब्दवाच्यत्व दोष के भ्रम मे नही पडना चाहिए। दोष वही होता है जो रस का अपकर्षक हो। सशक्त अनुभावो और सचारी भावो के साथ प्रयुक्त ये शब्द करुण रस की अभिव्यक्ति मे बाधक न होकर सहायक हैं। अन्यत्र भी 'सोक' का मार्मिक निरूपण देखिए

सोक बिकल सब रोवहिं रानी। रूप सीलु बलु तेजु बखानी॥
करहिं बिलाप अनेक प्रकारा। परहिं भूमि तल बारहिं बारा॥
बिलपहिं बिकल दास अरु दासी। घर घर रुदनु करहिं पुरबासी॥
अँथएउ आजु भानुकुल भानू। धरम अवधि गुन रूप निधानू॥[२]

राम-वन-गमन पर आलबित शोक व्यक्ति या परिवार तक ही परिसीमित न होकर जन-जन मे व्याप्त है, अत सहृदय मात्र के हृदय को द्रवीभूत कर देने वाला है। उनके वियोग मे मनुष्य ही नही, पशु-पक्षी भी शोक-मग्न हैं, वृक्ष और लताएँ तक मुरझा गयी हैं।[३] परतु राम को तनिक भी शोक नही है।[४] यह वैशिष्ट्य अवेक्षणीय है स्वय राम तीन स्थलो पर शोकाकुल हुए हैं पिता की मृत्यु का समाचार सुन कर, जटायु के निधन पर, और लक्ष्मण के मूर्च्छित होने पर। तीसरे स्थल का दृश्य अत्यत कारुणिक है। उसमे राम के शील, स्नेह, पश्चात्ताप और शोक की चित्तस्पर्शी व्यजना हुई है

अर्धराति गइ कपि नहिं आएउ। राम उठाइ अनुज उर लाएउ॥
सकहु न दुखित देखि मोहि काऊ। बधु सदा तव मृदुल सुभाऊ॥
मम हित लागि तजेउ पितु माता। सहेहु बिपिन हिम आतप बाता॥
सो अनुराग कहाँ अब भाई। उठहु न सुनि मम बच बिकलाई॥
जौं जनतेउँ बन बधु बिछोहू। पिता बचन मनतेउँ नहिं ओहू॥

---

१. रामचरितमानस, २।४६
२ रामचरितमानस, २।१५६।२-३
३. रामचरितमानस, २।८३, २।१४२, गीतावली, २।६६, ६७
४. मुख प्रसन्न मन रगु न रोषू। सब कर सब बिधि करि परितोषू॥
चले बिपिन सुनि सिय सँग लागी। रहइ न रामचरन अनुरागी॥
—रामचरितमानस, २।१६६।१

सुत वित नारि भवन परिवारा। होहिं जाहिं जग बारहिं बारा॥
अस बिचारि जिय जागहु ताता। मिलै न जगत सहोदर भ्राता॥[1]

विस्मय और अद्भुत रस : विस्मय लोकोत्तर-चमत्कार-कारिणी वस्तु के दर्शन से द्रुत चित्त का विकास है। राम का चरित अलौकिक[2] होने के कारण स्वभावत विस्मय-जनक है। उन्होने कौशल्या और काकभुशुंडि को अपना अद्भुत विराट् रूप दिखाया है।[3] उन स्थलो पर कौशल्या आदि के विस्मय की निबन्धना की गयी है। हनुमान् के समुद्र लाँघने, अगद के पाँव रोपने, राक्षसो और वानरो के हवाई युद्ध आदि मे अद्भुत की व्यजना हुई है। तुलसी-साहित्य मे अद्भुत रस का उत्कृष्टतम उदाहरण है

लीन्हो उखारि पहार बिसाल चल्यो तेहि काल बिलंब न लायो।
मारुतनंदन मारुत को मन को खगराज को बेग लजायो॥
तीखी तुरा तुलसी कहतो पै हिये उपमा को समाउ न आयो।
मानो प्रतच्छ परब्बत की नभ लीक लसी कपि यो धुकि धायो॥[4]

अतिमानवीय व्यापार का चित्रण रस-प्रतीति मे बाधक नही है। 'असभावनानिरह' भी रसानुभूति की एक आवश्यक शर्त है। कल्पनाप्रधान काव्य मे भौतिक यथार्थता ढूँढना व्यर्थ है। इस सवैये की दूसरी पक्ति मे दुष्क्रमत्व दोष आभासित होता है, क्योंकि वेग-तारतम्य की दृष्टि से क्रम होना चाहिए था मारुत को, खगराज को, मन को। इसके दो समाधान हैं। १ पद्य मे पदान्वय की भी अपेक्षा होती है, और आलोच्य पक्ति का पदान्वय करके अर्थ-ग्रहण किया जा सकता है। २ 'समग्र वर्णन मे जो चित्र सामने खड़ा होता है उसके अद्भुत होने मे कोई सदेह नही। गगनमडल के बीच पहाड की एक लीक-सी बँध जाना कोई साधारण व्यापार नही है। इस अद्भुतता की योजना भी एक स्वभावसिद्ध व्यापार के आधार पर हुई है। अत्यत वेग से गमन करती हुई वस्तु की एक लकीर-सी बन जाया करती है। अद्भुत रस के इस आलबन द्वारा गोस्वामी जी की वह स्वाभाविक विश्व व्यापार-ग्राहिणी सहृदयता लक्षित होती है जो हिंदी के और किसी कवि मे नही'।[5]

हास और हास्यरस तुलसी की प्रवृत्ति हास की ओर नही है। आनुषगिक रूप से उन्होने एकाध स्थलो पर हास की व्यजना की है। वह भी स्मित हास है, मर्यादित और उद्देश्य-गर्भित है। विश्वमोहिनी राजकुमारी पर आसक्त बूढे नारद ने भगवान् से सुदरतम रूप माँगा, उन्होने बदर का कुरूप दे दिया। परतु, नारद मोहवश अपने को कामदेव समझ रहे हैं और स्वयवर-सभा मे इस विश्वास के साथ डटे हुए हैं कि मोहि तजि आनहि बरिहि न भोरे। राजकन्या ने उनकी हास्यास्पद आकृति को देखा .

---

१ रामचरितमानस, ६।६१।१-४, और देखिए गीतावली, ६।५-७, कवितावली, ६।५०
२. चरित राम के सगुन भवानी। तर्कि न जाहिं बुद्धिबल बानी॥
सुगम अगम नाना चरित सुनि मुनि मन भ्रम होइ।—रामचरितमानस, ६।७४।०, ७।७३
३ रामचरितमानस, १।२०१–१।२०२, ७।८०।२–७।८१
४. कवितावली, ६।५४
५ प० रामचंद्र शुक्ल गोस्वामी तुलसीदास, पृ० १०३-४

मर्कट बदन भयकर देही। देखत हृदयँ क्रोध भा तेही ॥
जेहिं दिसि नारद बैठे फूली। सो दिसि तेहिं न बिलोकी भूली ॥
पुनि पुनि मुनि उकसहिं अकुलाहीं। देखि दसा हरगन मुसुकाहीं ॥[1]

सीता, केवट और सखियों द्वारा किया गया हास परिहास-कोटि का है।[2]

क्रोध और रौद्ररस क्रोध किसी के क्षोभजनक वचन या कर्म के कारण उत्पन्न क्रूर मनोविकार है। इससे तेज जागृत होता है। अन्याय को न सह सकने की शक्ति का नाम 'तेज' है। क्रोध का हलका रूप 'अमर्ष' है। तुलसी ने कई प्रसगो मे रस-निष्पादक क्रोध की प्राभाविक व्यजना की है। परशुराम का क्रोध प्रसिद्ध है। चिडचिडे लोगो को चिढाना बाल-स्वभाव है। धृष्ट लक्ष्मण के उत्तर-प्रत्युत्तर पर आगबबूले परशुराम की रौद्र-व्यजक उक्ति है

गर्भ के अर्भक काटन को पटुधार कुठार कराल है जाको।
सोई हौं बूझत राजसभा धनु को दल्यो हौं दलिहौं बल ताको।
लघु आनन उत्तर देत बड़ो लरिहै मरिहै करिहै कछु साको।
गोरो गरूर गुमान भरो कहौ कौसिक छोटो सो ढोटो है काको ॥[3]

समुद्र और रावण के प्रति राम एव अगद के क्रोध का निरूपण भी चित्ताकर्षक है।[4]

तुलसी के कतिपय आलोचको ने उत्साह के सचारी अमर्ष या क्रोध को रौद्ररस का स्थायी भाव मान लिया है, यथा

जनक बचन सुनि सब नर नारी। देखि जानकिहि भए दुखारी ॥
माखे लखनु कुटिल भै भौंहैं। रदपट फरकत नयन रिसौंहैं ॥
रघुबसिन महुँ जहँ कोउ होई। तेहिं समाज अस कहै न कोई ॥
कही जनक जसि अनुचित बानी। बिद्यमान रघुकुल मनि जानी ॥[5]

बीच की दो पक्तियो को शुक्ल जी ने 'कवायद की पूरी पाबदी के साथ बहुत थोडे मे रौद्र-रस का उदाहरण' माना है, क्योकि 'इसमे अनुभाव भी है, अमर्ष सचारी भी है'।[6] उनकी मान्यता असगत है। १ उक्तिविशेष की एक-दो पक्तियो को उससे छिन्न करके भिन्न रस की कल्पना उचित नही है। लक्ष्मण की पूरी उक्ति वीररस-व्यजक है। अत उसके सहायक रूप मे निबद्ध अमर्ष (अथवा क्रोध) उत्साह का सचारी बन कर आया है। २. रौद्ररस की व्यजना के लिए आलबन का क्रोध के योग्य होना आवश्यक है। प्रस्तुत प्रसग मे जनक क्रोध के पात्र नही हैं। प्रथम दो पक्तियो से प्रत्यक्ष है कि उनके उचित वचन को सुनकर सभी लोग 'दुखारी' हुए, केवल उच्छृ खल लक्ष्मण का पारा गरम हो गया। इसलिए जनक के प्रति उनकी अशिष्ट उक्ति से सहृदय को रौद्ररस की अनुभूति नही हो सकती।

---

१. रामचरितमानस, १।१३४।४, १।१३५।१
२. कवितावली, २।२८, रामचरितमानस, २।१००।२-३, बरवैरामायण, १८
३ कवितावली, १।२०
४ रामचरितमानस, ५।५७-५।५८, ६।२६।१-३
५. रामचरितमानस, १।२५२।४, १।२५३।१
६ गोस्वामी तुलसीदास, पृ० १००

३. शुक्ल जी ने स्वयं कहा है कि क्रोध की चेष्टाओं का लक्ष्य आलंबन में भय का संचार करना है।[1] यहाँ पर जनक को भयभीत करना लक्ष्मण का उद्देश्य नहीं है। सबको धनुष तोड़ने की छूट थी। जनक ने किसी पर प्रतिबंध नहीं लगाया था। उनको डरा-धमका कर लक्ष्मण जबर्दस्ती सीता से विवाह भी नहीं करना चाहते हैं। वस्तुतः उनकी उक्ति का उद्देश्य अभिमानी राजाओं को आतंकित करके संभाव्य संघर्ष का परिवर्जन है। कहावत प्रसिद्ध है मारे मेहरी डरे पड़ोसी। रौद्र रस-विषयक इसी प्रकार की गलतफहमी आलोचकों को लक्ष्मण के स्थायी भाव उत्साह के संबंध में अन्यत्र भी हुई है। उस प्रसंग[2] में, उपर्युक्त तर्कों के अतिरिक्त, कवि की 'रन रस बिटपु पुलक मिस फूला', 'मनहुँ बीररस सोवत जागा' आदि उक्तियाँ स्वयं प्रमाण हैं।

भय और भयानकरस किसी आगंतुक विपत्ति की भावना से उत्पन्न आवेगपूर्ण अथवा स्तंभकारक मनोविकार 'भय' है। आत्मरक्षा से संबंधित होने के कारण इसका क्षेत्र बहुत व्यापक है। तुलसी ने विभिन्न स्थलों पर पात्रों की इस मनोवृत्ति की व्यंजना की है। शिव की बारात को देखकर घराती बाल-वनिताओं को, राम के असंख्य रूपों को देखकर सती को, अथवा संग्राम की प्रचंडता से कायरों को भय हुआ है। परन्तु, इस प्रकार के प्रसंगों में भयानक रस का परिपाक नहीं है। मुख्य प्रमाण यह है कि उन स्थलों को पढ़ते समय भावक के चित्त का स्थायी भाव भय भयानकरसत्व को नहीं प्राप्त होता। उदाहरण के लिए शिव की बारात की भयानकता[3] को पढ़कर उसमें विनोद की अनुभूति होती है। भयानक रस का यथार्थ उदाहरण लंका-दहन के प्रसंग में मिलता है

बालधी बिसाल बिकराल ज्वालजाल मानो लंक लीलिबे को काल रसना पसारी है।
कैधौं ब्योमबीथिका भरे हैं भूरि धूमकेतु बीररस बीर तरवारि सी उघारी है।
तुलसी सुरेस चाप कैधौं दामिनी कलाप कैधौं चली मेरु तें कृसानु सरि भारी है।
देखें जातुधान जातुधानी अकुलानी कहैं कानन उजार्‌यो अब नगर प्रजारी है॥[4]

जुगुप्सा और बीभत्सरस जुगुप्सा वह मनोविकार है जो किसी कुत्सित विषय के दोष-दर्शन के कारण उत्पन्न होता है। भक्तकवि तुलसी ने भक्ति के प्रसंग में वैराग्य जागृत करने के लिए भी जुगुप्सा की व्यंजना की है।[5] किंतु वहाँ पर भक्ति प्रधान है, अतः शुद्ध बीभत्सरस नहीं है। बीभत्सरस का उत्कृष्टतम निदर्शन युद्ध-वर्णन के प्रसंग में मिलता है

ओझरी की झोरी काँधे आँतनि की सेल्ही बाँधे मूँड के कमंडलु खपर किये कोरि कै।
जोगिनी झुटुंग झुंड झुंड बनी तापसी सी तीर तीर बैठीं सो समर सरि खोरि कै।
श्रोनित सो सानि सानि गूदा खात सतुआ से प्रेत एक पिअत बहोरि घोरि घोरि कै।
तुलसी बैताल भूत साथ लिए भूतनाथ हेरि हेरि हँसत हैं हाथ हाथ जोरि कै॥[6]

---

१. चिंतामणि, पहला भाग, पृ० १३३
२ रामचरितमानस, १।२२७-१।२३१।१
३ रामचरितमानस, १।९५।३, १।९६।२
४. कवितावली, ४।५
५ विनयपत्रिका, १३६।३
६. कवितावली, ६।५०

विभाव भाव के आश्रय और विषय दोनो ही विभाव हैं। काव्य मे विभाव-चित्रण का विशेष महत्त्व है, क्योकि सारी रस-सामग्री उन्ही मे निहित है। स्थायी, सचारी और अनुभाव आश्रयालबन-निष्ठ हैं, विषयालबन तथा उद्दीपन विभावो से स्थायी भाव उद्बुद्ध होता है। अतएव उनका इतना अधिक वर्णन किया गया है। इसी के परिणामस्वरूप नख-शिख-चित्रण, बारहमासा और षड्-ऋतु-वर्णन की परपरा चल पडी।

तुलसी ने भाव-व्यजना के विभिन्न प्रसगो मे विभावो का विशद चित्रण किया है। कुछ की चर्चा की जा चुकी है, सबका विवेचन अनावश्यक है। विषयालबन के सबध मे एक बात स्मरण रखने योग्य है कि तुलसी ने किसी नारी का नखशिख-वर्णन नही किया, राम का किया है और अनेक बार किया है कही कवि-दृष्टि से,[1] और कही दार्शनिक-दृष्टि से।[2] इन सभी वर्णनो मे उनकी भक्ति-भावना अनुस्यूत है। शुद्ध काव्य-दृष्टि से आलबन का रूपाकन करते समय नख-शिख के चक्कर मे न पडकर उन्होने व्यापक प्रभाव डालने मे समर्थ विशिष्ट अगो और वेष-भूषा का चित्रण किया है

लता भवन तें प्रगट भे तेहि अवसर दोउ भाइ।
निकसे जनु जुग बिमल बिधु जलद पटल बिलगाइ॥
सोभा सीव सुभग दोउ बीरा। नील पीत जलजात सरीरा॥
मोरपख सिर सोहत नीकें। गुच्छ बीच बिच कुसुम कली कें॥
भाल तिलक श्रमबिंदु सुहाए। श्रवन सुभग भूषन छबि छाए॥
बिकट भृकुटि कच घूँघुरवारे। नव सरोज लोचन रतनारे॥
चारु चिबुक नासिका कपोला। हास बिलास लेत मनु मोला॥
मुख छबि कहि न जाइ मोहि पाहीं। जो बिलोकि बहु काम लजाहीं॥
उर मनिमाल कबु कल ग्रीवा। काम कलभ कर भुजबल सींवा॥
सुमन समेत बाम कर दोना। साँवर कुँअर सखी सुठि लोना॥
केहरि कटि पट पीत धर सुषमा सील निधान।
देखि भानुकुल भूषनहि बिसरा सखिन्ह अपान॥[3]

मगवासी नर-नारियो की सहानुभूति और स्नेह के आलबन भरत-शत्रुघ्न का चित्रण कितना सक्षिप्त एव हृदयस्पर्शी है

कहहिं सपेम एक एक पाहीं। रामु लखनु सखि होहिं कि नाहीं॥
बय बपु बरन रूपु सोइ आली। सीलु सनेह सरिस सम चाली॥
बेषु न सो सखि सीय न संगा। आगे अनी चली चतुरगा॥
नहिं प्रसन्नमुख मानस खेदा। सखि सदेहु होइ येहि भेदा॥[4]

उद्दीपन विभावो के चित्रण मे भी तुलसी की दृष्टि उनके प्रभाव पर केंद्रित रही है। ननिहाल से अयोध्या लौटने पर भरत को सारा परिवेश ही शोकमग्न दिखायी देता है

१ गीतावली, १।२६, ३२, ३४, १०८
२ रामचरितमानस,६।१४-६।१५, बिदुमाधव का वर्णन विनयपत्रिका, ६१-६२
३ रामचरितमानस, १।२३२-१।२३३
४ रामचरितमानस, २।२२०।१-२

खर सिआर बोलहिं प्रतिकूला। सुनि सुनि होइ भरत मन सूला॥
श्रीहत सर सरिता बन बागा। नगरु बिसेषि भयावन लागा॥
खग मृग हय गय जाहिं न जोए। राम बियोग कुरोग बिगोए॥
नगर नारि नर निपट दुखारी। मनहुँ सबन्हि सब संपति हारी॥[1]

यह आलंबन-बाह्य उद्दीपन विभाव है। आलंबनगत उद्दीपन का सुंदर उदाहरण परशुराम के प्रति लक्ष्मण के व्यंग्य में देखा जा सकता है

कोटि कुलिस सम बचन तुम्हारा। व्यर्थ धरहु धनु बान कुठारा॥
सूर समर करनी करहिं कहि न जनावहिं आपु।
विद्यमान रन पाइ रिपु कायर करहिं प्रलापु॥[2]

स्नेह के आलंबन से संबंधित वस्तुएँ विरहदशा में उद्दीपन का कार्य करती हैं

जननी निरखति बान धनुहियाँ।
बार बार उर नैननि लावति प्रभु जू की ललित पनहियाँ॥[3]

अनुभाव आश्रय के मनोगत भावों को प्रकाशित करने वाले शारीरिक विकार अनुभाव हैं। अमूर्त भाव अदृश्य हैं। अनुभाव ही उन्हें प्रतीति-योग्य बनाते हैं। अतएव अनुभावों का चित्रण जितना सजीव होता है, भावोद्बोधन में वे उतने ही समर्थ होते हैं। तुलसी ने नानाविध भाव-स्थितियों में तदनुरूप प्रभावशाली अनुभाव-विधान किया है। उनकी व्यापक दृष्टि तिर्यक् प्राणियों के अनुभावों पर भी गयी है।[4] पूर्वोक्त उद्धरणों के अतिरिक्त उनकी सटीक अनुभाव-योजना के कुछ उदाहरण लीजिए। ग्राम-वधूटियाँ सीता से बड़ा ही नाजुक प्रश्न करती हैं ये श्यामल-गौर किशोर तुम्हारे कौन हैं? राम-विषयक उत्तर सीता के अनुभाव देते हैं

कोटि मनोज लजावनिहारे। सुमुखि कहहु को आहिं तुम्हारे॥
सुनि सनेहमय मंजुल बानी। सकुची सिय मन महुँ मुसुकानी॥
तिन्हहिं बिलोकि बिलोकति धरनी। दुहुँ सँकोच सकुचति बरबरनी॥
सकुचि सप्रेम बाल मृगनयनी। बोली मधुर बचन पिकबयनी॥
सहज सुभाय सुभग तन गोरे। नामु लखनु लघु देवर मोरे॥
बहुरि बदनु बिधु अंचल ढाँकी। पिय तन चितइ भौंह करि बाँकी॥
खंजन मंजु तिरीछे नयननि। निज पति कहेउ तिन्हहि सिय सयननि॥[5]

एकाध आलोचक इसमें रीतिशृंगार-काल की नायिका और उसके भद्दे हाव-भाव का दर्शन करते हैं, अंतिम पंक्ति में स्वशब्दवाच्यत्व दोष के आधार पर सारी उक्ति को चमत्कारहीन समझते हैं। उनकी धारणा सर्वथा असंगत है। औचित्य-अनौचित्य देश-काल-समाज-सापेक्ष होता है। उपर्युक्त उद्धरण के पहले की सात और बाद की सात पंक्तियाँ

---

१ रामचरितमानस, २।१५८।३-४
२ रामचरितमानस, १।२७३।४, १।२७४
३ गीतावली, २।५२।१
४. रामचरितमानस, २।१४२
५ रामचरितमानस, २।११७।१-४

मिला कर देखिए। कवि ने उक्त विधान के लिए जिस स्नेह, सौजन्य, विनय और शिष्टाचार के वातावरण की सृष्टि की है वह अत्यत प्रशस्त है। वधूटियो के समुदाय मे सीता की चेष्टाएँ कथमपि गर्हणीय नही हैं। हाव की कल्पना भ्रातिपूर्ण है। हाव आलबन की चेष्टा है। यहाँ पर सीता आश्रय है। आश्रय की चेष्टाएँ अनुभाव कहलाती हैं। अतिम पक्ति से उक्ति के चमत्कार को तनिक भी क्षति नही पहुँचती। वस्तुध्वनि की अपेक्षा रस-ध्वनि चमत्कारपूर्ण हुआ करती है। प्रस्तुत सदर्भ मे स्थायी भाव रति और उसके सचारी भाव व्रीडा की मनोहारी व्यजना परम उत्कृष्ट पद्धति पर हुई है।

अनुभावों के अतर्गत सात्त्विक भावो का विशिष्ट स्थान है। तुलसी ने अश्रु, रोमाच, स्तभ आदि का बहुधा निबधन किया है। स्तन्यस्राव केवल वात्सल्य-जनित अनुभाव है। सूक्ष्मदर्शी तुलसी ने इस सात्त्विक भाव का भी मर्मस्पर्शी चित्रण किया है

विधु बिष बमइ स्रवइ हिमु भागी। होइ बारिचर बारि बिरागी॥
भएँ ज्ञानु बरु मिटइ न मोहू। तुम्ह रामहि प्रतिकूल न होहू॥
मत तुम्हार येहु जो जग कहहीं। सो सपनेहु सुख सुगति न लहहीं॥
अस कहि मातु भरतु हिय लाए। थन पय स्रवहिं नयन जल छाए॥[1]

इस अनुभाव-विधान की भूमिका कितनी सशक्त है! अतिम पक्ति मे की गयी आलिगन, अश्रु और स्तन्यस्राव की निबधना किस सहृदय के हृदय को प्रभावित नही करेगी! मार्मिकता की पराकाष्ठा इस बात मे है कि ये अनुभाव एक सौतेले बेटे के प्रति एक सौतेली माँ के अतिशय वात्सल्य के व्यजक हैं।

संचारी भाव रस-पोषक सभी सचारी भावो के निरूपण मे तुलसी ने अपनी उन्मेषशालिनी प्रतिभा का परिचय दिया है। कतिपय परपरा-प्रसिद्ध सचारी भावो की तो उन्होंने इतनी मार्मिक व्यजना की है कि उनका प्रभाव किसी स्थायी भाव से कम नही है। उदाहरण के लिए हम दैन्य और ग्लानि को ले सकते हैं। 'विनयपत्रिका' मे दैन्य का जो अजस्र प्रवाह है उसकी समता कम-से-कम हिंदी, सस्कृत, प्राकृत और अपभ्रश के साहित्य मे नही मिलेगी, अन्यत्र भी शायद ही कही मिले। एक उदाहरण लीजिए

मोहिं मूढ मन बहुत बिगोयो।
याके लिए सुनहु करुनामय मैं जग जनमि जनमि दुख रोयो॥
सीतल मधुर पियूष सहज सुख निकटहि रहत दूर जनु खोयो॥
बहु भाँतिन स्रम करत मोहबस बृथहि मदमति बारि बिलोयो॥
करम कीच जिय जानि सानि चित चाहत कुटिल मलहि मल धोयो।
तृषावत सुरसरि बिहाय सठ फिरि फिरि बिकल अकास निचोयो॥
तुलसिदास प्रभु कृपा करहु अब मैं निज दोष किछू नहि गोयो।
डासत ही गइ बीति निसा सब कबहुँ न नाथ नींद भरि सोयो॥[2]

ग्लानि की अभिव्यक्ति तुलसी ने विभिन्न पात्रो के सबध से विभिन्न रूपो मे की है। शरीर, वाणी और मन का शैथिल्य 'ग्लानि' है। 'आत्मग्लानि' वह निष्प्राण मनोदशा

१. रामचरितमानस, २।१६६।१-३। और देखिए ७।६।छंद
२. विनयपत्रिका, २४५

है जिसमे व्यक्ति अपनी बुराई का अनुभव स्वय करता है, अथवा निरपराध होने पर भी लोक-दृष्टि मे किसी बुराई के साथ अपने को सबद्ध देखता है। कौशल्या,[1] कैकेयी[2] आदि की ग्लानि पहले प्रकार की है, और भरत की आत्मग्लानि दूसरे प्रकार की। उनका हृदय यह सोच-सोच कर फटा जा रहा है कि सभी अनर्थों का, पिता के स्वर्गवास का, माताओ के वैधव्य का, और राम-सीता के वन-गमन का एकमात्र हेतु मैं ही हूँ[3]

१ को तिभुवन मोहि सरिस अभागी। गति असि तोरि मातु जेहि लागी॥
पितु सुरपुर बन रघुबर केतू। मैं केवल सब अनरथ हेतू॥
२ मोहि समान को पाप निवासू। जेहि लगि सीय राम बनवासू॥
मैं सठु सब अनरथ कर हेतू। बैठ बात सब सुनौं सचेतू॥

शपथो से निर्दोषता प्रमाणित नही की जा सकती और लोकनिंदा से अपने को बचाया नही जा सकता,[4] भरत इस बात को पूरी तरह जानते हैं। उनकी राम-भक्ति निष्काम है, उनका अत करण निर्मल है, परतु अपने हृदय को खोलकर दूसरो को कैसे दिखाएँ? वे माता कौशल्या के सामने अपने को सबसे अधिक अपराधी समझते हैं, इसलिए सफाई-पर-सफाई दिये चले जा रहे हैं

जे अघ मातु पिता सुत मारें। गाइगोठ महिसुर पुर जारें॥
जे अघ तिअ बालक बध कीन्हें। मीत महीपति माहुर दीन्हें।
जे पातक उपपातक अहहीं। करम बचन मन भवकवि कहहीं॥
ते पातक मोहि होहुँ बिधाता। जौं येहु होइ मोर मत माता॥
जे परिहरि हरि हर चरन भजहि भूत गन घोर।
तिन्ह कइ गति मोहि देउ बिधि जौं जननी मतमोर॥[5]...

'उनके एक-एक शब्द से अत करण की स्वच्छता झलकती है। उनकी शपथ उनकी अतर्वेदना की व्यजना है। इस सफाई के सामने हजारो वकीलो की सफाई कुछ नही है, इन कसमो के सामने लाखो कसमे कुछ नही हैं। यहाँ वह हृदय खोल कर रख दिया गया है जिसकी पवित्रता को देख जो चाहे अपना हृदय निर्मल कर ले'।[6]

महाकवि परपरा की परिधि मे सीमित नही रहता। वह अपनी प्रतिभा से मानव-मन की अनालोचित वृत्तियो का उद्घाटन करता है। यह काम काव्यशास्त्रियो का है कि वे उन वृत्तियो का स्वरूप-निरूपण, वर्गीकरण और विश्लेषण करें। तुलसी ने ऐसी अनेक मनोदशाओ का चित्रण किया है जिनका समावेश परपरागत सचारी भावो मे नही किया

१ रामु लखनु सिय बनहि सिधाए। गइउँ न सग न प्रान पठाए॥
येहु सब भा इन्ह आँखिन्ह आगें। तउ न तजा तनु जीव अभागें॥
जिअइ मरइ भल भूपति जाना। मोर हृदय सत कुलिस समाना॥—रामचरितमानस, २।१६६।३-४
२. गरइ गलानि कुटिल कैकेई। काहि कहइ केहि दूपनु देई॥—रामचरितमानस, २।२७३।१
३ रामचरितमानस, २।१६४।३-४; २।१७९।२, ३
४. क्यों हौं आज होत सुचि सपथनि कौन मानिहै साँची।
महिमा मृगी कौन सुकृती की खल बच बिसिखन बाँची॥—गीतावली, २।६२।२
५. रामचरितमानस, २।१६७
६ प० रामचद्र शुक्ल गोस्वामी तुलसीदास, पृ० ९८

जा सकता। खीझ, उदासीनता, प्रसाद, भौंचक्कापन और आत्मोपहास इसी प्रकार की मनोदशाएँ हैं। प्रतिकार के अभाव मे व्यापक चित्त की झुँझलाहट 'खीझ' है

मींजि मींजि हाथ धुनै माथ दसमाथ तिय तुलसी तिलो न भयो बाहिर अगार को।
खीझति मँदोवै सविषाद देखि मेघनाद बयो लुनियत सब याही दाढीजार को॥[1]

क्षोभ आदि से उत्पन्न वैराग्य-सकीर्ण क्षणिक मानसिक शैथिल्य 'उदासीनता' है

हमहुँ कहवि अब ठकुरसोहाती। नाहिं त मौन रहव दिन राती।
कोउ नृप होइ हमहि का हानी। चेरि छाड़ि अब होब कि रानी॥[2]

किसी अपरिचित के रूप-गुण के साक्षात्कार से प्रफुल्लित चित्त का सहज विकास 'प्रसाद' है। राम आदि को देखकर वन-पथ की नारियाँ कहती है

पथिक गोरे साँवरे सुठि लोने।
संग सुतिय जाके तन ते लही है द्युति सोनसरोरुह सोने॥
बय किसोर सरि पार मनोहर बयस सिरोमनि होने।
सोभा सुधा आलि अँचवहु करि नयन मजु मृदु दोने॥[3]

किसी अप्रत्याशित और असभाव्य घटना के कारण आश्चर्यचकित हो जाना 'भौचक्कापन' है। रावण को यह आशा और सभावना नही थी कि कोई समुद्र पर पुल बाँध कर चढ आएगा। इसलिए सेतु-बध का समाचार सुनकर वह हक्का-वक्का रह गया

सुनत स्रवन बारिधि बधाना। दसमुख बोलि उठा अकुलाना॥
बाँध्यो बननिधि नीरनिधि जलधि सिंधु बारीस।
सत्य तोयनिधि कंपति उदधि पयोधि नदीस॥[4]

पश्चात्ताप और ग्लानि के कारण अपना ही मजाक उडाना 'आत्मोपहास' है। सोने का मृग कही देखा-सुना नही गया।[5] अपनी पत्नी को छोडकर राम उस मायामृग के पीछे दौडे। अब वियोग मे भटक रहे हैं। उन्हे लगता है कि सपत्नीक विचरते हुए पशु-पक्षी मेरा उपहास कर रहे है

नारि सहित सब खग मृग बृदा। मानहुँ मोरि करत हहिं निंदा॥
हमहि देखि मृग निकर पराहीं। मृगी कहहिं तुम्ह कहँ भय नाहीं॥
तुम्ह आनद करहु मृगजाए। कचन मृग खोजन ए आए॥[6]

चरित्राकन

चरित्र-विधान कथात्मक काव्य का महत्त्वपूर्ण अग है, क्योकि उसके पात्र ही

---

१. कवितावली, ५।११
२ रामचरितमानस, २।१५।२, ३
३. गीतावली, २।३।१२
४. रामचरितमानस, ६।५
५ नीतो न केनापि न दृष्टपूर्वो न श्रूयते हेममयः कुरग।
तथापि तृष्णा रघुनन्दनस्य विनाशकाले विपरीतबुद्धि॥
६. रामचरितमानस, ३।३७।२-३

संपूर्ण घटना-चक्र और भाव-राशि के आधार होते हैं। निपुण कवि अवधानपूर्वक पात्रों का चरित्रांकन करता है। 'रामचरितमानस' का मुख्य प्रतिपाद्य राम-चरित ही है। 'गीतावली' आदि अन्य कृतियों में भी तुलसी ने पात्रों की योजना करके उनकी चारित्रिक विशेषताओं का प्रकाशन किया है। उनके द्वारा किये गये चरित्रांकन का विवेचन 'रामचरितमानस' की समीक्षा के अंतर्गत किया जाएगा। यहाँ पर कुछ प्रमुख विशेषताओं का दिग्दर्शन यथेष्ट होगा।

तुलसी के पात्रों में जाति, वर्ण, आश्रम, वय, पद, लिंग, रूप और गुण की जो असाधारण विविधता पायी जाती है वह विरले कवियों की कृतियों में देखने को मिलती है। इस वैविध्य के फलस्वरूप उनके काव्य में पार्थिव और पुराण-कल्पित जीवन की समग्रता का निदर्शन हुआ है। जाति-भेद की दृष्टि से उनके पात्रों के पाँच वर्ग हैं मानव, दानव, देव, वानर-भालू और तिर्यक्। वय-भेद से बालक, युवा और वृद्ध सभी हैं। जिस प्रकार पुरुष-पात्रों की विराट् योजना की गयी है, उसी प्रकार नारी-पात्रों की। इस संबंध में एक प्रलक्ष्य बात यह है कि तुलसी ने राम-भक्ति के अधिकारियों में नपुंसकों की भी गणना की है, किंतु उनका एक भी पात्र नपुंसक नहीं है। उनके मानव-पात्र ब्रह्मचर्य गृहस्थ, वानप्रस्थ और सन्यास चारों आश्रमों के हैं। वर्ण-भेद की दृष्टि से यह तथ्य ध्यान देने योग्य है कि वर्णाश्रम-धर्म के विविध प्रसंगों में वैश्य-धर्म का भी प्रतिपादन करने वाले कवि ने किसी वैश्य-पात्र की निबंधना नहीं की। तुलसी ने मुख्य और गौण पात्रों को राम-कथा में उनके योगदान के अनुसार अधिक या कम स्थान दिया है, परंतु उनके चित्रांकन में अंतर्यामी दृष्टि से काम लिया है।

राम के ईश्वरत्व को अलग रख कर तुलसी के पात्रों पर दृष्टिपात कीजिए। सभी में प्रकारात्मकता और व्यक्तिमत्ता एक-साथ दिखायी पड़ेगी। भारतीय काव्य-परंपरा और समाज-व्यवस्था में विभिन्न पात्रों की कुछ प्रतिष्ठापित विशेषताएँ हैं। उदाहरण के लिए नायक, नायिका, प्रतिनायक आदि के निर्धारित गुण हैं, राजा, सचिव, पत्नी आदि के निश्चित धर्म हैं। सबके लिए एक साँचा बना हुआ है। तुलसी के पात्र उस साँचे में ढले हुए हैं। यह उनकी प्रकारात्मकता है। परंतु उनका अपना वैशिष्ट्य भी है। राम वैसे ही नहीं हैं जैसे कि कृष्ण, अर्जुन, नल या उदयन। सीता का स्वरूप राधा, द्रौपदी, दमयंती या वासवदत्ता से बहुत-कुछ भिन्न है। यह व्यक्तिमत्ता है। इसी प्रकार की प्रकारात्मकता और व्यक्तिमत्ता राजा दशरथ, सचिव सुमंत्र, पत्नी कौशल्या आदि में पायी जाती है।

स्वाभाविक गुणों की दृष्टि से पात्रों के दो वर्ग हैं . आदर्श या असामान्य और यथार्थ या सामान्य। परंपरागत कल्पना अथवा कवि की स्वमनीषा के आधार पर निर्मित प्रतिमान के अनुसार निबद्ध असामान्य पात्र आदर्श हैं। उनमें त्रिगुणात्मिका प्रकृति के किसी एक गुण की प्रबलता पायी जाती है। राम, परशुराम, रावण आदि में क्रमशः सत्त्वगुण, रजोगुण, अथवा तमोगुण की अतिशयता है। सामान्य मानव की भाँति विभिन्न परिस्थि- तियों में अपनी सात्त्विक, राजस और तामस वृत्तियों का परिचय देने वाले पात्र यथार्थ हैं, जैसे लक्ष्मण, कैकेयी, मंथरा आदि। तुलसी ने उक्त दोनों प्रकार के पात्रों का उनके स्वभाव और परिस्थिति के अनुसार सटीक निरूपण किया है।

नायक के केंद्र-बिंदु से भी पात्रो के दो वर्ग है नायक-पक्ष के पात्र और प्रति-नायक-पक्ष के पात्र। प्रथम वर्ग मे वे सभी पात्र आते हैं जो राम की कार्य-सिद्धि में सहायक हैं, जैसे विश्वामित्र, हनुमान्, विभीषण आदि। 'प्रतिनायक' शब्द यहाँ पर नायक के विरोध का व्यजक है। वे सभी पात्र जो राम के मार्ग मे बाधक है, प्रतिनायक-पक्ष के अतर्गत रखे जा सकते हैं, चाहे रावण से सबद्ध हो या न हो। रावण, मारीच, जयत, बालि आदि इसी प्रकार के पात्र हैं। परशुराम का अपना वैशिष्ट्य है। वे स्वय विष्णु के अवतार हैं, धनुष-यज्ञ मे अहकारी राजाओ को आतकित करके राम की शक्तिमत्ता और श्रेष्ठता स्थापित करते हैं। इस प्रकार 'रामचरितमानस' मे वे स्पष्टतया राम के सहायक सिद्ध होते हैं।

पात्रो के चरित्राकन मे तुलसी ने तीन पद्धतियाँ अपनायी हैं। कही पर उन्होने पात्रविशेष की अतर्वृत्ति का निरूपण करके उसकी चरित्रगत विशेषता का उद्घाटन किया है[1], कही पर पात्र के बाह्य रूप का चित्रण करके उसके सहज गुणो का निर्देश किया है[2] और कही पर पात्रो के क्रिया-कलाप का वर्णन करके उनके चरित्र का साक्षात् निदर्शन किया है।[3] इस प्रकार बहुविध पात्रो के स्वाभाविक चरित्र-चित्रण द्वारा उन्होने अपने काव्य के भाव-पक्ष को पुष्ट किया है।

वस्तु-वर्णन

कथात्मक काव्य का रचयिता कोरे इतिवृत्त-वर्णन द्वारा अपनी कृति को सरस नही बना सकता। इतिवृत्तात्मक अशो को काव्योचित रमणीयता प्रदान करने के लिए चित्ताकर्षक वस्तु-वर्णन भी अपेक्षित है। दोनो के उदाहरण लीजिए[4]

१ आगे चले बहुरि रघुराया। रिष्यमूक पर्वत नियराया॥
तहँ रह सचिव सहित सुग्रीवा। आवत देखि अतुल बल सींवा॥
अति सभीत कह सुनु हनुमाना। पुरुष जुगल बल रूप निधाना॥

---

१. बैठि नमित मुख सोचति सीता। रूप रासि पति प्रेम पुनीता॥
चलन चहत बन जीवननाथू। केहि सुकृती सन होइहि साथू॥
की तनु प्रान कि केवल प्राना। बिधि करतबु कछु जाइ न जाना॥
—रामचरितमानस, २।५८।१-२

२. अगद दीख दसानन बैसा। सहित प्रान कज्जलगिरि जैसा॥
भुजा बिटप सिर सृग समाना। रोमावली लता जनु नाना॥
मुख नासिका नयन अरु काना। गिरि कदरा खोह अनुमाना॥
।—रामचरितमानस, ६।१६।२-३

३. सीय सकुच बस उतरु न देई। सो सुनि तमकि उठी कैकेई॥
मुनि पट भूषन भाजन आनी। आगें धरि बोली मृदु बानी॥
नृपहि प्रानप्रिय तुम्ह रघुबीरा। सील सनेह न छाँड़िहि भीरा॥
सुकृतु सुजसु परलोकु नसाऊ। तुम्हहि जान बन कहिहि न काऊ॥
अस बिचारि सोइ करहु जो भावा। राम जननि सिख सुनि सुखु पावा॥
—रामचरितमानस, २।७९।१-३

४. क्रमश, रामचरितमानस, ४।१।१-२, १।२९८।२-३

धरि बटु रूप देखु तै जाई। कहेसु जानि जिग्रँ सयन बुझाई ॥
२. भरत सकल साहनी बोलाए। ग्रायेसु दीन्ह मुदित उठि धाए ॥
रचि रुचि जीन तुरग तिन्ह साजे। बरन बरन बर बारि बिराजे ॥
सुभग सकल सुठि चचल करनीं। श्रय इव जरत धरत पग धरनीं ॥
नाना जाति न जाहिं बखाने। निदरि पवनु जनु चहत उड़ाने ॥

पहले उद्धरण मे यथार्थ इतिवृत्त-वर्णन है। कथा निर्बाध गति से आगे बढ रही है। कवि ने उसमे चमत्कार भरने का कोई प्रयास नही किया। दूसरे मे इतवृत्त इतना ही है कि भरत के आदेश पर माईसो ने घोडे कम दिये। यहाँ पर कवि ने वृत्त को अलकृत वस्तु-वर्णन द्वारा चमत्कारपूर्ण बनाया है। ऊर्जस्वी घोडे किस प्रकार खूंदते हैं, जमते हैं, अलफ होते हैं, नाचते हैं उनके इस चचल स्वभाव एव व्यापार का कवि ने अतर्दृष्टि से साक्षात्कार किया और उत्कृष्ट उत्प्रेक्षा के माध्यम से वर्ण्य वस्तु को लालित्यमय बना दिया। उन तुरगो के लिए धरती मानो दहकता हुआ लोहा है जिस पर वे पैर नही रखना चाहते, वायु को मात देकर आकाश में उड जाना चाहते हैं।

दोनो वर्णनो मे अतर क्यो है ? इसलिए कि पहले मे तुलसी का उद्देश्य केवल कथा कहना है और दूसरे में वे कथा के साथ काव्य-रचना करना चाहते हैं। यह उनकी इच्छा है। उन्होने कही पर कथाकार के पद से इतिवृत्त-वर्णन किया है, कहीं पर कवि की दृष्टि से कवित्वमय वर्णन किया है, और कही पर भक्त के आसन से मोक्षशास्त्रीय वर्णन किया है। इस त्रैविध्य को दृष्टि-पथ मे रख कर ही आलोचक उनके प्रति न्याय कर सकता है। 'रामचरितमानस' के इतिवृत्तप्रधान और मोक्षधर्म-निरूपक अशो की सस्कृत के 'रघुवश' आदि काव्यो मे तुलना न्यायसगत नही है। 'रघुवश' आदि काव्य-विशिष्ट समास-पद्धति से लिखे गये हैं। किंतु 'रामचरितमानस' मोक्ष-काव्य-विशिष्ट व्यास-पद्धति पर रचा गया है। इसीलिए उसमे काव्य का लालित्य-विधान भी है, और स्थान-स्थान पर स्तुतियो, गीताओ एव मोक्षपरक वस्तु-वर्णनो की योजना भी है।

तुलसी द्वारा किये गये वस्तु-वर्णन के चार भेद किये जा सकते हैं रूप-वर्णन, व्यापार-वर्णन, सस्कृति-वर्णन और प्रकृति-वर्णन। इन चार प्रकार के वस्तु-वर्णनो से मिलता-जुलता एक पाँचवें प्रकार का वर्णन भी तुलसी-साहित्य मे पाया जाता है सिद्धात-वर्णन। राजधर्म, नवधा-भक्ति, ज्ञानदीपक, सत-लक्षण, भक्तिमणि आदि के वर्णन इसी वर्ग के अतर्गत आएंगे।

तुलसी ने प्रबध, निबध और मुक्तक तीनो प्रकार की रचनाओ मे वस्तु-वर्णन किया है। उनकी दो विशेषताएँ ध्यान देने योग्य हैं। एक यह कि उन्होने प्राय सश्लिष्ट चित्रण किया है, क्योकि वस्तुओ की सश्लिष्ट योजना ही व्यापक बिंब-ग्रहण कराने और घनीभूत प्रभाव उत्पन्न करने में समर्थ होती है। दूसरी यह कि कही पर उन्होंने केवल काव्य-दृष्टि से वर्णन किया है, कहीं केवल भक्ति-दृष्टि से, और कही दोनो दृष्टियों से।[1]

---

१ क्रमश उदाहरण—गीतावली, १।३२, विनयपत्रिका, १०, रामचरितमानस, १।९२।१-३

रूप-वर्णन : आलबन-विभाव के प्रसग मे रूप-वर्णन की चर्चा भी की जा चुकी है। भक्तकवि होने के कारण तुलसी का मन भजनीय पात्रो के रूप-वर्णन मे ही रमा है। 'रामचरितमानस', 'गीतावली', 'कवितावली' और 'विनयपत्रिका' मे उन्होने राम, शिव, सीता, बिंदुमाधव आदि का विशद रूप-वर्णन किया है। जिन पात्रो का रूप वर्णन किया गया है वे हमारे सामने दो रूपो मे आते हैं स्तुत्य देवता के रूप मे[1] और काव्य-निबद्ध पात्र के रूप मे। पहले रूप मे किया गया वर्णन भक्तजनो को तो आनद देता है, किंतु काव्य-रसिको को नीरस प्रतीत होता है। काव्यदृष्टि से 'गीतावली' और 'रामचरित-मानस' के बालकाड तथा अयोध्याकाड मे राम-सीता का जो बहुश रूप-वर्णन हुआ है, उसमे लालित्य-विधान की परम परिणति दिखायी देती है। काव्य मे नखशिख-वर्णन करने की रूढि बहुत पुराने समय से प्रचलित रही है। तुलसी ने भी उसका पालन किया है, परतु उन्होने केवल राम का नख-शिख-वर्णन किया है, किसी अन्य पात्र का नही। कही पर उत्प्रेक्षाओ की झडी लगाते हुए आलकारिक चित्रण किया है,[2] और कही पर अलकार के आग्रह से मुक्त स्वाभाविक वर्णन है।[3] दूसरे प्रकार का एक मनोहर चित्र है

> सादर सुमुखि बिलोकि राम सिसु रूप अनूप भूप लिये कनियाँ।
> सुंदर स्याम सरोज बरन तनु नखसिख सुभग सकल सुखदनियाँ॥
> अरुन चरन नख जोति जगमगति रुनुझुनु करत पाँय पैंजनियाँ।
> कनक रतन मनि जटित रटति कटि किंकिनि कलित पीतपट तनियाँ॥
> पहुँची करनि पदिक हरिनख उर कठुला कठ मजु गजमनियाँ।
> रुचिर चिबुक रद अधर मनोहर ललित नासिका लसति नथुनियाँ॥
> बिकट भृकुटि सुखमानिधि आनन कल कपोल काननि नगफनियाँ।
> भाल तिलक मसिबिंदु बिराजत सोहति सीस लाल चौतनियाँ॥
> मनमोहनी तोतरी बोलनि मुनि मन हरनि हँसनि किलकनियाँ।
> बालसुभाय बिलोल बिलोचन चोरति चितहि चारु चितवनियाँ॥
> सुनि कुलबधू झरोखनि झाँकति रामचद्र छबि चद्रबदनियाँ।
> तुलसिदास प्रभु देखि मगन भई प्रेमबिबस कछु सुधि न अपनियाँ॥[4]

रामचद्र के सौदर्य की दर्शिकाओ के रूप मे झरोखो से झाँकने वाली चद्रवदनी कुलवधुओ की योजना करके कवि ने सोने को सुवासित कर दिया है।

निर्वासित राम को पहुँचा कर लौटे हुए सुमत्र अयोध्या मे प्रवेश कर रहे हैं। इस इतिवृत्त को हृदय-सवेद्य बनाने के लिए कितना मार्मिक बिंब-विधान किया गया है

> बिप्र बिबेकी बेदबिद समत साधु सुजाति।
> जिमि धोखें मद पान कर सचिव सोच तेहि भाँति॥

---

१. राम रामचरितमानस, १।१८७।छद, विनयपत्रिका, ४५, शिव · रामचरितमानस, ७।१०८, रुद्राष्टक, विनयपत्रिका, १०-११, बिंदुमाधव विनयपत्रिका, ६२-६३

२. जैसे गीतावली, १।२६, १।१०८

३. गीतावली, १।३२

४ गीतावली, १।३४

जिमि कुलीन तिय साधु सयानी। पतिदेवता करम मन बानी ॥
रहै करम बस परिहरि नाहू। सचिव हृदय तिमि दारुन दाहू ॥
लोचन सजल डीठि भइ थोरी। सुनइ न स्रवन विकल मति भोरी ॥
सूखहिं अधर लागि मुँह लाटी। जिउ न जाइ उर अवधि कपाटी ॥
बिवरन भएउ न जाइ निहारी। मारेसि मनहुँ पिता महतारी ॥
हानि गलानि विपुल मन व्यापी। जमपुर पथ सोच जिमि पापी ॥[1]

विभिन्न प्रसगो मे वर्णन के भीतर वर्णन का चमत्कार भी कम नहीं है। तुलसी राम की बारात का वर्णन कर रहे थे। उसके अतर्गत चपल तुरग पर सवार राम के रूप का वर्णन करने लगे। उस रूप को देखकर देवताओ की क्या मनोदशा हुई, इसका प्रभावशाली वर्णन द्रष्टव्य है

सकरु राम रूप अनुरागे। नयन पचदस अति प्रिय लागे ॥
हरि हित सहित रामु जब जोहे। रमा समेत रमापति मोहे ॥
निरखि राम छवि विधि हरषाने। आठै नयन जानि पछिताने ॥
सुरसेनप उर वहुत उछाहू। विधि ते डेवढ लोचनलाहू ॥
रामहि चितव सुरेस सुजाना। गौतमश्रापु परम हित माना ॥
देव सकल सुरपतिहि सिहाहीं। आजु पुरदर सम कोउ नाहीं ॥[2]

व्यापार-वर्णन पात्रो के व्यापारो (क्रियाओ) का वर्णन सविधानक को सजीव वनाता है। इससे कथात्मक वृत्त मे नाटकीय तत्वो का समावेश होता है जिससे काव्य की आकर्षण-शक्ति वढ जाती है और भावक अधिक तन्मयता से बिंवग्रहण करता है। यद्यपि तुलसी ने प्राय सभी इतिवृत्तात्मक प्रसगो मे व्यापारो का वर्णन किया है तथापि सुदरकाड और लकाकाड के व्यापार-वर्णन विशेप उत्कृष्ट है। कारण यह है कि सघर्प और सवेग की स्थिति मे ही हृदय को झकझोर देने वाले व्यापारो का स्वाभाविक विधान होता है। तुलसी के व्यापार-वर्णन की प्रवीणता के दिग्दर्शन के लिए दो उदाहरण पर्याप्त होगे। लका दहन की भूमिका मे हनुमान् की लीला

लाइ लाइ आगि भागे बालजाल जहाँ तहाँ लघु ह्वै निवुक गिरि मेरु ते बिसाल भो।
कौतुकी कपीस कूदि कनक कँगूरा चढ्यो रावन भवन चढि ठाढो तेहि काल भो।
तुलसी बिराज्यो व्योम वालधी पसारि भारी देखें हहरात भट काल सो कराल भो ॥
तेज को निधान मानो कोटिक कृसानु भानु नख विकराल मुख तैसो रिस लाल भो ॥[3]

रावण-हनुमान् के आकाश-युद्ध का सजीव वर्णन

पुनि रावन तेहि हतेउ पचारी। चलेउ गगन कपि पूँछ पसारी ॥
गहिसि पूँछ कपि सहित उडाना। पुनि फिरि भिरेउ प्रवल हनुमाना ॥
लरत अकास जुगल सम जोधा। एकहि एक हनत करि क्रोधा ॥

---

१ रामचरितमानस, २।१४४-१४५।८-३
२ रामचरितमानस, १।३१७।१-४
३ कवितावली, ५।४

सोहहिं नभ छल बल बहु करही। कज्जल गिरि सुमेरु जनु लरहीं॥[1]

सस्कृति-वर्णन 'सस्कृति' एक प्रकार से 'प्रकृति' का विलोम है। जो निसर्गत उत्पन्न है वह प्रकृति है। जो मानव की रचना है, वह सस्कृति है। अत प्रस्तुत प्रसग मे 'सस्कृति-वर्णन' का तात्पर्य है मानव-रचित वस्तुओ का वर्णन। नगर, धनुप-यज्ञ, नहछू, वितान, बारात, विवाह आदि के वर्णन इसी प्रकार के हैं। तुलसी ने मगल-सस्कारो के वर्णन मे बहुत रुचि ली है। उनके तीन मगलकाव्यो 'रामललानहछू', 'जानकीमगल' और 'पार्वतीमगल' के वर्ण्य विपय नहछू और विवाह ही हैं। 'रामचरितमानस' मे भी शिव-पार्वती तथा राम-सीता के विवाहो का जम कर विस्तार से वर्णन किया गया है। शिवजी की बारात का रोचक दृश्य देखिए

कोउ मुखहीन विपुलमुख काहू। बिनु पद कर कोउ बहु पद बाहू॥
विपुलनयन कोउ नयन बिहीना। रिष्ट पुष्ट कोउ अति तन खीना॥
तन खीन कोउ अति पीन पावन कोउ अपावन गति धरें।
भूषन कराल कपाल कर सब सद्य सोनित तन भरें।
खर स्वान सुअर सृकाल मुख गन बेष अगनित को गनै।
बहु जिनिस प्रेत पिसाच जोगि जमात बरनत नहि बनै॥[2]

अयोध्या से प्रस्थान करनेवाली बारात पर दृष्टिपात कीजिए। यह एक राजा की बारात है। इसलिए इसमे हाथियो, ऊँटो, रथो, घोडो आदि का ताँता बँधा हुआ है। दशरथ के दरवाजे पर बडी चहल-पहल है, बडा धूम-धडाका है। क्रीडा-कौतुक और गाजे-बाजे का समाँ बँधा हुआ है

गरजहिं गज घटा धुनि घोरा। रथ रव बाजि हिंस चहुँ ओरा॥
निदरि घनहि घुम्मरहिं निसाना। निज पराइ कछु सुनिअ न काना॥
महा भीर भूपति के द्वारें। रज होइ जाइ पषान पवारें॥
चढ़ी अटारिन्ह देखहिं नारीं। लिए आरती मगल थारी॥
सुर नर नारि सुमगल गाईं। सरस राग बाजहिं सहनाईं॥
घट घट धुनि बरनि न जाहीं। सरव करहिं पाइक फहराहीं॥
करहिं बिदूषक कौतुक नाना। हास कुसल कल गान सुजाना॥
तुरग नचावहिं कुँअर बर अकनि मृदग निसान।
नागर नट चितवहिं चकित डगहिं न ताल बँधान॥[3]

राम का विवाह किसी ऐरे-गैरे-पचकल्यानी का विवाह नही है। तुलसी को इस बात का ध्यान है कि वह एक अद्वितीय राजकुमार और एक अनुपम राजकन्या का परिणय है। इसलिए विवाह-मडप का निर्माण भी उनके अनुरूप होना चाहिए। इस गुरुतर कार्य का दायित्व वितान-विधि-कुशल गुणियो को सौपा गया

बिधिहि बदि तिन्ह कीन्ह अरभा। बिरचे कदलि कनक के खभा॥

१. रामचरितमानस, ६।६५।२-४
२ रामचरितमानस, १।९३।८-छद
३. रामचरितमानस, १।३०१।१-१।३०२

हरित मनिन्ह के पत्र फल पदुमराग के फूल।
रचना देखि बिचित्र अति मनु बिरंचि कर भूल॥
बेनु हरित मनि मय सब कीन्हे। सरल सपरब परहिं नहिं चीन्हे॥
कनक कलित अहिबेलि बनाई। लखि नहिं परै सपरन सुहाई॥
तेहि के रचि पचि बंध बनाए। बिच बिच मुकुतादाम सुहाए॥
मानिक मरकत कुलिस पिरोजा। चीरि कोरि पचि रचे सरोजा॥
किए भृंग बहु रंग बिहंगा। गुंजहिं कूजहिं पवन प्रसंगा॥
सुरप्रतिमा खंभन्ह गढि काढीं। मंगल द्रव्य लिए सब ठाढीं॥ ··
रचे रुचिर वर वंदनिवारे। मनहुँ मनोभव फंद सँवारे॥[1]

जहाँ पर कवि का उद्देश्य सौंदर्य या महिमा का निरूपण करना है वहाँ पर उसने वर्ण्य वस्तु का पूरा विवरण प्रस्तुत किया है, परंतु अन्य स्थलो पर संक्षिप्त वर्णन करके कथा को आगे बढा दिया है, जैसे जेंवनार[2] के प्रसंग मे। राम-सीता की सुंदरता का वर्णन उन्हे अतिशय प्रिय है। भाँवर के समय का वर्णन ललित बिंब-योजना का उत्तम नमूना है

कुँअरु कुँअरि कल भाँवरि देहीं। नयन लाभु सब सादर लेहीं॥
जाइ न बरनि मनोहर जोरी। जो उपमा कछु कहौं सो थोरी॥
राम सीय सुंदर प्रतिछाहीं। जगमगाति मनि खंभन्ह माहीं॥
मनहुँ मदन रति धरि बहु रूपा। देखत राम बिआहु अनूपा॥
दरस लालसा सकुच न थोरी। प्रगटत दुरत बहोरि बहोरी॥[3]

मंडप मे चारो ओर मणियो के खंभे लगे हुए हैं। भाँवर देते समय सीता-राम जिस खंभे के सामने पहुँचते हैं उसमे उनका प्रतिबिंब झलकने लगता है। आगे बढ जाने पर प्रतिबिंब तिरोहित हो जाता है। उस पर कवि की उत्प्रेक्षा है कि रति और कामदेव सीता तथा राम का अनुपम विवाह देख रहे हैं। दर्शन की उत्कट लालसा से वे प्रकट होते हैं, किंतु संकोच के मारे छिप जाते हैं। इस वर्णन मे यथार्थ और कल्पना का कितना मणि-कांचन-योग है!

प्रकृति-वर्णन दार्शनिको ने तत्त्वो के दो विभाग किये हैं आत्मा और अनात्मा। चेतन आत्मा से इतर संपूर्ण जड जगत् की संज्ञा 'प्रकृति' है। उसमे भोगायतन-रूप समस्त शरीरों, सारे भोग्य पदार्थों एवं अखिल भोग-भूमियो का अंतर्भाव है। तुलसी की मान्यता है कि यह कार्यकारण-रूपा प्रकृति राम से भिन्न कोई वस्तु नही है

प्रकृति महतत्त्व सब्दादि गुन देवता व्योम मरुदग्नि अमलांबु उर्वी।
बुद्धि मन इंद्रिय प्रान चित्तातमा काल परमानु चिच्छक्ति गुर्वी।
सर्बमेवात्र त्वद्रूप भूपालमनि व्यक्तमव्यक्त गतभेद बिष्नो।[4]

---

१ रामचरितमानस, १।२८७।४-१।२८९।१
२ रामचरितमानस, १।३२८-१।३२९।३
३ रामचरितमानस, १।३२५।१-३
४. विनयपत्रिका, ५४।२-३

साहित्यालोचन मे 'प्रकृति' शब्द का व्यवहार उपर्युक्त विस्तृत अर्थ मे नही होता। उसका अर्थ-सकोच हो गया है। काव्य-विवेचन के सदर्भ मे उसके दो अर्थ ग्रहण किये जाते हैं। एक अर्थ है स्वभाव। पूर्वोक्त प्रकृति त्रिगुणात्मिका मानी गयी है। तीन गुण हैं सत्त्वगुण, रजोगुण और तमोगुण। इन गुणो के अनुसार व्यक्तियो की प्रकृति अर्थात् स्वभाव के तीन प्रकार हैं सात्त्विक, राजस, एव तामस। आलोचना मे पात्रो का चरित्र-विश्लेषण करते हुए उनकी सात्त्विक आदि प्रकृतियो की चर्चा की जाती है। गुणो के अनुसार ही मनोवृत्तियाँ बनती हैं। अत मनोवृत्ति के लिए 'अत प्रकृति' का प्रयोग टकसाली हो गया है।

दूसरा अर्थ अँगरेजी से आया है। जब हिंदी-आलोचक 'काव्य मे प्रकृति-वर्णन' की बात करते हैं तब उनका 'प्रकृति' शब्द अँगरेजी 'नेचर' का रूपातर होता है। तदनुसार प्रकृति-वर्णन का तात्पर्य है मानव एव मानव-निर्मित वस्तु-समूह (सस्कृति) से इतर पदार्थों का वर्णन। वन, पर्वत, सरिता, सागर पशु, पक्षी, बादल, बिजली, चद्रमा, तारे आदि उसके विषय हैं। इस प्रकार 'प्रकृति' के अतर्गत चेतन प्राणी भी हैं, और अचेतन पदार्थ भी।

चैतन्य की दृष्टि से तुलसी-साहित्य मे वर्णित प्रकृति के दोनो रूप उपलब्ध होते हैं चेतन और अचेतन। चेतन के पुन दो रूप हैं नैसर्गिक और मानवीकृत। उदाहरणार्थ[1]

१. चातक कोकिल कीर चकोरा। कूजत विहग नटत कल मोरा॥

२. अवलोकि अलौकिक रूप मृगी मृग चौंकि चकै चितवै चित दै।
न डगै न भगै जिय जानि सिलीमुख पच धरे रतिनायक है॥

पहले उद्धरण मे पक्षियो का चित्रण उनके नैसर्गिक रूप मे किया गया है। दूसरे मे कवि ने मृग-मृगी का स्वाभाविक वर्णन करते हुए भी उन पर मानवीय विशेषता का आरोप किया है कामदेव के रूप मे राम की कल्पना मानव ही कर सकता है।

इसी प्रकार अचेतन प्रकृति के भी दो रूप है नैसर्गिक तथा चेतनीकृत। उदाहरण हैं[2]

१ बिटप बेलि नव किसलय कुसुमित सघन सुजाति।
कंद मूल जल थल रुह अगनित अनबन भाँति॥

२ नदी उमगि अंबुधि कहुँ धाईं। सगम करहि तलाव तलाईं॥

३ श्रीफल कनक कदलि हरषाहीं। नेकु न सक सकुच मन माहीं॥
सुनु जानकी तोहि बिनु आजू। हरषे सकल पाइ जनु राजू॥

वृक्ष, लता आदि प्रकृति के अचेतन (जिनमे चेतना का विकास नही हुआ है) पदार्थ हैं। पहले उद्धरण मे उनका नैसर्गिक रूप चित्रित हुआ है। दूसरे मे अचेतन नदी, अबुधि आदि पर चेतनता का आरोप किया गया है, किंतु उनका मानवीकरण नही हुआ है, काम-प्रवृत्ति पशु-पक्षियो मे भी समान रूप से पायी जाती है। तीसरे उद्धरण मे श्रीफल

१. रामचरितमानस, १।२२७।३; कवितावली, २।२७

२. गीतावली, २।४७।३, रामचरितमानस, १।८५।१, ३।३०।७

आदि का चेतनीकरण के साथ-साथ मानवीकरण भी हुआ है। श्रीफल और कदली अपने को सीता के उरोजों तथा जांघों का प्रतिस्पर्धी समझते थे। सीता के सामने वे श्रीहत थे। अब सीता के न रहने पर उन्हें हर्ष हो रहा है। इस प्रकार की मानव-भावना के आरोप से उनका मानवीकरण किया गया है।

काव्य मे चित्रित प्रकृति के दो रूप होते हैं मुख्य और गौण। प्रकृति का प्रांगण रमणीयताओ की क्रीडा-भूमि है। अपने सांस्कृतिक परिवेश से ऊबा हुआ मनुष्य प्रकृति की छाया मे सुखद विश्राम पाता है। यह उसकी स्वाभाविक प्रवृत्ति है। प्रकृति के दृश्य उसे मुग्ध करते हैं। वह उनसे प्रेरणा ग्रहण करता है। कवि प्रकृति के प्रभाव को, उसके प्रेरणाप्रद दृश्यो को, वाणी-बद्ध करता है। इस प्रकार प्रकृति को ही वह अपना प्रतिपाद्य विषय बनाता है, उसकी योजना किसी अन्य वस्तु के निरूपण का पोषण करने के लिए नही करता। यह काव्य-वर्णित प्रकृति का मुख्य रूप है। इसी को 'आलंबन-रूप मे प्रकृति-चित्रण' भी कहते है।

आरंभ में ही कहा जा चुका है कि तुलसी संपूर्ण प्रकृति को राम-रूप मानते हैं। अत उनके साहित्य मे सर्वथा स्वतंत्र प्रकृति के चित्र-विधान की आशा नहीं की जानी चाहिए। उनकी आध्यात्मिक दृष्टि सभी वर्णनो को घेरे हुए है। उनके इस परिप्रेक्ष्य का ध्यान रखते हुए उनकी रचनाओ मे वर्णित प्रकृति के मुख्य रूप की चर्चा हम केवल सापेक्ष दृष्टि से करते हैं। कुछ ही स्थल ऐसे हैं जहाँ उन्होने प्रकृति को प्रतिपाद्य बनाया है। चित्रकूट[1] और पंपा-सरोवर[2] का वर्णन आलंबन-रूप मे किया गया है, किंतु उन स्थलो पर भी आध्यात्मिकता और उद्दीपन-तत्त्व का कुछ-न कुछ समावेश कर दिया गया है। पंचवटी का वर्णन प्रकृति के आलंबन-रूप का सटीक उदाहरण है

नाथ देखिअहिं बिटप बिसाला। पाकरि जंबु रसाल तमाला॥
तिन्ह तरुबरन्ह मध्य बटु सोहा। मंजु बिसाल देखि मनु मोहा॥
नील सघन पल्लव फल लाला। अबिचल छांह सुखद सब काला॥
मानहुँ तिमिर अरुन मय रासी। बिरची बिधि सकेलि सुषमा सी॥[1]

तुलसी के साहित्य में काव्यधर्म और मोक्षधर्म का समन्वय है। प्रकृति-वर्णन मे

---

१ जलजुत विमल सिलनि झलकत नभ बन प्रतिबिंब तरंग।
मानहु जग रचना विचित्र बिलसति बिराट अँग अंग॥
मंदाकिनिहि मिलत झरना झरि झरि भरि भरि जल आछे।
तुलसी सकल सुकृत सुख लागे मानों रामभगति के पाछे॥—गीतावली, २।५१।५-६
और भी देखिए रामचरितमानस, २।१३२।२, २।२३५।१-२।२३६

२ बिकसे सरसिज नाना रंगा। मधुर मुखर गुंजत बहु भृंगा॥
बोलत जलकुक्कुट कल हंसा। प्रभु बिलोकि जनु करत प्रसंसा॥
चक्रवाक बक खग समुदाई। देखत बनइ बरनि नहिं जाई॥
सुंदर खग गन गिरा सोहाई। जात पथिक जनु लेत बोलाई॥
कुहू कुहू कोकिल धुनि करहीं। सुनि रव सरस ध्यान मुनि टरहीं॥
—रामचरितमानस, ३।४०।१-५

१. रामचरितमानस, ३।१३।१-४

भी उन्होने दो दृष्टियाँ अपनायी हैं काव्य-दृष्टि और मोक्ष-दृष्टि, उदाहरण के लिए सीता और राम की विरहावस्था का निरूपण करते समय काव्य-दृष्टि से प्रकृति-चित्रण किया गया है,[1] नारद को उपदेश देते समय किया गया षड्-ऋतु-वर्णन मोक्ष-दृष्टि से हुआ है,[2] और 'गीतावली' के चित्रकूट-विषयक कुछ पदो मे दोनो दृष्टियो का समन्वय है।[3] अपने परपरानिष्ठ और मोक्षधर्म-विशिष्ट दृष्टिकोण के कारण तुलसी ने प्रकृति का वर्णन प्राय गौण रूप मे ही किया है। तात्पर्य यह कि प्रकृति की योजना किसी अन्य प्रतिपाद्य वस्तु, भाव अथवा विचार के निरूपण को उत्कर्ष प्रदान करने के लिए की गयी है। इसलिए उसका वर्णन मुख्य न होकर गौण है। प्रयोजन-भेद से गौण रूप त्रिविध है १ उद्दीपक रूप, २ आलकारिक रूप, और ३ उपदेशात्मक रूप।

१ उद्दीपन-रूप मे प्रकृति-चित्रण की परपरा चिराचरित है। शृगार-काव्य उससे भरा पडा है। न जाने कितने षड्-ऋतु-वर्णन और बारहमासे लिखे गये हैं। कारण यह है कि प्रकृति का रमणीय वातावरण प्रेमी जनो को सयोग-दशा मे अतिशय आनद देता है, और इसलिए विरहावस्था मे घोर कष्टकारक होता है।[4] दोनो दशाओ मे रति-व्यजना को उत्कर्ष प्रदान करने के लिए प्रकृति-वर्णन किया जाता है। राम-सीता के मिलन के लिए तुलसी ने उद्दीपक पृष्ठभूमि तैयार की है

> भूप बाग बर देखेउ जाई। जहँ बसंत रितु रही लोभाई॥
> लागे बिटप मनोहर नाना। बरन बरन बर बेलि बिताना॥
> नव पल्लव फल सुमन सुहाए। निज सपति सुर रूख लजाए॥
> चातक कोकिल कीर चकोरा। कूजत बिहग नटत कल मोरा॥
> बिमल सलिल सरसिज बहुरगा। जल खग कूजत गुजत भृंगा॥
> बागु तडागु बिलोकि प्रभु हरषे बधु समेत।
> परम रम्य आरामु येहु जो रामहि सुख देत॥[5]

अन्यत्र, दोनो की सयोगावस्था में, मदन-महाराज को प्रकृति के माध्यम से फाग खेलते हुए दिखाया है।[6]

राम, सीता, और गोपियो के विरह-वर्णन मे उन्होने प्रकृति के उद्दीपक रूप का विस्तार से चित्रण किया है।[7] राम को अपने चारो ओर काम की फौज खडी दिखायी देती

---

१. बरवैरामायण, ४१, रामचरितमानस, ५।१२।४-६
२. रामचरितमानस, ३।४४।१-४
३. गीतावली, २।४७, ४८, ४९
४. जे हित रहे करत तेइ पीरा। उरग स्वास सम त्रिविध समीरा॥—रामचरितमानस, ५।१५।२
५. रामचरितमानस, १।२२७
६. गीतावली, २।४७, ४८, ४९
७. रामचरितमानस, ३।३०।५-७, ३।३७।२-३।३८।६, ५।१५।१-२; वही, ५।१२।३-६; कृष्णगीतावली, २९-३२

है।[1] उधर कृष्ण के विरह मे कामदेव ने व्रज पर अपनी मिल्कियत कायम कर ली है।[2] इन अतिनिरूढ रूपको मे विशेष भावोत्कर्ष नही पाया जाता। परतु, जहाँ इयत्ता का ध्यान रखते हुए प्रकृति की पृष्ठभूमि मे विरह-व्यथा की व्यजना की गयी है। वहाँ मर्मस्पर्शी चित्रण हुआ है, जैसे सीता की इस उक्ति मे

देखिअत प्रगट गगन अगारा। अवनि न आवत एकौ तारा।।
पावकमय ससि स्रवत न आगी। मानहु मोहि जानि हतभागी।।
सुनहि बिनय मम बिटप असोका। सत्य नाम करु हरु मम सोका।।
नूतन किसलय अनल समाना। देहि अगिनि जनि करहि निदाना।।[3]

अथवा राम के इस सदेश मे ·

नव तरु किसलय मनहु कृसानू। काल निसा सम निसि ससि भानू।।
कुबलयबिपिन कुतबन सरिसा। बारिद तपत तेल जनु बरिसा।।
जे हित रहे करत तेइ पीरा। उरग स्वास सम त्रिबिध समीरा।।
कहेहू तें कछु दुख घटि होई। काहि कहौं येह जान न कोई।।[4]

प्रकृति के उद्दीपक और आलकारिक रूप दोनो ही काव्यधर्म से अनुप्राणित हैं। अतएव इन दोनो का प्राय समन्वित रूप मे चित्रण हुआ है। उपर्युक्त उद्धरण इस बात के प्रमाण हैं। तुलसी को रूपक, उत्प्रेक्षा, और उपमा अलकार अत्यत प्रिय हैं। आधुनिक दृष्टि से मानवीकरण भी महत्त्वपूर्ण है। उसकी चर्चा की जा चुकी है। चारो के क्रमश दो-दो उदाहरण लीजिए

१. (1) उदित उदयगिरि मच पर रघुबर बाल पतग।
बिकसे सत सरोज सब हरषे लोचन भृग।।

---

१ विरह विकल बलहीन मोहि जानेसि निपट अकेल।
महित बिपिन मधुकर खग मदन कीन्हि बगमेल।।
बिटप बिसाल लता अरुझानी। बिबिध बितान दिए जनु तानी।।
कदलि ताल बर ध्वजा पताका। देखि न मोह धीर मन जाका।।
बिबिध भाँति फूले तरु नाना। जनु बानैत बने बहु बाना।।
कहुँ कहुँ सुदर बिटप सुहाए। जनु भट बिलग बिलग होइ छाए।।
लछिमन देखत काम अनीका। रहहिं धीर तिन्ह कै जग लीका।।—
—रामचरितमानस, ३।३७ ३।३८।१-५

२. कोउ सखि नई चाह सुनि आई।
यह ब्रजभूमि सकल सुरपति सों मदन मिलिक करि पाई।।
घन धावन बगपाँति पटो सिर बैरख तड़ित सोहाई।
बोलत पिक नकीब गरजनि मिस मानहुँ फिरति दोहाई।।
चातक मोर चकोर मधुप सुक सुमन समीर सहाई।
चाहत कियो बास बृदावन बिधि सो कछु न बसाई।।—कृष्णगीतावली, ३२
यह पद 'सूरसागर' में भी मिलता है, पद-सख्या, ३९४४

३ रामचरितमानस, ५।१२।४-६

४. रामचरितमानस, ५।१५।१-३

(ii) तुलसीदास मनोरथ मन मृग मरत जहाँ तहँ धाई।
रास स्याम सावन भादौं बिनु जिय की जरनि न जाई॥[1]

२. (i) देखु सखी हरिबदन इंदु पर।
चिक्कन कुटिल अलक अवली छबि कहि न जाइ सोभा अनूप बर॥
बाल भुअंगिनि निकर मनहुँ मिलि रहीं घेरि रस जानि सुधाकर॥
तजि न सकहिं नहि करहिं पान कहो कारन कौन बिचारि डरहिं डर॥

(ii) स्याम सरीर रुचिर श्रम सीकर सोनित कन बिच बीच मनोहर।
जनु खद्योत निकर हरिहित गन भ्राजत मरकत सैल सिखर पर॥[2]

३ (i) तुलसी मन रजन रजित अजन नैन सुखजन जातक से।
सजनी ससि मे समसील उभै नव नील सरोरुह से बिकसे॥

(ii) झलका झलकत पायन्ह कैसें। पकज कोस ओस कन जैसें॥[3]

४ (i) जिन्हहि निरखि मग साँपिनि बीछीं। तजहिं बिषम बिष तामस तीछीं॥

(ii) सरिता बन गिरि अवघट घाटा। पति पहिचानि देहिं बर बाटा॥
जहँ जहँ जाहिं देव रघुराया। करहिं मेघ तहँ तहँ नभ छाया॥[4]

प्रकृति का उपदेशात्मक रूप दो प्रकार के उपदेशो का द्योतक है लोकनीति-सबधी और मोक्ष-सबधी। वर्षा और शरद् ऋतुओ के विशद वर्णनो मे दोनो प्रकारो की निबधना की गयी है। कुछ पक्तियो से यह तथ्य स्पष्ट हो जाएगा[5]

१. बूँद अघात सहहिं गिरि कैसे। खल के बचन संत सह जैसे॥
छुद्र नदी भरि चली तोराई। जस थोरेहु धन खल बौराई॥
भूमि परत भा ढाबर पानी। जिमि जीवहि माया लपटानी॥
सरिता जल जलनिधि महुँ जाई। होइ अचल जिमि जिव हरि पाई॥

२ फूले कास सकल महि छाई। जनु बरषा कृत प्रगट बुढ़ाई॥
जल सकोच बिकल भइ मीना। अबुध कुटुंबी जिमि धन हीना॥
कहुँ कहुँ बृष्टि सारदी थोरी। कोउ कोउ पाव भगति जिमि मोरी॥

तुलसी ने बारहमासा-वर्णन की रीति का पालन नहीं किया। उनकी भक्ति-काव्य-योजना मे उसकी सगति ठीक नहीं बैठती थी। उन्होने षड्-ऋतु-वर्णन दो स्थलो पर किया है। दोनो 'रामचरितमानस' मे है। दोनो रीतिमुक्त है, क्योकि उनका सबध शृगार से नही है। एक मे रामकथा का रूपक बाँधा गया है[6], और दूसरी मे कामोद्दीपन-

---

१ क्रमश, रामचरितमानस, १।२५४; कृष्णगीतावली, २६।५
२. क्रमश, कृष्णगीतावली, २१।१-२; गीतावली, ६।१६।२
३ क्रमश, कवितावली, १।१; रामचरितमानस, २।२०४।१
४ रामचरितमानस, २।२६२।४, ३।३।२-३
५. क्रमश, रामचरितमानस, ४।१४।२-४; ४।१६।१-५
६. कीरति सरित छहूँ रितु रूरी। समय सुहावनि पावनि भूरी॥
हिम हिमसैलसुता सिव ब्याहू। सिसिर सुखद प्रभु जनम उछाहू॥
बरनब राम बिबाह समाजू। सो मुद मगल मय रितुराजू॥

कारिणी नारी की निंदा की गयी है ।[1] दोनो ही वर्णन प्रतिपाद्य विषय की सशक्त व्यजना मे सहायक होने से उत्कृष्ट है । वसत, वर्षा और शरद् इन तीन ऋतुओ का अलग-अलग वर्णन भी किया गया है[2] पहली दो का सयोग-वियोग दोनो मे, और अतिम का वियोग की परिस्थिति मे ।

तुलसी के प्रकृति-वर्णन की चार प्रमुख विशेषताएँ स्मरणीय हैं । १ उनका मूल प्रतिपाद्य विषय (राम, रामकथा, राम-भक्ति) उनके प्रकृति-वर्णन पर भी छाया हुआ है । इसलिए अनेक प्रसगो में धार्मिक भक्तो को तो रस मिल जाता है, किंतु सामान्य काव्यालोचक को नीरसता प्रतीत होती है । २ विभिन्न स्थलो पर काव्य-दृष्टि से प्रकृति का चित्ताकर्षक चित्रण करके तुलसी ने यह सिद्ध कर दिया है कि उनमे प्रकृति के सूक्ष्म निरीक्षण और उसके सफल वर्णन की महती शक्ति है । ३. उन्होने प्राय सश्लिष्ट चित्रण किया है । ऊपर किया गया अलग-अलग विवेचन विभिन्न रूपो के स्पष्टीकरण के निमित्त है । आलकारिक रूप के निरूपण मे उन्होने एक-साथ ही अनेक अलकारो की माला गूँथी है । ४. लबे साग रूपको, लडी-बद्ध उत्प्रेक्षाओ और नैतिक विचारो की उपदेश-शृखला मे एकरसकता पायी जाती है, किंतु अन्य स्थलो पर रचना-क्रम मे सहजतया किया गया प्रकृति-वर्णन परमोत्कृष्ट है।

सिद्धांत-वर्णन तुलसी का 'स्वात सुखाय' रचित साहित्य वस्तुत लोकहिताय है । यह लक्ष्य उनकी दृष्टि से कभी ओझल नही होता । अतएव उनकी रचनाओ मे नि श्रेयस-साधक सिद्धातो के निरूपण की इतनी प्रचुरता है । प्रबधकाव्य 'रामचरितमानस' की स्तुतियो, गीताओ और अन्य सवादो मे किये गये धर्म, ज्ञान, भक्ति और सतो के विस्तृत वर्णन[3] काव्यप्रेमियो को बहुत खटकते हैं । यह ठीक है कि वे सामान्य काव्य-

---

ग्रीषम दुसह राम बन गमनू । पथ कथा खर आतप पवनू ॥
बरषा घोर निसाचर रारी । सुरकुल सालि सुमगलकारी ॥
रामराज सुख विनय बड़ाई । बिसद सुखद सोइ सरद सुहाई ॥

—रामचरितमानस, १।४२।१-३

१. सुनु मुनि कह पुरान श्रुति सता । मोह बिपिन कहुँ नारि बसंता ॥
जप तप नेम जलाश्रय झारी । होइ ग्रीषम सोखै सब नारी ॥
काम क्रोध मद मत्सर भेका । इन्हहिं हरषप्रद बर्षा एका ॥
दुर्बासना कुमुद समुदाई । तिन्ह कहँ सरद सदा सुखदाई ॥
धर्म सकल सरसीरुह बृदा । होइ हिम तिन्हहि देति दुख मदा ॥
पुनि ममता जवास बहुताई । पलुहइ नारि सिसिर रितु पाई ॥
पाप उलूक निकर सुखकारी । नारि निबिड़ रजनी अँधियारी ॥

—रामचरितमानस, ३।४४।१-४

२. गीतावली, २।४७-४६, रामचरितमानस, ३।३७।४ ३।३८; गीतावली, २।५०, रामचरितमानस, ४।१३।४-४।१५, वही, ४।१६।१-४।१८।१

३ रामचरितमानस, २।१२८।२-२।१३१, २।१७२।२-२।१७३।२, ३।५।२-दोहा, ३।११।स्तुति, ३।१४-३।१६, ३।४३।२-३।४६, ६।८०।२-दोहा, ६।१०६-६।११५, ७।१२-७।१४, ७।११६-७।१२२ आदि

रस के प्रवाह मे अवरोधक हैं, किंतु यह भी याद रखना चाहिए कि 'रामचरितमानस' का अगी रस भक्तिरस है। और, ये वर्णन उस भक्तिरस के पोपक हैं। इस प्रकार प्रतिपादित दार्शनिक विचार भी भाव-पक्ष के अग हैं। उनका अपना वैशिष्ट्य है। अत उनकी विवेचना अगले अध्याय 'विचार-धारा' के अतर्गत की जाएगी।

८. विचार-धारा

महाकवित्व अथवा महाकाव्यत्व के लिए दो गुण आवश्यक हैं लालित्य और जीवन-दर्शन। केवल सरस पद्य या गद्य का स्रष्टा 'कवि' हो सकता है, किन्तु महाकवि नही। तुलसीदास महाकवि थे, क्योकि वे स्रष्टा मात्र नही थे, वे जीवन-द्रष्टा भी थे। उन्होने जीवन को उसके समग्र रूप मे देखा था। वे दार्शनिक कवि थे। भारतीय दर्शन की सात प्रमुख विशेषताएँ हैं १ गहरी आध्यात्मिक भावना, २ मोक्ष की परमपुरुषार्थता, ३ चैतन्यवाद, ४ सत्यनिष्ठता, ५ धर्म से घनिष्ठ सबध, ६ परपरा के प्रति आस्था और ७ समन्वय-दृष्टि। तुलसी-साहित्य मे ये सभी विशेषताएँ प्रतिफलित हुई हैं। उनकी आठवीं विशेषता है कवित्वमयी प्रतिपादन-शैली।[1]

दार्शनिक विचार[2]

मूल विचारणा भारतीय दर्शन मे मूलत जीव के केंद्र-बिंदु से विचार किया गया है। जीव की आत्यतिक दु ख-निवृत्ति ही उसका मूल प्रयोजन है।[3] जीव नाना प्रकार के दैहिक, दैविक और भौतिक तापो से पीडित है।[4] दैहिक कष्ट दो प्रकार के है आधि और व्याधि, अर्थात् शारीरिक और मानसिक।[5] इन क्लेशो के दो प्रमुख कारण हैं: अज्ञान और अभक्ति। 'अज्ञान' का तात्पर्य यह है कि जीव अपने, भगवान् के, और उसकी माया के स्वरूप को भूलकर देह को ही सब कुछ मान बैठता है।[6] इसलिए परितप्त होता है। विपयो मे आसक्त जीव ईश्वर-विपयक-रति से विमुख रहता है। मृगतृष्णावश उसे

---

१ जैसे विपया परनारि निसा तरुनाई सो पाइ परयो अनुरागहि रे।
जरठाई दिसौं रवि काल उग्यो अजहूँ जड़ जीव न जागहि रे ॥—कविनावली, ७।३१
फूले कमल सोह सर कैसा। निर्गुन ब्रह्म सगुन भए जैसा ॥
—रामचरितमानस, ४।१७।१

२. विस्तृत विवेचन के लिए देखिए तुलसी-दर्शन-मीमांसा

३. साख्यकारिका, १

४. अस प्रभु हृदयँ अछत अविकारी। सकल जीव जग दीन दुखारी ॥
—रामचरितमानस, १।२३।४

सुनहु नाथ मन जरत त्रिविधि जुर करत फिरत बौराई।—विनयपत्रिका, ८१।१

५. आधि मगन मन व्याधि बिकल तन वचन मलीन झुठाई।—विनयपत्रिका, १६५।४

६ जिव जब तें हरि तें बिलगान्यो। तब तें देह गेह निज जान्यो।
मायावस स्वरूप बिसरायो। तेहि भ्रम तें दारुन दुख पायो ॥
—विनयपत्रिका, १३६।१

ठोकरें खानी पड़ती हैं। अभक्ति स्वय विपत्ति है।[1] रोग-निदान के अनुसार चिकित्सा विधेय है। अत दु ख-नाश के, भव-बधन से मुक्ति के, दो उपाय हैं ज्ञान और भक्ति।[2] कर्म, वैराग्य, योग आदि अन्य जितने भी साधन बतलाये गये हैं, वे सब इन दो साधनो के साधन हैं। भक्ति का पद सर्वश्रेष्ठ है।[3] इन साधनो के द्वारा जीव जीवन्मुक्ति और विदेह-मुक्ति प्राप्त करता है।[4] भक्ति के विषय मे यह स्मर्तव्य है कि वह साधन भी है और सिद्धि भी **साधन सिद्धि रामपग नेहू।**[5]

राम : अब जीव के आश्रय राम के केंद्र-बिंदु से विचार कीजिए। राम मूल-तत्त्व या परमतत्त्व हैं।[6] वे सच्चिदानदस्वरूप हैं।[7] उपनिषद्कारो और वेदातियो ने जिसे ब्रह्म कहा है, शैवो ने जिसे परमशिव माना है, वैष्णवो की दृष्टि मे जो परमविष्णु है, उसी परमार्थतत्त्व को तुलसी 'राम' कहते हैं। इसीलिए उन्होने राम के लिए ब्रह्म, विष्णु और शिव शब्दो का प्रयोग भी किया है। उन्ही से आविर्भूत और उनसे भिन्नाभिन्न तत्त्व है जीव और जगत्।[8] राम सृष्टि के कर्ता, पालक और सहारक हैं।[9] पौराणिक परपरा के सृष्टिकर्ता ब्रह्मा, विश्वपालक विष्णु और प्रलयकर शिव उन्ही के अश हैं। दूसरे शब्दो मे राम की उद्भवकारिणी शक्ति के प्रतीक ब्रह्मा हैं, पालनकारिणी शक्ति के विष्णु, और संहार-कारिणी शक्ति के शिव।

राम स्वरूपत निर्गुण भी हैं और सगुण भी।[10] निर्गुण के अर्थ हैं निर्विशेष या अनिर्वचनीय, निराकार या रूपरहित, प्राकृत गुणो से परे, और अखडता, अप्रमेयता आदि गुणो वाला। **सगुण** के अर्थ हैं : साकार या सरूप, प्राकृत गुणो से युक्त रूप मे भासमान, और भक्तवत्सलता आदि दिव्य गुणो से सपन्न। राम का सगुण-रूप उनके निर्गुण-रूप का ऐश्वर्य है। सज्जनो के परित्राण, अधर्मियो के विनाश, धर्म के सस्थापन और भक्तो के आनद के लिए निराकार राम आकारविशेष मे प्रकट होते हैं। यही उनका अवतार है। राम अवतारी भी है और अवतार भी :

जब जब होइ धरम कै हानी। बाढ़हिं असुर अधम अभिमानी॥
करहिं अनीति जाइ नहिं बरनी। सीदहिं बिप्र धेनु सुर धरनी॥
तब तब प्रभु धरि बिबिध सरीरा। हरहिं कृपानिधि सज्जन पीरा॥

---

१. कह हनुमत बिपति प्रभु सोई। जब तव सुमिरन भजनु न होई॥
—रामचरितमानस, ५।३२।२

२ भगतिहि ग्यानहि नहि कछु भेदा। उभय हरहिं भवसंभव खेदा॥
—रामचरितमानस, ७।११५।७

३ रामचरितमानस, ७।४६।१-३, ७।११५।१, ७।१२०

४. रामचरितमानस, ७।११६।१-२, दोहावली, २२५

५. रामचरितमानस, २।२८६।४

६. रामचरितमानस, १।२४०।२

७ सुद्ध सच्चिदानदमय कद भानुकुल केतु। —रामचरितमानस, २।८७, दोहावली, ११६

८. विनयपत्रिका, ५४।२-४, दोहावली, २००

९. जो करता भरता हरता सुर साहिब साहिब दीन दुनी को। —कवितावली, ७।१४६

१०. अगुन सगुन दुइ ब्रह्म सरूपा। अकथ अगाध अनादि अनूपा॥—रामचरितमानस, १।२३।१

असुर मारि थापहिं सुरन्ह राखहिं निज श्रुति सेतु ॥
जग बिस्तारहिं बिसद जस रामजन्म कर हेतु ॥[1]

दोनो मे तत्त्वत कोई भेद नही है।[2] राम की अवतारलीला बडी विचित्र है। मुनियो तक को भ्रम मे डाल देती है।[3] इस विषय मे 'रामचरितमानस' के भरद्वाज, सती तथा गरुड को भी सदेह हुआ था और याज्ञवल्क्य, शकर एव काकभुशुडि ने उसका निराकरण किया।

माया राम की अभिन्न शक्ति का नाम माया है। अपनी माया के द्वारा राम सृष्टि आदि का कार्य सपन्न करते हैं।[4] ब्रह्मा आदि की शक्ति राम की ही शक्ति अर्थात् माया है। माया को ही सीता कहते हैं।[5] राम के साथ उनकी माया भी अवतार लेती है।[6] माया के दो भेद हैं विद्या और अविद्या। विद्या माया विश्व-रचना और जीव के मोक्ष का हेतु है। अविद्या माया जीव के मोह तथा भवबधन का कारण है। लक्षणा के द्वारा माया-निर्मित विश्व को भी 'माया' कहा जाता है। सपूर्ण विश्व माया का वशवर्ती है

मै अरु मोर तोर तै माया। जेहि बस कीन्हे जीव निकाया ॥
गो गोचर जहँ लगि मन जाई। सो सब माया जानेहु भाई ॥
तेहि कर भेद सुनहु तुम्ह सोऊ। बिद्या अपर अबिद्या दोऊ ॥
एक दुष्ट अतिसय दुख रूपा। जा बस जीव परा भवकूपा ॥
एक रचै जग गुन बस जाकें। प्रभु प्रेरित नहि निज बल ताकें ॥[7]

तात्त्विक दृष्टि से माया एक है। उसके कार्यों को समझाने के लिए उसके दो भेद किये गये हैं।

सृष्टि जगत् की रचना करने वाली माया का ही नाम प्रकृति है। यहाँ से साख्य का सृष्टि-क्रम तुलसी को मान्य है। अनीश्वरवादी दर्शनो मे प्रकृति, गुण, काल, कर्म और स्वभाव स्वतत्र तत्त्व माने गये हैं। तुलसी उन्हे राम के अधीन और राम की ही शक्ति मानते हैं।[8] प्रकृति त्रिगुणात्मिका है। गुण तीन हैं सत्त्व, रज, तम। सृष्टि के पूर्व ये तीनो गुण साम्यावस्था मे रहते हैं। जीवो के कल्याण के लिए राम की प्रेरणा से उनमे क्षोभ उत्पन्न होने पर सृष्टि-प्रक्रिया का आरभ होता है। प्रकृति से बुद्धि, बुद्धि से अहकार और अहकार मे मन-समेत ग्यारह इद्रियो, पाँच तन्मात्राओ (शब्द, स्पर्श,

---

१. रामचरितमानस, १।१२१
२. अज अद्वैत अनाम अलख रूप गुन रहित जो।
मायापति सोइ राम दास हेतु नर तनु धरेउ ॥—वैराग्यसदीपनी, ४
३. निर्गुन रूप सुलभ अति सगुन जान कोइ कोइ।
सुगम अगम नाना चरित सुनि मुनि मन भ्रम होइ ॥—रामचरितमानस, ७।७३
४. लव निमेष महु भुवन निकाया। रचै जासु अनुसासन माया ॥—रामचरितमानस, १।२२५।२
५. श्रुति सेतु पालक राम तुम्ह जगदीस माया जानकी।—रामचरितमानस, २।१२६।छद
६ आदि सक्ति जेहि जग उपजाया। सोउ अवतरिहि मोरि यह माया ॥
—रामचरितमानस, १।१५२।२
७. रामचरितमानस, ३।१५।१-३
८ हनुमानबाहुक, ४४, दोहावली, १७७, विनयपत्रिका, १३०।२

रूप, रस, गध) और पाँच महाभूतो (आकाश, वायु, तेज, जल, पृथिवी) की उत्पत्ति होती है।[1] अहकार से ही प्राण और इद्रियो के अधिष्ठाता देवता उत्पन्न होते हैं। तदनतर असख्य स्थूल ब्रह्माडो और पिडो की सृष्टि होती है। ये अनगिनत पिड-ब्रह्माड राम की शक्ति द्वारा रचित हैं, उनमे स्थित हैं, उनसे व्याप्त हैं, और उन्ही के रूप है। विश्व उनका विराट् रूप है।[2] जगत् का अपने मूल-कारण राम मे लीन हो जाना 'प्रलय' है।

जगत् का स्वरूप: मूलत राम जगत् के निमित्त और उपादान कारण हैं।[3] वे सत्य हैं। इसलिए जगत् को भी सत्य होना चाहिए। परतु, तुलसी ने उसे बहुत बार मिथ्या कहा है।[4] यह अतर्विरोध क्यो ? बात यह है कि जगत् तत्त्वत राम-रूप है, माया अर्थात् जीव की भ्राति के कारण वह राम से भिन्न रूप मे प्रतीत होता है। उसका दृश्यमान रूप मिथ्या है, क्योकि वह परिवर्तनशील है। इसीलिए तुलसी ने कहा है[5] **सब रूप सदा सब होइ न सो**, अथवा **रवि आतप भिन्न न भिन्न यथा**। जब जीव को अपने, माया के, और राम के यथार्थ स्वरूप का ज्ञान होजाता है तब वह सपूर्ण जगत् को राममय देखने लगता है।[6] राम से इतर कुछ दिखायी ही नही पड़ता। यही जगत् का हेरा जाना है।[7] इस जगत् से सर्वथा भिन्न शुद्धसत्त्वमय वैकुठ-लोक भगवान् का धाम है। वस्तुत राम सर्वव्यापक हैं। भक्तों ने अपनी मूर्ति-भावना की तुष्टि के लिए भगवान् के लोकविशेष की कल्पना की है।

जीव: जीव ईश्वर राम का अश है। अतएव स्वरूपत सत्य, चेतन एव आनदमय है। माया के कारण आत्मस्वरूप को भूलकर ससार-चक्र मे पड जाता है

ईस्वर अस जीव अबिनासी। चेतन अमल सहज सुखरासी।।
सो माया बस भएउ गोसाईं। बंध्यो कीर मर्कट की नाईं।।
जड चेतनहि ग्रथि परि गई। जदपि मृषा छूटति कठिनई।।
तब ते जीव भएउ ससारी। छूट न ग्रथि न होइ सुखारी[8]।।

राम और जीव मे शक्ति तथा मात्रा का भेद है। राम एक, सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान्, सर्वव्यापक, मायापति, स्वतत्र हैं। जीव अनेक, अल्पज्ञ, सीमाओ मे बँधे हुए, मायावश्य,

---

१ विनयपत्रिका, ५४।२-३, रामचरितमानस, ६।१५, ७।१३।छद ५
२. रामचरितमानस, १।२०१-२, ६।१४-१५, ७।१३।छद ५
३. काल हू के काल महाभूतन के महाभूत कर्म हू के करम निदान के निदान हौ ॥
—कवितावली, ७।१२६
जेहि सृष्टि उपाई त्रिबिध बनाई संग सहाय न दूजा।—रामचरितमानस, १।१८६।छद ३
४ एहि विधि जग हरि आश्रित रहई। जदपि असत्य देत दुख अहई ॥
—रामचरितमानस, १।११८।१
झूठो है झूठो है झूठो सदा जग सत कहत जे अत लहा है।—कवितावली, ७।३९
५. रामचरितमानस, ६।१११।८
६ विनयपत्रिका, ५४।३, रामचरितमानस, १।८।१, ७।११२
७. जेहि जाने जग जाइ हेराई। जागे जथा सपन भ्रम जाई ॥—रामचरितमानस, १।११२।१
८. रामचरितमानस, ७।११७।१-४

परतत्र और अभिमानी हैं।[1] हर्ष, विषाद, ज्ञान, अज्ञान, अहकार और अभिमान जीव के धर्म हैं।[2] वह कर्म करने मे स्वतत्र, किंतु फल भोगने मे परतत्र है। मोह के वशीभूत होकर कर्म-जाल मे फँसा रहता है अनेक प्रकार के क्लेश सहता है। राम की कृपा से ही उसका उद्धार सभव है।

मोक्ष-साधन : भव बधन मे पडे हुए जीव की मुक्ति के अनेक साधन बतलाये गये हैं। तुलसी ने धर्म, वैराग्य, योग, ज्ञान और भक्ति को गौरव दिया है।[3] इनमे से प्रथम तीन अतिम दो साधनो के साधन हैं। धर्म (साधारणधर्म, वर्णधर्म, आश्रमधर्म, वर्णाश्रमधर्म, निमित्तधर्म) के आचरण से चित्त-शुद्धि होती है। उससे विषयो के प्रति वैराग्य उत्पन्न होता है। तब योग (चित्रवृत्ति-निरोध) के द्वारा ज्ञान की उपलब्धि होती है। आत्मज्ञान हो जाने पर जीव कैवल्य प्राप्त कर लेता है। यह ज्ञान-मार्ग अत्यत कष्ट-कारक है।[4]

भक्ति का पथ सुगम है। धर्माचरण से विषय-विरक्त चित्त मे भगवद्धर्म के प्रति अनुराग उत्पन्न होता है। श्रवण, कीर्तन आदि नवधा भक्तियाँ दृढ़ होती हैं और राम के प्रति परमप्रेम (भक्ति) का उदय होता है।[5] भक्ति स्वय मुक्ति है।

दृष्टिकोण : मुक्ति, अर्थात् दु ख की आत्यतिक निवृत्ति, वैयक्तिक होती है, सामूहिक अथवा सामाजिक नही। परतु, मनुष्य सामाजिक प्राणी है। प्रतिकूल समाज मे व्यक्तिगत साधना भी दुष्कर है। अतएव व्यक्ति के मोक्ष के लिए भी अनुकूल समाज-व्यवस्था अपेक्षित है। इस आवश्यकता को दृष्टि मे रखते हुए तुलसी ने समाज-धर्म पर विशेष बल दिया है।

भारतीय दर्शन बौद्धिक व्यायाम नही है। तत्त्वचितको ने दार्शनिक सिद्धातो को जीवन मे उतारने का प्रयास किया है। सैद्धांतिक दर्शन का व्यावहारिक पक्ष धर्म है। हमारे यहाँ दोनो में आवश्यक सबध माना गया है। यही कारण है कि प्राय सभी धार्मिक सप्रदायो का आधार कोई-न-कोई दर्शन है, और महान् दार्शनिक धर्मसस्थापक भी हैं। सभी ने सदाचारपालन को दार्शनिक उपलब्धि का सोपान माना है। तुलसी इसी विचार-धारा के पोषक हैं। उन्होने पारमार्थिक ज्ञान और व्यावहारिक जीवन का सामजस्य स्थापित किया है। उनका दर्शन धर्म-दर्शन है।

दर्शन तात्त्विक रूप मे अतर्दर्शन है, अनुभूति पर आश्रित है। उस अनुभूति का तर्कपुष्ट प्रतिपादन दर्शनशास्त्र है। दसवी-ग्यारहवी शताब्दी तक अपनी पराकाष्ठा पर पहुँच कर भारतीय दर्शन ह्रासोन्मुख हो गया। तुलसी के समय तक आते-आते विश्वास-पूर्ण भक्ति ने तर्कप्रधान दर्शन को आच्छादित कर लिया। दर्शन भक्ति-दर्शन हो गया।

---

१ रामचरितमानस, ७।७८।२-४

२ हरष विषाद ज्ञान अज्ञाना। जीव धर्म अहमिति अभिमाना॥—रामचरितमानस, १।११६।४

३ धर्म तें बिरति जोग तें ग्याना। ग्यान मोच्छप्रद बेद बखाना॥
जा तें बेगि द्रवउँ मैं भाई। सो मम भगति भगत सुखदाई॥—रामचरितमानस, ३।१६।१

४. देखिए रामचरितमानस, ७।११७।४-७।११६।१

५. रामचरितमानस, ३।१६।३-दोहा

भक्ति के क्षेत्र मे सदेह करना पाप समझा जाने लगा। इसी भावना के फलस्वरूप 'रामचरितमानस' की पार्वती और गरुड ने अपनी सदेहशीलता पर पश्चात्ताप किया है।[1] तुलसी सर्वात्मना भक्त हैं। उनका धर्मदर्शन भक्तिदर्शन है।

तुलसी कवि हैं, दार्शनिक नही हैं, कवि-दार्शनिक भी नही हैं, वे भक्तिमान् दार्शनिक-कवि हैं। उन्होने आध्यात्मिक अनुभूति को रसात्मक वाङ्मय के माध्यम से प्रस्तुत किया है। जीवन के मूलभूत प्रश्नो पर गभीरता से विचार करके सत्य का साक्षात्कार किया है, उसकी सुदर रूप मे अभिव्यजना की है, और उसे मगलमयी सजीवनी से अनुप्राणित किया है।[2] उनके साहित्य मे तर्ककर्कश मोक्षशास्त्र काव्य के मधु से मधुर हो गया है। ब्रह्मानदरूप रस और ब्रह्मानदसहोदर रस का यह अभिन्न सह-अस्तित्व अद्भुत है।

जिस प्रकार तुलसी-वर्णित रघुनाथ-गाथा 'नानापुराणनिगमागमसमत' है, उसी प्रकार उनका दर्शन भी। पुराण स्वय निगमागमसमत विचारधारा के विश्वकोश है। पुराणो मे प्रतिपादित दर्शन की प्रमुख विशेषताएँ हैं, मानवतावादी दृष्टि, धार्मिकता, समन्वय भावना, अवतारवादिता और भक्ति-निष्ठा। तुलसी-दर्शन मे इन सभी विशेषताओ का प्रतिफलन है। उन्होंने पुराणो के प्रतिपाद्य विषय का ही नही उनकी प्रतिपादन-शैली का भी अनुसरण किया है। उनकी दृष्टि मुख्यतया पौराणिक है। उनका दर्शन समन्वयवादी दर्शन है।

समन्वय-साधना

'समन्वय' (सम्+अनु+इ+अच्) का व्युत्पत्त्यर्थ है नियमित क्रम, सयोग, पारस्परिक सबध। जब शब्द और अर्थ, भाषा और भाव, ब्राह्मण और शूद्र आदि के समन्वय की बात की जाती है तब समन्वय का अर्थ होता है उनके पारस्परिक सबध का निर्वाह। यह उसका व्यापक अर्थ है। उसका एक सकुचित और विशिष्ट अर्थ भी है परस्पर-विरोधी प्रतीत होने वाली वस्तुओ या बातो का विरोधपरिहारपूर्वक सामजस्य। नास्तिक-द्वैतवादी साख्य और आस्तिक-अद्वैतवादी वेदांत केसमन्वय का अर्थ होगा: इन दोनो मतो के प्रतीयमान विरोध का परिहार करके दोनो मे सामजस्य-स्थापन। तुलसी दोनो ही अर्थों मे समन्वय-साधक हैं।

समन्वयवाद भारतीय सस्कृति की एक महत्त्वपूर्ण विशेषता है। समय-समय पर इस देश में कितनी ही सस्कृतियो का आगमन और आविर्भाव हुआ, परतु वे घुल-मिल कर एक हो गयी। कितनी ही दार्शनिक, धार्मिक, सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, साहित्यिक और सौदर्यमूलक विचारधाराओ का विकास हुआ, किंतु उनकी परिणति सगम के रूप में हुई। उदारचेता विचारको की सारग्राहिणी प्रतिभा ने दूसरो की ग्राह्य मान्यताओ को निस्सकोच भाव से ग्रहण किया। यह समन्वय-भावना का ही परिणाम है कि नास्तिक बौद्धो ने राम को बोधिसत्त्व मान लिया, और आस्तिक वैष्णवो ने बुद्ध की

१. रामचरितमानस, १।१०६।२, ७।६३।२
२ जैसे रामचरितमानस, ७।११८।२-८, विनयपत्रिका, १११।१-२

अवतार-रूप मे प्रतिष्ठा की। साख्य-योग एव न्याय-वैशेषिक मे वेदात के ईश्वर की सत्ता स्वीकार की गयी, और वेदात मे साख्य की सृष्टि-प्रक्रिया, योग की ज्ञान-साधना तथा न्याय की तर्क-प्रणाली को गौरव दिया गया। अर्थ-काम और धर्म-मोक्ष मे, वेद-शास्त्र और लोक-परपरा मे, प्रवृत्ति और निवृत्ति मे, साहित्य और जीवन मे समन्वय स्थापित करने के विराट् प्रयत्न किये गये, अनेकता मे एकता की स्थापना की गयी, वैषम्य मे साम्य का दर्शन किया गया।

समन्वय के देश मे महान् लोकनायक वही हो सकता है जिसमे विशाल समन्वय-बुद्धि हो और जो उस बुद्धि का सदुपयोग कर सके। धर्मदर्शन और समाज-सुधार के क्षेत्र मे गौतम बुद्ध इसी प्रकार के लोकनायक थे। उनकी महिमा की आधारभूमि 'मध्यमा प्रतिपदा' समन्वय का ही मार्ग है। वाङ्मय के क्षेत्र मे इतिहास-पुराण समन्वय-सावना के उत्कृष्ट उदाहरण हैं। उनमे भागवतपुराण और महाभारत का स्थान अन्यतम है। उनमे विभिन्न विचारधाराओ का सगम है, रोचक कथाओ की सहायता से तत्त्वज्ञान का उपस्थापन है, किंतु कातासमित उपदेश का विधान करने वाले काव्य की सरसता नही है। सस्कृत मे रचित होने के कारण वे तुलसीयुगीन लोक-मानस का नेतृत्व करने मे असमर्थ थे। लोकदर्शी तुलसी ने जनता के हृदय की धडकन को पहचाना और रामचरित-मानस के रूप मे समन्वय का वह अद्भुत आदर्श प्रस्तुत किया जो अपने कवित्वमय भक्ति-दर्शन, भक्तिदर्शनमय कवित्व, और आमूढपडितव्यापिनी लोकप्रियता के कारण अद्वितीय है।

समन्वय-सिद्धात का व्यवस्थित निरूपण और कार्यान्वयन मदारी का वृक्ष नही है। वह प्रत्यक्ष अनुभव, सूक्ष्म अवेक्षण, और गहन अनुशीलन का समिलित परिणाम है।[1] जीवन स्वय समझौता है। तुलसी ने जीवन की विभिन्न परिस्थितियो मे रहकर उसका साक्षात् अनुभव किया था। वे ब्राह्मण-पुत्र थे, पेट की आग बुझाने के लिए उन्हें 'जाति के सुजाति के कुजाति के' टुकड़े भी खाने पडे थे। द्वार-द्वार भीख भी माँगी थी, और मठाधीश का सुख-भोग भी किया था। लोगो ने 'दगाबाज' कहकर गालियाँ भी दी थी, और महामुनि मानकर भूपतियो तक ने पाँव भी पूजे थे। वे यौवन की कामासक्ति के शिकार भी हुए थे, और वैराग्य की पराकाष्ठा पर पहुँचकर आत्माराम भी हो गये थे। वे अर्थ-काम-पकिल भव-सरिता से निकल कर धर्म-दर्शन-विशिष्ट रामभक्ति की राजडगर पर आये थे। उनमे कवि की कारयित्री प्रतिभा, भक्त के निष्काम हृदय और समाज-सुधारक की लोकमगल-भावना का अपूर्व समन्वय था। उन्होने अपने अनुभव, अवेक्षण, शास्त्रज्ञान और सहृदयता के आधार पर कवित्व, धर्म और भक्ति की त्रिपथगा का निर्माण किया। उनकी समन्वय-साधना बहुमुखी है

द्वैत-अद्वैत तुलसी का दार्शनिक समन्वयवाद अत्यत विवाद का विषय रहा है। तुलसी के युग मे वेदात का प्रभुत्व था। उसके भीतर भी दो प्रकार के सघर्ष थे। १ सभी

---

१. लोक बिलोकि पुरान बेद सुनि समुझि बूझि गुरु ग्यानी।
प्रीति प्रतीति राम पद पकज सकल सुमगल खानी॥—विनयपत्रिका, १६४।४

वैष्णव आचार्य शकर के निर्गुणब्रह्मवाद और मायावाद के विरोधी थे। २ सभी अद्वैतवादी[1] मध्व के द्वैतवाद के विरोधी थे। तुलसी शकर के ब्रह्मवाद और रामानुज के विशिष्टाद्वैतवाद से मुख्यतया प्रभावित हैं। परतु अन्य मतो से भी उन्होने विचार ग्रहण किये हैं।[2] यह बात ध्यान देने योग्य है कि उपनिषदो और वेदात-सप्रदायो मे जो मान्यताएँ समान रूप से पायी जाती हैं वे तुलसी को स्वीकार्य हैं, जैसे ब्रह्म सच्चिदानदस्वरूप है, वह जगत् का अभिन्ननिमित्तोपादन और आश्रय है, आदि। परतु, जहाँ अद्वैतवादियो और वैष्णव-वेदातियो मे मतभेद है वहाँ उन्होने समन्वयवादी दृष्टि से काम लिया है। केवलाद्वैतवाद के अनुसार ब्रह्म स्वरूपत निर्गुण, निर्विशेष और निर्लक्षण है, अर्थात् उसमे कृपा आदि विशेषताएँ नही हैं; माया अविद्या है, उसके अस्तित्व के विषय मे कुछ नही कहा जा सकता; माया की उपाधि से युक्त सगुण ब्रह्म (ईश्वर) ही अवतार लेता है, एकमात्र (निर्गुण) ब्रह्म ही सत्य है, जीव, जगत् और 'ईश्वर' सब मिथ्या हैं, केवल ज्ञान ही मुक्ति का साधन है, आत्मस्वरूप मे स्थित हो जाना, जीव के जीवत्व का नाश, ही मुक्ति है। वैष्णव आचार्यो के अनुसार ब्रह्म स्वरूपत सगुण अर्थात् कृपा आदि दिव्य गुणो से युक्त है, वही कृष्ण आदि के रूप मे अवतार लेता है; उसी की शक्ति माया है, जीव उसी का अश है, भिन्न प्रतीयमान जगत् उससे अभिन्न है; भक्ति मुक्ति का अमोघ साधन है, सालोक्य आदि मुक्तियाँ श्रेष्ठ हैं।

निर्गुण और सगुण : निर्गुण और सगुण का विवाद दो क्षेत्रो मे था, दर्शनशास्त्र के क्षेत्र मे, और भक्ति के क्षेत्र में। शकराचार्य के निर्गुणब्रह्मवाद के विरुद्ध रामानुज और वल्लभ ने बहुत बल देकर ब्रह्म को स्वभावत सगुण बतलाया था।[3] तुलसी ने राम को बारबार निर्गुण-सगुण-स्वरूप कहा है[4]

१ सगुनहि अगुनहि नहि कछु भेदा। गावहिं मुनि पुरान बुध वेदा ॥
२. अगुन सगुन दुइ ब्रह्म सरूपा। अकथ अगाध अनादि अनूपा ॥
३. जय सगुन निर्गुन रूप रूप अनूप भूप सिरोमने।

वस्तुत' राम एक हैं। वे ही निर्गुण और सगुण, निराकार और साकार, अव्यक्त और व्यक्त, अतर्यामी और बहिर्यामी, गुणातीत और गुणाश्रय हैं।[5] निर्गुण राम ही भक्तो के प्रेम वश सगुण रूप मे प्रकट होते है।[6] दोनो मे कोई विरोध नही है। यह विश्वास की बात है। अपनी प्रीति-प्रतीति के अनुसार भक्त उन्हे किसी भी रूप मे भज सकता है। तुलसी और उनके काव्य मे अकित भक्त सगुण-रूप के उपासक हैं, क्योकि सगुण राम

---

१ केवलाद्वैतवादी, विशिष्टताद्वैतवादी, द्वैताद्वैतवादी, और शुद्धाद्वैतवादी
२. देखिए तुलसी दर्शन-मीमासा, 'उपसहार'
३. ब्रह्मसूत्र, १।१।२१ और १।२।१२ पर श्रीभाष्य, दि फिलॉसफी ऑफ श्रीवल्लभाचार्य. पृ० १५६
४. रामचरितमानस, १।११६।१, १।२३।१, ७।१३।छद १
५. एक दारुगत देखिअ एकू। पावक सम जुग ब्रह्म बिबेकू ॥—रामचरितमानस, १।२३।२
जो गुन रहित सगुन सोइ कैसें। जल हिम उपल बिलग नहि जैसें ॥—वही, १।११६।२
६. अगुन अरूप अलख अज जोई। भगत प्रेम बस सगुन सो होई ॥
—रामचरितमानस, १।११६।१

की भुजाएँ ही भक्तो पर छाया करती आयी हैं, कर रही हैं और करती रहेंगी।[1] इसका मनोवैज्ञानिक कारण है। भक्त अपने चारो ओर उस भगवान् को देखना चाहता है, जो सकट के समय काम भी आ सके। इसीलिए स्वरूपत अभिन्न होते हुए भी अंतर्यामी की अपेक्षा बहिर्यामी श्रेष्ठ है।[2] पुनश्च, तुलसी के सगुण-साकार राम मे रूप और गुण का, शील, शक्ति और सौंदर्य का, अनुपम समन्वय है।

विद्या और अविद्या माया अद्वैतवाद में 'माया' और 'अविद्या' पर्यायवाची हैं। वैष्णव आचार्य ऐसा नही मानते। वे माया को स्वभावत सगुण ब्रह्म की शक्ति मानते हैं। तुलसी ने दोनो के समन्वित सिद्धात को ग्रहण किया है। माया की दो विधाएं हैं, विद्या और अविद्या।[3] तुलसी की अविद्या-माया (मोहकारिणी-शक्ति) अद्वैतवादियो की 'माया' है। तुलसी ने उसी को मिथ्या कहा है[4] और उसके लिए प्राय माया शब्द का ही प्रयोग किया है। इससे लोगो को भ्रम हो जाता है कि वे शकराचार्य के मतानुयायी हैं। तुलसी की विद्या-माया शकर की माया से भिन्न है, क्योकि वह जगत् की रचना (विक्षेप नही) करती है और भक्तो का कल्याण भी। उनके अनुसार माया राम की भावरूपा अभिन्न शक्ति है।[5]

माया और प्रकृति सास्य-योग के अनुसार स्वतत्र प्रकृति सृष्टि का कारण है, यह स्थूल जगत् उसी का विकार है। अद्वैतवाद मे मिथ्या जगत् की व्याख्या करने के लिए माया की कल्पना की गयी और जगत् को माया की विक्षेप-शक्ति का कार्य (विवर्त) माना गया। वैष्णवो ने परब्रह्म और उसकी शक्ति माया द्वारा विश्व का निर्माण माना। सृष्टि-प्रक्रिया के विषय मे तुलसी ने वैष्णव-वेदात की माया और सास्य-योग की प्रकृति का समन्वय किया।[6] उन्होने प्रकृति को राम के अधीन और माया से अभिन्न मानकर दोनो मे एकसूत्रता स्थापित की, सास्यो के प्रकृतिपरिणामवाद को समेटते हुए अविकृत ईश्वर-परिणामवाद की प्रतिष्ठा की उन्होने चार्वाको के स्वभाव, वैशेषिको के काल-परमाणु, मीमासको के कर्म और शैवो की चित्-शक्ति को रामाश्रित बतलाकर इन सभी का समन्वय किया है।[7]

जगत् की सत्यता और असत्यता : सास्य-योग, वैष्णव-वेदात, पाचरात्र आगम और पाशुपत-मत मे जगत् की सत्यता स्वीकार की गयी है। माध्यमिक बौद्धो एव शकर-

---

१ रामचरितमानस, ३।११।९ १०, गीतावली, ७।१३

२ अतरजामिहु ते बड़ बाहरजामि हैं रामु जे नाम लिये ते।
धावत धेनु पेन्हाइ लवाइ ज्यों बालक बोलनि कान किये ते।
आपनि बूझि कहै तुलसी कहिबे की न बावरि बात बिये ते।
पैज परे प्रह्लादहु को प्रगटे प्रभु पाहन ते न हिये ते।।—कवितावली, ७।१२९

३ रामचरितमानस, ३।१५।२-३

४. रामचरितमानस, ७।७१

५. रामचरितमानस, १।१५२।०, २।१२६।छद

६ विनयपत्रिका, ५४।२-३, रामचरितमानस, ७।१३।छद५

७. दोहावली, २००, विनयपत्रिका, ५४।२

मतानुयायियो के अनुसार जगत् की सत्ता मायिक आभासमात्र (काल्पनिक) है। वेद-विरोधी, अनात्मवादी तथा अनीश्वरवादी बौद्ध तुलसी की दृष्टि मे सर्वथा तिरस्करणीय हैं। शेष मतो का उन्होने समन्वय किया है। विवर्तवादी वेदातियो के अनुरूप उक्तियाँ हैं[१]

१ रजत सीप महुं भास जिमि जथा भानु कर बारि।

२ जग नभवाटिका रही है फल फूलि रे।

३ झूठो है झूठो है झूठो सदा जग सत कहत जे अत लहा है। आदि

इसके विरुद्ध, राम को विश्वरूप[२] तथा जगत् को रामरूप और राम का अग[३] बतला कर उन्होने जगत् की सत्यता प्रतिपादित की है, क्योकि राम से अभिन्न जगत् मिथ्या नही हो सकता। वस्तुत, यह विरोधाभास है। समाधान यह है कि जगत् प्रवाह-रूप से नित्य है[४] कभी वह कारण-रूप में अव्यक्त रहता है, और कभी कार्य रूप मे व्यक्त। राम से भिन्न प्रतीत होने वाला उसका कार्य-रूप परिवर्तनशील होने के कारण मिथ्या है। ज्ञान का उदय होने पर सपूर्ण जगत् राममय दिखायी देने लगता है, विरोध का प्रश्न ही नही उठता

निज प्रभु मय देखहिं जगत केहि सन करहिं बिरोध।[५]

दूसरे शब्दो में, तुलसी ने द्वैतवादी और अद्वैतवादी मतो का समन्वय किया है। राम और जगत् मे अभेद हैं, किंतु प्रतीयमान व्यावहारिक भेद भी है।[६]

जीव का भेद-अभेद : तुलसी का जीव-विषयक सिद्धात वैष्णव-वेदातियो के मतो का समन्वय है। रामानुज और वल्लभ के अनुसार जीव ईश्वर का अश, नित्य, ज्ञाता, कर्ता, भोक्ता, ईश्वराधीन आदि है।[७] मध्व ने प्रत्येक जीव को अन्य जीवो से, और परमात्मा से तत्त्वत भिन्न माना है। तुलसी ने भेदवाद और अभेदवाद दोनो का समन्वय किया है। स्वरूप की दृष्टि से जीव और ईश्वर मे अभेद है। वह ईश्वर का अश है, अतः ईश्वर की भाँति ही सत्य, चेतन एव आनदमय है।[८] ऐश्वर्य आदि की दृष्टि से दोनो मे भेद है।[९] जीवो की सख्या अनत है। जीव ईश्वर का अश मात्र है। वह माया का स्वामी नही है। मुक्त होने पर वह ईश्वर का स्वरूप तो प्राप्त कर लेता है, किंतु ऐश्वर्य नही। उसका सारूप्य भोग-साम्य तक ही सीमित है। उसमे ईश्वर की सर्वज्ञता, सर्वव्यापकता

---

१ क्रमश, रामचरितमानस, १।११७, विनयपत्रिका, ६६।४, कवितावली, ७।३९

२. व्यापक विस्वरूप भगवाना।—रामचरितमानस, १।१३।२

३. बिस्वरूप रघुबसमनि करहु बचन बिस्वासु।
लोक कलपना बेद कर अग अंग प्रति जासु॥—रामचरितमानस, ६।१४

४. बिधि प्रपचु अस अचल अनादी।—रामचरितमानस, २।२८२।३

५. रामचरितमानस, ७।११२

६ सब रूप सदा सब होइ न सो,
रबि आतप भिन्न न भिन्न जथा।—रामचरितमानस, ६।१११।८

७ देखिए तुलसी-दर्शन-मीमांसा, पृ० ३४७, ३५०

८. रामचरितमानस, ७।११७।१

९. देखिए : तुलसी-दर्शन-मीमासा, पृ० १०४-५

मुक्ति साख्ययोगी भक्तो का, सामीप्यमुक्ति सेवाभिलाषी भक्तो का, और सायुज्यमुक्ति अद्वैतवेदाती निर्गुणोपासको का इष्ट है।[1] समन्वयवादी तुलसी को जीवन्मुक्ति तथा विदेहमुक्ति, और विदेहमुक्ति के उक्त चारो प्रकार मान्य हैं।[2] इनमे कोई विरोध नही है। ज्ञान और भक्ति का उदय ही मनोमुक्ति है। शरीरात के बाद मुक्तात्मा अपने भावानुसार चैतन्यमात्र-स्वरूप से या परमात्मा मे अभिन्न रूप से अथवा भगवान् के सदृश दिव्य-गुणो से सपन्न होकर स्थित हो सकता है।

प० गिरिधर शर्मा, प० विजयानद त्रिपाठी आदि ने तुलसी को अद्वैतवादी माना है। प० श्रीकातशरण ने सपूर्ण तुलसी-साहित्य की विशिष्टाद्वैतपरक विशद व्याख्या की है। रसिक-सप्रदाय मे तुलसी सखी-रूप मे समादृत हैं। अधिकतर विद्वान् तुलसी को समन्वयवादी मानते हैं। आगमनात्मक विधि से तुलसी-साहित्य का अध्ययन करके मैं भी इसी निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि वे समन्वयवादी हैं। उपर्युक्त दिग्दर्शन से स्पष्ट है कि तुलसी किसी दार्शनिक सप्रदाय के कठघरे मे बद नही किये जा सकते। एकाध आलोचक और सपादक इस मोह से आक्रात हैं कि जो तुलसी को अद्वैतवादी (शकरमतानुयायी) नही मानता वह अद्वैत-वेदात को समझना ही नही है। ऐसे ही निर्गुणब्रह्म के स्वयभू ठेकेदारो को लक्ष्य करके तुलसी ने 'रामचरितमानस' के शिव से कहलवाया था जिन्ह कृत महामोह मद पाना। तिन्ह कर कहा करिअ नहिं काना॥[3] उन्हें अद्वैतवादी सिद्ध करने के लिए कुछ पक्तियाँ नोच ली जाती हैं, और प्रतिकूल पडने वाले अशो की उपेक्षा कर दी जाती है। कुछ उदाहरण लीजिए

बिनु पद चलै सुनै बिनु काना। कर बिनु करम करै बिधि नाना॥
आनन रहित सकल रस भोगी। बिनु बानी बकता बड जोगी॥ आदि
जेहि इमि गावहिं बेद बुध जाहि धरहिं मुनि ध्यान।
सोइ दसरथ सुत भगत हित कोसलपति भगवान॥[4]

दोहे के ऊपर की चौपाइयो मे 'श्वेताश्वतरोपनिषद्' से अनुसार निर्गुण राम का निरूपण किया गया है। यह अद्वैतवाद के अनुकूल है। किंतु दोहा इसके विरुद्ध है, इसलिए छोड दिया जाता है। शकराचार्य के मतानुसार निर्गुण ब्रह्म अवतार नहीं लेता, यह कार्य मायोपहित सगुण ब्रह्म का है। तुलसी दोनो मे भेद नही मानते। उन्होने स्पष्ट कर दिया है कि जो निर्गुण है, वही सगुण है, वही अवतार है। दूसरी उक्ति है

यन्मायावशवर्ति विश्वमखिल ब्रह्मादिदेवासुरा
यत्सत्त्वादमृषैव भाति सकल रज्जौ यथाहेर्भ्रमः।[5]

दूसरी पक्ति को लेकर अद्वैतवाद की घोषणा की जाती है, किंतु श्लोक के पहले ही शब्द पर ध्यान नही दिया जाता। 'यन्माया' का अर्थ है जिसकी माया। शकर के निर्गुण ब्रह्म

---

१. मुक्तिकोपनिषद्, १।१५-२५
२. दोहावली, २०५, रामचरितमानस, ३।६।१, ३।३२।१, ७।४।३, ३।८।३
३. रामचरितमानस, १।११५।४
४. रामचरितमानस, १।११८
५. रामचरितमानस, १।१।श्लोक ६

को माया-सबद्ध मान लेने पर उसका निर्विशेषत्व कहाँ रहेगा ? तुलसी वैष्णव वेदात का अनुसरण करते हुए माया को राम की भावरूपा शक्ति मानते है। जगत् वस्तुत रामरूप है। उसका दृश्यमान भिन्न रूप मृषा है।

इसी प्रकार विज्ञान-दीप-प्रकरण[1] के 'ईस्वर अस जीव अबिनासी' मे प्रयुक्त 'अस' को 'अश इव' कह कर काम चला लिया जाता है। 'अबिनासी' शब्द ध्यान देने योग्य है। वह जीव की सत्यता का द्योतक है। राम ने स्पष्ट कहा है जीव नित्य केहि लगि तुम्ह रोवा।[2] वस्तुत तुलसी का 'जीव' अद्वैतवाद के 'जीव' से बिलकुल भिन्न है। अद्वैतवाद के अनुसार जीव असत्य है, वह चैतन्य का बुद्धिगत प्रतिबिब मात्र है।[3] इसके प्रतिकूल तुलसी के मतानुसार जीव 'अबिनासी सत चेतन घन आनंद रासी' है। यह ठीक है कि उन्होंने अद्वैतवाद से बहुत-से विचार ग्रहण किये हैं, परतु उनके साहित्य मे अद्वैतविरोधी उक्तियाँ भी भरी पडी हैं। उनके-जैसे एकनिष्ठ सगुणभक्त को अद्वैतवाद के शिकजे मे कसना असगत है।

शैव-शाक्त-वैष्णव : तुलसी के युग मे ये तीन धार्मिक सप्रदाय प्रबल थे। उनमे परस्पर-विरोध था। तुलसी ने उनमे समन्वय स्थापित किया। शिव, शक्ति (देवी, पार्वती) और राम या विष्णु की स्तुतियो मे प्राय एकसमान विशेषताएँ बतलायी गयी हैं। राम और सीता ने क्रमश शिव और पार्वती की पूजा की है। शिव-पार्वती ने राम के प्रति उत्कट भक्तिभाव की व्यजना की है। 'रामचरितमानस' के वक्ता-श्रोता के रूप मे शिव-पार्वती की योजना समन्वय-भावना से ही प्रेरित है। 'विनयपत्रिका' की हरिशकरी स्तुति मे भी यह सिद्धात प्रतिफलित हुआ है। हाँ, यह समन्वय राम-भक्ति के केंद्रबिंदु से हुआ है। शैवो के परमशिव, शाक्तो की परमशक्ति और वैष्णवो के परमविष्णु उनके अतिरिक्त कुछ नही हैं। राम परम आराध्य हैं।[4] इसी लक्ष्य को दृष्टि मे रख कर राम, शिव और पार्वती से क्रमश कहलाया गया है[5]

१ सकर प्रिय मम द्रोही सिव द्रोही मम दास।
ते नर करहिं कलप भरि घोर नरक महुँ वास।।

२. जहँ लगि साधन बेद बखानी। सब कर फल हरि भगति भवानी।।

३ नाथकृपा मम गत सदेहा। राम चरन उपजेउ नव नेहा।।

वर्णाश्रमधर्म और मानवतावाद : तुलसी वर्णाश्रमधर्म के प्रबल समर्थक हैं। विभिन्न कृतियो मे कलियुग का वर्णन करते समय उन्होने उसके ह्रास पर खेद प्रकट किया है। धर्म-निरूपण के प्रसगो मे उसके पालन पर बल दिया है। परतु उनकी दृष्टि सकुचित

---

१. रामचरितमानस, ७।११७।१-७।११९।२

२. रामचरितमानस, ४।११।२

३. जीवभावो न सत्य —विवेकचूडामणि, १९८, बुद्धिप्रतिबिंबितं चैतन्य जीव -सिद्धा.तबिदु, पृ० ७९

४. देखिए . तुलसी-दर्शन-मीमासा, पृ० ९२-९४

५. रामचरितमानस, ६।२, ७।१२९।४, ७।१२९।४

नही है। उसका लक्ष्य लोक-कल्याण है। अत उन्होने साधारण-धर्मों को विशेष महत्त्व दिया है। राम-रावण-युद्ध के समय धर्ममय रथ के वर्णन मे दोनो का सामजस्य किया है।[1] मानवतावादी दृष्टि से सत्य, परोपकार और अहिसा को परम धर्म बतलाया है[2]
सत्य मूल सब सुकृत सुहाए, धरमु न दूसर सत्य समाना, श्रुति कह परम धरम उपकारा, परहित सरिस धर्म नहिं भाई, परम धरम श्रुतिविदित अहिंसा।

ब्राह्मण और शूद्र : वर्ण-व्यवस्था मे ब्राह्मण को समाज-शरीर का शिर और शूद्र को पैर कहा गया है। एक उच्चतम वर्ण है, दूसरा निम्नतम। सभी वर्णों के गुण और कर्म नियत हैं। समाज के व्यवस्थित सचालन के लिए वर्ण-धर्म का पालन आवश्यक है। उसके अतिक्रमण से समाज की मर्यादा भग होती है। समाज की व्यवस्था मे वर्ण-भेद स्वीकार करते हुए भी तुलसी ने भक्ति के क्षेत्र मे ब्राह्मण और शूद्र को समान स्थान दिया है। क्षत्रिय-श्रेष्ठ भरत और ब्राह्मण-रत्न वसिष्ठ ने निम्नवर्ण निषाद तथा केवट को आत्म-विस्मृत होकर प्रेमपूर्वक गले लगाया है।[3]

१ भेंटत भरतु ताहि अति प्रीती। लोग सिहाहिं प्रेम कै रीती।।
तेहि भरि अक राम लघु भ्राता। मिलत पुलक परिपूरित गाता।।

२ प्रेम पुलकि केवट कहि नामू। कीन्ह दूरि तें दड प्रनामू।।
रामसखा रिषि बरबस भेंटा। जनु महि लुठत सनेह समेटा।।

व्यक्ति और समाज : मुक्ति और भक्ति व्यक्तिगत वस्तुएं हैं। तुलसी का मुख्य प्रतिपाद्य भक्ति है। परतु, उन्होने इस बात का ध्यान रखा है कि मनुष्य सामाजिक प्राणी है। समाज के प्रति व्यक्ति के कुछ कर्तव्य हैं। अपनी वृत्तियो के उदात्तीकरण के साथ ही उसे अपनी सात्त्विकशीलता से समाज का भी उन्नयन करना चाहिए। तुलसी के सज्जनपात्र इसी प्रकार का आदर्श प्रस्तुत करते हैं। व्यक्ति और समाज, आत्मपक्ष और लोकपक्ष, के समन्वय द्वारा तुलसी ने धर्म की सर्वतोमुख रक्षा का प्रयास किया है।

व्यक्ति और परिवार : गृहस्थाश्रम सपूर्ण समाज-व्यवस्था का आधार है। इसलिए व्यक्ति के निर्माण और कर्तव्य की दृष्टि से जीवन मे परिवार का स्थान महत्त्वपूर्ण है। दशरथ, कौशल्या, सुमित्रा, राम, भरत, लक्ष्मण, सीता आदि के माध्यम से तुलसी ने पारिवारिक जीवन का जो महान् आदर्श प्रस्तुत किया है वह सभी के लिए अनुकरणीय है। विभिन्न पात्रो का पारस्परिक सबध स्नेह और शील की उदात्त भूमि पर प्रतिष्ठित है। लक्ष्मण और भरत की 'भायप भगति' तो अप्रतिम है। भरत से मिलकर सुग्रीव और विभीषण आत्मग्लानि से गड गये थे :

सघन चोर मग मुदित मन धनी गही ज्यो फेंट।
त्यों सुग्रीव बिभीषनहि भई भरत की भेंट।।

---

१. रामचरितमानस, ६।८०
२ रामचरितमानस, २।२८।३, ७।६५।३, १।८४।१, ७।४१।१, ७।१२१।११
३. रामचरितमानस, २।१९४।१-२, २।२४३।३

राम सराहे भरत उठि मिले राम सम जानि।
तदपि बिभीषन कीसपति तुलसी गरत गलानि ॥[१]

साधुमत और लोकमत : तुलसी की धर्म-भावना मे इन दोनो का भी सामजस्य पाया जाता है। सज्जनो के शील के अनुसार व्यक्तिगत धर्म-साधना 'साधुमत' है। व्यक्ति का सात्त्विकशील होना ही पर्याप्त नही है, उसका सदाचरण लोक-समर्थित भी होना चाहिए। लोक-मर्यादा और लोक-शासन के लिए लोकमत की रक्षा अभीष्ट है। उसका अनुसरण करते हुए राम ने अग्नि-परीक्षित सीता को निर्वासित किया, और साधुमत के अनुसार सीता तथा लक्ष्मण ने उनकी आज्ञा को शिरोधार्य किया।[२] काकभुशुडि के गुरु ने साधुमत का आचरण करते हुए क्रोध नही किया, किंतु लोकमत की रक्षा के लिए शिव ने भुशुडि को शाप देकर दडित किया।[३]

वेदशास्त्र और व्यवहार . तुलसी ने अपनी रचनाओ मे वेद, पुराण आदि की आप्तता का बारबार हवाला दिया है। उनका धर्मशास्त्रीय निरूपण बुद्धि-विलास नही है। उनके पात्र वेदशास्त्र के मत को व्यावहारिक जीवन मे कार्यान्वित करके दोनो का समन्वय उपस्थित करते हैं। इसीलिए सस्कारो का अनुष्ठान उन्होंने वैदिक और लौकिक रीतियो की समन्वित पद्धति से कराया है।[४] उनकी कविता-सरिता लोक और वेदमत दोनो के बीच से बहती है

चली सुभग कविता सरिता सो। राम बिमल जस जल भरिता सो ॥
सरजू नाम सुमगल मूला। लोक बेदमत मजुल कूला ॥[५]

भोग और त्याग · त्यागपूर्वक भोग धर्मशील का आदर्श है। इसके दो तात्पर्य हो सकते हैं। एक यह कि अनासक्त भाव से कर्म के सुफल का भोग किया जाए। दूसरा यह कि सुख-भोग को अपने तक ही सीमित न रख कर दूसरो को भी उसका भागी बनाया जाए। राम-राज्य मे दोनो का उत्तम निदर्शन मिलता है। स्वय राम ने भोग और त्याग के समन्वय का आदर्श प्रस्तुत किया है। उन्होने सीता का परित्याग करके पिता की आयु का भोग किया, अश्वमेध के पश्चात् सपत्ति द्विजो को बाँट दी[६] प्रतिनायक रावण ने तो साम्यवाद के सिद्धात को फलितार्थ किया है।[७]

हमारे यहाँ दो प्रकार के मार्ग बतलाये गये हैं। प्रवृत्ति-मार्ग और निवृत्ति-मार्ग। पहला गृहस्थ-जीवन का द्योतक है और दूसरा सन्यास का। अनेक आचार्य सन्यास को

---

१. दोहावली, २०७, २०८
२. गीतावली, ७।२७-२९
३. रामचरितमानस, ७।१०५-७।१०७
४ जानकीमगल, १४२; पार्वतीमगल, १४४, रामचरितमानस, १।३२०।१
५ रामचरितमानस, १।३९।६
६. गीतावली, ७।२५, रामचरितमानस, ७।२४।१
७. जेहि जस जोग बाटि गृह दीन्हे। सुखी सकल रजनीचर कीन्हे ॥
—रामचरितमानस, १।१७९।४

मुक्ति या भक्ति के लिए आवश्यक मानते हैं। तुलसी समन्वयवादी हैं। उनके मतानुसार घर मे रहते हुए भी अनासक्त भाव से व्यवहार करने पर भगवद्भक्ति की उपलब्धि हो सकती है

घर कीन्हे घर जात है घर छाँडे घर जाइ।
तुलसी घर बन बीच ही रामप्रेम पुर छाइ ॥[1]

राजा और प्रजा किसी भी देश और समाज की सुख-समृद्धि के लिए राजा तथा प्रजा का समन्वित प्रयास अपेक्षित है। तुलसी के युग मे पशु-बल के भरोसे शासन करने वाले राजा और बादशाह कर्तव्य-च्युत हो गये थे, 'यथा राजा तथा प्रजा' के अनुसार प्रजा भी पाखड-रत और पतित हो गयी थी।[2] समाज की यह दुर्दशा खेदजनक थी। आदर्श राम-राज्य मे तुलसी ने राजा और प्रजा के अभीष्ट समन्वय का विधान किया। राजभक्त प्रजा धर्म-निरत थी, और प्रजापालन-परायण राम ने नागरिको को उचित गौरव दिया

सुनहु सकल पुरजन मम बानी। कहौं न कछु ममता उर आनी ॥
नहि अनीति नहि कछु प्रभुताई। सुनहु करहु जो तुम्हहि सुहाई॥
जौ अनीति कुछ भाषौं भाई। तौ मोहि बरजहु भय बिसराई ॥[3]

राजतत्र और जनतत्र के समन्वय का यह निर्देश युग की परिसीमित पृष्ठभूमि मे किया गया है।

सस्कृति-सगम तुलसी-साहित्य मे पाँच भिन्न जातियो के पात्रो का चित्रण हुआ है देव, दानव, नर, वानर और तिर्यक्। उनकी अपनी सस्कृति है। किसी समाज की सौंदर्यमूलक, धार्मिक, सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक और दार्शनिक विचार-धारा का द्योतक 'सस्कृति' शब्द मानव के सबध मे ही प्रयुक्त होता है। वानरो या पक्षियो की सस्कृति की चर्चा नही की जाती। परतु, तुलसी के सुग्रीव और हनुमान् अथवा काकभुशुडि और गरुड साधारण वानर या पक्षी मात्र नहीं हैं। उनमे विवेकशीलता और भक्तिमत्ता है। उनके सस्कार मनुष्यो की भाँति विकसित हैं। इन्हे छोड देने पर भी तुलसी ने देवताओ, राक्षसों और मनुष्यो की सस्कृतियो का समन्वय करते हुए अत मे रामराज्य की स्थापना द्वारा मानव-सस्कृति की श्रेष्ठता दिखाकर मानवता की प्रतिष्ठा की है।

मानव-सस्कृति के भीतर भी समन्वय दृष्टिगोचर होता है। राजन्य-वर्ग, वन-पथ के जनसाधारण और कोल-किरातो की जीवन-पद्धति मे भिन्नता है। उसके अनुरूप उन्होने आचरण किया है। तुलसी ने राम के सबध से उन सबका समन्वय किया है। अधिक महत्त्वपूर्ण बात है हिंदू-सस्कृति के साथ मुस्लिम-सस्कृति का समन्वय। तुलसीदास सनातन धर्म और भारतीय सस्कृति के दृढनिष्ठ अनुयायी थे, किंतु उनकी दृष्टि सकुचित नही थी। उन्होने उदारता के साथ काव्यधर्म का निर्वाह किया है। राम की सेवा मे

१ दोहावली, २५६, देखिए भागवतपुराण, ५।१।१७-१८
२ विनयपत्रिका, १३९।३-४, दोहावली, ५५६
३. रामचरितमानस, ७।४३।२-३, और देखिए २।५।२-३

प्रेषित विनयपत्रिका का विधान मुगल-सम्राट् के पास भेजी जाने वाली अरजी की रीति पर किया गया है। 'उमरि दराज महाराज तेरी चाहिए' अथवा 'भइ बड़ि भीर भूप दरबारा' मे दरबारी सस्कृति का प्रतिबिब स्पष्ट है[1]। तलवार आदि शस्त्रो के वर्णन तथा अरबी-फारसी-शब्दावली के प्रचुर प्रयोग मे भी यह सास्कृतिक समन्वय परिलक्ष्य है।

काव्य और मोक्षशास्त्र समन्वय-साधक तुलसी की महत्तम उपलब्धि काव्य और मोक्षशास्त्र के समन्वय मे दिखायी देती है। काव्य के तीर्थराज मे धर्म, दर्शन और भक्ति की यह त्रिवेणी अनुपमेय है। उसमे आनद और मगल का, स्वात सुख और लोकहित का, अद्भुत समन्वय है। तुलसी ने कवियो के काव्यरस और भक्तो के भक्तिरस मे अभेद स्थापित कर दिया है। उनका 'रामचरितमानस' काव्य-रसिको की दृष्टि मे श्रेष्ठ महाकाव्य है, धर्मबुद्धि जनसाधारण का महनीय धर्मग्रथ है, और विषयविमुख भगवद्भक्तो के लिए भक्तिरस का अजस्र स्रोत है।

काव्य के मानदंड · भारतीय काव्यशास्त्र मे काव्य के छ प्रमुख मानदड निर्धारित किये गये हैं . रस, ध्वनि, अलकार, रीति, वक्रोक्ति और औचित्य। तुलसी ने इन सबका समन्वय किया है, सैद्धातिक रूप मे भी तथा प्रयोगात्मक रूप मे भी। 'काव्य-सिद्धात' मे प्रथम पाँच की चर्चा की जा चुकी है। 'रामचरितमानस' आदि मे औचित्य का प्राय सर्वत्र निर्वाह पाया जाता है। प्रयोगात्मक दृष्टि से, रस का विवेचन पिछले अध्याय मे किया गया है, ध्वनि आदि की विवेचना आगामी अध्याय मे की जाएगी।

भावपक्ष और कलापक्ष : काव्य-रचना की सफलता भाव-पक्ष और कलापक्ष के समुचित समन्वय मे है। भाव-पक्ष के निर्बल होने पर ग्रथ मनोरजक तमाशा बन जाता है, और कला-पक्ष के निर्बल होने पर वस्तु-भडार मात्र रह जाता है। तुलसी साधनसपन्न कवि थे। उनकी प्रतिभा सारग्राहिणी थी। उन्होने अपने युग मे प्रचलित प्रमुख छद-पद्धतियो (दोहा, दोहा-चौपाई, कबित्त, बरवै, गीत, सोहर) और विभिन्न काव्यरूपो (प्रबध, निबध, मुक्तक) का सफल प्रयोग किया। 'रामचरितमानस' मे महाकाव्य और पुराण का समन्वय अपने ढग का एक ही है। लोक-भाषा और सस्कृत का समन्वय भी अवेक्षणीय है। पडित लोग लोक-भाषा के विरुद्ध थे, जन-कल्याण जन-भाषा के माध्यम से ही सभव था। तुलसी ने प्रतिष्ठित जन-भाषाओ ब्रजी और अवधी मे काव्य-रचना की, किंतु सस्कृत-पदावली का प्रचुर व्यवहार किया। उन्होने प्रतिपाद्य विषय और प्रतिपादन शैली के सामजस्य का निरतर ध्यान रखा है। उनके काव्य मे शब्द और अर्थ, भाव और भाषा, भाव और छद, अलकार और अलकार्य का अपेक्षित समन्वय है।

स्वानुभूति और बाह्यार्थ : यद्यपि यह प्रश्न उठना नही चाहिए, फिर भी उठा दिया गया है कि तुलसी का काव्य स्वानुभूति-निरूपक है अथवा बाह्यार्थ-निरूपक, दूसरे शब्दो मे विषयप्रधान है या विषयिप्रधान। चरित-वर्णन स्वभावत बाह्यार्थ-निरूपक होता है। अत 'रामचरितमानस' बाह्यार्थ-निरूपक है। 'रामललानहछू', 'जानकीमगल' और 'पार्वतीमगल' भी इसी प्रकार की रचनाएँ हैं। 'गीतावली' और 'कवितावली' मे किया

१. कवितावली, ७।७६; रामचरितमानस, २।७६।३

गया चरित-वर्णन भी ऐसा ही है। आत्मनिवेदन स्वभावत स्वानुभूतिपरक होता है। इसलिए 'विनयपत्रिका' स्वानुभूति-निरूपक है। 'कवितावली' आदि के आत्मनिवेदनात्मक अश भी इसी कोटि मे आएँगे। इस प्रकार तुलसी के काव्य मे स्वानुभूति और बाह्यार्थ-निरूपण दोनो का समन्वय है।

निष्कर्ष यह है कि उन्होने काव्य, मोक्षशास्त्र और समाज की दृष्टि से सर्वतोमुख समन्वय-विधान किया। उनकी असाधारण सफलता, महत्ता और लोकप्रियता का बहुत-कुछ श्रेय उनकी समन्वय-साधना को है। "तुलसीदास के काव्यो मे उनका निरीह भक्त रूप बहुत स्पष्ट हुआ है, पर वे समाज-सुधारक, लोक-नायक, कवि, पडित और भविष्य-स्रष्टा भी थे। यह निर्णय करना कठिन है कि इनमे से उनका कौन-सा रूप अधिक आकर्षक था और अधिक प्रभावशाली था। इन सब गुणो ने तुलसीदास मे एक अपूर्व समता ला दी थी। इसी सतुलित प्रतिभा ने उत्तर-भारत को वह महान् साहित्य दिया जो दुनिया के इतिहास के अपना प्रतिद्वद्वी नही जानता"[1]

नारी-भावना

'नारी-भावना' का तात्पर्य है नारी-विषयक दृष्टिकोण। तुलसी की नारी-भावना दो रूपो मे अभिव्यक्त हुई है, नारीपात्रो के चरित्र-चित्रण मे, और नारी-विषयक मान्यताओ के सैद्धातिक निरूपण मे। सैद्धातिक निरूपण के प्रतिपाद्य विषय दो प्रकार के हैं नारी-धर्म और नारी-निंदा। उनके नारी विषयक विचारो को लेकर आलोचको मे काफी वाद-विवाद रहा है। तुलसी की नारी-विषयक विचार-धारा को, विशेषतया निंदापरक उक्तियो को, सही परिप्रेक्ष्य मे समझने के लिए पाँच बातो का ध्यान रखना आवश्यक है १ प्राचीन वाङ्मय जिसमे नारी-स्वभाव का वर्णन किया गया है, २ तुलसी के युग की परिस्थितियाँ, ३ उनका जीवनवृत्त, ४ उनकी धर्म-भावना, और ५. उनका भक्ति-दर्शन। यह बात भी स्मरणीय है कि उनकी नारी-सबधी उक्तियाँ दो दृष्टियो से प्रेरित हैं काव्य-दृष्टि से और मोक्ष-दृष्टि से।

नारीपात्र : तुलसीदास के नारीपात्रो के दो वर्ग हैं सत्पात्र और असत्पात्र। इस सबध मे चार बातें अवेक्षणीय हैं। एक यह कि तुलसी के पास सत्पात्रता का एक ही मानदड है रामभक्ति। जिनके मन मे राम के प्रति सद्भाव या भक्तिभाव है वे सत्पात्र या सु-नारियाँ हैं। जो राम के प्रति दुर्भाव रखती हैं वे असत्पात्र या कु-नारियाँ हैं। दूसरी बात यह है कि नारीपात्रो के ये दो वर्ग पुरुषपात्रो के तत्सवादी वर्गो से भिन्न हैं, उदाहरण के लिए प्रतिनायक रावण असत्पात्र है, किंतु उसकी पत्नी मदोदरी सत्पात्र है, राम-भक्त भरत सत्पात्र हैं, लेकिन उनकी माता कैकेयी तुलसी की दृष्टि मे असत्पात्र है। तीसरी बात यह है कि तुलसी-साहित्य मे सच्चरित्र नारीपात्रो की सख्या बहुत बडी है। निंदनीय कही जानेवाली नारियाँ गिनी-चुनी हैं, निंदनीय पुरुषो की सख्या कही अधिक है। चौथी बात यह है कि उनके नारीपात्र परपरागत है। उन्होने रीति-बद्ध रूप मे ही

१. हिंदी-साहित्य, पृ० २४१

उनका चित्रण किया है, यह और बात है कि विवरणो के अपेक्षानुसार सग्रह-त्याग मे कवि की स्वतन्त्रता का उपयोग किया है।

निंदित नारीपात्रो ताडका, कैकेयी, मथरा और सूर्पणखा को पहले लीजिए। ताडका का चित्रण केवल दो पक्तियो मे किया गया है

चले जात मुनि दीन्हि देखाई। सुनि ताड़का क्रोध करि धाई॥
एकहि बान प्रान हरि लीन्हा। दीन जानि तेहि निज पद दीन्हा॥[1]

जहाँ तक तुलसी-कृत चरित्राकन का प्रश्न है, ताडका बहुत बुरी नही है। उसे विश्वामित्र ने छेडा है। किसी स्त्री की ओर इशारा करना अशिष्टता है। ताडका का क्रुद्ध होना स्वाभाविक है। 'दीन' कह कर तुलसी ने उसके प्रति थोडी सहानुभूति भी व्यक्त कर दी है।

कैकेयी का चरित्र उदात्त है। सौतेले बेटो के प्रति भी उसके मन मे स्नेह है।[2] मथरा से राम के अभिषेक का समाचार मिलने पर उसके विशाल हृदय के उद्गार देखिए

सुदिनु सुमंगलदायकु सोई। तोर कहा फुर जेहि दिन होई॥
जेठ स्वामि सेवक लघु भाई। यह दिनकर कुल रीति सुहाई॥
राम तिलकु जौं साँचेहु काली। देउँ माँगु मनभावत आली॥
कौसल्या सम सब महतारी। रामहि सहज सुभाय पिआरी॥
मो पर करहिं सनेह बिसेषी। मै करि प्रीति परीछा देखी॥
जौं बिधि जनमु देइ करि छोहू। होहुँ राम सिय पूत पतोहू॥[3]

मथरा ने बडे मनोवैज्ञानिक और तर्कसगत ढग से उसे समझाया। उसके पुत्र की अनुपस्थिति मे एक पाख तक राम के तिलक की तैयारी होती रही और उसे सूचना तक नही दी गयी। यह बात ही ऐसी है जो बुरी लगे। सौत का शासन सभी नारियो को खलता आया है। कैकेयी उसकी कल्पना करके सिहर उठी। उसका तेज जागृत हुआ, मातृस्नेह उमडा। उसने अपने पुत्र के लिए राज्य माँगा, उसकी सुरक्षा के लिए राम का वनवास। उसे क्या पता था कि दशरथ सचमुच प्राण त्याग देंगे और जिस भरत के लिए उसने सब कुछ किया है वे ही उसका तिरस्कार करेंगे।

उसने गलत मार्ग अपनाया, लेकिन कुशलता और दृढता से उसका निर्वाह किया। प्रिय सखियो और विप्र-वधुओ ने बहुतेरा समझाया[4], फिर भी वह टस-से-मस नही हुई।

---

१. रामचरितमानस, १।२०६।३। देखिए गीतावली, १।५२।६, जानकीमगल, ४०

२ गीतावली, १।११।१

३. रामचरितमानस, २।१५।१-४

४. भरतु न प्रिय मोहि राम समाना। सदा कहहु येहु सबु जगु जाना॥
करहु राम पर सहज सनेहू। केहि अपराध आजु बन देहू॥
कबहुँ न किएहु सवति आरेसू। प्रीति प्रतीति जान सबु देसू॥
कौसल्या अब काह बिगारा। तुम्ह जेहि लागि बज्र पुर पारा॥
—रामचरितमानस, २।४९।३-४

भरत के आने पर, वैधव्य के बावजूद वह हर्षातिफुल्ल दिखायी देती है[1]

१ सजि आरती मुदित उठि धाई। द्वारेहिं भेंटि भवन लेइ आई॥
कैकेई हरषित येहि भाँती। मनहुँ मुदित दव लाइ किराती॥
२ तात बात मैं सकल सँवारी। भइ मंथरा सहाय बिचारी॥
कछुक काज बिधि बीच बिगारेउ। भूपति सुरपति पुर पगु धारेउ॥

कैकेयी का यह आचरण निंद्य है। वैधव्य एक हिंदू-नारी के लिए सबसे बड़ा अभिशाप है। परंतु, कैकेयी उसे मामूली क्षति समझ रही है। भरत ने अप्रत्याशित रूप से उसकी भर्त्सना की। अब उसे अपनी भूल का अनुभव हुआ। वह मौन हो गयी और अंत तक उसने मुँह नहीं खोला।

इसके पश्चात् तुलसी ने कैकेयी का केवल तीन बार उल्लेख किया है[2]

१ लखि सिय सहित सरल दोउ भाई। कुटिल रानि पछितानि अघाई॥
अवनि जमहि जाचति कैकेई। महि न बीचु बिधि मीचु न देई॥
गरइ गलानि कुटिल कैकेई। काहि कहइ केहि दूषनु देई॥
२ प्रभु जानी कैकई लजानी। प्रथम तासु गृह गए भवानी॥
३ कैकेयी जौ लौं जियति रही।
तौ लौं बात मातु सों मुँह भरि भरत न भूलि कही॥
मानी राम अधिक जननी तें जननिहुँ गँस न गही।

इसमें तीन बातें परिलक्षित होती हैं। १ जहाँ तक राम-कथा के लिए कैकेयी के चरित की उपयोगिता थी वहाँ तक ही उसका वर्णन किया गया। २ कैकेयी की ग्लानि और लज्जा से उसके हृदय की निर्मलता द्योतित होती है, क्योंकि पातकियों के मन में इन वृत्तियों का उदय नहीं होता। ३ राम ने कैकेयी को कौशल्या से भी अधिक माना, किंतु भरत ने उससे मुँह-भर बात तक नहीं की। भरत की यह गाँठ उनका अन्याय है, धर्म-शास्त्र और लौकिक शिष्टाचार का उल्लंघन है। तुलसी ने इसकी सफाई दी है भरत का एकमात्र लक्ष्य रामभक्ति है, उसमें लीन रहकर उन्होंने लोक-वेद-मर्यादा पर दृष्टि-पात ही नहीं किया।[3] यह सफाई पर्याप्त नहीं है। कैकेयी के प्रति उदार रहकर भी भरत रामभक्त बने रह सकते थे।

तुलसी ने कैकेयी को बहुत बुरा-भला कहलवाया है[4]

१. बात दृढ़ाइ कुमति हँसि बोली। कुमत कुबिहँग कुलह जनु खोली॥
२ अस कहि कुटिल भई उठि ठाढ़ी। मानहु रोष तरंगिनि बाढ़ी॥
३ ब्याधि असाधि जानि तिन्ह त्यागी। चलीं कहत मतिमंद अभागी॥
४. भरत स्रवन मन सूल सम पापिनि बोली बयन।

---

१. रामचरितमानस, २।१५९।२-३, २।१६०।१
२ रामचरितमानस, २।२५२।३, २।२७३।१, ७।८०।१, गीतावली, ७।३७।१-२
३. लोक बेद मरजाद दोष गुन गति चित चख न चही।
तुलसी भरत समुझि सुनि राखी राम सनेह सही॥—गीतावली, ७।३७।३
४ रामचरितमानस, २।२८।८, २।३२।१, २।५१।१, २।१५८, २।१६२।८-४

५. जब तें कुमति कुमत जिय ठयेऊ। खड खड होइ हृदउ न गयेऊ॥
बर माँगत मन भइ नहिं पीरा। गरि न जीह मुँह परेउ न कीरा॥
जो हसि सो हसि मुँह मसि लाई। आँखि ओट उठि बैठहि जाई॥

यह अभक्त की निदा है। नारी की बात सयोगवश आयी है। केवल राम-वन-गमन के प्रसग को छोडकर कैकेयी का शेष चरित्र उत्कृष्ट है। वहाँ पर भी परिस्थितियो ने उसे विवश कर दिया है। तुलसी की कट्टर रामभक्ति के कारण उसे अपशब्द सुनने पडे हैं।

मथरा बेचारी बिलकुल निर्दोष है। उसकी मति को देवी सरस्वती ने फेर दिया था।[1] लक्ष्य करने योग्य है कि बुद्धि-विपर्यय का यह कार्य भी एक नारी द्वारा कराया गया है। परतु उस सकोचशील नारी को पुरुष देवताओ ने ऐसा करने के लिए मजबूर किया है।[2] इस प्रकार ये दोनो ही नारियाँ निष्कलक हैं। उनके पतन के कारण पुरुष हैं।

सूर्पणखा का चित्राकन कुत्सित रूप मे हुआ है। आरभ ही निदात्मक है[3]

१. सूपनखा रावन कै बहिनी। दुष्ट हृदय दारुन जसि अहिनी॥
पचवटी सो गइ एक बारा। देखि बिकल भइ जुगल कुमारा॥
२ रुचिर रूप धरि प्रभु पहिं जाई। बोली बचन बहुत मुसुकाई॥
तुम सम पुरुष न मो सम नारी। येह सँजोग बिधि रचा बिचारी॥

उसका यह आचरण सामाजिक मर्यादा और नारी-धर्म के विरुद्ध होने के कारण तुलसी की दृष्टि मे अक्षम्य है' इसलिए पहले तो उसका खूब तमाशा बनाया गया और फिर राम के इशारे पर लक्ष्मण ने उसके नाक-कान काट लिये। राम-कथा ने नया मोड लिया।

यह ठीक है कि कामातुरा सूर्पणखा ने नारी के शील और समाज की मर्यादा का अतिक्रमण किया था, परतु उसका अपराध इतना अनर्थकारी नही था कि उसके नाक-कान काट लिये जाते। धर्मशास्त्र मे नारी के लिए ऐसा कठोर दड-विधान नही है। एक रमणी का अग-भग करने से पौरुष का गौरव नही बढता। यहाँ भी रामभक्ति कारण हुई है। रावण से लडाई मोल लेनी थी, उसकी बहन को कुरूप कर दिया गया। जो आलोचक यह कहते हैं कि सूर्पणखा मायाविनी थी, उन्हे उसी बुद्धि से यह भी मान लेना चाहिए कि राम मायापति थे। तुलसी की दृष्टि स्पष्ट है यदि नारी भी सीता-राम के विरोध मे आ पडे तो उसे दडित होना चाहिए। ताडका जान से मारी गयी, सूर्पणखा के नाक-कान काटे गये, मथरा लतियायी गयी और कैकेयी को कठोरतम दड मिला उसका इकलौता औरस पुत्र जीवन-भर उसकी अवमानना करता रहा।

उपर्युक्त विवेचन का निष्कर्ष यह है कि इन निकृष्ट समझी जाने वाली नारियो का चित्र पुरुष-पात्रो की तुलना मे अधिक बुरा नही है। दूसरी ओर, सात्त्विकशील नारियो के चरित्राकन मे तुलसी ने अत्यत उदार दृष्टि से काम लिया है। दिग्दर्शन मात्र से ही यह तथ्य स्पष्ट हो जाएगा। कौशल्या का चरित्र परम उदात्त है। उनके द्वारा पिता की अपेक्षा

१ अजस पेटारी ताहि करि गई गिरा मति फेरि।—रामचरितमानस, २।१२
२ रामचरितमानस, २।११।४-२।१२।३
३ रामचरितमानस, ३।१७।२।४

माता को महत्तर स्थान दिलाया गया है, पतिभक्ति की प्रतिष्ठा की गयी है, और सौत के प्रति भी सद्भावना का आदर्श प्रस्तुत किया गया है[1]

१ जौं केवल पितु आयेसु ताता। तौ जनि जाहु जानि बड़ि माता ॥
जौं पितु मातु कहेउ बन जाना। तौ कानन सत अवध समाना ॥
२ जौं सुत कहौं संग मोहि लेहू। तुम्हरे हृदयँ होइ संदेहू ॥
३ मानी राम अधिक जननी तें जननिहु गँस न गही।

कौशल्या मे मानवी का आदर्श है। वानरी तारा को भी तुलसी ने आदर दिया है। उसकी सीख न मानने पर राम ने बालि को फटकारा था।[2] क्रोधवत लक्ष्मण को शात करने के लिए सुग्रीव ने तारा के साथ हनुमान् को भेजा

सुनु हनुमत संग लै तारा। करि बिनती समुझाइ कुमारा ॥
तारा सहित जाइ हनुमाना। चरन बंदि प्रभु सुजसु बखाना ॥[3]

सूर्पणखा का अग-भग करने वाले लक्ष्मण ने तारा का उचित समान किया।

राक्षसी मंदोदरी का स्थान और भी उच्चतर है। रावण को दार्शनिक उपदेश देने के लिए, राम के विराट् रूप का निरूपण करने के लिए[4], यह नारी ही उपयुक्त समझी गयी। अनसूया ने श्रद्धालु सीता को नारी-धर्म का उपदेश दिया है।[5] राम ने शूद्रा शबरी पर विशेष कृपा की है।[6] त्रिजटा को सीता ने 'मातु' का पद दिया है।[7] 'गीतावली', 'रामचरितमानस' और 'कवितावली' के अयोध्याकाड मे ग्रामवधुओ का चित्राकन उनके प्रति तुलसी की अतिशय सद्भावना का प्रमाण है। पार्वती का पद सबसे विशिष्ट है। तुलसी ने सीता तथा पार्वती के अतिरिक्त कौशल्या, सुमित्रा आदि नारियो की भी सादर वदना की है।[8] उनके काव्य मे निबद्ध नायक-पक्ष के ही नही, प्रतिनायक पक्ष के भी अधिकाश नारीपात्र समाज के श्लाघ्य आदर्श हैं। 'रामचरितमानस' पुरुष सतो की ही नही चरित्रवती नारियो की भी विराट् प्रदर्शनी है।

नारी-धर्म धर्मशास्त्र मे स्त्रीधर्म-निरूपण पर पर्याप्त ध्यान दिया गया है[9], क्योकि वह सपूर्ण समाज-व्यवस्था के आधारभूत गार्हस्थ का केंद्र-विंदु है। तुलसी ने सनातन-परपरा के अनुसार पति-सेवा को ही नारी का एकमात्र धर्म बतलाया है[10]

एकै धर्म एक ब्रत नेमा। काय बचन मन पति पद प्रेमा ॥

---

१ रामचरितमानस, २।५८।१, २।५६।३, गीतावली, ७। ७।२
२ मूढ़ तोहि अतिसय अभिमाना। नारिसिखावनु करसि न काना ॥
—रामचरितमानस, ४।६।५
३. रामचरितमानस, ४।२०।२
४ रामचरितमानस, ६।१४-१८
५ रामचरितमानस, ३।५।१-१०
६ रामचरितमानस, ३।३६
७ रामचरितमानस, ५।१२।१
८ दोहावली, २१२-१३, रामचरितमानस, १।१६।१-२
९. मनुस्मृति, ५।१४६-१६६, याज्ञवल्क्यस्मृति, १।७७-८७ आदि
१०. रामचरितमानस, ३।५।५, ३।५, देखिए वाल्मीकि-रामायण, २।१७।२३

सहज अपावनि नारि पति सेवत सुभ गति लहइ।

पतिव्रताएं चार प्रकार की हैं। सीता के प्रति अनसूया की उक्ति है

जग पतिव्रता चारि बिधि अहहीं। बेद पुरान संत सब कहहीं॥
उत्तम के अस बस मन माहीं। सपनेहुँ आन पुरुष जग नाहीं॥
मध्यम परपति देखै कैसें। भ्राता पिता पुत्र निज जैसें॥
धर्म बिचारि समुझि कुल रहई। सो निकृष्ट त्रिय श्रुति अस कहई॥
बिनु अवसर भय तें रह जोई। जानेहु अधम नारि जग सोई॥[1]

अंतिम पंक्ति में 'अधम' नारी मनसा व्यभिचारिणी होने पर भी पतिव्रता मानी गयी है। इसका कारण कलियुग का वैशिष्ट्य है कलि कर एक पुनीति प्रतापा। मानस पुन्य होहिं नहि पापा।[2] पातिव्रत धर्म नारी-जीवन का साध्य है। पति वंचना नारी का घोरतम पाप है।[3] सभी प्रकार से हीन पति का भी अपमान करने वाली नारी नरकगामिनी होती है

बृद्ध रोग बस जड़ धनहीना। अंध बधिर क्रोधी अतिदीना॥
ऐसेहु पति कर किए अपमाना। नारि पाव जमपुर दुख नाना॥[4]

यह तुलसी की रूढिबद्ध दृष्टि है। जनतंत्र के वर्तमान युग मे बराबरी का नारा बुलंद है। तुलसी ने नारी के धर्माधर्म और पुरुष-परतंत्रता का जो चित्रण किया है वह आज के समतावादी-सुधारवादी आलोचक को खल जाता है। वह तुलसी पर बरस पड़ता है। संकुचित दृष्टि से तुलसी की संकुचित दृष्टि की आलोचना अवाछनीय है। उन्होने अब से लगभग चार सौ वर्ष पूर्व जो लिखा था वह उस युग की परिस्थिति के प्रतिकूल नही था। आज भी उसका फलितार्थ ग्राह्य है। तुलसी ने पुरुष के विषय मे भी एकपत्नीव्रत की धर्मसंहिता प्रस्तुत की है। उनके मर्यादा-पुरुषोत्तम राम इसके महान् आदर्श हैं। परनारी-विषयक प्रवृत्ति की भी उन्होने अनेकश निंदा की है[5]

१. लोभी लंपट लोलुप चारा। जे ताकहिं पर धनु पर दारा॥
पावौं मैं तिन्ह कै गति घोरा। जौं जननी एहु संमत मोरा॥
२ जो आपन चाहइ कल्याना। सुजसु सुमति सुभ गति सुख नाना॥
सो पर नारि लिलारु गोसाईं। तजौ चौथि के चंद कि नाईं॥
३. पर दारा पर द्रोह मोह बस किये मूढ मन भाये।
४. ज्यो चितई परनारि सुने पातक प्रपंच घर घर के।
त्यो न साधु सुरसरि तरंग निरमल गुन गन रघुवर के॥

इसमे संदेह नही कि तुलसी ने पुरुष की सच्चरित्रता की अपेक्षा नारी की सच्चरित्रता पर अधिक बल दिया है। इसके दो कारण हैं, तब भी थे और अब भी हैं। एक यह कि पुरुष का चरित्र-दोष उतना संक्रामक नही है जितना नारी का। दूसरा यह कि जिस

---

१ रामचरितमानस, ३।५।५-८, देखिए शिवपुराण, २।३।५४।७२-७७
२. रामचरितमानस, ७।१०३।४
३ पतिवंचक परपति रति करई। रौरव नरक कलप सत परई॥—रामचरितमानस, ३।५।८
४ रामचरितमानस, ३।५।४-५, भागवतपुराण, १०।२९।२५
५ रामचरितमानस, ३।१६८।२, ५।३८।३, विनयपत्रिका, २०१।३, १७०।२

गलती के कारण पुरुष का कुछ नही बिगड़ता उसी के कारण नारी पर कलंक का अमिट टीका लगा दिया जाता है। बिना अपराध के ही, अग्नि-परीक्षा के बाद भी, सीता को धर्मधुरधर राम के हाथो निर्वासित होना पड़ा था।

नारी-निंदा तुलसी ने अनेक स्थलो पर नारी-निंदा-परक वचन कहे या कहलवाये हैं। जहाँ कवि की दृष्टि मे, काव्यधर्म के आग्रहवश, निंदा की गयी है वहाँ नारी की स्वभावगत विशेषता का उल्लेख किया गया है अथवा नारी को सामान्य भोग्य वस्तु मानकर उसकी तुच्छता प्रदर्शित की गयी है। जहाँ मोक्षधर्म की दृष्टि से नारी का कुत्सित चित्रांकन हुआ है वहाँ नारी को काम का आलंबन मानकर वैराग्योद्दीपन के लिए उसका दोष-दर्शन किया गया है। निंदा करने वाले स्वयं तुलसीदास, उनके राम, संतभक्त, असज्जन पात्र, और नारियाँ भी हैं। अपने को जड़ समझने वाला अनुत्तम पात्र समुद्र कहता है

ढोल गँवार सूद्र पसु नारी। सकल ताड़ना के अधिकारी॥[1]

अपनी बात को प्रभावशाली ढग से प्रस्तुत करने के लिए अन्य दृष्टातो के साथ नारी का भी अप्रस्तुत-विधान किया गया है। तुलसी के पूर्व और उनके युग मे भी नारी को कठोर शासन मे रखना आवश्यक समझा जाता था। 'अधिकारी' शब्द से ध्वनित होता है कि 'ताड़ना' नियम नही है, आवश्यकता पड़ने पर 'ताड़ना' की जानी चाहिए। इसी के साथ दुष्ट रावण की उक्तियाँ भी विचारणीय है[2]

१ सभय सुभाउ नारि कर सांचा। मगल महुँ भय मन अति कांचा॥
२ नारि सुभाउ सत्य कवि कहहीं। अवगुन आठ सदा उर रहहीं॥
साहस अनृत चपलता माया। भय अविवेक असौच अदाया॥

यह सिद्धात-वाक्य नही है, स्वभाव-कथन है। जिस प्रसग मे और जिस ढग से यह बात कही गयी है उससे हास्य की अनुभूति होती है, किसी गभीर विचार की नही।

विक्षिप्त 'जड़' समुद्र और 'मोह'-ग्रस्त रावण के कथन को आप्त नही माना जा सकता काक कहहिं कलकंठ कठोरा।[3] परतु, उपर्युक्त उद्धरणो से यह निष्कर्ष निकाल लेना असगत है कि तुलसी के केवल दुष्ट पात्र ही नारी-निंदक हैं। कुछ अन्य उक्तियाँ है[4]:

१ सुनहि सती तव नारिसुभाऊ। ससय अस न धरिअ उर काऊ॥
२ सती कीन्ह चह तहौं दुराऊ। देखहु नारि सुभाव प्रभाऊ॥
३ उतरु देइ नहि लेइ उसांसू। नारिचरित करि ढारइ आंसू॥
४ तिअ बिसेषि पुनि चेरि कहि भरतमातु मुसुकानि।
५ गूढ़ कपट प्रिय बचन सुनि तीय अधरबुधि रानि।
६. दीन बचन कह बहु बिधि रानी। सुनि कुबरी तियमाया ठानी॥

---

१ रामचरितमानस, ५।५९।३
२. रामचरितमानस, ५।३७।२, ६।१३।१-२, देखिए हितोपदेश, मित्रलाभ, १९५
३. रामचरितमानस, १।९।१
४. रामचरितमानस,१।५१।१, १।५३।३, २।८३।३, २।१४, २। ६, २।२१।२, २।२७।४, २।२९, २-४७।८-दोहा, २।१६२।२-३

७. जद्यपि नीतिनिपुन नरनाहू। नारिचरित जलनिधि अवगाहू।
८. कवने अवसर का भएउ गएउँ नारि विस्वास।
९ सत्य कहहिं कवि नारि सुभाऊ। सब विधि अगम अगाध दुराऊ॥
निज प्रतिबिंब बरुकु गहि जाई। जानि न जाइ नारिगति भाई॥
काह न पावक जारि सक का न समुद्र समाइ।
का न करइ अबला प्रबल केहि जग कालु न खाइ॥
१०. बिधिहुँ न नारिहृदय गति जानी। सकल कपट अघ अवगुन खानी॥
सरल सुसील धरमरत राऊ। सो किमि जानइ तीअ सुभाऊ॥

इन पंक्तियों में शिव ने, कवि ने, कैकेयी ने, दशरथ ने, सामान्य नर-नारियों ने और भरत ने प्रसंगानुसार नारी-स्वभाव के अनिष्ट-पक्ष की व्यंजना की है। ये कथन दो स्रोतों पर आश्रित हैं साहित्य और जीवन। १ 'हितोपदेश'[1] आदि में नारी-स्वभाव-विषयक इस प्रकार के नीति-वाक्य भरे पड़े है। तुलसी ने उस परंपरागत विचारधारा का अनुधावन किया है। २. काव्य जीवन का दर्पण है। लोक-जीवन में अपने वक्तव्य को मार्मिक बनाने के लिए लोग प्रायः जातिपरक आक्षेप कर दिया करते हैं। पुरुषों की कौन कहे, गँवारिनें और सुशिक्षित स्त्रियाँ भी किसी अन्य नारी के आलोच्य व्यवहार पर टिप्पणी करते समय 'मेहरारू क जाति' या 'त्रियाचरित्र'-जैसी उक्तियों का निर्बाध प्रयोग कर दिया करती हैं। तुलसी ने जीवन के इस चित्र को काव्य में प्रतिबिंबित किया है। द्विज देवता घरहिं के बाढे, चहिअ विप्र उर कृपा घनेरी, छत्रिय तनु धरि समर सकाना, मैं पाँवर पसु कपि अति कामी आदि जातिपरक वाक्य अपने इस वैशिष्ट्य के कारण अधिक चित्तस्पर्शी हो गये हैं।[2] इसी दृष्टि से राम की दो आलंकारिक उक्तियाँ अवेक्षणीय हैं[3]

१ संग लाइ करिनी करि लेहीं। मानहु मोहि सिखावनु देहीं॥
सास्त्र सुचिंतित पुनि पुनि देखिअ। भूप सुसेवित बस नहिं लेखिअ॥
राखिअ नारि जदपि उर माहीं। जुबती सास्त्र नृपति बस नाहीं॥
२ महावृष्टि चलि फूटि किआरीं। जिमि सुतंत्र भएँ बिगरहिं नारीं॥

ये परंपरागत नीति-वाक्य काव्य के संदर्भ में उपयुक्त स्थान पर बिठा दिये गये हैं। ये उद्गार राम के निजी अनुभव के परिणाम हैं। प्रियतमा नारी की भी निरंतर रखवाली आवश्यक है। सीता ने स्वतंत्र होकर लक्ष्मण के प्रति कुछ मरम बचन[4] कहे। यदि लक्ष्मण 'ताड़ना' (कठोर नियंत्रण) का उपयोग करते तो सीता-हरण न होता। हाथियों-हथिनियों और जल-धारा को देखकर लौकिक जीवन-यापन की नीति-रीति उनके मन में सहजतया कौंध गयी और वे उसे अभिव्यक्त किये बिना न रह सके।

---

१ हितोपदेश, मित्रलाभ, १९, ११६ १७, ११८, २०२, सुहृद्भेद, ११५-१९
२ रामचरितमानस, १।२७६।४, १।२८२।२, १।२८४।२, ४।२१।२
३ रामचरितमानस, ३।३७।८-५, ४।१५।४
४. मरम बचन जब सीता बोला। हरिप्रेरित लछिमन मन डोला॥
—रामचरितमानस, ३।२८।३

सामाजिक दृष्टि से दो स्थल विचारणीय हैं[1]

१ स्रक चदन बनतादिक भोगा। देखि हरप बिसमय बस लोगा ।।

२ सुत बित नारि भवन परिवारा। होहिं जाहिं जग बारहिं बारा ।।

जैहौं अवध कवन मुंह लाई। नारि हेतु प्रिय भाइ गँवाई ।।

बरु अपजस सहतेउं जग माहीं। नारि हानि बिसेप छति नाहीं।।

भरद्वाज ने तपोबल मे भरत आदि के लिए भोग-विलास की सारी सामग्री प्रस्तुत कर दी। उन भोग्य पदार्थों मे वनिताएँ भी थी। यह सामती दृष्टिकोण है। विलासिता के उस युग मे नारी भोग्या मात्र समझी जाती थी। इसीलिए राम ने नारी को गँवा देने मे अपयश तो माना किंतु उसमे उन्हे कोई विशेप हानि नही दिखायी पडी। इन उक्तियो का दूसरा पहलू भी है। कवि-तुलसी को भरत की महिमा प्रतिपादित करनी थी। महान् वह है जो पतन की परिस्थिति मे भी जितेंद्रिय बना रहता है।[2] भरत ने उस भोग-सामग्री पर दृष्टिपात भी नही किया। यह उनकी महत्ता का प्रमाण है। दूसरा उद्धरण लक्ष्मण की मूर्च्छा पर शोकाभिभूत राम का कातर-क्रदन है। कवि का उद्देश्य है भ्रातृस्नेह का उत्कर्ष दिखाना। नारी-विपयक उक्ति ने उस स्नेह की अभिव्यजना को अत्यत मर्म-स्पर्शी बना दिया है। आर्त चित्त का उद्गार सिद्धात नही है।

तुलसी ने काव्य-दृष्टि से ही सूर्पणखा को लक्ष्य करके काकभुशुडि द्वारा कहलवाया है

भ्राता पिता पुत्र उरगारी। पुरुप मनोहर निरखत नारी ।।

होइ विकल सक मनहि न रोकी। जिमि रबिमनि द्रव रबिहि बिलोकी ।।[3]

इन पक्तियो को पढकर खिन्न होने की जरूरत नही है। 'हितोपदेश', 'महाभारत', 'सत्योपाख्यान' आदि की मूल उक्तियो से रूपातरित इस चौपाई को मिलाकर देखिए तो पता चलेगा कि तुलसी ने किस कुशलता के साथ मूल के अश्लील अश को निकाल कर मर्यादा का निर्वाह किया है। उपमान-रूप मे 'रबिमनि' की योजना करके 'द्रव' क्रिया के द्वारा उन्होने गृहीत अर्थ की अत्यत सटीक व्यजना की है।

अनसूया-जैसी शीलवती ऋषि-पत्नी ने तो नारी को सहज अपावनि[4] कहा ही है, 'भव भव विभव पराभव कारिनि। बिस्व बिमोहनि स्वबस बिहारिनि'[5] पार्वती, और राम द्वारा जननी की भाँति समादृत[6] शबरी ने भी आत्मनिष्ठ नारी-निंदा की है[7]

१ रामचरितमानस, २।२१५।४, ६।६१।४६

२ तेहि पुर बसत भरत बिनु रागा। चचरीक जिमि चपक बागा ।।
रमाबिलासु राम अनुरागी। तजत बमन जिमि जन बड़भागी ।।
—रामचरितमानस, २।३२४।४

पित्रा विसृष्टा मदपेक्षया य श्रिय युवाप्यकगतामभोक्ता।
इयन्ति वर्षाणि तया सहोग्रमभ्यस्तीव व्रतमासिधारम् ॥—रघुवश, १३।६७

३ रामचरितमानस, ३।१७।३; देखिए मानस-पीयूप और सिद्धात-तिलक

४ सहज अपावनि नारि पति सेवत सुभ गति लहइ।— रामचरितमानस, ३।५

५ रामचरितमानस, १।३५।४

६ गीतावली, ३।१७।४

७ रामचरितमानस, १।५७, १।११०।१, १।१२०।२, ३।३५।१-२

१. कीन्ह कपटु मैं संभु सन नारि सहज जड़ अज्ञ ।
जदपि जोषिता नहि अधिकारी । दासी मन क्रम बचन तुम्हारी ॥
अब मोहि आपनि किंकरि जानी । जदपि सहज जड नारि अयानी ॥
३ केहि बिधि अस्तुति करौं तुम्हारी । अधम जाति मैं जडमति भारी ॥
अधम ते अधम अधम अति नारी । तिन्ह महुँ मैं अति मद अघारी ॥

मनोवैज्ञानिक आलोचना की दृष्टि से यह नारी की हीनता-ग्रथि है, इतिहास और समाजशास्त्र की दृष्टि से नारी की शताब्दियो से परपरया चली आती हुई मानसिक दासता का प्रतिफलन है । तुलसी के युग मे नारी की सामाजिक स्थिति इससे अच्छी नही थी । तुलसी के पूर्व लिखित वाङ्मय मे नारी का उक्त रूप बहुधा चित्रित था । उन्होने काव्य के अनुरूप प्रसग को हृदयस्पर्शी बनाने के लिए, और भक्ति के अनुरूप दैन्य की अतिशयित व्यजना के लिए उपर्युक्त हीनतापरक वाक्यो की निबधना की । इस प्रसग मे यह भी याद रखना चाहिए कि तुलसी की नारी मध्ययुग की प्रकृत नारी नही है, उसमे मध्ययुग की नारी की भी प्रतिच्छाया है। **पलँग पीठि तजि गोद हिंडोरा । सिय न दीन्ह पगु अवनि कठोरा**' आदि आलकारिक उक्तियो के आधार पर सीता को मध्यकालीन गुडियानुमा वधू समझना उचित नही है । यह कवि की कल्पना-मडित अतिशयोक्ति है, उसका सिद्धात नही है। फुलवारी मे, रगभूमि मे या अयोध्या मे जाते समय सीता पलँग पर, गोद मे या हिंडोले पर नही बैठी थी । सुकुमारता नारी का परपरा-प्रथित गुण है ।

नारी के निंदनीय रूप का सैद्धातिक निरूपण स्वय तुलसी, काकभुशुडि और उनके राम ने किया है[2]

१ काम क्रोध लोभादि मद प्रबल मोह कै धारि ।
तिन्ह महँ अति दारुन दुखद मायारूपी नारि ॥
दीप सिखा सम जुवति तन मन जनि होसि पतग ।
भजहि राम तजि काम मद करहि सदा सतसग ॥
२. जन्मपत्रिका बरति कै देखहु मनहिं विचारि ।
दारुन बैरी मीचु के बीच बिराजति नारि ॥
३ बिकटतर बक्र क्षुरधार प्रमदा तीव्र दर्प कदर्प खर खड्गधारा ।
अजनकेस सिखा जुवती तहँ लोचन सलभ पठावौं ।
४. पुरुष प्रताप प्रबल सब भाँती । अबला अबल सहज जड जाती ॥

---

१. रामचरितमानस, २।७६।३, अभिधा-प्रेमी आलोचक निम्नाकित पक्तियों के आधार पर राम-लक्ष्मण को गुड्डानुमा नर भी मान सकते हैं
मृदु मूरति सुकुमार सुभाऊ । तात बाउ तन लाग न काऊ ॥
—रामचरितमानस, २।२००।२
राम सुना दुख कान न काऊ । जीवनतरु जिमि जोगवइ राऊ ॥
पलक नयन फनि मनि जेहि भाँती । जोगवहिं जननि सकल दिन राती ॥
—वही, २।२०१।१

२ दोहावली, २६६, २६६ (रामचरितमानस, ३।४३, ३।४६), दोहावली, २६८, विनयपत्रिका, ६०।७, १४२।२, रामचरितमानस, ७।११८।४, ३।४४

५. सुनु मुनि कह पुरान श्रुति सता । मोह विपिन कहुँ नारि वसता ॥
जप तप नेम जलासय झारी । होइ ग्रीषम सोखै सव नारी ॥
काम क्रोध मद मत्सर भेका । इन्हहि हरखप्रद वरषा एका ॥
दुर्वासना कुमुद समुदाई । तिन्हहँ कहँ सदा सरद सुखदाई ॥
धर्म सकल सरसीरुहवृदा । होइ हिम तिन्हहि देत दुख मदा ॥
पुनि ममता जवास वहुताई । पलुहइ नारि सिसिर रितु पाई ॥
पाप उलूकनिकर सुखकारी । नारि निविड रजनी अँधिआरी ॥
वुधि वल सील सत्य सव मीना । वनसी सम त्रिय कहहिं प्रवीना ॥
अवगुनमूल सूलप्रद प्रमदा सव दुख खानि ।

यह नारी-निंदा मोक्षधर्म से प्रेरित होकर की गयी है। तुलसी-साहित्य का मुख्य उद्देश्य रामभक्ति का निरूपण है। भक्ति का मुख्य साधन वैराग्य है। 'वैराग्य' का अर्थ है विषय-वितृष्णा। काम जीव की प्रवलतम सहजप्रवृत्ति है।[1] पुरुष की कामरति का एकमात्र और विवशीकारक आलवन नारी है।[2] वैराग्य की उत्पत्ति एव धारणाके लिए राग के विषय का निरतर दोष-दर्शन आवश्यक है। नारी के प्रति वैराग्य तव तक नहीं हो सकता जव तक उसके प्रति जुगप्सा-भाव जागृत न हो जाए। इस सवध मे यह तथ्य स्मरणीय है कि कवि ने सैद्धातिक रूप से जिस नारी की निंदा की है वह काम की आलवन-रूपा नारी है। उपर्युक्त उद्धरणो मे दो वार **युवती** और दो वार **प्रमदा** शब्द के प्रयोग से यह वात स्वयसिद्ध है। मृगलोचनी प्रमदा के नयन-शर से विद्ध विद्वान् पुरुष भी पथभ्रष्ट हो जाते हैं।[3] अत उसके अवगुणो के वारवार निदर्शन से ही उसके प्रति वैराग्य का उदय सभव है।

कहा जा सकता है कि नारी के काम का आलवन पुरुष भी तो है। पुरुष का दोष-दर्शन करा कर नारी के मन मे वैराग्य क्यो नही जगाया गया? इसका उत्तरदायित्व सनातनधर्म के सस्थापक, प्रसारक और पोषक स्मृतिकारो, पुराणकारो, इतिहासकारो आदि पर है। तुलसी पर इतना ही आक्षेप किया जा सकता है कि उन्होने उस परपरा का अनुसरण किया। सास्कृतिक सघर्ष के उस युग मे परपरा के प्रति निष्ठा समाज की आवश्यकता थी। एकाव आलोचको को यह भ्राति है कि 'नानापुराणनिगमागम' की दुहाई देने वाले तुलसी के साहित्य मे की गयी नारी-निंदा उनकी निजी कल्पना है। यथार्थ यह है कि वैदिक साहित्य[4] और सस्कृत-वाङ्मय मे सैकडो नहीं, हजारो पक्तियाँ ऐसी मिल जाएँगी जिनमे नारी के दोषों का चित्रण किया गया है। 'योगवासिष्ठ' के 'वैराग्य प्रकरण' के एक पूरे सर्ग मे स्त्रीजुगुप्सा का निरूपण है।[5] 'महाभारत' के लगभग दो अध्यायो का

१ रामचरितमानस, १।२५७।१, ७।७०।४

२ दोहावली, २६५, रामचरितमानस, ३।३८, ७।११५, विनयपत्रिका, १३६।७

३. रामचरितमानस, ७।७०, १११, कवितावली, ७।११७, मनुस्मृति, २।२१३-१४

४ उद्धरणों के लिए देखिए मानस-पीयूष, ६।१६।३, "गोस्वामी जी पर नारी-निंदा का दोषारोपण करने वाले स्वय समयनोचक (समालोचक) पडितमन्य जनों को चाहिए कि इन वेदमन्त्रों को ध्यानपूर्वक देखें।"

५ विशेष द्रष्टव्य योगवासिष्ठ, १।२१।६-१२, १४, १६, १८-२१, ३२-३४

प्रतिपाद्य नारी-निंदा है।[1] पुराणो आदि मे नारी के अवगणो का बहुश वर्णन किया गया है।[2] भक्ति-भावना से अनुप्राणित कबीर आदि संतो ने नारी के वैराग्योद्‌बोधक जुगुप्सित रूप का निदर्शन किया है।[3] तुलसी उसी शृखला की एक कडी हैं। वस्तुत संस्कृत-ग्रथो मे नारी की जो तीव्र निंदा की गयी है उसकी तुलना मे तुलसी की उक्तियाँ कोमल हैं। एक स्थल पर उन्होने पराधीन नारी के प्रति सहानुभूति भी दिखलायी है।[4] वे नारी के प्रति अनुदार होते हुए भी उदार हैं। इस प्रसग मे यह भी ध्यान देने योग्य है कि राम से निरतर भक्ति का वरदान माँगते समय तुलसी ने भगवत्प्रेम की अतिशयता व्यक्त करने के लिए कामी और नारी की उपमान-रूप मे योजना की है

कामिहि नारि पिआरि जिमि लोभिहि प्रिय जिमि दाम।
तिमि रघुनाथ निरतर प्रिय लागहु मोहि राम॥[5]

मायारूपी नारी : तुलसी के सिद्धातानुसार राम और काकभुशुडि ने नारी को माया कहा है[6]

१. तिन्ह महँ अति दारुन दुखद माया रूपी नारि।
२ सोउ मुनि ज्ञाननिधान मृगनयनी बिधुमुख निरखि।
बिकल होहिं हरिजान नारि बिस्वमाया प्रगट॥

कहा जा चुका है कि माया दो प्रकार की है विद्यारूपा और अविद्यारूपा। मायारूपा होने के कारण नारी के भी दो रूप हैं विद्यारूप और अविद्यारूप। पुरुष को कामविकल कर देने वाली युवती अविद्यारूपा है। वही निंदनीय या जुगुप्सनीय है। तुलसी के नारी-पात्रो मे कैकेयी और सूर्पणखा इसी प्रकार की नारियाँ हैं। तुलसी ने 'लोकरीति' मे पड-कर स्वय भी उसके इस रूप का कटु अनुभव किया था। अनसूया, कौसल्या आदि विद्या-रूपा नारियाँ हैं, अत आदरणीय हैं। सीता सपूर्ण माया हैं। वे विद्यारूपा भी है और अविद्यारूपा भी। रावण आदि अभिमानियो के लिए वे अविद्यारूपा हैं। इस अविद्यामाया से अलग रह कर रावण सुखी था, इसके सबध से हा उसका सत्यानाश हुआ। हनुमान्, तुलसी आदि के लिए सीता विद्यामाया हैं, उनके लिए पुरुषकाररूपा हैं।[7] इसी प्रकार लोक जीवन मे एक ही नारी किसी पुरुष के लिए मोह एव कष्ट का कारण हो सकती है,

---

१ महाभारत, अनुशासनपर्व, अध्याय ३८-३९। गीता, ९।३२

२ भागवतपुराण, ७।१२।९, ९।१४।३६-३९, शिवपुराण, ५।२४।१५-१६, वैराग्यशतक २०, प्रश्नोत्तरी ३, आदि

३ कबीर-वचनावली, प्रथम खड, दोहा ५५४-६०, सतबानी-सग्रह, भाग १, पृ० ५८, ९१, १०३, ११५, १२४, १२३

४ कत बिधि सृजी नारि जग माहीं। पराधीन सपनेहुँ सुख नाहीं॥
—रामचरितमानस, १।१०२।३

नारि जनमु जग जाय सखी कहि सोचहि।—पार्वतीमगल, १५९

५. रामचरितमानस, ७।१३०

६ दोहावली, २६६, रामचरितमानस, ३।४३, ७।११५
पाठातर बिबस होइ हरिजान नारि विष्णुमाया प्रगट।—काशिराज-सस्करण

७. विनयपत्रिका, ४३,४४

और किसी अन्य के लिए आनद तथा कल्याण का। पहले के लिए वह विद्यामाया है, दूसरे के लिए अविद्यामाया। पहला रूप निंद्य है, दूसरा श्लाघ्य।

प्रश्न उठाया गया है सूर भी तो भक्तकवि थे, उन्होने नारी-निंदा क्यो नही की? उत्तर है सूर मे समाजसुधार-भावना की कमी थी, उनका मुख्य उद्देश्य था परकीया गोपबालाओ के साथ की गयी कृष्ण-लीला का वर्णन, और वे अधे भी थे। तुलसी समाज-सुधारक थे, समाज-व्यवस्था की दृष्टि मे गुणधर्म का प्रतिपादन भी उनका लक्ष्य था, उन्हें अपने महाकाव्य मे ऐतिह्य-निबद्ध, अवेक्षित और अनुभूत जीवन के वैविध्यपूर्ण चित्र अकित करने थे। उनका साहित्य कवित्व और भक्तिदर्शन तक ही सीमित नही रहा, उसमे नीति और लोकधर्म[1] का भी विशद निरूपण हुआ। अपने अध्ययन, सत्सग और सस्कारो के अनुसार उन्होने परपरावादी दृष्टिकोण अपनाया। उस क्रम मे नारी-निंदा भी आ गयी। इस माध्यम मे कवि ने पुरुष-जाति के स्वभाव का भी उद्घाटन कर दिया है।

'रामचरितमानस' का चमत्कार तो देखिए। जिस श्रद्धा-भक्ति के साथ पुरुष-समाज उसका पारायण और श्रवण करता है उसकी तुलना मे 'रामचरितमानस' के प्रति नारियो की श्रद्धा-भक्ति कम नही है विदुषियो की कमी नही है, तथापि तुलसी द्वारा की गयी नारी-निंदा के कट्टर आलोचक पुरुष ही हैं। आज भी पुरुष अपने को नारी के अधिकारो का सरक्षक समझता है। जीवन का यह स्थूल सत्य तुलसी की सूक्ष्म दृष्टि से ओझल नही हो सकता था। उनके नारी-विषयक अन्याय पर बौखलाहट व्यक्त करने के लिए एक बार 'रामचरितमानस' के पन्ने फाडे गये थे, लेकिन इस शौर्य का प्रदर्शन एक पुरुष ने किया था, किसी महिला ने नही। कारण तुलसीदास अपने ढग से बता गये है

पुरुष प्रताप प्रबल सब भाँती। अबला अबल सहज जड जाती ॥[2]

उपर्युक्त विवेचन का उद्देश्य तुलसी की नारी-भावना का कारणनिर्देशपूर्वक स्पष्टीकरण है। उसका यह तात्पर्य कदापि नही है कि उन्होने जो नारी-निंदा की है वह समर्थनीय है। उन्होने नारी के प्रति अपेक्षित उदारता नही बरती। नारी-जाति की विगर्हणा के बिना भी उनका काम चल सकता था, उनकी गरिमा मे तनिक भी खोच न लगती। परतु, उन अशो को तुलसी-साहित्य से निकाल देने का प्रस्ताव अमान्य है। वर्णाश्रमधर्म की व्यवस्था, राम का ईश्वरत्व, दास्य-भक्ति की मनोवृत्ति आदि भी ऐसी बातें हैं जिन्हे आज के सशोधनवादी वैज्ञानिक आलोचक निकाल देना चाहेंगे। और, इन सबको निकाल देने के बाद तुलसीदास ही तिरोहित हो जाएँगे।

---

१. इसीलिए तुलसी का मुख्य प्रतिपाद्य रामचरित है, कृष्णचरित-वर्णन गौण है।
२ रामचरितमानस, ७।११५।४

९. कला-पक्ष

प्रतिपाद्य वस्तु की आनद-विधायिनी अभिव्यजन-शैली कला है। कविता शब्द-मयी रचना है। अत काव्य-कला का सारा सौंदर्य शब्द और अर्थ के समुचित सामजस्य पर निर्भर है। 'शब्दार्थौ सहितौ काव्यम्', 'वाक्य रसात्मक काव्यम्', 'रमणीयार्थप्रति-पादक शब्द काव्यम्' अथवा कबिहि अरथ आखर बलु साँचा' आदि का यही तात्पर्य है। विभाव आदि का उचित सयोजन, व्यवस्थित वस्तु-विन्यास, ध्वनि-वक्रोक्ति, गुण-वृत्ति, अलकार, चित्रात्मकता, उपयुक्त छद, सवाद आदि उस सामजस्य को रमणीय बनाते हैं। अतएव ये सब कला-पक्ष की विशेषताएँ हैं।

शब्दार्थ-संतुलन

प्रत्येक शब्द मे अर्थविशेष के प्रकाशन की योग्यता होती है, उसका निश्चित अर्थ होता है। वक्ता के तात्पर्य को श्रोता तक पहुँचाने के लिए वह अन्य शब्दो की आकाक्षा रखता है। उन शब्दो की सनिधि मे ही वह अभीष्ट अर्थ का द्योतन करता है। कुशल कवि शब्दो की योग्यता, आकाक्षा और सनिधि का सम्यक् ध्यान रखते हुए अपनी रचना मे उनका यथोचित विन्यास करता है। इस मूल सिद्धात की उपेक्षा से काव्य मे अनेक प्रकार के दोष आ जाते हैं अप्रतीतत्व, न्यूनपदत्व, विधेयाविमर्श आदि। काव्य-कला के विशेषज्ञ तुलसी ने शब्दार्थ-नियोजन के इस धर्म का निपुणता के साथ निर्वाह किया है। उनका प्रतिपाद्य निश्चित है, और उनकी नपी-तुली शब्दावली उस प्रतिपाद्य अर्थ के सप्रेषण मे सर्वथा समर्थ है। उदाहरणीय पद्यो की अनत राशि मे से कुछेक पक्तियाँ ही प्रस्तुत की जा सकती हैं

> **मैं अपराधसिंधु करुनाकर जानत अतरजामी।**
> **तुलसिदास भवब्यालग्रसित तव सरन उरगरिपुगामी ॥**[१]

राम अतर्यामी हैं, अत. तुलसी की स्थिति को स्वय समझ सकते हैं। यदि तुलसी अपराध-सिंधु हैं तो राम भी करुणाकर हैं। फलत वे क्षमा करने मे समर्थ हैं। तुलसी ससार-सर्प से ग्रस्त हैं। सर्पनाशक गरुड जिसका वाहन है वह सकेतमात्र से तुलसी को भव-व्याल से मुक्त करा सकता है। 'भवब्याल' के प्रसग मे 'उरगरिपुगामी' का प्रयोग विशेष चमत्कार-कारी है।

सटीक शब्द-निवेश की सबसे सीधी पहचान यह है कि उन शब्दो के स्थान पर

---

१. विनयपत्रिका, ११७।५

दूसरे शब्द नही रखे जा सकते, जैसे

पानि सरोज सोह जयमाला। अवचट चितए सकल भुआला ॥
सीय चकित चित रामहि चाहा। भए मोहबस सब नरनाहा ॥
मुनि समीप देखे दोउ भाई। लगे ललकि लोचन निधि पाई ॥
गुरुजन लाज समाजु बड देखि सीय सकुचानि।
लागि बिलोकन सखिन्ह तन रघुबीरहि उर आनि[1] ॥

प्रत्येक शब्द अपने स्थान पर जडा हुआ है। उसे हटाया नही जा सकता। सुमनो की जय-माला पाणि-सरोज मे ही शोभा पाती है। लालायित भूपालो के लिए 'चितए' क्रिया और 'अवचट' क्रिया-विशेषण का व्यवहार अत्यत उपयुक्त है। 'चकित' मे शीलवती राजकुमारी की उत्सुकता, अस्थिरता और लज्जाजन्य भय का सुदर समिश्रण है। 'चाहा' से दर्शन के साथ ही अभिलाषा की भी व्यजना होती है। 'मोह' आसक्ति और अज्ञान दोनो का सूचक है। मुनि के समीप राम-लक्ष्मण को देखकर भी सीता भावाकुल मन को वश मे नही रख सकी। उनकी आँखें ललक कर राम से जा लगी। उनके 'लोचन' परिस्थिति की आलो-चना नही कर सके। परिस्थिति का अनुभव उन्हे बाद मे हुआ और तब वे सखियो की ओर विलोकने (विशेष रूप से देखने) लगी, किंतु हृदय मे राम को धारण करके। इस विलोकन मे लज्जा की रक्षा, दृष्टि की शून्यता और सीता की विवशता परिलक्ष्य है।

पर्यायवाची शब्दो मे सूक्ष्म अर्थ-भेद होता है। वाक्सिद्ध कवि ही उनकी अर्थ-च्छाया की सूक्ष्मता को ग्रहण कर सकता है। तुलसी ने शब्दो के इस मर्म पर ध्यान दिया है। उपर्युक्त उद्धरण मे सामान्य क्रिया देखना के तीन पर्यायो का साभिप्राय प्रयोग किया गया है 'चितए', 'चाहा' और 'विलोकन'। उस सदर्भ मे उनकी अर्थपूर्ण विशेषता रमणीयता से अभिव्यक्त हुई है। इसी प्रकार निम्नाकित पक्तियो मे[2]

१ जुवतीं भवन झरोखन्हि लागीं। निरखहिं राम रूप अनुरागीं ॥
२ लोभी लपट लोलुप चारा। जे ताकहिं पर धनु पर दारा ॥
३ राम को रूप निहारति जानकी ककन के नग की परिछाहीं ॥
४ सुनि कुलवधू झरोखनि झाँकति रामचद्र छवि चद्रवदनियाँ।

'निरखहिं' से द्रुत चित्त की तन्मयता व्यजित होती है, 'ताकहिं' मे कुदृष्टि से विलोकने का भाव है, 'निहारति' मे आत्मविभोर होकर प्रेमपूर्वक देखने की विशेपता है, और 'झाँकति' द्वारा दूसरो की आँख बचाकर आँख-भर देखने की क्रिया सूचित होती है। इन प्रसगो मे इससे अच्छा शब्द-चयन असभव है।

कुछ ऐसे शब्द होते हैं जो लोक-व्यवहार मे सामान्य अर्थ रखते हैं किंतु गभीर विषयो के निरूपण मे उनका पारिभाषिक अर्थ ग्रहण किया जाता है, जैसे मन, चित्त, माया आदि। उदाहरण के लिए 'मन' को लीजिए[3]

---

१. रामचरितमानस,, १।२४८
२. रामचरितमानस, १।२२०।२, २।१६८।२, कवितावली, १।१७, गीतावली, १।३४।६
३ रामचरितमानस, ७।११०।३, विनयपत्रिका, ८१।१, मानस, २।१३०।३, कवितावली, १।२, मानस, २।२४२।१, विनयपत्रिका, २०३।५, मानस, १।३५।४, विनयपत्रिका, ८८।१

१. मन तें सकल बासना भागी। केवल राम चरन लय लागी॥
सुनहु नाथ मन जरत त्रिविध जुर करत फिरत बौराई।
२ तुम्हहि छाँडि गति दूसरि नाहीं। राम बसहु तिन्ह के मन माहीं॥
मन मो न बस्यो अस बालक जौं तुलसी जग मे फल कौन जिये।
३ परम पेम पूरन दोउ भाई। मन बुधि चित अहमिति बिसराई॥
चौथि चारि परिहरहु बुद्धि मन चित अहँकार।
४ मन करि बिषय अनल बन जरई। होइ सुखी जौं येहि सर परई॥
कबहूँ मन बिश्राम न मान्यो।
निसिदिन भ्रमत बिसारि सहज सुख जहँ तहँ इद्रिन तान्यो॥

उपर्युक्त उद्धरणो मे तुलसी ने 'मन' शब्द का विभिन्न अर्थों में समीचीन प्रयोग किया है। १ मे वह सपूर्ण अत करण का वाचक है। २ मे उसका अर्थ है भावनात्मक चित्त या उसका अधिष्ठान हृदय। ३ मे वह अत करण की चार वृत्तियो मे से केवल सकल्पविकल्पात्मक अथवा विमर्शात्मक वृत्ति के लिए प्रयुक्त हुआ है। ४. मे उसका व्यवहार उस अतरिंद्रिय के लिए किया गया है जो ज्ञानेंद्रियो द्वारा बाहर से आये सस्कारो को निर्णय के लिए बुद्धि तक पहुँचाती है और फिर बुद्धि के निश्चय को कार्यान्वित करने के लिए कर्मेंद्रियो को प्रेरित करती है। अतिम दो अर्थ पारिभाषिक है। विभिन्न शब्दो के एतादृश प्रयोगो से सिद्ध है कि लोकव्यवहारदर्शी और शास्त्रवेत्ता तुलसी ने औचित्यानुसार शब्द और अर्थ की सपृक्तता को अक्षुण्ण रखता है।

कभी-कभी पर्यायवाची, तथा तत्सम और तद्भव शब्दो के अर्थो मे उत्कृष्टता एव अपकृष्टता का भी भेद होता है। शब्दार्थ-पारखी कवि वर्ण्य वस्तु की अच्छाई या बुराई के अनुरूप उपयुक्त शब्दो का चुनाव करता है[1]

१ पुत्रवती जुवती जग सोई। रघुपतिभगतु जासु सुतु होई॥
नतरु बाँझ भलि बादि बिआनी। रामबिमुख सुत तें हित जानी॥
१ कमठ पीठि जामहिं बरु बारा। बंध्यासुत बरु काहुहि मारा॥

'पुत्रवती' और 'बिआनी' दोनो ही मूलत जननी हैं। परतु व्यवहार मे पहला शब्द उत्कर्ष का ज्ञापक है, और दूसरा अपकर्ष का। कवि ने इन दोनो का प्रतिपाद्य के अनुरूप उपयुक्त स्थान पर सशक्त विन्यास किया है। 'वध्या' का ही अपभ्रश-रूप 'बाँझ' है, किंतु लोक मे उसका अर्थापकर्ष हो गया है। ध्वनि-परिवर्तन के साथ इस अर्थ-परिवर्तन को परखते हुए तुलसी ने दोनो का अपेक्षानुसार भावानुबधी प्रयोग किया है।

सपन्न भाषा के कवि को भी अनेक अवसरो पर टकसाली शब्द-भाडार से उपयुक्त शब्द नही मिल पाते। ऐसी स्थिति मे भाषा पर अधिकार रखने वाला महाकवि शब्द-शिल्पी का कार्य भी सपन्न कर लेता है। उसके सामने शब्दो का अकाल नही पडता। तुलसी की वाणी कही अवरुद्ध नही होती। वे आवश्यकतानुसार सटीक शब्दो का सहजतया निर्माण करते चलते हैं[2]

१. रामचरितमानस, २।७५।१, ७।१२२।८
२. कवितावली, १।१६, ७।७२, ७।९६, विनयपत्रिका, ३५।६, १५१।५, २६२।३, गीतावली, २।४७।१८, रामचरितमानस, २।११०।३, २।१११।१

१ रावरी पिनाक मे सरीकता कहाँ रही।

२ जाति के सुजाति के कुजाति के पेटागि वस
खाये टूक सबके विदित बात दुनी सो।

३ पेट ही को पचत वेचत वेटा वेटकी।

४ वदिछोर विरुदावली निगमागम गाई।

५. रामनाम अनुराग ही जिय जो रतिश्रातो।

६ लाभ जोग छेम को गरीबी मिसकीनता।

७ दुखवहु मोरे दास जनि मानेहु मोरि रजाइ।

८ जस घवलिहउँ भुवन दसचारी।

९ बेगहु भाइहु सजहु सँजोऊ।

उपर्युक्त उद्धरणो मे 'सरीकता', 'पेटागि', 'वेटकी', 'वदिछोर', 'रतिआतो', 'मिसकीनता', 'दुखवहु', 'वेगहु' और 'धवलिहउँ' शब्द कुशलता एव लाघव के साथ गढे गये हैं। अपने-अपने सदर्भ मे वे वाछित अर्थ के प्रभावशाली सप्रेपक है।

अर्थ-व्यजना का व्यापार शब्द-शक्ति द्वारा सचालित होता है। उसके तीन प्रकार माने गये हैं अभिधा लक्षण और व्यजना। तदनुसार शब्दो के तीन भेद हैं वाचक, लक्षक एव व्यजक। उनके द्वारा प्रतीत अर्थ हैं वाच्य, लक्ष्य और व्यग्य। व्यग्यप्रधान काव्य श्रेष्ठ है। परतु, अभिधा का महत्त्व कम नही है। वह लक्षणा और व्यजना दोनो का मूलाधार है। लक्ष्यार्थ सदैव वाच्य से सबद्ध होता है। इसीलिए लक्षणा को 'अभिधा-पुच्छभूता' कहा गया है। व्यग्य के सलक्ष्य-क्रम का जो निरूपण किया गया है वह वाच्य से लेकर व्यग्य तक की बोध-प्रक्रिया का द्योतक है। तुलसी के काव्य मे तीनो ही शब्द-शक्तियो की चमत्कारविधायिनी योजना पायी जाती है। उदाहरणार्थ, निम्नाकित पक्तियो मे अभिधा के माध्यम से रमणीय अर्थ का प्रतिपादन किया गया है[1]

१ सुनि पन सकल भूप अभिलाषे। भटमानी अतिसय मन माखे॥
परिकर बाँधि उठे अकुलाई। चले इष्टदेवन्ह सिर नाई॥
तमकि ताकि तकि सिव धनु धरहीं। उठै न कोटि भाँति बल करहीं॥

२ तुम सुखधाम राम श्रमभजन हौ अति दुखित त्रिविध श्रम पाई।
यह जिय जानि दास तुलसी कहुँ राखहु सरन समुझि प्रभुताई॥

३ रटनि अकनि पहिचानि गीध फिरे करुनामय रघुराई।
तुलसी रामहि प्रिया विसरि गई सुमिरि सनेह सगाई॥

लक्षणा मे अभिधा की अपेक्षा अधिक प्रभविष्णुता होती है। लाक्षणिक प्रयोग से तात्पर्य-व्यजना मे तीव्रतरता आ जाती है। तुलसी-साहित्य मे इस वृत्ति का प्रभूत लालित्य है, यथा[2]

१ बलु प्रताप बीरता बडाई। नाक पिताकहि सग सिधाई॥

---

१ रामचरितमानस, १।२५०।३-४, विनयपत्रिका, २४२।४, गीतावली, ३।११।४

२ रामचरितमानस, १।२६६।४, २।३०।३, विनयपत्रिका, ८८।४, १६९।३, कवितावली, ७।३२, ७।१०३, गीतावली, १।७३।५, १।९७।३

२ सत्य सराहि कहेउ बरु देना। जानेहु लेइहि माँगि चबेना ॥
३ तुलसिदास कब तृषा जाय सर खनतहि जनम सिरान्यो ॥
४ नाम की लाज राम करुनाकर केहि न दिये कर चीठे।
५ करि हस को वेषु वड़ो सबसो तजि दे बक बायस की करनी।
६ राजमराल के बालक पेलि कै पालत लालत खूसर को।
७ अबुध असैले मनमैले महिपाल भये कछुक उलूक कछु कुमुद चकोर हैं।
८ देखे नरनारि कहैं साग खाइ जाये माइ बाहु पीन पांवरनि पीना खाइ पोखे हैं।

प्रतिभा की यह स्वाभाविक विशेषता है कि वह पिटी-पिटायी लीक पर चलना कम पसद करती है। उसे स्वच्छद सचरण के लिए मुक्त अवकाश चाहिए। अभिधा और लक्षणा का क्षेत्र सीमित है। वे एक बार कार्य करके विरत हो जाती हैं। व्यजना-वृत्ति पर कोई प्रतिबध नही है। इसलिए व्यग्यप्रधान काव्य भावक की प्रतिभा को अधिक उल्लसित करने मे समर्थ होता है। तुलसी की काव्य-कला व्यजना के विनिवेश मे विशेष रूप से प्रतिफलित हुई है। शाब्दी व्यंजना के दो उदाहरण लीजिए[१]

१. हृषीकेश सुनि नाउँ जाउँ बलि अति भरोस जिय मोरे।
तुलसिदास इन्द्रियसभव दुख हरे बनिहि प्रभु तोरे ॥
२ नारि बिबस नर सकल गोसाईं। नाचहिं नट मर्कट की नाईं ॥

'हृषीकेश' और 'मर्कट' मे जो चमत्कार है वह उनके पर्यायो मे नही आ सकता था। इद्रिय-सभव दुःख को दूर करने की शक्ति इद्रियो के शासक हृषीकेश मे ही है, 'विष्णु', 'माधव', 'केशव' आदि मे नही। 'मर्कट' मे जो 'मर-कट' की उच्चारण-ध्वनि है उससे नारी के सकेत पर नाचने वाले नर की क्षीणक्षामता व्यजित होती है; 'कपि', 'वानर' आदि शब्दो मे यह सामर्थ्य नही है।

आर्थी व्यजना का चमत्कार अर्थ पर आश्रित रहता है, शब्दविशेष पर नहीं, जैसे[२]

१. बालि को बालक जौ तुलसी दसहू मुख के रन मे रद तोरौं ॥
२. की तनु प्रान कि केवल प्राना। बिधि करतबु कछु जाइ न जाना ॥

अगद निश्चय ही बालि के पुत्र हैं जिसने रावण को कांख मे दबा रखा था। अतएव वे भी पिता के अनुरूप वीर एव रावण का मर्दन करने मे समर्थ है। 'केवल प्राना' का व्यग्य है कि राम के वियोग मे सीता का प्राणांत अवश्यभावी है।

अभिधामूला और लक्षणामूला व्यजना के एक-एक उदाहरण से इस प्रसग को समाप्त किया जाए। अधोलिखित पहली पक्ति मे अनेकार्थक 'कद' शब्द बादल के अर्थ मे नियन्त्रित है, दूसरी मे मुख्यार्थबाध है। अत उनकी व्यजना क्रमश अभिधा एव लक्षणा पर अवलबित है[३]

१. कंद तडित विच जनु सुरपतिधनु रुचिर बलाकपांति चलि आई।

---

१. विनयपत्रिका, ११६।५, रामचरितमानस, ७।६६।१
२ कवितावली, ६।१४, रामचरितमानस, २।५८।२
३. गीतावली, १।१०८।६, रामचरितमानस, २।१२१।३

२ जौं मांगा पाइअ विधि पाहीं। ये रखिअहिं सखि आंखिन्ह माहीं।।
'ध्वनि-वक्रोक्ति' के प्रसग मे व्यजना की चर्चा आगे भी का जाएगी।

विभावादि-संयोजन

इस विषय की विस्तृत चर्चा 'रस-सामग्री' के प्रकरण मे की जा चुकी है। स्मर्तव्य है कि विभाव आदि भाव-पक्ष के अतर्गत हैं, उनकी सयोजन-शैली कला है। प्रस्तुत प्रसग मे, तुलसी की कला-कुशलता के निदर्शनार्थ निम्नाकित उद्धरण की व्याख्या पर्याप्त होगी[1]

१ देखन बाग कुंअर दुइ आए। वय किसोर सब भांति सुहाए।।
स्याम गौर किमि कहौं वखानी। गिरा अनयन नयन बिनु बानी।।
सुनि हरषीं सब सखीं सयानी। सिय हिअं अति उत्कंठा जानी।।
एक कहइ नृप सुत तेइ आली। सुने जे मुनि संग आए काली।।
जिन्ह निज रूप मोहनी डारी। कीन्हे स्ववस नगर नर नारी।।
बरनत छवि जहँ तहँ सब लोगू। अवसि देखिअहिं देखन जोगू।।
तासु वचन अति सियहि सोहाने। दरस लागि लोचन अकुलाने।।
चकित बिलोकति सकल दिसि जनु सिसु मृगी सभीत।

२ कंकन किंकिनि नूपुर धुनि सुनि। कहत लखन सन रामु हृदयँ गुनि।।
मानहु मदन दुंदुभी दीन्ही। मनसा विस्व विजय कहँ कीन्ही।।
अस कहि फिरि चितए तेहि ओरा। सिय मुख ससि भए नयन चकोरा।।
भए विलोचन चारु अचंचल। मनहु सकुचि निमि तजे दृगंचल।।
देखि सीय सोभा सुखु पावा। हृदयं सराहत बचनु न आवा।।
जनु बिरंचि सब निज निपुनाई। बिरचि विस्व कहँ प्रगटि देखाई।।
सुंदरता कहुँ सुंदर करई। छवि गृहँ दीपसिखा जनु बरई।।
सब उपमा कवि रहे जुठारी। केहि पटतरौं बिदेहकुमारी।।

३. चितवति चकित चहूँ दिसि सीता। कहँ गए नृपकिसोर मनु चिंता।।
जहँ बिलोक मृग सावक नयनी। जनु तहँ बरिस कमल सित श्रेनी।।
लता ओट तब सखिन्ह लखाए। स्यामल गौर किसोर सुहाए।।
देखि रूप लोचन ललचाने। हरषे जनु निज निधि पहिचाने।।
थके नयन रघुपति छवि देखें। पलकन्हिहूँ परिहरीं निमेषें।।
अधिक सनेह देह भै भोरी। सरद ससिहि जनु चितव चकोरी।।
लोचन मग रामहि उर आनी। दीन्हे पलक कपाट सयानी।।

शृंगार रस के इस वर्णन मे उसके सभी अगो की योजना की गयी है। सीता और राम एक-दूसरे के स्थायी भाव रति के आलबन तथा आश्रय हैं। पुष्प-वाटिका और भूषण-ध्वनि उद्दीपन विभाव हैं। औत्सुक्य, भय, चिंता, हर्ष आदि सचारी भाव हैं।

---

१. रामचरितमानस, १।२२९।१-दोहा, १।२३०।१-४, १।२३२।१-४

निर्निमेष देखना, नेत्रो का बद हो जाना आदि अनुभाव हैं। परतु, विभाव आदि का उल्लेख मात्र रस-व्यजना के लिए पर्याप्त नही है। उनकी निबधना इस रीति से की जानी चाहिए जिससे भावक के मन मे स्थित वासना-रूप स्थायी उद्बुद्ध होकर रसत्व प्राप्त कर सके। इसी मे काव्य-कला की सार्थकता है। इस दृष्टि से, प्रस्तुत चित्रण मे अनेक कलात्मक विशेषताएँ ध्यान आकृष्ट करती हैं

१ रामचरितमानसकार तुलसी की शैली की यह विशेषता है कि किसी महत्त्वपूर्ण भाव या विचार का निरूपण करते समय वे तदनुरूप भूमिका बाँधते हैं। यहाँ भी प्रसगोद्भावना करके अनुकूल भूमिका का निर्माण किया गया है। एक सखी सीता आदि का साथ छोडकर फुलवारी देखने चली गयी थी। वह राम-लक्ष्मण को देख आयी है। उनके आकर्षक रूप का वर्णन करके वह सीता के मन मे उत्सुकता जागृत करती है।

२. राम का रूप-वर्णन करते समय कवि ने उसके प्रभाव का विशेष ध्यान रखा है। उस अलौकिक रूप की अनिर्वचनीयता का उल्लेख अभीष्ट प्रभावोत्पादन मे समर्थ है। 'गिरा अनयन नयन बिनु बानी' मे जो चमत्कार है वह पिष्टपेषित नखशिख-वर्णन के विवरण मे नहीं आ सकता। इसी प्रकार सीता के रूप-चित्रण मे भी कवि की दृष्टि प्रभाव-समष्टि पर केंद्रित है। उपर्युक्त दूसरी इकाई की अतिम तीन पक्तियो मे सीता की सुदरता को वर्णनातीत कहकर भी उस मोहिनी-शोभा का घनीभूत प्रभाव अभिव्यक्त कर दिया गया है।

३ आलबनगत उद्दीपन के रूप मे तीन आभूषणो का उल्लेख हुआ है। मर्यादावादी कवि ने न तो सीता के विभिन्न अगो का वर्णन किया और न आभूषणो के सनिवेश का, केवल ध्वनि का वर्णन करके पूरे चित्र को प्रत्यक्ष कर दिया। 'ककन किंकिनि नूपुर धुनि सुनि' मे ध्वन्यर्थव्यजना के साथ ही व्यवस्थित क्रम भी है। उठते समय पहले सीता के हाथ हिले, फिर कटि हिली और फिर पैर हिले। उसी क्रम से आभूषण बज उठे। उनकी ध्वनि मे भी तारतम्य है, वह मद होती गयी है।

४ नाटकीय चित्रात्मकता ने काव्य के सौदर्य को द्विगुणित कर दिया है। राम के साथ लक्ष्मण और सीता के साथ सखियो की उपस्थिति से भाव-व्यजना को उत्कृष्ट बनाने मे सहायता मिली है। दोनो सखियो की उक्तियो, 'अस कहि फिरि चितए तेहि ओरा', 'लता ओट तब सखिन्ह लखाए' आदि मे चित्रात्मक व्यजना का मनोहारी रूप प्रस्तुत हुआ है।

५ साम्य-वैषम्य का चमत्कार भी ध्यान देने योग्य है। राम और सीता दोनो के मुख 'ससि' हैं। दोनो के 'नयन' एक-दूसरे को 'चकोर'-'चकोरी' की भाँति अपलक देख रहे हैं। दोनो आत्मविस्मृत हैं, आलबनमय हो गये हैं। राम के 'लोचन' अचचल हो गये हैं, सीता के 'लोचन'-कपाट बद हो गये हैं। वैषम्य पर ध्यान दीजिए। राम के लोचन बद नही हुए। वे पुरुष होने के कारण स्वतत्र हैं। नारी सीता मे सहज लज्जा और सकोच की अधिकता है। इसीलिए वे मौन रहती हैं। वाणी का प्रयोग केवल सखियाँ करती हैं। उधर, वक्ता का कार्य राम करते हैं और लक्ष्मण श्रोता मात्र हैं।

६ उत्प्रेक्षा आदि अलकारो की रमणीयता भी उत्कर्षविधायिनी है। उसकी चर्चा

आगे की जाएगी। कुल मिलाकर सारा प्रसग स्वाभाविक, सजीव तथा हृदयस्पर्शी है।

वस्तु-विन्यास और चरित्र-चित्रण

वस्तु और पात्र भाव-पक्ष के अग हैं, उनके विन्यास और चित्रण की शैली कला-पक्ष के अतर्गत है। ये दोनो विशेषताएँ मुख्यतया 'रामचरितमानस' से सबद्ध हैं, अत इनकी विवेचना प्रसगानुसार आगामी अध्याय मे की जाएगी।

ध्वनि-वक्रोक्ति

तुलसीदास का काव्य ध्वनि-काव्य है, क्योंकि उसमे वाच्य की अपेक्षा व्यग्यार्थ अधिक चमत्कारपूर्ण है। उसमे ध्वनि के विविध रूपो का उत्कृष्ट निदर्शन मिलता है। ध्वनि के दो मुख्य भेद हैं असलक्ष्यक्रमव्यग्य और सलक्ष्यक्रमव्यग्य। पूर्वविवेचित रस और भाव असलक्ष्यक्रमव्यग्य ध्वनि के उदाहरण हैं। कुछ अन्य उदाहरण लीजिए[1]

१ चारु चरन नख लेखति धरनी। नूपुर मुखर मधुर कवि बरनी॥
मनहुँ प्रेम बस बिनती करहीं। हमहि सीयपद जनि परिहरहीं॥
२ स्वामी की सेवक हितता सब कछु निज साइँ दोहाई।
मै मति तुला तौलि देखी भइ मेरेहि दिसि गरुआई॥
३ अवनि रवनि धन धाम सुहृद सुत को न इन्हहिं अपनायो।
काके भये गये सँग काके सब सनेह छल छायो॥
४ अध ऊर्ध बानर विदिसि दिसि बानर है मानहु रह्यो है भरि बानर तिलोकिए।
मूँदे आँखि हिय मे उघारे आँखि आगे ठाढ़ो धाइ जाइ जहाँ तहाँ और कोऊ को किए॥

पहले उद्धरण मे शीलवती वधू के स्वाभाविक चित्रण द्वारा नारी की सहज लज्जा ध्वनित होती है। दूसरे मे कवि ने राम के गुण की अपेक्षा अपने अवगुण की गुरुता बतलाकर कार्पण्य या दैन्य की मार्मिक व्यजना की है। तीसरे मे व्यावहारिक वस्तुओ की मायिकता का निरूपण करके निर्वेद या वैराग्य द्योतित किया गया है। हनुमान् से आतकित राक्षस-राक्षसियो को मन मे और बाहर सर्वत्र वानर-ही-वानर दिखायी पडता है। इस मनोवैज्ञानिक चित्राकन से उनके भय और त्रास की प्रभावशाली अभिव्यक्ति हुई है।

सलक्ष्यक्रमव्यग्य ध्वनि के दो रूप हैं वस्तु[2] और अलकार[3]। निम्नाकित पक्तियो मे वस्तुरूप ध्वनि की सुदरता देखिए[4]

१ पुनि आउब एहि बेरिआँ काली। अस कहि मन बिहसी एक आली॥
२ जागै बुध विद्याहित पडित चकित चित जागै लोभी लालच धरनि धन धाम के।
जागै भोगी भोग ही वियोगी रोगी सोगबस सोवै सुख तुलसी भरोसे एक राम के॥

---

१ रामचरितमानस, २।५८।३, विनयपत्रिका, १७१।६, २००।२, कवितावली, ५।१७
२ रामचरितमानस, १।२४५।४, कवितावली, ७।१३२, ७।१४५, विनयपत्रिका, ११७।५, २४४।५
३ रामचरितमानस, २।५५।२, २।६७।३, विनयपत्रिका, १२१२, २२७।४ २४१।५
४. रामचरितमानस, १।२३१।३, कवितावली, ७।१०९, विनयपत्रिका, २४५।४

३ तुलसिदास प्रभु कृपा करहु अब मैं निज दोष कछू नहिं गोयो।
डासत ही गइ बीति निसा सब कबहुँ न नाथ नींद भरि सोयो॥

१ यह सखी की उक्ति है प्रेम-विभोर सीता के प्रति। परतु, व्यजना का क्षेत्र सीमित नही है। इसके बोद्धव्य राम भी हैं। सीता और राम दोनो को सुना कर सखी कहना चाहती है आज बहुत देर हो चुकी है, अब चलना चाहिए, कल इसी समय फिर आइएगा और मिलन का आनद लीजिएगा। इस युक्ति से कवि ने रमणीय व्यग्यार्थ का प्रतिपादन किया है। २ तीन बार 'जागै' क्रिया और 'बुध' आदि विभिन्न कर्ताओ के प्रयोग से ध्वनित है कि सपूर्ण जगत् चिताकुल एव क्लेशपीडित है। इस विश्व मे केवल रामभक्त ही निश्चित है, क्योकि उसकी चिता का भार स्वय भगवान् पर है। भक्त एव अभक्त का वैषम्य निरूपित करते हुए जागने-सोने के लौकिक व्यापारो द्वारा भक्त की मुक्तावस्था और भक्ति की परमानदस्वरूपता की मनोहर व्यजना की गयी है। ३ इस उद्धरण का प्रत्येक शब्द साभिप्राय है। पहली पक्ति से तुलसी की अमायिकता तथा दीनता और राम की दीनबधुता द्योतित होती है। दूसरी पक्ति के गिने-चुने शब्दो मे कवि ने सपूर्ण मानव-जीवन की असफलता का चित्र उरेह दिया है। शाश्वत-सुख की प्राप्ति के लिए मनुष्य नाना प्रकार के उपाय करता है, किंतु उसका सारा जीवन तैयारी मे ही बीत जाता है और उसे सिद्धि नही मिल पाती। तात्पर्य यह कि राम-भक्ति और राम-कृपा से ही आनदोपलब्धि सभव है। सामान्य जीवन के उपमानो और व्यापारो द्वारा की गयी भक्ति-दर्शन की अभिव्यक्ति हृदयस्पर्शी है।

अलकार-ध्वनि के दो उदाहरण लीजिए[1]

१. सिय बन बसिहि तात केहि भाँती। चित्र लिखित कपि देखि डेराती॥
सुरसर सुभग बनज बन चारी। डाबर जोगु कि हंसकुमारी॥

२ अवलोकि अलौकिक रूप मृगीमृग चौंकि चकै चितवै चित दै।
न डगै न भगै जिय जानि सिलीमुख पच धरे रतिनायक है॥

पहले उद्धरण मे उपमा व्यग्य है। 'सुरसर' आदि से अयोध्या की रमणीयता, 'डाबर' से वन की परिहरणीयता और 'हसकुमारी' से सीता की सुकुमारता ध्वनित होती है। तात्पर्य यह है कि हसकुमारी के सदृश सुकुमारी सीता सुरसर के समान सुदर अयोध्या मे रहने के योग्य हैं, न कि डाबर के तुल्य त्याज्य वन मे। यहाँ पर वाच्य प्रश्न-रूप है, और व्यग्य निषेध-रूप है। व्यग्यार्थ उस प्रश्न का स्वय उत्तर है। दूसरे उद्धरण मे मृगी-मृग राम को कामदेव समझते हैं। यहाँ भ्रम व्यग्य है, अत भ्रातिमान् अलकार है। इसमे हेतूत्प्रेक्षा का भी चमत्कार है। मृगो का स्वभाव है कि वे कुछ दूर चलकर रुक जाते हैं और मुडकर देखते हैं। कवि ने उनके इस व्यापार के कारण की कल्पना की है वे राम को रतिनायक मानकर निर्भय और निश्चित हो गये हैं।

कही पर निषेधरूप वाच्य का विधिरूप व्यग्य प्रभावशाली है·

जब ते कुमति कुमत जिअँ ठयेऊ। खंड खड होइ हृदउ न गयेऊ॥

---

१. रामचरितमानस, २।६०।२-३, कवितावली, २।२७

बर मांगत मन भइ नहिं पीरा। गरि न जीह मुंह परेउ न कीरा॥[1]

ध्वनि यह है कि कैकेयी का हृदय गद्-गद् हो जाना चाहिए था, जीभ गल जानी चाहिए थी, मुंह सड जाना चाहिए था। यहाँ पर वाच्य विधिरूप है, व्यंग्य निषेधरूप है, वाच्य निषेधात्मक प्रश्न है और व्यंग्य विधिरूप उत्तर है। एक ही पंक्ति में इन विविध रूपों का लालित्य द्रष्टव्य है

बहुरि गौरि कर ध्यान करेहू। भूप किसोर देखि किन लेहू॥[2]

राम के रूप पर मुग्ध सीता ने नेत्र बंद कर लिये हैं। सयानी सखी कहती है 'गौरी का ध्यान फिर करना, राजकुमार को क्यों न देख लो?' यह वाच्य है। व्यंग्य है - अभी गौरी का ध्यान मत करो, उनके लिए बहुत समय मिलेगा, राजकुमार थोडी ही देर तक यहाँ रहेंगे, इसलिए पहले उनको आँख-भर देख लो। पहले चरण के व्यंग्य में भी व्यंग्य है। सखी वास्तविकता को समझ रही है। वह कहना चाहती है, 'राम के प्रत्यक्ष-दर्शन का आनंद ले लो, ध्यान में उनका दर्शन तो कभी भी कर सकती हो।' इस व्यंजना में जो चमत्कार है वह अभिधा द्वारा व्यक्त नहीं किया जा सकता।

तुलसी द्वारा की गयी ध्वनि-योजना के क्रम में कहीं-कहीं हास्य-व्यंग्य का भी रोचक पुट पाया जाता है। उदाहरण के लिए वर के रूप में शिव के शृंगार को देखकर देवांगनाओं और विष्णु के व्यंग्य-वचन हैं[3]

१ देखि सिवहि सुरत्रिय मुसुकाहीं। बर लायक दुलहिनि जग नाहीं॥
२. बर अनुहारि बरात न भाई। हँसी करैहहु पर पुर जाई॥

इन व्यंग्योक्तियों में कवि ने पात्रों के औचित्य का भी ध्यान रखा है। सुरबालाएँ दुलहिनि की बात करती हैं, और विष्णु बारात की। सबका लक्ष्य शिव का विकट वेष है।

वक्रोक्ति के विभिन्न रूप ध्वनि-सिद्धांत में समेट लिये गये हैं। काकु-वक्रोक्ति (ध्वनिवादियों के अनुसार काक्वाक्षिप्त व्यंग्य) का अपना वैशिष्ट्य है। इसकी मार्मिकता तीव्रतम होती है। वक्ता की काकु-विशिष्ट वक्र-उक्ति श्रोता के हृदय में तीर की भाँति सीधे चुभ जाती है। तुलसी ने लक्ष्मण-परशुराम, मंथरा-कैकेयी, दशरथ-कैकेयी और अंगद-रावण के संवादों में वक्रोक्ति का अत्यंत मर्मस्पर्शी विधान किया है।[4] रणधीर राजाओं को धर्रा देने वाले परशुराम की आत्मश्लाघात्मक गर्वोक्ति पर लक्ष्मण का तीक्ष्ण व्यंग्य है

बाउ कृपामूरति अनुकूला। बोलत बचन झरत जनु फूला॥
जौं पै कृपाँ जरिहिं मुनि गाता। क्रोध भएँ तनु राख बिधाता॥[5]

राक्षसराज की भरी सभा में 'नीतिधर्म'-वादी रावण पर अंगद का कठोर आक्षेप है

---

१ रामचरितमानस, २।१६२।१
२ रामचरितमानस, १।२३४।१
३ रामचरितमानस, १।९२।३, १।९३।१
४. रामचरितमानस, १।२७६।१, २।१६।१-४, २।३०।३, २।३३।४, ६।२१।८, ६।२२।४, ६।२४
५. रामचरितमानस, १।२८०।२-३

कह कपि धर्मसीलता तोरी। हमहुँ सुनी कृत परत्रिय चोरी॥
देखी नयन दूतरखवारी। बूड़ि न मरहु धर्मब्रत धारी॥
कान नाक बिनु भगिनि निहारी। छमा कीन्हि तुम्ह धर्म बिचारी॥
धर्मसीलता तव जग जागी। पावा दरसु महूँ बड़भागी॥[1]

अन्य प्रसगो मे भी तुलसी ने सरस वक्रोक्तियो की निबधना की है। मर्कट का मुँह लेकर बैठे हुए मोहग्रस्त नारद विश्वमोहिनी को मोहने के लिए अकुला रहे हैं। शकर के कौतुकी गणो से रहा नहीं जाता

करहिं कूट नारदहि सुनाई। नीकि दीन्हि हरि सुंदरताई॥
रीझिहि राजकुअँरि छबि देखी। इन्हहि बरिहि हरि जान बिसेखी॥[2]

गणो की इस वक्रोक्ति मे कई प्रकार की चमत्कारपूर्ण व्यजनाएँ हैं। वे नारद की कूट कर रहे हैं, किंतु मोहाभिभूत मुनि की खोपडी मे उनका तीक्ष्ण व्यग्य धँसता ही नही है। दोनो पंक्तियो मे 'हरि' का श्लिष्ट प्रयोग अर्थपूर्ण है। हरि (विष्णु) ने उन्हे हरि (वानर) की सुदरता दी है, और वे अपने को हरिरूप (विष्णुरूप) समझ रहे हैं। उन्हे भ्रम है कि राजकुमारी उनको हरि (विष्णु) जान कर खास तौर से उन्ही का वरण करेगी। वास्तविकता यह है कि उन्हे विशेप प्रकार का वानर समझ कर वह क्रोध से खीझ उठेगी।

'विनयपत्रिका' के अनेक पदो मे तुलसी ने वक्रोक्तियो द्वारा राम की भी खबर ली है, उदाहरणार्थ

परम पुनीति सत कोमलचित तिनहिं तुमहिं बनि आई।
तौ कत बिप्र ब्याध गनिकहि तारेहु कछु रही सगाई॥[3]

गणिका के साथ सगाई का उल्लेख करके कवि ने राम की धर्मनिष्ठता, न्यायप्रियता और भक्तवत्सलता पर करारा व्यग्य किया है। भगवान् की निरतर 'निठुराई' से तग आकर शरणागत भक्त ने उन्हे डटकर फटकारने की 'ढिठाई' की हैं।

गुण-वृत्ति

रसवादियो के अनुसार गुण रस के धर्म हैं, परतु गुणव्यजक पदावली के लिए भी उनका व्यवहार किया जाता है। माधुर्य का सबध रति, करुणा आदि कोमल भावो से है। जिस रचना से भावक का चित्त द्रुत होकर रसानुभूति करता है वह माधुर्य-गुण-युक्त है, जैसे, भरत के प्रति कौशल्या की वात्सल्य-करुण-पूर्ण उक्ति अथवा राम के प्रति तुलसी का दैन्यपूर्ण आत्मनिवेदन[4]

१ बिधु बिष चवइ स्रवइ हिम आगी। होइ बारिचर बारि बिरागी॥
भएँ ग्यानु बरु मिटइ न मोहू। तुम्ह रामहिं प्रतिकूल न होहू॥

---

१. रामचरितमानस, ६।२२।३-४
२. रामचरितमानस, १।१३४।२
३. विनयपत्रिका, ११७।२
४. रामचरितमानस, २।१६९।१-२, विनयपत्रिका, १४३।८

मत तुम्हार येहु जो जग कहहीं। सो सपनेहुँ सुख सुगति न लहहीं॥

२. हारि परयो करि जतन बहुत बिधि तातें कहत सबेरो।
तुलसिदास यह त्रास मिटै जब हृदय करहु तुम डेरो॥

ओज दीप्त चित्त की विशेषता है। अतः उसकी उपयुक्तता क्रोध, उत्साह आदि कठोर भावों की अभिव्यंजना में है। उदाहरण के लिए, निम्नोद्धृत पंक्तियों में परशुराम की क्रोधावस्था, और हनुमान् की युद्धवीरता का ओजस्वी वर्णन द्रष्टव्य है[1]

१ भुजबल भूमि भूप बिनु कीन्ही। बिपुल बार महिदेवन्ह दीन्ही॥
सहसबाहु भुज छेदनिहारा। परसु बिलोकु महीपकुमारा॥

२ रजनीचर मत्तगयंद घटा बिघटै मृगराज के साज लरै।
झपटै भट कोटि महीं पटकै गरजै रघुबीर की सौंह करै।
तुलसी उत हाँक दसानन देत अचेत भे बीर को धीर धरै।
बिरुझो रन मारुत को बिरुदैत जो कालहु काल सो बूझि परै॥

प्रसाद-गुण विशिष्ट वृत्तियों में मुख्य अन्तःकरण की प्रसन्नता है। रसानुभूति के लिए चित्त की यह दशा अनिवार्य है। काव्यशास्त्र में वही रचना प्रसाद-गुण-युक्त मानी गयी है जिसके अर्थ-ग्रहण में कोई कठिनाई न हो, जिसको पढ़ते या सुनते ही चित्त प्रसन्न हो जाए और तत्काल आनंद की अनुभूति होने लगे। माधुर्य और ओज में तात्त्विक विरोध है। एक कोमलता एवं द्रुति का गुण है, और दूसरा कठोरता तथा दीप्ति का। फलतः इन दोनों की परिधि संकुचित है। प्रसाद का किसी गुण से विरोध नहीं है। उसका क्षेत्र व्यापक है। वह उत्तम काव्य का सार्वत्रिक गुण है। तुलसी-साहित्य के प्रायः सभी कवित्वमय स्थल प्रसाद-विशिष्ट हैं। एकाध अपवाद[2] नगण्य हैं। माधुर्य और ओज के उपरिलिखित उदाहरणों में प्रसाद भी है। राम आदि के वनवास पर विधाता को कोसने वाले तटस्थ मगवासियों की मनोदशा के वर्णन में इस गुण का बहुत ही उत्कृष्ट निदर्शन मिलता है[3]

जौं पै इन्हहि दीन्ह बनबासू। कीन्ह बादि बिधि भोग बिलासू॥
ए बिचरहिं मग बिनु पदत्राना। रचे बादि बिधि बाहन नाना॥
ए महि परहिं डासि कुस पाता। सुभग सेज कत सृजत बिधाता॥
तरबर बास इन्हहि बिधि दीन्हा। धवल धाम रचि रचि श्रमु कीन्हा॥

गुणों की अभीष्ट व्यंजना के लिए तदनुरूप वर्ण-विन्यास अपेक्षित है। वर्ण-विन्यास-क्रम की पारिभाषिक संज्ञा वृत्ति है। गुणों की भाँति वृत्तियाँ भी तीन हैं उपनागरिका, परुषा और कोमला। त, न, स, ल आदि कोमल वर्णों का विन्यास उपनागरिका की विशेषता है। वह माधुर्य-गुण के उपयुक्त है, जैसे :

---

१ रामचरितमानस, १।२७२।४, कवितावली, ६।३६

२ रबिकर नीर बसै अति दारुन मकर रूप तेहि माहीं।
बदनहीन सो ग्रसै चराचर पान करन जे जाहीं।—विनयपत्रिका, १११।३
तुलसी तेहि औसर लावनिता दस चारि नौ तीन इकीस सबै।
मति भारति पंगु भई जो निहारि बिचारि फिरी उपमा न पवै॥—कवितावली, १।७

३. रामचरितमानस, २।११९।३-४

१. मानस सलिल सुधा प्रतिपाली। जिग्रइ कि लवन पयोधि मराली॥
नव रसाल बन बिहरन सीला। सोह कि कोकिल बिपिन करीला॥
२ नेकु सुमुखि चित लाइ चितौ री।…
साँवर रूप सुधा भरिबे कहँ नयन कमल फल कलस रितौ री॥
३ सजनी ससि मे समसील उभै नवनील सरोरुह से बिकसे।[1]

कर्णकटु वर्णों से निर्मित परुषा वृत्ति ओज के अनुरूप है। उसमे टवर्ग, रेफ, ष और सयुक्त व्यजनो की योजना की जाती है[2]

१ जबुक निकर कटक्कट कट्टहि। खाहि हुहाहि अघाहि दपट्टहि॥
कोटिन्ह रुंड मुड बिनु चल्लहि। सीस परे महि जय जय बोल्लहि॥
२ मत्त भट मुकुट दसकठ साहस सइल सृ ग बिद्दरनि जनु बज्र टाँकी॥
दसन धरि धरनि चिक्करत दिग्गज कमठ सेष सकुचित सकित पिनाकी॥

कोमला वृत्ति मे कोमल और कठोर वर्णों का स्वच्छद प्रयोग किया जाता है। उपर्युक्त दो गुणो और दो वृत्तियो का परस्पर-सबध निर्धारित करके यह मान लिया गया है कि तीसरे गुण प्रसाद और तीसरी वृत्ति कोमला मे नित्य-सबध है। इस विषय मे दो तथ्य स्मरणीय हैं। १ जिस प्रकार प्रसाद का सबध सभी भावो से है, उसी प्रकार सभी वृत्तियो से भी। उसका उत्कर्ष एक ही वृत्ति पर निर्भर नही है। किसी भी वृत्ति के द्वारा उसकी उत्कृष्ट व्यजना हो सकती है। उपर्युक्त उद्धरणो मे उपनागरिका और परुषा के साथ प्रसाद गुण भी है। २ उपनागरिका और परुषा क्रमश. माधुर्य और ओज का उत्कर्ष करती हैं, उनके स्वरूप का निर्माण नही करती। उनके अभाव मे भी उन गुणो का अस्तित्व सभव है। एक-एक उदाहरण से इस कथन की पुष्टि कर देना समीचीन होगा[3]

१. ठाढे हैं नौ द्रुम डार गहे धनु काँधे धरे कर सायक लै।
बिकटी भृकुटी बडरी अँखियाँ अनमोल कपोलन की छवि है।
तुलसी अस मूरति आनि हिये जड डारि धौं प्रान निछावरि कै।
श्रमसीकर साँवरि देह लसै मनो रासि महातम तारक मै॥
२ मैं तव दसन तोरिबे लायक। आएसु मोहि न दीन्ह रघुनायक॥
अस रिस होति दसौ मुख तोरौं। लका गहि समुद्र महँ बोरौं॥
गूलरिफल समान तव लका। बसहु मध्य तुम्ह जतु असका॥
मैं बानर फल खात न बारा। आएसु दीन्ह न राम उदारा॥

पहले उद्धरण मे ठ, ढ, द्र, ड, ट, ड, प्र और श्र का प्रयोग उपनागरिका वृत्ति के प्रतिकूल है, परतु उस पद्य मे माधुर्य गुण है। पद्य की रमणीयता असदिग्ध है। दूसरे मे अगद की उक्ति ओज-गुण-सपन्न है, यद्यपि उसमे परुष वर्णों की अपेक्षा कोमल वर्णों का विन्यास कहीं अधिक है।

---

१. क्रमश रामचरितमानस, २।६३।३-४, गीतावली, १।७७।१-२, कवितावली, १।१
२ रामचरितमानस, ६।८८।५
३ कवितावली, २।१३, रामचरितमानस, ६।३४।१-२

ओज-माधुर्य-रहित और प्रसाद-गुण-गर्भित कोमला वृत्ति का एक उदाहरण लीजिए

कहहिं झूठि फुरि बात बनाई। ते प्रिय तुम्हहि करुइ मैं माई॥
हमहुँ कहबि अब ठकुरसोहाती। नाहिं त मौन रहब दिनु राती॥...
कोउ नृप होउ हमहि का हानी। चेरि छाड़ि अब होब कि रानी॥[1]

तुलसी मुख्यतया प्रसाद के कवि हैं। उन्होंने भावानुसार यथास्थान माधुर्य और ओज की निबंधना की है। भक्ति-भावना में ओतप्रोत होने के कारण उनके काव्य में माधुर्य की अतिशयता है। जनभाषा की प्रवृत्ति के अनुसार उनकी सहजाभिव्यक्ति में कोमला या ग्राम्या वृत्ति की प्रधानता है। अधिक कलात्मक अथवा अलंकृत स्थलों पर कोमल-कांत उपनागरिका एवं दीप्तिकठोर परुषा वृत्तियों का उचित विनिवेश किया गया है।

अलंकार-विधान

तुलसीदास अलंकारवादी न होते हुए भी अलंकार-प्रेमी हैं। एकाध स्थलों को छोड़कर वे सर्वत्र ही अलंकारों की अलंकारता के प्रति जागरूक हैं। अलंकार-विधान की पांच महत्त्वपूर्ण विशेषताएँ हैं। १ 'अलंकार' में प्रयुक्त 'अलम्' अव्यय उत्कर्ष या अतिशयता का द्योतक है। अतः अलंकार का मूल उद्देश्य उक्ति को उत्कर्ष प्रदान करना है। तुलसी-साहित्य में भाव और विचार, हृदय-पक्ष और बुद्धि-पक्ष, काव्यधर्म और मोक्षधर्म, दोनों का समन्वय है। इसलिए उनकी अलंकार-योजना दो प्रकार की उद्देश्य-पूर्ति करती है। काव्यमय संदर्भों में उसका एकमात्र प्रयोजन शोभा-वर्धन अथवा चमत्कारोत्पादन है[2]। परंतु, मोक्षविशिष्ट प्रसंगों में नीरस गूढ़-विचारों का रमणीयता के साथ स्पष्टीकरण उसका लक्ष्य है[3]। दोनों ही स्थितियों में वह उत्कर्ष का हेतु है। २ अलंकार साध्य नहीं है, साधन है। वह अलंकार्य के गुणीभूत है। इसलिए उनको उस वस्तु, पात्र, व्यापार, गुण, भाव अथवा विचार के अनुरूप होना चाहिए जिसके चित्रण को उत्कृष्ट बनाने के लिए उसका नियोजन किया गया है। अलंकार के लिए अलंकार-विधान बाजीगर का कुतूहल-वर्धक तमाशा है। ३ उसकी निबंधना स्वाभाविक रूप से की जानी चाहिए। अलंकार के नाम पर क्लिष्ट-कल्पनाओं की ठूस-ठास रचना के सौंदर्य को कुंठित कर देती है। ४ उपयुक्त समय पर अलंकार का ग्रहण करना चाहिए। ५ उपयुक्त समय पर उसको त्याग देना चाहिए। अतिनिर्वाह से उसका चमत्कारकारी प्रभाव क्षीण हो जाता है। तुलसी की काव्य-कला में अलंकार-विधान की उपर्युक्त विशेषताएँ अपने सुंदरतम रूप में पायी जाती हैं

---

१ रामचरितमानस, २।१६।२, ३

२ सखिन्ह मध्य सिय सोहति कैसी। छबि गन मध्य महाछबि जैसी॥

—रामचरितमानस, १।२६४।१

३. जो गुन रहित सगुन सोइ कैसें। जलु हिम उपल बिलग नहिं जैसें॥

—रामचरितमानस, १।११६।२

होत प्रात मुनि वेष धरि जौं न राम बन जाहिं ।
मोर मरनु राउर अजसु नृप समुझिअ मन माहिं ॥
अस कहि कुटिल भई उठि ठाढ़ी । मानहुँ रोष तरंगिनि बाढ़ी ॥
पाप पहार प्रगट भइ सोई । भरी क्रोध जल जाइ न जोई ॥
दोउ बर कूल कठिन हठ धारा । भवँर कूबरी बचन प्रचारा ॥
ढाहत भूप रूप तरु मूला । चली बिपति बारिधि अनुकूला ॥
लखी नरेस बात सब साँची । तिअ मिस मीचु सीस पर नाची ॥
गहि पद बिनय कीन्हि बैठारी । जनि दिनकरकुल होसि कुठारी ॥
माँगु माथ अबहीं देउँ तोही । रामबिरह जनि मारसि मोही ॥[1]

यहाँ पर कवि ने रोषाविष्ट कैकेयी के सकल्प और कर्म की भीषणता, एव दयनीय दशरथ की विवशता का सजीव चित्रण किया है। सागरूपक-पुष्ट उत्प्रेक्षा और अनुप्रास, अपह्नुति एव रूपकातिशयोक्ति ने उस चित्रण को उत्कर्ष की पराकाष्ठा पर पहुंचा दिया है। कैकेयी के उपमान-रूप मे तरगिणी, मृत्यु तथा कुठार की कल्पना और पाप, क्रोध, वर, हठ, मथरा-वचन, दशरथ एव विपत्ति के उपमान-रूप मे पहाड, जल, कूल, धारा, भँवर, तरु तथा समुद्र की योजना मे लालित्य-विधायिनी योग्यता है। इन अलकारो की सहज निबधना औचित्यानुसार पात्र, परिस्थिति और भाव के अनुकूल की गयी है। विलबित कथनोपकथन के बाद झल्ला कर कैकेयी अपने भयकर निश्चय की घोषणा करती हुई तमतमा कर उठ खडी हुई। इस मार्मिक स्थल को हृदयस्पर्शी बनाने के लिए तुलसी ने उत्प्रेक्षा का उपयोग किया, उसके उत्कर्ष के लिए साग रूपक बाँधा किंतु दूर तक खीच-तान न करके उसे चौथी पक्ति मे समाप्त कर दिया। फिर एक चरण मे अपह्नुति और एक शब्द मे रूपकातिशयोक्ति का विधान करके स्वाभाविक अभिव्यजना पर उतर आये। सहजाभिव्यक्तियो के बीच में अलकारो का विन्यास विशेष रूप से सौदर्य-वर्धक है।

तुलसी की अलकारप्रियता स्थान-स्थान पर दर्शनीय है। उनके गौरव-ग्रथो मे काव्यात्मक अथवा आध्यात्मिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण समझा जाने वाला ऐसा कोई स्थल नही मिलेगा जहाँ उन्होने अलकार-योजना न की हो। उनके अलकारो का चारुत्व शब्द-वैचित्र्य और अर्थ-वैचित्र्य दोनो पर आश्रित है। शब्दालंकारों में अनुप्रास उन्हे विशेष प्रिय है। अर्थालकारों में साधर्म्यमूलक अलकारो के प्रति उनकी अधिक अभिरुचि है, उनमे भी रूपक का स्थान अन्यतम है।

तुलसी का काव्य अलकारो का अनत रत्नाकर है। इतने अधिक अलकारो का प्रयोग होने पर भी पाठक को उनका मर्म समझने के लिए खोपडी नही खुजलानी पड़ती। अलकारशास्त्र से अनभिज्ञ भावक भी उनका अर्थ ग्रहण करके पूरा आनद उठा लेता है। तुलसी की इस अद्भुत सफलता का कारण उनकी प्रबध-पटुता है। वे अधिकतर प्रकरणोपयोगी विषयो से अलकार-सामग्री चुनते हैं और उसे रचना-प्रवाह के क्रम मे इस सफाई

---

१. रामचरितमानस, २।३३-२।३४।४

से मिला कर बिठा देते हैं कि सजावट तो पूरी हो जाती है, लेकिन बनावट जरा भी नहीं मालूम पडती। कही-कही तो प्रकरण-प्राप्त वस्तुओ के उपादान से ही सारा अलकार-विधान किया गया है। अधोलिखित उदाहरण मे सहोक्ति की योजना देखिए

गहि करतल मुनि पुलक सहित कौतुकहि उठाइ लियो।
नृपगन मुखनि समेत नमित करि सजि सुख सबहि दियो॥
आकरष्यो सियमन समेत हरि हरष्यो जनक हियो।
भज्यो भृगुपति गरब सहित तिहूँ लोक बिमोह कियो॥[1]

धनुर्भंग-विषयक उपर्युक्त पक्तियो मे कोई सामग्री प्रकरण के बाहर से नही लायी गयी है। प्रसगातर्गत वस्तुओ को ही कवि ने कलात्मक ढग से प्रस्तुत किया है।

कष्टसाध्य और चमत्कार-प्रदर्शक अलकारो की बाजीगरी तुलसी को नापसद है। मुद्रा, चित्र, प्रहेलिका आदि कृत्रिमता लाने वाले मगजमार अलकारो का उन्होने तिरस्कार किया है। सूक्ष्म[2] और परिसख्या[3] के जैसे जटिल अलकार एक-एक बार ही प्रयुक्त हुए हैं। कारण यह है कि ये अलकार काव्य-रसिको की प्रतिभा को उद्बुद्ध करके आनदानुभूति कराने मे विशेष सहायक नही होते। इनमे बुद्धि-क्रीडा है जो कौतूहल-वृद्धि करती है, सौदर्य-भावना की तुष्टि नही करती। इसी दृष्टि से श्लेष, यमक आदि का विनियोग भी तुलसी ने अपेक्षाकृत बहुत कम किया है। जहाँ किया है वहाँ उनके अलकारत्व का ध्यान रखा है। निम्नाकित उद्धरणो मे क्रमश सभग और अभग श्लेष का सटीक प्रयोग किया गया है

१. बहुरि सक्र सम बिनवौं तेही। सतत सुरानीक[4] हित जेही॥
२. रावन सिर सरोज बन चारी। चल रघुबीर सिलीमुख[5] धारी॥

सार्थक, निरर्थक और सार्थक-निरर्थक वर्णसमूहकी आवृत्ति मे यमक के तीनो रूप द्रष्टव्य हैं[6]:

१. अस मानस मानस चख चाही। भइ कवि बुद्धि बिमल अवगाही॥
२. तुलसी मन रजन रजित अजन नैन सुखंजन जातक से।
३ कपि सों कहति सुभाय अब के अबक अबु भरे हैं।

तुलसी चमत्कार के चक्कर मे नही पडे, लेकिन चमत्कार अर्थात् रमणीयता का अवसर उन्होने हाथ से नहीं जाने दिया। अभिव्यजना मे प्रभावोत्पादकता लाने के लिए

---

१. गीतावली, १।९०।६ ७
२. बेद नाम कहि अँगुरिन खडि अकास।—बरवैरामायण, २८
(बेद=श्रुति=कान, अकास=स्वर्ग=नाक)
३ दड जतिन्ह कर भेद जहँ नर्तक नृत्य समाज।—रामचरितमानस, ७।२२
४ सुरानीक=सुर+अनीक, सुरा+नीक, रामचरितमानस, १।४।५
५. सिलीमुख (शिलीमुख)=बाण, भ्रमर, रामचरितमानस, ६।१९।४
६. रामचरितमानस, १।३६।५, कवितावली, १।१, गीतावली, ६।१३।३

उन्होने पुनरुक्ति का बहुश विधान किया है[1]। कही-कही पर पुनरुक्तवदाभास की शक्तिमती सुदरता भी दृष्टिगोचर होती है[2]:

१ बिधि केहि भाँति धरौं उर धीरा। सिरिससुमन कन बेधिअ हीरा॥

२ पिता जनक देउँ पटतर केही। करतल भोगु जोगु जग जेही॥

विभिन्न सवादो मे वक्रोक्ति की मर्मस्पर्शी निवधना की गयी है। उसकी चर्चा की जा चुकी है।

तुलसी के शब्दालंकार का सौंदर्य-वैभव अनुप्रासो की प्रकृत योजना मे दिखायी देता है। अनुप्रास उनकी शैली का सहज गुण प्रतीत होता है। वे अनुप्रास के सम्राट् है। उनके अनुप्रासो मे खेलवाड, भद्दापन या अर्थन्यूनता नहीं है। उनकी नाद-सगति चित्ताकर्षक है। वे प्रतिपाद्य विषय की कलात्मक अभिव्यक्ति को कमनीय बनाते हैं। तुलसी की उत्कृष्ट कृतियो मे ,जहाँ ढूँढिएगा वही अनुप्रास की छटा मिल जाएगी। यहाँ पर चार उदाहरण ले लीजिए[3]

१. संकर साखि जो राखि कहौं कछु तौ जरि जीह गरो।

२ वार बार बरबारिजलोचन भरि भरि बरत बारि उर ढारति।

३ जग जाँचिये कोउ न जाँचिये जौ जिमि जाँचिये जानकीजानहि रे।
जेहि जाँचत जाचकता जरि जाइ जो जारति जोर जहानहि रे।

४ बचक भगत कहाइ राम के। किंकर कचन कोह काम के॥
तिन्ह महँ प्रथम रेख जग मोरी। धींग धरमध्वज धंधक धोरी॥

तुलसी की अलकार-विधायिनी प्रतिभा का उत्कर्ष देखना हो तो अर्थालकारो की योजना मे देखिए। रमणीय सादृश्य-विधान उनके कला-पक्ष की महती विशेपता है। कल्पना-शक्ति का सर्वाधिक निदर्शन सटीक रूपको, उत्प्रेक्षाओ, उदाहरणो और उपमाओ के भूयिष्ठ विन्यास मे मिलता है।[4] इनकी मनोहर निबधना मे कवि का मन बहुत खूबी के साथ रमा है। अतिशयोक्ति, अपह्नुति, अप्रस्तुतप्रशसा, उल्लेख, तुल्ययोगिता, लोकोक्ति, विभावना, विशेषोक्ति, व्याजस्तुति, विरोधाभास, भ्रम आदि का सौंदर्य भी स्थान स्थान पर अवेक्षणीय है।[5] इन अलकारो का निवेश किसी-न-किसी रूप, गुण, क्रिया, भाव अथवा विचार के निरूपण मे उत्कर्ष लाने के लिए किया गया है। इन पाँचो के सदर्भ मे तुलसी के अलकार-विधान की सफलता आकलनीय है।

रूप काव्य का मुख्य उद्देश्य रसानुभूति कराना है। विभाव का रूप-चित्रण

---

१. मनहुँ पाइ भट बाहुबलु अधिकु अधिकु गरुआइ।—रामचरितमानस, १।२५०
सोमासिधु सभव से नीके नीके नग हैं।—गीतावली, २।२७।२
दारु सरीर कीट पहिले सुख सुमिरि सुमिरि बासर निसि धुनिए।—कृष्णगीतावली, ३७

२. रामचरितमानस, १।२५८।३, २।१६६।३

३ विनयपत्रिका, २२३।२, गीतावली, ५।१६।२, कवितावली, ७।२८, रामचरितमानस, १।१२।२

४ यथा विनयपत्रिका, १०२।४, गीतावली, १।२६, रामचरितमानस, ४।१०

५. जैसे कवितावली, ७।१४५, रामचरितमानस, ४।८।२, दोहावली, ५६४, रा० १।२४१।२-१।२४२।४, रा० ३।३०।५-७, क० ७।१०३, वैराग्यसदीपनी, ३, गीतावली, २।५३।२, विनयपत्रिका, ५, रा० १।१४।सोरठा १, क० २।२७, आदि

भावोद्बोधन का प्रधान उपाय है। अलकार उस चित्रण को उत्कृष्ट बनाते हुए अनुभूति को तीव्र करता है। रगभूमि मे आने पर राम के रूप की प्रभाव-व्यजना देखिए :

राज समाज विराजत रूरे। उडगन महुँ जनु जुग विधु पूरे ॥
जिन्ह कें रही भावना जैसी। प्रभुमूरति तिन्ह देखी तैसी।
देखहिं भूप महा रनधीरा। मनहुँ वीर रसु धरे सरीरा ॥
डरे कुटिल नृप प्रभुहि निहारी। मनहुँ भयानक मूरति भारी ॥
रहे असुर छलछोनिप वेषा। तिन्ह प्रभु प्रगट काल सम देखा ॥
पुरबासिन्ह देखे दोउ भाई। नरभूषन लोचन सुखदाई ॥
नारि विलोकहिं हरषि हिअँ निज निज रुचि अनुरूप।
जनु सोहत सिंगार धरि मूरति परम अनूप ॥
विदुषन्ह प्रभु विराटमय दीसा। बहु मुख कर पग लोचन सीसा ॥
जनक जाति अवलोकहिं कैसें। सजन सगे प्रिय लागहिं जैसें ॥
सहित विदेह बिलोकहिं रानी। सिसु सम प्रीति न जाइ बखानी ॥
जोगिन्ह परम तत्त्वमय भासा। सात सुद्ध सम सहज प्रकासा ॥
हरिभगतन्ह देखे दोउ भ्राता। इष्टदेव इव सब सुख दाता ॥
रामहि चितव भायँ जेहि सीया। सो सनेहु सुख नहि कथनीया ॥[1]

उल्लेख द्वारा इतने विभिन्न रूपो मे राम का चित्रण प्रभावशाली है। उत्प्रेक्षा आदि सहायक अलकारो ने उस प्रभाव को और भी तीव्र कर दिया है। इतने विस्तार मे भी कृत्रिमता नही आने पायी हैं।

रूपक और अतिशयोक्ति से पुष्ट उत्प्रेक्षा के सहारे किया गया सीता-राम का सौंदर्य-वर्णन हृदयहारी है

दूलह राम सीय दुलही री।
घन दामिनि वर बरन हरन मन सुंदरता नखसिख निवही री ॥
सुखमा सुरभि सिंगार छीर दुहि मयन अमियमय कियो है दही री ॥
मथि माखन सिय राम सँवारे सकल भवन छवि मनहुँ मही री ॥
तुलसिदास जोरी देखत सुख सोभा अतुल न जाति कही री ॥
रूपरासि विरची विरचि मनो सिला लवनि रति काम लही री ॥[2]

मानवीकरण ओर तुल्ययोगिता का पुट देकर सहज-प्रसन्न शैली मे रूपकातिशयोक्ति का विधान कितना उत्कर्ष-वर्धक है

खजन सुक कपोत मृग मीना। मधुप निकर कोकिला प्रवीना ॥
कुंदकली दाडिम दामिनी। कमल सरद ससि अहिभामिनी ॥
वरुनपास मनोजधनु हसा। गज केहरि निज सुनत प्रसंसा ॥
श्रीफल कनक कदलि हरषाहीं। नेकु न सक सकुच मन माहीं ॥[3]

---

१ रामचरितमानस, १।२४१।२-१।२४२।३
२ गीतावली, १।१०६।१,३-४
३. रामचरितमानस, ३।३०।५-७

इस अप्रस्तुत-योजना मे कोई भी वस्तु बाहर से घसीट कर नही लायी गयी है। वन मे भटकते हुए विरही राम ने प्रतिवेशी वातावरण से ही उन उपमानो का चुनाव किया है जो सीता के वियोग मे उद्दीपन-विभाव का काम कर रहे हैं।

समरागण मे रक्तरजित राम का उत्प्रेक्षा-मडित चित्ताकर्षक चित्राकन देखिए .

सोनित छींट छटानि जटे तुलसी प्रभु सोहैं महाछबि छूटी।
मानो मरक्कत सैल बिसाल में फैलि चलीं बर बीरबहूटी ॥[1]

यहाँ पर मरकत-शैल और वीरबहूटियो के रूप मे अलकार-सामग्री बाहर से ग्रहण की गयी है। कवि की दृष्टि साधर्म्य के लालित्य पर केंद्रित है। राम के कातिमान् श्याम शरीर और उसके उपमान मरकत-शैल मे वर्ण-सादृश्य हैं। लाल वीरबहूटियों और उपमेय शोणित-बिंदुओ मे वर्ण और आकृति दोनो का बिंब-प्रतिबिंब-भाव है। इस उत्प्रेक्षा का अनूठा वैचित्र्य इस बात मे है कि रूप के सौंदर्यमय सादृश्य-विधान मे रक्त की बीभत्सता अदृश्य हो गयी है।

गुण-स्वभाव : गुण और स्वभाव अमूर्त वस्तुएँ हैं। उनके निरूपण को सजीव बनाने के लिए तुलसी ने कही व्यापार-चित्रण द्वारा, कही मूर्त उपमान द्वारा, और कही दोनो की योजना करके सुदर अलकार-विधान किया है। सतो-असतो, केवल सतो और रावण के स्वाभाविक गुण की व्यजना तुलसी ने क्रमश व्याघात, व्यतिरेक, और उदाहरण की सहायता से युक्तिपूर्वक की है[2]

१ बदौं संत असज्जन चरना। दुखप्रद उभय बीच कछु बरना॥
बिछुरत एक प्रान हरि लेई। मिलत एक दारुन दुख देई॥
२. सत हृदय नवनीत समाना। कहा कविन्ह प कहइ न जाना॥
निज परिताप द्रवइ नवनीता। परदुख द्रवहिं संत सुपुनीता॥
३ दसमुख गएउ जहाँ मारीचा। नाइ माथ स्वारथरत नीचा॥
नवनि नीच कै अति दुखदाई। जिमि अकुस धनु उरग बिलाई॥
भयदायक खल कै प्रिय बानी। जिमि अकाल के कुसुम भवानी॥

मन दुर्निग्रह और चचल होता है। प्रयत्न करने पर भी वह विषयो से विमुख नही होता। विषय-प्रवृत्ति उसका स्वाभाविक गुण है। उदाहरण अलकार का सहारा लेकर उसकी यह विशेषता बडे अच्छे ढग से चित्रित की गयी है

मेरो मन हरि हठ न तजै।
निसिदिन नाथ देउँ सिख बहु बिधि करत सुभाउ निजै॥
ज्यो जुवती अनुभवति प्रसव अति दारुन दुख उपजै।
ह्वै अनुकूल बिसारि सूल सठ पुनि खल पतिहि भजै॥
लोलुप भ्रम गृहपसु ज्यो जहँ तहँ सिर पदत्रान बजै।
तदपि अधम बिचरत तेहि मारग कबहुँ न मूढ़ लजै॥[3]

---

१ कवितावली, ६।५१
२. रामचरितमानस, १।५।२, ७।१२५।४, ३।२४।४
३. विनयपत्रिका, ८९।१-३

इस आत्मनिवेदन में तुलसी का मन जीव मात्र के मन का प्रतीक है। प्रस्तुत मन जड़-अमूर्त है। अप्रस्तुत युवती तथा गृहपशु चेतन मूर्त हैं। दोनों में रूप-सादृश्य न होने के कारण बिंब-प्रतिबिंब-भाव नहीं है। परंतु कामुकता, लोलुपता, मूढ़ता और निर्लज्जता का वस्तु-प्रतिवस्तु-धर्म कम प्रभावशाली नहीं है। इस सटीक साधर्म्य ने मन प्रवृत्ति की व्यंजना को तीव्रतर बना दिया है।

क्रिया तुलसी-साहित्य का अधिकांश कथात्मक काव्य है। अतः उसमें व्यापार-वर्णन की प्रचुरता है। विभिन्न प्रसंगों में तुलसी ने विभिन्न क्रियाओं या घटनाओं का अलंकृत वर्णन उत्तमता से किया है। रंगभूमि में राम के आगमन पर बाँधे गये रूपक का उदाहरण लीजिए

उदित उदयगिरि मंच पर रघुबर बाल पतंग।
बिकसे संत सरोज सब हरषे लोचन भृंग॥
नृपन्ह केरि आसा निसि नासी। बचन नखत अवली न प्रकासी॥
मानी महिप कुमुद सकुचाने। कपटी भूप उलूक लुकाने॥
भए बिसोक कोक मुनि देवा। बरिसहिं सुमन जनावहिं सेवा॥[1]

प्रस्तुत संदर्भ में कई बातें ध्यान देने योग्य हैं। यहाँ पर कवि का उद्देश्य प्रभावोत्कर्ष दिखाना है, भावोत्कर्ष नहीं, क्रिया-सादृश्य का चित्रण लक्ष्य है, रूप-सादृश्य का नहीं। व्यापक प्रभाव को व्यंजित करने के लिए रूपकों की परंपरा लगा दी गयी है, अनेक कर्ताओं की विभिन्न क्रियाओं का एक-साथ घटित होना दिखलाया गया है, परन्तु प्रत्येक इकाई के उपमेय-उपमान का क्रिया धर्म एक है।

कहीं अनेक कर्ताओं की एक ही क्रिया के चित्रण में तुल्ययोगिता का नमूना देखने योग्य है :

सब कर संसउ अरु अग्यानू। मंद महीपन्ह कर अभिमानू॥
भृगुपति केरि गरब गरुआई। सुर मुनिबरन्हि केरि कदराई॥
सिय कर सोचु जनक पछितावा। रानिन्ह कर दारुन दुख दावा॥
संभु चाप बड़ बोहितु पाई। चढ़े जाइ सब संगु बनाई॥[2]

कहीं एक ही कर्ता पर अनेक क्रियाओं का आरोप करके अभिव्यंजना को मार्मिक बनाने के लिए ललित, विचित्र और रूपक अलंकारों का इंद्रधनुषी रंग भरा गया है

येहि पापिनिहि बूझि का परेऊ। छाइ भवन पर पावक धरेऊ॥
निज कर नयन काढ़ि चह दीखा। डारि सुधा बिषु चाहत चीखा॥
कुटिल कठोर कुबुद्धि अभागी। भइ रघुबंस बेनु बन आगी॥
पालव बैठि पेड़ु येहि काटा। सुख महुँ सोक ठाटु धरि ठाटा॥[3]

कहीं एक कर्ता की एक क्रिया के वर्णन में उत्प्रेक्षा का सजीव प्रयोग हुआ है

---

१ रामचरितमानस, १।२५४-१।२५५।२

२ रामचरितमानस, १।२६०।२-४

३ रामचरितमानस, २।४७।१-३

उठि कर जोरि रजायसु माँगा। मनहुँ बीररस सोवत जागा ॥[1]

यहाँ पर मूर्त उपमेय के अमूर्त उपमान के चेतनीकरण मे विशेष लालित्य है।

उत्प्रेक्षा और सदेह के सनिवेश से लकादहन का चित्राकन बडा प्रभावशाली बन पडा है :

बालधी बिसाल बिकराल ज्वालजाल मानो लक लीलिबे को काल रसना पसारी है।
कैधौं ब्योमबीथिका भरे हैं भूरि धूमकेतु बीररस बीर तरवारि सी उघारी है।
तुलसी सुरेसचाप कैधौं दामिनीकलाप कैधौं चली मेरु तें कृसानुसरि भारी है।[2]

उपमेय पूँछ और उपमान काल-रसना, तलवार आदि मे क्रिया-सादृश्य के साथ ही रूप-सादृश्य भी है। इस दोहरे सादृश्य-विधान से व्यजना मे अधिक चमत्कार आ गया है।

भाव काव्य रस का साहित्य है। इसलिए रस-भाव को उत्कर्ष प्रदान करने और उनकी अभिव्यक्ति को प्रभावशाली बनाने मे ही अलकारो की सार्थकता है। प्रतिभावान् तुलसी ने स्वत स्फूर्त अलकारो का सनिवेश करके इस उद्देश्य की सुदर पूर्ति की है। धनुर्भंग के व्यापक प्रभाव और प्रभावित जनो के हर्ष-विषाद की रमणीय व्यजना के लिए उत्प्रेक्षा और उदाहरण की दीपमालिका-सी सजा दी गयी है

सखिन्ह सहित हरषीं सब रानी। सूखत धानु परा जनु पानी ॥
जनक लहेउ सुखु सोचु बिहाई। पैरत थके थाह जनु पाई ॥
श्रीहत भए भूप धनु टूटें। जैसे दिवस दीप छबि छूटें ॥
सीय सुखहि बरनिअ केहि भाँती। जनु चातकी पाइ जलु स्वाती ॥
रामहि लखन बिलोकत कैसें। ससिहि किसोर चकोरकु जैसें ॥[3]

जनक के चित्रकूट पहुँचने पर कवि ने रूपक-पुष्ट उत्प्रेक्षा द्वारा शोक का हृदय-द्रावक निरूपण किया है

आश्रम सागर सातरस पूरन पावन पाथु।
सेन मनहुँ करुना सरित लिए जात रघुनाथु ॥
बोरति ज्ञान बिराग करारे। बचन ससोक मिलत नद नारे ॥
सोच उसास समीर तरगा। धीरज तटतरुबर कर भगा ॥
बिषम बिषाद तोरावति धारा। भय भ्रम भवँर अवर्त अपारा ॥
केवट बुध बिद्या बडि नावा। सकहिं न खेइ ऐक नहि आवा ॥[4]

कौशल्या के उत्कट वात्सल्य की मार्मिकता पर्यायोक्ति का आश्रय लेकर बडे अकृत्रिम ढग से व्यक्त की गयी है

१ राघौ एक बार फिरि आवौ।
ए बर बाजि बिलोकि आपने बहुरो बनहि सिधावौ ॥

---

१ रामचरितमानस, २।२३०।१
२. कवितावली, ५।५
३ रामचरितमानस, १।२६३।२-४
४. रामचरितमानस, २।२७५-२।२७६।२

सुनहु पथिक जो राम मिलहि बन कहियो मातु सँदेसो ।
तुलसी मोहि और सबहिन तें इन्हको बडो अँदेसो ॥[1]

भावाभिव्यक्ति के उत्कर्पक अलकार का एक और उदाहरण लीजिए

हृदय घाउ मेरे पीर रघुबीरै ।
पाइ सजीवन जागि कहत यो प्रेमपुलकि बिसराय सरीरै ॥[2]

लक्ष्मण की इस उक्ति मे असगति अलकार है । इससे लक्ष्मण के प्रेम, सजीवनी के प्रभाव और राम के शोक की अतिशयता बडी कुशलता से व्यक्त की गयी है ।

विचार काव्यविपयक सामान्यतया स्वीकृत धारणा के अनुसार भावोत्कर्प की युक्ति ही अलकार है। इसलिए सैद्धातिक प्रतिपादन के क्रम मे किये गये सादृश्य-विधान आदि को अलकार मानने पर आपत्ति की जा सकती है। यह आपत्ति अयुक्त है, विशेप करके तुलसी के सदर्भ मे । वे श्रेष्ठ विचारो से युक्त काव्य को ही काव्य मानते हैं।[3] उनका विचार-निरूपण भावशून्य नही है। धर्मोत्साह, शम, निर्वेद और भक्ति भी भाव-रूप मे प्रतिष्ठित हैं। उनके काव्यशास्त्रीय सिद्धातो के उपस्थापन मे काव्य और भक्ति दोनो का अतर्भाव है। नारी की निदर्शना द्वारा राम-नाम-भक्ति की महत्ता रमणीयता से प्रतिपादित की गयी है

भनिति विचित्र सुकवि कृत जोऊ। राम नाम बिनु सोह न सोऊ ॥
बिधुबदनी सब भाँति सँवारी। सोह न बसन बिना बर नारी ॥[4]

निर्गुण ब्रह्म की अलौकिकता और अनिर्वचनीयता के परपराप्राप्त निरूपण मे विभावना का उत्कर्प अवेक्षणीय है

बिनु पद चलै सुनै बिनु काना। कर बिनु करम करै बिधि नाना ॥
आनन रहित सकल रस भोगी। बिनु बानी बकता बड जोगी ॥
तन बिनु परस नयन बिनु देखा। ग्रहै घ्रान बिनु बास असेषा ॥[5]

जगत् माया के अधीन है, माया राम की वशवर्तिनी है। रूपक की सहायता से इस तत्त्व की व्यजना बडी ललित शैली मे की गयी है[6]

१ ऊमरि तरु बिसाल तव माया। फल ब्रह्माड अनेक निकाया ॥
जीव चराचर जतु समाना। भीतर बसहिं न जानहिं आना ॥
२ मोह न नारि नारि के रूपा। पन्नगारि यह रीति अनूपा ॥
माया भगति सुनहु तुम्ह दोऊ। नारि वर्ग जानै सब कोऊ ॥
पुनि रघुबीरहि भगति पिआरी। माया खलु नर्तकी बिचारी ॥

---

१ गीतावली, २।८७।१, ४, जासु बियोग बिकल पसु ऐसें। प्रजा मातु पितु जीवहिं कैसे ॥
—रामचरितमानस, २।१००।१

२. गीतावली, ६।१५।१

३. जो बरषै बर बारि बिचारू। होहिं कबित मुकुतामनि चारू ॥—रामचरितमानस, १।११।५

४ रामचरितमानस, १।१०।२, और भी देखिए वही, ५।२३।२

५ रामचरितमानस, १।११८।३-४

६ रामचरितमानस, ३।१३।३-४, ७।११६।१-३

भगतिहि सानुकूल रघुराया। ता तें तेहि डरपति अति माया॥

दूसरे उद्धरण के प्रसग पर ध्यान दीजिए।[1] तुलसी को ज्ञान से भक्ति की श्रेष्ठता बतलानी थी। उन्होने मानवीकरण के द्वारा पुल्लिग ज्ञान आदि पर पुरुष का, और स्त्रीलिंग भक्ति तथा माया पर नारी का आरोप करके उनकी विशेषता का मूर्तिमत्तात्मक चित्रण किया। इस रूपक के भीतर भी रूपक है। भक्ति पर राम की प्रेयसी का और माया पर नर्तकी का आरोप किया गया है। पुरुष ज्ञान आदि का नारी माया से विरक्त होना कठिन है, परतु नारी भक्ति नारी माया पर स्वभावत मोहित नही हो सकती। और, नर्तकी माया राम की प्रेयसी भक्ति के डर के मारे भक्त को बाधा नही पहुँचाती। इसका मनोवैज्ञानिक रहस्य यह है कि विपयी मन की राग-वृत्ति का उन्मूलन करके उसे निर्गुण ब्रह्म पर टिकाना अत्यत दुष्कर है, भक्तिमार्ग मे मन के राग को केवल रामाभिमुख कर देने की आवश्यकता है। अत ज्ञान की अपेक्षा भक्ति सुगम और श्रेयस्कर है। इस गूढ तत्त्व को कवि ने काव्यमयी अलकृत शैली में बडी प्राजलता से अभिव्यक्त किया है।

इसी प्रकार जीव की अभिमान-ग्रथि का सारगर्भित निरूपण उपमा और रूपक के सहारे बहुत रमणीयता के साथ किया गया है[2]

१. ईस्वर अस जीव अबिनासी। चेतन अमल सहज सुखरासी॥
सो माया बस भएउ गुसाईं। बँध्यो कीर मर्कट की नाईं॥

२. बिनु बाँधे निज हठ सठ परबस परयो कीर की नाईं।

३ तुलसिदास येहि जीव मोहरजु जेहि बाँध्यो सोइ छोरै।

तुलसी ने एकाध स्थलो पर ऐसे उपमानो की भी योजना की है जो आलोचको को खटक जाते हैं, जैसे[3]

१ सेवहिं लखनु सीय रघुबीरहि। जिमि अबिबेकी पुरुष सरीरहि॥

२ कामिहि नारि पिआरि जिमि लोभिहि प्रिय जिमि दाम।
तिमि रघुनाथ निरतर प्रिय लागहु मोहि राम॥

यह ठीक है कि लक्ष्मण-जैसा ज्ञानी पुरुष अविवेकी नही है, तुलसी-जैसा निष्काम-निर्लोभ भक्त कामी-लोभी नही है, सीता-राम की सेवा शरीर-सेवा की भाँति हीन नही है, और राम-भक्ति नारीपरक कामरति के सदृश हेय नही है, परतु कवि के अभिव्यग्य को मार्मिकता से व्यक्त करने के लिए इससे अच्छी अप्रस्तुत-योजना की नही जा सकती। यहाँ पर विवेकी लक्ष्मण और निष्काम-निर्लोभ तुलसी तो प्रस्तुत ही है। अतएव अप्रस्तुत-रूप मे विवेकी या निष्काम पात्र की योजना अविधेय है, क्योकि उपमा के लिए दो भिन्न वस्तुओ का साधर्म्य अपेक्षित है। तुलसी जिस आत्मविस्मृति, तन्मयता और अत्यतासक्ति की व्यजना करना चाहते हैं वह किसी विवेकी या अनासक्त के आचरण मे पायी नही जाती।

---

१. ज्ञान विराग जोग विज्ञाना। ए सब पुरुष सुनहु हरिजाना॥
पुरुष प्रताप प्रबल सब भाँती। अबला अबल सहज जड़ जाती॥
पुरुष त्यागि सक नारिहि जो बिरक्त मतिधीर। —रामचरितमानस, ७।११५

२ रामचरितमानस, ७।११७।१-२, विनयपत्रिका, १२०।२, १०२।५

३. रामचरितमानस, २।१४२।१, ७।१३०

एक बात और है। इन पंक्तियों में सादृश्यमूलक अलंकार के साथ ही असादृश्य (विरोध)-मूलक ध्वनि-चमत्कार भी है अविवेकी पुरुष जितनी तन्मयता से शरीर-सेवा करता है उतनी ही तन्मयता से विवेकी लक्ष्मण सीता-राम की सेवा करते हैं, नारी में कामी की और धन में लोभी की जितनी घनीभूत आसक्ति होती है उतनी ही घनीभूत आसक्ति निष्काम तुलसी राम में चाहते हैं। उनके इस अलंकार-विधान में भद्दापन नहीं है। केशव ने तो राम को चोर तथा उल्लू तक बना दिया है[1]।

श्रीरामचंद्र कृपालु भजु मन हरन भवभय दारुन।
नवकंज लोचन कंज मुख कर कंज पद कंजारुन॥[2]

'कंज' का चार बार प्रयोग साहित्यालोचकों को बुरी तरह खटकता है। उन्हें स्मरण रखना चाहिए कि यह स्तोत्र है। यदि बीस बार प्रयोग किया जाता तो भी वह भक्तजनों को परमानंददायक प्रतीत होता।

विस्तार की दृष्टि से तुलसी-कृत अलंकार-विधान के तीन रूप हैं संक्षिप्त, असंक्षिप्त और अतिनिरूढ। तुलसी की अलंकार-विधायिनी शक्ति का सुंदरतम निदर्शन उनके संक्षिप्त अलंकार-विधान में मिलता है। उनकी अलंकृत सरस्वती पद-पद पर रमणीय पद-विन्यास करती हुई चलती है। यहाँ पर कुछ ही उदाहरणों के लिए अवकाश है[3]

१ सखिन्ह मध्य सिय सोहति कैसी। छबिगन मध्य महाछबि जैसी॥
२. निदरेहुँ बदन सोह सुठि लोना। मनहु सांझ सरसीरुह सोना॥
३ भरत महा महिमा जलरासी। मुनि मति ठाढ़ि तीर अबला सी॥
गा चह पार जतनु बहु हेरा। पावति नाव न बोहित बेरा॥
४ तुलसिदास प्रभु मोह सृंखला छुटिहि तुम्हारे छोरे।
५. बिटप मध्य पुतरिका सूत महँ कंचुकि बिनहि बनाये।
मन महँ तथा लीन नाना तनु प्रगटत अवसर पाये॥
६ सतरंज को सो राज काठ को सबै समाज महाराज बाजी रची प्रथम न हुति।
७ श्रमसीकर साँवरि देह लसै मनो रासि महातम तारकमै।
८ जनि डोलहि लोलुप कूकर ज्यों तुलसी भजु कोसलराजहि रे।
९ प्राननाथ के साथ चलीं उठि अवध सोकसरि उमगि बही है।
तुलसी सुनी न कबहुँ काहु कहुँ तनु परिहरि परिछाँहि रही है॥
१० बहु राच्छसी सहित तरु के तर तुम्हरे बिरह निज जनम बिगोवति।
मनहुँ दुष्ट इंद्रिय संकट महँ बुद्धि बिबेक उदय मग जोवति॥

---

१. चतुर चोर से सोभत भए। धरनीधर धनसाला गए॥—रामचंद्रचंद्रिका, २९।३६
बासर की संपति उलूक ज्यों न चितवत चकवा ज्यों चंद चितै चौगनो चेंपत हैं।
—वही, १३।८८

२ विनयपत्रिका, ४५।१

[3] रामचरितमानस, १।२६४।१, १।३५८।१, १।२५७।१-२, विनयपत्रिका, ११४।५, १२४।४, २४६।४, कवितावली, २।१३, ७।३०, गीतावली, २।९।३, ५।१७।३

ये सक्षिप्त अलकार एक ही चरण, एक पक्ति या दो पक्तियो मे समाप्त हो गये हैं। रचना के धारावाहिक क्रम मे इनका सहज नियोजन विशेप रूप से भावोत्कर्पक और लालित्य-वर्धक है।

असक्षिप्त अलकारो का आयाम अपेक्षाकृत अधिक है, किंतु अतिविस्तृत नहीं है। तुलसी की शक्तिमती अभिव्यजना से प्रभावित पाठक को उनके विधान मे कवि का सतर्क प्रयास परिलक्षित नहीं होता, परतु अनुमान किया जा सकता है कि उनकी आयोजना प्रयत्नपर्वक ही की गयी होगी। एक उदाहरण लीजिए

अवधपुरी सोहै येहि भाँती। प्रभुहि मिलन आई जनु राती॥
देखि भानु जनु मन सकुचानी। तदपि बनी संध्या अनुमानी॥
अगर धूप बहु जनु अँधियारी। उड़ै अबीर मनहुँ अरुनारी॥
मदिर मनिसमूह जनु तारा। नृपगृह कलस सो इदु उदारा॥
भवन वेदधुनि अति मृदु बानी। जनु खग मुखर समय जनु सानी॥[1]

यहाँ पर प्रत्येक पक्ति मे उत्प्रेक्षा का निवेश है। अयोध्या की कल्पना रात्रि-रूप मे की गयी है। साथ ही उसके साघ्य वेश, अँधियारी, लालिमा, तारक-मडल, चद्रमा और खग-कलरव का भी अलकृत चित्राकन है। कथा के प्रवाह मे ठहर कर किया गया यह नगर-वर्णन यत्न-साधित है। इसमे सदेह नही कि विभिन्न स्थलो पर तुलसी द्वारा इस प्रकार किया गया असक्षिप्त अलकार-विधान भी रमणीय है, किंतु उन स्थलो पर प्राय भावोत्कर्ष की अपेक्षा कलात्मकता का आतिशय्य दृष्टिगोचर होता है। एकाध स्थलो पर चमत्कार-प्रदर्शन की प्रवृत्ति भी पायी जाती है, जैसे

हाट बाट हाटक पिघिल चलो घी सो घनो कनक कराही लक तलफति ताय सों।
नाना पकवान जातुधान बलवान सब पागि पागि ढेरी कीन्हीं भली भाँति भाय सो।
पाहुने कृसानु पवमान सो परोसो हनुमान सनमानि कै जेंवाए चित चाय सो।
तुलसी निहारि अरिनारि दै दै गारि कहैं बावरे सुरारि बैर कीन्हो रामराय सो॥[2]

प्रीतिकर जेवनार का आश्रय लेकर यहाँ पर भयकर सहार का जो रूपक बाँधा गया है वह विलकुल बेमेल है। 'गारी' की श्लिष्ट योजना भय के उत्कर्प-व्यजन मे सहायक नही है।

अतिनिरूढ अलकार-विधान मे तुलसी ने काव्य-रचना के अनुपात का अतिक्रमण किया है। इन अलकारो की एक अवेक्षणीय विशेपता यह है कि ये सभी सादृश्य-मूलक हैं। एकाध स्थलो पर उपमा, उल्लेख और उदाहरण की निबधना हुई है, अन्यत्र प्राय साग रूपक और उत्प्रेक्षा का ही बहुविस्तीर्ण विन्यास किया गया है।[3] उत्प्रेक्षा के अतिनिर्वाह की विशेपता यह है कि उसकी शृखला-बद्ध योजना काव्यात्मक दृष्टि से की गयी है। राम के रूप-चित्रण और चित्रकूट-वर्णन मे कवि ने उत्प्रेक्षाओं की लडियाँ बडे

---

१. रामचरितमानस, १।१९५।२-४, और भी देखिए. १।२४१-४२, २।२७५-७६, ३।४३-३।४४, गीतावली, १।१०६, २।२४, विनयपत्रिका, ८६, ९०, १२४, कवितावली, २।१, ६।२६, ७।३१

२. कवितावली, ५।२४

३. उदाहरण रामचरितमानस, १।३१।५-७ १।३२।५-७, १।२४१।३-१।२४२।४, ४।१४।१-४।१७

मनोयोग से गूँथी हैं।[1] राम के सौदर्य-निरूपण मे निस्सदेह लालित्य है, किंतु चित्रकूट का वर्णन प्रयत्न-साधित होने के कारण बोझिल हो गया है।

रूपको के अतिनिर्वाह मे विचारात्मक दृष्टि की प्रधानता है। नये-लबे रूपको का वधान 'रामचरितमानस' और 'विनयपत्रिका' मे विशेष रूप से बाँधा गया है।[2] वे सभी कवि की मोक्ष-भावना से अनुप्राणित है। 'रामचरितमानस' की प्रस्तावना में निबद्ध और कई पृष्ठो तक फैला हुआ मानस-रूपक तुलसी-साहित्य का सबसे लवा रूपक है। तुलसी के अतिनिरूढ रूपको पर बहुधा आक्षेप किया गया है कि वे विचारो से आक्रात होने के कारण चमत्कारशून्य हैं, काशी-कामधेनु का साग रूपक तो अपनी शुष्कता और क्लिष्ट-कल्पना मे बेजोड है, उसी प्रकार अर्धनारीश्वर शिव पर वन का, और चित्रकूट पर कल्पतरु का आरोप कवित्वहीन है।[3] शुद्ध काव्य के मानदड से यह आलोचना अधिकाशत समीचीन है, परतु, तुलसी का काव्य मोक्षधर्म-विशिष्ट है। इसलिए सैद्धातिक निरूपण के सदर्भ मे तुलसी की अलकार-योजना का प्रयोजन विचारोत्कर्ष है, भावोत्कर्ष नही। इन रूपको मे उन्होने धर्म, ज्ञान, योग आदि नितात शुष्क विषयो के प्रतिपादन को भी सुग्राह्य बना दिया है। तुलसी का अलकार-विधान एक ओर भाव-व्यजना को उत्कृष्ट बनाता है, सरसता की वृद्धि करता है, दूसरी ओर विचार-व्यजना को विशद बनाता है, उसकी नीरसता को दूर करता है। इसके अतिरिक्त, इन अतिनिरूढ रूपको मे स्थान-स्थान पर निविष्ट कवित्वमयी पक्तियो ने कवि के कथ्य को असदिग्ध रूप से उत्कर्ष प्रदान किया है, यथा[4]--

१ जन मन मजु मुकुर मल हरनी। किए तिलक गुन गन बस करनी॥
२ रामचरित चितामनि चारु। सत सुमति तिय सुभग सिगारू॥
३ पाप उलूकनिकर सुखकारी। नारि निबिड रजनी अँधिआरी॥
४ फल बल छल करि जाहिं समीपा। अचल वात बुझावहिं दीपा॥

आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र का कथन है "अप्रस्तुत-रूपविधान मे तुलसी इतने सिद्धहस्त हैं कि वे बिना किसी रोक-टोक के बडे लबे रूपक बाँध जाया करते हैं। मानस-रूपक बडा लबा है, पर कही भी बेमेल नही है और न कही शृखला ही टूटने पायी है। इसी प्रकार इन्होने अपने सभी ग्रथो मे बडे-बडे रूपक बाँधे है। इसमे सदेह नही कि तुलसी के समान रूपक का बधान बाँधने वाला हिंदी मे कोई कवि नही हुआ।"[5]

पूर्वोक्त काशी-कामधेनु आदि रूपकों में पायी जाने वाली दूषित अलकार-योजना

---

१ गीतावली, १।२३, १।२६, १।१०८, २।४७।११-१६, २।४९, २।५०, रामचरितमानस, २।२३५।१-२३६।४

२ रामचरितमानस, १।१।१-१।२।१, १।३१-१।३२।४, १।३६।२-१।४३ (मानस-रूपक), ३।४३-३।४४, ६।८०।२-६, ७।११७।५-७।११८, ७।१२०।१-७।१२०, ७।१२१।१०-७।१२२।६ विनयपत्रिका, २२, २३, ४७, ५८, ५९ कवितावली, ५।२५

३. क्रमश , विनयपत्रिका, पद २२, १४, २३

४. रामचरितमानस, १।१।२, १।३२।१, ३।४४।४, ७।११८।४

५. कवितावली, अतर्दर्शन, पृ० ३१

की सफाई देते हुए प० रामचद्र शुक्ल ने उसका सारा दोष अपरिष्कृत रुचि वाले पाठको के मत्थे मढा है· "गोस्वामी जी को रामचरित की ओर सब प्रकार के लोगो को आकर्षित करना था, जो जिस रुचि से आकर्षित हो, उसी से सही। इससे उन्होंने भद्दी रुचि रखने वालो को भी निराश नही किया। इसमे गोस्वामी जी का दोष नही; यह एक वर्ग-विशेष की रुचि का प्रसाद है। इतनी विस्तृत रचना के भीतर दो-चार ऐसे स्थलो से उनके सौंदर्य मे अणुमात्र भी सदेह नही उत्पन्न हो सकता।"[1] अतिम वाक्य विशेष महत्त्व-पूर्ण है।

कुल मिलाकर तुलसी का अलकार-विधान परमोत्कृष्ट है। लाला भगवानदीन उन्हे रूपको का बादशाह कहते थे, शुक्लजी ने उन्हे अनुप्रास का बादशाह कहा है।[2] एक बादशाहत और जोड लीजिए तुलसी उत्प्रेक्षाओं के बादशाह भी हैं।

भाषा पर अधिकार

कवि के भाव-विचार का माध्यम भाषा ही है। अतएव समर्थ काव्य-भाषा का मूलभूत धर्म शब्दार्थ-सतुलन है। शब्द-शक्तियो का उचित विनियोग, आवश्यकतानुसार शब्दो का निर्माण, ध्वनि-वक्रोक्ति, गुण- वृत्ति और शब्दालकार उस धर्म की ही विशेषताएँ है। इन सबका विवेचन किया जा चका है। तुलसी की भाषा की कुछ अन्य विशेषताएँ भी द्रष्टव्य हैं।

विकास-क्रम : तुलसी की आरभिक रचनाओ के अध्ययन से ज्ञात होता है कि उनकी भाषा का क्रमश विकास हुआ है। इस प्रकार विकास की दृष्टि से उनकी भाषा के दो रूप प्राप्त होते हैं अप्रौढ और प्रौढ। पहला रूप विकासमान है और दूसरा पूर्णत विकसित। **वैराग्यसंदीपनी, रामाज्ञाप्रश्न, रामललानहछू,** और **जानकीमगल** पहली अवस्था की कृतियाँ हैं। उनसे सिद्ध है कि तुलसी की भाषा क्रमश प्रौढ होती गयी है। **रामचरितमानस** मे उनकी भाषा का चरम विकास परिलक्षित होता है। **जानकीमंगल** की भाषा मे बहुत-कुछ **रामचरितमानस** की भाँति ही धारावाहिकता, प्रसन्नता, प्राजलता, लालित्य और किसी सीमा तक साहित्यिकता है, यह दूसरी बात है कि उसमे 'मानस' का-सा शब्द-भाडार, प्रौढता और उत्कृष्टता नही है। बहुत-से स्थलो पर दोनो मे अविकल शब्दार्थ-साम्य भी पाया जाता है, जैसे[3]·

१. राजत राजसमाज जुगल रघुकुलमनि।
मनहुँ सरदबिधु उभय नखत धरनीधनि॥
राज समाज बिराजत रूरे। उडुगन महुँ जनु जुग बिधु पूरे॥
२ लागि झरोखन्ह झाँकहि भूपतिभामिनि।
जुवतीं भवन झरोखन्हि लागीं।

---

१. गोस्वामी तुलसीदास, पृ० १६४-६५
२. कवितावली, अतर्दर्शन, पृ० ३१; गोस्वामी तुलसीदास, पृ० १६३
३. जानकीमगल, ५५, रामचरितमानस, १।२४१।२; जा० ८०, रा० १।२२०।२, जा० १०५, रा० १।२५८।३, जा० २१६, रा० १।२६१।छद

३ सो धनु कहि अवलोकन भूपकिसोरहि ।
भेद कि सिरिससुमन कन कुलिस कठोरहि ॥
विधि केहि भाँति धरौं उर धीरा। सिरिस सुमन कन बेधिग्र हीरा ॥
४ उपवीत व्याह उछाह जे सिय राम मगल गावहीं ।
उपवीत व्याह उछाह मगल सुनि जे सादर गावहीं ।

इस प्रकार 'जानकीमगल' में ही तुलसी की उस भापा-शैली का आभास मिल जाता है जो उसकी परवर्ती कृति 'रामचरितमानस' मे उत्कर्प की पराकाष्ठा पर पहुँच गयी है। अभ्यस्त कवि ने अन्य सभी रचनाओ मे परिपक्व भापा का व्यवहार किया है।

अवधी-ब्रजभापा जिम प्रकार भाव के क्षेत्र में तुलसी अद्वितीय हैं, उसी प्रकार भापा के क्षेत्र मे भी। तुलसा के सामने हिंदी-कविता के माध्यम-रूप मे प्रतिष्ठित दो जनभापाएँ थी, अवधी और ब्रजभापा। उन्होने दोनो मे माहित्य-रचना की। दोनो पर उनका समान रूप से पूर्ण अधिकार है। तुलनात्मक दृष्टि से यह उनके भापा-नैपुण्य की अप्रतिम विशेपता है। जायसी केवल अवधी के कवि हैं, सूर केवल ब्रजभापा के। इस प्रसग मे कबीर, केशव आदि तुलना के अधिकारी नहीं हैं।

तुलसी की कृतियो मे अववी और ब्रजभापा के पूर्वी तथा पश्चिमी दोनो रूप पाये जाते हैं। इससे उनकी भापा-विज्ञता की व्यापकता मूचित होती है। 'रामललानहछू' और 'बरवैरामायण' पूर्वी अवधी की रचनाएँ हैं, 'जानकीमगल' और 'पार्वतीमगल' पश्चिमी अवधी की। 'रामचरितमानस' केंद्रीय वैसवाड़ी अवधी मे लिखा गया है। 'रामाज्ञाप्रश्न' भी अवधी की रचना है। 'वैराग्यमदीपनी', 'गीतावली', 'विनयपत्रिका' तथा 'दोहावली' (के अधिकाश दोहो) की भापा पश्चिमी ब्रजभापा है, 'कृष्णगीतावली' एव 'कवितावली' की पूर्वी ब्रजभापा। रचनाओ का यह वर्गीकरण भापाविशेप के प्रयोगो की प्रधानता के आधार पर किया गया है[१]।

'रामचरितमानस' अवधी की प्रतिनिधि-रचना है, और 'कृष्णगीतावली' ब्रजभापा की। ऐसा होना स्वाभाविक है। कवि ने कृतिविशेप के लिए भापाविशेप का चुनाव दो बातो को ध्यान में रखकर किया है। १ उपर्युक्त प्रतिनिधि-रचनाओ मे राम का सबध अवध से है, और कृष्ण का ब्रज से। तदनुरूप उनमे क्रमश अवधी और ब्रजी का प्रयोग किया गया है। २ उस समय अवधी आख्यानक-काव्यो की बहुप्रचलित भापा थी, और मुक्तक-रचना मे, विशेपकर गीतो और कवित्त-सवैयो मे, प्राय ब्रजभापा का व्यवहार होता था। तुलसी ने भी उस परपरा का अनुसरण किया। उनका समस्त ब्रजभापा-काव्य मुक्तक है। प्रबध और निबध अवधी मे हैं। रामचरितात्मक 'रामाज्ञाप्रश्न' और 'बरवैरामायण' मुक्तक होते हुए भी अवधी मे रचे गये हैं। अवधी के प्रति उनका विशेप झुकाव है। यद्यपि 'रामचरितमानस' मे भी 'साँवरो', 'को', 'हौं', 'वेरो' आदि ब्रजी के प्रयोग मिल जाते हैं[२] तथापि उनकी ब्रजभापा-कृतियो मे 'लुटैया', 'महँ', 'पैंजनियाँ',

---

१. देखिए तुलसीदास की भापा, पृ० ३४७-३६३
२. रामचरितमानस, १।२३६।छंद, २।२४१।३, ६।७१।६, ७।४४।४

'मैं', 'तोर मोर', 'नाउँ गाउँ', 'पलु', 'बलु' आदि अवधी-प्रयोगो की बहुलता पायी जाती है।[1]

तुलसी की अवधी और व्रजभाषा के सबंध मे एक लक्ष्य करने योग्य बात यह है कि उन्होने इन दोनो को साहित्यिक साँचे मे ढाला है। जायसी आदि कवियो ने अवधी के ठेठ रूप को निखारा था। तुलसी ने सस्कृत की कोमल-कात तत्सम-पदावली के बहुल प्रयोग द्वारा उसे साहित्यिक रूप प्रदान किया। व्रजभाषा की स्थिति इससे भिन्न थी। वह काव्यभाषा के रूप मे मँज चुकी थी। तुलसी ने व्रजी को उसके प्रादेशिक रूप मे नही ग्रहण किया। उन्होने उसका व्याकरणिक ढाँचा लेकर उसमे व्रज-प्रात के बाहर प्रचलित शब्दो, मुहावरो और कहावतो का भी स्वछदता से प्रयोग किया, उसको व्यापक, साहित्यिक, व्यवस्थित और स्थिर रूप देने का उद्योग किया।

उक्त दो भाषाओ के अतिरिक्त तुलसी ने सस्कृत और भोजपुरी मे भी कुछ रचना की है। 'रामचरितमानस' के प्रत्येक सोपान के मगलाचरण एव ग्रथ के उपसहार मे निबद्ध श्लोको की भाषा सस्कृत है। मानस-प्रेमियो-द्वारा प्राय उद्धृत एक श्लोक उदाहरणीय है

> नीलांबुजश्यामलकोमलाग सीतासमारोपितवामभाग।
> पाणौ महासायकचारुचापं नमामि राम रघुवशनाथं॥[2]

तुलसी ने प्राकृत की रीति का अनुसरण करते हुए परसवर्ण और अत्य म् के स्थान पर अनुस्वार का ही प्रयोग किया है।

भोजपुरी का केवल एक पद्य उपलब्ध है। वह भी आद्योपात भोजपुरी मे नही है। नमूने के लिए, उसकी प्रथम चार पक्तियाँ हैं

> राम कहत चलु राम कहत चलु राम कहत चलु भाई रे।
> नाहि तौ भव बेगारि महँ परिहै छूटत अति कठिनाई रे॥
> बाँस पुरान साज सब अठकठ सरल तिकोन खटोला रे।
> हमहिं दिहल करि कुटिल करमचँद मंद मोल बिनु डोला रे॥[3]

शब्द-भांडार . तुलसी का शब्द-भाडार बडा विशाल है। इससे भी भाषा पर उनका आधिपत्य सूचित होता है। गणना करके हिसाब लगाया गया है कि उन्होंने लगभग १२६८२१ शब्दो का प्रयोग किया है।[4] उनकी शब्दावली को मुख्यत पाँच वर्गों मे रखा जा

---

१. गीतावली, १।६।५, १।३२।१, १।३४।२, २।८६।१, विनयपत्रिका, ११३।१, १८६।५, कवितावली ४।१

२. रामचरितमानस, (काशिराज-सस्करण), २।१।श्लोक ३

३. विनयपत्रिका, १८६।१-२, 'मरायल' और 'धायल' का प्रयोग . रामचरितमानस, ६।६७।३

४. रामचरितमानस, (काडानुसार, १५६८३, १५०५८, ४०११, १८१५, ४३१६, ८६१६, ६६५०). ५६७५२, गीतावली १८८६७, विनयपत्रिका १६७६८, कवितावली १३६६६, दोहावली : ६५३०, रामाज्ञाप्रश्न ३७७२, कृष्णगीतावली २८६१, जानकीमगल २७१२, पार्वतीमगल २२७५, रामललानहछू, १०४६, बरवैरामायण, ६६५, वैराग्यसदीपनी ५६७, देखिए . तुलसीदास और उनका काव्य, पृ० २५४-५५

सकता है तत्सम, तद्भव, देशज, अन्यप्रदेशज और विदेशी। तुलसी की भाषा संस्कृत-निष्ठ है। यह उनके काव्य-शास्त्र-ज्ञान, हिंदू-संस्कृति और राम-चरित के वैशिष्ट्य का परिणाम है। उन्होंने लोकमंगल की सिद्धि के लिए लोकभाषाओं में रचना की, साथ ही विद्वज्जनों के परितोषार्थ संस्कृत की तत्सम-पदावली अथवा संस्कृताभासित भाषा का व्यवहार भी किया। उदाहरण के लिए कुछ ही पंक्तियाँ पर्याप्त हैं[1]

१ चंद्रहास हरु मम परितापं। रघुपति बिरह अनल संजातं॥
२. कलातीतकल्याणकल्पांतकारी सदा सज्जनानंददाता पुरारी।
चिदानंदसंदोहमोहापहारी प्रसीद प्रसीद प्रभो मन्मथारी॥
३ दुसह दोष दुख दलनि करु देवि दाया।
बिश्वमूलाऽसि जनसानुकूलाऽसि कर सूलधारिणि महामूलमाया॥
४ आदिमध्यांत भगवंत त्वं सर्वगतमीस पस्यंति ये ब्रह्मबादी।
यथा पट तंतु घट मृत्तिका सर्प स्रग दारु करि कनक कटकांगदादी॥
५ कंदर्पदर्प दुर्गम दमन उमारमन गुनभवन हर।
त्रिपुरारि त्रिलोचन त्रिगुनपर त्रिपुरमथन जय त्रिदसवर॥

अवधी की प्रकृति के अनुसार 'हर' का 'हरु', 'व' का 'ब' या 'ण' का 'न' हो गया है; छंद के आग्रह से 'इ' का स्थान 'ई' ने ले लिया है, बहुवचन 'ये' के साथ एकवचन 'ब्रह्मबादी' का हिंदी की भाँति बहुवचन में प्रयोग हुआ है, प्राकृत के प्रभाव से परसवर्ण और अंतिम 'म्' के बदले अनुस्वार ही रखा गया है, तत्कालीन लेखन-प्रवृत्ति के अनुसार संस्कृत के 'रघुपतिविरहानलसंजातम्'-जैसे समस्त पद के चारों शब्द अलग-अलग लिखे गये हैं। 'मम', 'त्वं', 'सर्वगतम्', 'प्रसीद' 'असि', 'पस्यंति' आदि विभक्ति-युक्त प्रयोगों में संस्कृत-रूप स्पष्ट हैं। 'रामचरितमानस' और 'विनयपत्रिका में 'अहं', 'अयं', 'इदं', 'किमपि', 'तेपि', 'सोपि', 'तव', 'अस्ति', 'अस्मि', 'पश्य', 'नमामि', 'भजे', 'वद' आदि का बहुश व्यवहार देखा जा सकता है। कहीं पर उन्होंने संस्कृत के अविकृत शुद्ध रूपों का ग्रहण किया है, जैसे 'सुखेन', 'उरसि', 'सदसि' आदि में,[2] और कहीं पर संस्कृत के पदों या क्रियाओं का विकृत रूप में प्रयोग किया है, जैसे 'नामानी (नामानि), 'असमाकं' (अस्माकम्), 'सुमिरामि' (स्मरामि) आदि में।[3]

तुलसी की भाषा में संस्कृत के असाधु प्रयोगों को लक्ष्य करके उसमें च्युतसंस्कृति दोष देखना अथवा कवि को संस्कृत से अनभिज्ञ समझना ठीक नहीं है। वे सभी प्रकार के पाठकों को दृष्टि में रखकर रचना कर रहे थे। जनसाधारण का लोक-प्रचलित भाषा

---

१ रामचरितमानस, ५।१०।२, ७।१०८।६, विनयपत्रिका, १५।१, ५४।४, कवितावली, ७।१५०
२ जाहु सुखेन बनहि बलि जाऊँ।—रामचरितमानस, २।५७।२
बिबिध कंकन हार उरसि गजमनि माल।—गीतावली, ७।६।४
बिपुल भूपति सदसि महँ नरनारि कह्यो प्रभु पाहि—विनयपत्रिका, २२७।४
३. जन्म कर्म अनंत नामानी।—रामचरितमानस, ७।५२।२
सर्वतोभद्रदाताऽसमाकं।—विनयपत्रिका, ५१।८
ब्रह्म सुमिरामि नरभूपरूपं।—विनयपत्रिका, ५०।८

की अपेक्षा थी। सस्कृत-प्रेमियो की प्रसन्नता के लिए उसमे आद्योपात सस्कृत-पदावली की योजना सभव नही थी। तुलसी ने मध्यम-मार्ग अपना कर आभासित सस्कृत का भी अपेक्षानुसार व्यवहार किया। इस क्रम मे उनकी सफलता का निश्चित प्रमाण यह है कि उनका 'रामचरितमानस' सस्कृतज्ञ और सस्कृतानभिज्ञ जन-समाज मे एकसमान समादृत है। प० रामनरेश त्रिपाठी का कथन है कि "रामचरितमानस मे साठ-सत्तर फीसदी शब्द शुद्ध सस्कृत के हैं और शेष तद्भव, अपभ्रश या गाँव की हिंदी के।"[1] यह धारणा तथ्य-समर्थित नही है। उन्होने 'सयन', 'बलकल', 'असन' आदि अर्धतत्सम शब्दो को भी शुद्ध तत्सम मान लिया है। तथ्य यह है कि तुलसी की अधिकाश शब्दावली तत्सम-और-अर्ध-तत्सम है।

उन्होने ऐसे भी बहुत-से शब्दो का प्रयोग किया है जो प्राकृत-अपभ्रश के समय से ही काव्य-भाषा मे व्यहृत होते चले आ रहे थे किंतु बोलचाल से उठ चुके थे, जैसे: 'मयन' (मदन), 'पब्बै' (पर्वत) 'नरवइ' (नरपति), 'सायर' (सागर) आदि।[2] 'चमकहिं', 'दमकहिं', 'नचहिं' आदि अपभ्रश-परपरा के अवशेष हैं।[3] कही-कही ओज के उद्देश्य से प्राकृत-अपभ्रश शैली पर द्वित्व-वर्णों एव सयुक्त अक्षरो का निवेश किया गया है।[4] कुछेक स्थलो पर छद का निर्वाह इस प्रवृत्ति का निमित्त प्रतीत होता है।[5] 'मडै', 'छडै', 'पब्बय', 'डोल्लहिं', 'बोल्लहिं'[6] आदि प्रयोगो की सार्थकता पर सदेह प्रकट करते हुए डाक्टर श्रीवास्तव ने समाधान प्रस्तुत किया है कि "तुलसी का सपर्क ऐसे प्रयोगो का समावेश करते समय कतिपय उन कवियो अथवा पडितो से रहा हो जो ऐसे प्रयोगो को अपनी भाषा मे स्थान देते रहे हो और इसीलिए उन प्रयोगो को बचा जाने की ओर तुलसी का ध्यान न गया हो।'[7] मेरे विचार से, तुलसी ने ये प्रयोग जान-बूझकर किये हैं। यह बात ध्यान देने योग्य है कि उन्होने ये प्रयोग स्तुतियो और दीप्तिप्रधान भावो की व्यजना मे किये हैं। उनके युग मे भी इस प्रकार के परपरागत शब्द काव्य-भाषा के उपयुक्त और

---

१. तुलसीदास और उनका काव्य, पृ० २५५

२ मयननि बहु छवि अगनि दूरति।—गीतावली, ५।४७।१
डिगति उर्वि अति गुर्वि सर्व पब्बै समुद्र सर।—कवितावली, १।११
भएउ न होइहि है न जनक सम नरवइ।—पार्वतीमगल, ७
चलत महि मेरु उच्छलत सायर सकल—कवितावली, ६।४४

३. बहु कृपान तरवारि चमकहि। जनु दह दिसि दामिनी दमकहि॥
—रामचरितमानस, ६।८७।२
जोगिनि भरि भरि खप्पर सचहि। भूत पिसाच बधू नभ नचहि॥—वही, ६।८८।४

४ खप्परन्हि खग्ग अलुज्झि जुज्झहिं सुभट भटन्ह ढहावहीं।—रामचरितमानस, ६।०८।छद
जबुक निकर कटक्कट कट्टहि। खाहिं हुहाहि अघाहिं दपट्टहिं॥—वही, ६।८८।५
लक्ख में पक्खर तिक्खन तेज जे सूर समाज में गाज गने हैं।—कवितावली, ६।३९

५ मानो प्रतच्छ परब्बत की नभ लीक लसी कपि यों धुकि धायो।—कवितावली, ६।५४
तजि आस भो दास रघुप्पति को दसरत्थ को दानि दया दरिया।—वही, ७।४६
बारिदनाद अकपन कुभकरन्न से कुंजर केहरि वारो।—हनुमानबाहुक, १९

६. कवितावली, ७।११६, ७।९८, रामचरितमानस, ६।८८।५

७. तुलसीदास की भाषा, पृ० २०३

प्रभावशाली समझे जाते थे। उन्होने सीमित क्षेत्र मे इस शैली का भी प्रयोग किया।

तुलसी-साहित्य मे 'अहेर' (आखेट), 'अहिवात' (अविधवात्व), 'बीछी' (वृश्चिक), 'बाँझ' (वध्या), 'भीख' (भिक्षा), 'गाँठि' (ग्रथि), 'अकनि' (आकर्ण्य), 'बूढ' (वृद्ध), नैहर(ज्ञातिगृह),'बायन' आदि तद्भव शब्दो की प्रचुरता पायी जाती है। परतु, तत्सम-अर्धतत्सम शब्दो की तुलना मे इनका प्रयोग बहुत कम है। 'काँकर','घमोई', 'मोड', 'टहलटई', 'ढावर', 'झोपडी' आदि ठेठ देशज शब्दो का व्यवहार अपेक्षाकृत और भी न्यून है। अन्यप्रदेशज प्रचलित शब्दो को भी उन्होने बिना सकोच के अपनाया है, उदाहरणार्थ गुजराती[1] के 'जून' (जीर्ण), 'दरिया' (समुद्र), 'मोंगी' (मौन) आदि, राजस्थानी-मारवाडी[2] के 'नारि' (गर्दन), 'म्हाको' (मेरा) आदि, बँगला[3] से प्रभावित 'सकारे' (प्रात काल), 'थाकेउ' (ठहर गया), 'बैसा' (बैठा) आदि। तुलसी अधिकतर तीर्थस्थानो मे रहे जहाँ सभी प्रदेशो के यात्री आया करते थे। उनके बहुत-से शब्द जन-साधारण की भाषा मे घुल-मिल गये। तुलसी ने उन्हें ग्रहण कर लिया।

तुलसी के गौरव-ग्रथो 'रामचरितमानस', 'विनयपत्रिका', 'कवितावली' और 'गीतावली' में अरबी-फारसी-शब्दावली का प्रचुर प्रयोग पाया जाता है। यहाँ भी वे अद्वितीय हैं। हिंदी के किसी अन्य महाकवि ने अपने काव्य मे इतने अधिक विदेशी शब्दो का समावेश नही किया। ये शब्द अधिकतर बोलचाल मे खपे हुए प्रचलित शब्द हैं, जैसे अरबी से लिये गये 'साहिब', 'गरीब', 'बाग', 'जहाज', 'कसम', 'मुकाम', 'सतरज', 'खसम', 'फौज' आदि अथवा फारसी से गृहीत 'बाजार', 'दरबार', 'मजरी', 'खजानो', 'सहर', 'बाजीगर', 'खूब', 'सहनाई', 'सरम' आदि। कही-कही पर अरबी-फारसी के अप्रचलित शब्द भी प्रयुक्त हुए हैं[4]

१ चाकरी न आकरी न खेती न बनिज भीख जानत न कूर कछु किसब कवारु है।

२ साधु जानैं महासाधु खल जानै महाखल बानी झूठी साँची कोटि उठत हबूब है।

३. जस आमय भेषज न कीन्ह तस दोष कहा दिरमानी।

४ एही दरबार है गरब ते सरब हानि लाभ जोग छेम को गरीबी मिसकीनता।

उपर्युक्त उद्धरणो मे प्रयुक्त अरबी 'किसब' (कस्ब उद्यम), और हबूब (आँधी, बवडर) तथा फारसीमूलक 'दिरमानी' (दर्मा चिकित्सा) और 'मिसकीनता' (मिस्की दीन) बोलचाल के प्रचलित शब्द नही हैं। फिर भी इनका प्रयोग ऐसा सटीक है कि तनिक भी खटकता नही है। अतिम दो मे हिंदी-प्रत्यय लगा कर कवि ने उनका काया-कल्प कर दिया है। चलते शब्दो के व्यवहार मे तो सर्वत्र निर्बाध प्रसन्नता है।[5] तुलसी-

---

१. रामचरितमानस, १।२७२।१, कवितावली, ७।४६, गीतावली, २।६६।५

२. दोहावली, ३०५, कवितावली, ६।२१

३ कवितावली, १।१, रामचरितमानस, १।१९५, ६।७६।१

४. कवितावली, ७।६७, ७।१०८, विनयपत्रिका, १२२।१, २६८।३

५. लागति साँगि बिभीषन ही पर सीपर आपु भये हैं।—गीतावली, ६।५।४
गोरो गरूर गुमान भरो कहौ कौसिक छोटो सो ढोटो है काको।—कवितावली, १।२०
गई बहोर गरीब निवाज। सरल सबल साहिब रघुराज॥—रामचरितमानस, १।१३।४

साहित्य मे अरबी-फारसी-मूल के शब्दो का बाहुल्य देखकर यह निष्कर्ष निकालना समीचीन नही जँचता कि वे अरबी-फारसी के पडित थे। ये प्रयोग उनके व्यवहार-ज्ञान और मुस्लिम शासन तथा सस्कृति के लोकव्यापी प्रभाव के ज्ञापक हैं।

मुहावरे और कहावतें . मुहावरो तथा कहावतो के स्वाभाविक एव सटीक प्रयोग से भाषा की शक्तिमत्ता और प्रभविष्णुता मे चार चाँद लग जाते हैं। भाषा के इन अगो पर भी तुलसी का असाधारण अधिकार है। रूढ-लक्षणा की मार्मिकता और नैसर्गिक जीवन की प्राणवत्ता मुहावरो की सहज विशेषता है। तुलसी ने उनका समुचित सनिवेश करके भाषा को अधिक सजीव, सशक्त और चित्तस्पर्शी बना दिया है। उनकी कलात्मक मुहावरेबदिश के कुछ नमूने देखिए[1]

१ भले भवन अब बायन दीन्हा। पावहुगे फल आपन कीन्हा॥

२. हँसि कह रानि गालु बड़ तोरें। दीन्हि लखन सिख अस मन मोरें॥

३ कत सिख देइ हमहि कोउ माई। गाल करब केहि कर बल पाई॥

४ रेख खँचाइ कहौं बलु भाखी। भामिनि भइहु दूध कइ माखी॥

५ तौ सुरपति कुरुराज बालि सो कत हठि बैर बिसहते।

६ पढिबो पर्यो न छठी छमत रिगु जजुर अथर्बन साम को।

७ एतेहु पै तुम्हरो कहावत लाज अँचई घोरि।

८ बाटिका उजारि अच्छ रच्छकनि मारि
भट भारी भारी रावरे के चाउर से काँड़ि गो।

९ तुलसी दुख दूनो दसा दुहुँ देखि कियो मुख दारिद को करिया।

१० दसमुख तज्यो दूधमाखी ज्यो आपु काढ़ि साढी लई।

११ मुँह लाये मूँड़हि चढी अतहु अहिरिन तू सूधी करि पाई।

१२ ठाली ग्वालि जानि पठये अलि कह्यो है पछोरन छूछो।

१३ तुलसी त्यो कुरुराज ज्यो जैहैं बारह बाट।

कहावतो मे व्यजना और सादृश्य-विधान का चमत्कार निहित रहता है। वे लोकोक्तियाँ हैं, अत उनमे लोक-हृदय को द्रुत, दीप्त या प्रसन्न करने की स्वाभाविक शक्ति है। तुलसी ने विभिन्न प्रसगो मे सटीक कहावतो के युक्ति-युक्त विन्यास द्वारा भाषा की व्यजनक्षमता और मनोहरता को उत्कर्ष प्रदान किया है, यथा[2]

१ पर घर घालक लाज न भीरा। बाँझ कि जान प्रसव कै पीरा॥

२ तुम जो कहहु करहु सब साँचा। जस काछिअ तस चाहिअ नाचा॥

३ तुलसी बनी है राम रावरे बनाएँ ना तो
धोबी कैसो कूकर न घर को न घाट को।

---

१. रामचरितमानस, १।१३७।३, २।१३।४, २।१४।१, २।१६।४, विनयपत्रिका, ९७।१, १५५।२, कवितावली, ६।२४, ७।४६, गीतावली, ५।३७।२, कृष्णगीतावली, ८।२, ४३।२, दोहावली, ४१७

२. रामचरितमानस, १।९७।२, २।१२७।४, कवितावली, ७।६६, ७।१७१, कृष्णगीतावली, ४४।३, ४६।३, विनयपत्रिका, २२६।२

४. फलै फूलै फैलै खल सीदै साधु पल पल
   खाती दीपमालिका ठठाइयत सूप हैं ।

५ धान को गाँव पयार ते जानिय ज्ञान विषय मन मोरे ।

३ तुलसी त्यों त्यों होइगी गरुई ज्यों ज्यो कामरि भीजै ।

७. मोहि तो सावन के अर्धहि ज्यों सूझत रग हरो ।

व्याकरण-व्यवस्था तुलसी के युग मे अवधी अथवा ब्रजी का कोई व्याकरण-शास्त्र नही था । उन्होने लोक-व्यवहार और कवियो की वाणी के आधार पर भाषा-सवधी मान्यताएँ स्थिर कीं और उन्हे अपनी रचनाओ मे कार्यान्वित किया । अन्य कवियो ने मनमाने शब्द गढे हैं, स्वच्छदता मे लिंग-व्यतिक्रम किया है, तुक मिलाने के लिए शब्दो को निर्दयतापूर्वक तोडा-मरोडा है । तुलसी इन प्रवृत्तियो के शिकार नही हुए । जहाँ कहीं उन्हें विवश होकर शब्द तोडने या गढने पडे हैं वहाँ भी उनका रूप बहुत अधिक विगडने नहीं पाया है ।

अवधी और ब्रजी "इन दोनो भाषाओ पर उनकी रचनाओ से इतना अधिकार दिखायी देता है जितना स्वय सूरदास जी का ब्रजभाषा पर और जायसी का अवधी पर न था । इन दोनो लब्धप्रतिष्ठ कवियो ने व्याकरण का गला दबाकर शब्दो के ऊपर खूब अत्याचार किया है । परतु गोसाईं जी ने ब्रजभाषा और अवधी दोनो के व्याकरण के नियमो का पूर्ण रूप मे निर्वाह किया है ।"[1] इस सवध मे इतना और स्मर्तव्य है कि तुलसी का अवधी पर विशेष अधिकार है । वे अधिकतर अवधी-प्रात मे रहे थे । इसलिए वह उनके जीवन का अग बन गयी थी । ऐसा प्रतीत होता है कि उनका ब्रजभाषा-ज्ञान अध्ययन द्वारा अर्जित था । फलत उनकी अवधी-रचनाओ मे ब्रजी के कम प्रयोग पाये जाते हैं, किंतु ब्रजभाषा की कृतियो मे अवधी-प्रयोगो की प्रचुरता है । दोनों मे अन्य बोलियों के प्रयोग भी कही-कही ग्रहण किये गये हैं ।[2] भाषा की साधुता का उन्होंने सर्वत्र निर्वाह किया है । 'सबसे बडी विशेषता गोस्वामी जी की है भाषा की सफाई और वाक्य-रचना की निर्दोषता जो हिंदी के और किसी कवि मे ऐसी नहीं पायी जाती । ऐसी गठी हुई भाषा किसी की नहीं है । सारी रचना इस बात का उदाहरण है ।"[3] छोटे-छोटे वाक्यो मे व्याकरणसमत भाषा का सुगठित रूप कही भी देखा जा सकता है[4]

१ भुज बल बिस्व जितब तुम जहिआ । धरिहहिं बिष्नु मनुज तनु तहिआ ॥

२. कै ए सदा बसहु इन्ह नयनन्हि कै ए नयन जाहु जित ए री ।

३. सकुचत हौं अति राम कृपानिधि क्यो करि विनय सुनावौं ।

---

१ गोस्वामी तुलसीदास (बाबू श्यामसुदरदास), पृ० १४७

२. बुदेली · पालिबो—रामचरितमानस, १।३२६।छद, ढारिबो—गीतावली, ७।२६।३
   भोजपुरी · राटर—पार्वतीमगल, ६०, ढिहल—विनयपत्रिका, १८६।२
   खड़ीबोली किया—रा० १।६८।छद, करती हैं—गीतावली, ७ १३।१३
   मचा—कवितावली, ६।१५

३. प० रामचद्र शुक्ल गोस्वामी तुलसीदास, पृ० १७०

४. रामचरितमानस, १।१३६।३ गीतावली, १।७८।२, विनयपत्रिका, १४२।१, कवितावली, ७।३८

४. लोकरीति बिदित बिलोकिअत जहाँ तहाँ
   स्वामी के सनेहँ स्वान हू को सनमानु है।

अनेक स्थलो पर लबी सश्लिष्ट वाक्य-योजना मे प्रत्येक अवयव दुरुस्त है

कबहुँ सो करसरोज रघुनायक धरिहौ नाथ सीस मेरे।
जेहि कर अभय किये जन आरत बारक बिबस नाम टेरे॥
जेहि कर कमल कठोर सभुधनु भजि जनकसंसय मेटचो।
जेहि करकमल उठाइ बंधु ज्यों परम प्रीति केवट भेंटचो॥ ..
सीतल सुखद छाँह जेहि कर की मेटति पाप ताप माया।
निसि बासर तेहि करसरोज की चाहत तुलसिदास छाया॥[1]

एकाध जगह व्याकरण की त्रुटि होने से तुलसी की सुव्यवस्थित, साफ-सुथरी और सुगठित भाषा का गौरव क्षीण नही होता। कही त्रुटि न होने पर भी आलोचको को व्याकरण की अशुद्धि दिखायी देती है[2], जैसे निम्नाकित अर्धाली मे

मरम बचन जब सीता बोला। हरि प्रेरित लछिमन मन डोला॥[3]

डा० श्रीवास्तव का समाधान है कि 'प्राचीन अवधी के अतर्गत कर्मणि प्रयोग मे क्रिया का रूप कर्म के अनुसार' होता था[4], इसलिए 'सीता बोला' का व्यवहार व्याकरण-विरुद्ध नही है। शुक्ल जी का उत्तर है[5] कि 'बोला' का असली रूप 'बोल' है, चौपाई के पदात के कारण अतिम स्वर दीर्घ कर दिया गया है। अवधी मुहावरे के अनुसार 'बोल' का अर्थ है बोलती है, उत्तरदिसि बह सरऊ पावनि[6] मे 'बह' का अर्थ है 'बहती है'। यही समाधान ग्राह्य है। जायसी ने 'बोलना' ही नही, अकर्मक 'हँसना' क्रिया का भी इस प्रकार प्रयोग किया है।[7]

प्राजलता और धारावाहिकता : तुलसीदास भाषा की सरलता को कविता का आवश्यक गुण मानते हैं

सरल कबित कीरति बिमल सोइ आदरहिं सुजान।
सहज बयर बिसराइ रिपु जो सुनि करहिं बखान॥[8]

केवल प्रारभिक कृतियो को छोडकर उनके सपूर्ण काव्य मे आदि से अत तक भाषा की सरलता, स्पष्टता, प्राजलता और धारावाहिकता पायी जाती है। कही भी शिथिलता नही है, भरती की शब्दावली या निरर्थक-आडबर नही है। 'भएउ हृदयँ आनंद उछाहू।

---

१ विनयपत्रिका, १३८
२ देखिए . तुलसीदास और उनका काव्य, पृ० २९३
३. रामचरितमानस, ३।२८।३
४. तुलसीदास की भाषा, पृ० २२३
५. गोस्वामी तुलसीदास, पृ० १७२
६. रामचरितमानस, ७।४।३
७ पौनु डोलावहिं सींचहिं चोला। पहरक समुझि नारि मुख बोला॥

—पदमावत, ३४२।६

जो देखैं जनु बिसहर डँसा। देखि चरित पदुमावतिहँसा॥—वही, ११२।५
८. रामचरितमानस, १।१४

उमगेउ प्रेम प्रमोद प्रबाहू ।। चली सुभग कविता सरिता सो ।' की उक्ति उनकी कविता में सर्वत्र गतार्थ हुई है । उसकी अजस्र धारा मे सहृदय पाठक भाव-मग्न हुए बिना नहीं रह सकता

१ नृप भुज बल विधु सिवधनु राहू । गरुअ कठोर बिदित सब काहू ।।
रावनु बानु महाभट भारे । देखि सरासन गवँहि सिधारे ।।
सोइ पुरारि कोदडु कठोरा । राज समाज आजु जोइ तोरा ।।
त्रिभुवन जय समेत वैदेही । बिनहिं बिचार बरै हठि तेही ।।

२ बबुर बहेरे को बनाइ बागु लाइयत रूँधिबे को सोई सुरतरु काटियतु है ।
गारी देत नीच हरिचद हू दधीचि हू को आपने चना चबाइ हाथ चाटियतु है ।
आपु महापातकी हँसत हरि हर हू को आपु है अभागी भूरिभागी डाटियतु है ।
कलि को कलुष मन मलिन किए महत मसक की पाँसुरी पयोधि पाटियतु है ।।[२]

निष्कर्ष यह कि तुलसी की कविता मे शब्द और अर्थ का अनुपम साहित्य है । वाणी अर्थ की अनुवर्तिनी है, अर्थ वाणी का सहचर है । दोनो के मनोरम सामजस्य से उनका काव्य रसिको का कठहार बन गया है ।

चित्रात्मकता

काव्यानुभूति मे दो ज्ञानेंद्रियो का उपयोग किया जाता है श्रवण और नेत्र । इनकी सापेक्ष प्रधानता के आधार पर ही काव्य के दो विभाग किये गये हैं श्रव्य और दृश्य । श्रव्य काव्य मे भी नेत्र बिंब-ग्रहण मे अप्रत्यक्ष रूप से भावक की सहायता करते हैं । एक उदाहरण लीजिए । लका से लौटकर हनुमान् राम से सीता की दशा का वर्णन कर रहे हैं :

रघुकुलतिलक बियोग तिहारे ।
मैं देखी जब जाइ जानकी मनहु बिरह मूरति मन मारे ।।
चित्र से नयन अरु गढ़े से चरन कर मढे से स्रवन नहिं सुनत पुकारे ।
रसना रटति नाम कर सिर चिर रहै नित निज पदकमल निहारे ।।[३]

इस वर्णन को पढकर पाठक के मानस-नेत्रो के समक्ष एक ऐसी असहाय एव चितामग्न विरहिणी का रूप प्रत्यक्ष हो जाता है जो अपने रूप की छाया-सी प्रतीत हो रही है, हथेली पर सिर टिकाए बैठी है, अपलक नयनो और शून्य-दृष्टि से अपने चरणो को निहार रही है, आँख-कान होते हुए भी मन की विकलता के कारण कुछ देखने-सुनने मे असमर्थ है उस पर जडता-सी छा गयी है । यह मानस-प्रत्यक्ष विप्रलभ की तीव्र अनुभूति कराने मे अतीव सहायक है । इस प्रकार का मूर्तिमत्तात्मक चित्रण भाव्य वस्तु के साथ भावक का तादात्म्य स्थापित करता है । अत चित्रात्मकता उत्कृष्ट काव्य की बहुत बड़ी विशेषता है । गुण-व्यजक पदावली और नयन-रजक चित्र-विधान के सामजस्य से

---

१. रामचरितमानस, १।२६।५-६
२. रामचरितमानस, १।२५०।१-२, कवितावली, ७।६६
३. गीतावली, ५।१८।१-२

काव्य की रमणीयता स्वभावत बढ जाती है, क्योकि वह श्रवण और नेत्र दोनो इद्रियो के लिए आह्लादकारक होता है। तुलसी ने भाव-व्यजना को उत्कर्ष प्रदान करने के लिए विभावो और अनुभावो का सर्वत्र ही चित्रात्मक बिब-विधान किया है।

अभक्त का ऐश्वर्य व्यर्थ है, इम प्रतिपाद्य की व्यजना कितनी लालित्यपूर्ण चित्रात्मक शैली मे की गयी है

> झूमत द्वार अनेक मतग जँजीर जरे मद अबु चुचाते।
> तीखे तुरग मनोगति चचल पौन के गौनहु ते बढि जाते।
> भीतर चद्रमुखी अवलोकति बाहर भूप खरे न समाते।
> ऐसे भये तौ कहा तुलसी जो पै जानकीनाथ के रग न राते॥[1]

सूक्ष्म दार्शनिक तत्त्व सामान्य सहृदय को नीरस और दुर्ग्राह्य प्रतीत होते हैं। तुलसीदास मानव-मन की इस नैसर्गिक निर्बलता से भलीभाँति अभिज्ञ थे। इसलिए दार्शनिक विचारो के प्रतिपादन मे भी उन्होने अमूर्त का मूर्तीकरण करके शास्त्रीय विषय को काव्यमय बना दिया है, जैसे

> तब सोइ बुद्धि पाइ उजिआरा। उर गृह बैठि ग्रथि निरुआरा॥
> छोरन ग्रथि पाव जौ सोई। तौ यह जीव कृतारथ होई॥
> छोरत ग्रथि जानि खगराया। बिघ्न अनेक करै तब माया॥
> रिद्धि सिद्धि प्रेरै बहु भाई। बुद्धिहि लोभ देखावहि आई॥
> कल बल छल करि जाहि समीपा। अचलबात बुझावहि दीपा॥[2]

यहाँ पर कवि ने अमूर्त बुद्धि, माया और ऋद्धिसिद्धियो के समूर्तन-विधान द्वारा समाधि के विघ्नो का चित्ताकर्षक निरूपण किया है। इतने जटिल विषय का इससे अधिक ललित शैली मे उपस्थापन ढूंढने पर भी शायद ही कही मिले।

काव्य शब्दमय चित्र है। 'कथाप्रबध बिचित्र बनाई' मे चित्रमयता का भाव भी निहित है। परतु, वह चित्र तुलसी का साध्य न होकर साधन है। उसका लक्ष्य है रसानुभूति कराना, और उसके साथ ही भावक की चित्तवृत्तियो का उदात्तीकरण। रूपको और उत्प्रेक्षाओ की योजना मे उनकी कला का यह पक्ष विशिष्टतया उभर कर सामने आया है। राम के दरबार मे प्रेषित 'विनयपत्रिका' और चार घाटो तथा सात सोपानो वाले मानसरोवर के रूप मे 'रामचरितमानस' की विराट् कल्पना मे भी उनकी चित्रविधायिनी प्रतिभा का उत्कृष्ट निदर्शन मिलता है।

छंद-योजना

तुलसी ने अपने युग मे प्रचलित सभी प्रमुख छद-शैलियो का उपयोग किया है।[3] उनके पाँच स्थूल वर्ग बनाये जा सकते हैं दोहा-चौपाई, गीत, कवित्त-सवैया, सोहर और बरवै। अवधी के प्रेमाख्यानक-काव्यो मे दोहा-चौपाई-शैली खूब मँज चुकी थी। तुलसी

१. कवितावली, ७।४४
२. रामचरितमानस, ७।११८।१-४
३. छद-शैली की दृष्टि से उनकी रचनाओं का चक्र पृ० १८७ पर दिया जा चुका है।

ने अपने महाकाव्य 'रामचरितमानस' के लिए उसको चुना। अवधी-भाषा और प्रबंध-रचना की दृष्टि से वह सर्वाधिक उपयुक्त थी। परतु उन्होने 'रामचरितमानस' को 'पदमावत' की भाँति दोहा-चौपाई तक ही सीमित नही रखा, स्थान-स्थान पर सोरठा और हरिगीतिका[1] छदो का भी निवेश किया। ये चारो मात्रिक वृत्त हैं। इनके अतिरिक्त चार अन्य मात्रिक छदो का भी प्रयोग हुआ है डिल्ला, चौपैया, तोमर तथा त्रिभगी।[2] 'रामचरितमानस' मे प्रयुक्त वर्णिक वृत्त हैं अनुष्टुभ्, इद्रवज्रा, तोटक, नगस्वरूपिणी, भुजगप्रयात, मालिनी, रथोद्धता, वशस्थ, वसततिलका, शार्दूलविक्रीडित और स्रग्धरा।[3] तुलसी ने चौपाई, दोहा और सोरठा से इतर वृत्तो को 'छद' कहा है।[4] सस्कृत के अनुष्टुभ् आदि वर्णिक वृत्तो का प्रयोग प्राय श्लोको की रचना और स्तुतियो मे किया गया है। 'रामाज्ञाप्रश्न' मे केवल दोहे, 'दोहावली' मे दोहे-सोरठे और 'वैराग्यसदीपनी' मे दोहे-सोरठे-चौपाइयाँ हैं।

'कृष्णगीतावली', 'गीतावली' और विनयपत्रिका' गीतिकाव्य हैं। उनमे अनेक प्रकार के छदो की योजना की गयी है। उनकी विशेषता छदो के विनियोग मे नहीं, प्रगीत-तत्त्वो के निर्वाह मे है। उन तत्त्वो पर अगले अध्याय मे विचार किया जाएगा। 'कवितावली' मे पाँच छदो का नियोजन किया गया है सवैया, रूपघनाक्षरी, मनहरण, छप्पय और झूलना। मुक्तक-काव्य-रचना के लिए इन छदो का चुनाव परपरानुरूप है। 'रामललानहछू', 'जानकीमगल' और 'पार्वतीमगल' मगलकाव्य एव लोकगीत हैं। अतएव वे लोक-प्रचलित सोहर-शैली मे लिखे गये हैं। उनमे प्रयुक्त मूल छद हसगति[5] है। 'नहछू' के पदात मे 'हो' जोडकर उसे गेय सोहर का स्पष्ट रूप दे दिया गया है। दोनो मगलो मे हरिगीतिका छद का भी प्रयोग है। 'वरवैरामायण' के नाम से ही प्रकट है कि वह वरवै छदो मे रचित 'रामायण' है। इस प्रकार तुलसी के काव्य मे छदो की विविधता पायी जाती है।

नानाविध वृत्तो का प्रयोग और पिंगलशास्त्रीय जकडबदी महाकवित्व का प्रमाण नही है। यदि कवित्व का तारतम्य छदो की सख्या एव मात्राओ की नाप-जोख पर निर्भर होता तो 'रामचद्रचद्रिका' का पद 'रामचरितमानस' से उच्चतर होता और पट्टी पर मात्राओ का हिसाब लगाकर पद्य लिखने वाले तुक्कड महाकवियो की पक्ति मे प्रतिष्ठित होते। मानस-रूपक के प्रकरण मे तुलसी ने राम सीता के यश को जल एव छदो को कमल

१ उदाहरणार्थ रामचरितमानस, १।१०।छद

२ क्रमश उदाहरण—रामचरितमानस, ६।११५।छद, १।१८२।छद, ३।१३।छद, १।१९२।छद

३. क्रमश उदाहरण—रामचरितमानस, १।१।श्लोक १, २।१।श्लोक ३, ६।१११।१-१२, ७।१२३। श्लोक १, ७।१०८।१-८, ५।१।श्लोक ३, ७।१।श्लोक २-३, ३।१।श्लोक २, १।१।श्लोक ७, १।१।श्लोक ६, ७।१।श्लोक १

४. पुरइनि सघन चारु चौपाई। जुगुति मजु मनि सीप सुहाई ॥
छंद सोरठा सु दर दोहा। सोइ बहुरग कमल कुल सोहा ॥
—रामचरितमानस, १।३७।२-३

५ ग्यारह और नौ मात्राओं पर विराम, पदात में गुरु-लघु का नियम नहीं
पिंगल प्रकाश, पृ० ७१

और पुरइन कहा है।[1] उसका तात्पर्य यह है कि छद प्रतिपाद्य विषय की अभिव्यजना को मनोहर बनाने के साधन हैं। छदो की रमणीयता मुख्यतया तीन बातो पर आश्रित है भावानुकूलता, लय और अत्यानुप्रास।

भावानुकूलता प्रत्येक छद की अपनी प्रकृति है। सभी छद सभी भावो के अनुकूल नही है। उदाहरण के लिए छप्पय छद करुणा आदि द्रुतिप्रधान भावो के प्रतिकूल पडता है, किंतु उत्साह आदि दीप्तिप्रधान भावो और स्तुतियो के अनुकूल है। इसी दृष्टि से तुलसी ने 'कवितावली' मे उसका सनिवेश किया है।[2] सवैये मे दोनो प्रकार के भावो की सशक्त अभिव्यक्ति हो सकती है, किंतु कोमल भावो की व्यजना मे वह अधिक समर्थ है। इसके विपरीत घनाक्षरी कठोर भावो के अधिक अनुकूल है। तदनुसार 'कवितावली' के बाल-वर्णन एव राम-वन-गमन के प्रसगो मे प्राय सवैया छद का और लका-दहन तथा युद्ध-वर्णन मे अधिकतर घनाक्षरी का प्रयोग किया गया है। 'नहछू' आदि निबधो मे सोहर-शैली अपनायी गयी है, क्योकि सोहर (अथवा हसगति) मगल-गीत की माधुर्य-व्यजना के विशेप उपयुक्त है।

लय लय के प्रति आकर्पण मनुष्य की स्वाभाविक प्रवृत्ति है। लय ही छद का प्राणतत्त्व है। उसमे भावक के मन को रमाने की अद्भुत शक्ति है। यही कारण है कि मध्ययुगीन कवियो ने छद को कविता का आवश्यक धर्म मान लिया था। लय की अविच्छिन्न धारा तुलसी की रचनाओ की सहज विशेपता है। कही से भी उदाहरण लिये जा सकते है[3]

१ बतिया क सुघरि मलिनियाँ सुदर गातहि हो।
  कनक रतनमनि मौर लिहे मुसुकातहि हो॥
२ माँगी नाव न केवटु आना। कहइ तुम्हार मरमु मैं जाना॥
  चरन कमल रज कहुँ सबु कहई। मानुषकरनि मूरि कछु अहई॥
३ निगमागम ग्यान पुरान पढ़ै तपसानल मे जुगपुज जरैं॥
  मन सो पन रोपि कहै तुलसी रघुनाथ बिना दुख कौन हरैं॥

अत्यानुप्रास: अत्यानुप्रास मे वर्ण-साम्य और लय दोनो की समन्वित रमणीयता पायी जाती है। सस्कृत मे तुक को गौरव नही दिया गया था। तुलसी के युग मे वह 'भापा'-कविता का अनिवार्य गुण समझा जाने लगा था। तुलसी ने अत्यानुप्रास के सौष्ठव का पूरा ध्यान रखा है। उनका सारा साहित्य ही उदाहरण है।

छदो का विधान करते समय तुलसी चमत्कार के चक्कर मे नही फँसे हैं। लबे अत्यानुप्रास और पग-पग पर छद बदलने की प्रवृत्ति उनमे नही पायी जाती। उन्होंने छदो के नियम-निर्वाह की वेदी पर भावो की बलि नही दी है। चौपाइयो के पदात मे ह्रस्व स्वर को प्राय दीर्घ कर दिया गया है। यह कवियो की सामान्य प्रवृत्ति है। 'विनय-

---

१. रामचरितमानस, १।३७।२-३
२ कवितावली, १।११, ६।४७, ७।११०-१७, १४६-५३, हनुमानबाहुक, १-७
३ रामललानहछू, ७, रामचरितमानस, २।१००।२, कवितावली, ७।५५

पत्रिका' मे 'तुलसीदास' के बदले 'तुलसिदास' का अनेकश प्रयोग कोई दोष नही है। ए, ऐ, ओ और औ का ह्रस्व-उच्चारण विधेय है, लोक-शास्त्र-समर्थित है।

इतने विशाल साहित्य मे कतिपय त्रुटियो का होना अनिवार्य है। फिर भी उन्होने शब्दो की तोड-मरोड बहुत कम की है। छद के आग्रहवश रीतिमारिषी (रीतिम् + आर्षी, ऋषियो की रीति), चारिखो (चारि को, चार का), चुवा (चौवा, चौपाया) आदि का प्रयोग चिन्त्य है।[1] ऐसे प्रयोगो मे भी अधिक दुरूहता नही है। कही-कही गति, यति और तुक की त्रुटि भी दृष्टिगोचर होती है, क्रमश उदाहरण है[2]

१ परमसक्ति समेत अवतरिहीं।
२ अगदादि कपि मुरुछित करि समेत सुग्रीव।
३ मुनि जेहि ध्यान न पावहिं नेति नेति कह वेद।
कृपासिंधु सोइ कपिन्ह सन करत अनेक विनोद॥

इस प्रकार के व्यतिक्रम का कारण यह है कि कवि ने साधन-छद की अपेक्षा साध्य-भाव को अधिक महत्त्व दिया है। यदि छद को क्षति पहुँचती है तो पहुँचने दो, भाव-व्यजना अक्षत रहनी चाहिए। सर्वथा निर्दोष काव्य-ग्रथ काल्पनिक वस्तु है। कुछेक दोषो के होते हुए भी काव्योचित छद-विधान पर जैसा अधिकार तुलसी का दिखायी देता है वैसा किसी अन्य कवि का नही।

अन्य युक्तियाँ

कला-पक्ष के जिन विविध अगो का विवेचन किया गया है वे सभी काव्य-रचना की युक्तियाँ हैं। उनके अतिरिक्त भी कुछ युक्तियो का उपयोग करके तुलसी ने अपने काव्य को सुसवेद्य बनाया है। वे युक्तियाँ हैं: प्रबध-कल्पना, सवाद-योजना, व्यास-समास-शैली, समतुल्य-विधान और शब्दार्थ-ग्रहण। प्रबध-कल्पना का सबध केवल 'रामचरितमानस' मे है। उस पर आगे विचार किया जाएगा।

सवाद-योजना सवाद नाटकीय तत्त्व है। काव्य मे नाटकीय तत्त्वो का अभिनिवेश उसे हृदयग्राही बनाने की प्रभावशाली युक्ति है। तुलसी ने 'रामचरितमानस' की सपूर्ण कथा तीन परपरा-प्रसिद्ध वक्ता-श्रोताओ के माध्यम से प्रस्तुत की है शिव-पार्वती, याज्ञवल्क्य-भरद्वाज और काकभुशुडि-गरुड। वे क्रमश देव, मानव और तिर्यक् वर्ग के प्राणी हैं। इस त्रिगुण सवाद की योजना कथा को आप्त, कुतूहलवर्धक और रोचक बनाने के लिए की गयी है। सवाद के भीतर सवाद का विधान कलात्मक ढग से किया गया है। भरद्वाज ने याज्ञवल्क्य से पूछा

एक राम अवधेसकुमारा। तिन्ह कर चरित विदित ससारा॥
नारि बिरह दुखु लहेउ अपारा। भएउ रोष रन रावन मारा॥

---

१. लोक लखि बोलिये पुनीत रीतिमारषी।—कवितावली, १।१५
दूजो को कहैया औ सुनैया चष चारिखो।—कवितावली, १।१६
चारु चुवा चहुँ ओर चलीं लपटैं झपटैं सो तमीचर तौंकी।—कवितावली, ७।१४३

२. रामचरितमानस, १।१८७।३, ६।६५, ६।११७

प्रभु सोइ राम कि अपर कोउ जाहि जपत त्रिपुरारि ।[1]

याज्ञवल्क्य ने कथा को आप्तवचन का रूप देते हुए कहा

ऐसेइ ससय कीन्ह भवानी । महादेव तव कहा बखानी ।।
कहौं सो मति अनुहारि अव उमा सभु सवाद ।[2]

शिव ने पार्वती के सशय[3] के समाधान मे रामकथा का विशद वर्णन किया । सशय-ग्रस्त गरुड ने काकभुशुडि से रामकथा सुनी ।[4] । तुलसी ने इन सवादो के जटिल पूर्वापर-सवध का उल्लेख किया है [5]

१ रचि महेस निज मानस राखा । पाइ सुसमउ सिवा सन भाखा ।।
२ सभु कीन्ह यह चरित सुहावा । बहुरि कृपा करि उमहि सुनावा ।।
सोइ सिव काकभुसुडिहि दीन्हा । रामभगति अधिकारी चीन्हा ।।
३ उमा कहेउँ सव कथा सुहाई । जो भसुडि खगपतिहि सुनाई ।।
४ तेहि सन जागबलिक पुनि पावा । तिन्ह पुनि भरद्वाज प्रति गावा ।।
५. मैं पुनि निज गुर सन सुनी कथा सो सूकरखेत ।
६ जागवलिक जो कथा सुहाई । भरद्वाज मुनिवरहि सुनाई ।।
कहिहौं सोई सवाद वखानी । सुनहु सकल सज्जन सुखु मानी ।।

तात्पर्य यह है कि रामकथा या 'रामचरितमानस' के मूल रचयिता और वक्ता शिव हैं। वही कथा उन्होने काकभुशुडि को, और काकभुशुडि ने गरुड को सुनायी । पुन शिव ने पार्वती को और काकभुशुडि ने याज्ञवल्क्य को वह कथा सुनायी । गरुड और पार्वती ने किसी को कथा नही सुनायी । इसलिए वह परपरा आगे नही वढी । केवल याज्ञवल्क्य की परपरा चलती रही । उन्होने वह कथा भरद्वाज को सुनायी । भरद्वाज ने अपने शिष्यो को सुनायी होगी, और इस क्रम से तुलसी के गुरु ने सुनी होगी । तुलसी ने वह कथा अपने गुरु से सुनी ।

यह परपरागत कथा एक है । बहुत-से वक्ता-श्रोता हैं । सवकी योजना असभव थी । शिव-काकभुशुडि और भुशुडि-याज्ञवल्क्य के सवादो को भी अनपेक्षित समझ कर तुलसी ने छोड दिया । उन्होने केवल तीन सवाद चुने और उनके द्वारा रामकथा का निरूपण किया । यह त्रिविध-सवाद-योजना पाठक के मन मे कथा के प्रति श्रद्धा, उत्सुकता सावधानता और रुचि उत्पन्न करती है ।

तुलसी की सवाद-कला का लालित्य रामकथा के विभिन्न पात्रो के कथोपकथन मे द्रष्टव्य है । इस दृष्टि से परशुराम-लक्ष्मण, मथरा-कैकेयी, दशरथ-कैकेयी, राम-कौशल्या-सीता, चित्रकूट-सभा, अगद-रावण आदि के सवाद विशेप हृदयस्पर्शी हैं ।[6]

---

१. रामचरितमानस, १।४६
२. रामचरितमानस, १।४७
३ रामचरितमानस, १।१०८।३-१।१११।२
४. रामचरितमानस, ७।५८।२-७।६८
५ रामचरितमानस, १।३५।५, १।३०।२, ७।५२।३, १।३०।२, १।३०, १।३०।१
६ रामचरितमानस, १।२७१।२, १।२८०।४, कवितावली, १।१८-२०, रा० २।१३।३-२।२१,

कलात्मक सवाद के गुण हैं प्रत्युत्पन्नमतित्व, स्वाभाविकता, सजीवता, गतिशीलता, सक्षिप्तता, भाव-प्रवणता, नाटकीयता, वचन-विदग्धता युक्ति-सगति और शिष्टता। तुलसी के सवादो मे इन गुणो की अभीष्ट निदर्शना हुई है[1]

१ कौसिक सुनहु मद येहु बालकु। कुटिल कालवस निज कुल घालक॥
तुम्ह हटकहु जौ चहहु उबारा। कहि प्रतापु बलु रोषु हमारा॥
लषन कहेउ मुनि सुजस तुम्हारा। तुम्हहि अछत को बरनै पारा॥

२ बहै न हाथ दहै रिस छाती। भा कुठार कुठित नृपघाती॥
भएउ बाम बिधि फिरेउ सुभाऊ। मोरे हृदयँ कृपा कसि काऊ॥
आजु दया दुखु दुसह सहावा। सुनि सौमित्रि बिहसि सिरु नावा॥
जौ पै कृपाँ जरहिं मुनि गाता। क्रोधु भएँ तनु राख बिधाता॥

३ कह दसकठ कवन तैं बदर। मैं रघुबीर दूत दसकधर॥
मम जनकहि तोहि रही मिताई। तव हित कारन आएउँ भाई॥
अब कहु कुसल बालि कहँ अहई। बिहँसि बचन तब अगद कहई॥
दिन दस गए बालि पहँ जाई। बूझेउ कुसल सखा उर लाई॥

यहाँ पर एक बात विचारणीय है। परशुराम, लक्ष्मण, अगद और रावण ने शिष्टाचार को ताक पर रख दिया है। तथापि उनके कथोपकथन मे परिस्थिति और पात्र का औचित्य है। क्रोध के वातावरण मे सयम की आशा व्यर्थ है। परशुराम-लक्ष्मण की उग्रता उनके चरित्रानुरूप है। इसके अतिरिक्त, उनकी घोर उग्रता के प्रदर्शन द्वारा अहकारी नरेशों को आतकित करना भी तुलसी का उद्देश्य है। अगद वानर हैं, रावण राक्षस है. जाति-स्वभाव की अभिव्यक्ति गुण है, दोष नही। शिष्टता का प्रकृष्टतम रूप चित्रकूट की सभा मे देखा जा सकता है। सारा-का-सारा प्रसग उद्धरण के योग्य है। राम अपने वक्तव्य का उपसहार करते हुए भरत से बोले

तात तुम्हहि मै जानउँ नीकें। करउँ काह असमजसु जी कें॥
राखेउ रायँ सत्य मोहि त्यागी। तनु परिहरेउ पेमपनु लागी॥
तासु बचन मेटत मन सोचू। तेहि तें अधिक तुम्हार सँकोचू॥
तापर गुर मोहि आयेसु दीन्हा। अवसि जो कहहु चहउँ सोइ कीन्हा॥
मनु प्रसन्न करि सकुच तजि कहहु करउँ सोइ आजु।[2]

राम का यह कथन लाजवाब है।[3]यदि आप आप भरत की स्थिति मे होते तो इसका क्या उत्तर देते ? तुलसी की प्रतिभा का प्रभाव देखिए। उनके भरत का भी वैसा ही लाजवाब

रामचरितमानस, २।२५।४-२।३६।४, रा० २।५२।३-२।६६।४, गीतावली, २।२-२।६, रा० २।२५३-२।२६६, गी० २।७०-२।७८, रा० ६।२०।२-६।३५।२

१ रामचरितमानस, १।२७४।१-३, १।२८०।१-३, ६।२०।१, ६।२१।४

२ रामचरितमानम, २।२६४

३. स्मरणीय है कि पहले भी वे इस तरह की लाजवाब बात कह चुके हैं .
प्रथम जो आयेसु मो कहँ होई। माथे मानि करउँ सिख सोई॥
पुनि जेहि कहँ जस कहब गोसाईं। सो सब भाँति घटिहि सेवकाई॥
—रामचरिसतमान, २।२५८।२-३

उत्तर है। वे भी अपने वक्तव्य के उपसहार मे कहते है

सानुज पठइअ मोहि बन कीजिअ अवध सनाथ।
नतरु फेरिअहिं बधु दोउ नाथ चलउँ मैं साथ।।
नतरु जाहिं बन तीनिउ भाई। बहुरिअ सीय सहित रघुराई।।
जेहि बिधि प्रभु प्रसन्न मन होई। करुनासागर कीजिअ सोई।।
प्रभु प्रसन्न मन सकुच तजि जो जेहि आयेसु देब।
सो सिर धरि धरि करिहि सब मिटिहि अनट अवरेब।।[1]

भरत ने तीन विकल्प सामने रख दिये हैं। राम को निकलने की गुजाइश नही है। राम ने अतिम निर्णय का भार भरत पर डाल दिया था, लेकिन दो शर्तें लगा दी थी प्रसन्न मन की और सकोच-त्याग की। 'प्रसन्न मन सकुच तजि' पर ध्यान दीजिए। भरत ने राम के शब्दो को पकड कर उन्ही पर लागू कर दिया, निर्णय का दायित्व उनको ही ओढा दिया। अब राम क्या करें, क्या कहे ? भाव-सिक्त वाग्वैदग्ध्य की मर्यादा इसके आगे कहाँ जाएगी!

प्रश्न यह था कि इस सवाद का उपसहार कैसे किया जाए। तुलसी ने बडे कला-नैपुण्य के साथ विवाद को समेटते हुए राम से कहलवाया है

बाँटी बिपति सबहिं मोहि भाई। तुम्हहि अवधि भरि बड़ि कठिनाई।।
जानि तुम्हहि मृदु कहउँ कठोरा। कुसमयँ तात न अनुचित मोरा।।
होहिं कुठायँ सुबधु सहाये। ओडिअहि हाथ असनिहुँ के घाये।।
सेवक कर पद नयन से मुख सो साहिबु होइ।
तुलसी प्रीति कि रीति सुनि सुकबि सराहहिं सोइ।।[2]

इस क्रम मे राम की इस सटीक उक्ति से भरत निरुत्तर हो जाते हैं।[3] वे अपने को राम का एकनिष्ठ सेवक मानते हैं, अत राम का आदेश-पालन उनका परम कर्तव्य है। राम ने आदेश भी अतिशय स्नेह, शील-सकोच, विनय, शिष्टता और विश्वास के साथ दिया है।

व्यास-समास-शैली : तुलसी का लक्ष्य रामकथा और रामभक्ति का प्रतिपादन है।[4] 'रामचरितमानस', 'गीतावली', 'कवितावली' और 'रामाज्ञाप्रश्न' मे रामचरित का विस्तृत वर्णन है, 'बरवैरामायण' मे सक्षिप्त। जनकपुर, वन-गमन और युद्ध के प्रसग काव्यदृष्टि से अधिक महत्त्वपूर्ण होने के कारण विस्तारपूर्वक वर्णित हैं। ताडका, शूर्पणखा, वालि आदि के प्रसग गौण होने के कारण सक्षेप मे प्रस्तुत किये गये है। तुलसी मे चरित-

---

१ रामचरितमानस, २।२६८-२।२६९

२ रामचरितमानस, २।३०६

३ सिथिल समाजु सनेह समाधी। देखि दसा चुप सारद साधी।।
—रामचरितमानस, २।३०७।१

४ जेहि महुँ आदि मध्य अवसाना। प्रभु प्रतिपाद्य रामु भगवाना।।
—रामचरितमानस, ७।६१।३

एहि महँ रुचिर सप्त सोपाना। रघुपतिभगति केर पथाना।।
—वही, ७।१२९।२

सारसंग्रह की प्रवृत्ति भी पायी जाती है। 'रामचरितमानस' और 'गीतावली' में राम-कथा का विस्तृत वर्णन कर लेने के बाद उन्होंने समास-शैली में भी उसका सारसंग्रह किया है।[1] इसी प्रकार भक्ति-दर्शन का निरूपण करते हुए कहीं व्यास-शैली अपनायी गयी है[2], कहीं समास-शैली[3]। शैली के इस वैविध्य ने तुलसी-साहित्य को भिन्न रुचि वालों के लिए समान रूप से ग्राह्य बना दिया है। काव्य-रसिकों को बालकाण्ड का उत्तरार्ध, अयोध्याकाण्ड, सुंदरकाण्ड या लंकाकाण्ड पढ़कर अधिक आनंदोपलब्धि होती है तो भक्तजन उत्तरकाण्ड अथवा 'विनयपत्रिका' के पारायण में रसात्रेक की अनुभूति करते हैं।

समतुल्य-विधान : भिन्न पात्रों या वस्तुओं में रूप, गुण, भाव अथवा क्रिया के समतुल्य बिंब-विधान में अनेक स्थलों पर कलात्मक रमणीयता मिलती है। राम और सीता के वर्णन की समरूपता देखिए[4]

राम	सीता
१. सिय मुख ससि भए नयन चकोरा।	सरद ससिहि जनु चितव चकोरी।
२. भए बिलोचन चारु अचंचल।	थके नयन रघुपति छबि देखें।
३. सहज पुनीत मोर मनु छोभा।	सुमिरि पिता पनु मनु अति छोभा।
४ फरकहिं सुभद अंग सुनु भ्राता।	मंगलमूल बाम अंग फरकन लगे।
५. चारु चित्त भीतीं लिखि लीन्हीं।	चली राखि उर स्यामल मूरति।
६. सुफल मनोरथ होहिं तुम्हारे।	पूजिहि मनकामना तुम्हारी।
७ कोटि काम उपमा लघु सोऊ।	उपमा सकल मोहि लघु लागीं।
८ प्रभुहि देखि सब नृप हिअँ हारे।	भए मोहबस सब नरनाहा।

उपर्युक्त पंक्तियों में राम और सीता के समतुल्य रूप, भाव, अनुभाव और प्रभाव का चित्रण प्राय समान शब्दावली में किया गया है। नायक-नायिका की यह समतोल जोडी किस सहृदय के हृदय को अनुरंजित नहीं करेगी! भक्ति के प्रसंगों में भी समाना-कन का प्रकर्ष ईक्षणीय है। भक्त और भगवान् का रागात्मक संबंध एकांगी नहीं है। राम ने कहा था अस सज्जन मम उर बस कैसें। लोभी हृदयँ बसइ धनु जैसें, तुलसी भी उसी स्वर में स्वर मिलाकर कहते हैं लोभिहि जिमि प्रिय दाम। तिमि रघुनाथ निरंतर प्रिय लागहु मोहि राम।[5] वैषम्य पर आश्रित समत्व में रस चमत्कार नहीं है। दास-तुलसी और स्वामी-राम में विचित्र बराबरी है[6]

१. मैं अपराधसिंधु करुनाकर जानत अंतरजामी।

---

१ रामचरितमानस, ७।६४।४-७।६८।४, गीतावली, ७।३८, सात्विक विनयपत्रिका, ४३, ५०

२ जैसे रामचरितमानस, ७।११५।७-७।१२२, विनयपत्रिका, १३६, २०३

३ जैसे रामचरितमानस, ७।१०।२, ७।१३, कवितावली, ७।२७, ७।८७

४ रामचरितमानस, १।२३०।२, १।२३२।३ वही, १।२३१।२, १।२३४।२ १।२२६।२, १।२३६, १।२३५।२, १।२३५।१, १।२३७।२, १।२३६।४, १।२४३।०, १।२४७।१, १।२४५।१, १।२४८।४

५. रामचरितमानस, ५।४८।४, ७।१३०

६. विनयपत्रिका, ११७।५, १६०।१, ७६।१, रामचरितमानस, ७।१३०, दोहावली, १७६

२. मैं पतित तुम पतितपावन दोउ बानक बने।

३. हौं प्रसिद्ध पातकी तू पापपुंजहारी।

४. मो सम दीन न दीनहित तुम्ह समान रघुबीर।
अस बिचारि रघुबसमनि हरहु बिषम भवभीर॥

तुलसी अपराध-सिंधु हैं तो राम करुणा-सिंधु हैं। तुलसी जिस कोटि के पतित हैं, राम उसी कोटि के पतितपावन हैं। तुलसी दीनो मे अप्रतिम हैं और राम दीनबंधुओं मे। दोनो की इस अद्वितीयता के आधार पर तुलसी राम-कृपा के अधिकारी हैं, और राम उन पर कृपा करने को बाध्य हैं।

सज्जन और दुर्जन विरुद्धधर्मा हैं, फिर भी उनमे समतुल्यता है

बंदौं संत असज्जन चरना। दुखप्रद उभय बीच कछु बरना॥
बिछुरत एक प्रान हरि लेईं। मिलत एक दारुन दुख देईं॥[1]

स्वाभाविक गुणो की भिन्नता के बावजूद दोनो दुःखदायक हैं, एक बिछुडते समय और दूसरा मिलते समय। वैधर्म्य के संदर्भ मे साधर्म्य की यह व्यंजना चमत्कारपूर्ण है।

वीर-रस के वर्णन मे भी तुलसी का समतुल्य-विधान अवेक्षणीय है[2]

१ गहि मंदर बंदर भालु चले सो मनो उनये घन सावन के।
तुलसी उत झुंड प्रचंड झुके झपटैं भट जे सुरदावन के।

२. सर तोमर सेलसमूह पँवारत मारत बीर निसाचर के।
इत तें तरु ताल तमाल चले खर खंड प्रचंड महीधर के।

राम और रावण की सेनाओ तथा उनके शस्त्रास्त्रो मे रूप का सादृश्य नही है। परंतु, उनके समरोचित उत्साह और आक्रमण-प्रत्याक्रमण मे आकर्षक साधर्म्य है। उस साधर्म्य के आधार पर कवि ने समतुल्य युद्ध-व्यापारो का भावोत्कर्षक दृश्य-विधान किया है।

शब्दार्थ-ग्रहण 'रामचरितमानस' की प्रस्तावना मे तुलसी की प्रतिज्ञा है

नानापुराणनिगमागमसम्मतं यद्रामायणे निगदितं क्वचिदन्यतोऽपि।
स्वान्तःसुखाय तुलसी रघुनाथगाथाभाषानिबंधमतिमंजुलमातनोति॥[3]

तुलसी ने पूर्वरचित वाङ्मय की सुमनावली से मकरंद-संचय करके मानस-मधुकोश का निर्माण किया है।[4] मानसेतर कृतियो के प्रणयन मे भी उन्होने अपनी ग्राहिका बुद्धि का पर्याप्त परिचय दिया है।[5] विशेषता यह है कि उन्होने स्रोत-ग्रंथो से यथेष्ट सामग्री लेकर उसे अपनी प्रतिभा के सहारे इस कलात्मक रीति से सजाया है कि कही भी जोड़ या पैवंद नही मालूम पडता, कृत्रिमता का नाम नहीं है, और सुषमा का स्वाभाविक रूप उद्भा-

१ रामचरितमानस, १।५।२

२. कवितावली, ६।३४, ३५

३. रामचरितमानस, १।१।श्लोक ७

४ देखिए - रामचरितमानस के साहित्यिक स्रोत, रामचरितमानस पर पौराणिक प्रभाव, रामचरितमानस का तुलनात्मक अध्ययन, वाल्मीकि-रामायण और रामचरितमानस का तुलनात्मक अध्ययन, वाल्मीकि और तुलसी साहित्यिक मूल्यांकन, अध्यात्मरामायण का रामचरितमानस पर प्रभाव।

५. देखिए - 'विनयपत्रिका' आदि पर सिद्धांत-तिलक

...के उदाहरणो के अवलोकन से उनकी अनुहरण-कला के कौशल की ... सकती है।

यह ठीक है कि बहुत-से स्थलो पर तुलसी ने दूसरो की उक्तियो की (कहीं-कहीं ...काकास्थाने मक्षिका के रूप मे) उद्धरणी की है और उनमें कोई काव्य-सौंदर्य नही है, जैसे[1]

१ i मूक करोति वाचाल पगु लघयते गिरिम् ।
 ii मूक होइ वाचाल पगु चढ़ै गिरिवर गहन ।
२ i उत्पत्तिस्थितिसहारकारिणी सर्वदेहिनाम् ।
 ii उद्भवस्थितिसहारकारिणीं क्लेशहारिणीं ।
३ i चन्द्रहास हर मे परिताप रामचन्द्रविरहानलजातम् ।
 ii चद्रहास हरु मम परिताप। रघुपति बिरह अनल सजात ।।
४ i. सुखस्य दु खस्य न कोऽपि दाता ।
 ii काहु न कोउ सुख दुख कर दाता। आदि ।

परतु, इस प्रकार की अधिकाश पक्तियाँ काव्य-सौंदर्य की दृष्टि से लिखी ही नहीं गयी हैं। इन स्थलो पर तुलसी प्राय मोक्षधर्म से अनुप्राणित हैं। शास्त्र ग्रथो की शब्दावली मे किया गया सैद्धातिक निरूपण अधिक प्रभावशाली होता है। 'पुराणनिगमागम' की दुहाई का मुख्य प्रयोजन यही है। दूसरी बात यह है कि अन्य कृतियो से गृहीत ये वाक्य 'रामचरितमानस' के रचना-क्रम मे इस निपुणता से बिठा दिये गये हैं कि उनका विन्यास 'मानस' के प्रवाह मे खटकता नहीं है।

तुलसी की माधुकरी वृत्ति का प्रकर्ष कवित्वमय स्थलो पर दर्शनीय है। जिन प्रसगो के वर्णन मे उनका कवि-हृदय विशेष रूप से रमा है उनमे प्राचीन उक्तियो से अर्थ-ग्रहण करते हुए उन्होंने नवीन चमत्कार का सनिवेश किया है। काव्य-दृष्टि से जनकपुर और वन-यात्रा के प्रसग समूचे तुलसी-साहित्य मे परमोत्कृष्ट हैं। हनुमन्नाटक मे पथिक-वधुओ के प्रश्न और सीता के उत्तर का चित्राकन किया गया था

पथि पथिकवधूभि सादर पृच्छमाना कुवलयदलनील कोऽयमार्ये तवेति ।
स्मितविकसितगण्ड व्रीडविभ्रान्तनेत्र मुखमवनमयन्ती स्पष्टमाचष्ट सीता ।।[2]

यह चित्र सुदर है। इसके भाव पर आश्रित तुलसी का चित्राकन सुदरतर है

सीस जटा उर बाहु बिसाल बिलोचन लाल तिरीछी सी भौंहैं।
तून सरासन बान धरें तुलसी बन मारग मे सुठि सोहैं।
सादर बारहि बार सुभायँ चितै तुम्ह त्यो हमरो मन मोहैं।
पूँछति ग्रामबधू सिय सो कहौ साँवरे से सखि रावरे को हैं ।।
सुनि सुदर बैन सुधारस साने सयानी हैं जानकी जानी भली ।

---

१. 'भागवत'-टीका में श्रीधर का मगलाचरण, भविष्यपुराण, १।१।३ - रामचरितमानस, १।१। सोरठा २, रामोत्तरतापिनी उपनिषद, २।३ रा० १।१।श्लोक ५, प्रसन्नराघव, ६।३३ · रा० ५।१०।२, अध्यात्मरामायण, २।६।६, रा० २।९२।२

२ हनुमन्नाटक, ३।१६

तिरछे करि नैन दै सन तिन्हैं समुझाइ कछू मुसुकाइ चली।
तुलसी तेहि औसर सोहैं सबै अवलोकति लोचनलाहु अली।
अनुराग तडाग मे भानु उदै बिगसीं मनो मजुल कजकली॥[1]

तुलसी ने आलबन राम के रूप और क्रिया (चितवन) का प्रभावशाली चित्रण किया है जो विभावन-व्यापार मे पूर्णत समर्थ है। पहली एव चौथी पक्ति मे प्रयुक्त 'सो' और 'से' सौदर्यातिशय के व्यजक है। 'सखि' मे आत्मीयता की जो ध्वनि है वह इस मार्मिक प्रश्न के उपयुक्त है। 'आर्ये' सबोधन से वह बात नही बनती। 'सादर' के वाच्य की अपेक्षा 'रावरे' का आदरसूचक व्यग्य अधिक चमत्कारपूर्ण है। 'स्मितविकमितगण्ड स्पष्टमाचष्ट' की अपेक्षा 'समुझाय कछू मुसुकाइ चली' मे शब्द और अर्थ दोनो का अतिशयी लालित्य है। तुलसी ने विभाव और क्रिया के साथ ही प्रभाव और प्रतिक्रिया का भी चित्रण किया है जो भावक के चित्त पर घनीभूत प्रभाव डालने मे अधिक सशक्त है।

एक और उदाहरण लीजिए। राम से सीता हँसी कर रही हैं

पदकमलरजोभिर्मुक्तपाषाणदेहामलभत यदहल्या गौतमो धर्मपत्नीम्।
त्वयि चरति विशीर्णग्रावविन्ध्याद्रिपादे कति कति भवितारस्तापसा दारवन्त॥[2]

इससे अर्थ-ग्रहण करके तुलसी ने निम्नाकित निबधना की है

बिंध्य के बासी उदासी तपोव्रतधारी महा बिनु नारि दुखारे।
गौतमतीय तरो तुलसी सो कथा सुनि भे मुनिवृद सुखारे।
ह्वैहैं सिला सब चंद्रमुखीं परसें पद मजुल कज तिहारे।
कीन्हीं भली रघुनायकजू करुना करि कानन को पगु धारे॥[3]

तुलसी ने मूल अर्थ को प्रकृष्टतर रूप मे प्रस्तुत किया है। दु ख के अनुभव के बाद ही सुख का वास्तविक महत्त्व प्रकट होता है।[4] उदासी और तपस्वी मुनियो का जीवन नारी की अनुपस्थिति मे नितात नीरस और कष्टमय था। अहल्या की कथा सुनते ही उनके मन मे भावी सुख की कल्पना करके उल्लास की लहर दौड गयी। यह प्रसगोद्भावना रमणीय है। 'दार' शब्द मे वह सौंदर्य नही है जो 'चद्रमुखी' मे है। दारा तो भद्दी भी हो सकती है। अनूठी व्यजना इस बात मे है कि चद्रमुखियो का सबध मुनि-वृ द के साथ भी ठीक बैठ जाता है, और रघुनायक के साथ भी। 'रघुनायक' मे 'नायक' अभिप्राय-युक्त है। नायक राम की ओर आकृष्ट चद्रमुखियाँ सीता की सपत्नियाँ बन बैठने की आकाक्षा कर सकती हैं। इस कल्पना मे चमत्कार है।

दूसरो से अर्थ-ग्रहण करने वाले कवि चार प्रकार के होते हैं भ्रामक, चुबक, कर्षक और द्रावक।[5] अन्य-कृत रचना से ज्यो-का-त्यो अर्थ ग्रहण करके मौलिकता का ढोग

---

१ कवितावली, २।२२-२३

२. हनुमन्नाटक, ३।१९

३ कवितावली, २।२८

४ सुख हि दु खान्यनुभूय शोभते घनान्धकारेष्विव दीपदर्शनम्।

५ भ्रामकश्चुम्बक किन्च कर्षको द्रावकश्च स।
स कविर्लौकिकोऽन्यस्तु चिन्तामणिरलौकिक॥—काव्यमीमासा, पृ० ६४

करने वाला कवि भ्रामक है। बहुत-से स्थलों पर प्राचीन साहित्य और तुलसी की उक्तियों मे बिंब-प्रतिबिंब-भाव पाया जाता है, उदाहरणार्थ[1]

१. i ध्रुव कश्चित्सर्वं सकलमपरस्त्वध्रुवमिद
परो ध्रौव्याध्रौव्ये जगति गदति व्यस्तविषये।
ii कोउ कह सत्य झूठ कह कोऊ जुगल प्रबल कोउ मानै।

२ i. बिले बतोरुक्रमविक्रमान् ये न शृण्वत कर्णपुटे नरस्य।
जिह्वासती दार्दुरिकेव सूत न चोपगायत्युरुगायगाथा॥
ii जिन्ह हरिकथा सुनी नहिं काना। श्रवन रंध्र अहि भवन समाना॥
जो नहिं करै राम गुन गाना। जीह सो दादुर जीह समाना॥

३ i. वज्रादपि कठोराणि मृदूनि कुसुमादपि।
ii कुलिसहु चाहि कठोर अति कोमल कुसुमहु चाहि।

तथापि तुलसी भ्रामक कवि नहीं हैं। उन्होंने मौलिकता का दावा न करके प्राचीन ग्रंथों की उत्तमर्णता सच्चाई से स्वीकार की है।

जो कवि दूसरे के भाव को अपनाता तो है किंतु उसका कुछ सस्कार करके अपनी मनोहर वाक्य-रचना द्वारा उसे नवीन शोभा प्रदान करता है वह चुंबक कवि है, यथा[2]

१ i कमठपृष्ठकठोरमिद धनुर्मधुरमूर्तिरसौ रघुनन्दन।
कथमधिज्यमनेन विधीयतामहह तात पणस्तव दारुण॥
ii. अहह तात दारुनि हठ ठानी। समुझत नहिं कछु लाभ न हानी॥
कहँ धनु कुलिसहु चाहि कठोरा। कहँ स्यामल मृदु गात किसोरा॥
विधि केहि भाँति धरौं उर धीरा। सिरस सुमन कन बेधिअ हीरा॥

तुलसी ने पहली पंक्ति के उत्तरार्ध और तीसरी पंक्ति मे नवीन अर्थ का सन्निवेश करके मूल उक्ति को अधिक उत्कृष्ट बना दिया है। कुलिश की कठोरता और किशोर-गात की मृदुता का वैषम्य विशेष हृदयस्पर्शी है।

कर्षक कवि मूल कृति के वाक्यार्थ को कुशलता के साथ किंचित्परिवर्तनपूर्वक अपनी मनोहर रचना मे सन्निविष्ट कर लेता है। जयदेव ने धनुष-यज्ञ के प्रसंग मे बाणासुर की असफलता का चित्रण करते हुए लिखा था

बाणस्य बाहुशिखरैः परिपीड्यमान नेद धनुश्चलति किञ्चिदपीन्दुमौले।
कामातुरस्य वचसामिव सविधानैरभ्यर्थित प्रकृतिचारु मन सतीनाम्॥[4]

तुलसी ने प्रसंग मे थोडा परिवर्तन करके बाण[5] के स्थान पर सहस्रों राजाओं को कामियों

---

१ महिम्नस्तोत्र, ६, विनयपत्रिका, १११।४, भागवतपुराण, २।३।२०, रामचरितमानस, १।११३।२, ३, उत्तररामचरित, २।७, रामचरितमानस, ७।१६

२ रामचरितमानस, १।१।श्लोक ७

३. हनुमन्नाटक, १।१०, रामचरितमानस, १।२५८।१-३

४ प्रसन्नराघव, १।५६

५ रावनु बानु महाभट भारे। देखि सरासन गवहिं सिधारे॥—रामचरितमानस, १।२५०।१

के सदृश उपहासास्पद बनाया है

> भूप सहस दस एकहि बारा। लगे उठावन टरै न टारा ॥
> डगै न संभु सरासन कैसें। कामी बचनु सती मनु जैसें ॥
> सब नृप भए जोग उपहासी। जैसें बिनु बिराग संन्यासी ॥[1]

द्रावक कवि वह है जो किसी अन्य कवि के मूल अर्थ को अपनी प्रतिभा से गला कर अपनी रचना के साँचे मे ढालते हुए उसे इस सफाई से नूतन रूप प्रदान करता है कि सामान्य पाठक को उस अर्थ-ग्रहण का आभास नही होता। कालिदास के दुष्यंत ने शकुंतला को देखकर कहा था

> असंशयं क्षत्रपरिग्रहक्षमा यदार्यमस्यामभिलाषि मे मनः ।
> सतां हि सन्देहपदेषु वस्तुषु प्रमाणमन्तःकरणप्रवृत्तयः ॥[2]

सीता के प्रथम दर्शन पर तुलसी के राम भी लक्ष्मण से कहते हैं

> तात जनकतनया येह सोई। धनुषजग्य जेहि कारन होई ॥
> पूजन गौरि सखीं लै आई। करत प्रकास फिरहिं फुलवाई ॥
> जासु बिलोकि अलौकिक सोभा। सहज पुनीत मोर मनु छोभा ॥
> सो सबु कारनु जान बिधाता। फरकहिं सुभद अंग सुनु भ्राता ॥[3]

रामचरितमानसकार ने मूल भाव का कायाकल्प कर दिया है। उसका प्रत्यभिज्ञान सरल नही है। उपर्युक्त पंक्तियाँ तुलसी की मौलिक कृति प्रतीत होती हैं। उनमे आलंबन और आश्रय के विशद निरूपण तथा व्यंजना-वृत्ति के व्यापक प्रयोग से काव्य-सौंदर्य निखर उठा है।

इस प्रकार तुलसी मे चुंबक, कर्षक और द्रावक कवि की विशेषताएँ पायी जाती हैं। उनकी अगणित उक्तियो मे सुविज्ञ पाठक को पुरातन वाङ्मय के शब्दार्थ का स्पष्ट प्रतिबिंब दिखायी पडता है। उत्तमर्ण ग्रंथो और तुलसी-साहित्य (विशेषतया **रामचरित-मानस**) के घनिष्ठ सादृश्य को देखकर यह निष्कर्ष निकाल लेना नितांत भ्रमपूर्ण होगा कि उनका साहित्य मात्र उधारखाता है। तुलसी की काव्य-कला के सौंदर्य को सही परि-प्रेक्ष्य मे आँकने के लिए तीन बातो का ध्यान रखना आवश्यक है। एक यह कि उनको पूर्ववर्ती प्रतिभाशाली कवियो द्वारा क्षुण्ण काव्य-पथ पर चलना था। उन काव्यकर्ताओ की पैनी और अलौकिक दृष्टि कविता के लोक का कोना-कोना झाँक आयी थी। राम-कथा और भक्तिदर्शन पर अपरिमित साहित्य लिखा जा चुका था। अतएव उस पुरातन वस्तु को लेकर सर्वथा नवीन काव्य-निर्माण असंभव था। दूसरी बात यह कि कोई वाच-स्पति भी अपूर्व पदो और अर्थो की निबंधना नही कर सकता।[4] यदि अन्य कवियो की

---

१ रामचरितमानस, १।२५१।१-२
२ अभिज्ञानशकुन्तल, १।२०
३ रामचरितमानस, १।२३१।१-२
४. देखिए ध्वन्यालोक, ४।१७ पर वृत्ति

छाया से युक्त काव्य-रचना सहृदयों को चमत्कृत करती है तो वह रमणीय है।[1] तुलसी ने पुरातन साहित्य से शब्दार्थ ग्रहण करके भानमती का कुनबा नही जोड़ा है, उन्होने गृहीत वस्तु को अपने काव्य के साँचे मे ढाला है, कवित्वमय प्रसगो मे उसे नवता और उत्कर्ष प्रदान किया है। कवि की मौलिकता का अस्तित्व अभिव्यजन-शैली की नवीनता और रमणीयता मे है, किसी अदृष्ट पदार्थ के अन्वेषण या प्रकाशन मात्र मे नही।

तीसरी और अधिक महत्त्वपूर्ण बात यह है कि तुलसीदास चिंतामणि[2] कवि भी हैं। उनके काव्य मे स्थान-स्थान पर सहृदयो को रस-मग्न कर देने वाली विचित्र कल्पनाओ की मौलिक योजना भी है। बहुवर्णित राम-चरित का नवीकरण अवाछनीय था, इसलिए तुलसी की प्रतिभा प्रसगानुसार अकित खडचित्रो की नवीनता मे अभिव्यक्त हुई है। उदाहरण के लिए, जूठी उपमाओ से आगे बढकर व्यतिरेक, रूपक, उत्प्रेक्षा आदि के सहारे किया गया सीता का अलकृत सौंदर्य-वर्णन अवलोकनीय है

सब उपमा कवि रहे जुठारी। केहि पटतरौ बिदेहकुमारी॥
उपमा सकल मोहि लघु लागीं। प्राकृत नारि अग अनुरागीं॥
सिय बरनिय तेइ उपमा देई। कुकबि कहाइ अजसु को लेई॥
जौं पटतरिअ तीय सम सीया। जग असि जुवति कहाँ कमनीया॥
गिरा मुखर तन अरध भवानी। रति अति दुखित अतनु पति जानी॥
बिष बारुनी बधु प्रिय जेही। कहिअ रमा सम किमि बैदेही॥
जौं छबिसुधा पयोनिधि होई। परम रूपमय कच्छपु सोई॥
सोभा रजु मदरु सिगारू। मथै पानि पकज निज मारू॥
एहि बिधि उपजै लच्छि जब सुदरता सुख मूल।
तदपि सकोच समेत कवि कहहिं सीय समतूल॥[3]

उनकी स्वभावोक्तियो और वक्रोक्तियो मे पग-पग पर नवीनता का रम्य रूप परिलक्षित होता है

१ एकहि बार आस सब पूजी। अब कछु कहब जीभ करि दूजी॥
फोरइ जोगु कपारु अभागा। भलेउ कहत दुख रौरेहि लागा॥
कहहिं झूठि फुरि बात बनाई। ते प्रिय तुम्हहि करुइ मैं माई॥
२ सत्य सराहि कहेउ बर देना। जानेहु लेइहि मागि चबेना॥
३. दुइ कि होहिं एक समय भुआला। हँसब ठठाइ फुलाउब गाला॥
दानि कहाउब अरु कृपनाई। होइ कि खेम कुसल रौताई॥

---

१ यदपि तदपि रम्य यत्र लोकस्य किञ्चित्स्फुरितमिदमितीय बुद्धिरभ्युज्जिहीते।
अनुगतमपि पूर्वच्छायया वस्तु तादृक् सुकविरुपनिबध्नन्निन्द्यता नोपयाति॥
—ध्वन्यालोक, ४।१६

२. चिन्तासम यस्य रसैकसूतिरुदेति चित्राकृतिरर्थसार्थ।
अदृष्टपूर्वो निपुणै पुराणै कवि स चिन्तामणिरद्वितीय॥
—काव्यमीमासा, पृ० ६५

३. रामचरितमानस, १।२३०।४, १।२४७।२-दोहा

४ लोचन चातक जिन्ह करि राखे। रहहिं दरस जलधर अभिलाषे॥
निदरहिं सरित सिंधु सर बारी। रूप बिंदु जल होहिं सुखारी॥
तिन्ह कें हृदयँ सदन सुखदायक। बसहु बंधु सिय सह रघुनायक॥

५. राखिये नीके सुधारि नीच को डारिये मारि
दुहूँ ओर की बिचारि अब न निहोरिहौं।
तुलसी कही है साँची रेख बार बार खाँची
ढील किये नाम महिमा की नाव बोरिहौं॥[1]

साराश यह है कि तुलसी-साहित्य मे सर्वत्र ही काव्य-कला की रमणीयता पायी जाती है—जहाँ उन्होने नवीन काव्यवस्तु की उद्भावना की है वहाँ भी, जहाँ अन्य कवियो की छाया का अनुसरण करते हुए बिंब-विधान किया है वहाँ भी, और जहाँ पुरातन साहित्य से शब्दार्थ-ग्रहण करके प्रतिबिंबकल्प अर्थ-योजना की है वहाँ भी। स्रोत- थो को पढ लेने के बाद भी हम रामचरितमानस को वारबार पढते हैं, और फिर-फिर पढना चाहते है। हर वार नूतनता का स्फुरण होता है। नवता की यह अनुभूति उसकी रमणीयता का महत्तम प्रमाण है

क्षणे क्षणे यन्नवतामुपैति तदेव रूप रमणीयताया।[2]

'हरिऔध' जी की निम्नाकित उक्ति रामचरितमानस के साथ ही उनके अन्य गौरव-ग्रथो की काव्य-कला पर भी खरी उतरती है

बन राम-रसायन की रसिका रसना रसियो की हुई सफला।
अवगाहन 'मानस' मे करके जनमानस का मल सारा टला।
भई भाव ते पावन भूमि भली हुआ भावुक भावुकता का भला।
कविता करके तुलसी न लसे कविता लसी पा तुलसी की कला॥

---

१. रामचरितमानस, २।१६।१-२, २।३०।३, २।३५।३, २।१२८।३-४,
विनयपत्रिका, २५८।४

२. माघ . शिशुपालवध, ४।१७

१० गौरव-ग्रंथ

कवित्व और महिमा की दृष्टि से तुलसीदास की रचनाएँ दो वर्गो मे रखी जा सकती है साधारण और गौरवशाली। 'वैराग्यसंदीपनी', 'रामाज्ञाप्रश्न', 'रामलला-नहछू', 'जानकीमंगल', 'पार्वतीमंगल', 'कृष्णगीतावली','बरवैरामायण' और 'दोहावली' साधारण कोटि की कृतियां हैं। 'रामचरितमानस', 'गीतावली', 'विनयपत्रिका' तथा 'कवितावली' उनके गौरव-ग्रंथ हैं। इन गौरव-ग्रंथो का अलग-अलग संक्षिप्त विवेचन प्रस्तुत कर देना वाछनीय होगा।

रामचरितमानस

तुलसीदास भक्तमाल के सुमेरु माने गये हैं। उनका रामचरितमानस हिंदी-काव्य-माला का सुमेरु है। वह एक अनूठा महाकाव्य है जिसमे भक्ति की भूमि पर इतिहास, पुराण, धर्मशास्त्र, कथाकाव्य, चरितकाव्य और लोककाव्य का अद्भुत समन्वय किया गया है। उसका नायक परब्रह्म परमेश्वर है। उसकी पुरातन प्रतिपाद्य-वस्तु मे नवीनता की कमनीय कांति है। उसका अंगी रस भक्तिरस है। उसमे सुंदर कवित्व और शिव मोक्षतत्त्व की अलौकिक त्रिवेणी है। यह उसका महत्तम गुण है। यह गुण ही उसके काव्य-दोष का प्रधान कारण है। पूर्ववर्ती अध्यायो मे 'रामचरितमानस' के रचना-काल, रचना-क्रम, युग-प्रभाव, विचारधारा, भाव-पक्ष और कला-पक्ष पर प्रसंगानुसार विचार किया जा चुका है। प्रस्तुत प्रकरण मे उसके वस्तु-विन्यास, सोपान-कल्पना, चरित्र-चित्रण, मर्यादावाद, अंगी रस और काव्यरूप का आलोचन अभीष्ट है।

वस्तु-विन्यास

'मानस' के स्रोत 'रामचरितमानस' का प्रतिपाद्य 'रामचरित' है।[1] उस चरित-वर्णन के क्रम मे दो प्रकार की दृष्टियाँ काम करती रही हैं काव्य-दृष्टि[2] और मोक्ष-

---

१ स्वांत सुखाय तुलसी रघनाथगाथाभाषानिबंधमतिमंजुलमातनोति।

—रामचरितमानस, १।१।श्लोक ७

तेहि करि बिमल बिबेक बिलोचन। बरनौं रामचरित भव मोचन॥

—रामचरितमानस, १।२।१

२ देखिए रामचरितमानस, १।३६।१-१।४३।१

दृष्टि।[१] तदनुरूप उसमे विन्यस्त वस्तु के भी दो प्रकार हैं सौंदर्यपरक और शिवपरक। इस वस्तु-भेद के अनुसार तुलसी ने भिन्न-भिन्न स्रोतो से सामग्री ग्रहण की है। 'रामचरितमानस' की राम-कथा के दो मुख्य स्रोत-ग्रंथ **अध्यात्मरामायण** और वाल्मीकि-**रामायण** हैं। सौंदर्यपरक कवित्वमय प्रसगो के प्रमुख उत्तमर्ण काव्य-ग्रंथ हैं। उनमे हनुमन्नाटक और प्रसन्नराघव अन्यतम हैं। 'प्रतिमानाटक','रघुवश','महावीरचरित','उत्तररामचरित', 'बालरामायण' आदि से भी अनेक स्थलो पर शब्दार्थ-ग्रहण किया गया है। मगलपरक मोक्षनिरूपण के प्रधान आधार पुराण हैं। **अध्यात्मरामायण**[२] और भागवत का ऋण सबसे अधिक है। अन्य पुराणो, उपनिषदो, 'महाभारत', 'योगवासिष्ठ', 'हितोपदेश', स्मृतियो, स्तोत्रो आदि से भी यथास्थान सामग्री ली गयी है।

'रामचरितमानस' मे वर्णित और निर्दिष्ट कथाएँ पाँच प्रकार की हैं आधिकारिक कथा, प्रासगिक कथाएँ, अवातर कथाएँ, हेतुकथाएँ और अत कथाएँ। प्रथम दो प्रकार की कथाएँ अपने स्थूल रूप मे **अध्यात्मरामायण** और वाल्मीकि-**रामायण** पर आश्रित हैं। पूरा ढाँचा उन्ही से लिया गया है। उसको भरने और सँवारने के लिए जो विवरण दिये गये हैं उन पर विभिन्न पुराणो, काव्यो, नाटको आदि का महत्त्वपूर्ण प्रभाव पडा है। **रामायण** का विशिष्ट प्रभाव एकहरा है, क्योकि उसने 'मानस' के कथानक को ही विशेष रूप से प्रभावित किया है। **अध्यात्मरामायण** का प्रभाव तेहरा है कथानक पर, दर्शन पर, और प्रतिपादन-शैली पर।

राम की मुख्य कथा **आधिकारिक** है। **प्रासंगिक** कथाओ के परंपरा-प्रथित दो रूप हैं। पताका और प्रकरी। सुग्रीव का वृत्त निर्विवाद रूप से पताका है, क्योकि वह प्रासगिक है, आधिकारिक कथा की प्रगति मे सहायक है, और राम की उद्देश्यपूर्ति का साधन होने के साथ ही स्वय सुग्रीव को भी फल-प्राप्ति होती है। विश्वामित्र भी पताका-नायक हैं, क्योकि वे अपने कार्य मे भी सफल होते हैं और राम की सहायता भी करते हैं। जटायु, हनुमान् और विभीषण प्रकरी-नायक हैं। वे निष्काम-भाव से राम के सहायक हैं, किसी फलागम की भावना से प्रेरित नही हैं, यह और बात है कि जटायु को वैकुठ और विभीषण को राज्य का लाभ होता है। किसी-किसी ने हनुमान् को पताका-नायक माना है।[३] यह धारणा शास्त्र-विरुद्ध है। पताका और प्रकरी के नायक मे एक तात्त्विक भेद यह है कि पताका-नायक के कार्य मे उसका स्वार्थ भी निहित रहता है, किंतु प्रकरी-नायक नि स्वार्थ होता है।[४] अहल्या, ताडका, शबरी और खर-दूषण के वृत्त को प्रकरी मानना[५]

१. ब्रह्मनिरूपन धर्मविधि बरनहिं तत्वविभाग।
कहहिं भगति भगवत कै सजुत ग्यानबिराग ॥—रामचरितमानस, १।४४

२. यद्यपि 'ब्रह्मांडपुराण' की अधुना उपलब्ध प्रतियों में 'अध्यात्मरामायण' का समावेश नहीं पाया जाता तथापि परपरा उसको 'ब्रह्माडपुराण' का ही एक भाग मानती है। देखिए • हिंदुत्व, पृ० ३८१-८२; ए हिस्ट्री ऑफ इन्डियन लिटरेचर, जिल्द १, पृ० ५७८-७९; अध्यात्मरामायण, माहात्म्य की पुष्पिका। अत प्रस्तुत विवेचन में इस ग्रंथ की गणना पुराण के रूप में ही की जाएगी।

३. देखिए रामचरितमानस का शास्त्रीय अध्ययन, पृ० १८९

४. देखिए नाट्यदर्पण, १।२९, ३२ और उन पर वृत्ति

५. देखिए रामचरितमानस का शास्त्रीय अध्ययन, पृ० १८९

भी असंगत है। अहल्या के शप्त होने की कथा मानस में वर्णित नहीं है, और उसका उद्धार राम के महत्कार्यों का ही एक अंग है। ताड़का राम की सहायता नहीं करती, और उसका वध राम-चरित के ही अंतर्गत है। असुरों का वध करने और भक्तों को कृतार्थ करने के लिए ही तो राम ने अवतार लिया है। सुबाहु, विराध, खर, दूषण, मारीच, कुंभकर्ण आदि सभी राक्षस उनके लक्ष्य हैं। शबरी ही नहीं, वाल्मीकि, अत्रि, सुतीक्ष्ण, अगस्त्य आदि ऋषि-मुनि उनके द्वारा कृतार्थ हुए हैं। इन सबको प्रकरी मानना उचित नहीं है।

पूर्वोक्त आधिकारिक और प्रासंगिक कथाओं के प्रमुख स्रोतों का सांकेतिक निर्देश इस प्रकार किया जा सकता है—रामजन्म अध्यात्मरामायण, वाल्मीकि-रामायण, बाल-वर्णन अध्यात्मरामायण, भागवतपुराण, विश्वामित्र-प्रसंग अध्यात्मरामायण, वाल्मीकि-रामायण, फुलवारी और धनुपयज्ञ हनुमन्नाटक, प्रसन्नराघव, अनर्घराघव, महावीरचरित, अभिज्ञानशकुन्तल, विवाह वाल्मीकि-रामायण, अध्यात्मरामायण; अयोध्या-अरण्य-किष्किंधा-कांड अध्यात्मरामायण, वाल्मीकि-रामायण, हनुमान् का लंका-प्रवेश अध्यात्मरामायण, वाल्मीकि-रामायण, हनुमान्-विभीषण-मिलन आनंद-रामायण, अशोकवाटिका में सीता-रावण और सीता-हनुमान् के संवाद प्रसन्नराघव, हनुमन्नाटक, लंकादहन वाल्मीकि-रामायण, अध्यात्मरामायण, लंकाकांड के आरंभ से उत्तरकांड के रामराज्य-वर्णन[1] तक वाल्मीकि-रामायण, अध्यात्मरामायण। राम-कथा वस्तुतः यहीं पर समाप्त हो गयी है। सनकादि-कृत स्तुति, राम-गीता, वसिष्ठ के निवेदन और नारद-कृत राम-गुण-वर्णन को[2] भी खींच-खाँच कर उसमें समेटा जा सकता है। इन प्रसंगों और रामराज्य-वर्णन पर भी विभिन्न पुराणों का प्रभाव है।

'रामचरितमानस' के प्रतिपाद्य विषय को भली भाँति समझाने के लिए उसके उपक्रम और उपसंहार में तुलसी ने अनेक अवांतर कथाओं की योजना की है। राम-चरित-वर्णन की अवतरणिका के रूप में सती-पार्वती-शिव[3] और काकभुशुंडि-गरुड[4] के आख्यान वर्णित हैं। याज्ञवल्क्य-भरद्वाज-संवाद[5] भी इसी प्रकार का संक्षिप्त रूप है। शिव-चरित के मुख्य स्रोत 'शिवपुराण' और 'कुमारसंभव' हैं। अन्य दो संवादों के स्रोत-रूप में 'भुशुंडि-रामायण' और 'याज्ञवल्क्यरामायण' की चर्चा की जाती है। इन कथित रामायणों की प्रामाणिकता संदिग्ध है। शिव-पार्वती-संवाद 'अध्यात्मरामायण' की प्रत्यक्ष देन है। अन्य दो संवादों की प्रकीर्ण सामग्री विभिन्न पुराणों में मिलती है। ऐसा प्रतीत होता है कि उस बिखरी हुई वस्तु को लेकर कवि ने 'मानस' के चार मनोहर घाटों की रचना की है।

---

१. रामचरितमानस, ७।२०।४-७।३१
२. रामचरितमानस, ७।३२।१-७।३५, ७।३७।३-७।४६, ७।४८।१-७।४९, ७।५०-७।५१
३. रामचरितमानस, १।४८।१-१।१०३
४. रामचरितमानस, ७।५६।१-७।१२५
५. रामचरितमानस, १।४४।१-१।४७

जय-विजय[1], कश्यप-अदिति[2], (सकेत-मात्र), जलधर[3], नारद-मोह[4], मनु-शत-रूपा[5] और प्रतापभानु[6] के उपाख्यान रामावतार के कारणो का निरूपण करनेवाली हेतुकथाएँ हैं। रामावतार-पूर्व का रावण-चरित[7] और दशरथ की पुत्रेष्टि[8] का वर्णन भी 'रामचरितमानस' की भूमिका का अश है। इस अश के मुख्य उत्तमर्ण पद्म, विष्णु, स्कद, भागवत आदि अनेक पुराण हैं। कही-कही 'अध्यात्मरामायण' और वाल्मीकि-'रामायण' का भी प्रभाव है। 'रामचरितमानस' की मुख्य कथा के क्रम मे पृथु, शिवि, दधीचि, हरिश्चद्र, नहुप आदि की कथाओ का साकेतिक उल्लेख भी किया गया है। ये अन्त कथाएँ हैं। इनके स्रोत विभिन्न पुराण हैं।

मोक्ष-दृष्टि से 'रामचरितमानस' के विभिन्न सोपानो के मगलश्लोको तथा स्तुतियो मे और पात्रो के कथोपकथन द्वारा धर्म, वैराग्य, योग, ज्ञान एव भक्ति का बहुधा प्रतिपादन किया गया है। कल्याण-भावना से अनुप्राणित इन सैद्धातिक विचारो के मुख्य स्रोत पुराण ही हैं।[9] कही-कही पर उपनिषदो, महाभारत, स्तोत्रो आदि से भी सामग्री ली गयी है।

उपर्युक्त दिग्दर्शन से विदित है कि 'रामचरितमानस' का कथानक और सिद्धात-निरूपण प्राचीन आप्त ग्रथो पर अवलबित है, परतु वह ग्रथविशेष अथवा ग्रथ-समूह का अधानुकरण नही हैं। तुलसी ने अपनी योजना के अनुसार वस्तु-ग्रहण किया है, उसमे परिवर्तन, परिवर्धन या काट-छाँट की है। स्पष्टीकरण के लिए कुछ उदाहरण समीक्ष्य हैं। 'अध्यात्मरामायण', वाल्मीकि-'रामायण', 'पद्मपुराण', 'नारदपुराण' आदि मे परशु-राम का प्रसग बारात की वापसी के समय मार्ग मे हुआ है।[10] यह सविधानक तुलसी को बहुत काव्योचित नही प्रतीत हुआ। 'प्रसन्नराघव', 'हनुमन्नाटक' आदि मे इस प्रसग की योजना धनुपयज्ञ के अवसर पर धनुर्भंग के बाद की गयी है।[11] नाटकीय रमणीयता, राम की शक्ति-प्रतिष्ठा, दुष्ट राजाओ के मान-मर्दन और अमगल-निवारण की दृष्टि से यह क्रम अधिक उपयुक्त था। अत तुलसी ने इसी मार्ग का अनुसरण किया। स्रोत-ग्रथो मे राम की विवाह-विधि का विशद निरूपण नही है। विवाह जीवन का सर्वाधिक महत्त्व-पूर्ण सस्कार है। अपनी सनातनधर्मनिष्ठा के कारण तुलसी ने उसका व्यापक वर्णन किया। द्वितीय सोपान के विभिन्न प्रसगो को, विशेष करके चित्रकूट-प्रसग को कवि ने अपनी

---

१. रामचरितमानस, १।१२२।२-१।१२३।१
२. रामचरितमानस, १।१२३।२, १।१८७।२
३. रामचरितमानस, १।१२३।३-१।१२४।२
४. रामचरितमानस, १।१२४।३-१।१३६
५. रामचरितमानस, १।१४२।१-१।१५२।४
६. रामचरितमानस, १।१५३।१-१।१७५
७. रामचरितमानस, १।१७६।१-१।१८७
८ रामचरितमानस, १।१८९।१-१।१९०।३
९ देखिए · रामचरितमानस पर पौराणिक प्रभाव, पृ० १५५-२१७
१० क्रमश, १।७।१-५०, १।७४।१८-१।७६।२२, ६।२४२।१५५-८०, २।७५।२९
११. प्रसन्नराघव, अक ४, हनुमन्नाटक, अंक १

भावुकता और प्रतिभा के बल पर विशेष रूप से हृदयस्पर्शी बना दिया है।

मोक्ष-निरूपण में तुलसी का दृष्टिकोण भक्तिपरक है। 'मानस' के इस पक्ष पर 'भागवतपुराण' और 'अध्यात्मरामायण' का घनिष्ठ प्रभाव है। उनके भक्ति-प्रवण अंशों को तुलसी ने तदनुरूप ही स्वीकार किया है, लेकिन जहाँ उनमें ज्ञान का प्रधानतया प्रतिपादन किया गया है उनको भी तुलसी ने भक्तिमय बना दिया है। भक्ति-साहित्य में उक्त दोनों ग्रंथों की श्रवण आदि, और सत्संग आदि नवधा भक्तियाँ विशेष समादृत हैं। मानसकार ने राम के द्वारा अधिकारी-भेद से दोनों प्रकार की भक्तियों का उपदेश कराया है क्षत्रिय, पुरुष एवं ज्ञानी लक्ष्मण के प्रति 'भागवत' की नवधा भक्ति का, और शूद्र, नारी तथा अल्पज्ञ शबरी के प्रति 'अध्यात्मरामायण' की नवधा भक्ति का।[1] 'मानस' के मंगलश्लोक में 'भागवत' के मंगलश्लोक की छाया का अनुधावन करते हुए भी तुलसी ने उसे भक्ति के साँचे में ढाल लिया है[2]

१ जन्माद्यस्य यतोऽन्वयादितरतश्चार्थेष्वभिज्ञ स्वराट्
तेने ब्रह्म हृदा य आदिकवये मुह्यन्ति यत्सूरय ।
तेजोवारिमृदां यथा विनिमयो यत्र त्रिसर्गोऽमृषा
धाम्ना स्वेन सदा निरस्तकुहकं सत्यं परं धीमहि ॥

—भागवत

२. यन्मायावशवर्ति विश्वमखिलं ब्रह्मादिदेवासुरा
यत्सत्त्वादमृषैव भाति सकलं रज्जौ यथाऽहेर्भ्रम. ।
यत्पादप्लवमेकमेव हि भवाम्भोधेस्तितीर्षावतां
वन्देहं तमशेषकारणपरं रामाख्यमीशं हरिं ॥

—रामचरितमानस

'अध्यात्मरामायण' के वाल्मीकि ने राम के निवास-स्थान गिनाते समय भक्ति के विविध साधनों का उल्लेख किया है। 'मानस' के वाल्मीकि ने उस कविन्वहीन मूल-वस्तु को अधिक विशद एवं रमणीय रूप में प्रस्तुत किया है, जैसे[3]

१ त्वन्नामकीर्त्या हतकल्मषाणां सीतासमेतस्य गृहं हृदब्जे ।
२ जिन्ह के श्रवन समुद्र समाना। कथा तुम्हारि सुभग सरि नाना॥
भरहिं निरंतर होहिं न पूरे। तिन्ह कें हिय तुम्ह कहुँ गृह रूरे॥
जसु तुम्हार मानस बिमल हंसिनि जीहा जासु।
मुकताहल गुन गन चुनइ राम बसहु मन तासु॥

भक्ति का अनेकशः उपस्थापन करते हुए भी 'अध्यात्मरामायण' ज्ञानप्रधान है। इसलिए उसने घटघटवासी राम के साक्षात्कार को महत्त्व दिया गया है। लोकदर्शी तुलसी सगुण-भक्त हैं। फलत उनके वाल्मीकि ने जगत् को राममय देखने और दास्यभक्ति पर बल

१ भागवतपुराण, ७।५।२३, रामचरितमानस, ३।१६।४ अध्यात्मरामायण, ३।१०।२२-३१, मानस, ३।३५।४-३।३६, देखिए . तुलसी-दर्शन-मीमांसा, पृ० २९७।३३४

२. भागवतपुराण, १।१।१ रामचरितमानस, १।१।श्लोक ६

३. अध्यात्मरामायण, २।६।६३, रामचरितमानस, २।१२८।२-३, २।१२८

दिया है[1] :

१. पश्यन्ति ये सर्वगुहाशयस्थं त्वा चिद्घनं सत्यमनन्तमेकम् ।
अलेपकं सर्वगत वरेण्य तेषां हृदब्जे सह सीतया वस ॥

२. सरगु नरकु अपबरगु समाना । जहँ तहँ देख धरें धनु बाना ॥
करम बचन मन राउर चेरा । राम करहु तेहि कें उर डेरा ॥

इस प्रकार तुलसी ने विभिन्न स्रोतो से उपादान चुनकर 'रामचरितमानस' की रचना की है। यह उनकी प्रतिभा का परिणाम है कि पुरातन वस्तु भी उनके हाथो मे पडकर नवीन-सी लगती है। प्रश्न उठाया गया है उनका अपना क्या है? उत्तर है सयोजन-कला का लालित्य। मकबरे पहले भी बने थे, आकाश था, धरती थी, यमुना-तट था; सगमर्मर की शिलाएँ थी, चूना-गारा सब कुछ था; परतु ताजमहल नही था। कलाकार ने ताजमहल खडा कर दिया। उसका अपना क्या था? बहुत-से पुराने चित्र थे, फलक था, तूलिका थी, रग थे, चित्रकार ने उनका उपयोग करके एक अनुपमेय-नूतन चित्र अकित कर दिया। उसका अपना क्या था? सनातन से चली आती हुई राम-कथा थी, धर्म, दर्शन, भक्ति आदि के परपरागत विचार थे, सिद्ध कवीश्वरो की मनोरम कल्पनाएँ थी, किंतु जन-मानस को भाव-तरगित कर देने वाला 'रामचरितमानस' नही था। तुलसी की सफलता और महत्ता इस बात मे है कि एक-से-एक महती कृतियो के रहते हुए भी उन्होने उस बेजोड महाकाव्य का निर्माण किया जो अपनी रमणीयता एव मगलमयता के समन्वय मे अनन्वय का अनूठा विषय है!

वस्तु-विन्यास 'रामचरितमानस' का वस्तु-विन्यास बहुत-कुछ पौराणिक ढग पर किया गया है। पुराणो मे सूत वक्ता हैं, शौनक आदि ऋषि श्रोता हैं। 'अध्यात्म-रामायण' मे शिव ने पार्वती के प्रति रामकथा का वर्णन किया है। तुलसी ने रामचरितमानस' पर मानसरोवर का आरोप करके रूपक बाँधा है, चार घाटो की कल्पना की है। उनके वक्ता-श्रोता हैं याज्ञवल्क्य-भरद्वाज, शिव-पार्वती, काकभुशुडि-गरुड और तुलसी-सतजन। इस चौहरे माध्यम से रामचरित का प्रतिपादन किया गया है। 'मानस' के रचना-क्रम पर विचार किया जा चुका है। प्रस्तुत विवेचना उसके निष्पन्न रूप को दृष्टि मे रख कर की जा रही है।

'रामचरितमानस' की मुख्य कथावस्तु का आयाम रामजन्म से लेकर राजा राम के वृत्त-वर्णन तक है।[2] उसके पूर्व और पश्चात् जो कुछ कहा गया है वह उपक्रम-उपसहार है। वह सपूर्ण ग्रथ के पचमाश से कुछ अधिक ही है। इतनी विस्तृत भूमिका अथवा इतना अतिनिरूढ़ उपसहार किसी महाकाव्य मे नही मिलेगा। फिर भी उसकी निबधना इतने व्यवस्थित रूप से की गयी है कि कही पर भी कोई चूल ढीला नही है। उपक्रम मे विभिन्न प्रकार की वदनाओ, सत-असत-लक्षण, काव्य-विषयक मान्यताओ, मानस-रूपक, अनुबध-चतुष्टय (विषय, सबध, अधिकारी और प्रयोजन), एव रामावतार के हेतुओ का निरूपण करके मुख्य कथा का आरभ किया गया है। यह प्रस्तावना 'रामचरितमानस'

१ अध्यात्मरामायण, २।६।६२, रामचरितमानस, २।१३१।४
२. रामचरितमानस, १।१९१-७।५१

को कवि की दृष्टि से समझने में सहायक है।

परपरानुसार ग्रथ का विभाजन सात काडो में किया गया है। मानस-रूपक के अनुरूप कवि ने उन्हे 'सोपान' कहा है। वस्तु-विन्यास की दृष्टि से कुछ परिवर्तन अवेक्षणीय हैं। रावण का चरित 'अध्यात्मरामायण' और वाल्मीकि-'रामायण' के उत्तरकाड मे सविस्तार वर्णित है।[1] तुलसी ने 'महाभारत' के रामोपाख्यान का अनुसरण करते हुए उसका सक्षिप्त वर्णन बालकाड की प्रस्तावना मे किया है।[2] ग्रथ के उपसहार मे रावण के पूर्ववृत्त का आख्यान उनके भक्तिपरक उद्देश्य की पूर्ति मे सहायक नही था। दूसरी ओर, प्रस्तावना मे उसके अत्याचारो का चित्रण रामावतार के प्रयोजन की व्यजना के अनुकूल था। अत्रि-अनसूया का प्रसग 'अध्यात्मरामायण' तथा वाल्मीकि-'रामायण' के अयोध्याकाड मे है, और जयत-प्रसग सुदरकाड मे वर्णित है।[3] 'रामचरितमानस' मे इन दोनों प्रसगो का वर्णन अरण्यकाड मे किया गया है।[4] भरत आदि के वापस लौट आने पर अयोध्या-काड की कथा समाप्त हो गयी। कहा जा चुका है कि अयोध्याकाड के बाद बालकाड का उत्तरार्ध लिखा गया था। अत कवि ने आगे की कथा अरण्यकाड से आरभ की। हनुमान् के प्रति सीता द्वारा जयत-वृत्तात-वर्णन मर्यादावादी तुलसी को बहुत भद्दा प्रतीत हुआ, इसलिए घटना के क्रमानुसार उन्होने अरण्यकाड मे उसका विन्यास किया।

राम-भरत-मिलाप, राम-राज्याभिषेक और वानरो की विदाई के प्रसग वाल्मीकि-'रामायण' और 'अध्यात्मरामायण' मे 'युद्धकाड' (लकाकाड) के अग हैं।[5] विद्वानो की मान्यता है कि 'रामायण' के बालकाड और उत्तरकाड प्रक्षिप्त हैं।[6] अत उसकी राम-कथा का उपसहार युद्धकाड मे ही किया गया था। सभवत अध्यात्मरामायणकार ने उसी का अनुसरण किया है। वे घटनाएँ युद्ध अथवा लका से सबद्ध नही हैं, इसलिए परवर्ती काड मे उनका निबधन तुलसी को समीचीन जँचा। मानस के उत्तरकाड की दूसरी विशेषता अनेक मार्मिक प्रसगो के परित्याग मे है। उसके स्रोत-ग्रथो मे राम ने सीता को निर्वासित किया है, शबूक को मारा है, कुश-लव से रामायण-गान सुना है, सीता को धरती मे समाते देखा है, लक्ष्मण को त्यागा है और अत मे भाइयो तथा प्रजा के साथ महाप्रस्थान किया है।[7] तुलसी ने अपनी अन्य कृतियो मे महाप्रस्थान को छोडकर अन्य सभी वृत्तो की न्यूनाधिक चर्चा की है[8], परतु 'रामचरितमानस' मे वे सब-के-सब सर्वथा उपेक्षित हैं। ऐसा करने मे तुलसी का उद्देश्य है राम के आदर्श शील की रक्षा, मर्यादा की प्रतिष्ठा और उनके परमेश्वरत्व का प्रतिपादन। इसीलिए पार्वती से यह प्रश्न तो

१ अध्यात्मरामायण, ७।१।२५-७।२।५५; वाल्मीकि-रामायण, ७।१०-३४
२ महाभारत, ३।२७५-७६, रामचरितमानस, १।१७६।१-१।१८३
३ अध्यात्मरामायण, २।९।७९-९२, ५।३।५४-६०; वाल्मीकि-रामायण, २।११७-१९, ५।३८।१२-३६, ५।६७।३-१८
४ जयत ३।१।३-३।२, अत्रि-अनसूया ३।३।२-३।६
५ वाल्मीकि-रामायण, ६।१२७-२८, अध्यात्मरामायण, ६।१५-१६
६ नेरिंग ए हिस्ट्री ऑफ इन्डियन लिटरेचर, जिल्द १, पृ० ४९५-९६
७ वाल्मीकि-रामायण, ७।७३-७६, ९३-९७, १०६-१०; अध्यात्मरामायण, ७।४-९
८. रामाज्ञाप्रश्न, ६।५,७, गीतावली, ७।२७-३६, कवितावली, ७।६

कराया गया था कि प्रजा सहित रघुबंसमनि किमि गवने निज धाम'[1] किंतु उसका उत्तर दिलाना व्यर्थ समझा गया।

तीसरी विशेषता है नये सिरे से कथा का आरंभ। ५१ वें दोहे पर ही कथा का अवसान हो गया था तथापि काकभुशुडि-गरुड के व्याज से वह फिर शुरू हो गयी। मुख्य कथानक की समाप्ति के बाद इस प्रकार का पुनरावर्तन काव्य-दृष्टि से बहुत बडा दोष है, परतु भक्त-कवि को इसमे कोई अनौचित्य नही दिखायी पडा।[2] 'अधिकस्य अधिक फलम्', भक्त की महिमा और ज्ञान से भक्ति की श्रेष्ठता का विशद प्रतिपादन करने के लिए उसने छूटे हुए सूत्र को फिर पकडा। काव्य-रसिको को नीरस प्रतीत होने वाला यह अश भक्तो के रसविशेष का निष्पादक है। उपसहार की एक और विशेषता तुलनात्मक दृष्टि से प्रलक्ष्य है। 'गीता' के कृष्ण ने अपना प्रवचन समाप्त करके अर्जुन से पूछा[3] क्या तुमने मेरा उपदेश ध्यान से सुना और तुम्हारा मोह दूर हो गया? 'रामचरितमानस' के किसी वक्ता को किसी श्रोता के सबध मे ऐसा सदेह नही हुआ। बिना पूछे ही श्रोताओ ने आनदविभोर होकर अपनी कृतकृत्यता प्रकट की है।[4] भक्ति के क्षेत्र मे सशय और असफलता का प्रश्न उठता ही नही है।

सधि-विधान : सस्कृत के काव्यशास्त्रियो ने महाकाव्य का लक्षण-निरूपण करते हुए लगे हाथो नाटक की पाँच सधियो का भी उल्लेख कर दिया है।[5] उनके कथन की कमजोरी का एक निश्चित प्रमाण यह है कि वे लक्ष्य ग्रथो से उदाहरण देकर उन सधियो का विवेचन नही कर सके हैं। विश्वनाथ ने उदाहरण-रूप मे सुप्रसिद्ध 'रघुवश' का भी उल्लेख कर दिया है, किंतु वे यह नही बतला सके हैं कि उसमे पाँचो सधियाँ कहाँ-कहाँ और किस प्रकार पायी जाती हैं। वस्तुत नाटक के पचसधि-विषयक-सिद्धात को उस पर लागू नही किया जा सकता। सधियाँ बीज के विकास की पाँच विभिन्न अवस्थाएँ हैं। नाटक मे बीज एक होता है, इसलिए ये सधियाँ एक-एक बार ही आती हैं। 'रघुवश' का कथानक अत्यत व्यापक है। उसमे एक के बाद एक कई नायक आते हैं, उनके 'कार्य' अलग-अलग हैं, प्रत्येक 'कार्य' का 'बीज' भिन्न है, प्रत्येक 'बीज' के विकास की अवस्थाएँ भिन्न हैं। इसलिए एक-एक बार आने वाली पाँच सधियो के चौकठे मे उसे फिट नही

---

१. रामचरितमानस, १।११०

२. रामचरित जे सुनत अघाहीं। रस बिसेष जाना तिन्ह नाहीं॥
जीवनमुक्त महामुनि जेऊ। हरि गुन सुनहिं निरंतर तेऊ॥
—रामचरितमानस, ७।५३।१

३ गीता, १८।७२

४ मैं कृतकृत्य भएउँ तव बानी। सुनि रघुबीर भगति रस सानी॥—रामचरितमानस, ७।१२५।१
मैं कृतकृत्य भइउँ अब तव प्रसाद बिस्वेस।
—रामचरितमानस, ७।१२९

५. पचभि सन्धिभिर्युक्त नातिव्याख्येयमृद्धिमत्।
—भामह, काव्यालकार, १।१९
सर्गैरनतिविस्तीर्णै श्रव्यवृत्तै सुसन्धिभि.।—दडी, काव्यादर्श, १।१८
अंगानि सर्वेऽपि रसा सर्वे नाटकसन्धय.।—विश्वनाथ, साहित्यदर्पण, ६।३१७

किया जा सकता।

यद्यपि 'रामचरितमानस' का नायक एक है तथापि उसकी कथावस्तु अत्यधिक विस्तृत है। उसमे कई नाटको और कई पचसधियो की सामग्री ग्रथित है। राम के 'कार्य' अनेक हैं, इसलिए 'बीज' अनेक हैं, और इसलिए प्रत्येक 'बीज' से सबद्ध सधि-विधान भी अलग होना चाहिए। उदाहरण के लिए, केवल जनकपुर के प्रकरण को लीजिए

तब मुनि सादर कहा बुझाई। चरित एक प्रभु देखिअ जाई ॥
धनुषजग्य सुनि रघुकुलनाथा। हरषि चले मुनिवर के साथा ॥[1]

यहाँ 'बीज' नामक अर्थप्रकृति है। समझदार मुनि ने 'कहा बुझाई' और किशोर राम 'हरषि चले'। दोनो की व्यजना सहज ही समझी जा सकती है। जनकपुर पहुँचने से लेकर परशुराम के आगमन तक 'बिंदु' है। परशुराम के वृत्त की योजना इस ढग से की गयी है कि उसे 'प्रकरी' माना जा सकता है। यद्यपि वे विरोधी के रूप मे आते हैं तथापि अततोगत्वा वे राम के सहायक सिद्ध होते हैं, उनकी कोई स्वार्थ-सिद्धि नही होती। यहाँ 'पताका' नही है। लक्ष्मण पताका-नायक नही हैं, क्योकि तुलसी ने उन्हे कही भी इस रूप मे नही चित्रित किया जिससे यह निष्कर्ष निकाला जा सके कि उनके मन मे भी 'काम' की भावना है। विश्वामित्र राम-कथा के व्यापक सदर्भ में तो पताका-नायक हैं, किंतु विवाह के कथानक मे नही। कारण स्पष्ट है उसमे उनका कोई स्वार्थ नही है। स्मरण रखना चाहिए कि सधि-विधान के लिए पताका और प्रकरी का होना अनिवार्य नही है।[2] विवाह 'कार्य' है। पाँचो सधियाँ भी द्रष्टव्य हैं। नगर-दर्शन से फुलवारी-वर्णन तक मुख-सधि है। तदनतर धनुभँग के पूर्व तक प्रतिमुख-सधि है, क्योकि अभिमानी राजाओ के विरोधात्मक वचन[3] और धनुष तोडने के कायिक प्रयत्न अभीष्ट विवाह के मार्ग मे बाधक हैं। धनुर्भंग के पश्चात् राजाओ के गाल बजाने[4] और परशुराम के वाद-विवाद मे गर्भ-सधि है। परशुराम के धनुष को चढा देने के बाद से विवाह के पूर्व तक विमर्श-सधि है। विवाह-विधि के सपादन मे निर्वहण-सधि है।

सस्कृत मे रामकथा को लेकर कितने ही काव्य और नाटक लिखे गये हैं। किसी में राम के जन्म से महाप्रयाण तक की, किसी मे जन्म से सीता-निर्वासन तक की, किसी मे जन्म से राज्याभिषेक तक की, किसी मे दशरथोत्पत्ति से जानकीहरण तक की, किसी मे विवाह से रावण-वध करके लौटने तक की और किसी मे अयोध्याकाड से राज्याभिषेक तक की कथा का वर्णन किया गया है। कथा वही है। सूक्ष्म विवरणो मे भेद अवश्य है, किंतु उससे कथानक के ढाँचे मे कोई अतर नही पडता। वे ही पाँचो सधियाँ सभी कृतियो

---

१. रामचरितमानस, १।२१०।५

२ देखिए भावप्रकाशन, पृ० २१०-११

३ तोरेहु धनुप ब्याहु अवगाहा। बिनु तोरे को कुअँरि बिआहा ॥
एक बार कालउ किन होऊ। सिय हित समर जितब हम सोऊ ॥
—रामचरितमानस, १।२४५।३-४

४ लेहु छडाइ सीय कह कोऊ। धरि बाँधहु नृपबालक दोऊ ॥
तोरें धनुप चाड नहि सरई। जीवत हमहि कुअँरि को बरई ॥—रामचरितमानस, १।२६६।२

मे दिखलायी जाती हैं। 'रामचरितमानस' की शास्त्रीयता ज्ञापित करने के लिए उसमे भी दर्शायी गयी हैं। उनकी सक्षिप्त समीक्षा से असगति स्पष्ट हो जाएगी।

नारद-शाप[1] मे 'बीज' माना गया है, और धरा की अकुलाहट[2] से मुख-सधि का आरभ। नायक के जन्म से पहले ही 'बीज' अथवा 'मुख' मान लेना समीचीन नही है। और, यदि नारद-शाप मे 'बीज' माना जाए तो फिर उसके भी पूर्व वृदा-शाप[3] मे क्यो न माना जाए? रावण-वध को 'कार्य' मानते हुए भी राम-वन-गमन मे प्रतिमुख-सधि मानना असगत है। वह तो कथानक को रावण-वध की ओर अग्रसर करता है। सीता-हरण में गर्भ-सधि कैसे है? वहाँ से तो रावण-वध के कारण का आरभ होता है, और 'कार्य' का वास्तविक कार्यक्रम हनुमान् के लका से लौट आने पर बनता है। राम-हनुमान्-सवाद[4] अथवा लक्ष्मण-मूर्च्छा से विमर्श-सधि मानने मे भी कोई तुक नही है। पहली सभावना की विसगति यह है कि अभी सीता तथा रावण का पता ही नही है, न खोज शुरू हुई न युद्ध छिडा और विमर्श-सधि मान ली गयी। लक्ष्मण-मूर्च्छा निराशा की स्थिति है, उसमे गर्भ-सधि तो हो सकती है, किंतु विमर्श नही। रावण-वध से राम-राज्याभिषेक तक निर्वहण-सधि मानी गयी है। इसमे कई विप्रतिपत्तियाँ हैं। उक्त दोनो कार्य एक नही हैं। दोनो मे आवश्यक सबध भी नही है, रावण-वध के बिना भी भरत आदि की बात मानकर राम राजा बन सकते थे। 'निर्वहण' प्रबध का अतिम भाग होता है। लगभग सारा उत्तरकाड राज्याभिषेक के बाद की वस्तु है। 'निर्वहण' के बाद वह सब कहाँ रखा जाएगा?

निष्कर्ष यह है कि 'रामचरितमानस' का वस्तु-विन्यास पचसधिमय नाटक के ढाँचे पर नही किया गया है। उसके सविधानक मे अनेक नाटको की अर्थप्रकृतियाँ, कार्यावस्थाएँ और सधियाँ समायी हुई हैं। कारण यह है कि वह इतिहास-पुराण की शैली पर रचा गया महाकाव्य है।

सात सोपान

तुलसी ने 'रामचरितमानस' की कल्पना मानसरोवर के रूप में की है। मानस-रूपक मे दोनो के साधर्म्य का विशद चित्रण किया गया है। एक सरोवर की सात सीढियो के समान सात काडो को 'सोपान' का सज्ञा दी गयी है। तुलसी ने दो स्थलो पर (उपक्रम और उपसहार मे) सप्तसोपान का साकेतिक स्पष्टीकरण किया है[5]

१. श्राप सीस धरि हरषि हिश्रँ प्रभु बहु बिनती कीन्हि।
—रामचरितमानस, १।१३७

२ अतिसय देखि धर्म कै हानी। परम सभीत धरा अकुलानी॥
—रामचरितमानस, १।१८४।२

३. तासु श्राप हरि कीन्ह प्रवाना। कौतुकनिधि कृपाल भगवाना॥
—रामचरितमानस, १।१२४।१

४. रामचरितमानस, ४।२।१-२

५ रामचरितमानस, १।३७।१, ७।१२९।२

१. सप्त प्रबध सुभग सोपाना। ज्ञान नयन निरखत मन माना ॥

२ एहि महँ रुचिर सप्त सोपाना। रघुपतिभगति केर पथाना ॥

कवि के सकेतानुसार ज्ञान-दृष्टि और भक्ति-दृष्टि से सोपानो का विवेचन करने के पहले उनकी पुष्पिकाओ पर विचार कर लेना उपयुक्त होगा। आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र द्वारा सपादित 'रामचरितमानस' के नवीनतम प्रामाणिक सस्करण मे सातो सोपानो की पुष्पिकाएँ इस प्रकार दी गयी हैं

१. इति श्रीमद्रामचरितमानसे सकलकलिकलुषविध्वसने प्रथम· सोपान. समाप्तः।

२. श्रीराम

३. इति श्रीरामचरितमानसे सकलकलिकलुषविध्वसने
विमलवैराग्यसपादनो नाम तृतीयस्सोपान समाप्तः।

अतिम चार मे इति विध्वसने तीसरे के समान है। शेष अश इस प्रकार हैं

४ विशुद्धसतोषसपादनो नाम चतुर्थ· सोपान समाप्त.।

५. ज्ञानसपादनो नाम पचमस्सोपान समाप्त ।

६. विमलविज्ञानसपादनो नाम षष्ठः सोपान. समाप्त ।

७ अविरलहरिभक्तिसपादनो नाम सप्तमसोपान.समाप्त·।

'मानस' के रचना-क्रम के प्रसग मे हम कह आये हैं कि पहले अयोध्याकाड, फिर बालकाड के उत्तरार्ध, फिर अन्य काडो की रचना हुई। उपर्युक्त पुष्पिकाओ से भी इसका समर्थन होता है। अयोध्याकाड मे पुष्पिका नही है, केवल 'श्रीराम' है। उस समय तक कवि के मन मे 'सोपान' और पुष्पिका का विचार नही आया था। बालकाड का उत्तरार्ध लिख लेने पर मानस-रूपक की कल्पना आयी। उसे प्रथम सोपान कहा गया। उसकी पुष्पिका लिखी गयी, किंतु विशेषण-रूप मे किसी मोक्षसाधन का उल्लेख नही किया गया। अरण्यकाड से इसका व्यवस्थित क्रम चला। प० शभुनारायण चौबे, डा० माता-प्रसाद गुप्त आदि ने अयोध्याकाड मे भी बालकाड की-सी पुष्पिका दी है। पचम सोपान के साथ डा० गुप्त ने 'ज्ञानसपादनो' के बदले 'विमलज्ञानसपादनो' रखा है। बाबू राम-दास गौड ने कुछ पुरानी प्रतियो के आधार पर प्रथम दो सोपानो की पुष्पिकाओ मे क्रमश 'विमलसतोषसपादनो नाम' और 'विमलविज्ञानवैराग्यसपादनो नाम' का निवेश स्वीकार किया है।[1] वैज्ञानिक सस्करणो के सामने यह पाठ सर्वथा त्याज्य है।

स्वाभाविक प्रश्न उठता है कि प्रथम दो सोपानो की पुष्पिकाओ मे तुलसी ने मोक्षसाधन का निर्देश क्यो नही किया। वे इतने धर्मनिष्ठ है, और उक्त सोपानो मे धर्म के विविध पक्षो का सैद्धातिक तथा व्यावहारिक रूप मे विशद चित्रण भी है। फिर भी उन्होने 'धर्मसपादनो नाम' की योजना नही की। हमारी मान्यता है कि 'रामचरित-मानस' के पूर्वार्ध (अर्थात् बालकाड के उत्तरार्ध और अयोध्याकाड) मे मोक्षधर्म गौण है, उसमे काव्यधर्म की प्रधानता है। अतएव प्रथम दो सोपानो की पुष्पिकाओ मे मोक्ष-साधन का उल्लेख नही है। बाद मे भी कवि ने उसकी आवश्यकता का अनुभव नही

---

१. 'विप्र' मानस मे रामकथा, पृ० १४७

किया। 'रामचरितमानस' की भाँति ही आधुनिक 'कामायनी' के पूर्वार्ध मे हम काव्यधर्म की विशिष्टता पाते हैं और उत्तरार्ध मे मोक्षधर्म की।

डा० बलदेव प्रसाद मिश्र ने उक्त पुष्पिकाओ के आधार पर सात सोपानो के नामकरण पर विचार किया है।[1] प्रथम सोपान मे तृष्णात्रय, वित्त-पुत्र-लोक, आहार-विहार-समाजप्रियता, और कचन-कामिनी-कीर्ति के प्रति वैराग्य पर बल दिया गया है। इसलिए वह 'विमल सतोप' का सपादक है। द्वितीय सोपान मे समग्र ऐश्वर्य के प्रति अनासक्तिमय त्याग का निरूपण है। अत उसको 'विमलविज्ञानवैराग्यसपादन' कहा गया है। तृतीय सोपान मे सीता को दूर हटाकर राम ने विभव-भोगो के प्रति 'विमल वैराग्य' दिखलाया है। चतुर्थ सोपान तृष्णा, आसक्ति या भोग-भावना से रहित अनासक्ति-योग और अकर्मण्यता के प्रति वैराग्य का निदर्शक होने से 'विशुद्ध सतोप' का सपादक है। 'विमलज्ञानसपादनो नाम' पचम सोपान मे आराधक, आराधना और आराध्य के स्वरूप का निरूपण है। 'विज्ञान' मोह आदि के नाशक प्रयोगात्मक ज्ञान का द्योतक है। रावण महामोह का प्रतीक है। उसके नाश द्वारा षष्ठ सोपान मे 'विमल विज्ञान' का सपादन किया गया है। सप्तम सोपान रामराज्य की स्थापना और काकभुशुडि द्वारा की गयी भक्तिरस की पीयूष-वर्षा के फलस्वरूप 'अविरल हरिभक्ति' का सपादक है।

प० विजयानद त्रिपाठी का मत है कि 'मानस' के सात सोपान सातो पुरियो की भाँति मोक्ष-प्रापक हैं। प्रथम मे अवध, सरयू, रामनवमी आदि का माहात्म्य वर्णित है, वह 'अयोध्या' है। द्वितीय मे राम-वनवास कृष्ण की विरह-कथा के समान है, वह 'मथुरा' है। तृतीय मे माया का बाहुल्य है, वह 'मायापुरी' है। चतुर्थ मे काशी का महत्त्व द्योतित है, वह 'काशी' है। पचम मे शिवकाची और विष्णुकाची के द्वैविध्य के अनुसार हनुमत्-चरित और रामचरित वर्णित है, वह 'काची' है। षष्ठ मे महाकाल की प्रधानता है, वह 'अवतिका' है। सप्तम मे राम ने द्वारकाधीश की भाँति राज्य किया है। वह 'द्वारका' है।[2] त्रिपाठी जी की इस व्याख्या मे बडी खीच-तान है।

अनेक टीकाकारो ने ज्ञान-नयन से द्रष्टव्य सातो सोपानो मे दर्शनशास्त्र के विभिन्न सप्रदायों की छाया का अनुसधान किया है। उनके अनुसार पहला सोपान साख्य-शास्त्र है, दूसरा वैशेषिक-शास्त्र, तीसरा मीमासा-शास्त्र, चौथा योग-शास्त्र, पाँचवाँ न्याय-शास्त्र, छठा वेदात, और सातवाँ 'साम्राज्य'-शास्त्र है।[3] साख्य-योग और न्याय-वैशेपिक को तुलसी का प्रतिपाद्य मानना सर्वथा असगत है। 'विनयपत्रिका' मे उन्होने इन पर तीव्र आक्षेप किया है।[4]

'मानस' के सोपान वस्तुत भक्ति के सोपान है। फिर भी यदि उनकी ज्ञानपरक व्याख्या की जाए तो किसी सीमा तक 'योगवासिष्ठ' मे प्रतिपादित सात ज्ञान-भूमियो[5] के

---

१ देखिए, मानस में रामकथा, पृ० १४८-५४

२. देखिए रामचरितमानस, १।३७।१ पर विजया टीका

३ देखिए मानस-पीयूष, १।३७।१

४. विनयपत्रिका, १११।४, मिलाकर देखिए ' महिम्नस्तोत्र, ९ और उस पर मधुसूदनीव्याख्या

५. योगवासिष्ठ, ३।११८।२-१५, ६/१।१२०।१-९

अनुसार की जा सकती है। १ प्रथम सोपान शुभेच्छा का प्रतिपादक है। प्रस्तावना मे भरद्वाज और पार्वती ने राम-कथा सुनने की शुभेच्छा प्रकट की है। २. द्वितीय सोपान मे मे विचारणा का, सदाचारपरक प्रवृत्ति का, निरूपण किया गया है। इस सोपान मे निबद्ध सभी सत्पात्र धर्मपरायण हैं। ३ तृतीय सोपान मे तनुमानसा का उपस्थापन है। राम विषयो मे असक्त हैं, लक्ष्मण, शबरी और नारद को दिये गये उपदेशो मे वैराग्य की विशेषता है। ४ 'वैराग्य' चित्त की विषयविमुखता और निषेधात्मक वृत्ति का द्योतक है, 'सतोष' मन की क्षोभरहित अवस्था तथा आत्मानुभव की ओर अग्रसर चित्त की भावात्मक वृत्ति का ज्ञापक है। अत चतुर्थ सोपान सत्त्वापत्ति का व्यजक है। तारा और सुग्रीव के अज्ञान-निवारण के प्रसग पाठक की विषय-विरक्ति को दृढ करते हैं। ५ पचम सोपान मे असससक्ति है। उसमे महामोह के प्रतीक रावण[1] की लका का दहन अविद्याजन्य सस्कारो के नाश का प्रतीक है। विभीषण का लका-त्याग कर राम की शरण मे जाना परमात्मतत्त्व मे साधक की दृढ स्थिति का निदर्शक है। ६ षष्ठ सोपान मे 'रामायण' की मूलकथा की समाप्ति पर पाठक के मन मे राम की सत्यता एव जागतिक पदार्थो के मिथ्यात्व की भावना दृढ होती है। अतएव इस सोपान मे पदार्थाभावनी भूमिका की व्यजना हुई है। ७ सप्तम सोपान मे, विशेषकर विज्ञान-दीपक के प्रकरण मे, ज्ञान का निरूपण तुर्यगा का प्रत्यायक है। तुलसी भक्तिवादी हैं, इसलिए उन्होने भक्ति को ज्ञान से उच्चतर भूमि पर प्रतिष्ठित किया है। यह भक्ति का वैशिट्य है कि वह तुरीया भी है और सप्तपदा ज्ञानभूमि से बहुत ऊपर तुरीयातीत भी है।[2]

अब भक्ति के केंद्रबिंदु से सातो सोपानो का निरीक्षण कीजिए। 'ज्ञान नयन निरपत' का तात्पर्य यह है कि भक्ति के सोपान मूढो को दृष्टिगोचर नही हो सकते, उन्हे देखने के लिए ज्ञान-दृष्टि अपेक्षित है।[3] वे सोपान राम-भक्ति के पथ हैं, अर्थात् उनके पारायण से रामभक्ति की उपलब्धि होती है। वैराग्य आदि भक्ति के साधन हैं। इससे यह निष्कर्ष नहीं निकालना चाहिए कि सातवें सोपान पर पहुँच कर ही भक्ति-जल प्राप्त होता है। वास्तविकता यह है कि 'मानस' भक्ति-जल से लबालब भरा है। पहले ही सोपान के आरभ से भक्तिरस मिलने लगता है। पाठक ज्यो-ज्यो गहराई मे उतरता जाता है त्यो-त्यो भक्ति-जल मे प्रवेश करता जाता है, और सातवें सोपान पर पहुँचकर वह भक्तिरस मे पूर्णत मग्न हो जाता है।

सप्तसोपान 'मानस' के चार घाट हैं।[4] व्याख्याताओ ने उनके जो विवरण दिये हैं

१, देखिए विनयपत्रिका, ५८।४

२ देखिए तुलसी-दर्शन-मीमासा, पृ० २५५-५७

३. पावन पर्वत वेद पुराना। रामकथा रुचिराकर नाना॥
मर्मी सज्जन सुमति कुदारी। ज्ञानबिराग नयन उरगारी॥
भाव सहित खोजइ जो प्रानी। पाव भगतिमनि सब सुखखानी॥

—रामचरितमानस, ७।१२०।७ ८

४. सुठि सुदर सवाद बर बिरचे बुद्धि बिचारि।
तेइ एहिं पावन सुभग सर घाट मनोहर चारि॥

—मानस-पीयूष, १।३६

उन्हे इस प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है

काकभुशुडि-गरुड-संवाद
उपासनाघाट पनघट

शिव-पार्वती-सवाद ज्ञानघाट राजघाट	रामयश-जल से परिपूर्ण रामचरितमानस	तुलसी-सत-संवाद प्रपत्तिघाट · गायघाट

याज्ञवल्क्य-भरद्वाज-सवाद
कर्मघाट पचायती घाट

चार सवादो की बात तुलसी की रचना के अनुरूप है। 'पनघट' आदि की अनपेक्षित कल्पना 'मानस' की गभीरता को कम करती है। चारो घाटो को कर्म, ज्ञान, उपासना और प्रपत्ति के घाट मानना भी सगत नही जँचता। सभी वक्ताओ का मुख्य प्रतिपाद्य रामभक्ति ही है। सभी श्रोता अत मे भक्ति-विभोर ही दिखायी देते है। फलश्रुतियाँ भी इसी तथ्य का समर्थन करती हैं। तुलसी की भक्ति प्रपत्त्यात्मक है। उसका कोई अलग घाट नही हो सकता।

चरित्र-चित्रण

मनुष्य की स्वार्थपरता उसकी काव्यानुभूति मे भी परिलक्षित होती है। वह जिस काव्य मे जितनी ही अधिक मानव-छाया की अभिराम अभिव्यक्ति पाता है उससे उतना ही अधिक प्रभावित होता है। उसके व्यापकतम रूप का चित्राकन महाकाव्य मे किया जा सकता है। इसलिए महाकवि अपनी महती कृति मे आबालवृद्धवनिता के विभिन्न जीवन-पक्षो का, उनके रूप, भाव, गुण, क्रिया और परिवेश का, हृदय-सवादी चित्र प्रस्तुत करता है। चेतन तिर्यक् पात्रो एव अचेतन प्रकृति के मूल मे इसी उद्देश्य-पूर्ति की भावना निहित है। पात्रो का चरित्र उनके व्यक्तिगत सस्कारो और बाह्य परिस्थितियो के समिलित प्रभाव से विकसित होता है। सूक्ष्मदर्शी कवि उनकी आत्मा मे प्रवेश करके, अपने को उन परिस्थितियो मे डालकर, उनकी चारित्रिक विशेषताओ का निरूपण करता है।

१ 'रामचरितमानस' मे पात्रो का वैविध्य है।[1] परब्रह्म परमेश्वर से लेकर

---

१. देखिए. इस ग्रथ का पृष्ठ ३०४

मकडी[1] तक की योजना की गयी है। उसमे मानव के अतिरिक्त देवता, राक्षस, वानर-भालू और पशु-पक्षी सभी प्रकार के पात्र है। सभी पर मानव-भावो का आरोप किया गया है। २ 'मानस' के पात्र परपरागत हैं। भारतीय महाकाव्य और नाटक की परपरा मे नायक, नायिका, प्रतिनायक आदि के चरित्र-चित्रण का साँचा बना हुआ है। वे उसी साँचे मे ढाल दिये जाते रहे हैं। व्यक्तिवैचित्र्य की प्राय उपेक्षा की गयी है। ३. परपरा-निष्ठ होते हुए भी तुलसी ने अपने मर्यादावाद, काव्य और मोक्षशास्त्र के समन्वय, लोक-सग्रह-भावना तथा परम रामभक्ति के अनुरूप उनके स्वरूप मे न्यूनाधिक परिवर्तन भी किया है। पात्रो की अच्छाई और बुराई की उनके पास एक ही कसौटी है रामभक्ति। ४ उन्होंने अपने पात्रो के स्वाभाविक गुणो का ध्यान रखा है, परिस्थितियो के अनुसार उनके चारित्रिक वैशिष्ट्य का उद्घाटन करके उन्हे सजीव बनाया है, उनकी सबलताओ और दुर्बलताओ की व्यजना द्वारा उनको लौकिक धरातल के परिचित प्राणियो का सहज-ग्राह्य रूप प्रदान किया है। ५ जीव की मानसिक, वाचिक और कायिक प्रवृत्तियो के अनुसार उनके पात्रो का चरित्र तीन प्रकार से चित्रित हुआ है पात्रो की अतर्वृत्तियो के निरूपण द्वारा, उनकी वाचनिक अभिव्यक्तियो द्वारा, एव उनके शारीरिक क्रिया-कलाप के माध्यम से। ६. ईश्वरविषयक काव्य और पौराणिक कथा मे अलौकिक तत्त्वो का समावेश अनिवार्य था। तुलसी की सफलता इस बात मे है कि उनके अलौकिक पात्र हमारे लौकिक भावो को उद्बुद्ध करके हमे अलौकिक रस की अनुभूति कराते हैं। ७ लौकिकता की दृष्टि से उनके पात्रो के दो वर्ग हैं आदर्श और यथार्थ। राम, सीता, रावण, भरत, हनुमान् आदि आदर्श पात्र हैं, क्योकि उनमे कवि ने अपनी सकल्पना के अनुसार सात्त्विक अथवा तामस गुणो की प्रधानता दिखलायी है। दशरथ, लक्ष्मण, कैकेयी, मथरा, सुग्रीव आदि यथार्थ पात्र हैं। उनके चरित्र-चित्रण मे सामान्य मानव की शक्ति और सीमा, राग और द्वेष, हर्ष और विषाद आदि की स्वाभाविक अभिव्यक्ति हुई है। ८ प्रासगिकता की दृष्टि से भी पात्रो के दो वर्ग हैं कथा-गत और कथातर-गत। पहले वर्ग के राम, रावण आदि 'मानस' के प्रकृत कथानक के वास्तविक पात्र हैं। दूसरे वर्ग के पात्रो की निबधना राम-चरित्र की व्याख्या और प्रशस्ति के उद्देश्य से ग्रथ के उपक्रम और उपसहार मे की गयी है। रामचरित के क्रम मे शकर, सती, भरद्वाज, गरुड अथवा काकभुशुडि का उल्लेख चरित्र-चित्रण की दृष्टि से महत्त्वहीन है। अत प्रकृत कथा के पात्रो का ही सक्षिप्त चरित्रालोचन वाछनीय है

नायक राम : तुलसी ने राम का चित्रण दो दृष्टियो से किया है। भक्ति-दृष्टि से उनके ईश्वरत्व का प्रतिपादन किया गया है। उन्होने अधर्म और अधर्मियो के नाश, धर्म-सस्थापन तथा भक्तो को लीला का आनद देने के लिए अवतार लिया है। राक्षसो का वध, शरणागतो की रक्षा, राम-राज्य की स्थापना एव ऋषि-मुनियो आदि को अनुगृहीत करके वे उक्त कार्यों का सपादन करते हैं। वे नर-लीला कर रहे हैं, इसलिए कवि को उनके ईश्वरत्व की बारबार याद दिलानी पडी है। उनके लोकरक्षक एव लोकरजक

---

१. सर पैठत कपि पद गहा मकरी तब अकुलान ॥—रामचरितमानस, ६।५७

चरित्र का अनुमोदन करते हुए देवगण समय-समय पर फूल बरसाते और दुदुभी बजाते है। शूर्पणखा के नाक-कान कटवाने, बालि को छिप कर मारने अथवा सुग्रीव-विभीषण के प्रति पक्षपात करने मे भक्तो को कोई अनौचित्य नही दिखायी पडता। सर्वदोषविवर्जित भगवान् की लीला मे दोष देखना पाप है।

काव्य-दृष्टि से, राम मे धीरोदात्त नायक के शास्त्र-प्रतिपादित सभी सामान्य तथा विशिष्ट गुणो का निधान है कुलीनता, सुदरता, सुशीलता, विनय, मधुरता, प्रियवादिता, विदग्धता, त्याग, दक्षता, पवित्रता, तेजस्विता, लोकप्रियता, बुद्धि, उत्साह, स्मृति, प्रज्ञा, मान, गभीरता, क्षमा, धीरता, उदात्तता, दृढता, महाप्राणता, शूरता, शास्त्रज्ञता, धार्मिकता आदि।[1] उनका सारा चरित्र इन विशेषताओ से परिपूर्ण है। उनका स्वभाव निश्छल है।[2] भाइयो पर अगाध स्नेह है। गुरुजनो के प्रति आदर-श्रद्धा है। दास-दासियो पर असीम अनुकपा है।[3] उनका एकपत्नीव्रत श्लाघ्य है। वे नि स्वार्थ[4], सकोचशील[5], कर्तव्यनिष्ठ[6], और अपकारियो के प्रति भी उदार[7] हैं। अपने महान् गुणो के कारण वे मर्यादापुरुषोत्तम हैं। 'मानस' मे तुलसी ने उन्हे सीता-निर्वासन और लक्ष्मण-त्याग के दोष से बचा लिया है।

भगवान् की तीन विभूतियो की चर्चा प्राय की गयी है शील, शक्ति और सौंदर्य। वे क्रमश धर्मस्थापन, लोकरक्षण और लोकरजन के लिए आवश्यक हैं। भारतीय महाकाव्य के नायक मे ये तीनो गुण नियमत पाये जाते हैं। तुलसी के राम भगवान् होने के साथ ही महाकाव्य के नायक भी है। उनमे तीनो के उत्कर्ष की पराकाष्ठा है[8]

१. i. रूप सकहिं नहि कहि श्रुति सेषा। सो जानै सपनेहुँ जेहिं देखा॥

ii. रामहि देखि एक अनुरागे। चितवत चले जाहिं सँग लागे॥

एक नयन मग छबि उर आनी। होहिं सिथिल तन मन बर बानी॥

---

१. देखिए दशरूपक, २।१-२, ४-५, १०, साहित्यदर्पण, ३।३०, ३२

२. रामु कहा सब कौसिक पाहीं। सरल सुभाउ छुआ छल नाहीं॥
—रामचरितमानस, १।२३७।१

३. दासी दास बोलाइ बहोरी। गुरहि सौंपि बोले करि जोरी॥
सब कै सार सँभार गोसाईं। करबि जनक जननी की नाईं॥
—रामचरितमानस, २।८०।३

४. बिमल बंस येहु अनुचित एकू। बधु बिहाइ बड़ेहि अभिषेकू॥
—रामचरितमानस, २।१०।४

५. लखि लघु बंधु बुद्धि सकुचाई। करत बदन पर भरत बड़ाई॥
भरतु कहहिं सोइ किएँ भलाई। अस कहि रामु रहे अरगाई॥
—रामचरितमानस, २।२५९।४

६. रामचरितमानस, २।७६, २।२५८।२-३

७. प्रथम राम भेंटी कैकेयी। सरल सुभायँ भगति मति भेई॥
पग परि कीन्ह प्रबोधु बहोरी। काल करम बिधि सिर धरि खोरी॥
—रामचरितमानस, २।२४४।१

८. रामचरितमानस १।१९९।६, २।११४।४, ३।१९।२-३, १।२६१।४, ६।९२।४, २।१।१, ३
७।४३।३

iii. हम भरि जनम सुनहु सब भाई। देखी नहि असि सुदरताई ।।
जद्यपि भगिनी कीन्हि कुरूपा। बध लायक नहि पुरुप अनूपा ।।
२. i. लेत चढावत खैंचत गाढे। काहु न लखा देख सबु ठाढे ।।
तेहि छन राम मध्य धनु तोरा। भरेउ भुवन धुनि घोर कठोरा।।
ii. रावन सिर सरोज बन चारी। चलि रघुवीर सिलीमुख धारी ।।
दस दस बान भाल दस मारे। निसरि गए चले रुधिरपनारे ।।
३ i गुर आगमनु सुनत रघुनाथा। द्वार आइ पद नायेउ माथा ।।···
सेवक सदन स्वामि आगमनू। मगलमूल अमगलदमनू ।।
ii जौं अनीति कछु भाषौं भाई। तौ मोहि बरजहु भय बिसराई ।।

वे धनुष तोडे बिना ही सीता पर आसक्त हो जाते हैं, उनके वियोग मे, जटायु को देखकर और लक्ष्मण के मूर्च्छित होने पर रोते हैं, परशुराम की बात से उत्तेजित होते हैं, समुद्र पर क्रोध करते हैं, शूर्पणखा और वालि के प्रति अन्याय करते हैं, सुग्रीव-विभीषण का पक्षपात करते हैं। ये सब उनकी छोटी-बडी कमजोरियाँ हैं जो उन्हें मनुष्य बनाती हैं। अन्यथा वे काव्य के जीवत पात्र न बन पाते, मनुष्य न हो पाते, मनुष्यो के काम के न हो पाते।

प्रतिनायक रावण . परपरा[1] के अनुसार वह मायावी, प्रचड, चपल, अहकारी, घमडी, मत्सरी, विकत्थन, पापी और व्यसनी है[2]

१ रनमद मत्त फिरै जग धावा। प्रतिभट खोजत कतहुं न पावा ।।
२ देव जच्छ गधर्व नर किन्नर नाग कुमारि।
जीति बरीं निज बाहु बल बहु सुदर बर नारि ।।
३. बरुन कुबेर पवन जम काला। भुजबल जितेउँ सकल दिगपाला ।।
४. सिरो गिरे सतत सुभ जाही। मुकुट खसे कस अवगुन ताही ।।

'मानस' की प्रस्तावना मे उसके अत्याचारो का विस्तृत वर्णन है। वह शुद्ध भौतिकतावादी है। सम्राट् होते हुए भी उसमे साम्यवादी विचारधारा पायी जाती है उसकी सारी लका सोने की है, वह योग्यतानुसार सपत्ति का वितरण करता है, और सबसे बडे पूँजीपति कुबेर को लूट लेता है।[3] वह पुरुषार्थवादी और आशावादी है, अतिम समय तक उत्साह से लडता है।[4] बहन के नाक-कान कटवाने वाले शत्रु की पत्नी का हरण स्वाभाविक है। राम के ईश्वरत्व की सभावना को मानते हुए भी वह वैर ठानता है।[5] धीरता, शूरवीरता,

१. देखिए . दशरूपक, २।९, साहित्यदर्पण, ३।१३१
२. रामचरितमानस, १।१८२।४, १।१८२, ६।८।२, ६।१४।२
३. जेहि जस जोग बाँटि गृह दीन्हे। सुखी सकल रजनीचर कीन्हे।
एक बार कुबेर पर धावा। पुष्पक जान जीति लै आवा ।।
—रामचरितमानस, १।१७९।४
४. गर्जेउ मरत घोर रव भारी। कहाँ रामु रन हतौं पचारी ।।
—रामचरितमानस, ६।१०३।२
५ रामचरितमानस, ३।२३।२-३

विदग्धता, स्वाभिमान, आत्मविश्वास आदि उसके विशिष्ट गुण है। प्रतिनायक के महान् शक्तिशाली रूप की कल्पना नायक को महत्तर सिद्ध करने के लिए की गयी है। तुलसी ने अपनी भक्ति-भावना और युग-प्रभाव के कारण रावण के चरित्र के कृष्णपक्ष को उभार कर अकित किया है, उसके शुक्लपक्ष की उपेक्षा की है।

अन्य प्रमुख पुरुष-पात्र : तुलसी के आदर्श **भरत** हैं। उनका दिव्य चरित्र निष्कलक है। उसमे धर्मशीलता, लोकभीरुता, स्नेह, और भक्ति का सामजस्य है, उनकी नि स्वार्थता, भ्रातृप्रेम और कर्तव्यपरायणता की महिमा अद्वितीय है।[1] अयोध्याकाड मे और उत्तरकाड के आरभ मे कवि ने पूरी तन्मयता और सहृदयता से उनका चित्तस्पर्शी चरित्राकन किया है। केवल एक बात कुछ खटकती है रामभक्ति एव आत्मग्लानि से अभिभूत होकर वे कैकेयी के प्रति आवश्यकता से अधिक निष्ठुर हो गये हैं।[2] **लक्ष्मण** का चरित्र राम के समान व्यापक है। वे छाया की भाँति राम के साथ रहते हैं। वे उद्धत, निर्भय, साहसी, स्पष्टवक्ता, दृढ, कर्मठ और रामभक्त है। जनक, परशुराम, दशरथ, भरत, सुग्रीव, और समुद्र के प्रति उनकी असहनशीलता का दिग्दर्शन मिलता है।[3] वे धीर भी है। वन-गमन के शोकपूर्ण प्रसग मे उन्होने कोई विद्रोह नही किया। उनकी परशुराम-परक उक्तियो के हास्य-व्यग्य मे डॉ० माताप्रसाद गुप्त को असामजस्य दिखायी देता है।[4] मेरे विचार से, मनोविज्ञान के मर्मज्ञ तुलसी का वह विधान अतीव उपयुक्त है। किसी चिडचिडे को चिढाने मे ही मजा है, शत्रु-बल की हानि है। **दशरथ** का चरित्र गुणदोषमय है। विलासी राजा छोटी रानी के वश मे होता आया है, बूढा पति युवती पत्नी के इशारे पर नाचता रहा है। दशरथ की यही गति है। भरत की अनुपस्थिति मे रामाभिषेक की निष्फल योजना से उनकी अदूरदर्शिता सूचित होती है। डॉ० माताप्रसाद गुप्त इस स्थल को कला की दृष्टि से असफल मानते हैं।[5] वस्तुत दशरथ की गलती और स्वाभाविक कमजोरी का यथार्थ चित्रण करके तुलसी ने कला-कुशलता का परिचय दिया है। दशरथ के चरित्र का प्रशस्त गुण है प्राण देकर धर्म और स्नेह का एक-साथ निर्वाह। **हनुमान्** मे एक चरित्रवान्, पराक्रमी, बुद्धिमान्, सहृदय, कर्तव्यनिष्ठ, स्वामिभक्त और रामभक्त का आदर्श है। **विभीषण** धार्मिक, भ्रातृद्रोही और रामभक्त है। डॉ० गुप्त के अनुसार वह "अपने भ्राता, राजा और देश को उनकी महान् विपत्ति के समय त्यागने वाला एक स्वार्थपूर्ण चरित्र है।" परतु, उचित बात पर लात खाकर राजभक्त बने रहने में कोई परमार्थ नही दिखायी देता। **वालि** का चरित्र ऊँचा है। उसके सामने राम को धूमिल होना पडा। इनके अतिरिक्त वसिष्ठ, विश्वामित्र, जनक, सुमत्र, गुह, केवट, वाल्मीकि, अगद, सुग्रीव, मेघनाद, मारीच आदि पात्रो का चरित्राकन भी देश-काल-स्वभाव के

---

१. रामचरितमानस, २।१६०।२-२।१६२, २।१६७।३
२. रामचरितमानस, २।१६२।१-४
३. रामचरितमानस, १।२५३।१, १।२७१।४-१।२८०।३, २।१९।२, १।२२७-१।२३०, ४।१८।४, ५।५१।१-३
४. तुलसीदास, पृ० २९३
५. तुलसीदास, पृ० २९५

अनुसार सफलता से किया गया है।

प्रमुख नारी-पात्र : नायिका सीता मे भारतीय काव्य की आदर्श नायिका के सभी गुण विद्यमान हैं—शोभा, काति, दीप्ति, माधुर्य, सुकुमारता, लज्जा, सुशीलता, विनय, पतिपरायणता, सेवाभाव, उदारता, धैर्य आदि। पुष्पवाटिका, धनुपयज्ञ, अयोध्या, वन-पथ, अरण्य, अशोक-वाटिका और अग्नि-परीक्षा मे उनके इन गुणो की अभिव्यक्ति हुई है। सीता की करुण कथा भारतीय नारी की जीवन-गाथा है, उनका पातिव्रत्य भारतीय नारी के सतीत्व का प्रतीक है। काव्य-दृष्टि से वे नायिका हैं, भक्तिदर्शन की दृष्टि से राम की आदिशक्ति माया हैं। रामभक्तो के लिए विद्यारूपा और राम-विरोधियो के लिए अविद्यारूपा हैं। इस अविद्यामाया के कारण ही रावण का सर्वनाश हुआ। कौशल्या एव सुमित्रा आदर्श-माताएँ तथा आदर्श-पत्नियाँ हैं। सौतेले पुत्रो के प्रति उनके वात्सल्य का प्रतिमान नही है। कैकेयी, मथरा, सूर्पणखा और ताड़का की चर्चा नारी-भावना के प्रसग मे की जा चुकी है। कैकेयी की कवित्वमयी मार्मिक उक्तियो[1] मे 'अनावश्यक' निर्दयता और 'अकारण भयानकता' का दर्शन[2] करना समीचीन नही है। जीवन की यथार्थता और कवित्व की दृष्टि मे मथरा का चरित्र-चित्रण अत्यत उत्कृष्ट है। अहल्या, तारा और मदोदरी की गणना पचकन्याओ मे की जाती है। मदोदरी का चरित्र अधिक महत्त्व का है। वह रावण की पत्नी होकर भी राम-भक्त है। अपने पति को राम का विरोध करने से बरजती है, राम-भक्ति का उपदेश देती है, उसकी निंदा और भर्त्सना करती है, उसे नीच तथा निर्लज्ज कहती है[3], और उसकी मृत्यु पर विलाप करती है

तव बस विधि प्रपच सब नाथा। सभय दिसिप नित नावहिं माथा॥
अब तव सिर भुज जबुक खाहीं। राम विमुख येह अनुचित नाहीं॥[4]

उसके उपदेश और प्रलाप मे तुलसी की भक्ति-भावना ने उसके पत्नीत्व को ढक लिया है। पति के लिए अपशब्दो का प्रयोग और उसके देहावसान पर उसकी निंदा शोभा की बात नही है।

तुलसी की चरित्र-चित्रण-कला का प्रकर्ष पात्रो की अतर्वृत्तियो के सूक्ष्म निरूपण मे है। भरत की मनोदशा के आलेखन से दो उदाहरण लिये जा सकते हैं[5]

१ फेरति मनहि मातुकृत खोरी। चलत भगतिबल धीरजधोरी॥
जब समुझत रघुनाथ सुभाऊ। तब पथ परत उताइल पाऊ॥
भरत दसा तेहि अवसर कैसी। जलप्रवाहँ जल अलि गति जैसी॥
२ अवसि फिरहिं गुर आयेसु मानी। मुनि पुनि कहब राम रुचि जानी॥
मातु कहेहु बहुरहिं रघुराऊ। रामजननि हठ करबि कि काऊ॥
मोहि अनुचर कर केतिक बाता। तेहि महँ कुसमउ बाम बिधाता॥

---

१. रामचरितमानस, २।३३।३, २।३५।३-४
२. देखिए तुलसीदास, पृ० ३०२
३. रामचरितमानस, ६।३६।१-६।३७
४. रामचरितमानस, ६।१०४।६
५. रामचरितमानस, २।२३४।३-८, २।२५३।२-४

जौं हठ करउँ त निपट कुकरमू। हरगिरि तें गुरु सेवकधरमू॥
एकउ जुगुति न मन ठहरानी। सोचत भरतहि रैनि बिहानी॥

पहले उद्धरण मे ग्लानि, सकोच तथा विश्वास की, और दूसरे मे विषम-परिस्थिति-जन्य वितर्क की व्यजना द्वारा भरत के शील का चित्तद्रावक चित्रण किया गया है।

तुलसी ने जीवन की विभिन्न दशाओ मे पात्रो की व्यक्तिगत चारित्रिक विशेषताओ का तो हृदयस्पर्शी उद्‌घाटन किया ही है, समुदायविशेष की प्रवृत्तियो का भी स्थान-स्थान पर मनोहारी चित्राकन किया है। वानरो, राक्षसो, बालको, नारियो आदि की स्वाभाविक विशेषताएँ बडी सजीवता से अकित की गयी हैं। जनकपुर, अयोध्या और वनपथ की नारियो की मनोदशा के वर्णन मे उनकी कारयित्री प्रतिभा का उत्कर्ष दर्शनीय है। कुल मिलाकर कवि ने "चरित्रो का चित्रण एक कुशल तूलिका से किया है। इस क्षेत्र मे उसकी मौलिक प्रवृत्तियो का परिचय हमे सामान्यत आवेश, अविचार और अधीरता से आधार-ग्रथो के चरित्रो को मुक्त कर उन्हे एक व्यापक और उदार दृष्टि, हृदय की विशालता, सरलता, मात्सर्यहीनता, विनम्रता, स्निग्धता, धार्मिकता और भक्ति प्रदान करने मे मिलता है।"[१] पात्रो के विविध पक्षो का प्रभावशाली प्रकाशन, उनके गुणदोषो का स्वाभाविक एव कलात्मक सनिवेश प्रबध-कवि की सफलता का प्रमाण है।

मर्यादावाद 'मर्या' का अर्थ है 'सीमा'। तदनुसार 'मर्यादा' का तात्पर्य है. नैतिक व्यवस्था, शिष्टाचार का नियम, सदाचरण का औचित्य। समाज ने धर्म और अधर्म, नीति और अनीति, सदाचार और कदाचार, शिष्टता और अशिष्टता, उचित और अनुचित, श्लील और अश्लील आदि के सबध मे कुछ निश्चित मान्यताएँ स्थापित कर रखी हैं। तत्सबधी औचित्य पर आश्रित सिद्धात **मर्यादावाद** है। 'रामचरितमानस' धर्मप्राण ग्रथ है। उसके पात्रो दशरथ, राम, सीता, जनक, लक्ष्मण, कौशल्या, सुमित्रा, भरत, जटायु आदि ने धर्म-पालन के लिए दुस्सह क्लेश सहे हैं। लोकसग्राहक धर्म की प्रतिष्ठा और मर्यादा-निर्वाह का आदर्श प्रस्तुत करना भी 'मानस' का एक प्रधान लक्ष्य है। अत उसके नायक मर्यादापुरुषोत्तम राम हैं।

मर्यादा के दो आधार हैं वैयक्तिक और सामाजिक, अर्थात् मर्यादा का पालन या उल्लघन दो प्रकार से हो सकता है व्यक्ति के द्वारा अथवा व्यक्तिसमूह के द्वारा। मर्यादा-उल्लघन के मुख्य कारण हैं अविचार, आवेश और स्वार्थाधता। 'मानस' के सत्पात्र इन दोषो से प्राय मुक्त हैं। **अध्यात्मरामायण**[२] मे कौशल्या, सीता, भरत, अगद आदि लगभग एक दर्जन पात्र अविचार एव आवेश के कारण आत्महत्या करने की धमकी देते हैं। वाल्मीकि की कौशल्या तथा सीता प्राणत्याग का भय दिखाती हैं, भरत और अगद आमरण अनशन की बात करते हैं।[३] उन्ही परिस्थितियो मे **रामचरितमानस** के ये पात्र धीरता और मर्यादा का निर्वाह करते है। सीता और भरत के मरण-व्यजक वाक्यो[४]

---

१. तुलसीदास, पृ० ३०६
२. अध्यात्मरामायण, २।४।१३, २।४।७६, २।७।८०, ४।७।७
३ वाल्मीकि-रामायण, २।२१।२७, २।२६।२१, २।१११।१४, ४।५३।१५
४. रामचरितमानस, २।६५।४, २।६६, ७।१।४

मे भी धमकी का अभाव, सयम का सद्भाव और हृदयस्पर्शी प्रभाव है

१. जिम्र बिनु देह नदी बिनु वारी। तैसिम्र नाथ पुरुष बिनु नारी ।।
राखिम्र अवध जो अवधि लगि रहत जानिम्रहिं प्रान।
२. वीते अवधि रहहिं जो प्राना। अधम कवन जग मोहि समाना ।।

धर्म की परख आपत्काल मे होती है। अनुकूल वातावरण मे शिष्टाचार का पालन सभी कर लेते हैं। उद्वेजक कारणो के विद्यमान होने पर भी मर्यादा के निर्वहण मे शील की महत्ता है। चौथे पन मे पुत्र-वियोग का दारुण कष्ट भोगते हुए दशरथ ने, कन्या के विवाह की असभावना पर जनक ने, पुत्रो के वन-गमन पर कौशल्या और सुमित्रा ने मर्यादा की पूर्णत रक्षा की है। उद्धत लक्ष्मण ने भी वन जाते समय कोई उद्दडता नही दिखायी। राक्षस रावण भी मदोदरी को साथ लेकर अशोक-वाटिका मे सीता के पास जाता है।[1] राजा होकर भी राम स्वेच्छा से प्रजा का आदेश मानने को तैयार हैं।[2] उनकी मर्यादा की रक्षा के लिए तुलसी ने सीता-निर्वासन का प्रसग 'रामचरितमानस' मे आने ही नही दिया, और जयत को सीता के चरण से आगे नही बढने दिया।[3]

'मानस' के सत्पात्रो ने आदर्श शिष्टाचार की मर्यादा औचित्यपूर्वक निभायी है। दशरथ-विश्वामित्र, विश्वामित्र-जनक, जनक-दशरथ, वसिष्ठ-राम, राम-कौशल्या-सीता आदि के पारस्परिक व्यवहार मे इसका उत्कृष्ट रूप द्रष्टव्य है।[4] राम को मनाने के लिए चित्रकूट मे एकत्र पात्रो के शिष्टाचरण मे इस मर्यादा की भी मर्यादा पायी जाती है। लका से लौटे हुए राम ने गुरु वसिष्ठ से विभीषण आदि का परिचय इस प्रकार कराया

पुनि रघुपति सब सखा बोलाए। मुनि पद लागहु सकल सिखाए ।।
गुरु वसिष्ठ कुलपूज्य हमारे। इन्ह की कृपा दनुज रन मारे ।।
ए सब सखा सुनहु मुनि मेरे। भए समर सागर कहँ बेरे ।।
मम हित लागि जन्म इन्ह हारे। भरतहु तें मोहि अधिक पिआरे ।।[5]

राक्षस-वानर-भालू शिष्टाचरण की मर्यादा क्या जानें! राम ने उन्हे सिखा दिया। उन्होने अपनी राक्षस-विजय का श्रेय पहले वसिष्ठ को दिया और फिर सखाओं को। सभी प्रसन्न थे। व्यवहार-कुशलता इसी को कहते हैं।

तुलसी के मर्यादावाद का प्रकृष्ट निदर्शन शृगार-वर्णन मे मिलता है। उन्होने शिव-पार्वती के शृगार का वर्णन करना मर्यादा के विरुद्ध समझा।[6] सीता-राम के सयोग

---

१. रामचरितमानस, ५।९।१
२ रामचरितमानस, ७।४३।२-३
३ रामचरितमानस, ३।१।८, वाल्मीकि-रामायण (५।३८।२२) और पद्मपुराण (६।२४२।१९६) के अनुसार जयत सीता के स्तन में चोंच मारकर भागा था।
४. रामचरितमानस, १।२०७।१-४, १।२१४-१।२१७, १।३२०।१-१।३२१।४, २।६।१-४, २।५१।१-२।६९
५ रामचरितमानस, ७।८।३-४
६ जगत मातु पितु सभु भवानी। तेहि सिंगारु न कहउँ बखानी ।।
—रामचरितमानस, १।१०३।२

और विप्रलभ का विशद निरूपण करते हुए भी उसे सर्वथा मर्यादित रखा है। जयदेव ने पुष्पवाटिका-प्रसग मे सीता के स्तन का भी चित्रण किया है।[1] हस्तिमल्ल ने 'कामदेव-भवन मे', 'माधवीकुज' मे और 'सकेतस्थल' पर सीता-राम के वासनाप्रधान मिलन-विरह का तीन बार निरूपण किया है।[2] मर्यादावादी तुलसी की दृष्टि सीता की काति, मुखमडल, साडी, भूषणो और कर तक ही सीमित रही है।[3] कालिदास के विरह-व्याकुल राम पुष्पगुच्छों वाली लता को सुस्तनी सीता समझ कर उसका आलिगन करने जा रहे थे, तब लक्ष्मण ने उन्हे रोका था।[4] तुलसी ने राम को इतना काममूढ नही होने दिया।

नारी-स्वभाव, महापातक आदि का सैद्धातिक प्रतिपादन करते हुए भी तुलसी ने अश्लील अशो के परित्याग मे मर्यादावादी दृष्टिकोण अपनाया है[5]

१ भ्राता पिता पुत्र उरगारी। पुरुष मनोहर निरखत नारी॥
होइ विकल सक मनहि न रोकी। जिमि रबिमनि द्रव रबिहि विलोकी॥

२ अनुजवधू भगिनी सुतनारी। सुनु सठ कन्या सम ए चारी॥
इन्हहि कुदृष्टि बिलोकै जोई। ताहि बधें कछु पाप न होई॥

ये उद्धरण सस्कृत-श्लोको के स्वच्छद अनुवाद हैं। पहले उद्धरण के चौथे चरण की मूल उक्तियो मे नारी की जननेंद्रिय का उल्लेख किया गया था।[6] तुलसी ने उसके स्थान पर 'रबिमनि द्रव' का निवेश करके मूल भाव की रक्षा करते हुए अश्लील अश को श्लील बना दिया। इसी प्रकार दूसरे उद्धरण के चौथे चरण के मूल वाक्यो मे 'वध' के साथ पुरुष की जननेंद्रिय का उल्लेख था।[7] तुलसी ने उसका तिरस्कार करके केवल 'वध' की बात कही।

तुलसी के युग मे धर्म की मर्यादा खडित हो रही थी। साधारण-धर्म, वर्णाश्रम-

---

१ प्रसन्नराघव, ७।१६

२. मैथिलीकल्याण, अक १, २, ३

३. अस कहि फिरि चितए तेहि ओरा। सिय मुख ससि भए नयन चकोरा॥
सुदरता कहुँ सुदर करई। छबि गृहँ दीपसिखा जनु बरई॥
—रामचरितमानस, १।२३०।२, ४

सोह नवल तनु सुदर सारी। जगतजननि अतुलित छबि भारी॥
भूषन सकल सुदेस सुहाए। अग अग रचि सखिन्ह बनाए॥
—वही, १।२४८।१-२

सखिन्ह मध्य सिय सोहति कैसी। छबि गन मध्य महाछबि जैसी॥
कर सरोज जयमाल सुहाई। विस्व विजय सोभा जेहि छाई॥
—वही, १।२६४।१

४. रघुवश, १३।३२

५. रामचरितमानस, ३।१७।३, ४।६।४

६. 'योनि क्लिद्यति नारीणाम्', 'क्लिदन्ति योनय॰ स्त्रीणाम्', 'योनिर्द्रवति योषित'
—मानसपीयूष, ३।१।६

७ याज्ञवल्क्य लिग छित्त्वा वधस्तस्य, नारद शिश्नस्योत्कर्तनात्—याज्ञवल्क्यस्मृति, ३।२३३ और उस पर मिताक्षरा

धर्म और निमित्त-धर्म सभी की स्थिति शोचनीय थी। लोक-धर्म की प्रतिष्ठा के लिए उन्होंने वर्णाश्रम-धर्म की व्यवस्था पर बल दिया। यह मर्यादा का सामाजिक या सामूहिक पक्ष था। तुलसी आदर्श समाज का नवनिर्माण चाहते थे। उनकी दृष्टि मे सामाजिक मर्यादा का (वर्णाश्रम-धर्म का) उल्लघन लोक के लिए मगलकारी नही था। "वर्ण-विभाग केवल कर्म-विभाग नही है, भाव-विभाग भी है। श्रद्धा, भक्ति, दया, क्षमा आदि उदात्त वृत्तियो के नियमित अनुष्ठान और अभ्यास के लिए भी वे समाज मे छोटी-बडी श्रेणियो का विधान आवश्यक समझते थे।"[1] समाज के शासन और सुधार का दायित्व उच्च वर्ग के लोगो पर है, निम्न वर्ग का कर्तव्य उनकी व्यवस्था मे श्रद्धा रखना है। इसीलिए उन्होने धर्मभ्रष्ट ब्राह्मणो और अनधिकार चेष्टा करने वाले शूद्रो की विगर्हणा की है। ब्राह्मण-वर्ग के प्रति उनका पक्षपात जातिवाद पर आश्रित नही है, वह लोक-मगल-भावना से प्रेरित है। राजधर्म और स्त्रीधर्म लोक-व्यवस्था के मुख्य आधार हैं। अत उनकी मर्यादा पर तुलसी ने विशेष ध्यान दिया है। उनकी सामाजिक-धार्मिक मान्यताओ की विचार-चर्चा की जा चुकी है।

'मानस' मे मर्यादा-भग के भी उदाहरण पाये जाते हैं। धनुष-यज्ञ मे परशुराम तथा लक्ष्मण, और लका की सभा मे अगद एव रावण का व्यवहार असभ्य है। दोनो ही आवेश की परिस्थितियाँ हैं। वानर और राक्षस की असभ्यता स्वाभाविक है। राम ने नारी शूर्पणखा के नाक-कान कटवाकर, वालि को धोखे से मारकर, सुग्रीव-विभीषण के प्रति पक्षपात करके[2], और अवतार के पूर्व वृदा का पातिव्रत नष्ट करके[3] मर्यादा का उल्लघन किया है। भक्तो का उत्तर है कि भगवान् की ये लीलाएँ लोक-कल्याण के लिए हैं। यह समाधान प्रत्यायक नही है। धर्म की रक्षा के लिए, चाहे वह कितना ही व्यापक क्यो न हो, अधर्म करना कलक से मुक्त नही है। कवित्व की दृष्टि से ये प्रसग निस्सदेह आकर्षक है। राम की इन नर-लीलाओ मे उन लौकिक प्रभुओ का चरित्र खूब प्रतिबिंबित हुआ है जो आत्मसमर्पण करनेवाले भक्तो का हित और स्वाभिमानी अभक्तो का अहित करने के लिए मर्यादा का बाँध तोडकर पाप-कर्म मे पिल पडते हैं। तुलसीदास ने रामभक्ति-विरोधियो के लिए जिन अपशब्दो का प्रयोग किया है वे भी मर्यादा-विरुद्ध हैं।[4] परतु, उनकी सटीक और मार्मिक व्यजना का अपलाप नही किया जा सकता। इने-गिने व्यतिक्रमो से तुलसी के उदात्त मर्यादावाद की महिमा नष्ट नही होती। मर्यादा-भग की स्थितियो मे भी उनकी उक्तियाँ कुछ-न-कुछ मर्यादित हैं। कबीर, सूर आदि ने तो बहुत ही गदी बातें कही हैं।[5]

---

१. रामचंद्र शुक्ल · गोस्वामी तुलसीदास, पृ० ४५

२. जेहि अघ बधेउ ब्याध जिमि बाली । फिरि सुकठ सोइ कीन्हि कुचाली ॥
सोइ करतूति बिभीषन केरी । सपनेहुँ सो न राम हिअँ हेरी ॥
—रामचरितमानस, १।२९।३-४

३. छल करि टारेउ तासु ब्रत प्रभु सुर कारज कीन्ह । —रामचरितमानस, १।१२३

४ रामचरितमानस, १।११४-१।११५।४, ७।७५।१, कवितावली, ७।४०

५. जो तू बाम्हन बाम्हनि जाए । और राह तुम काहे न आए ।।—कबीर-वचनावली, पृ० २०८
सूरदास पूरीपहि षटपद कहत फिरत है सोई ।—भ्रमरगीतसार, पद १६९

'मानस' का अंगी रस

प्रबध-काव्य मे विविध प्रकार के अर्थों का सनिवेश होता है। उसमे अवसर के अनुसार अनेक रसो की निबधना की जाती है। परस्पर-विच्छिन्न अर्थ और भाव उसके लालित्य-विधान को लोकोत्तरचमत्कारपूर्ण नही बना सकते। अतएव अर्थविशेप की सिद्धि, सौदर्यातिशय की पुष्टि, एव रस की घनीभूत अभिव्यक्ति के लिए यह आवश्यक है कि कवि अगी, प्रधान या मुख्य रस के रूप में किसी एक रस की निबधना पर प्रयत्नपूर्वक ध्यान दे और अग-रूप मे अन्य रसो की योजना करके उसे पुप्ट करे।[1]

किसी प्रबध के अगी रस का निर्धारण निम्नाकित प्रश्नो के उत्तर पर निर्भर है १ क्या कवि ने स्वय अपने प्रबध के अगी रस के रूप मे किसी रस का उल्लेख किया है, २ कौन-सा रस रचना के उपक्रम और उपसहार दोनो मे निबद्ध है, ३ कौन-सा रस आधिकारिक कथावस्तु के नायक पर आश्रित है, ४ नायक की मुख्य या स्थायी वृत्ति का घनिष्ठ सबध किस रस से है, ५ आलोच्य काव्य मे किस रस का पूर्ण परिपाक हुआ है, ६. कौन-सा रस अन्य रसो की अपेक्षा अधिक पुष्ट है, ७. अन्य रस किस रस के पोषक और अग हैं, ८. प्रबध के बीच-बीच मे किस रस की अभिव्यक्ति हुई है, ९ किस रस की व्याप्ति सर्वाधिक है, १० सपूर्ण रचना की प्रबध-ध्वनि क्या है, ११. कवि के मूल उद्देश्य अथवा कृति के सारभूत प्रभाव की व्यजना किस रस के माध्यम से हुई है ?

उपलब्ध प्रबधो के आधार पर सस्कृत-काव्यशास्त्रियो ने यह सिद्धात बना लिया था कि शृगार, वीर या शात ही किसी महाकाव्य का अगी रस हो सकता है।[2] शास्त्रानुयायी हिंदी-समीक्षको ने उस नियम को 'रामचरितमानस' मे भी घटाने का प्रयास किया है। इस सबध मे दो बातें स्मरणीय हैं। एक यह कि विश्वनाथ आदि लक्षणकारो का लक्ष्य 'रामचरितमानस'-जैसा कोई महाकाव्य नही था, और दूसरी यह कि तुलसीदास रीति-बद्ध होते हुए भी रीतिमुक्त थे, परपरानुयायी होकर भी प्रगतिशील थे। हिंदी के 'रस-सिद्धाती आचार्य' लक्ष्य ग्रथो के आधार पर मौलिक चिंतन न करके पुरानी लकीर की परछाईं पीट रहे हैं।

शृगार-रस . शृगार को 'रामचरितमानस' का अगी रस सिद्ध करने के लिए तीन तर्क दिये जा सकते हैं। १ उसमे शृगार के सयोग-वियोग-पक्षो का पूर्ण परिपाक हुआ है। २ 'मानस' भक्तिग्रथ है। "भक्ति-मार्ग मे, चाहे वह वात्सल्य, सख्य, माधुर्य या दास्य किसी भाव की उपासना का मार्ग हो, ब्रह्म के प्रति आकर्पण या रति का होना अनिवार्य है। अत 'मानस' मे जो प्रधान रस है वह अलौकिक शृगार रस ही है और इसी को गौडीय वैष्णव आलकारिको ने भक्तिरस कहा है।"[3] ३ कवि ने उपक्रम मे 'हरिपद

---

१. ध्वन्यालोक, ४।५ और उस पर वृत्ति' और देखिए ३।२१-२७ और उन पर लोचन

२ शृगारवीरशान्तानामेकोऽङ्गी रस इष्यते।
अंगानि सर्वेऽपि रसा. सर्वे नाटकसन्धय ॥—साहित्यदर्पण, ६।३१७

३ हिंदी-महाकाव्य का स्वरूप-विकास, पृ० ५५६

रति रस' और उपसहार मे 'कामिहि नारि पिआरि जिमि' के द्वारा इसी रस की व्यजना की है।[1]

ये तर्क अत्यत निर्बल हैं। १ यह ठीक है कि 'मानस' मे अनेक स्थलो पर पुष्ट शृगार की अभिव्यक्ति हुई है, किंतु उसकी व्याप्ति वहुत सीमित है। २ तुलसी की दास्य भक्ति को 'अलौकिक शृगार' के अतर्गत वताना असगत है। शृगार का स्थायी भाव काम-रति है। तुलसी का दास्य निष्काम है। यदि उनकी भक्ति कात-काता-भाव की मधुरा रति होती तो उसको किसी प्रकार तथाकथित 'अलौकिक शृगार' के कोष्ठ मे रखा भी जा सकता था। ३ 'हरिपद रति' मे 'रति' शब्द काम-रति का द्योतक नही है और 'कामिहि नारि पिआरि' मे उपमान की योजना भक्ति की अतिशयता एव भक्त की तन्मयता मात्र सूचित करती है। उपमान उपमेय नही हो सकता। ४ तुलसी के राम शृगार-लीला के लिए अवतीर्ण नही हुए हैं, उनका मुख्य उद्देश्य अधर्म-अधर्मियो का विनाश तथा धर्म-सस्थापन है। ५ 'मानस' को पढकर समाप्त कर देने पर पाठक के मन मे शृगार-रस का सस्कार नही वनता। कथा के गरुड आदि श्रोताओ की अतिम उक्तियाँ और विभिन्न काडो की फलश्रुतियाँ इस तथ्य का स्पष्टतया समर्थन करती हैं।

वीर-रस · किसी-किसी के मत से 'मानस' का अगी रस वीर है।[2] इस पक्ष के पोषक तर्क हैं १ रामकथा का ढाँचा ही ऐसा है कि उसमें वीर रस को छोडकर दूसरा रस हो ही नही सकता। २ "उसमें वीर रस की प्रधानता है क्योकि उसके नायक को प्रतिनायक के वध के वाद महान् राज्य का फल प्राप्त होता है और इस फल की प्राप्ति के लिए वह असीम साहस, धैर्य, कष्ट-सहिष्णुता, त्याग और वीरता का प्रदर्शन करता है।"[3] ३ आधिकारिक कथा के नायक राम की सभी प्रवृत्तियो का पर्यवसान वीर रस मे होता है। राम के जन्म के हेतु, विश्वामित्र के साथ यात्रा, धनुर्भंग, राज्यत्याग, वन-गमन, राक्षस-वध, राज्य-स्थापन आदि मे स्थायी उत्साह की व्यजना हुई है। ४ "यदि प्रथम और सप्तम सोपान की अवातर कथाओ तथा पूरे काव्य मे विखरे हुए स्तोत्रो, उपदेशो और तत्त्व-विवेचनो को हटाकर देखा जाए तो 'मानस' पूर्णतया वीर रस का महाकाव्य प्रतीत होता है और राम युद्धवीर, दानवीर, धर्मवीर और कर्मवीर इन चारो रूपो मे दिखायी पडते हैं।"[4] ५ सस्कृत मे कुछ नाटको को छोडकर समस्त राम-काव्य मे वीर रस का एकाधिकार है। ६ तुलसी लोकमगल की भावना से अनुप्राणित हैं। उसके उपयुक्त स्थायी भाव उत्साह ही हो सकता है।

उपर्युक्त तर्क अग्राह्य हैं। उनकी असमीचीनता पर विचार कीजिए। १-५ रामकथा का ढाँचा वीर-रस के अनुकूल है और सस्कृत का अधिकाश रामकाव्य वीररसप्रधान है, इससे 'मानस' के अगी रस का निर्णय नही हो जाता। विचारणीय यह है कि तुलसी ने

---

१ रामचरितमानस, १।३७।७, ७।१३०
२. देखिए रामचरितमानस का तुलनात्मक अध्ययन, पृ० २९५-९९
३ देखिए वाल्मीकि और तुलसी साहित्यिक मूल्याकन, पृ० ४००
४ देखिए वाल्मीकि और तुलसी साहित्यिक मूल्याकन, पृ० ४००

उस राम-कथा को किस रूप मे निबद्ध किया है, और उसे पढकर सहृदय को किस रस की अनुभूति होती है। यदि तुलसी भी वाल्मीकि आदि की भाँति राम का चित्रण एक महापुरुष के रूप मे करते और 'रामचरितमानस' की समाप्ति राज्याभिषेक पर ही कर देते तो वीर-रस को अगी माना जा सकता था। परतु, उन्होने ऐसा नही किया। रस के विषय मे सहृदय का अनुभव प्रमाण है। जटायु और वालि के प्रसगो[1] मे राम के दयोत्साह का वर्णन पढकर भावक का भक्ति-भाव उद्‌बुद्ध होता है, उसे वीर-रस की अनुभूति नही होती। २-३ 'मानस' मे वीर-रस काफी मात्रा मे अवश्य पाया जाता है, किंतु वह स्वतत्र नही है। राम की वीरता के वर्णन का पर्यवसान उनके ईश्वरत्व-निरूपण मे किया गया है जो भक्ति का उद्‌बोधक है। दूसरी बात यह है कि उनके प्रयत्नो का फल राज्य-प्राप्ति नही है। उन्होने प्रतिनायक का वध करके लका का राज्य नही हथियाया, और अयोध्या का राज्य रावण-वध के विना ही उन्हे प्राप्य था। ४ चौथे तर्क के दो उत्तर हैं। एक यह कि किसी प्रवध के अगी रस का निर्धारण समग्र रचना को दृष्टि मे रखकर किया जाता है, उसके अशो को निकालकर नही। दूसरा यह कि वालकाड के पूर्वार्ध, लगभग समस्त उत्तरकाड और शेष भाग के मोक्षपरक अशो को हटा देने के बाद जो शेप बचेगा वह 'रामचरितमानस' नही रहेगा। उसके अगी रस पर विचार करना विपयातर है। ६ तुलसी निश्चय ही मगल-भावना से अनुप्राणित हैं, लेकिन उनकी दृष्टि मे उस मगल-विधान का अमोघ साधन रामभक्ति और रामकृपा है। अत वीर-रस को 'मानस' का अगी रस मानना न्याय्य नही है। ७ वह उपक्रम और उपसहार में उपेक्षित है। ८ उसका प्रवाह निरतर नही है। अतिम काड मे उसका सर्वथा अभाव है। 'कोटिन्ह वाजिमेध प्रभु कीन्हे। दान अनेक द्विजन्ह कहँ दीन्हे'-जैसी पक्तियो मे भी वीर-रस नही है। ९ वह 'मानस' की प्रवध-ध्वनि नही है।

शांत-रस : कतिपय अनुसधाताओ ने शात को 'मानस' का प्रधान रस बतलाया है।[2] वे शात और भक्तिरस को अभिन्न मानकर चले हैं। इस मत का मूल ही निराधार है। इन दोनो रसो मे तात्त्विक भेद है। शात का स्थायी भाव शम है, भक्तिरस का स्थायी भाव भक्ति ही है।[3] वैराग्य के द्वारा द्रुत चित्त का प्रकाश 'शम' है, भगवद्धर्म के कारण द्रुत चित्त की ईश्वरानुरक्ति 'भक्ति' है।[4] शम निवृत्तिमूलक है, भक्ति प्रवृत्ति-मूलक है। शम का आलवन ससार की असारता अथवा निर्गुण ब्रह्म का चिंतन है, भक्ति के आलवन भगवान् एव उनके भक्तगण हैं। इसलिए भक्तिरस को शात का अग मानना[5] या दोनो को एक समझना सगत नही है। 'रामचरितमानस' में शातरस की प्रधानता की बात तो दूर रही, उसमे शुद्ध या स्वतत्र शातरस की निबंधना कहीं नही है। जहाँ-जहाँ तत्त्वज्ञान का प्रतिपादन किया गया है वहाँ-वहाँ उसका पर्यवसान भक्ति मे हुआ

१. रामचरितमानस, ३।३१, ४।१०
२ तुलसीदास और उनका युग, पृ० ३९४; रामचरितमानस का शास्त्रीय अध्ययन, पृ० २९०
३. अभिनवभारती, जिल्द १, पृ० ३३६, हरिभक्तिरसामृतसिन्धु, २।५।२
४. भक्तिरसायन, २।७४, १।३, शाडिल्य-भक्ति-सूत्र, १।१।२
५. जैसा कि अभिनवगुप्त ने माना है . अभिनवभारती, जिल्द १, पृ० ३४०

है, क्योकि तुलसी का 'श्रुतिसमत हरिभगतिपथ संजुत बिरति बिवेक' है।[1]

भक्तिरस : वस्तुत 'रामचरितमानस' का अगी रस भक्तिरस है। सस्कृतके काव्य-शास्त्रियो ने भक्तिरस को गौरव नही दिया था क्योकि उनके समक्ष भक्तिरस का कोई महाकाव्य नही था और सस्कृत-काव्य मे भक्तिरस की प्रतिष्ठा नही हुई थी। 'रामचरितमानस' उस रस-परिपाटी से भिन्न कोटि का महाकाव्य है। तुलसी ने लीक छोड़कर भक्तिरस को अगी रस के रूप मे प्रतिष्ठापित किया है। उसकी सर्वांगव्यापकता, एकतानता, प्रभविष्णुता और अद्वितीयता ने 'अगी' शब्द को पूर्णत सार्थक कर दिया है। परपरावादी आचार्यो द्वारा उपेक्षित भक्तिरस भी काव्यरस है[2], अब इसे सिद्ध करने की आवश्यकता नही है।

प्रस्तुत प्रकरण के आरभ मे निर्दिष्ट ग्यारह प्रश्नो को दृष्टि मे रखकर विचार कीजिए। १ कवि ने स्वय भक्तिरस की प्रधानता का उल्लेख किया है हरिपदरति रस बेद बखाना।[3] 'मानस' के सात सोपान रामभक्ति के ही सोपान हैं[4] और अतिम सोपान 'अविरलहरिभक्तिसपादनो नाम' है।[5] सपूर्ण ग्रथ और विभिन्न काडो की फलश्रुतियाँ भी इसका समर्थन करती हैं। २ 'मानस' के उपक्रम और उपसहार मे भक्तिरस की व्यजना हुई है।[6] उनमे वर्णित अवातर कथाओ का लक्ष्य भी भक्ति ही है। ३-४ इन दोनो प्रश्नो पर अधिक सूक्ष्मता से विचार करना होगा। सस्कृत के प्रबध-काव्य मे नायक कथानक का केंद्रबिंदु होता है। वह कथानक को आगे बढाता है, इसीलिए उसकी सज्ञा 'नायक' है। उस पर रस दो प्रकार से आश्रित हो सकता है। (i) 'नाटक' और महाकाव्य में उसका चित्रण इस ढग से किया जाता है कि सहृदय पाठक नायक के साथ तादात्म्य स्थापित कर लेता है। वह नायक की सुखात्मक अनुभूति की स्थिति मे सुख का अनुभव करता है, और उसके दुःखी होने पर दुःखी होता है। इस प्रकार नायक के स्थायी भाव के अनुरूप ही भावक का स्थायी भाव उद्बुद्ध होकर रस-रूप मे परिणत होता है। उदाहरण के लिए, 'अभिज्ञानशकुन्तल' मे नायक दुष्यत का स्थायी भाव काम-रति है। तदनुसार सहृदय की भी काम-रति विकसित होती है और उसे शृगार रस का अनुभव होता है। (ii) प्रहसन आदि मे ऐसा नही होता। अवम नायक से कोई तादात्म्य नहीं स्थापित कर सकता। वहाँ पर नायक सहृदय का आलबन बन जाता है। सहृदय का स्थायी भाव नायक के स्थायी से भिन्न होता है। 'हास्यचूडामणि' का उदाहरण लीजिए। उसके नायक ज्ञानराशि का स्थायीभाव अनुचित 'रति' है, परतु उसके भावन से भावक का 'हास' जागृत होता है और फलत उसे हास्य-रस की अनुभूति होती है। 'रामचरितमानस' की विचित्रता पर विचार कीजिए। उसमे उपर्युक्त दोनो प्रकार की प्रक्रियाओ का समन्वय है। राम 'नाटक' और

---

१. रामचरितमानस, ७।१००
२. देखिए : तुलसी-दर्शन-मीमासा, पृ० ३७८-८०
३ रामचरितमानस, १।३७।७
४. एहि महँ रुचिर सप्त सोपाना। रघुपतिभगति केर पथाना॥—रामचरितमानस, ७।१२९।२
५. देखिए उत्तरकाड की पुष्पिका
६. जैसे : १।१।श्लोक १-६, १।१८-१।२१; ७।१३०

महाकाव्य के प्रकृत नायक के समान गुणसपन्न है, किंतु उनके ईश्वरत्व के कारण पाठक उनके साथ तादात्म्य नही स्थापित कर पाता। फिर भी वह अपने को उनके पक्ष का मान कर चलता है, उनकी सफलता पर प्रसन्न और विफलता पर खिन्न होता है। फुलवारी मे उनका स्थायी भाव रति है, लक्ष्मण-मूर्च्छा पर शोक, और युद्ध मे उत्साह। उन अवसरो पर पाठक के भी वे ही भाव उद्‌बुद्ध होते हैं और वह क्रमश श्रृगार, करुण अथवा वीर रस की अनुभूति करता है। परतु, उसकी यह अनुभूति देर तक नही टिक पाती। कवि राम के ईश्वरत्व का निरूपण करने लगता है। इसके फल-स्वरूप राम भावक की भक्ति के आलवन वन जाते हैं। राम का ईश्वरत्व इतना अभिभावी है, और सपूर्ण काव्य मे अनुस्यूत भक्ति इतनी शक्तिमती है कि अन्य रस भक्ति से अस्पृष्ट नही होने पाते। राम का स्थायी भाव उत्साह निस्सदेह वहुत व्यापक है, किंतु उसके भी मूल मे उससे अधिक व्यापक और स्थायी चित्तवृत्ति उनकी भक्तवत्सलता है। उनकी सारी लीला मुख्यतया भक्तो के आनद के लिए है। तुलसी पग-पग पर उनकी भक्तवत्सलता की याद दिलाते चलते हैं। लौकिक नायक पर आश्रित श्रृगार या वीर रस के काव्य से सहृदयका वही भाव जागृत होता है जो नायक का हे,किंतु भक्तिकाव्य मे नायक-भगवान् के उत्साह, वत्सलता आदि भावो की व्यजना से भावक के भक्ति-भाव का उद्रेक होता है और उसे भक्तिरस की अनुभूति होती है।

५-६-७ 'मानस' मे भक्तिरस का पूर्ण परिपाक हुआ है। भक्तिशास्त्रियो के मतानुसार तो केवल भक्तिरस ही पूर्ण रस है।[१] 'रामचरितमानस' मे वह इतना पुष्ट और प्रभावशाली है कि एकाध विचारक 'मानस' को सामान्य काव्य से भिन्न भक्तिरस का ग्रथ मानना ही उचित समझते हैं।[२] काव्य और भक्तिरस मे विरोध नही है। 'मानस' भक्तिरसप्रधान काव्य है। उसमे प्रयुक्त अन्य रस उसी के पोषक और अग हैं, क्योकि राम की सभी लीलाओ के वर्णन का प्रयोजन पाठको को भक्तिरस की अनुभूति कराना है। डा० श्रीकृष्ण लाल का कथन है 'रामचरितमानस' मे तो रसो की अपेक्षा रसाभास ही अधिक मिलते हैं।'[३] उनके मतानुसार लक्ष्मण-शक्ति के उपरात राम के विलाप मे करुणाभास है, सीता-हरण के पश्चात् श्रृगारभास है, इसी प्रकार लकाकाड के अतर्गत उत्साह तथा क्रोध के वर्णनो मे वीराभास और रौद्राभास।[४] उन स्थलो पर रसाभास मानना समीचीन नही है, क्योकि रसाभास का कारण अनौचित्य है[५] और उनमे अनौचित्य नही है। वस्तुत वे रस अगी भक्तिरस की तुलना मे अपूर्ण और अपुष्ट हैं, इसलिए अपरिपक्व प्रतीत होते हैं। ८ 'मानस' के वीच-वीच मे आदि से अत तक भक्तिरस की व्यजना हुई है। मध्य-

१. परिपूर्णरसा क्षुद्ररसेभ्यो भगवद्रति ।
खद्योतेभ्य इवादित्यप्रभेव वलवत्तरा ।।—भक्तिरसायन, २।७६

२. प० मदनमोहन मालवीय . 'रामायण' को काव्य कहना उसका अपमान करना है। उसमें तो भक्तिरस का प्रवाह वहता है जो जीवन को पवित्र कर देता है।
—कल्याण, रामायणांक, पृ० २८

३ मानस-दर्शन, पृ० १६६

४ मानस-दर्शन, पृ० १६७

५. देखिए . साहित्यदर्पण, ३।२६२-६५

वर्तिनी स्तुतियाँ और फलश्रुतियाँ उसकी पुष्टि करती हैं। ९ उसकी व्याप्ति सबसे अधिक है। कोई भी प्रकरण उसकी निबधना से सर्वथा मुक्त नही है। १० सपूर्ण 'रामचरितमानस' की प्रबध-ध्वनि भक्तिरस ही है। ११ तुलसी का मूल उद्देश्य 'अविरल हरिभक्ति' का सपादन है, 'मानस' का सारभूत प्रभाव रामभक्ति है।[1] अतएव उसका अगी रस भक्ति-रस है। अगी रस का जैसा सशक्त, अविच्छिन्न और एकतान प्रवाह 'रामचरितमानस' मे मिलता है वैसा किसी अन्य महाकाव्य मे नही।

काव्यरूप : महाकाव्यत्व

'रामचरितमानस' के काव्यरूप के सबध मे तीन प्रकार की उक्तियाँ मिलती हैं १ वह चरितकाव्य या कथाकाव्य है, २ वह एक पुराण है, ३ वह महाकाव्य है। पहली और तीसरी उक्तियो मे परस्पर-विरोध नही है। विवाद इस बात पर है कि वह पुराण है अथवा महाकाव्य।

चरितकाव्य . चरितकाव्य-रचना की परपरा बहुत पुरानी है।[2] वाल्मीकि-'रामायण', 'पउमचरिय', 'पउमचरिउ' आदि इसी प्रकार की कृतियाँ हैं। चरितकाव्यो के दो मुख्य रूप हैं महाकाव्य और खडकाव्य। 'रामचरितमानस' सस्कृत के ही नहीं प्राकृत-अपभ्रश के महाकाव्यों की परपरा मे रचित प्रबध है। शैली की दृष्टि से अपभ्रश के महाकाव्य दो प्रकार के हैं **पौराणिक**, जैसे 'पउमचरिउ', 'रिट्ठणेमिचरिउ' आदि, और **रोमाचक**, जैसे 'भविसयत्तकहा', 'सुदसणचरिउ' आदि। 'पदमावत' रोमाचक-शैली का प्रबध है, और 'रामचरितमानस' पौराणिक-शैली का चरितकाव्य या महाकाव्य है।

अपभ्रश के चरितकाव्यो की प्राय सभी प्रमुख विशेषताएँ 'रामचरितमानस' मे पायी जाती हैं— १ प्रबधकाव्य और धर्मकथा का समन्वय उसमे व्यवस्थित कथानक, मार्मिक स्थलो की भावुकतापूर्ण निबधना और रस आदि काव्यागो की रमणीय योजना के साथ ही धर्मदर्शन का प्रतिपादन है। २ पौराणिक कथावस्तु उसका कथानक वाल्मीकि-'रामायण', 'अध्यात्मरामायण', 'पद्मपुराण' आदि मे वर्णित पुरातन इतिवृत्त पर आश्रित है। ३ कथानक-रूढियाँ पूर्वजन्म की कथा[3], आकाशवाणी[4], शाप[5], वन मे भटकते हुए मुनि-दर्शन[6], वाटिका मे सुदरी का साक्षात्कार, रूप-परिवर्तन[7], शत्रु-पीडित व्यक्ति की सहायता[8] आदि। ४ अलौकिक तत्त्वो का सनिवेश जैसे, माया की सीता, सोने का मृग,

---

१ श्रीमद्रामचरित्रमानसमिद भक्त्यावगाहन्ति ये ते ससारपतगघोरकिरणैर्दह्यन्ति नो मानवा ।
इति श्रीरामचरितमानसे सकलकलिकलुषविध्वसने
अविरलहरिभक्तिसपादनो नाम सप्तमसोपान समाप्त ॥

२ देखिए हिंदी-महाकाव्य का स्वरूप-विकास, पृ० १२७-१६४

३ जैसे पार्वती और काकभुशुडि की, रामचरितमानस, १।४८।१-१।६४, ७।९६-७।११३

४ जैसे रामचरितमानस, १।१७४।२-३, ७।१०७।१

५ जैसे जय-विजय को विप्र-शाप, रामचरितमानस, १।१२२, नारद-शाप, रामचरितमानस, १।१३७

६ जैसे प्रतापभानु द्वारा, रामचरितमानस, १।१५८।१

७ जैसे मारीच का कपट-मृग होना, हनुमान् का विप्र-रूप में राम से मिलना आदि

८ जैसे राम द्वारा सुग्रीव की सहायता

रावण अथवा हनुमान् का पर्वत उठा लेना। राम की अद्भुत लीला तो अलौकिक ही है। ५ रोमाचक और साहसिक घटनाओ का अतिरेक जैसे ताडका-सुबाहु-वध, फुलवारी-प्रसग, शूर्पणखा-काड, लकादहन आदि। ६ मानव-जीवन और प्रकृति के विविध रूपो का व्यापक चित्रण। ७ प्रश्नोत्तर के रूप मे कथा का प्रारभ भरद्वाज, पार्वती और गरुड के प्रश्न के उत्तर-रूप मे याज्ञवल्क्य, शकर और काकभुशुडि ने रामकथा कही है। ८. प्रबध-रूढियाँ मगलाचरण, वदनाएँ, सज्जन-प्रशसा, दुर्जन-निंदा, उद्देश्य और प्रतिपाद्य वस्तु का निर्देश, प्रास्ताविक कथातर आदि। ९ छद-योजना अपभ्रश के चरितकाव्यो की तुकात मात्रिक-छद-पद्धति और गेय कडवक-शैली की भाँति 'रामचरितमानस' मे चौपाइयो के बाद दोहो, सोरठो और छदो की योजना की गयी है। १०. "एक ध्यान देने योग्य मजेदार बात यह है कि प्राय सभी चरितकाव्यो ने अपनेको 'कथा' कहा है। चरितकाव्य को कथा कहने की प्रणाली बहुत बाद तक चलती रही। तुलसीदास जी का रामचरितमानस चरित तो है ही, कथा भी है।"[1] 'रामचरितमानस' के नाम मे ही 'चरित' शब्द का प्रयोग है। तुलसी ने उसे 'गाथा' और 'कथा' भी कहा है।[2] ११ सस्कृत के बदले लोक-भाषा का व्यवहार, सस्कृत के शब्दो मे प्राकृत की प्रवृत्ति के अनुसार परसवर्ण के स्थान पर अनुस्वार का प्रयोग।

इन समानताओ के होते हुए भी 'रामचरितमानस' अपभ्रश के महाकाव्यो से भिन्न है। १ उन चरितकाव्यो के नायक मनुष्य है, 'मानस' के नायक राम परब्रह्म परमेश्वर हैं। २ उनमे नायक के सपूर्ण जीवन का वृत्तात वर्णित है, 'मानस मे राम के अतिम चरित और महाप्रस्थान की कोई चर्चा नही है। ब्रह्म राम के महाप्रस्थान का वर्णन उनके ईश्वरत्व के प्रतिकूल पडता। ३. अपभ्रश के महाकाव्य जैनधर्म से प्रभावित हैं। कहा जा चुका है कि जैन-रामकथा के अनुसार भरत, सीता, राम आदि जैन-दीक्षा लेते है और लक्ष्मण मर कर नरकगामी होते हैं। तुलसी श्रुति-समत सनातन-धर्म के अनुयायी हैं। उन्होने स्मार्त धर्म का प्रतिपादन किया है, वेद-विदूपको और अवतार-विरोधियो की कडी भर्त्सना की है। ४ अपनी धार्मिक प्रवृत्ति के अनुरूप अपभ्रश के महाकाव्य शात-रस-पर्यवसायी हैं, उनमे वैराग्य और जैन-दीक्षा को अधिक महत्त्व दिया गया है। तुलसी सर्वात्मना वैष्णव-भक्त है। उनका साध्य रामभक्ति है, धर्म और वैराग्य साधन मात्र हैं। अत 'मानस' भक्तिरस से आद्यत आपूर्ण है। उसमे शात की योजना भक्तिरस के पोषण के निमित्त की गयी है। ५ पात्रो के चरित्र-चित्रण मे अपभ्रश के महाकाव्यकारो का दृष्टिकोण अधिक यथार्थवादी है। तुलसी सस्कृत-महाकवियो की भाँति अधिक आदर्श-वादी हैं। ६ काव्यरूप मे भी भिन्नता है। अपभ्रश-महाकाव्य सधियो मे विभाजित हैं। 'रामचरितमानस' वाल्मीकि-'रामायण' आदि के सदृश सात काडो मे और स्वकीय मानस-रूपक के अनुसार सात सोपानो मे विभाजित है। अपभ्रश-महाकाव्यो मे सधियो की सख्या बहुत अधिक है, आकार मे काफी विस्तृत होने पर भी 'मानस' मे केवल सात सोपान हैं। ७ तुलसी की राम-कथा प्राकृत-अपभ्रश के जैन चरितकाव्यो की राम-कथा

१. हिंदी-साहित्य का आदिकाल, पृ० ५२

२. रामचरितमानस, १।१।श्लोक ७, १।३४।२; १।३५।३, ७, १।४३

से बहुत भिन्न है।[1] 'रामचरितमानस' के स्रोत श्रौत-स्मार्त परपरा मे लिखित इतिहास-पुराण और काव्य-नाटक हैं। उसकी प्रबध-कथानक-रूढियो और अलकृत काव्य-शैली पर सस्कृत-साहित्य का कही अधिक प्रभाव है। वह सस्कृत-प्राकृत-अपभ्रश की चरितकाव्य-परपरा मे लिखित चरितकाव्य है, किंतु अपनी कथावस्तु, नायक-परिकल्पना, धर्म-भावना, दार्शनिक विचारधारा, भक्ति-सिद्धात और उक्ति-वैचित्र्य मे वह सस्कृत के पुराणो और प्रबध-काव्यो से घनिष्ठतया सबद्ध है।

'मानस' का पुराणत्व : डा० श्रीकृष्ण लाल ने बडे व्यवस्थित ढग से विवेचनपूर्वक यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया है कि 'रामचरितमानस' एक पुराण है।[2] उसे पुराण सिद्ध करने के लिए उनकी उपपत्तियो के समेत निम्नाकित तर्क प्रस्तुत किये जा सकते हैं

१ परपरा से 'रामचरितमानस' धर्मग्रथ माना जाता है, काव्य नहीं। नाभादास ने 'भक्तमाल' मे सूर को तो कवि कहा है किंतु तुलसी की भक्तिभावना की चर्चा की है।[3] २. तात्पर्यनिर्णय की दृष्टि से भी वह काव्य-कोटि मे नही आता। उसके उपक्रम-उपसहार, अभ्यास, अपूर्वता, फल, अर्थवाद और उपपत्ति[4] से स्पष्ट है कि उसका तात्पर्य राम और रामभक्ति का प्रतिपादन करना है। ३ डा० राधाकृष्णन् ने पुराणो को धार्मिक काव्य कहा है जिनमे कथाओ, देवकथाओ, प्रतीकों और दृष्टातकथाओ के माध्यम से सप्रदाय-विशेष की ईश्वर-जीव-सृष्टि-समाज-विषयक परपरागत मान्यताओ का उपस्थापन और तत्कालीन नास्तिक-मतो का खडन है।[5] 'मानस' की भी यही विशेषता है। ४ वायुपुराण और पद्मपुराण मे लिखा है कि जिसमे पूर्वकाल की परपरा कही गयी हो वह 'पुराण' है।[6] 'मानस' मे राम-कथा की पूर्वकालीन परपरा के साथ ही शिव-सती, नारद, प्रताप-भानु, काकभुशुडि आदि की अवातर कथाएँ भी वर्णित हैं। ५ 'मानस' की कथा पौराणिक है, उसमे प्रतिपादित धर्म, दर्शन, और भक्ति की समन्वयवादी विचारधारा पौराणिक है। ६ उसमे कथा का विन्यास करते हुए पुराणो की व्यास-शैली अपनायी गयी है। ७ उसके तथा 'भागवतपुराण' के मगलाचरण और प्रतिज्ञावचन मे भी समानता है।[7] ८ 'अध्यात्मरामायण' की भाँति उसकी कथा शिव-पार्वती-सवाद के रूप मे कही गयी है। साथ ही याज्ञवल्क्य-भरद्वाज तथा काकभुशुडि-गरुड और बीच-बीच मे अन्य पात्रो के सवादों की योजना है। श्रोताओ के प्रश्नो के उत्तर-रूप मे अथवा उनकी जिज्ञासाओ के समाधान-रूप मे प्रतिपाद्य विषय का निरूपण किया गया है। ९ पुराणो के सदृश ही उसमे स्तुतियो एव गीताओ की भरमार है, और उनके माध्यम से मोक्षशास्त्रीय सिद्धातो की

---

१. देखिए : इस ग्रथ के पृष्ठ २७०-७५

२. मानस-दर्शन, पृ० १३५-७२, "इसे पुराण कहना ही अधिक उचित जान पड़ता है।"
—मानस-दर्शन, पृ० १४७

३. तुलसी-विषयक छप्पय के लिए देखिए इस ग्रथ का पृ० ३५

४. इस षड्विध तात्पर्यनिर्णय के लिए देखिए : तुलसी-दर्शन-मीमासा, पृ० २५-२६

५. देखिए : मानस-दर्शन, पृ० १४७

६ मानस-दर्शन, पृ० १४५, और भी देखिए हिंदी-साहित्य का आदिकाल, पृ० ५८

७. रामचरितमानस, १।१।श्लोक ६,७, भागवतपुराण, १।१।१, ३

व्यजना की गयी है। १० चराचर की वदना, सत-असत-लक्षण-निरूपण, देवताओ द्वारा दुदुभी-वादन एव पुष्प-वर्षा, आकाशवाणी, शकुनापशकुन और फलश्रुतियो आदि के वर्णन मे पौराणिक परिपाटी का अनुसरण है। ११ उसके अतिरजित वर्णनो और आलकारिक उक्तियो मे पुराण-पद्धति का निर्वाह है। १२ उसमे महाकाव्य के मुख्य लक्षणो का नितात अभाव है उसका नायक न देवता है न मानव, वरन् इन दोनो से परे परब्रह्म परमेश्वर है[1], उसका फल चतुर्वर्ग से परे विश्राम की प्राप्ति है[2], उसकी कथा-शैली मे महाकाव्योचित नाटकीयता और ऐतिहासिकता नही है[3], सवादो मे सरलता, गभीरता, स्वाभाविकता और तर्कसगति नही है[4], उसमे रसो की अपेक्षा रसाभास ही अधिक है[5], मानसकार की भावुकता तथा सहृदयता एकागी और सकीर्ण है।[6] १३ तुलसी ने उसे स्वय पुराणसमत कहा है और बारबार आगम-निगम-पुराण की दुहाई दी है। अतएव 'रामचरितमानस' को महाकाव्य न कह कर पुराण कहना ही युक्तिसगत है।

उपर्युक्त तर्कों मे पर्याप्त बल नही है। १ यह ठीक है कि 'रामचरितमानस' जनसाधारण मे धर्मग्रथ की भाँति समादृत है और भक्तो ने तुलसी को भक्त-शिरोमणि माना है, परतु काव्य और कवि के रूप मे उनकी प्रतिष्ठा उससे भी अधिक है। तुलसी के समकालीन दार्शनिक एव भक्तिशास्त्री मधुसूदन सरस्वती ने उनकी कवितामजरी का जयघोप किया है।[7] रीतिकालीन कवियो और आचार्यों ने उनके कवित्व की श्रेष्ठता स्वीकार की है। अठारहवी शताब्दी के पूर्वार्ध मे भिखारीदास ने उन्हे सुकवियो का सरदार कहा है।[8] "अठारहवी शताब्दी मे 'तुलसीभूपण' नामक एक पुस्तक ही ऐसी लिखी गयी जिसमे सभी अलकारो के उदाहरण तुलसीदास के ग्रथो से नियमपूर्वक दिये गये हैं।"[9] उन्नीसवी शती के पद्माकर ने 'पद्माभरण' मे 'मानस' से उदाहरण दिये हैं। तुलसी के कवित्व के विषय मे प्रचलित सूक्तियाँ जनमत का स्पष्ट निर्देश करती है।[10] आधुनिक युग मे तो कवि-तुलसी के अध्ययन का ओर-छोर ही नही है, यहाँ तक कि गुरुकुलो मे भी 'रामचरितमानस' काव्य के रूप मे पढाया जाता है।

२ इसमे सदेह नही कि तुलसी का उद्देश्य भक्ति और भगवान् का प्रतिपादन है। यह सभी भक्त-कवियो का उद्देश्य है। उन सबको कवि-समाज से बहिष्कृत करना पडेगा। कहा जा चुका है कि 'मानस' मे काव्य और मोक्षशास्त्र का समन्वय है। 'तात्पर्य-निर्णय' वाली बात उसके एक पक्ष अर्थात् मोक्षसिद्धात पर ही लागू होती है। तुलसी ने

१. मानस-दर्शन, पृ० १४४
२. मानस-दर्शन, पृ० १४५
३. मानस-दर्शन, पृ० १५३
४. मानस-दर्शन, पृ० १५५
५ मानस-दर्शन, पृ० १६६-६८
६. मानस-दर्शन, पृ० १६८
७. देखिए : इस ग्रथ का पृ० ६१
८. तुलसी गग दोऊ भए सुकविन के सरदार।—काव्यनिर्णय, १।१७
९. हिंदी-साहित्य का अतीत, पृ० २६२
१०. कबिता कर्ता तीन हैं तुलसी केसव सूर।

काव्य-सिद्धान्त और 'मानस' के कवित्व का विशद निरूपण मानस-रूपक आदि मे स्वय किया है।

३ पुराण काव्य नही हैं, शास्त्र हैं। इसीलिए उनकी गणना चौदह या अठारह विद्याओ मे की जाती है। वहाँ पर 'विद्या' का अर्थ 'शास्त्र' ही है।[१] वे धर्मशास्त्र के रूप मे भी प्रतिष्ठित हैं, और उनके लिए 'स्मृति' शब्द का भी प्रयोग किया गया है।[२] मम्मट आदि काव्यशास्त्रियो ने पुराण को 'सुहृत्समित' कह कर 'कातासमित' काव्य से उसकी व्यावृत्ति की है।[३] हाँ, उनमे अनेक स्थलो पर कवित्व अवश्य पाया जाता है। परतु इसके आधार पर उन्हे 'काव्य' नही कहा जा सकता, क्योकि उनमे काव्यतत्त्व प्रधान नही है। भारतीय वाड्मय की ऐसी कोई विधा नही है जिसमे कुछ-न-कुछ कवित्वमयी उक्तियाँ न पायी जाती हों। दर्शनशास्त्र और आयुर्वेद के ग्रथो मे भी काव्यमयी पक्तियाँ भरी पड़ी हैं। वस्तुत पुराणो को 'धार्मिक काव्य' की अपेक्षा 'काव्यात्मक धर्मशास्त्र' कहना अधिक युक्तिसगत है। इसके विपरीत 'रामचरितमानस' धर्म-भावना से अनुप्राणित काव्य है।

४ केवल पूर्वकाल की परपरा का वर्णन मात्र पुराणो का लक्षण नहीं है। विभिन्न पुराणो मे पाँच[४] से दस[५] तक पुराण-लक्षण बतलाये गये हैं। वे भी अधूरे हैं और 'मानस' पर घटित नही होते। मिलाकर देखिए। (१) सर्ग, सृष्टि का विस्तृत वर्णन 'मानस' मे इसका वर्णन नहीं, सकेत मात्र है, जैसे, **नाना भाँति सृष्टि बिस्तारा**[६]। (२) **विसर्ग**, ब्रह्मा-निर्मित चराचर-सृष्टियो का विशद विवरण 'मानस' मे इसका निरूपण नही है। (३) **स्थान**, विष्णु द्वारा विश्व की सस्थिति, 'मानस' मे इसका व्यवस्थित वर्णन न करके यत्र-यत्र उल्लेख भर कर दिया गया है। (४) **पोषण**, भक्तो पर भगवान् का अनुग्रह 'मानस' मे इसका सक्षिप्त निर्देश अवश्य है, किंतु पुराणो की भाँति विस्तारपूर्वक प्रतिपादन नही। (५) **ऊति**, जीवो की वासनाएँ 'मानस' मे इसका भी विस्तृत वर्णन नही है। (६) **मन्वतर** पुराणो मे विभिन्न मन्वतरो का विस्तार से वर्णन किया गया है। 'मानस' मे उनका कोई वर्णन नही है, केवल स्वायभुव मनु का निर्देश है।[७] (७) **ईशानुकथा**, भगवान् के विविध अवतारो और भक्तो की गाथाएँ पुराण इन गाथाओ के विशाल भाडार हैं। 'मानस' मे केवल राम और उनके कतिपय भक्तो की कथा है। (८) **निरोध**, भगवान् की योगनिद्रा मे जीवो का उपाधियो-सहित लय 'मानस' मे इसकी

सूर सूर तुलसी ससी उडुगन केसवदास।

१. विद्या शास्त्रम्। तत्तु अष्टादशविधम्। यथा, विष्णुपुराणम्।—शब्दकल्पद्रुम

२ देखिए हिस्ट्री ऑफ धर्मशास्त्र, जिल्द १, पृ० १३१

३ काव्यप्रकाश, १।१।२ पर वृत्ति

४. सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वशो मन्वन्तराणि च।
वशानुचरित चेति पुराण पञ्चलक्षणम्॥—शिवपुराण, ७।१।१।४१, आदि

५ अत्र सर्गो विसर्गश्च स्थान पोषणमूतय।
मन्वन्तरेशानुकथा निरोधो मुक्तिराश्रय॥—भागवतपुराण, २।१०।१, आदि

६. रामचरितमानस, ७।८०।४

७. स्वायभू मनु अरु सतरूपा। जिन्ह तें भै नरसृष्टि अनूपा॥
—रामचरितमानस, १।१४२।१

चर्चा नही है। (९) मुक्ति 'मानस' मे कुछ मुक्तियो का साकेतिक उल्लेख हुआ है[1], लेकिन उनका वर्णन नही है। (१०) आश्रय, सृष्टि और प्रलय के आश्रय-रूप परमात्मा का वर्णन 'मानस' मे कही-कही इसका केवल सकेत किया गया है।[2]

इनके अतिरिक्त भी पुराणो की कुछ महत्त्वपूर्ण विशेषताएँ है। (११) पुराणो में विभिन्न राजवशो और वशानुचरित का वर्णन मिलता है, 'मानस' मे ऐसा कुछ नही है। (१२) पुराणो मे ग्रथ की श्लोकसख्या, अन्य पुराणो की सूची और विषयानुक्रमणिका देने की भी प्रथा है, कवि तुलसी ने इसकी सर्वथा उपेक्षा की है। (१३) शास्त्रानुसार पुराणो का विभाजन स्कधो, खडो, अध्यायो आदि मे हुआ है, 'मानस' काडो या सोपानो मे विभक्त है। (१४) शास्त्र की मर्यादा के अनुरूप पुराण देववाणी मे लिखे गये हैं, तुलसी को काव्य लिखना था, अतएव उन्होने लोकभाषा को अपनाया।

५-११ कथा की पौराणिकता, समन्वयवादी विचारधारा, मगलाचरण, सवादो की योजना, स्तुतियो, गीताओ, वदनाओ आदि से इतना ही निष्कर्ष निकलता है कि 'मानस' पर पुराणो का यथेष्ट प्रभाव है, वह पौराणिक महाकाव्य है। स्वय पुराणो द्वारा प्रतिपादित लक्षणो मे इन सब विशेषताओ का उल्लेख नही है, क्योकि वे पुराणो के व्यावर्तक धर्म नही हैं। इनमे से अधिकाश विशेषताएँ सस्कृत-प्राकृत और अपभ्रश के महाकाव्यो मे भी पायी जाती हैं। सवादो के सबध मे कुछ स्पष्टीकरण अपेक्षित है। 'मानस' के केवला शृखलाबद्ध प्रास्ताविक सवादो और प्रवचनात्मक सवादो की ही शैली पौराणिक है। उसके सभा-सवादो एव गोष्ठी-सवादो पर सस्कृत-नाटको का बहुत गहरा प्रभाव है। उन सवादो मे जो विविधता, शीलव्यजकता, नाटकीयता और रमणीयता है उससे 'मानस' की काव्योत्कृष्टता सिद्ध होती है।

१२ 'रामचरितमानस' मे महाकाव्य के लक्षणो का नितात अभाव मानना न्यायसगत नही है। तुलसी की भावुकता और 'मानस' की भाव-व्यजना, नाटकीयता, चित्ताकर्षक सवाद-योजना आदि की बहुत-कुछ विवेचना की जा चुकी है। उसके महाकाव्यत्व पर अभी विचार करेंगे।

१३. तुलसी ने 'रामचरितमानस' को पुराण-समत अवश्य कहा है, किंतु उसे 'पुराण' कही नही कहा। उन्होने अभिधा, लक्षणा और व्यजना के द्वारा बारबार अपने को कवि[3] और अपनी कृति को काव्य[4] कहा है आगम-निगम-पुराण की दहाई पुराणो

---

१. रामचरितमानस, ३।९।१, ३।३०, ३।३६।छद, ६।३।१, ६।१०३।५

२ उतपति पालन प्रलय समीहा ।—रामचरितमानस, ६।१५।३

३. रामचरितमानस कवि तुलसी ।—रामचरितमानस, १।३६।१
सुमिरि भवानी सकरहि कह कवि कथा सुहाइ ।—वही, १।४३
कविहि अरथ आखर बलु सॉचा ।—वही, २।७४१।२
कुकबि कहाइ अजसु को लेई ।—वहा, १।२४७।२

४. चली सुभग कविता सरिता सो ।—रामचरितमानस, १।३९।६
कवित रसिक न रामपद नेहू । तिन्ह कहँ सुखद हास रस एहू ।।—वही, १।९।२
सरल कवित कीरति बिमल सोइ आदरहि सुजान ।—वही, १।१४
कवित विवेक एक नहि मोरे ।—वही, १।९।६

का 'लक्षण' नही है ।

निष्कर्ष यह कि पूर्वोक्त पौराणिक विशेषताओ के आधार पर 'रामचरितमानस' को पुराण की सज्ञा नहीं दी जा सकती। पुराण एक प्रकार से भारतीय सस्कृति के विश्व-कोश हैं। उनमे सब कुछ कह डालने की प्रवृत्ति है। उन्होने कवित्व और प्रबधात्मकता की उपेक्षा की है। इसके प्रतिकूल, 'मानस' के काव्यगुण अपेक्षाकृत बहुत अधिक सशक्त है। किसी रचना के काव्यत्व के विषय मे सबसे ठोस प्रमाण सहृदय का अनुभव है। 'रामचरितमानस' को पढकर अनगिनत पडित और अपडित सहृदयो को काव्यरसानुभूति होती है। अतएव वह काव्य है।

'मानस' का महाकाव्यत्व : 'महाकाव्य' शब्द से ही सिद्ध है कि उसके मूलत दो धर्म हैं : महत्ता और काव्यत्व। 'काव्य' विशेष्य है, इसलिए महाकाव्य की पहली शर्त यह है कि वह काव्य हो। काव्य की जो भी प्रतिष्ठित परिभाषाएँ हैं उनके निकष पर राम-चरितमानस' को परखिए, वह सभी पर खरा उतरता है। उसमे भावो की मार्मिक व्यजना है, हृदयसवादी रस-प्रवाह है, ध्वनि-चमत्कार की अतिशयता है, गुणो एव अलकारो का उत्कृष्ट सनिवेश है, वैदग्ध्य-मडित उक्तियो की मनोहर भगिमा है, औचित्य का अधिकतम निर्वाह है, अतर्वृत्तियो और बाह्य-रूपो की सुदर बिंब-योजना है, शब्द और अर्थ का रमणीय समन्वय है, कवि-कल्पना का अनत ऐश्वर्य है।

'महा' (महत्) विशेषण है, अत काव्य की उत्कृष्टता का सूचक है। उससे दो मुख्य विशेषताएँ द्योतित होती हैं व्यापकता और उदात्तता। इन दोनो ही दृष्टियो से 'मानस' महान् है। उसका आकार विशाल है, उसमे व्यापक जीवन का विशद चित्राकन है। उसका नायक महान् है[१], समग्र प्रतिपाद्य विषय महान् है[२], प्रतिपादन-शैली महिमामयी है[३], रचना का उद्देश्य और सदेश महान् है।[४] सबसे बडी बात यह है कि उसे अपने महान् उद्देश्य की पूर्ति मे, अपने महान् सदेश से सप्रेषण मे, अभूतपूर्व महती सफलता मिली है।

अब सस्कृत-आचार्यो की रूढिबद्ध काव्यशास्त्रीय दृष्टि से विचार कीजिए। उन शास्त्रकारो के लक्ष्य मुख्यतया पाँच महाकाव्य हैं 'रघुवश', 'कुमारसभव', 'किरातार्जु-नीय', 'शिशुपालवध' और 'नैषधचरित'। उनका लक्षण-निरूपण[५] प्राय उन्ही पर आश्रित है। परपरावादी तुलसी प्रगतिशील हैं। 'रामचरितमानस' मे उन्होने रूढि-पालन भी किया है और स्वच्छदता से भी काम लिया है। प्राचीन महाकाव्यो के आधार पर निर्मित

---

१ राम सों बडो है कौन मोसों कौन छोटो।—विनयपत्रिका, ७२।२
महिमा जासु जाइ नहि बरनी।—रामचरितमानस, १।११८।४

२ भनिति भदेस बस्तु भलि बरनी।—रामचरितमानस, १।१०।५
जौ बरषै बर बारि बिचारू। होहिं कवित मुकुतामनि चारू।।—वही, १।११।५

३ पूर्वविवेचित सवाद-योजना, रूपक-विधान आदि युक्तियों का विनियोग

४ बरनौ रामचरित भवमोचन।—रामचरितमानस, १।२।१
सुरसरि सम सब कहँ हित होई।—वही, १।१४।५

५ भामह काव्यालकार, १।१९-२३, दडी काव्यादर्श, १।१४-२२; रुद्रट • काव्यालकार, १६।४-१९, विश्वनाथ साहित्यदर्पण, ६।३१५-२७

मानदड 'मानम' को मापने के लिए अपर्याप्त है।

१ सर्गबंध . महाकाव्य सर्गबद्ध रचना है। 'मानस' काडो अथवा सोपानो मे विभक्त है। इससे कोई अतर नही पडता। 'सर्ग' शब्द नाटक के 'अक', आख्यायिका के 'उच्छ्वास', शास्त्रग्रथो के 'अध्याय' आदि से भिन्नता का सूचक है। 'काड' या 'सोपान' से भी उस उद्देश्य की पूर्ति हो जाती है। मानस-रूपक के कारण तुलसी ने काडो को सोपान कहा है।

२ कथावस्तु : महाकाव्य का वृत्त ऐतिहासिक अर्थात् प्रख्यात होना चाहिए। इसका कारण मनोवैज्ञानिक है। लोकप्रसिद्ध कथानक पाठक को आकृष्ट करने और उस पर अभीष्ट प्रभाव डालने मे सहज-समर्थ है, मनगढत कथा मे वह सामर्थ्य नही है। 'मानस' की विख्यात कथावस्तु इतिहास-पुराणो, काव्यो, नाटको आदि मे प्रचुरतया वर्णित है। तुलसी ने उसे अपने ढग से सजाया है। कथावस्तु के दो प्रकार होते हैं आधिकारिक और प्रासगिक। उनकी समीक्षा की जा चुकी है। महाकाव्य की वस्तु असक्षिप्त होनी चाहिए। 'मानस' मे रामकथा का विशद वर्णन है कही व्यास-शैली मे, और कही समास-रूप से।[1] वस्तु-विन्यास के सबध मे नाटक की पचसधियो को आवश्यक बतलाया गया है। सधि-विधान का लक्ष्य कथानक को सुगठित बनाना है। परतु, उनकी योजना वही सभव है जहाँ इतिवृत्त बहुत विस्तृत न हो। 'मानस' के अतिव्यापक आयाम मे उसका निर्वाह असाध्य है। इस पर विचार किया जा चुका है।

३. नायक : उच्च कुल मे उत्पन्न मानव अथवा देवता महाकाव्य का नायक हो सकता है। कुलीनता की शर्त का कारण भी मनोवैज्ञानिक है। महान् वश के नेता का व्यक्तित्व स्वभावत प्रभावशाली होता है, तुच्छ कुल का नायक भावक को उतना प्रभावित नही कर सकता। चार प्रकार के नायको मे से धीरोदात्त ही महाकाव्य के योग्य है क्योकि ललित, उद्धत और शात नायको मे महान् कार्य सपन्न करने की अपेक्षित योग्यता की कमी पायी जाती है। राम धीरोदात्त हैं, उनमे आदर्श-नायक के सभी सामान्य और विशिष्ट गुण विद्यमान हैं। कालिदास ने अनेक सूर्यवशी राजाओ को 'रघुवश' का नायक बनाया था। तुलसी ने हस-वश-अवतस और रघुवश-भूषण राम को नायक बनाकर एकान्विति का विशेष निर्वाह किया है। उन्होने परपरा का अतिक्रमण भी किया है। उनके राम नर या देवता नही हैं, वे नररूप-परब्रह्म हैं। उपलब्ध महाकाव्यो के आधार पर सस्कृत के काव्यशास्त्री इस प्रकार के नायक की कल्पना नही कर सकते थे।

प्रतिनायक महाकाव्य का महत्त्वपूर्ण पात्र है। उसमे भी नायक की भाँति बल और गुण होने चाहिएँ। उसकी शक्तिमत्ता के बिना नायक की श्रेष्ठता प्रतिपादित नही की जा सकती। 'मानस' का रावण विश्वविजयी, और उत्साह आदि गुणो से सपन्न है। उसके शील मे कमी है, इसलिए वह विजेतव्य है। शास्त्रकारो ने अन्य पात्रो की चर्चा नही की। नाटक के प्रसग मे नायक, प्रतिनायक और उनके पक्ष के पात्रो की जो विशेषताएँ बतलायी गयी हैं वे महाकाव्य पर भी लागू होती हैं।

३. रस : महाकाव्य मे सभी रसो की, और अगी रस के रूप मे शृगार, वीर अथवा

१. रामचरितमानस, १।३३।१, ७।१२३।१

शात की निबधना की जानी चाहिए। 'मानस' मे शास्त्र-सम्मत दसो रसो शृगार, वीर, शात, वात्सल्य, हास्य, करुण, अद्‌भुत, रौद्र, भयानक और वीभत्स की न्यूनाधिक व्यजना हुई है।[1] उसका अगी रस भक्तिरस है। इसका विस्तृत विवेचन हम कर चुके हैं। 'मानस'-गत अन्य रसो के रसत्व और पूर्णत्व पर सदेह किया जा सकता है। इसका कारण अगी भक्तिरस की अतिशयता है। नरलीला करनेवाले परमेश्वर राम से सबधित सयोग-शृगार, विप्रलभ, करुण आदि मे वह स्वाभाविकता नही आ सकती जो पाठक के समानधर्मा मानव की कामरति, शोक आदि की व्यजना मे सभव है। यह तुलसी की काव्यकला की सफलता है कि भगवान् राम के भी विरह-विलाप अथवा शोक-सताप का वर्णन पढ़कर भावको को विप्रलभ-शृगार या करुण रस की अनुभूति होती है।

४ जीवन-सस्कृति-प्रकृति : महाकाव्य मे व्यापक जीवन, मानव-सस्कृति, और प्रकृति के विविध रूपो का चित्रण अपेक्षित है। काव्य की महत्ता के लिए यह आवश्यक है कि वह अधिक-से-अधिक पाठको के लिए आनद-दायक और मगल-विधायक हो सके। 'मानस' मे बाल्य, यौवन, उल्लास, विषाद आदि विभिन्न जीवन-दशाओ, यज्ञ, नामकरण, विवाह आदि सस्कारो, नगर, बारात, मडप आदि वस्तुओ, यात्रा, युद्ध आदि व्यापारो, और ऋतुओ, प्रभात, सध्या, दिन, रात, वन, पर्वत आदि प्राकृतिक विषयो का यथेष्ट वर्णन है। उसमे अतर्जगत् और बाह्यजगत् की नाना परिस्थितियो का काव्योचित चित्राकन है।

५ रचना-शैली (१) महाकाव्य मे कम-से-कम आठ सर्ग होने चाहिएँ, न अतिविस्तृत, न अतिसक्षिप्त। 'मानस' मे इस नियम का पालन नही है। उसमे केवल सात सोपान हैं। प्रथम दो सोपानो मे ही उसका आधे से अधिक भाग समाया हुआ है। तीसरे और चौथे सोपान अपेक्षाकृत बहुत सक्षिप्त हैं। (२) सर्ग के अत मे छद-परिवर्तन और आगामी वस्तु का निर्देश होना चाहिए। 'मानस' के प्रत्येक सोपान की अतिम चौपाइयो के बाद नियमत 'छद' की योजना है। वस्तु-निर्देश उपेक्षित है। उसके उद्‌देश्य की पूर्ति दूसरे ढग मे की गयी है। तुलसी ने परवर्ती सोपान के आरभ मे पूर्ववर्ती सोपान की कथा के सूत्र को मिलाया है। (३) आरभ मे मगलाचरण, प्रतिज्ञावचन, सुजन-प्रशसा, दुर्जन-निंदा, प्रयोजन आदि का उपन्यास वाछित है। 'मानस' मे इन सबकी निबधना हुई है। (४) भावोत्कर्ष के लिए अलकारो का सनिवेश आवश्यक है। 'मानस' आद्योपात अलकृत शैली मे रचा गया है। (५) अत मे नायक का अभ्युदय दिखाया जाना चाहिए। तदनुरूप 'मानस' मे रावण-वध के पश्चात् रामराज्य का विशद वर्णन है।

६ प्रयोजन : काव्य मात्र का प्रयोजन चतुर्वर्ग-प्राप्ति है। यह स्वयसिद्ध है कि वही महाकाव्य का भी फल है। 'मानस' भक्तिरस का काव्य है। अत कवि और भावक दोनो के केंद्र-बिंदु से उसका प्रयोजन अर्थ-धर्म-काम-मोक्ष इन चारो पुरुषार्थो से भी महत्तर परमपुरुषार्थरूपा भक्ति की प्राप्ति है। भक्ति स्वय रस है।

---

१ क्रमश उदाहरण १।२२८।१-१।२३५।१ (सयोग), ५।१२।१-६ (विप्रलभ), ५।३४।१-७, ७।१८७।१-७।११८।३, १।२०३।१—दोहा, १।१३४।१-१।१३५।१, २।१५३।३-२।१५६।३, १।२०१।२-१।२०२।३, १।२७५।१-४, ६।१०१।१-४, ६।८८।१-५

पाश्चात्य-सिद्धात तुलसी पर पश्चिम के साहित्यशास्त्रियो का कोई प्रभाव नही है, तथापि व्यापक आलोचन के लिए उस दृष्टि से भी सक्षेप मे विचार कर लेना चाहिए। उनकी मान्यता[1] के अनुसार महाकाव्य के प्रमुख लक्षण हैं (१) महान् उद्देश्य, (२) महिमाशाली नायक, (३) ऐतिहासिक अर्थात् प्रख्यात कथानक, (४) महत्त्व-पूर्ण घटना का वर्णन, (५) कार्यान्विति और प्रभावान्विति, (६) जीवन के विविध पक्षो, वस्तुओ और व्यापारो का चित्रण, (७) कथा का विस्तृत वर्णन, (८) कथावस्तु का खडो या सर्गों मे विभाजन, (९) नाटक, कथा और प्रगीतकाव्य के रमणीय तत्त्वो का समावेश, (१०) रसात्मकता, (११) छदोवद्धता, (१२) उदात्त, गभीर और लालित्यपूर्ण प्रतिपादन-शैली। महाकाव्य की ये विशेपताएँ अपने सामान्य रूप मे भार-तीय काव्यशास्त्रियो द्वारा निरूपित लक्षणो के समान ही हैं। पश्चिमी आलोचको का 'उद्देश्य' 'प्रयोजन' का पर्यायवाची है। नायक, कथानक और वस्तु-विभाजन मे वे ही मूल बातें कही गयी है। 'कार्यान्विति' और 'प्रभावान्विति' की बात भारतीयो ने नाटक की पचसधियो और अगी रस के द्वारा प्रतिपादित की है। छद, शैली आदि के विषय मे हमारे यहाँ कुछ विस्तार से विचार किया गया है। उपर्युक्त विशेपताएँ 'रामचरितमानस' मे पूर्णत प्रतिफलित हुई हैं। उद्देश्य आदि की चर्चा की जा चुकी है। 'मानस' मे कार्या-न्विति का सम्यक् निर्वाह है। राम का प्रत्येक कार्य लोकमगल के लिए है। अवातर कथाओ की योजना भी राम, रामावतार और रामभक्ति की महिमा को दृष्टि मे रखकर की गयी है। आद्योपात भक्ति की अविच्छिन्न धारा प्रभावान्विति का अनूठा उदाहरण है। 'मानस' के सवादो मे नाटकीय तत्त्वो और वर्णन मे कथा के मनोहर गुण विद्यमान हैं। उसकी प्रगीतात्मकता का असदिग्ध प्रमाण यह है कि जनसाधारण विभिन्न बानियो के साथ विभिन्न लयो मे 'मानस' का गान करते हैं। अलकृत महाकाव्य का यह लोकप्रिय रूप निराला है।

सभी दृष्टियो से 'रामचरितमानस' उत्कृष्ट कोटि का महाकाव्य है। वह तुलसी की महती प्रतिभा का महामहिम फल है। उसका लक्ष्य महान् है। वह ब्रह्मानदमयी भक्ति और ब्रह्मानदसहोदर रस दोनो का निष्पादक है। उसमे व्यावहारिक तथा पारमार्थिक सत्य का सुदर एव मगलविधायी निरूपण है। उसका कथानक लोक-शास्त्र-प्रसिद्ध है। उसमे जीवन और जगत् का व्यापक चित्राकन है। उसका नायक ईश्वर होकर भी मर्यादा-पुरुषोत्तम है। उसकी नायिका रूप, गुण और नारीत्व का आदर्श है। उसका मानी प्रति-नायक अपने ऐश्वर्य, सामर्थ्य एव प्रभाव मे अनुपमेय है। उसके अलौकिकता-विशिष्ट पात्र भी मानव-सवेदनाओ से पूर्ण तथा जीवत हैं। वह एक सफल प्रबध है। उसके धारावाहिक वस्तु-विन्यास मे मार्मिक स्थलो[2] की चित्तस्पर्शी निबधना है। उसमे काव्य के समस्त रमणीयता-प्रतिपादक तत्त्वो का मनोहर सनिवेश है। सामान्य काव्य-समालोचको के लोचन मे बुरी तरह खटकने वाला स्तुतियो, गीताओ एव अधिदेव वर्णनो का पुनरावर्ती

---

१. देखिए हिंदी-महाकाव्य का स्वरूप-विकास, पृ० ९९-१०७

२ देखिए इस ग्रथ के पृ० २७५-७९

दोष भक्तिरस-रसिको की दृष्टि मे गुण बन गया है। उसमे भारतीय सस्कृति और युग-धर्म का विशद प्रतिबिंब है। उसके गौरवशाली प्रतिपाद्य का उपस्थापन गभीर वातावरण की सृष्टि करके ललितोदात्त शैली मे किया गया है। यद्यपि 'रामचरितमानस' अलकृत-शैली का महाकाव्य है तथापि उसमे रोमाचक महाकाव्यो और लोकमहाकाव्यो की-सी वीरता एव साहस-कार्यों का वर्णन है, अतिमानवीय तत्त्वो का समावेश है, कल्पना की अतिशयता और चमत्कारात्मकता है।

परपरानिष्ठ, धर्मप्राण और लालित्यप्रेमी भारतवर्ष का वाङ्मय विभिन्न प्रकार की निष्पन्न कृतियो से सुसपन्न है। उसमे एक-से-एक सुदर काव्य-नाटक हैं, परम सत्य का उद्घाटन करने वाले तत्त्वाभिनिवेशी दर्शनशास्त्र हैं, सामाजिक व्यवस्था के प्रतिष्ठापक धर्मग्रथ हैं, और सबका समन्वय करने वाले इतिहास-पुराण हैं। 'रामचरितमानस' उन सबसे अनूठा है। वह हिंदी-भाषी जनता का धर्मशास्त्र है, भक्तिदर्शन है, इतिहास-पुराण है, और साहित्यिक दृष्टि से हिंदी का सर्वश्रेष्ठ महाकाव्य है।

गीतावली

प्रमुख विशेषताएँ

'गीतावली' गीत-बद्ध मुक्तक काव्य है।[1] उसमे रामविषयक गीतो का सग्रह है। 'कृष्णगीतावली' के वजन पर उसे 'रामगीतावली' नाम भी दिया गया है। कहा जा चुका है कि 'गीतावली' का पूर्वरूप 'पदावलीरामायण' था। 'रामायण' शब्द से यह आभासित होता है कि उसमे रामकथा का धारावाहिक वर्णन है। परतु, वास्तविकता यह है कि उसमे राम-कथा का अविच्छिन्न प्रवाह नही पाया जाता[2], राम-चरित के चुने हुए प्रसगो और दृश्यो का ही प्राय पूर्वापरसबधरहित चित्राकन किया गया है। अनेक बातो की पुनरावृत्ति भी हुई है।[3] प्राय प्रत्येक गीत अपने मे पूर्ण और अभीष्ट भाव-व्यजना मे समर्थ है। 'गीतावली' के वर्तमान रूप के सपादन के समय उसके पूर्वरूप 'पदावलीरामायण' के गीतो के क्रम में पर्याप्त परिवर्तन किया गया है।[4] यह हेर-फेर भी उसके मुक्तक-स्वरूप का निर्णायक है।

'गीतावली' मे वर्णित राम-कथा की परिधि 'रामचरितमानस' आदि की अपेक्षा अधिक व्यापक है। उसमे राम के आविर्भाव से लेकर सीता-निर्वासन और लव-कुश के बाल-चरित तक के विविध प्रसगो का वर्णन है। अतिम दो प्रसग केवल 'गीतावली' मे वर्णित हैं।[5] 'रामाज्ञाप्रश्न' मे सीता-त्याग, लव-कुश-जन्म, उनके द्वारा राम की सभा मे

---

१. काडानुसार गीत-सख्या ११०, ८९, १७, २, ५१, २३, ३८, कुल मिलाकर ३३०

२ एक स्थल पर तो क्रम भी गड़बड़ है। शुक-सारिका-सवाद (२।६६-६७) कम-से-कम ७८वें पद के बाद होना चाहिए, क्योंकि उसमें राम के 'चरनपीठ' का उल्लेख है और भरत को चरण-पादुका-प्राप्ति ७८वें पद में हुई है।

३ जैसे गीतावली, १।५२, १।५५, ५७-५९, १।९०, ९१, ९२, ९३

४ देखिए . तुलसीदास, पृ० २१८-१९

५. गीतावली, ७।२५-३१, ७।३४-३६

'रामायण'-गान और सीता के अवनि-प्रवेश का भी उल्लेख है,[1] किंतु उनका वर्णन नही है। 'कवितावली' मे सीता-परित्याग का सकेतमात्र है।[2] अन्य कृतियो मे कवि ने रामराज्य-वर्णन के बाद कैकेयी को भुला दिया है। 'गीतावली' के अत मे उस उपेक्षिता का भी स्मरण किया गया है।

'गीतावली' मे प्रसग-चयन की विशेषता यह है कि कवि ने वर्णन के लिए उन्ही स्थलो को विशेष रूप से चुना है जो कोमल भावो से ओतप्रोत हैं। लक्ष्मण-परशुराम-सवाद, लका-दहन, राम-रावण-युद्ध आदि के दीप्तिमय-उत्तेजक अश जानबूझ कर छोड दिये गये हैं। दूसरी ओर, बाल-लीला, कौशल्या की विरह-वेदना, विभीषण-शरणागति, अयोध्या मे भरत-हनुमान्-मिलन आदि के द्रुतिकारक प्रसगो का अभिनिवेशपूर्वक अकन किया गया है।

प्रसगोद्‌भावना की दृष्टि से चार प्रसग ध्यान देने योग्य हैं। १ निषादराज ने एक पत्र लिखकर भरत को सूचित किया कि विराध का वध करके राम विंध्याचल और रेवा नदी के बीच सकुशल निवास कर रहे हैं।[3] २ राम के विरह मे सपूर्ण अयोध्या दु खमग्न है, पशु-पक्षी तक व्यथित हैं। शुक-सारिका-सवाद[4] मे उसका मार्मिक चित्रण है। ३ एक पद मे कौशल्या ने पथिक द्वारा राम के प्रति सदेश भेजा है जिसमे उनके घोडो की करुण दशा का विवरण है।[5] ४ राम के आगमन की आतुरतापूर्वक प्रतीक्षा करती हुई कौशल्या काक और क्षेमकरी को सबोधित करके 'सगुन' मनाती है।[6]

भक्तिकाव्य मे भगवान् की तीन विभूतियो का बहुधा निरूपण किया गया है सौंदर्य, शील और शक्ति। तुलसी ने अपनी रामविषयक सभी रचनाओ मे ऐश्वर्य के तीनो ही रूपो का चित्रण किया है, तथापि उद्देश्यानुसार विभूतिविशेष को अपेक्षाकृत कम या अधिक महत्त्व दिया है। 'मानस' मे कवि की दृष्टि राम के शील और शक्ति पर मुख्य-तया केंद्रित रही है, 'गीतावली' मे उनके सौदर्य पर। बालक, किशोर और प्रौढ राम के सौंदर्य-दर्शन मे उसका मन अतिशय तन्मयता के साथ रमा है।

'गीतावली' का वस्तु-विभाजन यथारीति सात काडो मे हुआ है, किंतु उसका उत्तरकाड अन्य कृतियो के उत्तरकाड से बहुत भिन्न है। उसके अतर्गत हिंडोले, दीप-मालिका और वसत-विहार का वर्णन उसकी निजी विशेषता है। अपने अन्य काव्यो मे तुलसी ने इस प्रकार के माधुर्य को गौरव नही दिया। इस माधुरी ने अधीती आलोचको को इतना प्रभावित किया है कि कोई-कोई विद्वान् इस निरूपण को दास्य-भक्त तुलसी के अवचेतन मन मे निहित मधुरा भक्ति का मर्यादित प्रकाशन मानते हैं। सीता-त्याग, लव-कुश और कैकेयी की चर्चा ऊपर की जा चुकी है। कृति के अतिम पद मे रामकथा का

---

१. रामाज्ञाप्रश्न, षष्ठ सर्ग, सप्तक ७
२. कवितावली, ७।३
३. गीतावली, २।८६
४. गीतावली, २।६६-६७
५. गीतावली, २।८७
६. गीतावली, ६।१६-२०

सारसग्रह भी अवेक्षणीय है।

रस की दृष्टि से 'गीतावली' माधुर्य-विशिष्ट रसो की रचना है। कोमल भावो के परिणामस्वरूप उसके अधिकाश गीत वात्सल्य, शृगार अथवा भक्तिरस के व्यजक हैं। कुछेक पदो मे करुण-रस की व्यजना है। एकाध पदो मे वीररस है, किंतु वह भक्ति का अग बन कर आया है। ओज-विशिष्ट रौद्र, बीभत्स और भयानक का अभाव है। अद्भुत, हास्य और शात भी नही हैं। शातरसात्मक प्रतीत होने वाले पदो में वस्तुत भक्तिरस है। गीतिकाव्य कोमल भावो की अभिव्यजना के अधिक अनुकल पडता है। कहा जा चुका है कि 'मानस' आदि के रचना-काल मे कवि के रामकथा-सबधी जो भाव गीतो से माध्यम से व्यक्त हुए थे उन्ही का सग्रह 'गीतावली' है।

'गीतावली' का वात्सल्य-वर्णन तुलसी-साहित्य मे सर्वश्रेष्ठ है। सूरदास को छोड कर कोई दूसरा कवि बालरूप-चित्रण और वात्सल्य-व्यजना की इस पराकाष्ठा पर नही पहुँच सका। उसमे सयोग और वियोग की विविध अवस्थाओ की मनोहारिणी निदर्शना है। अपनी पालित-पोषित सतान के प्रति जननी-जनक के उमडते हुए वात्सल्य का उच्छ-लन प्राय देखने मे आता है, किंतु पर-सतान के प्रति सौतेली माताओ और असबधी नर-नारियो का स्नेहातिरेक इस स्वार्थमय विश्व में अत्यत दुर्लभ है। 'गीतावली' में वात्सल्य के इस पक्ष का भी उद्घाटन किया गया है।[1]

तुलसी की सभी महत्त्वपूर्ण कृतियो में उनकी अलकारप्रियता परिलक्षित होती है। 'गीतावली' में अलकारो का सगुफन उन्होने अपेक्षाकृत अधिक अभिरुचि के साथ किया है। राम की शोभा पर टिकी हुई उनकी दृष्टि मानो आगे बढना ही नहीं चाहती है। उनका रूपाकन करते समय कवि ने आलकारिक बिंब-योजना की चित्रावली-सी सजा दी है।[2] सौंदर्य-चित्रण में अलकारो के लालित्य-विधान की प्रचुरता नितात स्वाभाविक है। 'मानस' मे रूपको का वैशिष्ट्य है, और 'गीतावली' मे उत्प्रेक्षाओ का।

भाव-पक्ष

'गीतावली' के भाव-पक्ष के तीन विभाग किये जा सकते हैं १ कथावस्तु, २ भावो, विभावो, अनुभावो, वस्तुओ और प्राकृतिक दृश्यो का वर्णन, ३ भक्तिदर्शन का निरूपण। सातवें अध्याय[3] मे प्रसगानुसार 'गीतावली' के भाव-पक्ष की भी समीक्षा की गयी है। प्रस्तुत प्रकरण मे उसके कुछ महत्त्वपूर्ण पक्षो की विचार-चर्चा अपेक्षित है।

कथावस्तु 'गीतावली' की कथा के विषय काडानुसार इस प्रकार हैं १ राम-जन्म की बधाई, लाड-प्यार, विश्वामित्र के साथ राम-लक्ष्मण का गमन, अहल्या का उद्धार, जनकपुर मे पदार्पण, फुलवारी मे सीता-राम का परस्पर-दर्शन, धनुर्भंग, विवाह बारात की वापसी, २ अभिषेक की तैयारी, राम-वनगमन, पथ-कथा, चित्रकूट-वर्णन, कौशल्या की विरहव्यथा, दशरथ-मरण, भरत का आगमन, चित्रकूट को प्रस्थान, भरत-

---

१ गीतावली, १।१९, १८, ३४, ४०

२. गीतावली, १।२३, २६, ७।३-१०

३. देखिए पृ० २८४-३०३

राम-मिलन, राम-विधुरा अयोध्या, ३ राम का वन-विहार, मारीच-वध, सीता-हरण, जटायु-रावण-युद्ध, राम की वियोग-वेदना, जटायु-मिलन, शबरी से भेंट, ४ सीता की खोज के लिए वानरो का प्रस्थान, ५ अशोक-वाटिका मे हनुमान्, रावण से भेंट, सीता से विदा, राम के पास प्रत्यागमन, लका पर चढाई, रावण की मत्रणा, विभीषण-शरणागति, सीता-त्रिजटा-सवाद, ६ मदोदरी द्वारा रावण को उपदेश, अगद का दूतकर्म, लक्ष्मण-मूर्च्छा, विजयी राम, अयोध्या मे राम का आगमन, राज्याभिषेक, ७ रामराज्य, राम की रूपमाधुरी, हिंडोला, अयोध्या की शोभा, दीपमालिका, वसत-विहार, आनदोत्सव, राम की न्यायनिष्ठता, सीता-निर्वासन, लव-कुश-जन्म, कथासारसग्रह।

'गीतावली' मे वर्णित कथा और उसके अतिम गीत मे निबद्ध कथासार का अतर अवेक्षणीय है। कथासार मे ताडका, सुबाहु, परशुराम, जयत, विराध, शूर्पणखा, खर-दूषण, कबध, सुग्रीव-मैत्री, ताल-वेध, बालि-वध और रावण-वध का उल्लेख है, लेकिन गीतावली' के इतिवृत्त मे उन प्रसगो का वर्णन नही है। इसके दो मुख्य कारण हैं। एक यह कि 'गीतावली' मे कवि की दृष्टि राम के सौंदर्य पर केंद्रित है, शक्ति पर नही। दूसरा यह कि ओजस्वी प्रसगो के लिए गीत उपयुक्त माध्यम नही था। 'कवितावली' की भाँति 'गीतावली' का किष्किधाकाड नितात उपेक्षित है। उपर्युक्त अतर के प्रतिकूल, 'गीतावली' के कथानक मे वर्णित दो महत्त्वपूर्ण प्रसग सीता-निर्वासन और लव-कुश-चरित कथासार मे सर्वथा उपेक्षित हैं। इसका कारण कवि की भक्तिभावना है। भक्तिपरक पद मे अपने आराध्य का अप्रिय चरित अवाछनीय प्रतीत हुआ।

ताडका आदि के उपर्युक्त प्रसग (जो 'गीतावली' मे उपेक्षित हैं) 'मानस' मे वर्णित हैं। आश्चर्य की बात है कि 'मानस' और 'कवितावली' का हृदयस्पर्शी केवट-प्रसग गीतिकाव्य के उपयुक्त होते हुए भी 'गीतावली' मे विस्मृत हो गया है। 'मानस'-गत जनक की चित्रकूट-यात्रा, और सेतुबध के उपरात राम द्वारा शिवलिंग की स्थापना का 'गीतावली' मे अभाव कोई खटकने वाली बात नही है। दूसरी ओर, 'मानस' मे उपेक्षित अनेक प्रसग 'गीतावली' मे वर्णित हैं १ विश्वामित्र के साथ गये हुए राम-लक्ष्मण का समाचार न मिलने पर सुमित्रा आदि की चिंता,[1] २ वनवासी राम के वियोग मे कौशल्या का बारबार व्यथित होना[2], ३ शुक-सारिका-सवाद[3], निषादराज की पत्रिका[4], ५ शबरी के प्रति राम का मातृ-स्नेह[5], ६ अशोक-वाटिका मे सीता-मुद्रिका-सवाद[6], ७ अपनी माता, भाई कुबेर, और शिव की अनुमति से विभीषण का राम की शरण मे जाना[7], ८ लक्ष्मण की मूर्च्छा का समाचार सुनकर सुमित्रा द्वारा शत्रुघ्न को सहायता के लिए जाने

१. गीतावली, १।१०१
२. गीतावली, २।५१-५५, २।८३-८८
३ गीतावली, २।६६-६७
४. गीतावली, २।८९
५. गीतावली, ३।१७।४, ८
६. गीतावली, ५।३-४
७. गीतावली, ५।२६-२८

का आदेश', ९ राम-राज्याभिषेक के पश्चात् हिंडोल, दीपमालिका, वसन्त-विहार और आनंदोत्सव'; १० सीता-वनवास और लव-कुश-चरित'। 'रामाज्ञाप्रश्न' तथा 'जानकी-मंगल' के सदृश और 'मानस' के विपरीत 'गीतावली' में राम-परशुराम की भेंट बारात के लौटते समय मानी गयी है। यह घटना-क्रम एवं सीता-वनवास-प्रसंग वाल्मीकि-'रामायण' और 'अध्यात्मरामायण' के अनुसार है। 'मानस' का घटना-क्रम नाटकों से प्रभावित है। कवि को अपने उद्देश्य और कलात्मकता की दृष्टि से इस प्रकार का परिवर्तन करने की स्वतंत्रता है। तुलसी ने उसका उपयोग किया है।

भाव आदि का निरूपण : 'गीतावली' में शान्त, अद्भुत, हास्य, भयानक और बीभत्स रस नहीं है। रौद्र और वीर की व्यंजना अवश्य हुई है, किन्तु उनका पर्यवसान भक्ति में किया गया है। अंगद-रावण-संवाद में रावण की रोषमयी उक्ति है

तैं मेरो मरम कछू नहिं पायो।
रे कपि कुटिल ढीठ पसु पाँवर मोहिं दास ज्यों डाटन आयो॥
भ्राता कुंभकरन रिपुघातक सुत सुरपतिहि बंदि करि ल्यायो।
निज भुजबल अति अतुल कहौं क्यों कंदुक ज्यों कैलास उठायो॥...
जो तरिहैं भुज बीस घोरनिधि ऐसो को त्रिभुवन में जायो।
सुनि दससीस वचन कपिकुंजर बिहँसि ईसमायहि सिर नायो।
तुलसिदास लंकेस कालबस गनत न कोटि जतन समुझायो॥[4]

उपर्युक्त सारे गीत में उद्धत रावण के क्रोध की स्वाभाविक एवं मार्मिक अभिव्यक्ति है, परन्तु अंतिम दो पंक्तियों में भक्ति का पुट है। इसी प्रकार लक्ष्मण-मूर्च्छा के प्रसंग में हनुमान् के उत्साह का ओजस्वी वर्णन है

जौ हौं अब अनुसासन पावौं।
तौ चंद्रमहि निचोरि चैल ज्यों आनि सुधा सिर नावौं॥
कै पाताल दलौं ब्यालावलि अमृतकुंड महि लावौं।
भेदि भुवन करि भानु बाहिरो तुरत राहु दै तावौं॥
तुम्हरिहि कृपा प्रताप तिहारेहि नेकु बिलंब न लावौं।
दीजै सोइ आयसु तुलसीप्रभु जेहि तुम्हरे मन भावौं॥[5]

यहाँ भी गीत का उपसंहार भक्ति में हुआ है। अंतिम पंक्ति में प्रपत्ति का प्रथम प्रकार 'भगवान् के अनुकूल बने रहने का संकल्प' स्पष्ट है।

'गीतावली' में वात्सल्य, शृंगार, करुण और भक्ति इन चार रसों की उत्कृष्ट योजना पायी जाती है। वात्सल्य का क्षेत्र व्यापक है।[6] लवकुश के बाल-वर्णन में रसात्म-

---

१. गीतावली, ६।१३
२. गीतावली, ७।१८, ७।२०, ७।२१-२२
३. गीतावली, ७।२५-३६
४. गीतावली, ६।३
५. गीतावली, ६।८
६. देखिए : इस ग्रंथ के पृ० २८६-८९

कता नही है, किंतु राम के सवध से किया गया अधिकाश वात्सल्य-निरूपण सरस है। अधिक वर्णनात्मक गीत निस्सदेह नीरस हैं।[1] बालकाड मे बाल्य-जीवन की विभिन्न दशाओ और वात्सल्य की विविध मानसिक स्थितियो का चित्राकन है। वात्सल्य के दोनो पक्षो सयोग[2] और वियोग[3] को कवि ने समान महत्त्व दिया है। कवित्व की दृष्टि से कौशल्या की विरह-वेदना का चित्रण अत्यत उत्कृष्ट है। प्राय सभी पद हृदयद्रावक हैं। कही से भी उदाहरण दिये जा सकते है

हाथ मींजिवो हाथ रह्यो।
लगी न सग चित्रकूटहु तें ह्याँ कहा जात वह्यो ॥
पति सुरपुर सिय राम लषन वन मुनिव्रत भरत गह्यो।
हौं रहि घर मसान पावक ज्यो मरिबोइ मृतक दह्यो ॥
मेरोइ हिय कठोर करिबे कहँ बिधि कहुँ कुलिस लह्यो।
तुलसी बन पहुँचाइ फिरी सुत क्यो कछु परत कह्यो ॥[4]

शृगार के भी दोनो पक्ष सयोग[5] और वियोग[6] मर्यादित रीति से सुदरतापूर्वक अकित है। काम (सेक्स) से मुक्त रति की व्यजना भी तुलसी के भाव-निरूपण की महत्त्वपूर्ण विशेषता है

रहहु भवन हमरे कहे कामिनि।
सादर सासु चरन सेवहु नित जो तुम्हरे अति हित गृहस्वामिनि ॥
राजकुमारि कठिन कटक मग क्यो चलिहौ मृदु पद गजगामिनि।
दुसह वात वरषा हिम आतप कैसे सहिहौ अगनित दिन जामिनि ॥
हौं पुनि पितु आग्या प्रमान करि ऐहौं वेगि सुनहु दुतिदामिनि।
तुलसिदास प्रभु विरह बचन सुनि सहि न सकी मुरछित भइ भामिनि ॥[7]

अतिम पक्ति से सीता के जिस दापत्य-प्रेम की व्यजना हो रही है वह पतिव्रता के धर्म से अनुप्राणित है, विलासिनी के काम से नही। पहली पक्ति में प्रयुक्त 'कामिनि' शब्द 'प्रिये' का वाचक है। इस पद से भावक की सहानुभूति और करुणा उद्‌बुद्ध होती है, कामरति नही।

शोक की अभिव्यक्ति के चार मुख्य स्थल हैं दशरथ-मरण, जटायु-मिलन, लक्ष्मण-मूर्च्छा और सीता-त्याग।[8] अतिम स्थल पर अपने आराध्य की कठोरता के चित्रण मे तुलसी की प्रतिभा कुठित-सी हो गयी है। अन्य प्रसगो मे कही-कही भक्ति का पुट लगा दिया गया है। भक्ति से अस्पृष्ट पदो मे करुण की व्यजना मार्मिक है, जैसे

१ जैसे गीतावली, १।२, ४-६
२ गीतावली, १।६-४६, १।१०९-१०
३. गीतावली, १।९९-१०१, २।५१-५८, २।८३-८७, ६।१७-२०
४ गीतावली, २।८४, और देखिए . २।५१-५८, ८५-८७ आदि
५. यथा गीतावली, १।७१-७२, १।१०५-६
६ जैसे . गीतावली, ३।९-१०, ५।१०, ५।१९-२०
७. गीतावली, २।५
८. क्रमश , गीतावली, २।५६-५९, ३।१२-१६, ६।६-७, ७।३०-३१

मो पै तो न कछू ह्वै आई ।
और निवाहि भली बिधि भायप चल्यो लखन सो भाई ।।
पुर पितु मातु सकल सुख परिहरि जेहि बन बिपति बँटाई ।।
ता सँग हौं सुरलोक सोक तजि सक्यो न प्रान पठाई ।।
जानत हौं या उर कठोर तें कुलिस कठिनता पाई ।।
सुमिरि सनेह सुमित्रासुत को दरकि दरार न जाई ।।
तातमरन तियहरन गीधवध भुज दाहिनी गँवाई ।
तुलसी मैं सब भाँति आपने कुलहि कालिमा लाई ।।[1]

इन भावो के अतिरिक्त, पात्रो की विभिन्न अतर्वृत्तियो का भी 'गीतावली' मे स्थान-स्थान पर चित्रण हुआ है ।[2] तदनुरूप आलवन के रूप और आश्रय के अनुभावो की निवधना की गयी है ।[3] सोहिलोमगल, नामकरण-सस्कार, अयोध्या आदि के वस्तु-वर्णन मे काव्योचित रमणीयता का अभाव है ।[4] प्रकृति-वर्णन की दृष्टि से चित्रकूट का चित्राकन अनुपेक्षणीय है । उसका उद्दीपन-रूप मे चित्रण रूढिवद्ध है, आलवन-रूप में चित्रण भक्तिदर्शन-मिश्रित है । क्रमश उदाहरण है[5]

१. 1. मलयानिल सीतल सुरभि मंद । बह सहित सुमन रस रेनु वृंद ।।
मनु छिरकत फिरत सबनि सुरग । भ्राजत उदार लीला अनग ।।
11 बिरहिन पर नित नइ परै मारि । डाँडियत सिद्ध साधक प्रचारि ।।

२ जलजुत बिमल सिलनि झलकत नभ बन प्रतिबिंब तरंग ।
मानहु जगरचना बिचित्र बिलसति बिराट अँग अग ।।
मंदाकिनिहि मिलत झरना झरि झरि भरि भरि जल आछे ।।
तुलसी सकल सुकृत सुख लागे मानौ रामभगति के पाछे ।।

एकाध अलकार-वोझिल और प्रयास-साधित पदो मे प्रकृति-सौंदर्य दव-सा गया है ।

भक्तिदर्शन : 'गीतावली' मे तुलसी का काव्यकवित्व प्रधान है । वह 'रामचरित-मानस' या 'विनयपत्रिका' की भाँति दार्शनिक अथवा भक्तिरसप्रधान काव्य नहीं है तथापि उसमे कवि की भक्तिभावना का तिरोभाव नही हुआ है । कितने ही पदो मे भक्तिदर्शन का न्यूनाधिक निदर्शन किया गया है[6]

१. जो सुखसिंधु सुकृत सीकर तें सिव बिरचि प्रभुताई ।।
सोइ सुख अवध उमँगि रह्यो दस दिसि कौन जतन कहौं गाई ।।

---

१ गीतावली, ६।६
२ माँ की लालसा १।८, ग्रामवधुओं की प्रसन्नता २।२४; भरत का सकोच २।७३-७४ आदि
३. गीतावली, १।३४, १।७७, २।३५, ५।१७-२० आदि
४. गीतावली, १।२, १।६, ७।१६
५ गीतावली, २।४८।४, २।४६।६, २।५०।६, देखिए २।४३-५०
६. गीतावली, १।१।११, १।२५।६, १।८८।३, २।२८।३, ३।१३।४, ५।१०।५, ५।१७।४, ५।३५।३, ७।३८।१

२ दसरथगृह सोइ उदार भंजन ससारभार
लीलाअवतार तुलसिदास त्रासहारी।
३. गाँठि बिनु गुन की कठिन जडचेतन की
छोरी अनायास साधु सोधक अपान को।
४ रूप सोभा प्रेम के से कमनीय काय हैं।
मुनिबेष किये कैधौं ब्रह्म जीव माय हैं।।
५ तुलसी प्रभु झूठे जीवन लगि समय न धोखो लैहौं।
६. तुलसिदास प्रभु मोहजनित भ्रम भेदवुद्धि कब बिसरावहिंगे।
७ तुलसिदास दुखसुखातीत हरि सोच करत मानहु प्राकृत जन।
८. सील सहस हिमभानु तेज सतकोटि भानु हू के भानु हैं।।
भगतनि को हित कोटि मातुपितु अरिन्ह को कोटि कृसानु हैं।।
९. अति उदार अवतार मनुजवपु धरे ब्रह्म अज अविनासी।

इन पक्तियो से तुलसी की दार्शनिक विचारधारा का सकेत मात्र मिलता है। वहुत-से गीतो की अतिम पक्तियो मे उन्होने अपनी रामभक्तिनिष्ठता का निवेदन किया है।[1] अनेक पद भक्तिरस के उत्कृष्ट उदाहरण है[2]

१. दीनहित बिरद पुराननि गायो।
आरतबधु कृपालु मृदुलचित जानि सरन हौं आयो।
तुम्हरे रिपु को अनुज बिभीषन वस निसाचर जायो।
कर पकज सिर परसि अभय कियो जन पर हेतु दिखायो।
तुलसिदास रघुबीर भजन करि को न परमपद पायो।।
२ सुमिरत श्रीरघुबीर की बाँहैं।
करि आई करिहैं करती हैं तुलसिदास दासनि पर छाहैं।।

'गीतावली' मे दर्शन के जो सक्षिप्त सूत्र मिलते है उनसे सिद्ध है कि उसमे भी तुलसी का सिद्धात वही है जो 'मानस' आदि मे। उनके आधार पर उसकी व्यवस्थित अवधारणा की जा सकती है।

कला-पक्ष

'गीतावली' के गीत राग-निबद्ध हैं। यथास्थान गीतो के शीर्ष पर राग का उल्लेख कर दिया गया है। उसमे प्रयुक्त राग हैं आसावरी, जैतश्री, बिलावल, केदारा, सोरठ, धनाश्री, कान्हरा, कल्याण, ललित, विभास, नट, टोडी, सारग, मलार, गौरी, मारू, भैरव, वसत और रामकली। सभवत इसी आधार पर एकाध आलोचको ने यह धारणा बनायी है कि स्तोत्रपरक किंतु अपेक्षाकृत कम सगीतात्मक पदो को 'विनयपत्रिका' नाम से अभिहित किया गया, और जिनमे सगीतात्मकता अधिक थी उन्हे 'गीतावली' के नाम

1 गीतावली, १।१०, ३२, ५७, २।३६, ५०, ८२; ३।१३, १६, १७, ५।२९, ३२, ३७, ३८, ६।८, ७।१०।१२

2. गीतावली, ५।४४, ७।१३, और देखिए . ५।२९-३०, ४५-४६, ७।१५

स'।उनकी यह मान्यता अतिरंजित है। १ 'विनयपत्रिका' मे स्तोत्र-शैली के पद अधिक नही है। २ उसके आत्मनिवेदनात्मक गीत तुलसी-साहित्य मे ही नही, संपूर्ण हिंदी-साहित्य मे बेजोड हैं। ३ उनमे जो हृदयद्रावकता है वह 'गीतावली' मे नही पायी जाती। ४ संगीतज्ञ-समाज मे भी 'विनयपत्रिका' के गीत 'गीतावली' की अपेक्षा अधिक समादृत हैं। ५ 'विनयपत्रिका' के विसदृश 'गीतावली' की विशेषता उसकी कथात्मकता है।

प्रगीत-तत्त्व : प्रगीत-काव्य के मुख्य तत्त्व हैं १ संगीतात्मकता, २ रागात्मक अनुभूति की इकाई और प्रभावान्विति, ३ आत्माभिव्यक्ति, ४ संक्षिप्तता, ५ भाव-व्यंजना, और ६ जीवन की आंशिक अभिव्यक्ति। 'गीतावली' मे इन तत्त्वो का संनिवेश है। १ संगीत की दृष्टि से उसके रागो का उल्लेख ऊपर किया गया है। 'गीतावली' मे भगवान् राम की लीला का वर्णन है, अत वे राग अधिकतर प्रात कालीन अथवा सायं-कालीन हैं। उनका चुनाव करते समय कवि ने भावो की उपयुक्तता का ध्यान रखा है, उदाहरण के लिए, मधुर भाव की व्यंजना मे 'आसावरी'[2] का और ओजस्वी भाव की व्यंजना मे 'मारू'[3] का प्रयोग किया है। शब्द-योजना मे लय का प्रवाह है। २ एक गीत मे एक अनुभूति का चित्रण किया गया है और वह घनीभूत प्रभाव उत्पन्न करने मे समर्थ है।[4] ३ कथात्मक गीति-काव्य होने के कारण 'गीतावली' मे कवि की आत्माभिव्यक्ति कम पायी जाती है। विभिन्न पात्रो की आत्माव्यक्ति निस्संदेह हृदयस्पर्शी है।[5] ४ उसके अधिकांश गीत संक्षिप्त हैं। उनमे किसी विशिष्ट भावानुभूति का मार्मिक निरूपण है। हाँ, वर्णनात्मक लंबे गीतो मे सरसता की कमी है। ५ भाव-व्यंजना पर विचार किया जा चुका है। ६ गीत मुक्तक-रचना है, इसलिए उसमे जीवन का खंड-चित्र ही प्रस्तुत किया जा सकता है। 'गीतावली' के गीतो मे रामकथा-संबंधी अंशो का चित्रांकन किया गया है। अपनी वर्णनात्मकता के बावजूद, कतिपय पदो को छोडकर, शेष कृति एक सफल प्रगीत-काव्य है।

शब्दार्थ-नियोजन 'गीतावली' की भाषा साहित्यिक ब्रजभाषा है। ब्रजभाषा का माधुर्य सुप्रसिद्ध है। गीत-रचना के क्षेत्र मे वह मँज चुकी थी। तुलसी ने अपने गीति-काव्य मे इस लोकप्रिय ललित भाषा का साधिकार प्रयोग किया। शब्द-चयन मे उनकी दृष्टि संकीर्ण नही रही है। तद्भव और अर्धतत्सम शब्दो के अतिरिक्त चामीकर, कृकाटिका, कलिंदनंदिनी, हृदि, उरसि आदि तत्सम, बजार, सिरताज, खसम, जहाज, कसम आदि अरबी-फारसी, तथा अगहुँड़, गोड, मोखे, माँगी, माठ आदि प्रादेशिक शब्दो का निस्संकोच व्यवहार किया गया है। आवश्यकतानुसार उन्होने शब्द गढे भी हैं, जैसे .

---

१ देखिए तुलसीदास और उनके काव्य, पृ० २६०

२. सजनी हैं कोउ राजकुमार।
पथ चलत मृदु पदकमलनि दोउ सील रूप आगार।—गीतावली, २।२६।१

३ नौ हौं अब अनुसासन पावा।
तौ चंद्रमहि निचोरि चैल ज्यों आनि सुधा सिर नावौं।—गीतावली, ५।८।१

४ जैसे गीतावली, १।२८, २।१५, २।७७, ५।२, ६।५ आदि

५. यथा गीतावली, २।७१, २।८४, ५।४४ आदि

बिलंबिय, दुखवहु, मुकुतावहिंगे, चरची आदि।' शब्दो मे अपेक्षित अर्थ-व्यजकता है, वाक्य-रचना परिपुष्ट है, मुहावरो का प्रयोग विरल है, किन्तु सटीक है।[2] भाषा का प्रवाह आद्योपात अनवरुद्ध है।

माधुर्य-गुण 'गीतावली' की विशिष्टता है। भावो की नैसर्गिक सुकुमारता के अनुरूप उसमे कर्णकटु शब्दो तथा दीर्घ समासो का तिरस्कार, और कोमल-कात-पदावली से गुफित उपनागरिका वृत्ति की अतिशयता है, उदाहरण के लिए[3]

१ मन मे मंजु मनोरथ हो री।
पन परिताप चाप चिता निसि सोच संकोच तिमिर नहि थोरी।
रविकुल रवि अवलोकि रुभा सर हितचित बारिज बन विकसो री॥

२. राजति राम जानकी जोरी।
स्याम सरोज जलद सुदर वर दुलहिनि तड़ित वरन तन गोरी॥
मुदित जनक रनिवास रहसबस चतुर नारि चितवहिं तृन तोरी॥
गान निसान वेदधुनि सुनि सुर वरसत सुमन हरष कहै को री॥

तुलसी की अन्य कृतियो की भाँति 'गीतावली' मे भी प्रसाद गुण सर्वत्र पाया जाता है। लालित्यपरक रचना होने के कारण उसमे परुषा वृत्ति और ओज की न्यूनता है। दीप्ति-प्रधान भावो की व्यजना मे भी परुष वर्णो का प्रयोग नगण्य है।[4]

मार्मिक स्थलो पर ध्वनि-वक्रोक्ति की चमत्कारपूर्ण निबधना मिलती है[5]

१ मूरति की सूरति कही न परै तुलसी पै
जानै सोई जाके उर कसकै करक सी।

२ गहि न जाति रसना काहू की कहौ जाहि जोइ सूझै।
दीनबधु कारुण्यसिधु बिनु कौन हिये की बूझै॥

३ सुनि खग कहत अब गौंगी रहि समुझि प्रेमपथ न्यारो।
गये ते प्रभुहि पहुँचाइ फिरे पुनि करत करम गुन गारो॥

४. भरतदसा सुनि सुमिरि भूपगति देखि दीन पुरवासी।
तुलसी राम कहति हौं सकुचति ह्वैहै जग उपहांसी॥

'गीतावली' मे विभिन्न अलकारो की सुदर योजना हुई है।[6] तुलसी की सामान्य प्रवृत्ति

---

१. गीतावली, २।१३।२, २।४७।१८, ५।१०।४, ७।२७।१
२ देखे नरनारि कहैं साग खाइ जाए माइ बाहु पीन पाँवरनि पीना खाइ पोखे हैं॥
हाय मींजिबो हाथ रह्यो।
लगी न सग चित्रकूटहु तें ह्यां कहा जात बह्यो॥—गीतावली, १।६५।३, २।८४।१
३. गीतावली, १।१०४।१-२, १।१०५।१, ५
४ रावन जु पै राम रन रोपे।
को सहि सकै सुरासुर समरथ विसिख कालदसननि तें चोखे॥—गीतावली, ५।१२।१
पावहुगे निज करम जनित फल भले ठौर हठि वैर बढायो।
बानर भालु चपेट लपेटनि मारत तव ह्वै है पछितायो॥—गीतावली, ६।४।३
५ गीतावली, १।४४।२, २।६२।३, २।६६।५, २।८५।३
६ जैसे, रूपक १।१८।१-३, उपमा १।८५।१, पर्यायोक्ति १।११०।३,
सदेह २।२८।३-४ आदि

के अनुसार अनुप्रास और सादृश्यमूलक अलकारो की बहुलता है। उत्प्रेक्षा का स्थान अन्यतम है उसका एक नमूना देखिए

> आँगन फिरत घुटुरुवनि धाए।...
> भ्रू सुदर करुनारसपूरन लोचन मनहु जुगल जलजाए॥
> भाल बिसाल ललित लटकन वर वालदसा के चिकुर सोहाए।
> मनु दोउ गुर सनि कुज आगे करि ससिहि मिलन तम के गन आए।
> उपमा एक अभूत भई तब जब जननी पट पीत ओढ़ाए।
> नील जलद पर उडुगन निरखत तजि सुभाव मनो तड़ित छपाए॥
> अग अग पर मारनिकर मिलि छविसमूह लै लै जनु छाए।
> तुलसिदास रघुनाथ रूप गुन तो कहौं जो बिधि होहि बनाए॥'[1]

'गीतावली' के भाव-पक्ष और कला-पक्ष के सम्यक् उद्घाटन के लिए विस्तृत समीक्षा अपेक्षित है। यह सक्षिप्त दिग्दर्शन पर्याप्त नही है। इससे इतना स्पष्ट है कि उसमे 'रामचरितमानस' और 'विनयपत्रिका' की-सी महत्ता एव रसात्मकता न होने पर भी वह उत्कृष्ट कोटि की काव्य-कृति है।

विनयपत्रिका

प्रमुख विशेषताएँ

१. रूप-रचना : 'विनयपत्रिका' का अर्थ है प्रार्थनापत्र, अरजी। यह अरजी तुलसी ने भगवान् राम की सेवा मे भेजी है। उनके राम सम्राटो के भी सम्राट् हैं।[2] अतएव उनके दरबार मे अरजी पेश करने का तौर-तरीका भी उनकी लोकोत्तर गरिमा के अनुरूप होना चाहिए। तुलसी के सामने मुगल-सम्राटो का आदर्श था। शाहशाह के पास अरजी पहुँचा देना और उस पर अनुकूल सही करा लेना साधारण काम नहीं था। गैर-सिफारिशी अरजियाँ प्राय दाखिलदफ्तर हो जाती थीं। सफलता के लिए मुसाहिबो की सिफारिश आवश्यक थी। जो महलसरा (अत पुर) तक कोशिश पहुँचा लेता था उसकी लक्ष्य-सिद्धि निश्चित थी। अपने युग की इस पद्धति के आधार पर तुलसी ने 'विनयपत्रिका' का रूपक बाँधा है।

राजा-महाराजाओ की सात ड्योढियो की चर्चा प्राय की जाती है। 'विनयपत्रिका' मे भी सात ड्योढियाँ हैं। इन सातो परिसरो पर अधिकारी तैनात हैं गणेश, सूर्य, शिव, दुर्गा, गगा, यमुना और हनुमान्।[3] यह बात ध्यान देने योग्य है कि "छठी ड्योढी के अनतर दो वन हैं। एक का नाम आनदवन (काशी) और दूसरे का नाम चित्र-वन या चित्रकूट है। इन वनो का भी यथास्थान वर्णन किया गया है।"[4] सात ड्योढ़ियो

---

१. गीतावली, १।२६
२ महाराजनि के महाराज कवितावली, ७।१६, १२६, राम सों बडो है कौन विनयपत्रिका, ७२।२
३. पद १, २, ३-१४, १५-१६, १९-२०, २१, ३५-३६
४ हिंदी-साहित्य का अतीत, पृ० ३०६

के पार भगवान् राम का राजमहल है। वहाँ तीन विशिष्ट अगरक्षक है लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न।[1] 'राजचक्र को साधकर', गणेश से शत्रुघ्न तक सभी राम-सेवको को स्तुतियो द्वारा प्रसन्न करके, प्रार्थी तुलसीदास अत पुर मे प्रवेश करते हैं। वे जगजननी जानकी से भी सिफारिश करने की प्रार्थना करते हैं। इन सभी स्तुत्य जनो के प्रति किये गये निवेदन के अत में वे अविरल राम-भक्ति का वरदान माँगते हैं। सबकी कृपा से वे महाराज राम के समुख उपस्थित होते हैं। बहुविध विनय के पश्चात् उनका साक्षात् निवेदन है

बिनयपत्रिका दीन की बापु आपु ही बांचो।
हिये हेरि तुलसी लिखी सो सुभाय सही करि बहुरि पूँछिये पाँचो ॥[2]

अंततोगत्वा राम की स्वीकृति और हस्ताक्षर का क्रम भी बादशाही है

मारुतिमन रुचि भरत की लखि लषन कही है।
कलिकालहु नाथ नाम सों परतीति प्रीति एक किंकर की निबही है ॥
मकल सभा सुनि लै उठी जानी रीति रही है।
कृपा गरीबनिवाज की देखत गरीब को साहब बाँह गही है ॥
बिहँसि राम कह्यो सत्य है सुधि मैं हूँ लही है।
मुदित माथ नावत बनी तुलसी अनाथ की परी रघुनाथ सही है ॥[3]

राम के ईश्वरीय स्वरूप और 'विनयपत्रिका' के वर्ण्य विषय से स्पष्ट है कि यह पत्रिका भौतिक नही है, आध्यात्मिक है, व्यक्ति, देश और काल की सीमा के परे है। विभिन्न पदो मे तुलसी ने अपने जिस दैन्य एव जिन कमजोरियो का वर्णन किया है वे भवचक्र मे पडे हुए सभी देशो तथा सभी कालो के जीव मात्र की कमजोरियाँ हैं।[4] तुलसी ही नही, सपूर्ण जगत् कलिकाल से पीडित है। यहाँ लक्षणा द्वारा कलिकाल का अर्थ है कलिकालीन अत्याचारी लोग। उन उत्पीडको के विरुद्ध फरियाद करने के लिए सार्वजनिक प्रतिनिधि के रूप मे तुलसीदास प्रार्थनापत्र लेकर राजराजेश्वर राम के दरबार मे उपस्थित हुए हैं। अतएव 'विनयपत्रिका' केवल तुलसी की व्यक्तिगत अनुभूति तक सीमित न होकर क्रातदर्शी कवि द्वारा साक्षात्कृत लोक-मानस की समष्टिपरक अभिव्यक्ति है।

'विनयपत्रिका' की व्यवस्थित योजना से प्रभावित कतिपय आलोचक उसे मुक्तक-रचना मानने मे सकोच करते हैं। डा० विमलकुमार जैन को उसमे 'खडकाव्य का आभास' मिलता है[5], और डा० रामकुमार वर्मा के अनुसार वह 'सग्रह-ग्रथ' न होकर 'एक सम्यक् ग्रथ' है।[6] वस्तुत 'विनयपत्रिका' मुक्तक-सग्रह है। कहा जा चुका है कि

---

१. क्रमश पद ३७-३८, ३९, ४०
२. विनयपत्रिका, २७७।३
३. विनयपत्रिका, २७९
४. एहि बिधि सकल जीव जग रोगी। सोक हरष भय प्रीति वियोगी ॥
—रामचरितमानस, ७।१२१।१
५. तुलसीदास और उनका साहित्य, पृ० २०४-६, तुलसीदास और उनके काव्य, पृ० २७५
६. हिंदी-साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृ० ४१८

उसका एक पूर्वरूप था 'रामगीतावली', जिसमे १७६ गीत थे। उन गीतो के सकलन-काल तक कवि के मन मे अरजी वाली कल्पना नही आयी थी। पुन सपादन करते समय उसने 'विनयपत्रिका' की योजना की, 'रामगीतावली' के पांच गीत अनुपयुक्त होने के कारण 'गीतावली' मे समाविष्ट किये गये, शेष गीतो के क्रम मे भी परिवर्तन किया गया, और १०८ नये गीत जोडे गये।[1] इस प्रकार २७६ गीतो का नया सग्रह तैयार हुआ। उसके प्रथम तिरसठ और अतिम तीन गीतो मे ही क्रम माना जा सकता है, अन्य गीतो मे क्रम मानने का कोई तर्कसगत आधार नही है। उसके बीच-बीच मे ऐसे भी पद हैं जो 'विनय' के प्रकार से नितात भिन्न हैं।[2] इन सब कारणो से 'विनयपत्रिका' को मुक्तक-रचना मानना ही समीचीन है, यद्यपि उसका निष्पादन व्यवस्थापूर्वक योजनानुसार किया गया है।

२. स्मार्त-भावना तुलसीदास स्मार्त वैष्णव थे। स्मार्त-धर्म की दो महत्त्वपूर्ण विशेषताएँ हैं वर्णाश्रमधर्म-निष्ठा, और गणेश, सूर्य, शिव, दुर्गा तथा विष्णु इन पाँच देवो की उपासना। पहली विशेषता तुलसी की सभी प्रमुख कृतियो मे सम्यक् रूप से अभिव्यक्त हुई है, किंतु पचदेवो का योजनाबद्ध स्तवन 'विनयपत्रिका' मे ही मिलता है।[3] इसके अतिरिक्त, राम के भरत आदि पार्षदो की व्यवस्थित वदना भी उसकी निजी विशेषता है।

३ मनोमयी सृष्टि 'योगवासिष्ठ' आदि मे विस्तार से बतलाया गया है कि विश्व मनोनिर्मित है। उसके इस रूप का विशद निरूपण केवल 'विनयपत्रिका' मे है।[4]

४. साख्य-मत तुलसी ने साख्य-योग और वेदात का समन्वय किया है। अन्य कृतियो मे भी इसके सकेत विद्यमान हैं, परतु साख्य-तत्त्वो का उल्लेख करते हुए विष्णु-रूप जगत् का उपस्थापन 'विनयपत्रिका' मे ही मिलता है।[5]

५. मनोवैज्ञानिक रूपक इस कृति मे वपुष-ब्रह्माड और ससारकांतार के साग-रूपको द्वारा जीव की प्रवृत्तियो का चित्रात्मक शैली मे मनोवैज्ञानिक वर्णन है[6] जिसका सादृश्य तुलसी-साहित्य मे अन्यत्र नही है। प्रथम रूपक की तुलना बनारसीदास की 'घट-रामायण' वाली कविता[7] और तुलसी साहब के 'घटरामायन' से की जा सकती है।

६ हरिशकरी स्तुति तुलसी का शैव-वैष्णव-समन्वय सर्वविदित है। 'विनय-पत्रिका' के उनचासवें पद मे विष्णु और शिव की साथ-साथ स्तुति की गयी हैं। इन दोनो आराध्य देवो का एकत्र स्तवन उनकी किसी दूसरी रचना मे नही हैं।

७ दशावतार-वंदना पौराणिक परपरा मे भगवान् के बहुसख्य अवतारो मे से

---

१. देखिए तुलसीदास, पृ० २२०-२३
२ जैसे पद १३५, १३६
३ विनयपत्रिका, १-६६, ४६
४. योगवासिष्ठ, ३।९१।४, ६।१।११४।१७ आदि; विनयपत्रिका, १२४
५. विनयपत्रिका, ५४
६ विनयपत्रिका, ५८, ५९
७. देखिए: इस ग्रथ का पृ० ६४

दस अवतार मुख्य माने जाते हैं। 'विनयपत्रिका' का बावनवाँ पद ही तुलसी-साहित्य का ऐसा स्थल है जहाँ दशावतार-वदना की गयी है, और वह भी क्रमिक रूप से।

८ पुरुषकार-सिद्धात' 'विनयपत्रिका' के आरभिक पदो मे इस सिद्धात की व्यवस्थित व्यजना हुई है। अन्य रचनाओ मे इसका प्रतिपादन नही पाया जाता। यहाँ पर सभी देवी-देवताओ से तुलसी ने रामभक्ति और रामकृपा का वरदान माँगा है, 'पुरुष-कारपरा' सीता से सिफारिश करने की साग्रह प्रार्थना की है। अरजी के रूपक ने इस भावना की अभिव्यक्ति को उपयुक्त अवसर प्रदान किया है।

९ अनौपचारिक सख्य सूर के खरेपन की तुलना मे तुलसी चापलूस समझे जाते हैं। 'विनयपत्रिका' मे ऐसे पद्य भी उपलब्ध है जिनमे उन्होने विश्वास-विशिष्ट सख्य-भाव से राम को खरी-खोटी भी सुनायी है।[२]

१० निर्गुणभक्ति और शातरस 'रामचरितमानस' मे निर्गुण-ब्रह्म का प्रतिपादन सगुण-राम के गुणीभूत है, और शातरस स्वतत्र न होकर भक्तिरसपर्यवसायी है। 'विनय-पत्रिका' के अनेक पदो मे निर्गुण राम का, निर्गुण-भक्ति का, और शुद्ध शातरस का भी निरूपण है।[3]

११ मानसी आरती तुलसी को अनावश्यक कर्मकाड का बाह्याडबर पसद नही था।[४] अतएव उन्होने पूजा के मानसिक पक्ष पर बल दिया है। सैंतालीसवें पद मे मानसी आरती का साग-चित्राकन 'विनयपत्रिका' का अपना वैशिट्य है।

१२ षोडशोपचार-पूजन : आगे चलकर[५] होली, फाग और चाँचरि के रूपक की पृष्ठभूमि मे षोडशोपचार-पूजन की मानसिक साधना पर बल दिया गया है। भव-सतरण और 'भगतिरस' के साधनो का ऐसा उपस्थापन 'रामचरितमानस' आदि मे कही नही है।

१३ भक्ति की कठिनता पग-पग पर भक्ति को सरल-सुगम बताने वाले तुलसी ने 'विनयपत्रिका' मे उसकी कठिनाई का कुछ विस्तार से निर्देश किया है।[६] रामकृपा के अधिकारी और श्रद्धावान् मर्मज्ञ के लिए वह सरल है, किंतु विषयासक्त अभिमानी के लिए कठिन है।

१४. प्रपत्तिवाद तुलसी की भक्ति स्वरूपत प्रपत्त्यात्मक है। परतु, प्रपत्ति या शरणागति की दृष्टि से 'विनयपत्रिका' उनके साहित्य मे अन्यतम है। उसके आत्मनिवे-दनात्मक पदो मे भक्तिरस का अत्यत मर्मस्पर्शी प्रवाह है। अत सत-समाज में उसका विशेष आदर है।

१५. कलि-वर्णन 'रामचरितमानस' और 'कवितावली' की भाँति 'विनयपत्रिका'

---

१ देखिए तुलसी-दर्शन-मीमासा, पृ० २८८-८९

२ विनयपत्रिका, १०६।३, ११२।२, २४१।५, २५८।४

३. विनयपत्रिका, १११, १६७ आदि

४ छठ दम सील विरति बहु कर्मा।—रामचरितमानस, ३।३६।१

५ विनयपत्रिका, २०३, तुलना कीजिए सूरसागर, ३५३३, 'गोविंदस्वामी', ११८८

६ पद १६७, देखिए तुलसी-दर्शन-मीमासा, पृ० १८७-८८

मे भी कराल कलिकाल की कुत्सित करनी का सजीव वर्णन है[1] जिसमे रूढिबद्ध कलि-प्रभाव का ही नही, समसामयिक समाज की दुरवस्था का भी चित्रण है। लोक की दयनीय दशा का मार्मिक विवरण प्रस्तुत करके कवि ने भगवान् की करुणा को उद्दीप्त करने का प्रयास किया है।

१६ जीव की लोक-यात्रा एकमात्र 'विनयपत्रिका' ही तुलसी की ऐसी कृति है जिसमे जीव की सपूर्ण जीवन-यात्रा का, गर्भ से लेकर वृद्धावस्था तक की विभिन्न स्थितियो का, विषयवैराग्य-प्रेरक व्यवस्थित वर्णन किया गया है।[2]

१७ रामचरितसारसग्रह 'रामचरितमानस' के काकभुशुडि-गरुड-सवाद और 'गीतावली' के अतिम पद मे रामकथा का सक्षिप्त निर्देश है। उसी प्रकार 'विनयपत्रिका' के तैंतालीसवें पद मे रामचरित का सार सगृहीत है और पचासवें मे उसका साकेतिक उल्लेख है।

१८ आत्मकहानी तुलसी के आत्मचरित की दृष्टि से भी 'विनयपत्रिका' अनुपेक्षणीय है। उसकी अनेकानेक पंक्तियाँ उनके जन्म, माता-पिता, मूल-नाम, बालजीवन की दुर्दशा, आधिभौतिक बाधाओ आदि का स्पष्ट सकेत करती है।[3]

भक्तिदर्शन[4]

विनयपत्रिका' मे 'रामचरितमानस' की भाँति गीताओ की योजना का अवकाश न होने के कारण दार्शनिक सिद्धातो का व्याख्यात्मक शैली मे प्रतिपादन सभव नही था। अतएव तुलसी ने प्राय स्तुतियो के रूप मे उन सिद्धातो का सक्षिप्त रूप से निदर्शन किया है।

ब्रह्म राम राम सच्चिदानदस्वरूप, सर्वज्ञ, और आनदनिधान है[5]

१ सच्चित व्यापकानद परब्रह्म पद विग्रहव्यक्त लीलावतारी।

२. सच्चिदानद आनदकदाकर विस्वविश्राम रामाभिराम।

३ नित्य निर्मम नित्यमुक्त निर्मान हरि ज्ञानघन सच्चिदानदमूलं।

वे विश्व के कर्ता, पालक एव सहारक हैं। ब्रह्मा-विष्णु-शिव उन्ही की शक्ति के प्रतीक और उन्ही की शक्ति से शक्तिमान् हैं[6]

१ विस्वधृत विस्वहित अजित गोतीत सिव विस्वपालनहरन बिस्वकर्ता।

२ सर्वरक्षक सर्वभक्षकाध्यक्ष कूटस्थ गूढाचि भक्तानुकूल।

३ बिस्वपोषनभरन विस्वकारनकरन सरन तुलसीदास त्रासहंता।

४ हरिहि हरिता विधिहि विधिता सिवहि सिवता जो दई।

---

१. रामचरितमानस, ७।९७-७।१०२, कवितावली, ७।८३-८७, १६९-७७, विनयपत्रिका, १३९

२ विनयपत्रिका, १३६

३ विनयपत्रिका, १३५।१, २२७।१, २७५।२, ७६।१, २२३।३, २२७।३, ८

४ देखिए तुलसी-दर्शन-मीमासा, पृ० ४२-३३४

५. विनयपत्रिका, ४३।१, ५१।१, ५३।६। देखिए - ५५।१

६. विनयपत्रिका, ६१।८, ५३।६, ५५।६, १३५।३

उनका स्वरूप अनिर्वचनीय है। वे तत्त्वत निर्गुण और सगुण दोनो हैं, प्राकृत गुणो से रहित और दिव्य गुणो से युक्त हैं, विरोधी गुणो के आश्रय हैं[1]

१. अमल अनवद्य अद्वैत निर्गुन सगुन ब्रह्म सुमिरामि नरभूपरूपं।

२ बरद बनदाभ बागीस बिस्वातमा बिरज बैकुंठमंदिरबिहारी।
ब्यापक ब्योम बदारु बामन बिभो ब्रह्मबिद ब्रह्म चिंतापहारी ॥

३ अजित निरुपाधि गोतीतमव्यक्त बिभुमेकमनवद्यमजमद्वितीयं।
प्राकृत प्रगट परमातमा परमहित प्रेरकानद बदे तुरीय ॥
सिद्धसाधकसाध्य बाच्यबाचकरूप मत्रजापकजाप्य सृष्टिस्रष्टा।
परमकारन कजनाभ जलदाभतनु सगुन निर्गुन सकलदृश्यद्रष्टा ॥

ब्रह्म राम देवो तथा सज्जनो की रक्षा, पृथिवी के भार-हरण, धर्म-सस्थापन एव भक्तो के कल्याण के लिए विभिन्न प्रकार के अवतार धारण करते हैं[2]

१. जब जब जगजाल ब्याकुल करम काल सब खल भूप भये भूतलभरन।
तब तब तनु धरि भूमिभार दूरि करि थापे मुनि सुर साधु आश्रम बरन ॥

२ बिकल ब्रह्मादि सुर सिद्ध सकोचबस बिमलगुनगेह नरदेहधारी।

३ भूमिभरभारहर प्रगट परमातमा ब्रह्म नररूप धर भक्तहेतू।

राम की माया तुलसी ने 'रामचरितमानस' मे बतलाया है कि राम की शक्ति 'माया' है, उनके साथ वह भी सीता के रूप मे अवतार लेती है, उसके दो रूप हैं विद्या और अविद्या, विद्या-माया सृष्टि और कल्याण का हेतु है, अविद्या-माया मोहकारिणी है।[3] साख्य-योग की प्रकृति वैष्णव-वेदातियो की 'माया' के अतर्भूत है। त्रिगुणात्मिका प्रकृति, काल, कर्म, स्वभाव आदि माया द्वारा सचालित हैं, और जीव-समष्टि को वशीभूत कर रखने वाली माया राम की वशवर्तिनी है[4]

१ करम काल सुभाउ गुन दोष जीव जग माया तें सो सभै भौंह चकित चहति।
ईसनि दिगीसनि जोगीसनि मुनीसनि हू छोडति छोडाये तें गहाये तें गहति ॥

२. जाकी माया बस बिरचि सिव नाचत पार न पायो।

३. देव दनुज मुनि नाग मनुज सब माया बिबस बिचारे।

४. 'जाकी बिषम माया गुनमई', 'जेहि किये जीवनिकाय बस'।

विषय माया (अविद्या) के बधन की निवृत्ति के लिए राम की 'दाया' आवश्यक है.

माधव असि तुम्हारि यह माया।
करि उपाय पचि मरिय तरिय नहिं जब लगि करहु न दाया ॥[5]

जगत्[6]. डा० माताप्रसाद गुप्त का कथन है कि "निर्गुण राम को उनकी लीला

---

१. विनयपत्रिका, ५०।८; ५६।३, ५३।३, ७
२. विनयपत्रिका, २४८।२, ४३।१, ५२।७
३. देखिए. तुलसी-दर्शन-मीमासा, पृ० ८१-८६
४. विनयपत्रिका, २४६।३, ६८।३; १०१।३, १३६।४
५. विनयपत्रिका, ११६।१
६ विस्तृत विवेचन के लिए देखिए तुलसी-दर्शन-मीमासा, पृ० १४६-७२

से उनकी माया जब ढँक लेती है तो उसकी संज्ञा 'मूल प्रकृति' होती है। राम के क्षुभित होने पर इस 'मूल प्रकृति' से महत्तत्त्व उत्पन्न होता है।"[1] यह कथन तुलसी-सम्मत नहीं है। उनके राम न तो माया द्वारा आच्छादित होते हैं, और न क्षुभित। वस्तुतः राम के द्वारा क्षुभित माया ही विश्व-रचना करती है।[2] सृष्टि-प्रक्रिया के वर्णन में तुलसी ने वैष्णव-वेदांत और सांख्य का समन्वय किया है। उसमें दो बातें मुख्य हैं : १. माया राम की अभिन्न शक्ति है और जगत् राम का अविकृत-परिणाम है, २. माया ही प्रकृति के रूप में जगत् का उपादान-कारण बनकर विश्व का निर्माण करती है। रचना का क्रम है : प्रकृति से महत्तत्त्व, उससे अहंकार, उससे मन, इन्द्रियाधिष्ठाता देवता, दस इन्द्रियाँ, पाँच तन्मात्र और पाँच महाभूत उत्पन्न हुए। फिर ब्रह्मांडों की रचना हुई। निम्नांकित पंक्तियों से तुलसी का यह समन्वित सिद्धांत स्पष्ट है

प्रकृति महतत्त्व सब्दादि गुन देवता व्योम मरुदग्नि अमलांबु उर्वी।
बुद्धि मन इंद्रिय प्रान चित्तातमा काल परमानु चिच्छक्ति गुर्वी।।
सर्वमेवात्र त्वद्रूप भूपालमनि व्यक्तमव्यक्त गतभेद विष्नो।
भुवन भवदंस कामारि वंदित पदद्वंद मंदाकिनी जनक जिष्नो।।
आदिमध्यांत भगवंत त्वं सर्वगतमीस पस्यंति ये ब्रह्मवादी।।
यथा पटतंतु घटमृत्तिका सर्पस्रग दारुकरि कनककटकांगदादी।।[3]

दूसरी पंक्ति में तुलसी ने न्याय-वैशेषिक और शैव-शाक्त मतों को भी सांकेतिक रूप से समेट लिया है। उनके अनुसार विश्व राम से निर्मित, शासित, अनुस्यूत और व्याप्त है, विश्व रामरूप है, राम विश्वरूप हैं अचरचररूप हरि सरबगत सरबदा बसत, प्रकृति-स्वामी, विस्वविग्रह, हरिरूप चराचर, अचरचररूप गोपाल, अगजगरूप भूप सीताबर।[4] उनकी दृष्टि में जगत् को सत्य मानने वाले सांख्ययोगी, असत्य समझनेवाले विज्ञानवादी बौद्ध, और सत्यासत्य द्विविध तत्त्वों की कल्पना करनेवाले नैयायिक वैशेषिक अनीश्वर-वादी होने के कारण भ्रांत हैं

कोउ कह सत्य झूठ कह कोऊ जुगल प्रबल कोउ मानै।
तुलसिदास परिहरै तीनि भ्रम सो आपन पहिचानै।।

'विनयपत्रिका' के टीकाकारों और तुलसी के आलोचकों ने इन पंक्तियों में गलती से मीमांसकों, अद्वैतवेदांतियों और विशिष्टाद्वैतवादियों पर आक्षेप मान लिया है।[5] वस्तुतः इन निगमानुयायी दर्शनों को तुलसी निंद्य नहीं समझते हैं।

एक ओर तो उन्होंने जगत् को रामरूप कहकर उसकी सत्यता द्योतित की है, और दूसरी ओर उसे स्पष्ट रूप से 'असत', 'झूठ' या 'मृषा' कहा है[6] :

---

१ तुलसीदास, पृ० ४४८
२. देखिए तुलसी-दर्शन-मीमांसा, पृ० १५३-५५
३. विनयपत्रिका, ५४।२-४
४. विनयपत्रिका, ४७।२, ४६।३, ५०।३, १४२।२, २०३।१५, २०५।३
५. स्पष्टीकरण के लिए देखिए तुलसी-दर्शन-मीमांसा, पृ० १६८-६६
६ विनयपत्रिका, १२०।४, १२१।५, १२०।१, १२०।२

१. श्रुति गुरु साधु सुमृति समत यह दृश्य असत दुखकारी ।
२ तुलसिदास सब बिधि प्रपंच जग जदपि झूठ श्रुति गावैं ।
३. जद्यपि मृषा सत्य भासै जब लगि नहिं कृपा तुम्हारी ।
४ अर्थ अविद्यमान जानिय ससृति नहिं जाइ गोसाईं ।

अनेक प्रकार के उपमानो की योजना करके उन्होने जगत् का मिथ्यात्व समझाया है[1]

१. जग नभबाटिका रही है फल फूलि रे ।
२. बूड्यो मृगबारि खायो जेवरी को सांप रे ।
३ स्रग महँ सर्प बिपुल भयदायक प्रगट होइ अबिचारे ।
४. जो जग मृषा तापत्रय अनुभव होइ कहहु केहि लेखे ।
कहि न जाय मृगबारि सत्य भ्रम तें दुख होइ बिसेखे ।
सुभग सेज सोवत सपने बारिधि बूड़त भय लागै ।

परस्पर-विरोधी प्रतीत होने वाली उक्तियो का समाधान यह है कि जगत् प्रवाह-रूप से सत्य है, किंतु उसका दृश्यमान रूप परिवर्तनशील होने के कारण असत्य है। पूर्वोक्त दृश्य असत दुखकारी मे तुलसी के सिद्धात की कुजी विद्यमान है। तुलसिदास जग आपु सहित जब लगि निरमूल न जाई[2] का तात्पर्य यह है कि ज्ञान का उदय होने पर जग का दृश्यमान रूप तिरोहित हो जाता है और वह राम-रूप मे दिखायी देने लगता है। जगत् राम का लीला-विलास है। यह तथ्य जीव की समझ मे तब आता है जब रामभक्ति के जल से उसका मनोमल धुल जाता है

रघुपति भगति बारि छालित चित बिनु प्रयास ही सूझै ।
तुलसिदास कह चिद बिलास जग बूझत बूझत बूझै ।।[3]

विश्व मानसी रचना है। वह राम के सकल्प से सृष्ट है। इसीलिए ब्रह्मा को 'बुद्धि' की सज्ञा दी गयी है। उसका आभासमान रूप जीव की मनोवृत्ति का परिणाम है।[4]

जीव[5] जीव राम का अश है, सच्चिदानदस्वरूप है। परतु राम की भाँति सर्व-शक्तिमान, सर्वज्ञ या सर्वव्यापी नही है। राम सर्वरूप, सर्ववासी, जीव की गति-अगति के सचालक, स्वतत्र, ईश और मायापति हैं, जीव एकदेहवासी, राम के अधीन, परतत्र, ग्रथि-बद्ध एव मायावश है।[6] वह कर्ता और भोक्ता है। राम से अलग होने पर अर्थात् ससार-प्रवाह मे पडकर वह माया के कारण अपने सहज स्वरूप को भूल जाता है, और अनात्म शरीर को आत्मस्वरूप मान बैठता है। भौतिक सुख की मृगतृष्णा मे पडकर वह नाना प्रकार के दारुण दु ख सहता है[7]

---

१ विनयपत्रिका, ६६।४, ७३।२, १२२।३, १२१।२-३
२ विनयपत्रिका, १२२।५
३. विनयपत्रिका, १२४।५
४. रामचरितमानस, ६।१५, विनयपत्रिका, १२४।१-४
५. विस्तृत विवेचन के लिए देखिए तुलसी-दर्शन-मीमासा, पृ० ९५-१४५
६. विनयपत्रिका, ५४।३, ५५।७, ११२।३, १३६।१-३, १४५।५, १७७।३-४
७ विनयपत्रका, १३६।१-३

१ जिव जव तें हरि तें बिलगान्यो । तव तें देह गेह निज जान्यो ॥
मायावस स्वरूप बिसरायो । तेहि भ्रम तें दारुन दुख पायो ॥
२ आनँद सिंधु मध्य तव वासा । बिनु जाने कस मरसि पियासा ॥
मृग भ्रम बारि सत्य जिय जानी । तहँ तू मगन भयो सुख मानी ॥
३. तैं निज करम डोरि दृढ कीन्हीं । अपने करनि गाँठि गहि दीन्हीं ॥
तेहि तें बरबस परयो अभागे । ता फल गरभबास दुख आगे ॥

जीव का मन स्वभावत विषयासक्त रहता है। आत्मनिवेदनात्मक पदो मे तुलसी ने विषयी जीव की विविध प्रवृत्तियो का विशद निरूपण किया है।[1]

मोक्ष-साधन[2] : मायाधीन विषयप्रवृत्त जीव के क्लेश के मूलत दो कारण हैं अज्ञान और अभक्ति। तदनुसार मुक्ति के उपाय हैं ज्ञान और भक्ति। विवेक अथवा भक्ति के बिना जीव का निस्तार नही हो सकता[3]

१ बिनु बिवेक ससार घोर निधि पार न पावै कोई।
२ तुलसिदास भवरोग रामपदप्रेम हीन नहिं जाई।
३. छुटै न बिपति भजे बिनु रघुपति श्रुति सदेहु निबेरो।

विवेक और भक्ति की उपलब्धि के लिए करुणामय भगवान् की कृपा अनिवार्य है[4]

१. तुलसिदास हरि गुरु करुना बिनु बिमल बिवेक न होई।
२ बिनु सतसग भगति नहिं होई। ते तव मिलैं द्रवै जव सोई ॥

मोक्ष-शास्त्रियो ने भव-नाश के अनेक साधन बतलाये हैं यज्ञ, वैराग्य, याग, ज्ञान आदि। उपयोगी होने पर भी वे सुकर और अमोघ नही हैं[5]

१ जोग जाग जप बिराग तप सुतीरथ अटत।
बाँधिबे को भवगयद रेनु की रज वटत ॥
२ जोग मख बिवेक बिरति वेदविदित करम।
करिबे कहँ कटु कठोर सुनत मधुर नरम ॥
३. करम धरम असफल रघुवर बिनु
राख को सो होम है ऊसर कैसो बरिसो।
४ जप तप तीरथ जोग समाधी। कलि मति बिकल न कछु निरुपाधी ॥

उपर्युक्त साधन झूठे नही हैं, किंतु रामभक्ति और रामकृपा ही अमोघ उपाय है

ज्ञान भगति साधन अनेक सब सत्य झूठ कछु नाहीं।
तुलसिदास हरिकृपा मिटै भ्रम यह भरोस मन माहीं ॥[6]

मुक्ति-साधनो के सामान्यत तीन वर्ग किये गये हैं कर्म, ज्ञान, भक्ति। कर्म के

---

१ जैसे विनयपत्रिका, ८८-९०, १२२-२४, २४५
२ देखिए तुलसी-दर्शन-मीमासा, पृ० १७३-३३४
३ विनयपत्रिका, ११५।५, ८१।५, ८७।४
४ विनयपत्रिका, ११५।५, १३६।१०
५. विनयपत्रिका, १२९।३, १३१।२, २६४।३, १२८।२
६ विनयपत्रिका, ११६।५

लिए ज्ञान आवश्यक है, अज्ञान-प्रेरित कर्म उलटे बंधनकारक होता है[1]

१ जनम अनेक किये नाना विधि करम कीच चित सान्यो।
होइ न विमल विवेकनीर बिनु वेद पुरान बखान्यो॥
२ करम कीच जिय जानि सानि चित चाहत कुटिल मलहि मल धोयो।
३ करतहुँ सुकृत न पाप सिराहीं। रकतबीज जिमि बाढ़त जाहीं॥

पापो का कारण मन की मलिनता है, और सभी प्रकार के मलो का मूल कारण अभक्ति है। कर्म और ज्ञान के द्वारा चित्त-शुद्धि होती है, किंतु वे मल का आत्यतिक नाश करने मे असमर्थ हैं। उसका रामबाण उपाय रामभक्ति है

सब प्रकार मलभार लाग निज नाथ चरन बिसराये।
तुलसिदास ब्रत दान ज्ञान तप सुद्धिहेतु श्रुति गावै।
राम चरन अनुराग नीर बिनु मल अति नास न पावै॥[2]

वादविवाद मे न पडकर तुलसी गुरुनिर्दिष्ट रामभक्ति को ही श्रेयस्कर मानते हैं[3]

१ बहुमत मुनि बहु पथ पुराननि जहाँ तहाँ झगरो सो।
गुरु कह्यो रामभजन नीको मोहिं लगत राजडगरो सो॥
२. छमत विमत न पुरानमत एकमत नेति नेति नेति नित निगम करत॥
औरन की कहा चली एकै बात भलै भली रामनाम लिये तुलसी हू से तरत।
३. नाना पथ निरबान के नाना बिधान बहु भाँति।
तुलसी तू मेरे कहे जपु रामनाम दिनराति॥

मूल बात यह है कि जिसने जीव को मोहशृंखला से बांधा है वही मुक्त कर सकता है[4]

१ तुलसिदास येहि जीव मोहरजु जोइ बाँध्यो सोइ छोरै।
२ तुलसिदास प्रभु मोहसृखला छुटिहि तुम्हारे छोरे।

'विनयपत्रिका' के विभिन्न पदो मे तुलसी ने प्रेमरूपा भक्ति के विविध साधनो का उल्लेख किया है। उनके छः मुख्य वर्ग किये जा सकते हैं कृपा, मज्जनधर्म, राम से रागात्मक संबध, विषय-वैराग्य, ज्ञान और नवधा भक्ति। सतो, द्विजो, देवो, गुरु और भगवान् की कृपा आवश्यक है।[5] पुरुषकाररूपा सीता की कृपा का विशेष महत्त्व है, क्योकि वे राम की प्रिया हैं। इसीलिए तुलसी ने उनसे साग्रह निवेदन किया है[6]

१ कबहुँक अब अवसर पाइ।
मेरिऔ सुधि द्याइबी कछु करुन कथा चलाइ॥
२ कबहुँ समय सुधि द्याइवी मेरी मातु जानकी।

---

१. विनयपत्रिका, ८८।३, २४५।३, १२८।३
२. विनयपत्रिका, ८२।३-४
३. विनयपत्रिका, १७३।५, २५१।४, ११२।४
४. विनयपत्रिका, १०२।५, ११४।५
५ द्विज देव गुरु हरि संत बिनु संसार पार न पाइये।
—विनयपत्रिका, १३६।१२
६. विनयपत्रिका, ४१।१, ४२।१

परोपकार आदि सज्जन-धर्म हैं।[1] रागात्मक वृत्तियों के उदात्तीकरण का श्रेयस्कर उपाय यह है कि सभी भौतिक संबंधों का भगवान् पर आरोप कर दिया जाए। तुलसी ने राम के प्रति उन सभी संबंधों की कल्पना की है जो उन्हें वांछनीय जँचे[2]

१. सखा न सुसेवक न सुतिय न प्रभु आप
माय बाप तुही सांचो तुलसी कहत।

२. बहुत नात रघुनाथ तोहिं मोहिं अब न तजे बनि आवै।
जनक जननि गुरु बंधु सुहृद पति सब प्रकार हितकारी।

३ तात मात गुरु सखा तू सब विधि हितु मेरो।

विषय-लोलुप मन के प्रसंग में वैराग्य की चर्चा बारबार की गयी है। एक पद में 'योग-वासिष्ठ' की सात ज्ञान-भूमियाँ भी अवेक्षणीय हैं।[3] 'पत्रिका' में विनय की भी सात भूमिकाएँ बतलायी गयी हैं दीनता, मानमर्षता, भयदर्शना, भर्त्सना, आश्वासन, मनोराज्य और विचारणा।[4] निम्नलिखित पद में विरति-विवेक और नवधा भक्ति के विशिष्ट रूपों का सारगर्भित निर्देश किया गया है

जो मन भज्यो चहै हरि सुरतरु।
तौ तज विषय विकार सार भज अजहूँ जो मैं कहौं सोइ करु।।
सम संतोष विचार विमल अति सतसंगति ये चारि दृढ करि धरु।
काम क्रोध अरु लोभ मोह मद राग द्वेष निसेष करि परिहरु।।
श्रवन कथा मुख नाम हृदय हरि सिर प्रनाम सेवा कर अनुसरु।
नयननि निरखि कृपा समुद्र हरि अग जग रूप भूप सीतावरु।।
इहै भगति वैराग्य ज्ञान यह हरितोषन यह सुभ व्रत आचरु।
तुलसिदास सिवमत मारग यहि चलत सदा सपनेहुँ नाहिन डरु।।[5]

सत्संग से विषय-वैराग्य, उससे शम (मानसिक शांति), उससे संतोष, उससे ज्ञान, उससे मनोविकारों का अत्यंताभाव, उससे श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पादसेवन, अर्चन, वंदन आदि[6] नवधा भक्तियों का उन्मेष, उससे सर्वात्मभाव, और तब अविरल हरिभक्ति का उदय होता है।[7] यह भक्ति-मार्ग शिव-संमत है, आगम-विहित है, और यही है

श्रुति संमत हरिभगति पथ संजुत विरति विवेक।[8]

प्रपत्ति-सिद्धांत

आरंभ में ही याद दिला देना आवश्यक है कि तुलसी प्रपत्ति को अलग से मोक्ष-

---

१ विनयपत्रिका, १७०
२. विनयपत्रिका, ७५६।३, ११३।३-४, ७६।३
३. देखिए तुलसी-दर्शन-मीमांसा, पृ० ७५८
४. बैजनाथ जी विनयपत्रिका सटीक, पृ० २, तुलसी के भक्त्यात्मक गीत, पृ० १७५
५ विनयपत्रिका, २०५, और देखिए पद १५५, १७२-७३, २०३
६ सख्य ११२।२, ७४१।५, दास्य १०७।६, ११३।२, आत्मनिवेदन . ११४।४, ११७।५
७ तुलना करके देखिए रामचरितमानस, २।१२८।२-२।१३१, ३।१६।१-६, ३।३५।४-३।३६।४
८. रामचरितमानस, ७।१००, दोहावली, ५५५

साधन नही मानते। उनकी भक्ति स्वय प्रपत्त्यात्मक है। उन्होने 'भागवतपुराण' और 'अध्यात्मरामायण' दोनो की नवधा[1] भक्तियो के विभिन्न रूपो का 'विनयपत्रिका' मे स्थान-स्थान पर निरूपण किया है। 'भागवत' की नवधा भक्ति के अतर्गत जिसे **आत्म-निवेदन** कहा गया है[2] वही पाचरात्र-आगम और विशिष्टाद्वैतवाद आदि मे सिद्धातत प्रतिपादित **शरणागति** अथवा **प्रपत्ति** है।[3] वह एक मानसिक स्थिति है जिसमे अपने को अतिदीन एव निराश्रित समझने वाला भक्त सर्वतोभावेन अपने सर्वस्व को भगवान् के प्रति महाविश्वासपूर्वक समर्पित कर देता है।[4] इसका मनोवैज्ञानिक रहस्य यह है कि भगवान् को आत्मसमर्पण कर देने के बाद भक्त चितामुक्त हो जाता है। वह निर्लिप्त रह कर कर्म करता है, सफलता से इतराता नही है, असफलता पर कुठा का शिकार नही होता। यह चित्तमुक्ति ही मुक्ति है।

'विनयपत्रिका' रामशरणागत तुलसी का अमायिक[5] आत्मनिवेदन है। वह **प्रपत्ति-काव्य** है। उसमे प्रपत्ति के विविध रूपो की अतिशय मर्मस्पर्शी निबधना हुई है। पाच-रात्र आगम मे शरणागति के दो प्रकार बतलाये गये हैं मानसिक और कार्मिक।[6] वस्तुत पहला प्रकार ही यथार्थ शरणागति है, दूसरा प्रकार उसी की क्रियारूपा अभिव्यक्ति मात्र है। रामानद के अनुसार प्रपन्न दो प्रकार के हैं १ **दृप्त**, जो स्वकर्मानुसार प्राप्त दु खादि को शरीर की स्थिति तक भोगते हुए शरीरात मे मोक्ष का विश्वास रखते है, और २.**आर्त**, जो ससारदु ख को सहन नही कर सकते और अविलब ही भगवत्प्राप्तिरूप मुक्ति चाहते हैं।[7] तुलसी ने अपने ढग से इन दोनो प्रपत्ति-भावनाओ की व्यजना की है। क्रमश उदाहरण हैं[8]

१ तुलसिदास रघुनाथ कृपा को जोवत पथ खरचो।

२ माधव अब न द्रवहु कहि लेखे।
प्रनतपाल पन तोर मोर पन जिअहुँ कमलपद देखे॥

स्मरण रखना चाहिए कि उपर्युक्त **आर्त-प्रपन्न** 'गीता'-प्रतिपादित **आर्त-भक्त** से कुछ भिन्न है, क्योकि वह निष्काम है, उसकी एकमात्र कामना भगवत्प्राप्ति है। आर्त-भक्त सकाम होता है जो साधक रोग आदि से आपद्ग्रस्त है, जो प्रतिष्ठाहीन एव ऐश्वर्यभ्रष्ट होने के कारण पुन उसकी प्राप्ति का अभिलाषी है, वह **आर्त** है।[9] 'विनय-

---

१ देखिए तुलसी-दर्शन-मीमासा, पृ० २९७-३३४
२ भागवतपुराण, ७।५।२३
३ अहिर्बुध्न्यसहिता, ३७।३०-३१, यतीन्द्रमतदीपिका, पृ० ९९
४ भक्तिचद्रिका, पृ० १४९, 'शरणगतिगद्यम्', स्तोत्ररत्नावली, भाग २, पृ० ११२; पाचरात्र-विष्वक्सेनसहिता, कल्याण, साधनाक, पृ० ६३
५. तुलसिदास प्रभु कृपा करहु अब मैं निज दोष कछू नहिं गोयो।
—विनयपत्रिका, २४५।४
६ देखिए भागवत-संप्रदाय, पृ० १३१-३३
७ वैष्णवमताब्जभास्कर, श्लोक १३५-३७
८ विनयपत्रिका, २३९।७, ११३।१-२
९. गीता, ७।१६ पर शाकरभाष्य और रामानुजभाष्य, जैसे विनयपत्रिका,

पत्रिका' के जिन पदो में मानस-रोग या भव-रोग से पीडित तुलसीने उससे मुक्ति दिलाने के लिए राम से प्रार्थना की है उनमे ज्ञानतत्त्वनिरूपण होने पर भी आर्तभक्ति मानी जा सकती है।[1] इसके प्रतिकूल, जिन पदो मे कवि ने राम और रामभक्ति को ही परमप्राप्य माना है उनमें ज्ञानी की भक्ति है।[2]

शास्त्रकारो ने प्रपत्ति या शरणागति की छ विधाएँ बतलायी हैं

आनुकूल्यस्य सकल्पः प्रातिकूल्यस्य वर्जनम् ॥
रक्षिष्तीति विश्वासो गोप्तृत्ववरण तथा ॥
आत्मनिक्षेपकार्पण्ये षड्विधा शरणागति· ।[3]

'विनयपत्रिका' मे इन सभी विधाओं की प्रकृष्ट निबधना हुई है।

१. आनुकूल्यस्य सकल्प —यह भक्त की वह मनोदशा है जिसमे भक्त भगवान् के सदैव अनुकूल बने रहने की अभिव्यक्ति करता है, जैसे :

जानकीजीवन की बलि जैहौं।·
नातो नेह नाथ सों करि सब नातो नेह बहैहौं।
यह छरभार ताहि तुलसी जग जाको दास कहैहौं ॥[4]

२ प्रातिकूल्यस्य वर्जनम्—भगवान् के प्रतिकूल व्यक्ति, भाव, चर्चा आदि से सर्वदा पराङ्मुख रहना। इसी भावना के उच्च सोपान पर पहुँच कर तुलसी ने कहा है

जाके प्रिय न राम बैदेही।
तेहि छाँडिये कोटि बैरी सम जद्यपि परम सनेही ॥[5]

३ रक्षिष्यतीति विश्वास.—भक्त का यह अडिग विश्वास है कि भगवान् रक्षक हैं, वे सदा से भक्तो की रक्षा करते आये हैं और करते रहेगे। इस महाविश्वास के साथ ही वह भगवान् को भक्ति के आलबनरूप मे ग्रहण करता है·

हैं काके द्वै सीस ईस के जो हठि जन की सीवँ चरै।
तुलसिदास रघुबीर बाहुबल सदा अभय काहू न डरै ॥[6]

४ गोप्तृत्वे वरणम्—भक्त भगवान् के रक्षक-रूप की कल्पना मात्र से सतुष्ट नही होता, वह अपने रक्षक के रूप मे उसका वस्तुत वरण भी करता है। मानव मात्र का स्वभाव है कि वह त्राण के लिए किसी समर्थ की शरण मे जाता है, भगवान् तो सर्व-समर्थ हैं

ताहि तें आयो सरन सबेरें। ··
तुम सम ईस कृपालु परम हित पुनि न पाइहौं हेरें।
यह जिय जानि रहौं सब तजि रघुबीर भरोसे तेरें।

---

१ विनयपत्रिका, ६०, ११७, १२५, १४७
२. विनयपत्रिका, ८५, ९८, १०३, १७२, १७४
३. अहिर्बुध्न्यसहिता, ३७।२८-२९
४ विनयपत्रिका, १०४
५ विनयपत्रिका, १७४।१
६ विनयपत्रिका, १३७।६

तुलसिदास यह बिपति बागुरो तुम्हहिं सो बनै निवेरें ॥[1]

५ आत्मनिक्षेपः—भगवान् को रक्षक-रूप मे वरण कर लेने वाला भक्त मनसा-वाचा-कर्मणा अपने को तथा अपने सर्वस्व को भगवान् के चरणो मे समर्पित कर देता है। उसकी यह चित्तावस्था 'आत्मनिक्षेप' है

अब रघुनाथ सरन आयो जन भवभय बिकल डरचो ॥
तुलसिदास निज भवनद्वार प्रभु दीजै रहन परचो ॥[2]

आत्मनिक्षेप के साथ-साथ दैन्य की व्यजना सर्वथा अनिवार्य एव स्वाभाविक है।

६. कार्पण्यम्—इसका अर्थ है अत्यत दीनता। तुलसी-जैसा दासभक्त अपने को हीनतम और भगवान् को महत्तम मानकर उसके प्रति आत्मनिवेदन करता है। अपने दैन्य-निवेदन मे तुलसी ने कही तो अपनी हीनता, असमर्थता, पाप आदि पर ही विशेष बल दिया है, और कही अपनी दीनता की तुलना मे भगवान् की महिमा का भी गान किया है[3]

माधव मो समान जगमाहीं।
सब बिधि हीन मलीन दीन अति लीन विषय कोउ नाहीं ॥
तुम सम हेतुरहित कृपालु आरतहित ईस न त्यागी।
मैं दुख सोक बिकल कृपालु केहि कारन दया न लागी ॥

प्रपत्ति की इन विधाओ मे परस्पर-विरोध नही है। भावविशेष की प्रधानता के आधार पर पद्यविशेष मे किसी विशिष्ट विधा की सत्ता स्वीकार की जाती है। वस्तुस्थिति यह है कि शरणागत भक्त के मन मे एक का उदय होने पर अन्य विधाओ का उन्मेप अपने-आप हो जाता है। इसीलिए तुलसी ने एक ही पद मे अनेक विधाओ की सहज अभिव्यक्ति की है।

काव्य-सौंदर्य

'विनयपत्रिका' भक्तिरस का असाधारण काव्य है। दार्शनिक और साहित्यिक दोनो दृष्टियो से वह तुलसी की बहुत ही प्रौढ एवं उत्कृष्ट कृति है। परतु, उसे 'रामचरितमानस' से भी 'श्रेष्ठतर' काव्य-ग्रंथ कहना अतिशयोक्ति है। 'मानस' मे जो रसभाव-व्यजना का वैविध्य है, शब्दार्थ-वैचित्र्य की जो व्यापकता है, लालित्यविधायिनी युक्तियो की जो बहुमुखी निबधना है, वह विनय के आत्मनिवेदनात्मक पदो मे सभव नही है। उसकी विपय-परिधि सकुचित है, उसका काव्यरूप परिमित है। 'मानस' के समकक्ष न होने पर भी वह तुलसी की उत्तम रचना है। विनय-काव्य की दृष्टि से वह अप्रतिम है, उसकी एकतान भक्तिरसमयता और सगीतात्मकता 'मानस' से बढकर है। उसका आध्यात्मिक आत्मनिवेदन कवित्वमयी शैली मे प्रस्तुत किया गया है। उसमे काव्य-तत्त्वो

---

१. विनयपत्रिका, १८७
२. विनयपत्रिका, ६१।४-५
३. विनयपत्रिका, ११४।१-२

का मंजुल संनिवेश है।

रस-भाव-व्यंजना : 'विनयपत्रिका' में मुख्यतया निबद्ध रस भक्तिरस है। कुछ आलोचकों की धारणा इससे भिन्न है। पं० चन्द्रबली पांडे का कथन है कि वह 'वास्तव में शांतरस का ही ग्रंथ है', उसमें 'सभी रस जहाँ-तहाँ दिखायी दे जाते हैं', 'किंतु जो भाव आदि से अंत तक बना रहता है वह निर्वेद ही है', 'विनय में निर्वेद का राज्य है'।[1] इस प्रसंग में उन्होंने तुलसी के 'मूल उपदेश' का ज्ञापक उदाहरण दिया है

> लाभ कहा मानुषतनु पाये। ..
> सुरदुरलभ तनु धरि न भजे हरि मद अभिमान गँवाये॥
> गई न निजपरबुद्धि सुद्ध ह्वै रहे न राम लय लाये।
> तुलसिदास बीते यह अवसर का पुनि के पछताये॥[2]

'भजे हरि' और 'राम लय लाये' से स्वयंसिद्ध है कि इस पद का अभिव्यंग्य भक्तिरस है। रामविषयक रति स्थायी भाव है, निर्वेद उसका संचारी होकर आया है। पांडे जी ने 'निर्वेदस्थायी' शांत और 'ईश्वररतिस्थायी' भक्तिरस को अभिन्न मान लिया है। एकाध आलोचकों ने 'विनयपत्रिका' में भक्तिरस का परिपाक मानते हुए भी उसके कतिपय भक्तिरसव्यंजक पदों को शांतरस के उदाहरण-रूप में उद्धृत किया है, जैसे

> मन पछितैहै अवसर बीते।
> दुरलभ देह पाइ हरिपद भजु करम बचन अरु ही ते॥
> बुझै न काम अगिनि तुलसी कहुँ बिषयभोग बहु घी ते॥[3]

यहाँ भी निर्वेद भक्ति का पोषक है। अतः पूरे पद का व्यंग्य शांत नहीं, भक्तिरस है।

'विनयपत्रिका' को सभी रसों की कृति मानना युक्तिसंगत नहीं है। जिन पदों में हास, जुगुप्सा आदि भावों की सशक्त व्यंजना हुई है उनमें भी स्वतंत्र रूप से हास्य, बीभत्स आदि रसों की योजना नहीं पायी जाती, उदाहरण के लिए[4]

> १. बावरो रावरो नाह भवानी।
> दानि बडो दिन देत दये बिनु बेद बडाई भानी॥
> २ सोनित पुरीष जो मूत्र मल कृमि कर्दमावृत सोवई।
> कोमल सरीर गँभीर बेदन सीस धुनि धुनि रोवई॥

पहले उद्धरण में भवानी के प्रति ब्रह्मा की उक्ति हास्यव्यंजक है, किंतु उसकी निबंधना का उद्देश्य शिव की व्याजस्तुति है। इसलिए स्तुति प्रधान है। दूसरे उद्धरण में गर्भस्थ जीव की जुगुप्सनीय अवस्था का चित्रण है। उस दुर्दशा का मूल कारण अभक्ति है। उक्त पद के पहले ही पद्य में कवि ने इस तथ्य का निर्देश कर दिया है श्रीराम बिनु बिश्राम मूढ़ बिचारु लखि पायो कहूँ। अतएव उसका भी लक्ष्य भक्ति का उद्बोधन है। इस प्रकार हास और जुगुप्सा का विनिवेश भक्तिव्यंजना में सहायक मात्र है।

---

१ तुलसीदास, पृ० २४६, २५०, २५१
२. विनयपत्रिका, २०१
३ विनयपत्रिका, १९८
४. विनयपत्रिका, ५,१३६।३

'विनयपत्रिका' मे एकाध स्थलो पर शात की अभिव्यक्ति मानी जा सकती है :[1]

१. केसव कहि न जाइ का कहिये ।
कोउ कह सत्य झूठ कह कोऊ जुगल प्रबल कोउ मानै ।
तुलसिदास परिहरै तीनि भ्रम सो आपन पहिचानै ।।
२ सकल दृश्य निज उदर मेलि सोवै निद्रा तजि जोगी ।
सोइ हरिपद अनुभवै परम सुख अतिसय द्वैत वियोगी ।।
सोक मोह भय हरष दिवस निसि देस काल तहँ नाहीं ।
तुलसिदास यहि दसा हीन ससय निरमूल न जाहीं ।।

यहाँ भी यह तर्क किया जा सकता है कि तुलसी का प्रतिपाद्य भक्ति है, वह विवेक-सयुक्त है, अत शम का निरूपण भक्ति का अग बनकर आया है। इसके उत्तर मे कहा जा सकता है कि कवि ने भावो का जिस रूप मे चित्रण किया है उसमे शम अधिक प्रभावशाली है, भक्ति गौण है, इसलिए इन उद्धरणो मे भक्ति को शम का अग मानना चाहिए ।

एकाध पदो को शातरसात्मक मान लेने से 'विनयपत्रिका' के भक्त्यात्मक स्वरूप मे कुछ अतर नही पडता । वह विनय की पत्रिका है, आद्योपात भक्ति से ओतप्रोत है। आश्रय स्वय तुलसीदास हैं। आरभिक पदो मे गणेश, सूर्य, शिव आदि का आलबन-रूप मे चित्रण किया गया है, किंतु उनसे भी रामभक्ति की याचना की गयी है। वे साधन हैं। प्रकृत 'विनयपत्रिका' के आलबन राम ही हैं। ससार की असारता, त्रासदायकता आदि का मर्मस्पर्शी वर्णन उद्दीपन-विभाव के रूप मे किया गया है[2]

१ जग नभबाटिका रही है फल फूलि रे ।
धुवाँ के से धौरहर देखि तू न भूलि रे ।।
२. मै तोहि अब जान्यो ससार ।
ज्यों कदलीतरु मध्य निहारत कबहुँ न निकसत सार ।।
३ ससार कातार अति घोर गभीर घन गहन तरुकर्मसकुल मुरारी ।
त्राहि रघुबसभूषन कृपा कर कठिन काल विकराल कलिकाल त्रस्त ।।

भक्तिरस के सदर्भ मे यह ध्यान देने योग्य है कि अतिम उद्धरण मे अकित उद्दीपन-विभावो का कार्य दोहरा है एक ओर वे जीव के भक्तिभाव के उद्दीपक हैं, और दूसरी ओर भगवान् की करुणा या अनुकपा के । किसी-किसी आलोचक ने ससार को राम का प्रतिनायक माना है। ससार राम का प्रतिद्वद्वी कैसे हो सकता है !

आलबन राम के सौंदर्यांकन को 'विनयपत्रिका' के अनुपयुक्त समझकर तुलसी ने उनके दीन-उद्धारक, करुणामय, शोकसतापहारी, पापनाशक, शरणागतपालक और भक्त-वत्सल रूप पर ही विशेष ध्यान दिया है[3] .

१ दीन उद्धरन रघुवर्य करुनाभवन समन सताप पापौघहारी ।
२ अखिल ससार उपकार कारन सदयहृदय तपनिरत प्रनतानुकूल ।।

---

१. विनयपत्रिका, १११, १६७
२. विनयपत्रिका, ६६।४, १८८।१-२, ५९।२-९
३. विनयपत्रिका, ५९।१, ६०।१, ९८।१

३ ऐसी हरि करत दास पर प्रीति।
निज प्रभुता विसारि जन के वस होत सदा यह रीति ॥

जहाँ राम का रूपचित्रण किया गया है वहाँ भी भक्ति-दृष्टि से ही .

श्रीरामचंद्र कृपालु भजु मन हरन भवभय दारुन।
नवकंज लोचन कंज मुख कर कंज पद कंजारुन ॥ ..
मम हृदय कंज निवास कुरु कामारि खल दल गंजनं ॥[1]

यह पद 'विनयपत्रिका' के कितने ही पाठकों को आनंदविभोर कर देता है। परंतु, तत्त्वान्वेषी काव्यसमीक्षक को दूसरी पंक्ति में 'कंज' की बारबार आवृत्ति खटक जाती है। इसे कीर्तनप्रेमी भक्त के केंद्रबिंदु से देखिए। इस पंक्ति के पद-लालित्य से उसकी भक्ति-रसानुभूति तीव्रतर हो जाती है।

विनय के पदों में भक्तिरस के उपचायक संचारी भावों की व्यंजना अत्यंत हृदय-स्पर्शी है। भक्ति के लिए निर्वेद अनिवार्य है। विषयों से विरक्त मन ही राम में अनुरक्त हो सकता है। अतएव आत्मनिवेदन के क्रम में विभिन्न स्थलों पर मन के बंधनकारक विषयों का दोषदर्शन करके निर्वेद की अभिव्यक्ति की गयी है, उदाहरणार्थ :

काहे को फिरत मूढ मन धायो।
विषयहीन दुख मिले विपति अति सुख सपनेहुँ नहिं पायो।
उभय प्रकार प्रेतपावक ज्यों धन दुखप्रद श्रुति गायो ॥...
तुलसिदास हरि भजहि आस तजि काल उरग जग खायो ॥[2]

'विनयपत्रिका' के भक्तिरस का प्राणतत्त्व दैन्य-निवेदन है। समूचे भक्ति-साहित्य में तुलसी के हृदयद्रावक कार्पण्य का प्रतिमान नहीं मिलता। दास्य-भक्ति के इस आवश्यक अंग का मार्मिक निरूपण कवि ने विनय के प्रायः सभी ललित पदों में अतिशय तन्मयता के साथ किया है। कुछ ही पंक्तियाँ यहाँ पर उद्धृत की जा सकती हैं[3]

१ कबहूँ मन विश्राम न मान्यो।
निज हित नाथ पिता गुरु हरि सों हरषि हृदय नहिं आन्यो।
तुलसिदास कब तृषा जाय सर खनतहि जनम सिरान्यो ॥
२. मो सम कुटिल मौलिमनि नहिं जग तुम सम हरि न हरन कुटिलाई।
हौं मन वचन कर्म पातकरत तुम कृपालु पतितन गतिदाई।
हौं अनाथ प्रभु तुम अनाथहित चित यह सुरति कबहुँ नहिं जाई ॥

दैन्य-निरूपक पदों में कवि ने अपने निरहंकार हृदय को निश्छल-भाव से खोल कर रख दिया है। उसकी हार्दिक अभिव्यंजना में सहृदय मात्र के चित्त का प्रतिबिंब झलकता है। यही कारण है कि जवानी में शृंगार का गुणगान करने वाले आलोचक भी बुढ़ापे की छाया के समीप आने पर 'विनयपत्रिका' की श्लाघा किये बिना नहीं रह सकते।

शृंगार आदि रसों के 'श्रम' से भिन्न संचारी श्रम का द्युतिकारक चित्रण

१. विनयपत्रिका, ४५
२. विनयपत्रिका, १९९
३. विनयपत्रिका, ८८, १८०।१-२

देखिए[1]

१ हारि परचो करि जतन बहुत विधि तातें कहत सबेरो।
तुलसिदास यह त्रास मिटै जब हृदय करहु तुम डेरो ।।

२. जतन अनेक किये सुखकारन हरिपद बिमुख सदा दुख पायो।
अब थाक्यो जलहीन नाव ज्यों देखत बिपतिजाल जग छायो। ··
अब तजि रोष करहु करुना हरि तुलसिदास सरनागत आयो ।।

इसी प्रकार भक्ति के सहायक-रूप मे तर्क, त्रास, हर्ष आदि की भी सुदर निबधना हुई है।[2] बहुत-से पदो मे विषयी जीव की मनोवृत्तियो का मनोहारी चित्रण किया गया है। पाँचो ज्ञानेंद्रियो की विषय-प्रवृत्ति का स्वाभाविक चित्राकन द्रष्टव्य है

यो मन कबहूँ तुमहिं न लाग्यो।
ज्यो छल छांड़ि सुभाव निरतर रहत बिषय अनुराग्यो ।।
ज्यो चितई परनारि सुने पातक प्रपच घर घर के।
त्यों न साधु सुरसरि तरग निरमल गुनगन रघुबर के ।।
ज्यो नासा सुगधरस बस रसना षटरस रति मानी।
राम प्रसाद माल जूठन लगि त्यो न ललकि ललचानी ।।
चदन चदबदनि भूषन पट ज्यो चह पाँवर परस्यो।
त्यों रघुपतिपद पदुम परस को तनु पातकी न तरस्यो ।।[3]

ध्वनि-वक्रोक्ति इस दृष्टि से भी 'विनयपत्रिका' श्रेष्ठ काव्य है। पूर्वोक्त रस और भाव ध्वनि के अतर्गत है। अधिकाश पदो मे ध्वनि का चमत्कार विद्यमान है। व्यजना-शक्ति की सफलता के निदर्शन के लिए कुछ उक्तियाँ ली जा सकती हैं

नाहिंन नरक परत मो कहँ डर जद्यपि हौं अति हारो।
यह बडि त्रास दास तुलसी प्रभु नामहु पाप न जारो ।।[4]

राम की कृपा-प्राप्ति के निमित्त कवि ने युक्तिपूर्ण उक्ति का सहारा लिया है। ध्वनि यह है कि अपने नाम की लाज रखने के लिए मेरा उद्धार करो। भक्त लोग भगवान् को प्रति-रक्षात्मक कार्यवाही के लिए ललकारते आये हैं। इसी प्रकार की चुनौती है

तुलसी कही है साँची रेख बार बार खाँची
ढील किये नाम महिमा की नाव बोरिहौं।[5]

'रेखा खीचना', 'ढील करना' और 'नाव बोरना' मुहावरे हैं। इन मुहावरो मे रूढा लक्षणा का सशक्त प्रयोग है। उस पर आश्रित अत्यततिरस्कृतवाच्यध्वनि प्रभावशाली है। 'कही है साँची' भी व्यग्यपूर्ण है मेरी बात को झूठ मत समझो, सावधान हो जाओ, मुझे अपना करके अपने यश की रक्षा करो।

---

१. विनयपत्रिका, १४३।८, २४३।८-५
२. विनयपत्रिका, ९४।२, ९२।५, २७९।२-३
३ विनयपत्रिका, १७०।१-४
४. विनयपत्रिका, ९४।६
५. विनयपत्रिका, २५८।४

ससारी जीव घृणास्पद शरीर को आत्मस्वरूप मानकर विषयासक्त रहता है

> कृमि भस्म विट परिनाम तनु तेहि लागि जग बैरी भयो।
> परदार परधन द्रोहपर ससार बाढ़ै नित नयो॥[1]

जुगुप्सित शरीर के प्रति जीव के अनुराग की आलोचना का तात्पर्य है : कुत्सित देह की ममता त्याग कर, विषय-विमुख होकर, राम मे प्रीति करो जिससे जन्म-मरण के चक्र मे पिसना न पड़े।

कही-कही पर अतिगूढ व्यग्य प्रबुद्ध पाठको को भी चक्कर मे डाल देता है

> कोउ कह सत्य झूठ कह कोऊ जुगल प्रबल कोउ मानै।
> तुलसिदास परिहरै तीनि भ्रम सो आपन पहिचानै॥[2]

अभिधा द्वारा कोउ के अभीष्टार्थ की कोई प्रतीति नहीं होती। व्यग्यार्थ को ग्रहण करने के लिए तुलसी-रचित पद के स्रोत महिम्नस्तोत्र और उस पर लिखित मधुसूदनीव्याख्या का अध्ययन आवश्यक है। उपर्युक्त उद्धरण मे तीन बार 'कोउ' का प्रयोग किया गया है। क्रम से उन तीनो का ध्वनितार्थ है सांख्य-योग-दर्शन को माननेवाले, क्षणिकविज्ञान-विवर्तवादी बौद्ध, और नैयायिक-वैशेषिक।[3] उक्त तीन मतो का भ्रम क्या है? उस 'भ्रम' की निर्भ्रांत धारणा के लिए सांख्य आदि की तत्त्व-मीमांसा और इतिहास की जानकारी अपेक्षित है। वे दर्शन मूलत अनीश्वरवादी है। सांख्य-योग के अनुसार जगत् प्रकृति का विकार है, बौद्ध उसे 'विज्ञान' का विवर्त मानते है, न्याय-वैशेषिक के अनुसार वह नित्यानित्य तत्त्वो का परिणाम है। वे जगत् को ईश्वर-रचित और ईश्वर-रूप नहीं मानते, इसलिए भ्रांत है। 'आपन पहिचानै' मे प्रत्यभिज्ञान का स्वरूप क्या है? चराचर-रूप राम के स्वामित्व और अपने दासत्व की अनुभूति उस प्रत्यभिज्ञान की मुख्य विशेषता है[4]

> १ अचरचररूप हरि सरबगत सरबदा बसत इति बासना धूप दीजै।
> २. जब लगि मैं न दीन दयालु तैं मैं न दास तैं स्वामी।
> तब लगि जो दुख सहेउँ कहेउँ नहिं जद्यपि अंतरजामी॥

कही कही पर अभिधामूला व्यजना की दुरूहता कम क्लेशकारिणी नही है

> बुद्धि मन इंद्रिय प्रान चित्तातमा काल परमानु चिच्छक्ति गुर्वी।[5]

'चित्तातमा' मे आत्मा शब्द अनेकार्थक है। उसके अनभीष्ट वाच्यार्थ का नियत्रण व्यजना द्वारा होता है। प्रस्तुत प्रसग मे उसका अर्थ है अहकार। यह अर्थ-निर्णय सांख्य-दर्शन, 'भागवत' आदि के अध्ययन पर आश्रित है। इस प्रकार की क्लिष्ट व्यजना काव्य-दोष है। परतु, इस प्रकार के प्रयोग केवल दार्शनिक प्रसगो मे एकाध स्थलो पर ही हुए हैं।

अनेक पदो मे काकुवक्रोक्ति का चित्ताकर्षक विधान पाया जाता है

---

१ विनयपत्रिका, १३६।७
२ विनयपत्रिका, १११।४
३ देखिए तुलसी-दर्शन-मीमासा, पृ० १६८-६९
४ विनयपत्रिका, ४७।२, ११३।२
५. विनयपत्रिका, ५४।२

बावरो रावरो नाह भवानी।
निज घर की बर बात बिलोकहु हौ तुम परम सयानी।
सिव की दई सपदा देखत श्री सारदा सिहानी ॥[1]

इस पद मे ब्रह्मा पार्वती से शिव की निंदा कर रहे हैं, किंतु वह व्याजस्तुति है। उक्ति की वास्तविक रमणीयता उसकी भगिमा मे है। बात बडी आत्मीयता से कही जा रही है। नारी-मनोविज्ञान का पूरा उपयोग किया गया है। घर सँभालने की चिंता, ऐश्वर्य की कामना और समान स्तर की स्त्रियो के प्रति ईर्ष्या नारी-जाति की स्वाभाविक विशेषताएँ हैं। बावले पति की सयानी पत्नी ही अपनी घर-गृहस्थी को बर्बाद होने से बचा सकती है। जिन पदो मे तुलसी ने राम को खरी-खोटी सुनायी है उनमे मार्मिक वक्रोक्ति का प्रकर्ष द्रष्टव्य है।[2]

गुण-वृत्ति 'विनयपत्रिका' आत्मनिवेदन-भक्ति की रचना है। तदनुरूप उसमे माधुर्य-गुण की अतिशयता है। स्तोत्र-शैली मे लिखे गये आरभिक पदो मे ओज-गुण का सनिवेश हुआ है। कतिपय दार्शनिक स्थलो को छोडकर प्राय सर्वत्र ही प्रसाद-गुण व्याप्त है। तीन उदाहरण है[3]

१ चडभुजदडखंडनि विहडनि महिष मुडमदभग करि अग तोरे।
सुभनि सुभकुभीसरनकेसरिनि क्रोधवारीस अरिवृद बोरे ॥

२. कबहिं देखाइहौ हरि चरन।
समन सकल कलेस कलिमल सकलमगलकरन ॥
दरस आस पियास तुलसीदास चाहत मरन ॥

३ परम कठिन भवव्याल ग्रसित हौं त्रसित भयो अति भारी।
चाहत अभय भेक सरनागत खगपतिनाथ बिसारी ॥

पहले उद्धरण मे ओज है, उसको उत्कर्ष प्रदान करने वाली परुषा वृत्ति है। दूसरे मे माधुर्य है; उसके अनुरूप उपनागरिका वृत्ति की कोमल-कात पदावली है। प्रसाद तीनो मे है। अतिम दो पक्तियो मे कोमला वृत्ति का विन्यास है।

अलकार-योजना नवें अध्याय मे समीक्षित तुलसी की अलकार-योजना की विशेषताएँ 'विनयपत्रिका' मे भी पायी जाती है। आरभिक स्तोत्रो मे अनुप्रास और रूपक का मोह अवेक्षणीय है। कवि ने लबे साग रूपको का बधान खूब बांधा है कही अनायास और कही सायास। वन, कामधेनु और कल्पवृक्ष के रूप मे क्रमश शिव, काशी एव चित्र-कूट का चित्रण तुलसी की क्लिष्ट-कल्पना का उदाहरण है।[4] मानसिक आरती, वपुष-ब्रह्माड, ससार-कातार और जीवन-डोले के विस्तृत साग-रूपक यद्यपि बहुत कवित्वमय नही है तथापि उनमे दर्शन का जटिल विषय कलात्मक ढग से हृदयग्राह्य शैली मे प्रस्तुत

---

१ विनयपत्रिका, ५।१-२
२ विनयपत्रिका, १०६।१-३, ११२।२
३. विनयपत्रिका, १५।४, २१८।१-५, ६२।५
४. विनयपत्रिका, १४, २२, २३

किया गया है।[1] 'विनयपत्रिका' के अलंकार-विन्यास का मनोहर उत्कर्ष विनय पदों की सहज भावधारा में स्वाभाविक रूप से संक्षिप्ततया निबद्ध अलंकारों की मधुरता में द्रष्टव्य है[2]

अनुप्रास १ सुजन सुभाय सराहत सादर अनायास साँसति बितई है।
२ अब तुलसिहि दुख देति दयानिधि दारुन आसपिसाची।

यमक : १. हरति सब आरती आरती राम की।
२ हरि परिहरि सोइ जतन करत मन मोर अभागो।

रूपक १ जनम अनेक किये नाना विधि कर्मकीच चित सान्यो।
२ अंजनकेसशिखा जुवती तहँ लोचनसलभ पठावौं।
३ पावककाम भोगघृत तें सठ कैसे परत बुझायो।

उपमा १ बेधत नहिं श्रीखंड बेनु इव सारहीन मन पापी।
२ उभय प्रकार प्रेतपावक ज्यों धन दुखप्रद श्रुति गायो।
३ सुधा सो सलिल सूकरी ज्यों गहडोरिहौं।

उत्प्रेक्षा पट पीत मानहु तडित रुचि सुचि नौमि जनकसुतावर।

विभावना सून्य भीति पर चित्र रंग नहिं तनु बिनु लिखा चितेरे।

परिकरांकुर : तुलसिदास भवव्याल ग्रसित तव सरन उरगरिपुगामी।

विरोधाभास मंत्र सो जाइ जपहिं जो जपि भे अजर अमर हर अचइ हलाहलु।

मानवीकरण : दुख दीनता दुखी इनके दुख जाचकता अकुलानो।

ये अलंकार स्वतःस्फूर्त, भावोत्कर्षक एवं लालित्य-विधान में सहायक हैं।

भाषा-शैली 'विनयपत्रिका' की साहित्यिक ब्रजभाषा प्रौढ़, प्रांजल, सुव्यवस्थित और अर्थगौरव-संपन्न है। शब्द-भांडार समृद्ध है। तत्सम और अर्धतत्सम शब्दों की प्रचुरता है। आरंभिक स्तोत्रों की भाषा अतिशय संस्कृतनिष्ठ है

तेन तप्तं हुतं दत्तमेवाखिलं तेन सर्वं कृतं कर्मजालं।
येन श्रीरामनामामृतं पानकृतमनिशमनवद्यमवलोक्य कालं॥[3]

ब्रजभाषा की कृति में तद्भव शब्दों का प्रयोग स्वाभाविक है। अन्य बोलियों से भी शब्द ग्रहण किये गये हैं। बागत, पनवारो, बिहल आदि।[4] अरबी-फारसी से गृहीत शब्दों का स्वच्छंद व्यवहार है खलल, दिरमानी, बादि, सतरंज, गरीबी, मिसकीनता आदि।[5] देशज शब्दों के चयन में भी संकोच नहीं है खेहर, फोकट, आउबाउ आदि।[6] वांछित अर्थ के द्योतन के लिए तुलसी ने सभी स्रोतों से उपयुक्त शब्दावली ग्रहण की है। व्यंजना

---

१ विनयपत्रिका, ४७, ५८, ५९, १८९

२. क्रमश , विनयपत्रिका, १३९।११, १६३।८, ४८।१, ११०।२, ८८।४, १४२।२, १९९।४, ११७।४, १९१।५, २५८।४, ४५।२, १११।२, ११७।५, २४।६, ५।४

३ विनयपत्रिका, ४६।८

४ विनयपत्रिका, ६८।३, ९४।३, १८९।२

५ विनयपत्रिका, ९५।२, १२२।१, १३९।९, २४६।४, २६२।३

६ विनयपत्रिका, १००।१, १७६।२, २६१।२

की प्रभविष्णुता के लिए मुहावरो और कहावतो का सटीक प्रयोग किया है। होइ न बांको बार, निज जांघ उघारे, बिनु मोल विकाउँ, कोढ़ मे की खाजु, गरेगी जीह, दूध नह्यो हौं, माखी घीय की, पेट खलायो, मिलै न मथत वारि घृत बिनु छीर, सावन के अधहि ज्यो सूझत रग हरो, गोपद बूडिबे जोग करम करौं बातनि जलधि थहावौं, दूध को जरयो पियत फूंकि फूंकि मह्यो हौं आदि।[1]

भाषा पर तुलसी का निर्बाध अधिकार है। अतएव उनकी समर्थ वाग्धारा कही अवरुद्ध नही होती। इच्छानुसार उन्होने दीर्घसमासा, मध्यमसमासा और असमासा पदावली का समुचित विन्यास किया है। शब्दशक्तियो के यथायोग्य विनियोग द्वारा शब्द और अर्थ के काव्योचित सामजस्य का सफलता से निर्वाह किया है। एकाध आलोचको ने 'विनयपत्रिका' मे सवाद-शैली के सौदर्य का भी उल्लेख किया है। यह तर्कसगत नही है। सवाद मे एक से अधिक वक्ता होते हैं। यहाँ तुलसी अकेले हैं। सबोधित शिव, मन, राम आदि की ओर से किसी उत्तर की योजना नही की गयी है। राम ने केवल सही की है। अरजी सवाद हीनहो सकती। 'विनयपत्रिका' तुलसी का आत्मनिवेदन है, किंतु वह एकालाप या आकाशभाषित नही है, क्योकि भगवान् राम उनके मानस-नेत्रो के समक्ष विराजमान हैं।

प्रगीत-तत्त्व[2] 'विनयपत्रिका' उत्तम प्रगीतकाव्य का उत्कृष्ट नमूना है। उसके पद स्थूल रूप से तीन वर्गों मे रखे जा सकते हैं स्तोत्र-शैली के पद, छद-शैली के पद, और टेक-युक्तगीत-शैली के पद।[3] मुख्यतया तीसरी शैली के पदो मे ही 'विनयपत्रिका का प्रकृत रूप और गौरव है। सपूर्ण कृति मे प्रगीतकाव्य के तत्त्वो का प्रकर्ष पाया जाता है। १. संगीतात्मकता 'पत्रिका' मे प्रयुक्त राग हैं आसावरी, कल्याण, कान्हरा, केदारा, जैतश्री, टोडी, धनाश्री, नट, वसत, विलावल, विहाग, भैरव, भैरवी, मलार, मारू, रामकली, ललित, विभास, सारग और सोरठ। वे भावानुकूल हैं, राग और ताल का निर्वाह है। २ आत्मप्रधानता 'पत्रिका' कलि-पीडित लोक के प्रतिनिधि तुलसी का आत्मनिवेदन है, विषयिनिष्ठ है, उसमे स्वानुभूति का प्रभावशाली प्रकाशन है। ३ भाव की इकाई उसके प्रत्येक गीत मे भावविशेष की सुगठित निवधना है जो घनीभूत प्रभाव उत्पन्न करने मे समर्थ है। ४. आवेग का परिणाम 'विनयपत्रिका' (अरजी के रूप) की कल्पना बाद मे की गयी है। उसके अधिकाश पद समय-समय पर आवेग के क्षणो मे लिखे गये थे। विकलहृदय-कवि के भाव गीतो के माध्यम से फूट पडे थे। 'विनयपत्रिका' की योजना को कार्यान्वित करने के लिए उसने कुछ और गीत रचकर सग्रह को निष्पन्न किया। ५. सक्षिप्त आकार एकाध अपवादो को छोडकर उसके सभी पद सक्षिप्त हैं। स्वत स्फूर्त भावो की आवेगपूर्ण अभिव्यक्ति ने स्वभावत लघु गीतो का आकार धारण

---

१ विनयपत्रिका, १३७।१, १४७।१, १५३।३, २१९।२, २२९।१, २६०।३, २६३।२, २७६।३; १९६।२, २२६।२, २६०।३

२. देखिए तुलसीदास का प्रगीतकाव्य; तुलसी के भक्त्यात्मक गीत

३. क्रमश उदाहरण : विनयपत्रिका, ५९-६१; ६४-८२; ८३-१०६

किया है। ६. विविवता यद्यपि सारी 'विनयपत्रिका' मे भक्ति का एकतान प्रवाह है तथापि उसके अनेक पदो मे विभिन्न आराध्य देवो की स्तुतियां है, विभिन्न स्थलो पर मन की प्रवृत्तियो, जीव की लोकयात्रा, कलि की करनी आदि के वर्णन में विपय-वैविध्य है। ७ कलात्मकता 'विनयपत्रिका' का कलापक्ष अत्यत समृद्ध है। अत उस पर मुग्ध कुछ आलोचक उसे तुलसी की सर्वश्रेष्ठ कृति मानते हैं। ८ मार्मिक अभिव्यजना 'विनय-पत्रिका' तुलसी के आकुल अतर की चित्तस्पर्शी पुकार है। उसकी हृदयद्रावकता उसका सबसे बडा गुण है।

विनयपत्रिका तुलसीदास की भक्तिभावना की परम परिणति है। अतएव भक्त-जन उसे तुलसी के भक्तिसिद्धान का ब्रह्मसूत्र मानते हैं। काव्य-रसिक समालोचक के सौंदर्यपरक साहित्यिक मानदड से भी वह कालजयी गौरवमय है। आत्मनिवेदन की जो तन्मयता, प्रपत्त्यात्मक दैन्य की जो पराकाष्ठा, उसमे दिखायी देती है वह अतुल्य है। भक्त के अमायिक कार्पण्य और भगवान् के मानातीत ऐश्वर्य का जो विशद चित्र जिस उदात्तता एव उत्कृष्टता की भव्य पटभूमि पर उसमे अकित हुआ है वह अपनी महिमा और लालित्य मे अनूठा है। काव्यशास्त्र की दृष्टि से उसका महत्तम योगदान यह है कि भक्तिरस-विरोधी आचार्यो की रूढिग्रस्त मान्यता को चुनौती देकर भक्ति को रस-कोटि मे सुप्रतिष्ठित करने के लिए अकेली विनयपत्रिका ही पर्याप्त है।

कवितावली

प्रमुख विशेषताएँ

१ 'कवितावली' मुक्तक-काव्य-सग्रह है। उसके नाम मे प्रयुक्त 'अवली' शब्द सकलन-वाचक है।

२ भाषा की दृष्टि से भी उसका अपना वैशिष्ट्य है। पूर्वी ब्रजभाषा मे रचित तुलसी की कृतियो मे 'कवितावली' सर्वश्रेष्ठ है।

३ वह कवि के द्वारा कवित्त-शैली मे रचित एकमात्र कृति है। "प्राचीन काल में घनाक्षरी, सवैया और छप्पय ये तीन छद 'कवित्त' कहे जाते थे। 'पृथ्वीराजरासो' मे तथा अन्यत्र भी छप्पय के लिए 'कवित्त' शब्द व्यवहृत है। सवैये के लिए 'कवित्त' शब्द हस्तलेखो मे बहुधा आता है। इसमे घनाक्षरी, सवैया और छप्पय के अतिरिक्त भूलना भी कवित्त के नाम पर सकलित है। 'हनुमानबाहुक' की भी यही स्थिति है।"[1] तुलसी के पूर्ववर्ती हिंदी-कवियो ने कवित्त-सवैया शैली का प्रचुर व्यवहार किया था, परतु 'कविता-वली' ही इस शैली की पहली कृति है जिसे हिंदी-साहित्य के इतिहास में गौरवपूर्ण पद प्राप्त हुआ। आगे चलकर, तुलसी के परवर्ती रीति-शृगार काल मे, इस शैली ने असा-धारण प्रतिष्ठा प्राप्त कर ली।

४ 'कवितावली' का विभाजन 'रामायण' की पद्धति पर सात काडों मे किया गया है। उनमे से उत्तरकाड पूरी कृति के आधे से भी अधिक है। अरण्य और किष्किधा

१ हिंदी-साहित्य का अतीत, पृ० २९६

काड मे केवल एक-एक पद्य हैं। उसके परिशिष्ट-रूप मे 'हनुमानबाहुक' भी सलग्न है।

५. उसमे विषय का वैविध्य और विस्तार है। वह केवल रामकथा और राम-भक्ति तक ही परिसीमित नही है। उत्तरकाड मे कृष्णचरित-सबधी भ्रमरगीत-प्रसग के तीन कवित्त भी सकलित हैं।[1] अनेक देवी-देवताओ की स्तुतियाँ भी हैं। 'हनुमानबाहुक' का वैशिष्ट्य स्वयसिद्ध है। अपनी विशेषता के कारण ही वह अलग से पुस्तिका-रूप मे उपलब्ध है। उसमे की गयी हनुमत्स्तुति कवि के सपूर्ण साहित्य मे अद्वितीय है। राजा राम के आचरण की दो घटनाएँ ध्यानाकर्षक हैं।[2] पहली घटना है राम के द्वारा सीता का निर्वासन। इसकी चर्चा कवि ने 'गीतावली' और 'रामाज्ञाप्रश्न' मे की है, किंतु 'राम-चरितमानस' आदि मे नही। दूसरी घटना है राम के द्वारा लक्ष्मण का परित्याग। इसका सकेत तुलसी ने 'कवितावली' मे ही किया है।

६. भारतवर्ष की श्रेष्ठता का उल्लेख तुलसी ने अपने समूचे साहित्य मे केवल एक बार किया है और वह स्थल 'कवितावली' के उत्तरकाड का ३३वाँ पद्य है।

७ तुलसी की आत्मचरितात्मक उक्तियो की दृष्टि से 'कवितावली' का स्थान अन्यतम है। उसके अनेक पद्यो[3] मे उन्होने अपने बचपन से लेकर अतिम समय तक की जीवन-स्थितियो पर यत्किंचित् प्रकाश डाला है। तुलसी के अधूरे प्रामाणिक जीवनवृत्त के आकलन मे इन पद्यो का योगदान अनुपेक्षणीय है।

८ इसमे किया गया कलियुग-वर्णन[4], और उसके व्याज से युगीन परिस्थितियो का निदर्शन, विशद एव चित्ताभिभावी है। 'रामचरितमानस', 'दोहावली' और 'विनय-पत्रिका' मे भी कलियुग के प्रभाव का प्रभावशाली चित्रण है। 'मानस' मे काकभुशुडि के द्वारा पूर्व कल्प के किसी कलियुग का विस्तृत वर्णन कराया गया है। उसमे कलिकाल के दोषो के साथ ही उसके गुणो का भी उद्घाटन है। 'दोहावली' का सक्षिप्त वर्णन कुछ तटस्थ दृष्टि से किया गया है।[5] 'विनयपत्रिका' के सक्षिप्त वर्णन मे स्वानुभव का पुट है।[6] 'कवितावली' के वर्णन मे विस्तार के साथ ही आत्मानुभूति की मार्मिकता है, विशेषकर महामारी के प्रसग मे।[7]

९. 'कवितावली' मे अनेक प्रसगो की निबधना 'रामचरितमानस' आदि के तत्सवादी प्रसगो की तुलना मे कही अधिक रमणीयता के साथ हुई है। उसके प्रारभिक सात सवैयो मे बाल-लीला का चित्राकन इयत्ता की दृष्टि से 'रामचरितमानस' और 'गीतावली' के बालवर्णनो की तुलना मे कम होते हुए भी ईदृक्ता की दृष्टि से उत्कृष्ट है। उसका सुदरकाड तो अप्रतिम है। उसमे जो काव्यचमत्कार है वह 'गीतावली' या 'राम-

---

१. कवितावली, ७।१३३-३५
२ कवितावली, ७।६
३. कवितावली, ७।८३-८७, ९६-१०१, १६९-७१, १७४, १७७
४. कवितावली, ७।९६-१०३
५. दोहावली, ५४५-६२
६. विनयपत्रिका, १३९
७. कवितावली, ७।१६९-७१, १७४, १७९

चरितमानस' तक के सुदरकाड मे नहीं है।

१० तुलसी दास्यभक्तिनिष्ठ कवि हैं। उनके मर्यादापुरुषोत्तम राम परम गभीर हैं। अतएव 'रामचरितमानस'-जैसे विशाल ग्रथ मे भी किसी पात्र ने कही पर उनसे हँसी-मजाक नही किया, ससुराल मे कौतुक-विनोद के अवसर पर सीता की सहेलियो ने भी नही। 'गीतावली' मे वसत-विहार के प्रकृत अवसर पर भी उसकी योजना नही की गयी। केवल दो कृतियो मे कवि ने उसे अतिसीमित स्थान दिया है। 'बरवैरामायण' के दो छदो मे सखियो ने राम को लक्ष्य करके हास्य-व्यग्य किया है।[1] 'कवितावली' ही ऐसी कृति है जिसमे एक स्थल पर सीता ने राम से हँसी-मजाक किया है।[2] इस प्रसग मे यह भी स्मरणीय है कि तुलसी की सीता ने अन्यत्र कही भी, किसी भी पात्र से, हँसी-मजाक नही किया है।

११ 'कवितावली' की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण विशेषता है उसकी आद्योपान्त सरसता। निवृत्तिमार्गी भक्तिमान् भावक तो प्रत्येक भक्तिभावमयी उक्ति मे भक्तिरस की प्रतीति कर लेता है, किंतु प्रवृत्तिमार्गी लोकसामान्य काव्यरसिक की दृष्टि उससे भिन्न है, और काव्य के विषय मे वही प्रमाण है। 'रामचरितमानस' मे सैकडो ऐसी पक्तियाँ पायी जाती हैं जो रसज्ञ आलोचको को नीरस जँचती हैं। 'विनयपत्रिका' मे दर्जनो ऐसे पद विद्यमान हैं जो सामान्य काव्यप्रेमियो को रसानुभूति कराने मे असमर्थ हैं। परतु, 'कवितावली' मे कुछेक कवित्त ही ऐसे मिलेंगे जो सहृदयो को हृदयग्राही न प्रतीत हो।

१२ समन्वयवादी तुलसी ने भारतीय काव्याचार्यो के सभी मानो को उचित समान दिया है, तथापि वे मुख्यतया रसवादी है। उन्होने अपनी रचनाओ मे शास्त्र-समत ग्यारह रसो की निबधना की है। रस वैविध्य की दृष्टि से उनकी दो कृतियाँ अन्यतम हैं 'रामचरितमानस' और 'कवितावली'। 'रामचरितमानस' के प्रकरण मे इस तथ्य का सप्रमाण विवेचन किया जा चुका है कि उसमे केवल भक्तिरस ही स्वतत्र है, वही अगी रस है, अन्य सभी रस उसके अग और पोषक बनकर आये हैं, अतएव परतत्र हैं। 'कवितावली' ही ऐसी कृति है जिसमे ग्यारह रसो की उनके शुद्ध (अमिश्रित) रूप मे काव्योचित अभिव्यजना हुई है।

काव्य-रूप

'कवितावली' निबंध काव्य है। भारतीय काव्यशास्त्रियो ने काव्य के लक्षण का निरूपण करते हुए उसकी परिभाषा के अतर्गत उसके स्वरूपाधायक तत्त्व, उसकी अतरात्मा, पर ही बल दिया है। उसके बाह्य रूप के सबध मे पूरी छूट दी गयी है। उसकी पद्यमयता, गद्यमयता, गद्यपद्यमयता, श्रव्यता अथवा दृश्यता का उल्लेख नही किया गया है। इसका स्पष्ट कारण यही है कि ये बाह्य रूप काव्य के काव्यत्व के विधायक या निषेधक नही हैं। किसी भी रूप मे उसकी रचना की जा सकती है और वह अपनी रमणीयता से सहृदयों को आह्लादित कर सकता है।

---

१. बरवैरामायण, १।१७-१८
२. कवितावली, २।२८

बध के केंद्रबिंदु से काव्य के तीन प्रकार है १ प्रबध, २ निबध या एकार्थ और ३ निर्बंध या मुक्तक। प्रबध-काव्य वह काव्य है जिसमे कथा की व्यवस्थित योजना की गयी हो। कई पद्यो मे लिखित वह साधारण कविता निबध-काव्य है जिसमे कथात्मकता या वर्णनात्मकता हो। प्रबध और निबध के बधन से मुक्त पद्य निर्बंध काव्य है। इन तीनो रूपो की विशेषताओ को दृष्टि मे रखते हुए 'कवितावली' के काव्य-रूप की सम्यक् अवधारणा की जा सकती है।

१ कथा का अविच्छिन्न प्रवाह प्रबध-काव्य की अनिवार्य विशेषता है। 'कवितावली' मे राम-कथा का अटूट प्रवाह नही है। केवल बिखरे हुए खडचित्र ही अकित है। बालकाड में बालरूप की झाँकी है, फिर धनुर्यज्ञ का आशिक चित्र है, वर-वधू के रूप मे राम सीता की एक झलक है, और परशुराम के कोप-प्रसाद का असबद्ध निदर्शन है। रामजन्म, विश्वामित्र-प्रसग और मिथिला-गमन की कोई चर्चा नही है। अयोध्याकाड में भी कथा का अभाव है। राम की वन-यात्रा और वन-वास की कतिपय फुटकल झाँकियाँ हैं। कैकेयी के वरदान और भरत के चित्रकूट-गमन-जैसे हृदयस्पर्शी स्थलो के खडचित्र तक नही हैं। अरण्यकाड मे भी कथा-सरीखी वस्तु नही मिलती। सूर्पणखा के नाक-कान काटने और सीता-हरण की घटनाएँ राम-रावण-सग्राम की भूमिका हैं। उनका आख्यान तो दूर रहा, निर्देश भी नही किया गया। किष्किधाकाड, सच पूछिए तो, 'कवितावली' मे है ही नही, अत उस काड मे कथा के प्रवाह का प्रश्न ही नही उठता। उसके एकाकी कबित्त मे चित्रित घटना (हनुमान् द्वारा समुद्र-लघन) भी वस्तुत सुदरकाड की है। सुदरकाड मे मार्मिक स्थलो का वर्णन अवश्य है, किंतु क्रमबद्ध कथानक का उपन्यास नही है। लकाकाड की भी यही अवस्था है। उत्तरकाड मे विषयो की इतनी विविधता है कि कथा-सूत्र के लिए गुजाइश नही है। रामचरित के उत्तरार्ध के अनुपेक्षणीय अश (राम का प्रत्यागमन, सिंहासनारोहण, रामराज्य-स्थापन आदि) अनाख्यात ही रह गये हैं। ऐसी दशा मे 'कवितावली' को राम-कथा का आख्यानक-काव्य नही कहा जा सकता। यदि किसी पाठक को उसमे कथा-प्रवाह का आभास मिलता है तो उसका कारण पाठक के अवचेतन मन मे विद्यमान रामकथा की धारणा है, न कि 'कवितावली' की प्रबधात्मकता।

२ प्रबध-काव्य के पद्य परस्पर-सापेक्ष होते हैं। उनमे पूर्वापर-सबध होता है।[1] विभिन्न सर्ग भी शृखला-बद्ध होते हैं। पूर्ववर्ती सर्ग की अतिम अथवा परवर्ती सर्ग की आरभिक उक्ति के माध्यम से उनकी कडी जुडी रहती है। 'कवितावली' मे ऐसा नही है। उसके कवित्तो मे, एकाध अपवादो को छोडकर[2], परस्पर-सबद्धता या सापेक्षता नही है, उन पद्यो की अर्थ-प्रतीति के लिए पूर्वापर-सबध की अपेक्षा नही है। 'कवितावली' के सातो काडो तथा 'हनुमानबाहुक' मे शृखला की कडी नही है। सात काडो की रामायण-कथा सर्वविदित है। उसके विविध अशो का आश्रय लेकर रचे गये फुटकल पद्य उस मूल-कथा के क्रम से ही सकलित कर दिये गये हैं। रामचरित से अभिज्ञ पाठक को अपने

---

१. अनुज्झितार्थसबध प्रबधो दुरुदाहर.।—शिशुपालवध, २।७३

२. जैसे : कवितावली, २।२१-२।२२, ५।२०-५।२१, ५।२६-५।२७

सस्कार के कारण इस कृति मे कथा-रस की-सी अनुभूति होने लगती है। राम-कथा से अनभिज्ञ भावक प्रबध-रस की अनुभूति नही कर सकता।

३ प्रबधकाव्य मे कथा-नायक, प्रतिनायक, नायिका आदि पात्रो का व्यवस्थित चरित्र-चित्रण होता है। पात्रो के व्यापार ही उनके व्यक्तित्व-विकास के बोधक होते हैं। अतएव उनके चरित्राकन के लिए उनकी कर्म-परपरा का क्रमबद्ध वर्णन अपेक्षित है। 'कवितावली' मे एक भी पात्र ऐसा नही है जिसके कार्य-कलाप का सुसबद्ध निरूपण करके उसके चरित्र का आलेखन किया गया हो। तथापि 'कवितावली' के पाठक को विभिन्न पात्रो की चरित्र-भावना में तनिक भी कठिनाई नही होती। बात यह है कि राम, रावण, सीता आदि पात्रो की सकल्पना भारतीय जन-मानस मे बचपन से ही बसी हुई है। यह भावना विस्मृति के आवरण से आच्छादित रहती है। 'कवितावली' के प्रकीर्ण कवित्तो को पढते समय यह आवरण क्षीण हो जाता है और सहृदय अनायास ही अपनी प्रतिभा के द्वारा रिक्तस्थानीय घटनाओ की पूर्ति करके पात्रविशेष के व्यापक चरित्र का बिंब-विधान कर लेता है।

४ रस का वैशिष्ट्य भी अवेक्षणीय है। रसवादी आचार्य रस को ध्वनिरूप मानते हैं। प्रबध-काव्य मे किसी विशिष्ट रस की व्यंजना प्रबध-ध्वनि के रूप मे की जाती है। अपने काव्य के रसात्मक प्रभाव की निष्पन्नता के लिए रससिद्ध कवि रसविशेष की निबधना मुख्य रूप में करता है, यदि अन्य रसो का निवेश करता है तो गौण रूप मे। इनमें पोष्य-पोषक-सबध या अगागिभाव होता है। 'कवितावली' मे कोई रस प्रबध-ध्वनि के रूप में अभिव्यक्त नही हुआ है। शब्दातर से, उसमे अगी रस नही है। माना कि 'कवितावली' भक्तिप्रधान कृति है, परतु भक्ति को उसका अगी रस नही माना जा सकता। उसमे भक्ति अनुस्यूत नही है। तीसरे और चौथे काड भक्ति से बिल्कुल ही शून्य हैं। पहले, दूसरे, पाँचवें और छठे काडो के कुछेक पद्य ही भक्ति के अभिव्यजक हैं। हाँ, उत्तरकाड मे भक्ति की अतिशयता पायी जाती है, परतु कथानक के अभाव और आराध्य देवी-देवताओ एव परिस्थितियो के वैविध्य के कारण वह भी मुक्तक है।

५ कही-कही पर दो-तीन पद्यो में पूर्वापरसबध है, उनकी एक इकाई-सी बन गयी है।[1] परतु इन गिने-चुने पद्यो की परस्पर-सापेक्षता धारावाहिक कथा-प्रबंध का अग नही है, वे इकाइयाँ अपने पूर्ववर्ती पद्यो से असबद्ध हैं। विषय-परिवर्तन करते समय कवि ने आगतुक वस्तु के सबध में किसी प्रकार की अवतरणिका नही दी है। प्रबध-काव्य मे ऐसे अवसरो पर कथावस्तु की शृखला मिलाने के लिए किसी-न-किसी प्रकार की अवतरणिका अपेक्षित है। इन पद्यो के आधार पर 'कवितावली' को "प्रबधोन्मुख मुक्तक-काव्य" भी नहीं कहा जा सकता, क्योंकि यह प्रबधोन्मुखता या सापेक्षता दस प्रतिशत कवित्तो मे भी नही पायी जाती और नब्बे प्रतिशत से अधिक पद्य परस्पर-निरपेक्ष हैं।

६ 'कवितावली' के अनेक पद्यो मे एक ही वस्तु वर्णित है।[2] यह भी उनकी मुक्तता का परिचायक है। इसका सादृश्य 'सूरसागर' के पदो मे द्रष्टव्य है।

१. जैसे कवितावली, १।१६-२० या ५।१६-२०
२. उदाहरणार्थ कविनावली, १।६-१०, १।१५-१६, २।१८-१९

७ अनेक पद्यों मे समस्या-पूर्ति का-सा चमत्कार पाया जाता है। दो-दो कवित्तो के अत मे निबद्ध जग मे फलु कौन जिएँ, अवधेस के बालक चारि सदा तुलसी मन मदिर मे बिहरैं, जरि जाइ सो जीवनु जानकीनाथ जियै जग मे तुम्हरो बिनु ह्वै, आखर द्वै की, जय जय जय जानकिरमन, और जग होत भले को भलाई भलाई—ये उक्तियाँ[1] 'समस्या'-जैसी प्रतीत होती हैं। यह विधान मुक्तक-रचना-प्रवृत्ति का सूचक है।

८ 'कवितावली' कुछेक पद्यो मे लिखित छोटा-मोटा कथात्मक या वर्णनात्मक काव्य नही है, इसलिए उसे निबध की सज्ञा भी नही दी जा सकती।

९ वस्तुत 'कवितावली' निर्बंधकाव्य है। उसके सकलनात्मक स्वरूप के कारण ही कृष्ण-विपयक पद्य भी उसमे सगृहीत हुए है।

१० 'कवितावली' मुक्तक 'कवित्तो का सग्रह है। तदनुसार 'हनुमानबाहुक' भी उसके परिशिष्ट-रूप मे उसके साथ सकलित है।

११ 'कविनावली' का रचना-विधान निर्बंध या मुक्तक-काव्य के लक्षणो से ही विशिष्ट है। 'मुक्त' शब्द के दो मुख्य अर्थ हैं—प्राप्तमोक्ष (जिसे बधन से छुटकारा मिल गया है) और नदित। क (कन्) प्रत्यय लगाकर उससे सज्ञा बनायी गयी है मुक्तक।[2] मुक्तक-काव्य मे उक्त दोनो अर्थो का तात्पर्य निहित है। मुक्तक वह पद्य-रचना है जो निर्बंध हो, परत निरपेक्ष और स्वत पर्यवसित हो, जिसके प्रतिपाद्य अर्थ की प्रतिपत्ति के लिए पूर्वाहर-सदर्भ की आवश्यकता न हो, और जो स्वतत्र रूप से चमत्कारकारी हो, अर्थात् रसानुभूति कराने मे समर्थ हो। सस्कृत-आचार्यों ने प्रबधहीन पद्यबद्ध काव्य का विभिन्न प्रकार से वर्गीकरण और विवेचन किया है।[3] उसके प्रकारो के लक्षण सस्कृत-प्राकृत के लक्ष्य ग्रथो पर आश्रित हैं। आगमनात्मक विधि मे हिंदी के मुक्तक-काव्य, विशेषकर 'कवितावली', का अध्ययन करके प्राचीन काव्यशास्त्रियो का अनुसरण करते हुए हम मुक्तक के छ प्रकार मान सकते हैं एकपद्यमय, युग्मक, विशेपक, कलापक, कुलक और पर्यायबध। जो एक ही पद्य मे परिपूर्ण हो वह मुक्तक एकपद्यमय है। सस्कृत के आचार्यों ने एकपद्यमय निर्बंध काव्य को ही 'मुक्तक' नाम दिया है।[4] यह मुक्तक का परपरागत सकुचित अर्थ है। उसका प्रयोग विस्तृत अर्थ मे भी किया जा सकता है। 'मुक्तक' और निर्बंध' पर्यायवाची शब्द हैं। अत प्रत्येक निर्बंध रचना मुक्तक है। तदनुसार 'युग्मक' आदि भी मुक्तक ही है। 'कवितावली' के अधिकाश कवित्त इसी प्रकार के हैं। शेष दशाश अन्य पाँच प्रकारो के अतर्गत मान्य हैं। दो पद्यो मे परिसमाप्त मुक्तक 'युग्मक' है।[5] इसी भाँति तीन पद्यो का समूह 'विशेषक'[6] और चार पद्यो की इकाई

---

१. कवितावली, १।२, ६, १।३-४, ७।४०-४१, ७।८८-८९, ७।११३-१४, ७।१३०-३१

२. मुक्तकमन्येनानालिंगित तस्य सज्ञायां कन्।—ध्वन्यालोकलोचन, ३।७

३. देखिए अग्निपुराण, ३३७।३६, ध्वन्यालोक, ३।७, उस पर वृत्ति और लोचन; काव्यमीमासा, पृ० ४६-४७, साहित्यदर्पण, ६।३१४-१५

४ अग्निपुराण, ३३७।३६

५. कवितावली १।१५-१६, २।३-४, २।२१-२२

६. कवितावली, ५।२०-२२

'कलापक'' है। जो मुक्तक-काव्य पांच या पांच से अधिक पद्यो मे पूर्ण हो वह 'कुलक' है।[२] पर्यायबंध' वह निबंध-काव्य है जिसमे एक ही विषय का वर्णन अनेक पद्यो मे किया जाए। 'कवितावली' के बालकाड मे बाल-क्रीडा, सुदरकाड मे लकादहन और उत्तरकाड मे कलियुग, सीतावट तथा चित्रकूट के वर्णन इसके उदाहरण हैं।

राजशेखर ने मुक्तककाव्य मे प्रतिपादित अर्थ की पांच विधाएँ मानी हैं[३] १ शुद्ध-मुक्तक जिसमे इतिवृत्त-रहित अर्थ का निरूपण हो, २. चित्र-मुक्तक जिसमे इतिवृत्त-रहित अर्थ का विस्तृत वर्णन हो, ३ कथोत्थ-मुक्तक जिसमे अतीत इतिवृत्त का वर्णन हो, ४. सविधानकभू-मुक्तक जो सभावित इतिवृत्त पर आधारित हो, ५ आख्यानकवान्-मुक्तक जिसमे वर्णित इतिवृत्त सर्वथा कवि-कल्पित हो। 'कवितावली' इन पांचो प्रकार के मुक्तको का सग्रह है।[४]

भक्तिदर्शन

'कवितावली' मे दार्शनिक सिद्धातो का निरूपण तुलसी का लक्ष्य नही है। परतु वे दार्शनिक-भक्त कवि हैं, अतएव विभिन्न स्थलो पर उनके भक्तिदर्शन की भी स्वाभाविक अभिव्यजना हुई है। उत्तरकाड मे भी भक्ति-भाव की प्रधानता है, दार्शनिक सिद्धात का निरूपण अभीष्ट नही है। तुलसी के भक्तिदर्शन के सूत्र साकेतिक रूप मे ही पाये जाते हैं।

राम निर्गुण-सगुण-रूप है, निर्गुण-रूप की अपेक्षा उनका सगुण-रूप अधिक श्रेयस्कर है[५]

१ अतरजामिहु तें बडे बाहेरजामि हैं रामु जे नाम लिये तें।
पैज परे प्रहलादहु को प्रगटे प्रभु पाहन तें न हिये तें॥

२. प्रीति प्रतीति बढी तुलसी तब तें सब पाहन पूजन लागे।

वे विश्व के रचयिता, पालक और सहारक हैं, सर्वशक्तिमान् एव सभी शक्तियो के मूल स्रोत हैं, करुणानिधान, सज्जनरजन, पापनाशक, सकटमोचन, सेवकसुखदायक और प्रणतपालक हैं[६]

१. जो करता भरता हरता सुरसाहेब साहेब दीन दुनी को।

२. ईसन के ईस महाराजन के महाराज
देवन के देव देव प्रानहू के प्रान हौ।
कालहू के काल महाभूतन के महाभूत
कर्महू के करम निदान के निदान हौ।
निगम को अगम सुगम तुलसी हू से को
एते मान सीलसिंधु करुनानिधान हौ।

---

१. जैसे कवितावली, १।१८-२१
२. क्रमश. उदाहरण—कवितावली, ६।१०-१४, ६।१७-२६
३. काव्यमीमासा, पृ० ४६-४७
४. क्रमश' उदाहरण कवितावली, ७।१२, ७।*३, ७।१२८, २।२३, ७।१४७
५. कवितावली, ७।१२६, १२८
६. कवितावली, ७।१४६, ७।१२६; और देखिए : ७।१११-१४

महिमा अपार काहू बोल को न पारावार
बडी साहिबी मे नाथ बड़े सावधान हौ ॥

वे धर्म-सस्थापन, लोकमगल और भूमि-भार-हरण के लिए अवतार लेते हैं

धरम के सेतु जगमगल के हेतु भूमिभार हरिबे को अवतार लियो नर को ।[1]

राम से भिन्न प्रतीयमान जगत् का दृश्यमान रूप मिथ्या है

झूठो है झूठो है झूठो सदा जगु सत कहंत जे अंत लहा है । ··
जानकीजीवनजान न जान्यो तौ जान कहावत जान्या कहा है ॥[2]

अज्ञान और अभक्ति के कारण विषयो मे फँसा हुआ जीव असख्य कष्ट झेलता है ।[3]

दु ख-निवृत्ति के अनेक साधन बतलाये गये हैं धर्म-कर्म, वैराग्य, योग, ज्ञान, भक्ति आदि । भक्ति ही अमोघ साधन है .

जप जोग बिराग महामख साधन दान दया दम कोटि करै ।
मुनि सिद्ध सुरेस गनेस महेस से सेवत जन्म अनेक मरै ।
निगमागम ज्ञान पुरान पढ़ै तपसानल मे जुगपुज जरै ।
मन सो पन रोपि कहै तुलसी रघुनाथ बिना दुख कौन हरै ॥[4]

कलियुग मे अन्य उपायो का अवलवन सभव नही है, वैधी भक्ति का निर्वाह भी कठिन है । अत तुलसी ने नाम-भक्ति पर विशेष वल दिया है ।[5] उनकी भक्ति का आदर्श चातक है ।[6] एक स्थल पर उन्होने पुरुषकाररूपा सीता के अनुग्रह की भी प्रार्थना की है ।[7] 'कवितावली' मे प्रपत्ति की छ विधाओ (अनुकूलता का सकल्प, प्रतिकूलता का त्याग, भगवान् के रक्षकत्व मे विश्वास, रक्षक-रूप मे उनका वरण, आत्मनिक्षेप, कार्पण्य)[8] और विनय की सात भूमिकाओ (दीनता, मानमर्षण, भयदर्शन, भर्त्सना, आश्वासन, मनोराज्य, विचारणा)[9] की भी सुविचारित योजना की गयी है । इस प्रकार 'कवितावली' मे तुलसी के भतिदर्शन का साकेतिक निदर्शन मिलता है । यो तो 'कवितावली' के भक्तिपरक कवित्त भी बहुत सुदर हैं, किंतु 'हनुमानवाहुक' मे उनकी आर्तभक्ति का निवेदन अत्यत मर्मस्पर्शी है[10]

१. मन की वचन की करम को तिहूँ प्रकार
तुलसी तिहारो तुम साहेब सुजान हौ ।

२ बूढ भये बलि मेरिहि बार कि हारि परे बहुतै नत पाले ।

---

१. कवितावली, ७।१२०
२. कवितावली, ७।३६
३. कवितावली, ७।३०-३२, ३६
४. कवितावली, ७।५५, और देखिए ७।६२, ७१, ८४-८७
५. कवितावली, ७।७६, ८५, ८७
६ तुलसी अब राम को दास कहाइ हियें धरु चातक की धरनी ।—कवितावली, ७।३२
७ कवितावली, ७।१३७
८. क्रमश उदाहरण कवितावली, ७।३४, २६, ६, २८, ३४, ६०
९. क्रमश उदाहरण . कवितावली, ७।५६-५७, ६०-६१; ३०, ३२, २६, ३१; ४७ ५०; ६३, ५५
१०. हनुमानवाहुक, १४, १७, ३०, ३६

३. आपने ही पाप तें त्रिताप तें कि साप तें
 बढ़ी है बाँहबेदन कही न सहि जाति है ।
 चेरो तेरो तुलसी तू मेरो कह्यो रामदूत
 ढील तेरी बीर मोहि पीर तें पिराति है ॥
४. श्रीरघुवीर निवारिये पीर रहौं दरबार परो लटि लूलो ।

काव्य-वैभव

'कवितावली' की कवित्व-सम्पन्नता निर्विवाद है । उसमे रस, ध्वनि-वक्रोक्ति, गुण-वृत्ति, अलकार, चित्रविधान और अलकृति-निरूपण की सफलतापूर्ण स्थापना है । औचित्य का भी प्राय सर्वत्र निर्वाह है । मानव के सहज भावो और भक्तिदशा के उन्नत विचारो की शक्तिमती भाषा मे प्रभावशाली व्यजना की गयी है । शब्द और अर्थ का कमनीय सतुलन कही भी डाँवाडोल नही होने पाया है ।

रसात्मकता 'कवितावली' सरस काव्य है । शास्त्रीय दृष्टि से उसमे ग्यारह रसो की अभिव्यक्ति हुई है । ये सभी रस अपने शुद्ध और स्वतन्त्र रूप मे तुलसी की इस कृति मे अभिव्यक्त हुए हैं । यह कथन अतिशयोक्तिपूर्ण नही है कि तुलसी को रससिद्ध कवि सिद्ध करने के लिए 'कवितावली' ही अपने आप मे पर्याप्त है । १ शात-रस की निबधना उत्तरकाड मे हुई है । यह तथ्य याद रखना चाहिए कि इस काड के अधिकतर कवित्त शुद्ध भक्तिरस अथवा शान्त-मिश्रित भक्तिरस के ही व्यजक हैं । कुछेक पद्यो मे ही शात-रस की स्वतन्त्र व्यजना पायी जाती है[1] । २ शृगार-रस की योजना मे मर्यादावादी भक्त-कवि तुलसी की विशेष अभिरुचि नही है । कुछ ही स्थलो पर काव्यधर्म से अनुप्राणित होकर उन्होंने शृगार का निबधन किया है । उनकी कवि प्रतिभा का कौशल इस बात मे है कि जहाँ कही उन्होने इस रस का स्पर्श किया है, उसे चमत्कारपूर्ण बना दिया है । 'कवितावली' मे उसके दोनो ही पक्षो सयोग और विप्रलभ की मनोहारी व्यजना हुई है । पहले का चित्रण एक ही पद्य मे है, उसके विषय सीता-राम हैं । दूसरे का वर्णन तीन पद्यो मे है, उसके विषय गोपी-कृष्ण है ।[2] इन दोनो प्रसगो मे क्रमश सीता और गोपियो की मनोदशा का तलस्पर्शी निरूपण है ।

३ वीर-रस के परपराप्रथित चारो रूप धर्मवीर, दानवीर, दयावीर और युद्धवीर 'कवितावली' मे देखे जा सकते हैं ।[3] उत्साहपूर्ण सग्राम मे विभानुभावो के रजनकारी चित्रण का यथोचित अवकाश रहता है । अत वीररस का प्रकृत निदर्शन और उत्कर्ष लकाकाड मे पाया जाता है । ४. करुण-रस की मार्मिक व्यजना तीन प्रसगो मे हुई है । राम के वन-गमन पर शोकसन्तप्त कौशल्या-सुमित्रा के सवाद मे शुद्ध-करुणरस है ।[4] लक्ष्मण-

---

१. उदाहरण कवितावली, ७।३१

२. सयोग कवितावली, १।१७, विप्रलभ कवितावली, ७।१३३-३५

३ क्रमश उदाहरण कवितावली, ७।१, ५।३०, ७।७, ६।१४, ३४

४. कवितावली, २।३

मूर्च्छा के अवसर पर राम के विलाप-वर्णन[1] मे तुलसी की भक्ति का पुट होने पर भी शोक का निरूपण हृदयद्रावक है। इसी प्रकार 'हनुमानवाहुक' के अनेक पद्यो मे दैन्य-पुष्ट करुण की द्रुतिकारिणी व्यजना है।[2] ५ अद्भुत-रस का चित्रण धनुर्भंग और लकादहन के प्रसगो मे भी है, परतु उसका उत्कृष्टतर चमत्कारकारी रूप द्रोणाचल को लेकर आकाश-मार्ग से जाते हुए हनुमान् के अलौकिक व्यापार मे मिलता है।[3] ६. हास्य-रस का केवल एक पद्य है, राम से सीता द्वारा किया गया हास्य अतिशय मर्यादित होने पर भी अपनी ध्वन्यात्मकता के कारण हृदयहारी है।[4] ७. रौद्र-रस की मार्मिक योजना क्रोधाव परशुराम की उक्तियो मे द्रष्टव्य है।[5] ८-९ भयानक और वीभत्स की प्रभावशाली अभिव्यक्ति क्रमश लकादहन और युद्ध के प्रसगो मे मिलती है।[6]

१०. वात्सल्य-रस के दो रूप हैं शुद्ध और मिश्रित। 'कवितावली' के आरभिक सवैयो मे शुद्ध और भक्तिमिश्रित वात्सल्य दोनो की उत्कृष्ट व्यजना हुई है।[7] ११. भक्ति-रस की कुछ-न-कुछ अभिव्यक्ति 'अरण्य' और 'किष्किधा' को छोडकर 'कवितावली' के सभी काडो मे हुई है, तथापि उसका भरपूर आपूर उत्तरकाड मे है। उसके भी दो रूप हैं शुद्ध और मिश्रित। रामपरक अधिकाश पद्यो मे शुद्ध भक्तिरस है, क्योकि उनमे किसी अन्य स्थायी भाव का मिश्रण नही है।[8] महामारियो के वर्णन मे शोक-मिश्रित भक्ति की व्यजना है।[9] 'हनुमानवाहुक' मे करुण-मिश्रित भक्तिरस की व्यजना अत्यत मार्मिक है

आपने ही पाप तें त्रिताप तें कि साप तें वढी है वाहुवेदन कही न सहि जाति है।
औषध अनेक जत्र मंत्र टोटकादि किये वादि भये देवता मनाये अधिकाति है।
करतार भरतार हरतार कर्मकाल को है जगजाल जो न मानत इताति है।
चेरो तेरो तुलसी तू मेरो कह्यो रामदूत ढील तेरी वीर मोहि पीर तें पिराति है॥[10]

आलवन भगवान् की महिमा का गान और आश्रय भक्त की दीनता का निवेदन—ये दो तत्त्व भक्तिरस के अभीष्ट निष्पादन के लिए आवश्यक हैं। भक्तकवि ने कही राम का गुणानुवाद करके, कही अपनी तुच्छता प्रदर्शित करके, और कही दोनो का एक-साथ विन्यास करके भक्तिरस का उद्रेक किया है।[11]

ध्वनि-वक्रोक्ति उपरिनिर्दिष्ट रसात्मक वाक्य असलक्ष्यक्रमव्यग्य ध्वनि के उदाहरण हैं। व्यग्य-रूप मे सचारी भावो की निबधना 'कवितावली' मे स्थान-स्थान पर

---

१. कवितावली, ६।५२
२. जैसे · हनुमानवाहुक, ३६
३. कवितावली, १।१०, ५।१७, ६।५४, देखिए इस ग्रथ का पृ० २६६
४ कवितावली, २।२८, तुलना कीजिए · हनुमन्नाटक, ३।१६
५. कवितावली, १।२०
६. कवितावली, ५।३, ६।४६-५१, देखिए · इस ग्रथ का पृ० २१८
७ शुद्ध-वात्सल्य · १।५, भक्तिमिश्रित वात्सल्य १।६
८. जैसे कवितावली, ७।३७, देखिए · इस ग्रथ का पृ० २८१
९. कवितावली, ७।१६९–७७
१०. हनुमानवाहुक, ३०
११. क्रमश उदाहरण · कवितावली, ७।७, ७।८८, ७।२६

मिलती है। एक उदाहरण लीजिए :

> पुर तें निकसी रघुबीरबधू धरि धीर दए मग में डग द्वै।
> झलकीं भरि भाल कनीं जल की पुट सूखि गए मधुराधर वै।
> फिरि बूझति हैं चलनो अब केतिक पर्नकुटी करिहौ कित ह्वै।
> तिय की लखि आतुरता पिय की अँखियाँ अति चारु चलीं जल च्वै॥'[1]

प्रस्तुत पद्य में सीता के श्रम, और राम की करुणा की व्यंजना निपुणता से की गयी है। दोनों के अनुभावों का चित्रण भी हृदयस्पर्शी है। कवि ने पात्रों की अन्तःप्रकृति का भी उत्तम परिचय दिया है।

सहृदय ग्राम-वधूटियों के प्रसाद-गुण-विशिष्ट [illegible] हैं :[2]

१. पांयन तो पनहीं न पयादेहि क्यों चलिहैं सकुचात हियो है।
२. आंखिन मे सखि राखिबे जोग इन्हें किमि कै बनवास दियो है।

उनके प्रश्न पर सीता की मति, लज्जा और संकोच की व्यंजना भी दर्शनीय है :

> सुनि सुंदर बैन सुधारस साने सयानी हैं जानकी जानी भली।
> तिरछे करि नैन दै सैन तिन्हें समुझाइ कछू मुसुकाइ चली॥'[3]

सीता ने यह सूचित कर दिया कि राम पति हैं। इसमें [illegible] ध्वनि है। लक्ष्मण, केवट, तुलसी और गोपियों की वचन-वक्रता में बेहद चुटीलापन है :[4]

१. टूट्यो सो न जुरैगो सरासनु महेस जू को
   रावरी पिनाक में सरीकता कहाँ रही।
२. परसें पगधूरि तरै तरनी घरनी घर क्यों समुझाइहौं जू।
३. राम गरीबनेवाज भए हौ गरीबनेवाज गरीब नेवाजी।
४. जानी है जानपनी हरि की अब बांधियैगी कछू मोटि कला की।

गुण-वृत्ति : एक-दो अपवादों को छोड़कर 'कवितावली' में सर्वत्र ही प्रसाद गुण पाया जाता है। बालकाण्ड के आरंभिक पद्यों और अयोध्याकाण्ड में माधुर्य की विशेषता है। लंकादहन और युद्धवर्णन में ओज का प्रकाश है। औचित्यानुसार उपनागरिका, परुषा और कोमला वृत्तियों की संघटना की गयी है।[6]

अलंकार-योजना : 'कवितावली' अलंकारों से पूर्णतया मंडित है। कवित्त-शैली की मुक्तक-रचना होने के कारण उसमें अतिनिरुष्टता का दोष नहीं आने पाया है। एकाध पद्यों में प्रयत्नसाधित अलंकारों की क्लिष्ट-कल्पना मिलती है।[7] अन्यथा सर्वत्र ही ये यथाप्रसंग, भावानुकूल, मर्यादित और उपयुक्त होने के कारण शोभावर्धक हैं। [illegible]-

---

१. कवितावली, २।११, और देखिए : २।१२
२. कवितावली, २।१९, २०
३. कवितावली, २।२२
४. कवितावली, १।१९, २।६, ७।९५, ७।१३४
५. कवितावली, १।७, ७।१०५
६. वृत्तियों के क्रमशः उदाहरण : कवितावली, १।५, ६।४४, २।१३
७. कवितावली, ५।२४–२५

निरूपण के प्रसगो मे भी वे रसोत्कर्ष के हेतु है। तुलसी ने अपनी सामान्य प्रवृत्ति के अनुसार अनुप्रास, रूपक, उत्प्रेक्षा और उपमा के विनियोजन मे विशेप अभिरुचि दिखलायी है। निम्नाकित उदाहरणो से 'कवितावली' के अलकार-विन्यास की रमणीयता की झलक मिल जाएगी[1]

१. अनुप्रास i सजनी ससि मे समसील उभै नव नील सरोरुह से बिकसे।
ii. तीतर तोम तमीचर सेन समीर को सूनु बडो बहरी है।

२ लाटानुप्रास करुनाकर की करुना करुनाहित नामसुहेत जो देत दगाई।

३. यमक i तीखे तुरंग कुरग सुरगनि साजि चढे छँटि छैल छबीले।
ii. सीस बसै बरदा बरदानि चढ्यो बरदा घरन्यो बरदा है।

४. ध्वन्यर्थव्यजना i जहाँ तहाँ बुबुक विलोकि बुबुकारी देत
ii. लपट झपट झहराने हहराने वात भहराने भट

५. रूपक i. विषया परनारि निसा तरुनाई सो पाइ परयो अनुरागहि रे।
ii. दारिददसानन दबाई दुनी दीनबंधु दुरितदहन देखि तुलसी हहा करी।

६. उत्प्रेक्षा i. श्रमसीकर साँवरि देह लसै मनो रासि महातम तारकमै।
ii सोनित छीट छटानि जटे तुलसी प्रभु सोहैं महाछवि छूटी,
मानो मरक्कतसैल विसाल मे फैलि चलीं बर बीरबहूटी।।

७ उपमा कागर कीर ज्यो भूषनचीर सरीर लस्यो तजि नीर ज्यो काई।
राजिवलोचन रामु चले तजि बाप को राज बटाउ की नाईं।।

८ सदेह गौरी कि गग विहगिनिवेष कि मजुल मूरति मोदभरी है।

९ प्रतीप लोचन लोल चलै भृकुटी कल कामकमानहु सो तृन तोरैं।

१०. भ्रम अवलोकि अलौकिक रूप मृगीमृग चौंकि चकै चितवैं चित दै।
न डगै न भगै जिय जानि सिलीमुख पच धरे रतिनायक है।।

तुलसी की कवि-प्रतिभा उपमामूलक अलकारो की योजना मे विशेप रूप से प्रतिफलित हुई है। अर्थांतरसक्रमित ध्वनि से युक्त अप्रस्तुत-विधान का लालित्य देखिए

तुलसी अब राम को दास कहाइ हियें धरु चातक की धरनी।
करि हस को बेषु बडो सब सो तजि दे बक बायस की करनी।।[2]

लक्ष्य कीजिए उपमान-रूप मे चार पक्षियो की योजना का अर्थवैचित्र्य कितना चमत्कारपूर्ण है! उनमे से दो उत्कृष्ट है, दो निकृष्ट है, तुला सतुलित है।

चित्रात्मकता रूप, व्यापार, दृश्य आदि के वर्णन मे तुलसी की चित्रात्मक शैली का सौदर्य भी सभी प्रसगो मे विद्यमान है। राम की बाल-लीला, वन-यात्रा, लका-दहन और युद्ध के चित्रण मे इसका वैशिष्ट्य अवेक्षणीय है।[3]

छद-विधान 'कला-पक्ष' के अतर्गत कहा जा चुका है कि तुलसी ने छदो का

---

१. कवितावली, १।१, ६।२६, ७।९३, ६।३२, ७।१४५, ५।६, ५।८, ७।३१, ७।६७, २।१३, ६।५१, २।२, ७।१८०, २।२६, २।२७

२. कवितावली, ७।३२

३ यथा कवितावली, १।५, २।२५, ५।५, ६।३५

प्रयोग विषय और भाव के औचित्यानुसार किया है। कवितावली-हनुमानबाहुक मे प्रयुक्त छद हैं सवैया, घनाक्षरी (मनहरण), रूपघनाक्षरी, छप्पय और झूलना। छप्पय[1] और झूलना[2] की योजना नियमत दीप्तिप्रधान भावो अथवा स्तुतियो के सदर्भ मे की गयी है। सवैया और घनाक्षरी की उपयोगिता व्यापक है। अत उनका नियोजन दीप्ति और द्रुति दोनो की व्यजना के लिए किया गया है। तारतमिक दृष्टि से सवैया माधुर्य के अधिक अनुकूल है, और घनाक्षरी ओज के। यही कारण है कि अयोध्याकाड मे सवैयो का नियोजन अपेक्षाकृत अधिक है और सुदरकाड मे एक भी सवैया नही है। सवैया-छद के अनेक रूप प्रयुक्त हुए हैं। 'कवितावली' के छदो मे लय और अत्यानुप्रास का सौदर्य प्राय सर्वत्र पाया जाता है। कुछेक पद्यो[3] मे गति-भग, यति-भग, अधम-तुकात या शब्द-मरोड के होने से कृति की उत्कृष्टता नष्ट नही होती।

भाषा-शैली कवितावली की भाषा साहित्यिक ब्रजभाषा है। विशेषता यह है कि उसमे 'तुलसीदास ने ब्रजी का केवल ढाँचा भर लिया है, उसमे बहुप्रचलित मुहावरे और शब्द अन्य देशों के भी रख दिये हैं। भाषा की धारा ऐसी बढिया है कि तुलसीदास के इस प्रयत्न पर ध्यान ही नही जाता। विशृखलता तो कही पायी ही नही जाती।'[4] तुलसी की भाषा के जो गुण पहले बताये गये हैं[5] वे 'कवितावली' मे भी पाये जाते हैं सटीक-शब्द-प्रयोग, शब्द-निर्माण, शब्दशक्तियो का उचित नियोजन, सपन्न शब्द-भाडार, मुहावरे और कहावतें, व्याकरण-व्यवस्था, प्राजलता एव धारावाहिकता। मुहावरेवदिश और लोकोक्तिनिबधना की प्रचुरता उसकी भाषा का महत्त्वपूर्ण वैशिष्ट्य है। कुछेक उदाहरणो से उसकी अभिव्यजना-शक्ति का वैभव आँका जा सकता है[6]

१ लघु आनन उत्तर देत बडो लरिहै मरिहै करिहै कछु साको।
२ पात भरी सहरी सकल सुत बारे बारे केवट की जाति कछू बेद न पढ़ाइहों।
३ मींजि मींजि हाथ धुनै माथ दसमाथतिय
 बयो लुनियत सब याही दाढ़ीजार को।
४ भट भारी भारी राउरे के चाउर से काँडिगो।
 सहित समाज गढ राँड कैसो भाँडिगो।
५ आपने चना चबाइ हाथ चाटियतु है।
 मसक की पाँसुरीं पयोधि पाटियतु है।

---

१ कवितावली, १।११, ६।४७, ७।११०-१७, १४६-५२, हनुमानबाहुक, १-७
२. कवितावली, ६।४, १७-२१, ४४-४६, हनुमानबाहुक, ३,
३. मेरे जान जब तें हौं जीव ह्वै जनम्यो जग तब ते बेसाह्यो दाम लोभ मोह काम को।
 ईस न गनेस न दिनेस न धनेस न सुरेस सुर गौरि गिरापति नहि जपने।
 जड़ता बस ते न कहैं कछु वै। सो सही पसु पूँछ बिषान न द्वै।
 भई आस सिथिल जगन्निवास दील की।—कवितावली, ७।७०, ७७, ४०, ५७
४ आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र कवितावली, अतर्दर्शन, पृ० ७
५ देखिए इस ग्र थ के पृ० ३४६-५३, ३६०-६१, ३७५-८४
६ कवितावली, १।२०, २।८, ५।१२, ६।२४, ७।६६, ७।१७७

६ कोढ़ मे की खाजु सी सनीचरी है मीन की।..
महाराज आजु जौ न देत दादि दीन को ॥

इस सक्षिप्त पर्यालोचन का निष्कर्ष यह है कि 'कवितावली' मे शब्द का लालित्य है, भाषा की समर्थता है, अर्थ का सौंदर्य है, भाव का उत्कर्ष है, विचार की उदात्तता है। वह उत्तम काव्य-कृति है। केवल 'कवितावली' के आधार पर भी तुलसीदास का प्रौढ कवित्व असदिग्ध है।

उपसंहार

तुलसीदास महाकवि थे। वे काव्यस्रष्टा और जीवनद्रष्टा थे। वे प्रबंधकार थे, उन्होने महाकाव्य लिखा, निबंध-मंगलगीत लिखे। वे मुक्तककार भी थे, उन्होंने प्रगीत-मुक्तक लिखे, अगीत-मुक्तक लिखे। उन्होने अपनी रम्य रचनाओ से रसात्मक साहित्य की अपूर्व श्रीवृद्धि की। उनके गौरवग्रंथ हिंदी-साहित्य के महार्ह रत्न हैं। सौंदर्य और और मंगल का, प्रेय और श्रेय का, कवित्व और दर्शन का, असाधारण सामंजस्य उनके साहित्य की महती विशेषता है।

उन्होने अपने काव्य के लिए महान् विषय चुना उदात्त रामचरित और राम-भक्ति। राम हमारे जीवन-जगत् के कण-कण मे रमे हुए हैं। नामो मे 'राम' व्याप्त है। मिलने पर लोग प्रेमपूर्वक 'राम-राम' कहते हैं', घृणा आदि की व्यंजना में भी 'राम-राम' का उच्चारण करते हैं। कष्ट मे 'हे राम!' और आवेश मे 'हाय राम!' कहते हैं। अमोघ औषधि 'रामबाण' कहलाती है, नमक 'रामरस' है। हार और दुपट्टे 'रामनामी' हैं। संगीत मे 'राम' है रामवीणा, रामकली, रामटोडी, रामश्री। नदी-पर्वत में 'राम' है रामगंगा, रामगिरि। वृक्षो-फलो-तरकारियो मे 'राम' है रामबबूल, रामबाँस, राम-जामुन, रामतरोई। जिसके पिता का पता न हो वह 'रामजना' है। सर्वथा सुखमय शासन 'रामराज्य' है। शव के साथ चलते हुए लोग कहते हैं राम-नाम सत्य है। प्रश्न उठता है ऐसे जीवन-व्यापी राम का चरित लिखकर तुलसी लोकप्रिय हो गये तो कौन-सी बडी बात हो गयी? उत्तर है हिंदी के हजारो लेखको ने उसी राम को लेकर रचना की है, कोई तुलसी की छाया नही छू सका, और बहुतो का तो नाम तक लोग नही जानते। यह तुलसी की महत्ता है कि उन्होने महान् राम को महत्तर बना दिया, व्यापक राम की, उनके शील-शक्ति-सौंदर्य की, जन-जन को अनुभूति करा दी।

वे धर्मनिष्ठ समाजसुधारक थे। अपने साहित्य मे उन्होने समाज का आदर्श प्रस्तुत किया, ऐसा अद्‌भुत महाकाव्य रचा जो हिंदी-भाषी जनता का धर्मशास्त्र भी बन गया। वे गगनविहारी कवि नही थे। उनकी लोकदृष्टि अलौकिक थी। उन्होने आदर्श-संकल्पना को यथार्थ-जीवन मे उतारा। समाज के शक्ति-संवर्धन की आवश्यकता थी। उन्होंने हनुमान् के मंदिर बनवाये। "उनके साथ अखाडो की योजना हुई। उनके संमुख श्रीराम-मंदिर बनने की विधि निश्चित हुई।"[2] वे 'रामचरितमानस' के व्यास बने। उन्होने

---

1 'उद्धव-शतक' की गोपियो का भी उद्धव से निवेदन है
नाम कौ बताइ औ जताइ गाम ऊधौ बस स्याम सौं हमारी राम-राम कहि दीजियौ।। ९५

2 देखिए हिंदी-साहित्य का अतीत, पृ० २३३

'मानस' की रामलीला का प्रवर्तन किया, 'रामचरितमानस' को पाठ्य-श्रव्य काव्य की परिधि मे सीमित न रखकर उसे नाटक का लोकरजक रूप दिया, जन-जीवन मे उत्साह एव उल्लास का सचार किया। "वे रामभक्ति का जैसा सास्कृतिक समारोह खडा करना चाहते थे वह सचमुच खडा हो गया। मुगलो के राज्यकाल मे सामाजिक नाटक उनके कट्टर धार्मिक नियमो के कारण नही हो सकते थे। धर्म की ओट मे तुलसीदास ने ऐसे महानाटक का सभार कर दिया जिससे अनेक दृष्टियो से मनोरजन के साथ ही जनता का कल्याण होने लगा।"[1]

तुलसीदास ज्ञानी भक्तकवि थे। उन्होने रस की वह गगा वहायी जिसमे ब्रह्मानदरूप रस एव ब्रह्मानदसहोदर रस दोनो का अजस्र प्रवाह है, जो विषयी और विरक्त, ग्रामीण और ज्ञानी, विपन्न और सपन्न सभी के लिए समान रूप से सुलभ है। काव्य, धर्म, दर्शन और भक्ति को एकाकार कर देना साधारण प्रतिभा का कार्य नही है।

कुछ काव्यकर्ता गोष्ठ कवि होते हैं। वे अपनी रचनाओ से मित्र-मडली का मनोरजन करते हैं, सभ्य श्रोताओ का विनोद करते हैं, कभी-कभी केवल स्वात सुखाय पद्य-निर्माण करके परितोष-लाभ करते हैं। उनके कवित्व की मर्यादा यही पर समाप्त हो जाती है। कुछ काव्यकर्ता युग-कवि होते हैं। वे अतिसकुचित घेरे से निकलकर समाज की विस्तृत भूमि पर सचरण करते है, युगधर्म का निर्वाह करते हुए लोकप्रियता प्राप्त करते है, प्रशसको की शक्ति के अनुसार उनका गुणगान होता है। परतु, उनकी कविता-नटी युग के रगमच पर कुछ समय तक आह्लादकारी अभिनय करके काल-परिधि मे लीन हो जाती है। कुछ विरले कवि विश्वकवि होते हैं। उनकी कविता देश-काल के परिच्छेद से मुक्त होती है। वे अपने देश और युग मे तो समादृत होते ही हैं, पर-देश मे भी उनका समान होता है, उनकी कीर्ति-पताका युग-युग तक फहरती रहती है। उनकी वाणी का प्रसार अनाहत रहता है। तुलसीदास इसी प्रकार के विश्वकवि हैं।

देश और विदेश मे काव्य के वहुतेरे लक्षण वतलाये गये हैं। किसी भी केंद्रबिंदु से देखिए तुलसीदास बहुत ऊँचे दिखायी देते हैं। लालित्यपरक प्रगीतकाव्यो की वीथी मे 'गीतावली' का विशिष्ट स्थान है। कवित्त-सवैया-पद्धति के मुक्तक-साहित्य मे 'कवितावली' अत्यत प्रकृष्ट है। स्वानुभूतिपरक गीतिकाव्य के क्षेत्र मे 'विनयपत्रिका' वेजोड है। वाह्यार्थनिरूपक प्रबधो की श्रेणी मे 'रामचरितमानस' निराला महाकाव्य है। 'मानस' का प्रेमी पाठक अपनी वहुज्ञता के आधार पर अधिकार के साथ कहता है "तुलसी का पूर्ववर्ती साहित्य-भाडार अमूल्य ग्रथरत्नो से भरा पडा है। मैं भी उनकी श्रेष्ठता का कायल हूँ, उनके प्रशसको का हामी हूँ, उनकी निंदा का विरोधी हूँ। मैंने रामायण-महाभारत का पारायण किया है, भागवत आदि पुराण वांचे हैं, रघुवश आदि महाकाव्यो का अध्ययन किया है, महावीरचरित आदि नाटक पढे हैं। किसी मे मगलविधायक मोक्षधर्म की अतिशयता है, किसी मे रसनिष्पादक काव्यधर्म की। किसी की अपरपार महिमा से अभिभूत हूँ, किसी के अनिद्य सौदर्य पर मुग्ध हूँ। परतु, उभयधर्मसमन्वित रामचरित-

---

१. हिंदी-साहित्य का अतीत, पृ० २३५

मानस का अनुशीलन कर लेने के वाद

अब न आँखि तर आवत कोऊ'।"

तुलसी-साहित्य पर सवसे अधिक टीकाएँ रची गयी हैं, तुलसीदास पर सवसे अधिक आलोचना-ग्रथ लिखे गये हैं, तुलसीदास पर सवसे अधिक शोधप्रवधो का प्रणयन हुआ है। तुलसी-दर्शन-मीमासा और प्रस्तुत तुलसी-काव्य-मीमांसा मे मैंने भी उनके दर्शन और काव्य का यथाशक्ति विवेचन किया है। इतना-कुछ कह लेने के उपरात भी बहुत-कुछ कहना शेष रह जाता है, तुलसीदास की बिमल बिवेक धरम नय साली,[2] शब्दवैचित्र्य-मयी, अर्थगौरवशालिनी और विविधवैदग्ध्यमडित वाणी का स्वरूप ही ऐसा है

सुगम अगम मृदु मजु कठोरे।
अरथु अमित अति आखर थोरे॥
ज्यो मुखु मुकुर मुकुरु निज पानी।
गहि न जाइ अस अदभुत बानी॥[3]

१. रामचरितमानस, १।२६३।३
२. रामचरितमानस, २।२६७।४
३. रामचरितमानस, २।२६४।२

ग्रंथ सूची

उपजीव्य ग्रथ : तुलसीदास की रचनाएँ

कवितावली, स० इन्द्रदेवनारायण, गीता प्रेस, गोरखपुर, स० २०१६

कवितावली; म० भगवानदीन, विश्वनाथप्रसाद मिश्र, रामनारायणलाल, प्रयाग, स० २०१३

कवितावली, स० श्रीकातशरण, पुस्तक-भडार, पटना-४, स० २०१४

कृष्णगीतावली, स० श्रीकातशरण, सद्गुरुकुटी, गोलाघाट, अयोध्या, स० २०१३

कृष्णगीतावली, स० हनुमानप्रसाद पोद्दार, गीता प्रेस, गोरखपुर, म० २०१४

गीतावली, स० मुनिलाल, गीता प्रेस, गोरखपुर, म० २०१४

गीतावली; स० श्रीकातशरण, पुस्तक-भडार, पटना-४, स० २०१५

जानकीमंगल, 'तुलसी के चार दल', पुस्तक दूसरी, मे सकलित

जानकीमगल, स० हनुमानप्रसाद पोद्दार, गीता प्रेस, गोरखपुर, स० २०१७

तुलसी के चार दल, पुस्तक दूसरी, स० सद्गुरुशरण अवस्थी, इडियन प्रेस लि०, प्रयाग, १९३५ ई०

तुलसी-ग्रथावली, दूसरा खड, तीसरा सस्करण, म० रामचद्र शुक्ल आदि, नागरी-प्रचारिणी सभा, काशी, स० २००४

दोहावली, स० श्रीकातशरण, सद्गुरुकुटी, गोलाघाट, अयोध्या, स० २०१२

दोहावली, स० हनुमानप्रसाद पोद्दार, गीता प्रेस, गोरखपुर, स० २०१६

पार्वतीमगल, 'तुलसी के चार दल', पुस्तक दूसरी, मे सकलित

पार्वतीमगल, स० हनुमानप्रसाद पोद्दार, गीता प्रेस, गोरखपुर, स० २०१७

वरवा (वरवै) रामायण, प्र० यादवेद्रदत्त, राजा, जौनपुर, स० २०१०

वरवैरामायण, 'तुलसी के चार दल', पुस्तक दूसरी, मे सकलित

वरवैरामायण, स० सुदर्शनसिंह, गीता प्रेस, गोरखपुर, म० २०१६

रामचरितमानस, मानस-पीयूष, स० अजनीनदनशरण, गीता प्रेस, गोरखपुर, स० २०१७

रामचरितमानस, स० माताप्रसाद गुप्त, साहित्य-कुटीर, प्रयाग, १९४९ ई०

रामचरितमानस, विजया-टीका-सहित, स० विजयानद त्रिपाठी, मोतीलाल वनारसी-दास, नेपालीखपरा, वनारस, स० २०११

रामचरितमानस, स० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, सर्वभारतीय काशिराज न्यास, रामनगर, वाराणसी, म० २०१८

रामचरितमानस, सिद्धात-तिलक-सहित, स० श्रीकातशरण, पुस्तक-भडार, पटना-४, स० २०१६
रामललानहछू, 'तुलसी के चार दल' और 'तुलसी-ग्रथावली' मे सकलित
रामाज्ञाप्रश्न; गीता प्रेस, गोरखपुर, स० २०१४
रामाज्ञाप्रश्न, स० श्रीकातशरण, पुस्तक-भडार, पटना-४, स० २०१८
विनयपत्रिका, स० देवनारायण द्विवेदी, ज्ञानमडल लि०, वाराणसी, १६६२ ई०
विनयपत्रिका, स० भगवानदीन, रामनारायणलाल, प्रयाग, स० २००६
विनयपत्रिका, स० वियोगीहरि, साहित्य-सेवा-सदन, बनारस, स० २००७
विनयपत्रिका, स० श्रीकातशरण, सद्गुरुकुटी, गोलाघाट, अयोध्या, स० २०१३
विनयपत्रिका, स० हनुमानप्रसाद पोद्दार, गीता प्रेस, गोरखपुर, स० २०१६
वैराग्यसदीपनी, 'तुलसी-ग्रथावली' मे सकलित
वैराग्यसदीपनी, स० हनुमानप्रसाद पोद्दार, गीता प्रेस, गोरखपुर, स० २००६
हनुमानबाहुक, 'तुलसी-ग्रथावली' मे सकलित
हनुमानबाहुक, स० महावीरप्रसाद मालवीय, गीताप्रेस, गोरखपुर, स० २०१५
हनुमानबाहुक, स० श्रीकातशरण, सद्गुरुकुटी, गोलाघाट, अयोध्या, १६५० ई०

प्रमुख सहायक-ग्रथ

अग्निपुराण, व्यास, प्र० मनसुखराय मोर, ५, क्लाइव रो, कलकत्ता, स० २०१४
अध्यात्मरामायण, व्यास, गीता प्रेस, गोरखपुर, स० २००८
अनर्घराघव, मुरारि, चौखबा विद्याभवन, वाराणसी, स०, २०१७
अभिज्ञानशकुन्तल, कालिदास, सुधाकर प्रेस, बबई, १६१३ ई०
अभिनवभारती, 'नाट्यशास्त्र' पर अभिनवभारती, जिल्द १, अभिनवगुप्त, ओरियन्टल इन्स्टीटयूट, बडौदा, १६५६ ई०
आनदरामायण, वाल्मीकि (?), गोपालनारायण आणि कम्पनी, बबई, १६२६ ई०
उत्तररामचरित, भवभूति, निर्णयसागर प्रेस, बबई, १६०६ ई०
उत्तरी भारत की सत-परपरा, परशुराम चतुर्वेदी, भारती-भडार, प्रयाग, स० २००८
कबीर-वचनावली, स० अयोध्या सिंह उपाध्याय, नागरी-प्रचारिणी सभा, काशी, स० २००३
कल्याण, रामायणाक; गीता प्रेस, गोरखपुर, १६३० ई०
काव्यप्रकाश, मम्मट, आनदाश्रम प्रेस, पूना, १६२१ ई०
काव्यमीमासा, राजशेखर, ओरियन्टल इन्स्टीटयूट, बडौदा, १६३४ ई०
काव्यादर्श, दडी, मास्टर खेलाडीलाल ऐन्ड सन्स, बनारस, स० १६८८
काव्यालकार, भामह, चौखबा सस्कृत सीरीज, बनारस, १६२८ ई०
काव्यालकारसूत्र, वामन, आत्माराम ऐन्ड सन्स, दिल्ली, स० २०११
केशव-ग्रथावली, स० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, हिंदुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद, १६५४ ई०
गीता, शाकरभाष्य-सहित, गीता प्रेस, गोरखपुर, स० २००८
गीता, रामानुजभाष्य-सहित, गीता प्रेस, गोरखपुर, स० २००८

गोस्वामी तुलसीदास, रामचद्रशुक्ल, नागरी-प्रचारिणी सभा, काशी, स० २००८
गोस्वामी तुलसीदास, रामदत्त भारद्वाज, भारती साहित्य मदिर, दिल्ली, १९६२ ई०
गोस्वामी तुलसीदास, शिवनदनसहाय, बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद्, स० २०१७
गोस्वामी तुलसीदास, श्यामसुदरदास, हिंदुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद, १९५२ ई०
गोस्वामी तुलसीदास की समन्वय-साधना, प्रथम सस्करण; ब्यौहार राजेंद्रसिंह, नागरी-प्रचारिणी सभा, काशी
घटरामायन, तुलसी साहब, बेलवेडियर प्रिन्टिग वर्क्स, इलाहाबाद, १९६१ ई०
चद्रालोक, जयदेव, गुजराती प्रिन्टिग प्रेस, बबई, १९३४ ई०
तुलसी, स० उदयभानुसिंह, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, १९६५ ई०
तुलसी, रामबहोरी शुक्ल; हिंदी-भवन, इलाहाबाद, १९४९ ई०
तुलसी की जीवन-भूमि, चद्रबली पाडे, नागरी-प्रचारिणी सभा, काशी, स० २०११
तुलसी के चार दल, पुस्तक पहली; सद्गुरुशरण अवस्थी; इन्डियन प्रेस, प्रयाग, १९३५ ई०
तुलसी के भक्त्यात्मक गीत, वचनदेव कुमार, हिंदी-साहित्य-ससार, दिल्ली, १९६४ ई०
तुलसी-ग्रथावली, प्रथम-सस्करण, नागरी-प्रचारिणी सभा, काशी
तुलसी-दर्शन, बलदेवप्रसाद मिश्र, हिंदी-साहित्य-समेलन, प्रयाग, स० २००५
तुलसी-दर्शन-मीमांसा, उदयभानु सिंह, लखनऊ विश्वविद्यालय, स० २०१८
तुलसीदास; चद्रबली पाडे, शक्ति-कार्यालय, दारागज, प्रयाग, स० २००५
तुलसीदास, माताप्रसाद गुप्त, हिंदी-परिषद्, प्रयाग विश्वविद्यालय, १९५३ ई०
तुलसीदास और उनका काव्य, रामनरेश त्रिपाठी, राजपाल ऐन्ड सन्स, दिल्ली, १९५८ ई०
तुलसीदास और उनका युग, राजपति दीक्षित, ज्ञानमडल लि०, बनारस, स० २००९
तुलसीदास और उनके काव्य, रामदत्त भारद्वाज, सूर्य प्रकाशन, दिल्ली, १९६४ ई०
तुलसीदास का कथाशिल्प, रागेय राघव, साहित्य प्रकाशन, दिल्ली, १९५९ ई०
तुलसीदास का प्रगीतकाव्य, विनयकुमार, ओरियन्टल बुक डिपो, दिल्ली, १९६२ ई०
तुलसीदास की अलकार-योजना, अप्रकाशित शोधप्रबध, नरेंद्रकुमार, दिल्ली
तुलसीदास की भाषा; देवकीनदन श्रीवास्तव, लखनऊ विश्वविद्यालय, स० २०१४
तुलसीदास : जीवनी और विचारधारा, राजाराम रस्तोगी, अनुसधान, प्रकाशन, कानपुर, स० २०२०
तुलसी-सतसई, स० रामचद्र द्विवेदी, सरस्वती-भडार, पटना, स० १९८५
तुलसी-साहित्य-रत्नाकर, रामचद्र द्विवेदी, सत्साहित्य-प्रकाशक-मडल, पटना, स० १९८६
ध्वन्यालोक, आनदवर्धन, चौखबा सस्कृत सीरीज़, बनारस, स० १९९७
ध्वन्यालोकलोचन, अभिनवगुप्त, उपर्युक्त चौखबा...
नाटयदर्पण, रामचद्र गुणचद्र, ओरियन्टल इन्स्टीटयूट, बडौदा, १९२९ ई०
पदमावत, जायसी, स० वासुदेवशरण अग्रवाल, साहित्य-सदन, चिरगाव, स० २०१२
प्रसन्नराघव, जयदेव, चौखबा विद्याभवन, बनारस, १९५६ ई०
भक्तिरसायन, मधुसूदन सरस्वती, अच्युतग्रथमाला, काशी, १९५० ई०
भागवतपुराण, व्यास, गीता प्रेस, गोरखपुर, स० २००६

मनुस्मृति, मनु, निर्णयसागर प्रेस, बबई, १९४६ ई०
महाभारत, प्र० स०, व्यास, गीता प्रेस, गोरखपुर
महावीरचरित, भवभूति, निर्णयसागर प्रेस, बबई, १८९२ ई०
महिम्नस्तोत्र, पुष्पदत, निर्णयसागर प्रेस, बबई, १९३७ ई०
मानस की रामकथा, परशुराम चतुर्वेदी, किताबमहल, इलाहाबाद, १९५३ ई०
मानस की रूसी भूमिका, अनु० केसरीनारायण शुक्ल, विद्यामदिर, लखनऊ, १९५५ ई०
मानस-दर्शन, श्रीकृष्ण लाल, आनद पुस्तक-भवन, बनारस, स० २००६
मानस-पीयूष, देखिए पूर्वोक्त 'रामचरितमानस'
मानस-मीमासा, रजनीकात शास्त्री, किताबमहल, इलाहाबाद, १९४९ ई०
मानस मे रामकथा, बलदेवप्रसाद मिश्र, बगीय हिंदी-परिषद्, कलकत्ता, १९५२ ई०
याज्ञवल्क्यस्मृति, याज्ञवल्क्य, निर्णयसागर प्रेस, बबई, १९४९ ई०
योगवासिष्ठ, वाल्मीकि (?), निर्णयसागर प्रेस, बबई
रघुवंश, कालिदास, निर्णयसागर प्रेस, बबई, १९४८ ई०
राम-कथा, कामिल बुल्के, हिंदी-परिषद्, प्रयाग विश्वविद्यालय, १९५० ई०
रामचरितमानस का तुलनात्मक अध्ययन, शिवकुमार शुक्ल, अनुसधान-प्रकाशन, कानपुर, १९६४ ई०
रामचरितमानस का शास्त्रीय अध्ययन, राजकुमार पाडेय, अनुसधान-प्रकाशन, कानपुर, १९६३ ई०
रामचरितमानस की भूमिका, रामदास गौड, हिंदी-पुस्तक-एजेन्सी, बनारस, १९५० ई०
रामचरितमानस के साहित्यिक स्रोत, सीताराम कपूर, अप्रकाशित शोधप्रबध, आगरा
रामचरितमानस पर पौराणिक प्रभाव, विजयबहादुर अवस्थी, अप्र० शोधप्रबध, दिल्ली
रामायण, वाल्मीकि-रामायण, गीता प्रेस, गोरखपुर, स० २०१७
वाल्मीकि और तुलसी साहित्यिक मूल्याकन; रामप्रकाश अग्रवाल, प्रकाशन प्रतिष्ठान, मेरठ, १९६६ ई०
वाल्मीकि-रामायण एव रामचरितमानस का तुलनात्मक अध्ययन, विद्या मिश्र, लखनऊ विश्वविद्यालय, १९६३ ई०
साहित्यदर्पण, विश्वनाथ, स० सत्यव्रत सिंह, चौखबा विद्याभवन, वाराणसी, १९५७ ई०
सूरसागर, सूरदास, नागरी-प्रचारिणी सभा, काशी, स० २०२१
हनुमन्नाटक, हनूमान् (?), मास्टर खेलाडी लाल ऐन्ड सन्स, काशी, १९४४ ई०
हिंदी-साहित्य, हजारीप्रसाद द्विवेदी, अत्तरचद कपूर ऐण्ड सन्स, दिल्ली, १९५२ ई०
हिंदी-साहित्य का अतीत, विश्वनाथप्रसाद मिश्र, वाणी-वितान, वाराणसी, स० २०१५
हिंदी-साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास; रामकुमार वर्मा, रामनारायणलाल, इलाहाबाद, १९५४ ई०
हिंदी-साहित्य का इतिहास, रामचद्र शुक्ल, इडियन प्रेस, प्रयाग, स० १९९७
हिंदी-साहित्य की भूमिका, हजारीप्रसाद द्विवेदी, हिंदी-ग्रथ-रत्नाकर, बबई, १९४० ई०

अनुक्रमणिका

आवश्यक संशोधन

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१२	३३	प्रातिकूल्यक्य	प्रातिकल्यस्य
२६	२७	गोसाईंचरित	गोसाईंचरित्र
२८	४	जिससे	जिसके
३५	११	प्रियदास	प्रियादास
५०	८	१६६८	१५६८
६२	१०	परारित	पराजित
६२	२३	प्रा काल	प्रात काल
६२	३३	रस	इस
६४	३	ताजिए	तजिए
६८	८	सम्यक	सम्यक्
७३	२६	खानि	रवनि
७४	३	रामचरितमास	रामचरितमानस
७४	१३	लिया	किया
६५	२०	पास	पार
११२	२६	चरा	धुरा
११७	३२	की	को
१२४	२६	मलमात्र	मूलमात्र
१३६	२७	८३	६३
१३६	३०, अतिम शब्द	छत्तीस	छत्तीन
१४१	२	कवियो मे	कवियो के
१५४	१	मनियम	मनिमय
१५६	५	सेवारास	सेवादास
१७३	अतिम	१पृ ६,०	१६, पृ०
१६५	२२	अविकार	अधिकारी
२०१	८	हँते	हँसे
२०२	१३	पाच	पोच
२०२	२४	कम	कर्म
२१२	२६	हीने	होने
२१६	१०	स्फर्त	स्फूर्त
२३२	२३	कलिगुग	कलियुग
२३७	१५	नरुल	नूरुल

२३९	२१	कात	काना
२३९	३३	हिआनी	हिन्दुआनी
२४६	१	कवाना	नवीना
२५२	१३	करी	कन्ही
२५२	अतिम	भनति	भनिति
२६०	१७	दूपर्न	दूगन
२७९	१४	णौर	और
२८४	२	शाम	शम
२८५	१९	चढ	चढि
२८९	८	अभिव्यजना	अभिव्यजना
२८९	८	द्रष्टच्य	द्रष्टव्य
२९३	१	विप्रलभ	विप्रलम
३१५	२८	दूसरी	दूसरे
३२२	६	चित्रवृत्ति	चित्तवृत्ति
३५१	१८	रसता	रसा
३८०	१८	मजरी	मजूरी
३८१	३३	कृष्णगीताजली	कृष्णगीतावली
३९५	१	सन	मैंन
३९९	१२	स्रोत- थो	स्रोत-ग्रथो
४०१	१८	परंपरा	परपरा
४२४	४	व्वाप्ति	व्याप्ति
४४३	२०	दुतिदामिमिनि	दुतिदामिनि
४४६	१६	आत्माव्यक्ति	आत्माभिव्यक्ति
४४९	१६	विनयपत्रत्रिका	विनयपत्रिका
४५०	३१	पप	पद
४५१	१७	वैशिट्य	वैशिष्ट्य
४५३	२७	विपय	विपम
४५६	३	तव	तव
४६०	७	रक्षिण्तीति	रक्षिप्यतीति
४६९	१३	हीन	नही
४७८	२७	विभानुभावो	विभावानुभावो
४८०	१०	पयोदेहि	पयादेहि